Scanned by CamScanner

॥ नमः श्री सीतारामाभ्याम् ॥

श्री प्रेम रामायण

(टीका सहित) भाग – १

अनन्त श्री विभूषित श्रीमद्रामानन्दीय द्वारा प्रतिष्ठापनाचार्य
वर्य स्वामिपाद

श्रीमद् योगानन्दाचार्य

वंशावतंश निखिल सन्तवृन्द वन्दित पादपद्माशेष
शास्त्र पारांगत परमहंस परिव्राजकाचार्य सिद्ध पद
प्रतिष्ठित जगदुद्धारक पण्डित प्रवर

श्रीमद् रामवल्लभाशरण महाभाग

चरणाश्रित अखिल वेद वेदांग निष्णात विशिष्टाद्वैत
सिद्धान्त प्रतिष्ठापनाचार्य पूज्यपाद

श्रीमद् अखिलेश्वर दास महाराज

चरण कमल चंचरीकेण प्रेममूर्ति पंचरसाचार्येण

श्रीमद् राम हर्षण दास

स्वामिना प्रणीतं

श्री प्रेम रामायण

(टीका सहित) भाग–१

* रचयिता :
  श्रीमद् रामहर्षण दास जी महाराज

* टीकाकार :

  राम नरेन्द्र दास
  (नरेन्द्र प्रसाद तिवारी)

* प्रकाशक :

  प्रकाशन विभाग
  श्री राम हर्षण कुंज,
  परिक्रमा मार्ग,
  अयोध्या (उ.प्र.)
  पिन : २२४ १२३

* सर्वाधिकार सुरक्षित :

  श्री राम हर्षण सेवा संस्थान,
  अयोध्या (उ.प्र.)

* प्रथम आवृत्ति : २००
  गुरु पूर्णिमा १२.०७.२०१४

* मूल्य : ४५०/–

।। रसिकजनवल्लभाभ्यां नमः ।।

नम्र निवेदन

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक, पूर्णात् पूर्ण ब्रह्म, सच्चिदानन्द विग्रह, कृपा वारिधि, करुणा वरुणालय, अनंत दिव्य गुण गणार्णव, परम प्रेम परमार्थ पयोनिधि, वेद वेद्य, निर्गुण, निर्विकार, निराकार, निर्विशेष, निरतिशय, निष्कल, निरीह, अज, अद्वैत, अनाम, अखंड, अनन्त, अव्यय, विभु, व्यापक, सगुण, साकार, सविशेष, सदगुण–सम्पन्न, सर्व भोक्ता, सर्वाधार, सर्वात्मा, सर्व रक्षक, सर्व शेषी, सर्वेश पदवाच्य, अनन्त सौंदर्य–सौकुमार्य–सौष्ठव, लावण्य, लालित्य से युक्त, माधुर्य महोदधि, मन मोहन, श्याम सुन्दर रघुनंदन श्रीराम भद्र जू तथा उनसे अभेद, अचिन्त्य, अविनाभूता आत्मा श्री विदेहराज नन्दिनी सीता जू के अनिर्वचनीय प्रेम चरित जैसे अगम, अपार, अगाध और अनन्त हैं, उसी प्रकार उनके पद प्रेम प्रवाह में बहे हुये प्रेमियों की प्रेम लीला भी वास्तव में निर्विवाद, निःसन्देह, अकथ, अमृतमय, अमरता को प्रदान करने वाली है। श्रुति शास्त्र एवं सद्सन्तों का यह आनुभाविक सिद्धान्त है कि प्रेमास्पद, प्रेमी में भेद का सदा अभाव है।

वेद वर्णित ब्रह्म रसमय है यह सभी रसिक संतों से अविदित नहीं है, कि जिसके प्रमाण में कई श्रुतियाँ स्वयं समाधान करती हैं। रसधर्मी हैं, आनन्द उसका धर्म है। अस्तु श्री सीताराम जी महाराज स्वयं रसरूप हैं और स्वयं रस के द्वारा रस का आस्वाद लेते हैं अतएव रसिक हैं। आप युगल मूर्तियों का धर्म आनन्दमय, स्वभाव आनन्दमय है। उसी प्रकार जिस जन के हृदय कमल में आप कुटीर बनाकर बसते हैं वह भक्त हृदय भी आप की लीला स्थली बन जाता है, वहाँ भी रस धारा बहने लगती है। यद्यपि रस रूप आप अपना रस स्वयं उस प्रेमी के हृदय सर में भरते हैं जो आपसे व आपके धर्म स्वभाव से भिन्न नहीं है, तथापि उस रसिक भक्त में रसोदय होने से उसको भी रसिक संज्ञा मिल जाती है। वह रसिक तथा आप स्वयं रसरूप रसिकेश्वर एक हो जाते हैं। ऐसा रसानुभवी रसिकों, रसाचार्यों एवं श्रुति–मंथित रस ग्रन्थों व श्रुति शास्त्र का सिध्दांत है।

जिस प्रकार जल द्रवमय, अग्नि तेजोष्णमय और सूर्य प्रकाशमय हैं, ठीक उसी प्रकार ब्रह्म लीलामय हैं। वह कभी लीला से अतिरिक्त नहीं देखे जाते। लीला शक्ति उनका कभी साथ नहीं छोड़ती, इसीलिए उनकी लीला बिना विराम के प्रवाहित रहती है। तीनों काल में वह ललित लीला, सच्चिदानन्द रूप अर्थात् प्रकृति से परे रहती है, क्योंकि सत से असत् का होना सदा असम्भव और अशक्य है। अमृत से विष का निर्माण नहीं होता। इस चिन्मय लीला की पृष्ठ–भूमि ब्रह्म का हृदय हैं जो ब्रह्म से किंचित पृथक एवं अन्य तत्व नहीं है। उस लीला को अव्यक्त लीला कहा जाता है। पुनः उसी लीला का विकास परिकरों के बीच, पराधाम सान्तानिक प्रदेश में होता है जिसे वास्तविक लीला के नाम से परमार्थदर्शी लीला रसिक बतलाते हैं। यही वास्तविक लीला, लीला शक्ति के सहारे, लीलामय से प्रेरित होकर, लीलामय श्री मन्महाराज दशरथनंदन जू के प्रसन्नार्थ, धराधाम श्री अयोध्या व मिथिला में होती है जिसे विज्ञ जन व्यावहारिक लीला कहकर पुकारते हैं। ये तीनों लीलायें एक होते हुये भी क्रमशः अधिक विकसित व जन साधारण के लिये आनन्दप्रद होती जाती हैं। भक्त भावन भगवान जब कभी भक्तों से भावित हो प्रसन्न होते हैं, तब वे अपनी निर्हेतुक कृपा परवश हो, अपने भोलेभाले प्रेमोन्मत भक्तों को सुख देने के लिये, स्वयं प्रेमी के विरह को न सहते हुये उनके हृदय प्रांगण को ही अपनी लीला स्थली

बनाकर उक्त लीला करने लगते हैं। उस समय भक्त को नव–नव भावों एवं नित्य नवीन लीलाओं का दर्शन हृदय पटल पर होने लगता है। अपने को वह प्रभु कृपा से वरण किया समझने लगता है, कृतकृत्य हो जाता है। उसके हृदय में लीला से उत्पन्न प्रेम प्रवाह प्रवाहित हो, उसको रसमय प्रेममय, आनन्दमय बना देता है। वह भक्त प्रकाशमय, विज्ञानमय, मंगलमय, सच्चिदानन्दमय हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि भगवान, भगवान की लीला व उनकी लीला के पात्र, तथा लीला भूमि सभी सुखमय, सरस और सच्चिदानन्दमय हैं। इसमें शंका, संदेह तथा कुतर्क का समावेश नहीं। वेद भाष्य, इतिहास, पुराणों तथा लीला रसिक सुर–नर–मुनि–संत समुदाय से सुस्पष्ट सिद्ध है। समुद्र व समुद्र का जल व समुद्र में अनन्त लहरों का उठना व विलीन होना सब जलमय है अर्थात् जल से अतिरिक्त अन्य कोई चीज नहीं है। समुद्र अपने में, अपने सहारे, अपने ही किलोल करता है अर्थात् अपना ही आनन्द अनुभव करता है। वैसे ही लीलामय सच्चिदानन्द घन व उनकी लीला, लीलापात्र व लीलाभूमि का विषय सूक्ष्मदर्शी प्रभु प्रेमी व सद्गुरु सुश्रूषा परायण सद्शिष्य, जिसे प्रीति प्रतीति प्रसव करने वाली विवेकमयी सूक्ष्म बुध्दि प्राप्त हो चुकी है, भली प्रकार प्रभु कृपा से जानते हैं।

उक्त प्रकार भक्ति, भक्त, भगवान अर्थात् प्रेम, प्रेमी, प्रमास्पद तीनों का संमिश्रण अर्थात् एकीकरण ही महारस, महाभाव व परम परमानन्द है। इन्हीं तीनों से सहज स्वभावानुसार जो स्फुरण व चेष्टा होती है उसी को प्रेम चरित, प्रेम लीला व प्रेम कथा के नाम से मनीषियों ने कहा हैं, जो प्रेमी, प्रेमास्पद व प्रेम से सदा अभिन्न है, राम के रँगीले रसिकों को रसानुभूति कराने के लिये रस वाहिनी सरिता है तथा परमार्थ प्रदायिनी प्रभु प्रेम कोष की अध्यक्षा हैं।

प्रस्तुत प्रेम रामायण में प्रेम–प्रेमी व प्रेमास्पद के चरित चित्रण का प्रयास मेरा बाल विनोद अर्थात् शिशु केलि है। शिशु की समर्थता का बोध सभी सज्जनों को सुलभ ही है कि वह अज्ञान की साकार मूर्ति होता है फिर भी वात्सल्य रस के रसिक माता पिता व सभी गुरुजन शिशु की अज्ञानता पर ध्यान न देते हुए प्रसन्न ही नहीं, बल्कि, आनन्द में विभोर हो जाते हैं अपने को धन्य व सुखी मानते हैं इष्टदेव को बधाई देते हैं कि आप की कृपा से मुझे यह बाल–केलि का अनुपम आनन्द सुलभ हुआ, यह बाल चिरन्जीवी हो।

सभी साधु सन्तों सहित सद्गुरुजनों एवं सद्गृहस्थ सज्जनों का मैं अबोध शिशु हूँ। इसकी तोतली वाणी को बहिष्कृत न कर अपने सद्स्वभाव से प्रसन्न होंगे ऐसी अपनी प्रतीति व प्रार्थना है। मेरे दुर्भाग्य से कहीं अप्रसन्नता की चपत भी जमा दी गई तो भी वह मेरी परिस्थिति को सुधारने के लिये प्रभु कृपा की परिणाम ही होगी। शिशु की गति तो माता ही है चाहे वह लाड़–प्यार करे चाहे डाँट बतावे। वस्तुतः दास की संरक्षक संत–चरण–रेणु ही हैं। कहाँ जाऊँ किस से कहूँ अन्यत्र........

श्री प्रेम रामायण में मेरा कुछ नहीं हैं (जो कुछ है भक्त व भगवान का चरित है। वाणी भी साधु सन्तों व शास्त्रों की उच्छिष्ट है, सो भी बरसाती जमीन की तरह फिसलती हुई, अबद्ध अर्थात् कविता गुण से सब प्रकार अछूती ही है। अपनी नाम की वस्तु त्रुटि अवश्य इसमें हैं, पर भावग्राही संत दोष को न देखते हुए, स्वयं सुधारकर हृदय में आनन्द मानते हुये, मुझे यश का पात्र बनायेंगे। यह उनके हृदय की महानता एवं उदारता है।

दास ने प्रेम रामायण का लेखन–प्रारम्भ किसी जीव एवं अपने कल्याण व आनन्द पाने हेतु नहीं किया क्योंकि भगवान ही भली–भाँति सबके संरक्षक, उद्धारक व आनन्द प्रदायक हैं। मैं और मेरा कुछ नहीं। न कीर्ति की लिप्सा ने ही मुझे प्रेरित किया। कीर्ति ने तो केवल अचल रूप से एक भगवान को ही वरण कर रक्खा है,

इसी से उन्हें कीर्तिधारी कहते हैं। अन्य भौतिक कामनायें भी किंचित कारण नहीं बनी। प्रभु की कृपा से प्रेरित होकर, केवल उन्हीं का कैंकर्य करने की भावना ही इसमें कारण है, वह भी उन्हीं के बल से। स्वार्थ में यह बात सत्य है कि हृदय की स्थित्यानुसार, शान्ति सुख की प्रतीति होते हुये, लेखन काल में, मन को भव के मोहक विषयों में विचरने के लिये बहाना अप्राप्त रहा। यद्यपि श्री सीताराम जू के अति उदार, ऐश्वर्य, माधुर्य मिश्रित, मनोहर मधुमय चरित श्रुति शास्त्र पुराण एवं इतिहास में बहु विधि गाये गये है; संत–पद संपन्न करने वाले श्री सदाचार्यों ने भी अनेक रामायण विविध भाषाओं में लिखकर संत समाज एवं लोक की सेवा की है जिसे प्रभु कैंकर्य ही कहना चाहिये, तथापि सर्वेश्वर सर्वात्मा श्री सीताराम जी का कैंकर्य करने में जीव मात्र का समानाधिकार अबाधित अनादि काल से चला आ रहा है, आगे भी चलता रहेगा। अस्तु, दास ने, योग्यता न होते हुये भी टूटे–फूटे शब्दों में राम चरित कहने की ढिठाई की है, जिसके लिए सभी सज्जनों से सिर नत किये हुये क्षमा याचना...

देव देवेश्वर सर्वात्मा पूर्णब्रह्म श्रीरामजी की श्वसुरपुरी, मिथिलानगरी प्रेम–पुरी मानी जाती है। वहाँ के सभी नर–नारी व सपरिवार विदेह राज जू, श्री दशरथनन्दन राम जी के कोटि काम मद मर्दनहारी मन मोहन श्याम स्वरूप को देखते ही विभोर होकर सदा के लिये उनके हो गये; रूपासक्त बने रहे; देखते हुये भी दर्शन के प्यासे बने रहे। सर्व सुलभ रामायणों में मिथिला प्रेम का कुछ वर्णन व संकेत अवश्य पाया जाता है पर ऐसा नहीं कि जैसा अवधपुर का। जैसे – श्रीराम जी के मिथिला गमन के पहले, श्री विदेह राज नन्दिनी जू, श्री विदेह कुमार लक्ष्मीनिधि जी तथा श्री सुनैना जी सहित श्री सीरध्वज महाराज का पूर्वराग, कृपापूर्ण श्री राम जी, श्री विदेह राज नन्दिनी जू सहित विवाह के पश्चात अयोध्या पधारे, तत्पश्चात विदेहपुर वासियों की दशा का विवेचन। श्री किशोरी जी का मिथिला पुनः पधारना जो मिथिला वासियों को उतना ही आवश्यक है जितना अवध वासियों केलिये मिथिला से श्री रामजी का लौटकर अवध आना। श्री सीताराम जी वन वासी बने। चौदह वर्ष बाद पुनः अयोध्या आकर सिंहासनारूढ़ हुये, इसके बीच मिथिला वासियों का वियोग प्रदर्शन व चित्रकूट का मिलन क्रम तथा ये चौदह वर्ष मिथिला वासियों के किस प्रकार बीते। अयोध्या लौट आने पर श्री मिथिलापुर वासियों का सीताराम सम्प्रयोग कैसे हुआ। राज्यारूढ़ के पश्चात् मिथिला अवध का परस्पर प्रेम, गमनागवन व साकेत यात्रा संकेत, उपर्युक्त विषयों का विशद वर्णन अन्यत्र अप्राप्य सा ही है जबकि रामचरित के निर्माण के लिये दोनों पुरियों का योग ही परम कारण है। यद्यपि बीज रूप से सभी आर्ष ग्रन्थों में निहित है।

श्री दशरथ नंदन जू व जनक नन्दिनी जू में दोनों पुरियों का बराबर सम्बन्ध है। वेदज्ञों ने दोनों पुरिया को एक करके परिनिश्चित किया है। श्री महर्षि वाल्मीकि जी जो आदिकवि हैं और जिन्हें श्री राम चरित्र प्रकट करने का प्रथम श्रेय प्राप्त है, वे कहते हैं कि रामायण में श्री विदेहराज नन्दिनी जू का ही महत् चरित हमने वर्णन किया है। उनके वचन की प्रमाणता में श्री ब्रह्माजी की मोहर छाप है, ब्रह्मा जी ने कहा कि आप के वचन अर्थात् आपकी रामायण में सभी सत्य है। अतएव श्री विदेहराज नन्दिनी जू के पुरवासियों एवं पारिवारिक सम्बन्धियों का प्रेम प्रदर्शन सर्व साधारण के कान में भी आना चाहिये। अभी तक उपरोक्त मिथिलापुरवासियों का विशद चरित, जो रामचरित से सम्बन्धित है तथा उनके प्रेमपद्धति की जानकारी विस्तृत रूप से रहस्य ग्रन्थों तथा निर्मल प्रेमी सन्तों के हृदय तक ही सीमित है। हाँ, मिथिलापुरी के राजाओं की कर्म, योग, ज्ञानयोग व परम वैराग्यपूर्ण आत्म–विशारदत्व की कथायें वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति व इतिहास में अवश्य संतोषजनक रूप में मिलती हैं। कलि पावनावतार श्री मद्गोस्वामिवर्य तुलसीदास जी महाराज ने अवश्य ही इस ओर अपनी

दृष्टि डालकर भावुकों के भाव को संवर्धित किया है। हीरे में चमक लाकर जन–जन के गले में उसकी माला पहनाई है। सभी को मिथिला प्रेम का प्रकाश वितरण किया है उसी आलोक से आलोकित होकर मैथिल प्रेम के विषय में कुछ लिखने का साहस दास को हुआ है।

श्री सीताराम रसिक प्रेमियों के पोषण के लिये बहुत से रसवर्धक ग्रंथ संत समाज में उपलब्ध हैं फिर भी मैथिल सख्य रस का साहित्य न के बराबर ही है। यद्यपि इस रस के रसिक संत सदा से कुछ होते ही आये हैं। जैसे – मामा प्रयागदास जी इत्यादि। तथापि रस मत्त उन रसिकों द्वारा कुछ न लिखा जाना स्वाभाविक था। जब तक मुख जल के ऊपर है, तभी तक बोलना आता है, जब अथाह जल में डूब गया तब वाणी का विकास नहीं बनता। अस्तु।

मैथिल सखाओं का प्रेम श्री सीताराम जी से भगिनी भाम सम्बन्ध से सम्बन्धित होकर किस स्थिति को प्राप्त हुआ, युगल मनोहर मधुमयी मूर्तियों की परिचर्या उन्होंने किस विधि से की, श्री सीताराम जी की कृपा एवं प्रीति मैथिल सखाओं पर कहाँ तक कैसी रही; इत्यादि विषयों की जानकारी साहित्य द्वारा समाज को असुलभ रही जिसका परिणाम यह हुआ कि अन्य रस के रसिकों की अपेक्षा बहुत कम रसिक संत इस रस के भोक्ता हुये। इस रस की ओर आकर्षित करना, मैथिल सख्य रस पोषक साहित्य का काम है। जिस देश, धर्म, जाति, वर्ण, आश्रम, भाषा व ज्ञान का साहित्य नहीं होता वह मृत्यु–मुख का ग्रास बन जाता है अर्थात् लुप्त हो जाता है। यही स्थिति वर्तमान समय में मैथिल–सख्य रस की है।

प्रभु अंतरयामी हैं, अन्तःकरण के प्रेरक हैं, हृषीकेश हैं, जिससे जब जैसा जो कराना चाहते हैं करा लेते हैं। लीलामय की लीला को उनके बिना कौन जान सकता है कि कब किससे कैसा क्या करना चाहते हैं? उर प्रेरक रघुवंश विभूषण ने दास को प्रेरित किया कि, मैथिल सख्य रस वर्धक एवं पोषक भगवत–भागवत चरित्र लिखा जाय। जिस सम्पूर्ण रामचरित में मैथिल–परिकर सम्मिलित रहे जैसा कि ऊपर दास ने निवेदन किया है। अर्थात् दम्पति श्री जनक जी महाराज एवं मैथिली जू सहित श्री मिथिलेश कुमार का पूर्व रामानुराग से साकेत यात्रा तक राम चरित मिश्रित चरित चित्रित हो जो संत शास्त्रानुमोदित एवं उक्त महानुभावों के प्रेम को प्रदर्शन करने वाला हो। समर्थ प्रेरक प्रभु प्रेरणा की अवहेलना करने मे कौन समर्थ है ? दास को असमर्थ होते हुये भी हाथ में लेखनी लेनी पड़ी। मेरे परम प्रभु ने मेरा हाथ पकड़ कर जो लिखवाया, लिख गया। वही लेख समूह उन्ही प्रभु की प्रेरणा से प्रेम रामायण संज्ञा को प्राप्त किया जो पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

प्रेम–रामायण के लेखन शैली की पृष्ठभूमि आध्यात्म है अर्थात् आध्यात्मिक अर्थ को कथानक रूप में कहकर वर्णन किया गया है। जैसे फूलवाटिका का प्रसंगः– मिथिला काण्ड में ''श्री राम जी महाराज वाटिका में प्रवेश करते हैं, उन्हें देखकर सैकड़ों मालिनियाँ बेहोश होकर भूमि में गिर जाती हैं''– यह हुआ कथानक, आध्यात्मिक अर्थ यह है कि बुद्धि के सूक्ष्म होने पर परमात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव होते ही सारी चित्त–वृत्तियाँ नष्ट हो गई। ''आत्मावारे द्रष्टव्यः'' इस वेद मंत्र का अर्थ रहस्य सहित सिद्ध करने की प्रक्रिया फूल वाटिका में कथानक रूप से कही गई है। इसी प्रकार लक्ष्मीनिधि जी का संवाद जहाँ अपनी पत्नी सिद्धि जी से है वहाँ ऊपर से तो अध्यात्म कथानक है किन्तु दृष्टि में जीव तथा बुद्धि का परस्पर परमार्थ प्राप्त करने की प्रक्रिया व सूझ का वर्णन है। श्री लक्ष्मीनिधि जी का अयोध्या गमन एवं श्रीराम जी महाराज की ओर से उनका स्वागत, कथानक है। किन्तु वही अध्यात्म में जीव जब परमपद प्राप्त कर अपुनरावर्ती धाम में प्रभु कैंकर्य प्राप्त करता है तब की दशा का वर्णन है इत्यादि। अध्यात्म का अर्थ–रहस्य ही, प्रेम रामायण रूप में प्रगट होकर, सभी

मुमुक्षुओं को अपने में आत्मसात करने को कह रहा है। राम कथा के रसिक महानुभावों को प्रेम रामायण की प्रेमकथा श्रवण मात्र से ही शान्ति, सुख का वर्धन करती हुई, प्रेम प्रदायिनी होगी, किं पुनः यदि उसके आध्यात्मिक अर्थ–रहस्य को अनिवार्य रूप से अवधारण कर प्रेम पथ का पथिक बना जाय?

श्री प्रेम रामायण में प्रधान वक्ता श्री लखनलाल जी तथा श्रोता श्री हनुमानजी महाराज हैं। पराधाम श्री साकेताधिस्थ श्री रामजी महाराज ने लीला रसास्वाद लेने की इच्छा को श्री विदेहराज नन्दिनीजू से प्रगट कर पलक गिराये और एक निमिष में ही यहाँ बैठे बैठे धराधाम अयोध्या मिथिला की लीला अर्थात् बाल, ब्याह, रास, वन, रण और राजलीला देख परमानन्द प्राप्त किया। श्री परमाहादिनी अचिन्त्य शक्ति श्री सीता जू ने कहा, ''हे प्राण प्रियतम जू! आपका संकल्प सदा सत्य है, संकल्प ही तो लीलारूप धारण कर लेता है, जो आप से सदा अपृथक है। आपको कहीं आने–जाने की आवश्यकता ही नहीं होती। आपका गमनागमन कहते भी नहीं बनता क्योंकि आप अणु–अणु में पूर्ण रूप से विराज रहे हैं।'' बस उसी लीला का चिन्तन प्रेम रामायण में है। अतएव, प्रथम श्री हनुमान जी का लक्ष्मण जी के कीर्तन भवन में, कीर्तन रस में सम्मिलित होना, एकांत में श्री लक्ष्मण जी के श्री राम–चरित का श्रवण, मिथिला का प्रसंग चलने पर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रभु–प्रीति व उनके जन्म कर्म जानने की जिज्ञासा प्रगट करना, श्री हनुमान जी की बढ़ती हुई कथा लिप्सा को समझ श्री लखनलाल जी का मिथिलेश कुमार के जन्म कथा के ब्याज से साकेत धाम में श्रीराम जी का लीला संकल्प एवं परिकरों सहित धराधाम में पदार्पण का प्रिय प्रसंग कहना, पुनः लक्ष्मीनिधि जी की बाल लीला व ब्याह लीला निरुपण के साथ उनका पूर्व रामानुराग वर्णन करते हुये, श्रीराम जी का जन्म व बाल केलि प्रसंग एवं श्री सीता जन्म व उनकी बाल लीला, भ्रातृ–भगिनि–प्रेम तथा पूर्व रामानुराग सम्बन्धी विविध व एकान्तिक लीलानुवर्णन करना, आदि प्रसंगों से कथानक प्रारंभ होता है।

तत्पश्चात् अनेक मधुर–मधुर प्रसंगों चरित्रों एवं संवादों के द्वारा, श्री प्रेम रामायण में बीच–बीच में ज्ञान, वैराग्य का यथार्थ स्वरूप, कर्म का रहस्य, भक्ति रहस्य, प्रेम रहस्य, शरणागति धर्म, स्वस्वरूप, परस्वरूप, उपाय स्वरूप, फल स्वरूप, विरोधी स्वरूप, अर्थ पंचक ज्ञान; अकार–त्रय, तत्व–त्रय का विवेचन, जीव, ईश, माया व परमार्थ तत्व का विवेचन, वैष्णव धर्म का निरुपण, संसार व परम पद का स्वरूप शोधन, भागवत धर्म का विशद वर्णन, श्रुति शास्त्र एवं संत–सिद्धान्त से किया गया है।

अस्तु अनेकानेक श्रुति मंत्रों के भाव भी सुस्पष्ट हैं। सज्जनों से सर्वतोभावेन मेरी प्रार्थना है कि दास को अपने भावों से भावित होकर आशीर्वाद दें कि प्रभु प्रेरित मेरे प्रयास को अपनाकर श्री सीताराम जी महाराज मुखोल्लासता को प्राप्त हो। क्योंकि कैंकर्य वही है जिससे स्वामी को सुख हो।

संत पद रेणु संरक्षित
राम हर्षण दास

ग्रन्थकार का संक्षिप्त जीवन परिचय

नित्यं स्मरामि तिलकाकिंत भव्यभालं
स्वर्णच्छविं शिवस्वरूपमहेतु दानिम् ।
श्री राम नाम अविराम रटन्महान्तं
श्री रामहर्षण प्रभुं प्रेमावतारम् ॥

परम करुणामय परमात्मा की अनुग्रह–सृष्टि में जब तब ऐसे महापुरुषों का आविर्भाव होता रहता है जो केवल लोक कल्याण के लिये अवतरित होकर, कठिन कलिपंकाभिषिक्त प्राणियों के समक्ष प्रभु प्रेम का पथ प्रशस्त करते हैं, स्वयं नित्य मुक्त होते हुये भी जीवन एवं मरण की लीलाओं को अंगीकार करते हैं और एक नियत काल में नियत भूमिका प्रस्तुत कर पुनः लीलाओं का संवरण कर लेते हैं। ऐसे महापुरुषों के एक–एक 'आचरण' लोक मंगल के सुदृढ़ स्तम्भ होते हैं, और इसीलिये तो वे आचार्य संज्ञा से विभूषित होते हैं, प्रस्तुत श्री प्रेम रामायण के प्रणेता परम प्रेमावतार आचार्य श्री राम हर्षण दास जी महाराज का जीवन स्वयं में एक ग्रन्थ है।

आचार्य श्री का पार्थिव अवतरण विन्ध्य क्षेत्र, मध्यप्रदेश के पौड़ी नामक ग्राम में सम्वत् १९७४ जेष्ठ शुल्क चतुर्थी को सूर्योदय की दिव्य वेला में हुआ था। आपके पूज्य पिता का नाम पं. श्री राम जीवन शरण जी था। पवित्र सरयू पारीण पिड़िहा त्रिपाठी ब्राह्मणों में आपकी उत्तम प्रतिष्ठा थी। आचार्य श्री के जन्म के कुछ ही दिन पश्चात् पूज्य पंडित जी ने श्री जगन्नाथ धाम की यात्रा की और वहीं उनके पाञ्च–भौतिक–वपु का अवसान हुआ और तब माता के एक मात्र पुत्र–पद को अलंकृत करने वाले इन प्रेमाचार्य का पालन–पोषण माता जी के ही द्वारा होने लगा।

आचार्य श्री के श्री अंगों में जन्म से ही कुछ विशेष चिन्ह थे। एक तो उनके दमकते हुए गौर भाल में स्वाभाविक ऊर्ध्वपुण्ड्र की तीन रेखाओं का स्पष्ट दर्शन होता था। मस्तक की इन्हीं रेखाओं के कारण आपका नाम ही 'श्री तिलक धारी राम' पड़ गया था, जो पूरे गृहस्थाश्रम की लीला तक प्रतिष्ठित रहा। दूसरी विशेष बात थी दोनों हाथों की दशों अँगुलियों में चक्र के चिन्ह तथा तीसरा विशेष चिन्ह दक्षिण चरण में तलुये को आरपार करती हुयी ऊर्ध्वरेखा। बाल्यावस्था से ही आपके प्रत्येक आचरण विलक्षण थे।

लगभग ६, ७ वर्ष की अवस्था में श्री अयोध्या के अनुरागी संत श्री कौशलकिशोर दास जी महाराज ने आपको लीला स्वरूपों के पद में अभिषिक्त किया और आपके द्वारा बहुत समय तक श्री राम लीला का सुख संतों को प्राप्त होता रहा। स्वरूपावस्था में आप जिस किसी भी भूमिका में रहते पूर्ण भावावेश में भर जाते थे। आप का अध्ययन जन्म–भूमि के निकटवर्ती खजुरीताल तथा अमरपाटन विद्यालयों में हुआ। अध्ययन के अनन्तर कुछ काल तक वैष्णव स्थान खजुरीताल के विद्यालय में आप अध्यापन कार्य भी करते रहे। परम नाम–जापक गुरुदेव श्री १०८ श्री महात्मा पुरुषोत्तमदास जी महाराज के द्वारा कबीर पंथ का विसर्जन कर वैष्णव दीक्षा प्राप्त करने वाले खजुरीताल स्थान के वर्तमान महंत श्रीयुत रामभूषण दास जी महाराज से आपका अत्यन्त प्रेममय सम्बन्ध था।

श्रीमान् महंत जी महाराज और आप में रात्रि में अतिकाल तक प्रभु प्रेम के प्रसंग छिड़े रहते थे। एक बार करहिया नाम ग्राम में प्रभु के विवाहोत्सव की लीला श्रीमान् महन्त जी द्वारा हुयी, उस लीला में पूज्य 'महाराज श्री' की भी उपस्थिति थी। राम कलेवा का प्रसंग चल रहा था, बाहर चारों कुमार कलेवा कर रहे थे। किन्तु भीतर श्री किशोरी जी के स्वरूप अत्यन्त रुदन कर रहे थे। सभी प्रकार के संभव प्रयत्न किये गये किन्तु रुदन बन्द न हुआ। सभी लोग भिन्न–भिन्न कल्पनायें कर रहे थे, कुछ कह रहे थे कि भूत–प्रेत की बात तो नहीं है ? सभी संत समझा–बुझाकर थक गये किन्तु कोई लाभ न हुआ। 'महाराज श्री' बाहर दर्शकों में बैठे अपनी भावना में लीन थे, समाचार ज्ञात होने पर आप भीतर पधारे। श्री जू के स्वरूप ने ज्यों ही आपको देखा कि तेजी से भइया–भइया चिल्लाते हुये आप से लिपट

कर रोने लगे। आप ने समझाया तब शांत हुये और आपके साथ ही भोजन किया। वह प्रथम दिन था, जब लोगों को यह ज्ञात हुआ कि भगवती श्री सीता जी के साथ आपका भ्रातृ–भगिनि सम्बन्ध हैं। इसके पश्चात् तो कई एक स्थलों एवं प्रकरणों में इस संबंध की अलौकिक रूप से पुष्टि हुयी।

आपका वैवाहिक जीवन भी अत्यन्त पवित्र एवं आदर्श था। निरंतर राम प्रेम में अश्रु बहाते तथा उन्मत्त रहते थे। १८–१९ वर्ष की आयु में आप प्रथम बार उन्माद में श्री अयोध्या भाग गये थे पास में केवल पुराने छः पैसे थे। श्री अयोध्या यात्रा में अनेक कृपानुभूतियाँ हुयीं। सरयू स्नान करते समय कृपा की प्रथम किरण की आपको प्राप्ति हुयी। एक स्थान में झूलन उत्सव चल रहा था, युगल सरकार झूल रहे थे। आप सबसे पीछे इस प्रतिज्ञा के साथ बैठ गये कि ''प्यारे ! आपने मुझे अपनाया है, मैं आपका हूँ, यह तभी समझूँगा जब आप स्वयं ही मुझसे झूला झुलाने का आग्रह करें'' अंततः झूलन रुक गया और लीला विहारी ने आपको पास बुलार साश्रु नयनों से झुलाने का आग्रह किया। गृहस्थ आश्रम में ही आप गृह से अलग खजुहा नामक स्थान में आकर रहने लगे थे। लोगों के श्रद्धा भाजन बने, आपने वहाँ राम मंदिर की स्थापना अपने ही कर कमलों से की थी, जो आज अत्यन्त समृद्ध स्थिति में है। एक बार आप जिला मण्डला श्रीमद् भागवत प्रवचन के हेतु पधारे, उसी संदर्भ में आप में भावों का कुछ ऐसा आरोह हुआ कि आपके वक्षस्थल तथा मस्तक में तीव्र वेदना उत्पन्न हो गई। उसके पश्चात् न तो भाव–स्थिति में न्यूनता आई और न वेदना की समाप्ति हुई। खजुहा स्थान के वर्तमान महन्त श्री साकेत–बिहारी दास जी महाराज उस समय शिक्षक थे, आपको रीवां के राज वैद्य श्री राम प्रताप जी के यहाँ औषधि हेतु लाये। श्री वैद्य जी ने अत्यन्त भक्ति भाव से आपकी चिकित्सा की, किन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। आपकी चिकित्सा जो हुई सो तो हुई ही किन्तु इसी बहाने अनेक भव व्याधि से ग्रस्त रोगियों की आपने चिकित्सा कर दी। श्री महाराज जी, वैद्य जी के यहाँ ही रहने लगे, और प्रेमेच्छु भ्रमर भक्तों की भीड़ लगने लगी। एक दिन रात्रि के लगभग ४ बजे आपको तन्द्रावस्था में प्रभु के भुवन मोहन श्याम स्वरूप की झलक मिली, और जब आँखें खुलीं तो स्पष्ट रूप से देखा कि एक सन्त सम्मुख खड़े हैं। कुछ देर के पश्चात् वे मुस्कुराये और गायब हो गये, फिर तो आपकी स्थिति ही सम्हाल के बाहर हो गई। आपने उसी प्रातः को श्री अयोध्या प्रस्थान किया और जगद्गुरु १००८ श्री पं0 राम वल्लभा शरण जी महाराज के कृपापात्र न्याय वेदान्त के निष्णात् आचार्य स्वामी १००८ श्री अखिलेश्वर दास जी महाराज से विरक्त वेश की दीक्षा एवं विधिवत् रस–सम्बन्ध ग्रहण किया।

सन् १९५३ से आपके द्वारा भगवान श्री राघवेन्द्र की अनेक गुप्त एवं प्रकट रसमयी लीलाओं का प्रेमी भक्तों के बीच आविर्भाव हुआ। ''श्रीरामः शरण मम्'' शरणागति का यह परम मंत्र आपके जीवन में एक अलौकिक प्रकरण के साथ प्रविष्ट हुआ, और इसे आपने अपने नित्य–संकीर्तन का विषय बनाया। इस मंत्र के संकीर्तन में बेसुध होकर घण्टों का रुदन, यह नित्य चर्या बनी। अधिकारी प्रेमियों के बीच आपने इस मंत्र–संकीर्तन का प्रचार किया जिसे श्री राम हर्षण मण्डल में एकान्तिक संकीर्तन के नाम से जाना जाता है। आपके अनुयायियों में पाँचों ही रसों के उपासक भक्तगण हैं, यद्यपि आपका स्वयं के द्वारा प्रतिपाद्य रस 'मैथिल सख्य रस' ही है। फिर भी आपने उपासकों के बीच पांचों ही रसों की पुष्टि की है। प्रत्येक रस की गूढ़तम लीलाओं का अधिकारियों के बीच अनुकरण अभिनय हुआ जिन्हें 'एकान्तिक लीलाओं' के नाम से जाना जाता है। 'प्रेम समाधि' आपके जीवन की उल्लेख्य घटनाओं में से एक है। एक बार आपके चित्त–चिदाकाश में श्रीराम जी के विरह का एक दृश्य आ गया, युवराज लक्ष्मीनिधि जी की भावना में तदाकार हुये आप बराबर एक माह तक श्री राम जी की चरण – पादुकाओं का पूजन करते हुये रातों–दिन दारुण–क्रन्दन करते रहे। इस बीच मिथिलेश कुमार के जीवन की संयोग एवं वियोग की लीलाओं के अनेक गूढ़तम चित्रों का साक्षात्कार हुआ। श्री प्रेम रामायण के वन विरह काण्ड में इन्हीं अनुभूत लीलाओं की एक झलक है। सन् १९६२ में सोन एवं महानदी के पवित्र संगम श्री मार्कण्डेय आश्रम में आपका श्री रामनवमी के दिन पदार्पण हुआ। वहाँ आपके श्री चरणों के निर्देश में 'श्री प्रेम यज्ञ' हुआ। पन्द्रह दिन तक साधकों ने आपके सान्निध्य

में प्रेमाश्रु की आहुतियों से यज्ञ स्वरूप प्रभु की पुण्य अर्चा की। प्रेमयज्ञ के पश्चात् आश्रम में ही, प्रथम बार आपकी लेखनी उठी और एक वर्ष के भीतर ही 'श्री प्रेम रामायण' की आश्रम में ही पूर्ति हुयी। श्री प्रेम रामायण के लेखन के पश्चात् आश्रम में ही इस ग्रन्थ का प्रथम बार पारायण हुआ। 'प्रस्थान काण्ड' का पाठ चल रहा था, भगवान श्री राघवेन्द्र भूलोक की लीला का सम्वरण कर दिव्य विमान में विराजे हैं। इतना प्रसंग जहाँ आया कि एक तीव्र गड़गड़ाहट एवं विमान का सा स्वर स्पष्ट सुन पड़ा जबकि उस समय आकाश पथ से कोई विमान नहीं निकला था, विशेष प्रतिक्रिया तो यह हुई कि समस्त साधकों के हृदय में एक विचित्र प्रेम का उदय हो गया, रोमांच, अश्रुपात के साथ ही कुछ तो मूर्छित हो गये और कुछ स्वर फोड़कर रुदन करने लगे। प्रस्तुत घटना लेखक की आँखों देखी हुई है और शपथ के साथ घटना ज्यों की त्यों ही कही जा रही है।

अन्त में आचार्य श्री के प्रभामय गौर वपु का पुनः पुनः स्मरण करता हुआ, अरुण पदतल की दिव्य ऊर्ध्व रेखा में अपने मस्तक को सहस्त्रशः प्रणत करता हुआ, इति वृत्त को समाप्त करता हूँ।

श्री मार्कण्डेय आश्रम
'राम नवमी' ९३

प्रेमोन्मत्तानां किंकरः
अवधकिशोर दास

॥ श्री सीतारामाभ्यां नमः ॥

ॐ गुं गुरवे नमः

स्वगत

अनन्त श्री विभूषित कृपा करुणा वरुणालय हमारे आचार्य महा प्रभु ने अनादिकाल से संसृति प्रवाह में बहते हुये इस दीन हीन जीव पर अपनी असीम व अहैतुकी कृपा कर, इसे अपना बना लिया। परम पूज्य श्री भैया जी (श्री अवध किशोर दास जी) की स्नेहिल कृपा से "श्री निधि निकुंज शहडोल" में आचार्य चरणों की शरणागति प्राप्त कर जीवन को उन्हीं के अनुकूल बनाने का प्रयास करते हुये कालक्षेप होता रहा। श्री भैया जी "श्री निधि निकुंज शहडोल" में प्रति वर्ष श्री राम हर्षण मण्डल का वार्षिक अधिवेशन का कार्यक्रम "आचार्य श्री" के सान्निध्य में सम्पन्न कराते थे जिससे उनके सभी स्वजनों व क्षेत्रीय जनों को आचार्य कृपा का लाभ मिलता था। इसी क्रम में वर्ष में एक बार सरकार श्री का अमलाई स्थित दास के निवास पर पधारना भी होता था। इन यात्राओं के दौरान आचार्य महा प्रभु "विजय राघव गढ़" भी जाया करते थे। वहाँ सरकार जी द्वारा प्रणीत "श्री सिद्धि स्वरूप वैभव" नामक नाट्य ग्रन्थ का श्रीमती उर्मिला जी द्वारा मंचन भी कराया जाता था। जिसे देखकर, आचार्य श्री द्वारा प्रणीत "श्री प्रेम रामायण" नामक ग्रन्थ के कतिपय चरित्र–दृश्यों का अभिनय करने की दास के मन में स्फुरणा हुई और दास ने इस सम्बन्ध में श्री प्रेम रामायण जी से कुछ चरित्रों का पाठ तैयार किया और जब श्री सरकार जी १ वर्ष बाद पुनः यात्रा में पधारे तो अमलाई में बाल चापल्य वश, छोटे बच्चों द्वारा उसका अभिनय भी कराया गया। आचार्य श्री तो रस के यथार्थ भोक्ता थे अतः उन्हे अभिनय अच्छा लगा और वे उसकी सराहना करते हुये हमारे मन के उत्साह को बढ़ाने लगे। इसी कार्यक्रम में सरसी ग्राम निवासी हमारे सुहृद गुरु–भाई श्री श्याम जी शास्त्री भी पधारे थे। उन्होने लीला अभिनय के पाठ के सम्बन्ध मे पूछते हुये कहा कि– पाठ तो बहुत अच्छा लिखा है, आप श्री प्रेम रामायण जी की पूरी टीका ही क्यों नही लिख डालते। दास ने अपनी अल्पज्ञता व अज्ञानता बताई तो उन्होने कहा कि–आप प्रयास कीजिये अवश्य ही सरकार की कृपा होगी, साथ ही इससे सरकार श्री को बहुत प्रसन्नता होगी। बस, उनकी इसी आज्ञा को स्वीकार, दास श्री सरकार जी से मानसिक आज्ञा प्राप्त कर, उस वर्ष की गुरु पूर्णिमा से "श्री प्रेम रामायण जी" की टीका लिखने का कार्य करने लगा। "सरकार जी को इससे बहुत प्रसन्न्ता होगी" यही शब्द दास को सतत आगे बढ़ने की प्रेरणा देते रहे। इस प्रकार कई प्रकार की अज्ञानताओं व कठिनाइयों के साथ यह कार्य एक वर्ष बाद गुरु पूर्णिमा में सरकार जी की कृपा से पूर्ण हो गया।

पुनः जब पूज्य श्री सद्गुरुदेव भगवान सन्त–जनों के साथ दूसरे वर्ष अमलाई पधारे, उनके साथ बाल सन्त श्री राम जी भी यात्रा में आते थे। ग्रन्थ का वृहत कलेवर जो एक भागवत ग्रन्थ के समान था आलमारी में नीचे की ओर रखा हुआ था उस पर बाल सन्त श्री राम जी की दृष्टि पड़ी और उन्होने उसके सम्बन्ध में पूछा, ज्ञात होने पर श्री राम जी ने श्री सरकार जी से बताया तो सरकार जी ने कहा कि– हमे भी दिखाइये, हमको तो कुछ पता ही नही है, हमे तो ये कुछ भी नही बताते। ऐसा सुनकर दास ने सम्पूर्ण ग्रन्थ लाकर श्री चरणों में समर्पित कर दिया। दोपहर का समय था, सरकार श्री ने प्रारम्भ के दो चार पृष्ठ देखकर कहा कि– बहुत अच्छा प्रयास है, इस पूरे ग्रन्थ का एक बार पुनः निरीक्षण कर लीजियेगा फिर प्रकाश में लाइयेगा। प्रमाद–वश समय व्यतीत होता गया ग्रन्थ के विशद कलेवर को देखकर पुनः उस कार्य की ओर ध्यान नहीं दे सका। उत्सव में श्री अयोध्या पुरी आने पर ज्ञात हुआ कि– पू. श्री माता जी (आई जी) श्री प्रेम

रामायण जी की टीका कर रही हैं। अतः प्रमादी मन में और भी निश्चिन्तता आ गयी। समय व्यतीत होता गया, श्री आचार्य आज्ञा व पूज्य श्री महान्त जी (श्री हरिदास जी) महाराज की परमोदार कृपा से अमलाई की नौकरी को त्याग–पत्र दे, श्री अयोध्या जी आकर "श्री राम हर्षण सेवा सन्स्थान" की सेवा का कार्य दास द्वारा सम्हाल लिया गया। आचार्य श्री द्वारा कई बार टीका की चर्चा की गई परन्तु अपनी स्थिति को विचार कर संकोच से दबा ही रह गया। ईशवी सम्वत् २०१३ में श्री माता जी द्वारा की गयी "श्री प्रेम रामायण जी" की टीका का प्रकाशन हुआ और वह सभी को सुलभ हो गयी। आत्मीय सुहृदों ने बार–बार दबाव देकर याद दिलाया कि– जब आप की टीका तैयार है तो यह तो, आपके द्वारा की गयी सरकार जी की सेवा है, हमको भी इसे उपलब्ध कराइये हम भी तो उसे पढ़ें। परम पूज्य महान्त जी महाराज, सन्त श्री मथुरा दास जी महाराज, श्री शालिग राम दुबे जी, श्रीमती उर्मिला जी, श्रीमती विमला जी व श्रीमती पूजा जी आदि कई भक्तों के बार–बार कहने पर इसके प्रकाशित करने की योजना बनाई गयी। परम पूज्य महान्त जी महाराज ने तो इसके प्रकाशन में आये व्यय का भार कौन लेगा इस पर भी बार–बार विचार किया। अन्ततः दास के श्रीमान् पिता जी, जिन्हें सरकार जी ब्रह्मर्षि जी के नाम से पुकारते थे, ने आज्ञा दी कि– श्री प्रेम रामायण जी की इस टीका को प्रकाशित करने हेतु प्रेस में बात कीजिये, अर्थ की चिन्ता मत कीजिये, हमारे पास जो भी है, हम इसमे खर्च कर देंगे। इस प्रकार से इसको प्रकाशित करने का सुयोग बना।

दास का न तो अध्ययन ही है, न कोई ज्ञान है, न भक्ति है और न प्रेम ही है, जो कुछ है तो, मात्र आचार्य चरणों की भगवती–भास्वती कृपा ही है जिसने इस महा दुरूह व दुष्कर कार्य को स्वयं सहजता से कर दिया है। इस में जो त्रुटियाँ हैं वही इस दास की हैं, अन्य कुछ भी नही। आचार्य श्री को इस कार्य से बहुत प्रसन्नता होगी व श्री सिद्धि सदन विहारी–विहारिणी जी के मुखोल्लास का हेतु यह कार्य होगा, ऐसा विश्वास लेकर आप सभी सन्तों व भक्तों के चरणों में दास प्रणत है, आप इसे पूर्णकाम होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

गुरु पूर्णिमा १२ जुलाई २०१४

आचार्य चरण रजाकांक्षी,
दासानुदास
राम नरेन्द्र दास

श्री प्रेम रामायण जी की आरती

श्री प्रेम रामायण आरती । (श्री) मुद मंगलमय भारती ॥
प्रेम प्रदायन जन मन भायन । छिन महँ भव–निधि तारती ॥
श्री प्रेम रामायण आरती...

श्री सीताराम सुगुण गण चर्चा । महा भावमय सिय पिय अर्चा ॥
नित्य धाम की सुदृढ़ नसेनी । लीला ललित सँवारती ॥
श्री प्रेम रामायण आरती...

श्याल भाम की अनुपम गाथा । प्रेम भाव परिपूरण पाथा ॥
रसमय रसिकन जीवन सरवस । निगमागम का सार सी ॥
श्री प्रेम रामायण आरती...

वायु पुत्र लक्ष्मण सम्वादा । जनकऽरु याज्ञबल्क्य अहलादा ॥
प्रेम वार्ता अम्बाओं की । भव भय भ्रम संहारती ॥
श्री प्रेम रामायण आरती...

जनक सुनैना भाव रसैनी । सिद्धि लक्ष्मीनिधि प्रिय रहनी ॥
भगिनि भाम की प्रीति अलौकिक । भक्त वृन्द निस्तारती ॥
श्री प्रेम रामायण आरती...

विरह प्रेम दृग जल की सरिता । मैथिल भाव उजागर करिता ॥
भक्ति मुक्ति अनुरक्त प्रदायिनि । वाणी श्री हर्षण देव की ॥
श्री प्रेम रामायण आरती...

–––श्री सर्वेश्वर दास जी

श्री प्रेम रामायण जी की आरती

आरति प्रेम रामायण जी की । मंगलमय कल कीरति नीकी ॥
कलित कृपा करुणा की काया ।
विगलित हृदय रीति रस छाया ।
भव भय नासिनि नीति अमाया ।
सद्गुरु हिय रस सिन्धु झरी की । आरति प्रेम रामायण..... ॥
सिधि लक्ष्मीनिधि जनक सुनैना ।
रहनि करनि अनुहरनि रसैना ।
मिथिला भाव भरी रस ऐना ।
रसहिं रसी श्री सिय सिय–पी की । आरति प्रेम रामायण...... ॥
भ्रात भगिनि भाभी रस गाथा ।
सरहज श्याल भाम प्रिय पाथा ।
प्रीति प्रतीति सुरीति सुक्वाथा ।
विरह प्रेममय जीवन जी की । आरति प्रेम रामायण...... ॥
रसाचार्य रस राज कहानी ।
आदि अंत लौं सत सत जानी ।
सीयराम रति रस की खानी ।
सर्वस निधि नरेन्द्र के ही की । आरति प्रेम रामायण...... ॥

***

विस्तृत विषय सूची

मिथिला काण्ड

विषय	पृष्ठ संख्या
श्रीराम - लखन का गुरु समीप गवन, चन्द्र मिस श्रीराम जी का भाव प्रलाप	२४४
राम-लक्ष्मण-कौशिक का धनुष यज्ञशाला में प्रवेश, भावानुसार राम दर्शन	२५०
भक्त राजाओं की प्रतिज्ञा, बन्दी द्वारा जनक-प्रण-घोषणा	२५६
जनक राज जी का परिताप, सुनैना अम्बा जी व लक्ष्मीनिधि जी का विषाद	२६५
श्री लक्ष्मण जी की प्रार्थना पर विश्वामित्र जी द्वारा श्रीराम जी को	२७१
धनु-भंग की आज्ञा, धनुभंग - जयमाल	२६६
श्री शतानन्द जी को अवध पठाना, कमला तीर नूतन अवध रचना	२८१,२८६
शतानन्द - बशिष्ठ - दशरथ भेंट, श्रीराम चरित वर्णन	२६१
बारात तैयारी, जनक द्वारा मार्ग सजावट - प्रबन्ध	२६५
बारात की अगवानी, जनवास में वास	३०३
श्री कौशिक का राम-लखन सहित दशरथ मिलन	३०६
श्री राम - लक्ष्मण - लक्ष्मीनिधि की माताओं से भेंट	३१५
मिथिलावासियों के मनोरथ, ब्रह्मा द्वारा लगन पठाना	३१७
श्री राम जी का फलदान टीका, मायन	३२४
श्री राम जी का विवाह मंडप गमन, देवों का मोह	३२६
श्री राम परिछन, विवाह मंडप में विराजना, बारात का सत्कार	३३२
श्री सियाजू का मंडप में विराजना, पूजन विधि	३४५
जनक सुनैना जी द्वारा कन्यादान, श्री सीताराम जी का पद प्रक्षालन	३५३
लक्ष्मीनिधि-सिद्धि द्वारा श्री सीताराम जी के पद प्रक्षालन	३५६
सीय-राम भांवरी, सेन्दुर दान, श्री भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न विवाह	३६५
श्रीराम जी का कोहवर प्रवेश, जेवनार, शिष्टाचार, चौथारी उत्सव	३६८
चारों भाइयों का जनवास गवन, दशरथ द्वारा दान	३७७
सुनैना-महल में कौशिल्या सहित रनिवास का सत्कार	३८५
अवध से मन्त्री का आगमन, दशरथ-विदाई की जनक द्वारा स्वीकृति	३६०
लक्ष्मीनिधि का विरह, जनवास में श्याल-भाम विरह	३६४
पुरवासियों का विरह, जनक का दाइज दान	३६५
चारों भाइयों का विदाई हित अंतःपुर गवन, श्री सुनैना का विरह	४०८
सीता-विदाई विरह, सीता का पालकी आरोहन, बारात पयान	४१३
बरात पहुँचावन, बारात का पाकर ग्रामवास	४१७
लक्ष्मीनिधि का भवन आगमन, विरह-विषाद	४२३
जनक द्वारा अतिथियों व मुनियों की विदाई मिथिल भाव महत्व	४३०

साकेत काण्ड

मंगलाचरण, पाकर ग्राम से बारात का पयान, परशुराम आगमन	४३५
परशुराम-राम संवाद, बारात का अवध पहुँचना तथा आनन्दोत्सव	४३८
श्री सीता-मुख दिखराई, परसब-नेग कंकन छोरना	४५१
कौशिक मुनि की विदाई, श्री सीता जी का नैहर बिछोह	४६१
श्री कनक भवन में श्री सीताराम का लक्ष्मीनिधि के प्रति विरह	४७४
मैथिल जड़ चेतन तथा मिथिलावासियों का श्री सीताराम के प्रति विरह	४८५
मैथिल बाम विरह (नारी गीत)	४८८
जनक विरह, सुनैना अम्बा विरह, लक्ष्मीनिधि विरह, सिद्धि विरह	५०४
श्री सिद्धि-लक्ष्मीनिधि का चिदाकाश में श्री सीताराम दर्शन	५१६
सिद्धि द्वारा गान, भाव तन्मयता के बीच लक्ष्मीनिधि की देह में राम दर्शन	५२४
कोहबर भवन में श्री राम पनही की प्राप्ति तथा लक्ष्मीनिधि सिद्धि द्वारा पूजन	५३१
चित्रशाला में लक्ष्मीनिधि को सीता-चित्र तदाकारिता	५३८

विषय	पृष्ठ संख्या

कृपया चित्रकूट काण्ड एवं आगे के प्रसंगों की सूची हेतु श्री प्रेम रामायण-टीका सहित भाग-२ देखें.

▯

नवान्ह पारायण एवं मास पारायण के विश्राम–स्थल

नवान्ह पारायण के विश्राम–स्थान

संख्या विश्राम	पृष्ठ	काण्ड	दोहा
पहला विश्राम	१८०	मिथिला	१८८
दूसरा विश्राम	३३२	मिथिला	३६२
तीसरा विश्राम	५०७	साकेत	८५
चौथा विश्राम	६५७	साकेत	२६६

कृपया चित्रकूट काण्ड एवं आगे के **नवान्ह पारायण के विश्राम–स्थान** जानने के लिये श्री प्रेम रामायण–टीका सहित भाग–२ देखें.

मास पारायण के विश्राम–स्थल

संख्या विश्राम	पृष्ठ	काण्ड	दोहा
पहला विश्राम	६६	मिथिला	५८
दूसरा विश्राम	१११	मिथिला	११३
तीसरा विश्राम	१६४	मिथिला	१७१
चौथा विश्राम	२१३	मिथिला	२२६
पांचवाँ विश्राम	२५६	मिथिला	२७६
छठवाँ विश्राम	३०४	मिथिला	३३२
सातवाँ विश्राम	३५३	मिथिला	३८६
आठवाँ विश्राम	४०६	मिथिला	४४८
नौवाँ विश्राम	४५६	साकेत	२८
दसवाँ विश्राम	५०७	साकेत	८५
ग्यारहवाँ विश्राम	५५४	साकेत	१४१
बारहवाँ विश्राम	६००	साकेत	१९६
तेरहवाँ विश्राम	६४७	साकेत	२५३
चौदहवाँ विश्राम	६८६	साकेत	३०५
पन्द्रहवाँ विश्राम	७३७	साकेत	३६३

कृपया चित्रकूट काण्ड एवं आगे के **मास पारायण के विश्राम–स्थान** जानने के लिये श्री प्रेम रामायण–टीका सहित भाग–२ देखें.

श्री प्रेम रामायणकार की आरती

मुदित उतारहिं आरती, श्री प्रेम रामायणकार की ।

कृपा कोर वात्सल्य उदारे ।

प्रेमोच्छलित भाव हिय धारे ।

जन की प्रीति विवश रस वारे ।

प्रगटेउ प्रेम रामायण पावन, मैथिल रस आधार की ॥

कियो अमित उपकार महाना ।

दियो परम परमारथ दाना ।

प्रेम भक्ति को दृढ़ सोपाना ।

भक्त भक्ति भगवंत त्रिपुटिका, भव भेषज निरधार की ॥

श्री गुरुदेव दयालु हमारे ।

वेदोपब्रंहण चरित सम्हारे ।

विधि हरि हरहूँ से अति न्यारे ।

श्याल भाम रस रीति रसायन, पूर्ण ब्रह्म रस–सार की ॥

कल्क–जात जीवन के त्राता ।

शिष्य जनन के भाग्य विधाता ।

रघुवर श्याल भाव उद्गाता ।

राम नरेन्द्र दास हूँ पावै, कृपा प्रीति निस्तार की ॥

***

ॐ नमः श्री सीतारामाभ्यां

॥अथ श्री प्रेम रामायण॥

卐 श्री मिथिला काण्ड 卐

श्लोक– रामेति सर्व बीजस्य, तत्व ज्ञान प्रकाशिनीम् ।
देवीं सरस्वतीं वन्दे, मङ्गलानांच रूपिणीम् ॥१॥

''रां'' ही समस्त ब्रह्माण्डों के चराचर सम्पूर्ण जीवों का बीज है ऐसा तत्व ज्ञान प्रकाशन करने वाली, मंगल स्वरूपा श्रीसरस्वती देवी की मैं वन्दना करता हूँ।

राम भक्तं सुर श्रेष्ठं, विघ्नघ्नं गणनायकं ।
वन्देऽहं पार्वती पुत्रं, सिद्धं मंगल रूपिणम् ॥२॥

श्री राम जी महाराज के परम भक्त, देवताओं में श्रेष्ठ, समस्त विघ्नों के विनासक, गणनायक, सिद्ध और मंगलस्वरूप पार्वती नन्दन श्री गणेशजी की मैं वन्दना करता हूँ।

मातरं गिरिजां बन्दे, श्रद्धा भक्ति स्वरूपिणीम् ।
भूतेशं भव्य रूपञ्च, बन्दे शं सम्प्रदायकम् ॥३॥

मैं श्रद्धा–भक्ति स्वरूपा माता श्री पार्वतीजी और तेजोमय स्वरूप वाले अखिल जीवों के स्वामी, कल्याण प्रदाता श्री शंकर जी की वन्दना करता हूँ।

यत् स्वरूपं सदा बन्दे, माया पारं परं विभुम् ।
वोधदं सर्व शारण्यं, राम रूपं सुसद्गुरुम् ॥४॥

जिनका स्वरूप माया के परे, पर और विभु है, ऐसे बोध प्रदाता व सभी जीवों को शरण (आश्रय) प्रदान करने वाले श्रीरामजी महाराज के स्वरूप श्री सद्गुरु देव भगवान की मैं सदैव वन्दना करता हूँ।

नमाम्यहं सदा शुद्धौ, राम कीर्तन तत्परौ ।
प्रेमार्णवे सदा मग्नौ, आदि कवि वातात्मजौ ॥५॥

सदैव अन्तर्वाह्य पवित्र रहने वाले, श्री राम नाम संकीर्तन में अनवरत लीन और प्रेम के सागर में नित्य मग्न रहने वाले आदि कवि श्री वाल्मीकिजी तथा पवन नन्दन श्री हनुमानजी को मैं प्रणाम करता हूँ।

मोहनौ रूपं सम्पत्या, राम प्रेम परिप्लुतौ ।
गुप्त सेवा रतौ वन्दे, श्रीलक्ष्मीनिधि लक्ष्मणौ ॥६॥

अपने काय–वैभव से सभी को मोहित कर लेने वाले, श्रीरामजी महाराज के प्रेम से परिपूर्ण तथा एकान्तिक सेवा में निरत जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी व सुमित्रा नन्दन श्री लक्ष्मण कुमारजी

की मैं वन्दना करता हूँ।

आदि शक्तिं महा मायां, वन्देऽहं राम वल्लभाम् ।
अभय श्रेयसां दात्रीं, जीव रक्षण तत्पराम् ॥७॥

परम आद्याशक्ति, महामाया, श्रीरामजी महाराज की प्रियतमा श्री जानकी जी, जो अभय और श्रेयस (श्रेष्ठता) प्रदायिनी तथा जीवों की रक्षा में सदैव तत्पर रहने वाली हैं, की मैं वन्दना करता हूँ।

नित्यां महाभाव रूपां, ब्रह्माण्डानन्त कारिणीम् ।
विदेह तनयां सीतां, लक्ष्मीनिध्यनुजां प्रियाम् ॥८॥

जो नित्य, महाभाव (प्रेम की सर्वोत्तम स्थिति) में भावित रहने वाली, अनन्त ब्रह्माण्डों की कारण स्वरूपा, श्री विदेहराज जी महाराज की पुत्री और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी की छोटी बहन हैं, उन श्री सीता जी की मैं वन्दना करता हूँ।

कौशल्या नन्दनं श्यामं, वन्दे दशरथात्मजम् ।
परावरं परं तत्वं, पूर्ण ब्रह्म सनातनम् ॥९॥

श्याम शरीर वाले, श्री कौशल्या अम्बा जी व चक्रवर्ती श्री दशरथजी के पुत्र श्रीरामजी महाराज की मैं वन्दना करता हूँ जो कि पर–अवर (समस्त विरोधी गुणों के आश्रय), परम तत्व, पूर्ण ब्रह्म और सनातन हैं।

जगदाधारं मायेशं, सच्चिदानन्दनमव्ययम् ।
रामं प्रेममयं नित्यं, भक्तानामुपकारिणम् ॥१०॥

सम्पूर्ण संसार के आधार, मायापति, सच्चिदानन्दमय, अविनाशी, प्रेमस्वरूप, नित्य और भक्तों का उपकार करने वाले श्री राम जी महाराज की मैं वन्दना करता हूँ।

सो०–शिव सुत उमा कुमार, एक दशन करिवर वदन ।
विघ्न विनासन हार, सिद्धि सदन मंगल करन ॥१॥

भगवान श्री शंकरजी के पुत्र, श्री पार्वती जी के कुमार, एक दन्त, हाथी (गज) के समान मुख वाले तथा सम्पूर्ण विघ्न वाधाओं के विनासक, हे श्री गणेश जी! आप सभी सिद्धियों के धाम और मंगलकारी हैं, आपको मेरा नमन है।

सूर्य्य प्रकाशक ज्ञान, जगत नेत्र सब सुख करण ।
होय राम यश भान, करि लीजै मो कहँ वरण ॥२॥

हे समग्र ज्ञान को प्रकाशित करने वाले, विश्व के नेत्र स्वरूप व सभी सुखों के प्रदाता! श्री सूर्य भगवान आप मुझे वरण कर लीजिये जिससे मुझे श्रीरामजी महाराज की कीर्ति का परिज्ञान हो जाय।

शक्ति शिरोमणि जानि, उमा रमा शारद चरण ।
वन्दहुँ सब सुख खानि, बुद्धि प्रदायक तम हरण ॥३॥

शक्तियों की शिरोमणि समझकर, श्री पार्वतीजी, श्री लक्ष्मीजी, और श्री सरस्वतीजी के चरणों की मैं वन्दना करता हूँ, जो समस्त सुखों की खानि, निर्मल बुद्धि प्रदायिका व मोहांधकार मिटाने वाली हैं।

शंकर शं दातार, गुणागार मंगल अयन ।
वन्दहुँ बारम्बार, रामचरित निशिदिन मगन ॥४॥

अखिल जीवों को कल्याण प्रदान करने वाले, समग्र गुणों व मंगल के धाम और श्रीरामजी महाराज के चरित्र में दिन रात मग्न रहने वाले श्री शंकर जी की मैं पुनः–पुनः वन्दना करता हूँ।

प्रणवहुँ हिय करि ध्यान, श्याम सुभग हरि पद पदुम ।
होय प्रेम रस भान, त्यागि जगत अरु चारि फल ॥५॥

मैं श्याम सुन्दर श्री हरि जी (भगवान श्री विष्णु जी) के चरण कमलों को हृदय में ध्यानकर उन्हे प्रणाम करता हूँ जिससे मुझे संसारी विषयों और चारो फलों (अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष) से विरति व भगवत् प्रेम रस का ज्ञान हो जाय।

दो०–बन्दउँ गुरुवर के चरण, मोह विनासन हार ।
अखिल जीव उद्धार हित, हैं हरि के अवतार ॥१॥क॥

मैं श्री सद्गुरुदेव भगवान जी के मोह–विनाशक (सांसारिक आसक्ति) श्री चरण कमलों की वन्दना करता हूँ जो सम्पूर्ण जीवों के उद्धार के लिए स्वयं भगवान के अवतार हैं।

द्वैत हरण मंगल करन, बोध जनित सुख मूल ।
अघ उचाट मन वश करण, मोहन हरि अनुकूल ॥ख॥

श्री सद्गुरुदेव भगवान तो जीव और ब्रह्म का भेद ′(द्वैत) मिटाने वाले, मंगलकारी, बोध प्रदाता, सुखों के मूल, पापों से विरत कर मन को वश में करने वाले और श्री भगवान के अनुकूल बनाने वाले हैं अर्थात् श्री सद्गुरुदेव भगवान के चरण कमल **मारन** (द्वैत का विनास करने वाले), **उच्चाटन** (पापों का उच्चाटन करने वाले), **मोहन** (भगवान को मोहित करने वाले) व **वशीकरण** (मन को वश करने वाले) मन्त्र हैं।

ध्यावहुँ गुरु पद रेख सुहावन । त्रिविध ताप भय भेद मिटावन ॥
नसै काम मन मति थिर होई । राम कीर्ति अनुराग समोई ॥

मैं श्री सद्गुरुदेव भगवान के चरण कमलों की सुन्दर रेखाओं का ध्यान करता हूँ जो तीनो तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक) भय (संसार का भय) और भेद (जीव व ईश) को मिटाने वाली हैं, जिनके प्रभाव से मेरी सांसारिक कामनायें समाप्त हो जायेंगी, मन व बुद्धि स्थिर होकर श्रीरामजी महाराज की कीर्ति और प्रेम से सराबोर हो जायेगी।

बन्दहुँ गुरु पद पंकज धूरी । भुक्ति मुक्ति जेहिं सेवत भूरी ॥
श्रीरज सुमिरि नयन सिर लावौं । आनन मेलि सुआनन्द पावौं ॥

मैं श्री सद्‌गुरुदेव भगवान के चरण कमलों की पवित्र धूलि (रज) की वन्दना करता हूँ जिनका सेवन करने से सभी प्रकार के दृष्ट व श्रुत भोग और चारों प्रकार की मुक्तियाँ (सालोक्य, सामीप्य, सायुज्ज, सादृश्य) सहज ही सुलभ हो जाती हैं। उस श्री रज की महान महिमा का स्मरण कर मैं उसे नेत्रों और सिर में लगाता हूँ तथा थोड़ा सा मुख में डाल कर (खा कर) आनन्द प्राप्त करता हूँ।

गुरु पद नख मणि पाइ प्रकाशा । होय विमल अति हृदय अकाशा ॥
जड़ चित ग्रन्थि तुरत खुलि जावै । राम प्रेम शुचि सुन्दर छावै ॥

श्री सद्‌गुरुदेव भगवान के चरणों में स्थित नख रूपी मणि का प्रकाश पा जाने से हृदयाकाश अत्यन्त निर्मल हो जाता है, चेतन और जड़ की गाँठ शीघ्र ही खुल जाती है और श्रीरामजी महाराज का परम पवित्र सुन्दर प्रेम हृदय में छा जाता है।

गुप्त प्रगट हरि चरित लखाई । दिव्य दृष्टि शुचि होय सुहाई ॥
बोध यथारथ वेद पुराना । होय कहत श्रुति संत सुजाना ॥

भगवान के गुप्त और प्रगट सभी प्रकार के चरित्र दिखायी पड़ने लगते हैं, दृष्टि परम पवित्र और दिव्य हो जाती है तथा वेदों और पुराणों का वास्तविक बोध हो जाता है, ऐसा सन्तों, श्रुतियों और बुद्धिमान जनों ने बखान किया है।

दो०–श्री गुरुपद पद रेख पुनि, नख अरु धूरि सुहान ।
सुमिरि बन्दि हिय धारि के, हरि लीला कर गान ॥२॥

पुनः मैं श्री सद्‌गुरुदेव भगवान के महा महिमामय चरणों, चरण–रेखाओं, चरण–नखों और सुन्दर चरण–धूलि का स्मरण करते हुए उन्हें हृदय में धारण कर बन्दन करता हूँ तथा भगवान के चरित्र का गायन प्रारम्भ करता हूँ।

विप्र धेनु सुर करहुँ प्रणामा । हरण शोक भ्रम संशय कामा ॥
सहत न संकट प्रभु जिन केरो । प्रगटि दलत दुष्टन करि फेरो ॥

मैं दुख, भ्रम, संसय तथा सभी प्रकार की कामनाओं का हरण करने वाले ब्राह्मण, गौ व देवताओं को प्रणाम करता हूँ जिनके दुखों को भगवान नहीं सह पाते तथा बार–बार अवतरित होकर दुष्टों का विनाश करते रहते हैं।

बन्दहुँ सन्त चरण धरि शीशा । करहु कृपा प्रभु विश्वाबीसा ॥
महिमा कहौं कौन विधि गाई । मसक कि लाँघ अकाशहिं जाई ॥

मैं सन्त जनों के चरणों में अपना शिर रखकर प्रणाम करता हूँ, आप संतजन मुझ पर अपनी पूर्ण कृपा करें। सन्तों की महान महिमा का गायन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ क्योंकि, क्या? तुच्छ मच्छर कभी आकाश को पार कर सकता है? अर्थात् कभी पार नहीं कर सकता।

जासु परस लहि सुरसरि पूता । नासत पापन पुञ्ज प्रभूता ॥
जहँ जहँ सन्त चरण चलि जावैं । तहँ तहँ तीरथ होइ सुहावै ॥

जिनके पवित्र स्पर्श को पाकर ही पवित्र देवनदी श्री गंगाजी पाप समूहों का नाश कर

प्रभुत्वशाली बनी हुई हैं, उन श्री सन्तजनों के चरण जहाँ–जहाँ पहुँच जाते हैं वहीं–वहीं सुन्दर तीर्थ बन जाते हैं।

जोइ जोइ भनहिं राम के प्यारे । सोइ सोइ शास्त्र कहहिं बुधिवारे ॥
जोइ जोइ कर्म करहिं हरिदासा । सोइ यथारथ कर्म सुभाषा ॥

श्री राम जी महाराज के प्रिय, सन्तजन जो भी वचन बोलते हैं वही शस्त्र बन जाता है ऐसा बुद्धिमान– जन कहते हैं तथा जो भी कर्म भगवान के सेवक करते हैं वे कर्म ही यथार्थतया कर्म कहलाते हैं।

राम प्रेम प्रगटत जिन्ह सेवा । जो करि कृपा मिलावत देवा ॥
ज्ञान विराग रहै उर छाई । अहमिति ममता काम बिहाई ॥

जिनकी (सन्तजनों की) सेवा से श्रीरामजी महाराज का प्रेम प्राप्त होता है और जो कृपा कर परम देव श्रीरामजी महाराज को भी मिलाने में समर्थ होते हैं, सन्तो की कृपा से ही हृदय में ज्ञान व वैराज्ञ निवास किये रहते हैं तथा अहंकार, ममता और कामनाएँ दूर बनी रहती हैं।

तीरथ सेवत बहु दिन बीतै । काल पाइ मन इन्द्रिन जीतै ॥
साधु प्रदर्शन मात्रहिं तेरे । होत सुपावन शास्त्रन टेरे ॥

तीर्थो का सेवन करते करते बहुत दिन बीत जाने पर समय पाकर मन इन्द्रियों को जीत पाता है परन्तु सन्तजनों के मात्र दर्शन से ही मन परम पवित्र हो जाता है ऐसा शास्त्रों ने पुकार–पुकार कर कहा है।

गंगा पाप दैन्य तरु कल्पा । शशि अवमोचत ताप अनल्पा ॥
पाप ताप दैन्यता दुराई । साधु सभा मन मोद बढ़ाई ॥

श्री गंगा जी पाप का, कल्प वृक्ष दैन्यता (दरिद्रता) का तथा चन्द्रमा असहनीय ताप का ही शमन करते हैं परन्तु सन्तजनों की सभा पाप, ताप और दीनता तीनों का नाश कर मन में आनन्द बढ़ाने वाली होती है।

समदरशी निरपेक्ष सुशान्ता । होइ निर्बैर बने हरि कान्ता ॥
तिन पद धूरि धरन के हेता । विचरत पीछे रमानिकेता ॥

सन्तजन समदृष्टि वाले, सभी प्रकार की अपेक्षाओं से रहित, शन्ति प्रिय तथा किसी से बैर न करने वाले स्वभाव के होकर भगवान को उनकी प्रियाजी के समान प्रिय बने रहते हैं। उनकी (सन्तजनों की) चरण धूलि को अपने ऊपर धारण करने के लिए लक्ष्मीपति भगवान भी उनके पीछे–पीछे चलते हैं।

उड़त धूरि हरि तन में लागत । पूत मानि मन महँ मुद पावत ॥
देखहु सन्तन केरि बड़ाई । रहत हिये हरि सदा लगाई ॥

उनकी (संन्तजनों की) चरण धूलि (रज) उड़–उड़कर जब भगवान के शरीर में पड़ती है तब भगवान अपने को पवित्र मानकर मन में आनन्द प्राप्त करते हैं। सन्तजनों की महानता तो देखिये कि

स्वयं भगवान उन्हें अपने हृदय से लगाये रहते हैं।

दो०– निज प्रभुता प्रभु त्यागि करि, रक्षत निज निज दास ।
योग क्षेम सेवा करत, मानत हिये हुलास ॥३॥क॥

भगवान अपनी महानता का त्याग कर सदैव अपने सेवकों (सन्तजनों की) की रक्षा करते हैं तथा उनका योग–क्षेम (अप्राप्त (ईश्वर प्राप्ति) का योग व प्राप्त (भजन साधन) की सुरक्षा) व सेवा करते हुए हृदय में आनन्द का अनुभव करते हैं।

सन्त हृदय श्रीराम हैं, राम हृदय सब सन्त ।
सत पति पत्नी सम विमल, नहीं प्रेम कर अन्त ॥ख॥

सन्तजनों के हृदय में श्रीरामजी महाराज का तथा श्रीरामजी के हृदय में सन्तों का निवास है। इनकी पारस्परिक प्रीति निर्मल, शाश्वत और सच्चे पति पत्नी के समान होती है।

माया वश सब जगत है, हरि वश मायहिं जानु ।
सन्तन वश श्रीराम हैं, यह महिमा उर आनु ॥ग॥

सम्पूर्ण संसार माया के आधीन है तथा स्वयं माया भगवान के आधीन है परन्तु भगवान श्रीरामजी सन्तजनों के वशीभूत हैं सन्तों की ऐसी महा महिमा को हृदय में धारण करना चाहिए।

सन्त न होते जगत में, जरि जातो संसार ।
भक्ति ज्ञान वैराग्य दे, को करतो उद्धार ॥घ॥

यदि संसार में सन्त जनों का आविर्भाव नहीं होता तो यह संसार त्रिताप की अग्नि से जल कर भस्म हो जाता, फिर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य प्रदान कर कौन इसका उद्धार करता?

विधि हरि हर शारद अहिप, गणपति जिते महान ।
सन्तन महिमा नित लिखैं, तदपि लिखी नहिं जान ॥ङ॥

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शंकर जी, श्री सरस्वती जी, श्री शेष जी, श्री गणेश जी तथा अन्य जितनी भी महान विभूतियाँ हैं, वे यदि सन्तों की महिमा का नित्य प्रति लेखन करें तब भी सन्तों की महान महिमा नहीं लिखी जा सकती अर्थात् वह अपार है।

बार बार वन्दन करौं, सुनहु सकल शुचि साधु ।
शिशु सेवक निज जानि के, दीजै प्रेम अगाधु ॥च॥

अतएव हे, पवित्र सन्तजन सुनिये, मैं आपकी बारम्बार बन्दना करता हूँ आप मुझे अपना अवोध बाल सेवक समझकर श्रीरामजी महाराज का अगाध प्रेम प्रदान करें।

बहुरि असाधुहिं भाव दृढ़ाई । प्रणवहुँ सबहिं अहं बिसराई ॥
दुखद सदा अहिगण सम सबहीं । बने विषैले जग महँ धवहीं ॥

पुनः असाधुओं (दुष्ट–जनों) के प्रति अपना भाव दृढ़कर तथा अपने अहंकार को भूल मैं उन सभी को प्रणाम करता हूँ। असाधुजन सभी के लिए सर्पो के समान दुखदायी होते हैं तथा विषैले बने हुए संसार में विचरण करते रहते हैं।

शास्त्र निषिद्ध कर्म तिन केरे । भूलि न जाहिं सुसंगति नेरे ॥
प्रभु प्रतिकूल सदा व्यवहारा । देह जनित अभिमान अपारा ॥

उनके कर्म सदैव शास्त्रों के वर्जित कर्म ही होते हैं, वे भूल से भी सत्संग के समीप नहीं जाते, उनका व्यवहार सदा भगवद्विरोधी ही होता है तथा उनमें शरीर सम्बन्धी असीम अभिमान भरा रहता है।

मित्रहुँ को हित कबहुँ न करहीं । पर द्रोही मदमत्त विचरहीं ॥
सुरसरि पाइ परस तिन केरा । जाइ पाप सनि शास्त्रनि टेरा ॥

वे कभी अपने मित्र का भी हित नहीं करते वरन् दूसरों से द्रोह कर अभिमान में भूले हुए संसार में विचरण करते रहते हैं। उनका स्पर्श पाकर देव नदी श्रीगंगाजी भी पापों से सन जाती हैं ऐसा शास्त्रों ने पुकार कर कहा है।

तीरथ मलिन होत तिन वासा । सत जन नसैं गये पुनि पासा ॥
अस बिचारि जे तज्ञ सुजाना । खल सँग छोड़े मनहुँ न आना ॥

उनके निवास करने से तीर्थ अपवित्र हो जाते हैं तथा समीप चले जाने से सज्जनों की सज्जनता विनष्ट हो जाती है। ऐसा विचार कर बुद्धिमान जन दुष्टजनों का साथ छोड़ देते हैं तथा मन में भी उनका स्मरण नहीं करते।

दो०–खाब पियब बैठनि उठनि, बोलनि करनि अपूत ।
जोरि पानि बिनवहुँ सबहिं, दृढ़ बँधिहैं यमदूत ॥४॥

इनका आहार–विहार, खाना, पीना, बैठना, उठना, बोलना आदि आचरण, सभी कुछ अपवित्र रहता है। मैं इन सभी दुष्टजनों को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ, इन्हें यमराज के दूत निश्चय ही मजबूती के साथ बाँधेंगे अर्थात् ये यमपुरी ही जायेंगे।

सन्त असन्त भेद तजि नीके । बन्दहुँ हरि सम पग सबही के ॥
साधु असाधु भेद व्यवहारा । परमारथ महँ ब्रह्म पुकारा ॥

पुनः मैं सन्तों और असन्तों के अन्तर को भली प्रकार त्याग, उन्हें भगवान के समान समझ उनके चरणों की वन्दना करता हूँ क्योंकि साधु और असाधु का भेद तो व्यावहारिक है, परमार्थ रूप से तो सभी पूर्णतम परब्रह्म के अंश होने के कारण ब्रह्म ही हैं।

गुण अरु दोष प्रकृति कर जाना । आत्म एक रस शास्त्र बखाना ॥
ताते अतिशय भाव बढ़ाई । बार बार बन्दहुँ चित लाई ॥

जीवों के गुण और दोष तो उनकी प्रकृति के आधीन होते हैं परन्तु आत्मा उनसे अलग एक रस रहती है, ऐसा शास्त्रों ने बखान किया है। इसलिए सभी (सन्तों और असन्तों) में भाव को

अत्यधिक बढ़ाकर, ध्यानपूर्वक मैं उनकी बार बार वन्दना करता हूँ।

करि सनेह मोहिं आपन जानी। करहु कृपा सबहीं सुखदानी ॥
दानव दैत्य नाग मुनि देवा। प्रेत पितर गन्धर्व जितेवा ॥

आप सभी मुझे अपना समझकर प्रेम करते हुए मुझ पर अपनी सुखदायी कृपा करें। दानव, दैत्य, नाग, मुनि, देवता, प्रेत, पितर व गन्धर्व आदि जितने भी जीव हुये हैं––

नर किन्नर खग मृग अरु भूता। जे रजनीचर वृन्द बहूता ॥
प्रणवहुँ सबहिं माथ महि लाई। करहु कृपा सब होहु सहाई ॥

–– पुनः मनुष्य, किन्नर, पक्षी, पशु, भूत–प्रेत व निशाचर आदि जो भी सम्पूर्ण जीव समुदाय हैं उन सभी को मैं भूमि में मस्तक रख कर प्रणाम करता हूँ आप सभी मुझ पर अपनी कृपा करें और मेरी सहायता करें।

दो०–चारि खानि जग जीव जे, थल जल नभ कर वास।
जड़ चेतन के भेद युत, लख चौरासी भास ॥५॥क॥

इस संसार में चार प्रकार के (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज तथा जरायुज) जीव जो स्थल, जल, तथा आकाश में निवास करने वाले जड़ और चेतन नाम के भेद से युक्त चौरासी लाख योनियों में आभासित होते हैं।

इष्टदेव सिय राम मय, जानि सबहिं यह दीन।
बन्दत पद महि माथ धरि, हौं सबहीं विधि हीन ॥ख॥

उन सभी को अपने इष्टदेव श्रीसीतारामजी के स्वरूप समझ, सभी प्रकार से दीन–हीन यह दास भूमि में सिर रखकर उनके चरणों की वन्दना करता है।

ररिहा इव रट रटत नित, पड़ो द्वार महँ आय।
कृपा भीख दीजिय भली, हिय प्रकाश रह छाय ॥ग॥

मैं हठी भिखमंगे की तरह नित्य पुकार लगाता हुआ आकर आपके दरवाजे पर (आश्रय में) पड़ा हूँ, आप सभी मुझे सुन्दर, कृपा की भिक्षा दें जिससे मेरा हृदय प्रकाशित हो जाय।

बुधि विवेक किंचित नहि मोरे। मायाच्छन्न सूझ नहि थोरे ॥
प्रेम चरित्र रहस्य अनूपा। कहन योग नहि मति अनुरूपा ॥

मेरे पास किंचित भी बुद्धि और ज्ञान नहीं है तथा माया से घिरे होने के कारण कुछ सूझ नहीं रहा, फिर रहस्यमयी वार्ताओं से परिपूर्ण अनुपमेय प्रेम चरित्र कहने योग्य, अनुकूल बुद्धि भी मेरे पास नहीं है।

दया भरोसे लिखनि उठाई। करहु कृपा सब मिलि अधिकाई ॥
प्रेम चरित सूझहिं प्रभु केरे। बार बार विनवहुँ प्रभु टेरे ॥

मैंने आप लोगों की दया का अवलम्ब लेकर ही लेखनी उठाई है अतएव आप सभी मिलकर मुझपर अपनी अधिकाधिक कृपा करें जिससे मुझे भगवान के प्रेम चरित्र सूझने लगे, मैं बारम्बार आप लोगों से पुकार–पुकार कर यही विनती कर रहा हूँ।

जस जस भासिहिं चरित महाना । तस तस लिखिहौं इहै प्रमाना ॥
नीच भनित विभु चरित उदारा । सुनि जनि माखहिं बुध परिवारा ॥

यह महान चरित्र मेरे हृदय में जैसा आभासित होगा, मैं उसे उसी प्रकार लिखूँगा अपना यही निश्चय है। भगवान का यह उदार चरित्र इस दीन दास के द्वारा लिखा हुआ सुनकर भी बुद्धिमान जन कुपित नहीं होंगे।

यदपि ढिठाई मैं अति कीन्हा । बिनु पग लाँघन गिरि मन दीन्हा ॥
मोरे सब गुरु पितु प्रभु स्वामी । हौं शिशु सुअन अयान नमामी ॥

यद्यपि मैंने बहुत बड़ी धृष्टता की है जो पैर न होते हुये (लँगड़ा होने पर) भी पर्वत को चढ़कर पार करने का मन में विचार किया है। आप सभी मेरे सर्वस्व, गुरुदेव, पिता और स्वामी हैं क्योंकि मैं आपका अबोध, अज्ञानी व छोटा बालक हूँ, आप सबको मेरा नमन है।

दो०–बाल बचन तुतरान भलि, सुनहिं मुदित बड़ लोग ।
अस विचारि सादर सुनिय, मोहिं मिलै बड़ योग ॥६॥

बड़े लोग तो बालकों की तोतली वाणी को भी भली प्रकार श्रवण कर आनन्दित होते हैं ऐसा विचार कर आप लोग इस चरित्र को आदरपूर्वक श्रवण करें जिससे मुझे बड़ा योगदान मिलेगा।

कविता गुन जानउँ नहिं थोरा । जगत निरत मन बाउर मोरा ॥
बिनु कुपाप छण एक न जाई । मति मन मलिन न कछु दरशाई ॥

मैं काव्य के किंचित गुण भी नहीं जानता तथा संसार में आसक्त होने से मेरा मन भी अत्यन्त बावला (पागल) है। मेरा तो एक क्षण भी बिना घोर पाप किये नहीं व्यतीत होता तथा बुद्धि व मन मलीन होने से कुछ सूझ भी नहीं रहा।

हरि गुरु सन्त चरण नहिं प्रेमा । केहिं विधि मम मन छावै छेमा ॥
विषय बिकार भरो चित माहीं । राम चरित कछु सूझत नाहीं ॥

भगवान, गुरु और सन्तजनों के चरणों में मुझे प्रेम नहीं है इसलिए मेरा मन कैसे कुशलता को प्राप्त करे? हृदय में विषयों के विकार भरे पड़े हैं जिससे श्रीरामजी महाराज के चरित्र मुझे नहीं सूझ रहे।

ताते शरण दशन तृण दाबे । करौं कथा विनवौं रस छाबे ॥
रावरि कृपा सुपाइ प्रकाशा । लिखिहौं चरित सुचारु सुभासा ॥

इसलिए दाँतों में तिनका दबाये (चबाते) हुए मैं आपकी शरण में आकर, कथा आरम्भ कर विनय कर रहा हूँ कि– यह कथा रस से परिपूर्ण हो। आप लोगों की कृपा का प्रकाश पाकर मैं यह सुन्दर चरित्र लिख डालूँगा।

यथा अन्ध फिरि लोचन पाई । जग महँ कर्म करै बहुताई ॥
तथा ज्ञान लोचन प्रभु लहिके । लखि लखि चरित कहउँ सुख छइके ॥

जिस प्रकार कोई अन्धा आँखें प्राप्त हो जाने पर फिर से संसार में बहुत से कार्य करने लगता है उसी प्रकार हे नाथ! मैं भी ज्ञान रूपी नेत्र पाकर तथा उनसे देख–देखकर, सुख पूर्वक यह चरित्र वर्णन कर डालूँगा।

दो०– निज कर फेरहु शीश सब, देहु सुआशिर्वाद ।
प्रेम कथा प्रभु राम की, वरणौं अति अह्लाद ॥७॥क॥

आप सभी सुधीजन अपने पाणि पंकजों से मेरे सिर का स्पर्श करते हुये सुन्दर आशीर्वचन दें जिससे मैं प्रभु श्रीरामजी महाराज की प्रेम गाथा का अत्यन्त आह्लादपूर्वक वर्णन कर सकूँ।

सरसहिं सुख सज्जन रसिक, पागे प्रीतम प्रीति ।
हौंहु सुपावन प्रेम लहि, रँगौं राग रिस जीति ॥ख॥

जिस चरित्र को श्रवण कर सज्जन और भगवद् रसिक भगवान की प्रीति में पगकर–सुख में समा जायें तथा मैं भी प्रभु के परम पवित्र प्रेम को पाकर, राग और द्वेष को जीत भगवान के रंग में रँग जाऊँ।

यहि विधि करि मन आस सुहावन । बन्दौं पुनि विधि हरि हर पावन ॥
गिरा गौरि गंगा पद ध्याई । चाहत चरित चरम सुखदाई ॥

इस प्रकार मन में सुन्दर अभिलाषा कर पुनः श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी और श्रीशंकरजी की मैं वन्दना करता हूँ तथा श्रीसरस्वतीजी, श्रीपार्वतीजी व श्रीगंगाजी के चरणों का ध्यान कर चरम सुख प्रदायक चरित्र की कामना करता हूँ।

प्रणवौं बालमीकि ऋषि राई । जिन सत कोटि रमायण गाई ॥
इक अक्षर उद्धारहिं कीन्हें । नशै कोटि द्विज वध जग चीन्हे ॥

मैं ऋषिश्रेष्ठ श्री वाल्मीकि जी को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने सौ करोड़ रामायणों का गायन किया है तथा जिनके एक–एक अक्षर से करोड़ों ब्रह्म हत्यादि बड़े–बड़े पाप भी विनष्ट हो जाते हैं ऐसा संसार ने जान लिया।

बन्दहुँ सुमिरि कृष्ण द्वैपायन । अष्टादस पुरान जिन गायन ॥
औरहुँ जिन हरि चरित सुहाये । किये गान कवि सहज सुझाये ॥

मैं द्वैपायन कृष्ण श्री व्यास जी का स्मरण कर उनकी वन्दना करता हूँ जिन्होंने अठारह पुराणों का गायन किया है। पुनः मैं अन्य कवियों जिन्होंने भगवान के सुन्दर चरित्रों का सहज और स्वाभाविक वर्णन किया है––

प्रणवौं तिनहिं धरणि धरि शीशा । करहु कृपा शिशु मानि मुनीशा ॥
पुनि श्री तुलसी पदहिं प्रणामा । जिन्ह वरणे सियपति गुण ग्रामा ॥

––उन सभी को भूमि में शिर रखकर प्रणाम करता हूँ, आप सभी श्रेष्ठ मुनिजन अल्पज्ञ बालक समझकर मुझ पर कृपा करें। पूज्यपाद श्री गोस्वामी तुलसी दास जी के चरणों में मैं प्रणिपात करता हूँ जिन्होंने सीतापति श्रीरामजी महाराज के चरित्रों का वर्णन किया है।

दो०– राम चरित मानस विरचि, करन सबहिं उद्धार ।
बालमीकि तुलसी भये, कलि विलोकि संसार ॥८॥

इस संसार में कलियुग की प्रबलता को देखकर ऋषिवर श्री वाल्मीकिजी नें ही गोस्वामी श्री तुलसी दासजी का रूप धारण किया है तथा सभी जीवों के उद्धार हेतु श्रीराम चरित मानस की रचना की है।

कलि महँ रामायण सुरधेनू । गृह गृह पालित सब सुख देनू ॥
कलि महँ कल्पतरू रामायण । थाप्यो तुलसी घर घर चायन ॥

इस कलियुग में उनकी यह रामायण कामधेनु की तरह है, जो प्रत्येक घर में पाली हुई, सम्पूर्ण सुखों की प्रदायिनी है। श्री तुलसी दासजी ने कलियुग में रामायण रूपी कल्पवृक्ष को आनन्द पूर्वक घर–घर में स्थापित किया है।

राम चरित चिन्तामणि कीन्हीं । परम लाभ सुख सब कहँ दीन्हीं ॥
ज्ञान गुरू सम मोक्ष उपाऊ । प्रेम प्राप्ति हित हरि समताऊ ॥

श्री गोस्वामी जी ने श्री रामायण जी के रूप में अमूल्य चिन्तामणि का ही प्रणयन किया है, इस प्रकार से सभी को परम लाभ और परम सुख प्रदान किया है। यह रामायण ज्ञान के लिए श्रीगुरुदेवजी के समान, मोक्ष प्राप्ति के लिये श्रेष्ठतम उपाय तथा प्रेम प्राप्ति के लिए स्वयं भगवान के समान है।

राम मिलन हित राम भवन सी । शान्ति हेतु जनु शान्ति सदन सी ॥
बार बार तुलसी हिय ध्याऊँ । राम प्रेम प्रभु मागे पाऊँ ॥

श्रीरामायणजी श्रीरामजी की प्राप्ति के लिए श्रीरामजी के भवन के समान और शन्ति की प्राप्ति के लिए शान्ति सदन के समान हैं। मैं गोस्वामी श्री तुलसी दासजी का हृदय में बार–बार ध्यान करता हूँ कि हे नाथ! मैं अपनी अभिलषित वस्तु श्रीरामजी महाराज का प्रेम प्राप्त करूँ।

प्रेम प्रबन्धहिं जेहिं लहि गावउँ । मम बुधि बैठि रसहिं सरसावउँ ॥
भाषा कविन करौं परनामा । जिन वरणे हरि यश सुखधामा ॥

आप मेरी बुद्धि में विराज कर उस रस का संचार करें जिसे पाकर मैं इस प्रवन्ध–काव्य श्री प्रेम रामायण का गान कर सकूँ। तदनन्तर मैं सभी भाषाओं के उन कवियों को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने समस्त सुखों के धाम भगवद्यश का वर्णन किया है।

दो०– राम चरित शुचि सुखद सुठि, सुनत सुनावत जौन ।
तिनके त्रिकरण प्रणत हौं, हैं सब मंगल भौन ॥९॥क॥

श्रीरामजी महाराज के परम पवित्र, सुखदायक और सुन्दर चरित्रों को जो जन सुनते और सुनाते रहते हैं, मैं उन सभी को त्रिकरण (मन, वचन व कर्म से) प्रणाम करता हूँ , वे सभी मंगलों के भवन हैं।

नर नर मुनि ग्रह बुध सुरभि, विप्र चरण सिर धारि ।
प्रेमकथा वर्णन करहुँ, सरसै प्रेम पसारि ॥ख॥

मैं सभी देवताओं, मनुष्यों, मुनिजनों, ग्रहों, बुधजनों, गौ तथा ब्राह्मणों के चरणों में शिर रखकर प्रणाम करते हुए प्रेम गाथा "श्री प्रेम रामायण" का वर्णन कर रहा हूँ जो प्रेम का प्रसार कर आनन्दित करने वाली हैं।

बन्दहुँ श्रीहरि दस अवतारा । कीन्हे हरण महा महि भारा ॥
प्रथम मत्स अवतार सुहायो । हन्यो असुर विभु वेदन लायो ॥

मैं भगवान के दस अवतारों की वन्दना करता हूँ, जिनको भगवान ने श्री भू देवी का महान भार उतारने के लिए धारण किया था। उनमें प्रथम 'मत्स्यावतार' है, जिसमें भगवान ने असुर हयग्रीव का नाश किया तथा उसके द्वारा अपहृत (चुराये हुये) वेदों को पाताल से लाकर श्री ब्रह्माजी को सौंप दिया था।

दीन्हें मनुहिं अमित उपदेशा । कहत सुनत सब नसत कलेशा ॥
कूरम होइ मँदराचल लीन्हे । प्रगटन सुधा उपाय सो कीन्हे ॥

पुनः प्रभु ने महाराज मनु पर कृपा कर तत्व ज्ञान का असीम उपदेश दिया जिनके कहने और श्रवण करने से जीवों के सारे दुख दूर हो जाते हैं। भगवान ने द्वितीय 'कच्छप' अवतार धारण कर अपनी पीठ में मन्दराचल पर्वत धारण किया और अमृत प्रगट करने का उपाय किया।

धरि वराह वपु भूमि उधार्‌यो । मारि निशाचर काम सँवार्‌यो ॥
प्रगटे नरहरि हित प्रहलादा । भगत राखि राखी मरजादा ॥

भगवान ने तृतीय 'वाराह' शरीर धारण कर दैत्य हिरण्याक्ष का संहार किया तथा रसातल में ले जाई गयी भूमि देवी का उद्धार किया, इस प्रकार प्रभु नें देवताओं के कार्य को बनाया। भगवान ने भक्त प्रह्लाद की रक्षा हेतु चतुर्थ 'नरसिंहावतार' धारण किया तथा अपने भक्त की रक्षा कर, भक्तों की रक्षा करने की मर्यादा की सुरक्षा की।

भक्त बैर हरि रोषहिं जैसे । श्री विधि हर सुर सब लख तैसे ॥
मारि निशाचर श्री हरिराई । थाप्यो जन सुर मुनि सुखदाई ॥

भक्तों से शत्रुता करने पर भगवान जिस प्रकार क्रोधित होते हैं उसे श्रीलक्ष्मीजी, श्रीब्रह्माजी, श्रीशंकरजी और अन्य सभी देवताओं ने उस समय देख लिया। पुनः सुर–मुनि सुखदायी श्री नृसिंह भगवान ने हिरण्यकश्यप नामक राक्षस को मारकर, अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की।

वामन भयो देवतन लागी । श्रीपति जन हित भीखहु मागी ॥
बलि बल दलि पाताल पठाये । जन हित वरु द्वारप कहवाये ॥
पाद शौच प्रगटी सुर सरिता । पूत त्रिलोकी निज जल करिता ॥

भगवान ने देवताओं के हित के लिए पंचम 'वामनावतार' धारण किया तथा श्री लक्ष्मी जी के

स्वामी होते हुए भी अपने सेवकों के लिए भिक्षा तक माँगी। दैत्यराज बलि के बल का दलन कर उसे पाताल लोक भेज दिया फिर चाहे उन्हें द्वारपाल कहला कर ही रहना पड़ा। आपके चरणों के धोवन से श्री गंगा जी प्रगट हुई जो अपने जल से तीनों लोकों को पवित्र करती हैं।

सो०—परशु राम अवतार, भूमि भार छत्रिय वधन ।
सहस बाहु अरि मार, बार इकीस निछत्रि किय ॥१०॥

भगवान ने भूमि के भार स्वरूप क्षत्रियों का वध करने के लिए छठवाँ 'परशुरामावतार' ग्रहण किया एवं सहस्रबाहु नामक अपने शत्रु को मारकर, भूमि को इक्कीस बार क्षत्रियों से विहीन कर दिया।

रवि कुल रवि श्रीराम उदारा । अवधपुरी लीन्हे अवतारा ॥
धनि दशरथ कौशल्या माता । लिये ब्रह्म गोदहिं सुखदाता ॥

श्री सूर्य भगवान के कुल में सूर्य के समान, उदार शिरोमणि श्रीरामजी महाराज ने श्री अयोध्यापुरी में सप्तम अवतार धारण किया। चक्रवर्ती महाराज श्री दशरथजी तथा श्री कौशल्या अम्बा जी धन्य हैं जिन्होंने सर्व सुख प्रदायक ब्रह्म को अपनी गोद में खिलाया।

बाल चरित करि जन सुखदायी । मख कौशिक राख्यो हरषाई ।।
चरण रेणु गौतम तिय तारी । भंजेव भव पिनाक पुनि भारी ।।

अपने सेवकों को सुख प्रदान करने वाले श्रीरामजी महाराज ने अपनी बाल लीला करने के उपरान्त कौशिक मुनि श्री विश्वामित्रजी के यज्ञ की प्रसन्नतापूर्वक रक्षा की, अपने चरणों की धूल से श्री गौतम ;षि जी की पत्नी श्री अहिल्या जी का उद्धार किया एवं श्री शंकरजी के महा प्रचण्ड धनुष्ट का खण्डन किया।

दलि भृगुपति मद सीय विवाही । लखि लखि मैथिल सुख न समाही ॥
राज त्यागि कामद गिरि छाये । करि पुनीत दण्डक दरशाये ॥

श्री भृगु पति परशुरामजी के अभिमान का मर्दन कर जनक दुलारी श्री सिया जू से आपने विवाह किया जिसे देख देख कर समस्त मैथिल सुख में फूले नहीं समाये। पुनः श्री राम जी महाराज ने अपने माता–पिता की आज्ञा से श्री अयोध्यापुरी का राज त्याग, गिरिराज श्री चित्रकूट पर निवास किया और श्राप के कारण उजड़े हुए दण्डक वन को पवित्र कर दिखाया।

शबरी गीध श्राध शुचि कीन्हे । भक्त वछल प्रभु सब कोउ चीन्हे ॥
कपिपति शरण राखि हति बाली । सेतु बन्ध कराव यशशाली ॥

आपने श्री शबरीजी और गृद्धराज श्री जटायु जी का पवित्र अन्तिम संस्कार अपने हाथों से किया। इस प्रकार से सभी ने अपने भक्तों पर असीम वात्सल्य रखने वाले भगवान की पहचान की। पुनः वानर राज श्री सुग्रीव को अपनी शरण में रख अत्यन्त बलशाली बालि का संहार किया तथा सौ योजन चौड़े विस्तार वाले समुद्र में सेतु का निर्माण कराकर महान यश प्राप्त किया।

सदल तुरत रावण संहारी । कीन्हे सब सुर वृन्द सुखारी ॥
शिव ब्रह्मादिक सुर सब आये । प्रमुदित करि स्तुति सिर नाये ॥

आपने शीघ्रतापूर्वक अपनी भार्यापहारी रावण का दल–बल सहित संहार कर देवताओं को सुखी बनाया उस समय भगवान श्रीशंकरजी तथा श्री ब्रह्माजी आदि सभी देवता आपके दर्शनों को आये और प्रसन्नतापूर्वक स्तुति कर शिर झुका प्रणाम किये।

शरणागत वत्सल भगवाना। दिय विभीषणहिं राज महाना ॥
सीय सहित पुष्पक चढ़ि नाथा। सहित भरत किय अवध सनाथा ॥

पुनः शरणागत वत्सल भगवान श्री राम जी महाराज ने श्री विभीष्टण जी को लंकापुरी का महान राज्य प्रदान किया तथा श्री सीता जी सहित पुष्पक विमान में सवार हो, श्री अयोध्यापुरी पहुँचकर कुमार श्री भरत लाल जी सहित सभी लोगों को सनाथ किया।

दो०–राजे दिव्य सिंहासनहिं, सीय सहित रघुराज।
ब्रह्मादिक सेवत खरे, सनकादिक मुनि भ्राज ॥११॥क॥

तदुपरान्त श्रीरामजी महाराज अपनी वल्लभा श्री सीताजी सहित श्री अयोध्यापुरी के दिव्य राज्य सिंहासन में विराज गये तब श्री ब्रह्मा जी आदि सभी देवता उनकी सेवा में तत्पर हो गये उस समय वहाँ श्री सनक, सनन्दन, सनत कुमार और सनातन जी आदि मुनिगण उपस्थित होकर शोभा सम्प्राप्त कर रहे थे।

सुखद साज सेवा लिये, भरतादिक हनुमान।
निज सिर प्रभु पद त्राण लै, हर्षण हिय हर्षान ॥ख॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि उस समय कुमार श्री भरतजी, श्री लक्ष्मण जी, श्री शत्रुघ्न जी व श्री हनुमानजी आदि सेवा की सुखद सामग्री लेकर सुशोभित होने लगे। तब श्रीरामजी महाराज की चरण पाँवरियों को अपने शिर में धारणकर मेरा हृदय हर्ष से विभोर हो गया।

अवध प्रजा सुख सुकृत लखि, कृतयुग देव सिहाहिं।
अजहुँ कहहिं सुख पाइ सब, राम राज्य हम काहिं ॥ग॥

श्री अयोध्यापुर वासियों के सुख और सत्कर्मों को देख–देखकर स्वयं श्री सत्ययुग और सभी देवता स्पृहा कर रहे थे। लोक में आज भी सुख पाने पर लोग यही कहते हैं कि हमें तो 'राम राज्य' है।

द्वापर भयो कृष्ण अवतारा। किये चरित पावन सुख सारा ॥
नन्द यशोदहिं अति सुख दीन्हा। बाल केलि असुरन वध कीन्हा ॥

द्वापर युग में भगवान का अष्टम 'श्री कृष्णावतार' हुआ जिसमें भगवान ने परम पवित्र और सुखों की सारभूत लीलाएँ की। उन्होंने श्री नन्दजी और श्री यशोदा जी को अतिशय सुख प्रदानकर अपनी बाल–लीला में ही कई राक्षसों का संहार किया।

ब्रज युवतिन मन मोद बढ़ाये। रास रंग सुख दिये सुभाये ॥
कंस मारि पितु बन्दि छुड़ायो। उग्रसेन कहँ राव बनायो ॥

उन्होंने ब्रज युवतियों के हृदय में प्रेम परिवर्धित कर उन्हें रास क्रीड़ा के माध्यम से स्वाभाविक सुख प्रदान किया। पुनः दैत्यराज 'कंस' का वध कर बन्दी बने अपने पिता श्री वासुदेवजी को छुड़ाया और श्री उग्रसेन जी को वहाँ का महाराज बनाया।

द्रुपद सुता की लाज बचाई । शाक सप्रेम विदुर घर खाई ॥
ठानि महाभारत हरषाई । हरेउ भूमि को भार महाई ॥

भगवान श्री कृष्ण जी ने महाराज श्री द्रुपद नरेश की पुत्री द्रौपदी जी की लज्जा की रक्षा की तथा श्री विदुरजी के यहाँ प्रेम सहित शाक–भाजी का भोग लगाया। पुनः प्रसन्नतापूर्वक महाभारत नामक युद्ध की रचना कर भूमि के महान भार का हरण किया।

प्रपति ज्ञान अर्जुनहिं सुनायो । भगवद् गीता जेहिं जग गायो ॥
शाप व्याज करि कुलहिं सँहारे । ऊधौ कहँ दै ज्ञान पधारे ॥

आपने श्री अर्जुन जी को शरणागति धर्म का यथार्थ ज्ञान सुनाया जिसे संसार ने 'भगवद्‌गीता' कह कर गायन किया है। पुनः श्राप के बहाने से यादव कुल का संहार किया तथा श्री उद्धवजी को ज्ञान देकर आप स्वयं भी अपने नित्य धाम चले गये।

दो०–श्याम सुन्दर के चरित वर, सुखद विमोहन हार ।
प्रेम भक्ति प्रकटत रसद, हर्षण जीवन धार ॥१२॥

श्याम सुन्दर भगवान श्री कृष्ण चन्द्र के चरित्र सुखदायक, मनमोहक व रसमयी प्रेमाभक्ति के प्रदाता हैं। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्रीराम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि प्रभु के ये चरित्र तो मेरे जीवन के आधार (सर्वस्व) ही हैं।

बुद्ध रूप धरि थापि अहिंसा । बौद्ध धर्म प्रकट्यो दुख ध्वंसा ॥
कल्कि रूप धरि दुष्टन मारे । थापि सनातन धर्म उबारे ॥

श्री भगवान ने नवम 'बुद्धावतार' धारण कर अहिंसा की स्थापना की तथा सभी के दुखों को दूर करने वाला 'बौद्ध धर्म' प्रकट किया। दसवाँ 'कल्कि अवतार' धारण कर श्री भगवान ने दुष्ट जनों का संहार किया तथा सनातन धर्म की स्थापना कर संसार का उद्धार किया।

अंश कला सब ब्रह्म राम के । एते जानहु सुख सुधाम के ॥
स्वयं सुपूर्ण ब्रह्म सब पारा । जहँ योगी जन रमहिं अपारा ॥

ये सभी पूर्णतम परब्रह्म श्रीरामजी महाराज के अंश और कला आदि के अवतार हैं जो सुख और सुन्दर, परम धाम देने वाले हैं। परन्तु स्वयं में परिपूर्ण, सबसे परे व श्रेष्ठ पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज ही हैं। जिनमें असीम योगीजन नित्य रमण करते हैं–––

सीय रमण साकेत विहारी । जानहु रामहिं श्रुति निरवारी ॥
बन्दहुँ पुनि पुनि चरण मनाई । कृपा करहु प्रभु होहु सहाई ॥

–––उन्हे श्री सीता जी के पति, दिव्य साकेत धाम में विहार करने वाले श्रीरामजी ही जानिये,

ऐसा श्रुतियों ने निर्णय दिया है। मैं बार–बार अपने स्वामी श्री सीताराम जी के श्री चरणों को मनाकर वन्दना करता हूँ कि हे प्रभु! आप कृपा कर मेरे सहायक बनें।

प्रेम अलौकिक हिय महँ जागै । कथा सुधा मम मन मति पागै ॥
निज दिशि देखि महा भय लागै । प्रभु स्वभाव सुनि धीरज जागै ॥

जिससे मेरे हृदय में आपका दिव्य अलौकिक प्रेम जागृत हो जाये और आपके चरितामृत में मेरे मन और बुद्धि पग जाँय। यद्यपि अपनी ओर देखने से मुझे बहुत ही डर लग रहा है परन्तु संतजनों और शास्त्रों से श्रवण किये हुये आप श्री के स्वभाव का स्मरणकर धैर्य जागृत हो उठता है।

दो०–अवगुण उदधि अपार मैं, भक्ति विराग न लेश ।
बूँद पकरि चाहत चढ़न, चित चढ़ि आस अशेष ॥१३॥क॥

यद्यपि मैं अवगुणों का असीम समुद्र हूँ, मुझमें भक्ति और वैराग्य किंचित भी नहीं है परन्तु मेरे हृदय में वरसते हुये जल की बूँद को पकड़कर आकाश में चढ़ने की पूर्ण आशा छायी हुई है अर्थात् साधन विहीन होते हुये भी श्री राम जी महाराज के दिव्याति–दिव्य चरित्रों का वर्णन करने की महान कामना हृदय में समायी हुई है।

हरि प्रताप पाहन जमै, सुन्दर पंकज फूल ।
अस बिचारि प्रभु शरण लिय, पाऊँ प्रेम अतूल ॥ख॥

भगवान के प्रताप से पत्थर में भी सुन्दर कमल के पुष्प पैदा हो जाते हैं, भगवान की ऐसी महान महिमा विचार कर मैने भगवान की शरण ग्रहण की है, मेरी यही अभिलाषा है कि मैं उनके अतुलनीय प्रेम को प्राप्त करूँ।

राम प्रताप सुनहु सब भाई । गिरि सुमेरु सागर उतराई ॥
नभ में सुन्दर नगर दिखावै। भू पर नखत गगन सरसावै ॥

हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि हे भाइयो सुनो! श्रीरामजी महाराज के प्रभाव से सुमेरु पर्वत भी समुद्र में तैरने लगता है, आकाश में सुन्दर नगर तथा भूमि में नक्षत्र व आकाश भी दिखाई दे सकते हैं।

कल्पलता प्रस्तर महँ सोहै। सुरतरु पहँ पषाण फल जोहैं ॥
सत महँ असत करहिं श्रीरामा। असतहिं कर सत सत मन कामा ॥

ब्रज के समान कठोर पत्थर में कल्पवृक्ष और मनोवाँछित फल प्रदाता कल्पवृक्ष में पत्थर के फल दिखाई पड़ सकते हैं। श्रीरामजी महाराज अपनी इच्छानुसार सत्य को असत्य और असत्य को सत्य कर सकते हैं।

माया ईश शरण सुखदायक । धृत सर चाप सोह रघुनायक ॥
काल कर्म स्वभाव गुण जारक । हृषीकेश उर प्रेरक धारक ॥

माया के स्वामी, शरणागत के सुख प्रदाता, श्रीरघुकुल के नायक श्रीरामजी महाराज धनुष और

वाण धारण किये सुशोभित होते हैं। वे काल, कर्म, स्वभाव और गुणों के दुष्प्रभाव को जलाने वाले, इन्द्रियों के स्वामी, हृदय के प्रेरणा स्रोत तथा सबके धारणकर्ता हैं।

अस समर्थ स्वामी जब हेरे। चेतन बनि जड़ ज्ञानहिं टेरै॥
विषयी राम प्रेम प्रिय पाई। प्रेम कथा वरणैं सरसाई॥

ऐसे सामर्थ्यवान स्वामी की जब दया दृष्टि पड़ती है तब जड़ भी चैतन्य हो उठते हैं और उनमें भी ज्ञान का उदय हो जाता है। विषयी जन भी श्रीरामजी महाराज का प्रिय प्रेम प्राप्त कर 'प्रेम चरित्र' का प्रसन्नतापूर्वक वर्णन करने लगते हैं।

दो०–अस प्रभाव मन समुझि सुनि, धरि रघुपति पद धूरि।
करन चहौं आरम्भ मैं, कथा संजीवनि मूरि॥१४॥

श्रीरामजी महाराज के ऐसे प्रभाव को सुन और समझ उनकी पावन चरण रज शिर में धारण कर मैं संजीवनी वूटी के समान प्रेम कथा "श्री प्रेम रामायण" लेखन का प्रारम्भ करना चाहता हूँ।

जिन यह कथा सुनी नहिं काना। करिहैं तक्र अनेक विधाना॥
निर प्रमाण मन तर्क बढ़ाई। प्रेम लाभ नसिहैं अतुराई॥

जिन लोगों ने यह चरित्र कभी कानों से श्रवण नहीं किया वे अनेक प्रकार से तक्र करेंगे तथा इसे अप्रमाणिक समझ, मन में तर्क बढ़ाकर आतुरतावश प्रेम लाभ से बंचित रह जायेंगे।

एहि महँ मैं शास्त्रन मत थापा। पै कछु तहँ न मोर परतापा॥
सन्त जूँठ जानहु मम वानी। नहिं स्वतन्त्र मति मोर अयानी॥

इस चरित्र (श्री प्रेम रामायण) में मैंने शास्त्रों की सम्मति ही स्थापित की है परन्तु उसमें मेरा कुछ भी प्रभाव नहीं है क्योंकि मेरी वाणी सन्तों की जूठन प्रसादी है और मेरी अज्ञानी बुद्धि स्वतन्त्र नहीं है अर्थात् वह संत व शास्त्र के आधीन हैं।

कछुक चरित सत अनुभव गइहौं। सबहिं सुनाइ मोद मन पइहौं॥
जस लीला हिय दरशन पायों। प्रभु प्रेरित सोइ लिखौं सुहायो॥

कुछ चरित्र मैं अपने सच्चे अनुभव के आधार पर गायन करूँगा और सबको सुनाकर मन में आनन्द पाऊँगा। मैंने भगवान की लीला का जिस प्रकार हृदय में दर्शन पाया है, उन्हें भगवान की प्रेरणा से उसी प्रकार लिखूँगा।

सत्य सत्य पुनि सत्य सुनाऊँ। निज मति कल्पि एक नहि गाऊँ॥
सुनि मम विनय खेद भ्रम त्यागी। सुनिय कथा सागर मति पागी॥

मैं त्रिवाचा सत्य कह रहा हूँ कि यह चरित्र सत्य है, सत्य है और सत्य है। मैंने अपनी बुद्धि की कल्पना से एक चरित्र का भी गायन नहीं किया। इसलिए मेरी विनती को सुन, दुख और सन्देह को त्याग आप सभी ध्यानपूर्वक इस कथा का श्रवण करें।

दो०— महि रज कण वरु जाय गनि, गनिय नक्षत्र अकाश ।
राम चरित्र असंख्य तिन्ह, शेष न सकैं प्रकाश ॥१५॥क॥

पृथ्वी के धूल कण भले ही गिने जा सकें, आकाश के तारे भी गिन लिये जाँय (यद्यपि यह सर्वथा असम्भव है) परन्तु श्रीरामजी महाराज के चरित्र असंख्य हैं, उनकी गणना हजार मुख वाले श्री शेषजी भी नहीं कर सकते।

अमित राम अवतार हैं, लीला अमित प्रकार ।
यह विचार दृढ़ आनि मन, सुनिहहिं सन्त उदार ॥ख॥

श्री राम जी महाराज के अवतार असीम हैं, और उनकी लीला भी असीमित प्रकार की है ऐसे विचार को मन में दृढ़ता से धारण कर उदार सन्तजन इस प्रेम चरित्र (श्री प्रेम रामायण) का अवश्य ही श्रवण करेंगे।

लीला रसिक अहैं सिय रामा। बिन लीला नहिं लह विश्रामा ॥
नित्य पारषद जे हरि केरे। युगल चरित चित चरचि चयेरे ॥

श्री सीताराम जी महाराज लीला के रसिक हैं और उन्हें बिना लीला विश्राम नहीं मिलता तथा भगवान के जो नित्य पार्षद हैं वे भी श्रीसीतारामजी के चरित्रों का गायन हर्षित हृदय करते रहते हैं।

प्रेमी परिकर प्रेम विभोरा । होवहिं लखि लखि युगल किशोरा ॥
प्रेमास्पद हैं श्री सिय रामा । प्रेमिन लखि बनि प्रेम अकामा ॥

भगवान के प्रेमी परिकर, युगल किशोर श्री सीताराम जी महाराज को देख–देखकर प्रेम विभोर हो जाते हैं। जीवों के एकमात्र प्रेमास्पद श्री सीताराम जी ही हैं जो अपने प्रेमियों को देखकर निष्काम प्रेम स्वरूप बन जाते हैं।

मिलि परिकर जब लीला करहीं । पल पल प्रेम धार तहँ झरहीं ॥
सोइ प्रभु चरित कहौ कछु गाई । प्रति प्रबन्ध प्रिय प्रेम प्रदाई ॥

वे जब अपने परिकरों में मिलकर प्रेम सनी लीला करते हैं तब वहाँ प्रत्येक पल में प्रेम की धारा बहा देते हैं। भगवान के उन्हीं प्रियकर तथा प्रेम प्रदायक कुछ चरित्रों का गायन मैं "प्रबन्ध काव्य" के रूप में कर रहा हूँ।

प्रेमी रहनि प्रेम गति बरनी। नाम रूप लीला मन हरनी ॥
जे पढ़िहैं या कहँ मन लाई । लहिहैं अवशि प्रेम ललिताई ॥

इस चरित्र (श्री प्रेम रामायण) में मैंने भगवान के प्रेमियों की रहनी, स्थिति व प्रेम तथा उनके मन मोहक नाम, रूप व लीलाओं का वर्णन किया है, इसे मन लगाकर जो लोग पढ़ेंगे वे अवश्य ही भगवान के प्रेम लालित्य को प्राप्त करेंगे।

छं०— यह परम सुखप्रद प्रेम की, लीला सुनहिं जे गावहीं ।
ते चरित सिन्धु अपार बिच, प्रिय प्रेम अमृत पावहीं ॥

जेहिं हेतु जीवन मुक्त मुनि, बुध ब्रह्म पर जे कहावहीं ।
टुक अल्प कण आस्वाद हित, तजि के समाधिहिं धावहीं ॥

परम सुख प्रदायिनी, भगवान की इस प्रेमलीला "श्री प्रेम रामायण" को जो सुनेंगे तथा गायन करेंगे वे असीम लीला सागर से प्रियकर प्रेमामृत प्राप्त करेंगे। जिसके एक अल्प कण के आस्वादन के लिये जीवन मुक्त, योगी, मुनि तथा विद्वान आदि जो स्वयं ही ब्रह्म स्वरूप हैं अपनी–अपनी समाधियों को त्यागकर लालायित हो दौड़ते रहते हैं अर्थात् उद्यम करते रहते हैं।

सो०–सरस सुखद श्रुति सार, सज्जन प्रिय आनन्द घन ।
प्रेम चरित्र उदार, करि चातक चित कहँ सुनिय ॥१६॥

ऐसे, रस परिपूर्ण, सुख प्रदान करने वाले, श्रुतियों के सार, सज्जनों को प्रिय तथा आनन्द प्रदायक उदार प्रेम चरित्र (श्री प्रेम रामायण) का आप सभी अपने चित को चातक बनाकर (अनन्य होकर) श्रवण करें।

दो०–यथा मिलन चाहत जेहिं, खोजन ता घर जाय ।
तथा पढ़ै यहि भाव ते, राम प्रेमद्रुत पाय ॥ख॥

जिस प्रकार जिस व्यक्ति से मिलने की इच्छा हो, उसे ढूढ़ने उसके घर जाना चाहिए उसी प्रकार इस चरित्र को भावपूर्वक पढ़ने से शीघ्र ही श्रीरामजी महाराज के प्रेम की प्राप्ति होती है।

पढ़त सुनत सुमिरत तुरत, राम प्रेम रह छाय ।
प्रेम रामायण नाम तेहिं, दियो हृदय हरषाय ॥ग॥

इसे पढ़ने, सुनने और स्मरण करने से शीघ्र ही श्रीरामजी महाराज का प्रेम परिव्याप्त हो जायेगा इसीलिए मैंने हर्षित हृदय हो इसका नाम ''श्री प्रेम रामायण'' दिया है।

पुनि पुनि मैं सबहिन सिर नाई । आशिष बचन चहौं सुखदाई ॥
भगति ज्ञान कर्मादिक नाहीं । मति मलीन विषयन सँग माही ॥

मैं बारम्बार सभी को सिर झुका, प्रणाम कर, सुखदायक आशीर्वचन चाहता हूँ। मुझमें भक्ति, ज्ञान और कर्म आदि कोई भी साधन नहीं है तथा बुद्धि भी विष्टयों के संसर्ग से मलीन हो गयी है।

नित करि दम्भ सुवेष बनाऊँ । कलि गुण भीतर हिये बसाऊँ ॥
पाप पूतरा कलि की देहा। बनै न भगवत भजन सनेहा ॥

मैं नित्य ही पाखण्ड कर भगवान के भक्तों का सुन्दर वेष बना लेता हूँ परन्तु हृदय के भीतर तो कलियुग के गुणों को ही निवास दिया हूँ। मैं पापों की प्रतिमूर्ति हूँ, साक्षात् कलि ही मेरी देह है और मुझसे भगवान का भजन व प्रेम नहीं बनता।

सन्त गुरू महँ प्रीति न थोरी। बादि जनम बितवौं करि खोरी ॥
ताते दया सबहिं जन कीजै । आपन गुनि सुधार मोहिं लीजै ॥

मुझमें सन्तों और श्रीगुरुदेवजी के प्रति किंचित भी प्रेम नहीं है, इस जन्म को मैं व्यर्थ ही खोटे कर्म करते हुए व्यतीत कर रहा हूँ। अतः आप सभी मुझ पर दया करें और मुझे अपना समझकर सुधार लें।

वस्तु अपावन अग्नि जराई । निज गुण दै तेहिं लेइ मिलाई ॥
राउर बल तिमि बुद्धि प्रकाशी । सुभग चरित सोधिहिं सुखराशी ॥

जिस प्रकार अग्नि अपवित्र वस्तु को भी जलाकर, अपना दाहकत्व गुण दे, उसे अपने में सम्मिलित कर लेती है उसी प्रकार आपके बल से मेरी बुद्धि भी प्रकाशित हो भगवान के सुन्दर व सुख स्वरूप चरित्रों का शोधन कर लेगी।

दो०—पुनि प्रणवहुँ प्रेमिन चरण, सिर धरि तिन्ह पग धूरि ।
प्रेम भीख पुनि पुनि चहौं, कहौं कथा रस पूरि ॥१७॥

पुनः मैं भगवत्प्रेमियों की चरण धूल सिर में धारण कर उनके चरणों में प्रणाम करता हूँ और उनसे बारम्बार प्रेम भिक्षा की याचना कर रसमयी कथा कह रहा हूँ।

बन्दहुँ द्वादश भगत प्रधाना । प्रीति रीति जिन जग प्रगटाना ॥
ब्रज युवतिन पुनि करहुँ प्रणामा । दै गलबाँहि भजीं घनश्यामा ॥

मैं प्रमुख द्वादस महाभागवतों (श्री धर्म राज, श्री ब्रह्मा जी, भगवान श्री शंकर जी, देवर्षि श्री नारद जी, महाराज श्री मनु जी, श्री सनकादिक कुमार, भक्त राज प्रहलाद जी, महर्षि श्री कपिल जी, महाराज श्री जनक जी, श्री भीष्म जी, दैत्यराज श्री बलि जी व महामुनि श्री शुक देव जी) की वन्दना करता हूँ जिन्होंने प्रभु प्रेम की रीति को संसार में प्रगट किया है। पुनः मैं ब्रज गोपिकाओं को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने श्रृंगार भाव से भगवान श्री कृष्ण जी का भजन किया।

प्रीति रीति रीझे यदुराई । रिनियाँ बनि निज हृदय लगाई ॥
ब्रह्मादिक जिन भेद न पायो । पद रज लै निज शीश चढ़ायो ॥

जिनकी प्रेम पद्धति को देखकर यदुकुल भूषण श्री कृष्ण जी रीझ गये और उनके ऋणी बन उन्हें हृदय से लगा लिये। जिन गोपियों के प्रेम रहस्य को श्री ब्रह्माजी आदि देवता भी न जान सके और इनकी चरण धूल लेकर अपने सिर में रख इनकी वन्दना किये।

औरहुँ जे हरि भक्त सुजाना । छके प्रेम रस बने अमाना ॥
प्रणवहुँ सबहिं भाव रस पागे । दीजै प्रेम भीख मोहि मागे ॥

भगवान के जो, अन्य अमानी और प्रेम रस में डूबे हुए भक्त हैं उन सभी को भाव और रस में सराबोर होकर मैं प्रणाम करता हूँ। आप लोग मुझे प्रभु प्रेम की भिक्षा दें यही मेरी कामना है।

चहुँ युग महँ जे प्रभु रस छाके । करि बहु विनय लगौं पद ताके ॥
जे भविष्य महँ प्रेम मदीले । होइहैं साधु रीति रस शीले ॥

चारो युगों में भगवान के प्रेम रस में छके हुए जो प्रेमी जन हैं उन सभी से अत्यधिक विनय कर उनके चरणों में मैं प्रणाम करता हूँ तथा भविष्य में जो भी प्रेमोन्मत्त हो, रसमयी साधु रीति का अनुसरण करनें वाले होंगे–––

दो०–बार बार वन्दन करहुँ, हरि सम भाव बढ़ाय ।
प्रेम सिन्धु की लहर में, दीजै मोहिं डुबाय ॥१८॥

–––उन सभी को मैं बार बार भगवान के समान समझ, भाव बढ़ाकर वन्दना करता हूँ, आप लोग मुझे भगवान के प्रेम समुद्र की लहरों में डुबा दें।

बन्दहुँ मिथिला अवध बहोरी । जिनहिं राम जानत करि मोरी ॥
चिन्मय दूनहुँ पुरी सुहावन । हरि लीला जहँ नित नव भावन ॥

पुनः मैं श्री मिथिला व श्री अयोध्यापुरी की वन्दना करता हूँ जिन्हें श्रीरामजी महाराज अपना धाम मानते हैं। ये दोनों ही पुरियाँ चिन्मयी तथा सुहावनी हैं जहाँ पर भगवान की नित्य, नवीन और मनभावनी लीलाएँ सम्पादित होती हैं।

सरयू कमला सरि सुखदाई । दरश परश कलि कलुष नसाई ॥
बहै प्रेम पय प्रेम प्रदाता । बन्दहुँ नित हिय हर्षित गाता ॥

यहाँ पर श्री सरयू जी और श्री कमलाजी आदि सुख प्रदायिनी नदियाँ हैं जिनके दर्शन व स्पर्श से कलियुग की कलुषता समाप्त हो जाती है तथा जिनमें भगवान का प्रेम प्रदाता प्रेमजल ही प्रवाहित होता है, मैं उन श्रेष्ठ नदियों की नित्य प्रसन्न वदन हो वन्दना करता हूँ।

बन्दहुँ युगल पुरी नर नारी । पगे प्रेम रस राम निहारी ॥
चक्रवर्ति दशरथ पुनि बन्दौ । सहित कौशिला मातु अनन्दौ ॥

मैं दोनों पुरियों (श्री मिथिला व श्री अवध) के निवासी पुरुष–स्त्रियों की वन्दना करता हूँ जिन्होंने प्रेम रस विभोर हो श्रीरामजी महाराज का दर्शन किया। पुनः श्री कौशिल्या अम्बाजी सहित चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज की मैं आनन्दपूर्वक वन्दना करता हूँ।

जासु प्रेम वश ब्रह्म अनूपा । पुत्र भयो सुख सगुण स्वरूपा ॥
कैकेइ सहित सुमित्रा रानी । सकल मातु प्रणवौं सुखदानी ॥

जिनके प्रेम से वशीभूत हो अनुपमेय पूर्ण ब्रह्म ही सुखमय सगुण साकार स्वरूप धारण कर पुत्र रूप में प्रगट हुआ। श्री महारानी कैकेईजी और श्री सुमित्राजी सहित सभी सुख प्रदायिनी माताओं को मैं प्रणाम करता हूँ।

दो०–पुनि पुनि सबके पाँव परि, आरत वचन सुनाय ।
राम प्रेम चाहत सघन, दीजै तपनि बुझाय ॥१९॥

मैं आप सभी के चरणों में बारम्बार प्रणाम कर आर्त्त (दुख भरे) वचन सुनाते हुए श्रीरामजी महाराज के अविरल प्रेम की कामना करता हूँ, आप सभी मेरे संतप्त हृदय को शीतलता प्रदान करें।

मिथिलाधिप बन्दहुँ सुख छाये। सहित सुनयना चरण सुहाये॥
जासु प्रेम वश प्रकटीं सीता। आदि शक्ति सुख सिन्धु पुनीता॥

अम्बा श्री सुनयनाजी सहित मिथिलाधिराज महाराज श्री जनकजी के सुन्दर चरणों की मैं सुख पूर्वक वन्दना करता हूँ, जिनके प्रेम से वशीभूत परमाद्या शक्ति, सुखों की सागरी, परम पवित्रा श्री सीताजी प्रगट हुई हैं––

पूर्ण सनातन ब्रह्म स्वधामा। जामाता करि पाये रामा॥
बन्दहुँ लक्ष्मीनिधि लव लाये। सहित भ्रात सुमिरौ सुख छाये॥

––तथा पूर्णतम, सनातन, परब्रह्म श्री राम जी महाराज को स्वगृह श्री मिथिला पुरी में ही जिन्होने जँवाई (कन्या पति) के रूप में प्राप्त किया है। पुनः मैं ध्यानपूर्वक मिथिला पुरी के युवराज श्री लक्ष्मीनिधिजी का सभी भ्राताओं सहित स्मरण करता हूँ एवं सुख पूर्वक उनकी वन्दना करता हूँ।

नेत्र विषय जिन रघुवर कीन्हे। मज्जन अशन शयन सँग लीन्हे॥
प्रेम स्वयं जनु धरे शरीरू। चरित सुनन सिखवत दृग नीरू॥

जिन्होंने श्रीरामजी महाराज को अपने नेत्रों का विषय बनाया और उनके साथ मज्जन, अशन व श्यन (स्नान, भोजन व शयन) आदि का सुख प्राप्त किया। उन्हें देखकर ऐसी प्रतीति होती है मानों स्वयं श्रीरामजी महाराज का प्रेम ही शरीर धारण कर भगवच्चरित्रों को सुनने की शिक्षा नयनों में प्रेमाश्रु भरकर दे रहा है।

बन्दहुँ सिद्धि कुवँरि रस बेली। राम सीय पद प्रेम पुतेली॥
विनती करहुँ जोरि कर दोऊ। राम प्रेम दीजै सब कोऊ॥

मैं भगवद्रस की लतिका व श्रीसीतारामजी महाराज के चरणों की प्रेम पुत्तलिका श्री सिद्धि कुँवरिजी की वन्दना करता हूँ तथा दोनों हाथ जोड़कर विनय करता हूँ कि आप सभी मुझे श्रीसीतारामजी का प्रेम प्रदान करें।

दो०–वाहन खग मृग जन्तु जे, भूरुह लता सुहान।
अवध पुरी मिथिला भये, बन्दहुँ शूकर श्वान॥२०॥

श्री अयोध्यापुरी व श्री मिथिलापुरी में सुन्दर वाहन (सवारी के काम आने वाले) पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, कूकर, शूकर आदि जो भी जीव हुए हैं, उन सभी की मैं वन्दना करता हूँ।

भरत माण्डवी चरण सुहाये। अति सप्रेम बन्दहुँ सिर नाये॥
प्रभु पद पंकज अति अनुरागा। रमत राम महँ मन मति पागा॥

मैं अत्यन्त प्रेम सहित, सिर झुकाकर श्री भरत लालजी व श्री माण्डवीजी के सुन्दर चरणों की वन्दना करता हूँ, जिनके हृदय में प्रभु श्रीरामजी महाराज के चरण कमलों के प्रति अत्यधिक अनुराग है तथा जो अपने मन व बुद्धि का विलय कर श्रीरामजी महाराज में अनुरक्त बने रहते हैं।

प्रेम सुधा दीन्हेउ सब काहू। नतरु लोग तपते दुख दाहू॥
राम प्रेम सिर मौर सुजाना। सुर नर मुनि जग जीव बखाना॥

आपने श्रीरामजी महाराज का प्रेमामृत सभी को प्रदान किया नहीं तो सभी लोग दुख की अग्नि में सदैव जलते ही रहते। आप श्रीरामजी महाराज के प्रेम के सिरमौर (अग्रगण्य) तथा विज्ञ हैं, ऐसा सभी देवता, मनुष्य, मुनि और जगज्जीव बखान करते हैं।

बन्दहुँ बहुरि सुमित्रा नन्दन। सहित उर्मिला द्वन्द निकन्दन॥
परमानन्य भक्त रघुवर के। बहिर्प्राण श्री सिय सुखकर के॥

पुनः मैं श्री उर्मिलाजी सहित समस्त द्वन्दों का नाश करने वाले सुमित्राकुमार श्री लक्ष्मणजी की वन्दना करता हूँ जो रघुकुल श्रेष्ठ व श्री सिया सुखकारी श्रीरामजी महाराज के परम अनन्य भक्त और वाह्य–प्राण ही हैं।

प्रीति रीति के जाननि हारे। प्रभु बिन प्राण न राखन वारे॥
माँगत भीख दीन सुनि लेहूँ। राम प्रेममय मोहिं करि देहू॥

आप तो प्रीति की रीति के ज्ञाता तथा परम प्रभु श्रीरामजी महाराज के बिना प्राणों को भी न रखने वाले हैं। यह दीन दास आपसे भिक्षा माँग रहा है, आप मेरी प्रार्थना सुनकर मुझे श्रीरामजी महाराज के प्रेम से सराबोर कर दीजिए।

दो०–रिपुहन पद बन्दहुँ सुभग, सह श्रुति कीरति बाम।
राम प्रेम मन मति मगन, भरतहिं सेव अकाम॥२१॥

मैं श्री शत्रुघ्न कुमार जी के सुन्दर चरणों की, उनकी पत्नी श्री श्रुति कीर्तिजी सहित, वन्दना करता हूँ जिनकी बुद्धि और मन श्रीरामजी महाराज के प्रेम में मग्न रहते हैं तथा जो निष्काम भाव से श्री भरत लाल जी की सेवा किया करते हैं।

बन्दहुँ पवन तनय सुखकारी। जेहिं पै राम आपु कहँ वारी॥
कथा कीर्तन रसिक अमाना। प्रेम वारि दृग ढारि सुजाना॥

जन–जन को सुखी करने वाले पवन नन्दन श्री हनुमानजी की मैं वन्दना करता हूँ जिनके ऊपर श्रीरामजी महाराज अपने आपको न्योछावर किये हुये हैं। हे सर्वज्ञ श्री हनुमान जी! आप श्री राम कथा व कीर्तन के अनन्य रसिक और अमानी हैं तथा प्रभु प्रेम में सदैव नेत्रों से प्रेमवारि का विमोचन करते रहते हैं।

नृत्यत गावत भाव बतावत। हरि रस रमें रसहिं उपजावत॥
राम नाम अंकित दिवि देही। हृदय विराजत विभु वैदेही॥

आप सदैव भगवान श्री राम जी महाराज के प्रेमरस में डूबे हुए नाचते, गाते तथा भावों का प्रदर्शन कर भगवद्रस की सर्जना करते रहते हैं। आपका सम्पूर्ण शरीर दिव्य व श्री राम नामांकित है तथा प्रभु श्री सीतारामजी महाराज आपके हृदय में नित्य निवास करते हैं।

कृपा करहु रस देहु पिवाई। राम प्रेम पगि जगत हिराई॥
पुनि शिव पद नावउँ निज माथा। सहित शिवा प्रभु करहु सनाथा॥

आप कृपा कर मुझे भगवद्रस का पान करा दें जिससे मेरा संसार नष्ट हो जाय और मैं श्री राम जी महाराज के प्रेम में पग जाऊँ। पुनः मैं श्री पार्वतीजी सहित भगवान श्री शंकरजी के चरणों में अपना मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, हे नाथ! आप मुझे कृपा कर सनाथ करें।

राम राम दिन रात पुकारी। ताण्डव नृत्य नटैं मनहारी ॥
राम कथा कर करत अहारा। प्रेम पगे नहिं देह सम्हारा ॥
राम रूप सुमिरत सरसाई । ह्वै विभोर दृग वारि बहाई ॥

आप दिन–रात श्री राम नाम की रट लगाये हुए, मनोहारी ताण्डव नृत्य करते रहते हैं, आप श्रीरामजी महाराज की कथा का ही आहार करते हैं तथा उनके प्रेम में पगे हुए अपनी शरीर स्मृति भी छोड़ देते हैं। आप श्रीरामजी महाराज के सुन्दर रूप का स्मरण करते ही आनन्दपूर्वक, प्रेम विभोर हो आँखों से प्रेमाश्रु बहाने लगते हैं।

दो०–मोरे सब गुरु पितर प्रभु, विनयकरहुँ कर जोर ।
सीय राम पद प्रेम प्रिय, बढ़ नित ह्रदय हिलोर ॥२२॥क॥

हे नाथ! मेरे तो आप ही सर्वस्व, श्री गुरुदेव, पितर और स्वामी हैं, मैं दोनों हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि मेरे ह्रदय में श्रीसीतारामजी महाराज के चरणों का प्रिय प्रेम हिलोरे लेता हुए सदैव वृद्धिंगत होता रहे।

काग गरुड़ बन्दन करौं, प्रभु प्रेमी जग जान ।
राम कथा के रसिक वर, पावहुँ प्रेम महान ॥ख॥

विश्व प्रसिद्ध भगवत्प्रेमी श्री कागभुसुण्ड जी और श्री गरुड़ जी की मैं वन्दना करता हूँ, आप दोनो ही श्री राम जी महाराज की कथा के श्रेष्ठ रसिक हैं आप ऐसी कृपा करें कि मैं श्रीरामजी महाराज के महान प्रेम को प्राप्त करूँ।

ऋक्षराज सुग्रीव विभीषण । अंगद सह बन्दहुँ तीनहुँ जन ॥
शबरी गीध बन्दि सुख पाऊँ । जिन सराध कीन्हे रघुराऊ ॥

मैं श्री अंगदजी सहित ऋक्षराज श्री जामवन्तजी, कपिराज श्री सुग्रीवजी व भक्तराज श्री विभीषणजी तीनों की वन्दना करता हूँ। पुनः श्री शबरीजी और श्री जटायुजी की वन्दना कर मैं सुख प्राप्त करता हूँ, जिनका मृत्यु संस्कार (श्राद्ध) श्री राम जी महाराज ने स्वयं किया था।

घटज सुतीक्षण प्रभु पद प्रेमी । चरण शीश धरि चाहत क्षेमी ॥
आदर शुक सनकादि ऋषीशा । प्रणवहुँ पुनि पद रज धरि शीशा ॥

मैं श्रीरामजी महाराज के चरणों के प्रेमी श्री अगस्त जी व श्री सुतीक्षणजी के चरणों में सिर रख प्रणाम करते हुए अपनी कुशलता की कामना करता हूँ। पुनः श्री नारदजी, श्री शुकदेवजी तथा श्री सनकादिक ऋषियों (सनत, सनन्दन, सनातन व सनत कुमार) को उनकी चरण धूलि सिर में धारण कर मैं प्रणाम करता हूँ।

अंबरीष प्रहलाद ध्रुवादी । बन्दि चहत शुभ आशिरवादी ॥
सुमिरहुँ परिकर युगल महाना । सीयराम प्रिय परम सुजाना ॥

मैं श्री अम्बरीषजी, श्री प्रह्लादजी व श्री ध्रुवजी आदि भक्तों की वन्दना कर शुभ आशीर्वाद चाहता हूँ। पुनः मैं श्रीसीतारामजी महाराज के महान परिकरों का स्मरण करता हूँ जो अत्यन्त सुजान और युगल सरकार के परम प्रिय हैं।

सन्तत दोउ सेवा रस भीने । तन मन वच सब अर्पण कीन्हे ॥
प्रभु कृत भौंह विलोकत रहहीं । करि सेवा मन मोदहिं लहहीं ॥

ये मिथिला व अवध सम्बन्धित दोनों प्रकार के परिकर सदैव ही सेवा रस से ओत–प्रोत तथा अपने स्वामी श्रीसीतारामजी महाराज को अपना सर्वस्व शरीर, मन व वचन अर्पण किये हुये हैं। वे श्रीसीतारामजी महाराज के भृकुटि विलास को देखते हुए उनकी रुचि अनुसार सेवा कर मन में आनन्द पाते रहते हैं।

दो०– प्रभु सुख कहँ निज सुख गिनै, हरि इच्छानिज चाहि ।
मनसा वाचा कर्मणा, हर्षण बन्दत ताहि ॥२३॥

वे प्रभु श्रीसीतारामजी महाराज के सुख को अपना सुख तथा उनकी इच्छा को अपनी इच्छा समझते हैं, हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्रीराम हर्षणदासजी महाराज कहते हैं कि मैं मन, वचन और कर्म से (त्रिकरण) उनकी वन्दना करता हूँ।

जनक लाड़िली राम पियारी । आदि शक्ति सीता जगकारी ॥
तव पद अरपि आप अरु अपनो । सहित नयन जल करत प्रलपनो ॥

मैं श्रीविदेहराज जनकजी महाराज की लाड़ प्यार से पली हुई पुत्री, श्री रामजी महाराज की प्रियतमा, परमाद्या शक्ति, संसार की कारण स्वरूपा श्रीसीताजी के चरणों में स्वयं और स्व (अपना सर्वस्व) को अर्पित कर, अश्रुपूरित नेत्रों से, प्रलाप करता हुआ––

करहुँ प्रणाम दण्डवत चरणन । अशरण राखि लेहु निज शरणन ॥
कृपा कोर तव मति गति पाई । भजौं भाव भरि श्री रघुराई ॥

––श्री चरणों में दण्डवत प्रणाम करता हूँ, आप मुझ निराश्रय को अपनी शरण में ले लीजिये। आपकी कृपा दृष्टि से मेरी बुद्धि आश्रय प्राप्त कर लेगी और मैं भाम भाव में भावित होकर श्रीरामजी महाराज का भजन कर सकूँगा।

बन्दहुँ रघुवर श्याम सलोने । निज छवि कोटि काम द्युति खोने ॥
पार ब्रह्म परमारथ रूपा । भगत हेतु सुर विटप अनूपा ॥

मैं रघुकुल श्रेष्ठ, श्याम वर्ण वाले सलोने कुमार श्रीरामजी महाराज की वन्दना करता हूँ जिन्होंने अपनी छवि से करोड़ों कामदेव की छवि को परास्त कर दिया है। आप स्वयं परब्रह्म, परमार्थ स्वरूप, अनुपमेय और अपने भक्तों के लिए देववृक्ष (कल्प वृक्ष) के समान हैं।

सत चित आनन्द परम प्रकाशी । जासु नाम भव भेषज भाषी ॥
विधि हरि हर जेहिं भेद न जाने । नेति नेति सब वेद बखाने ॥

श्री राम जी महाराज सच्चिदानन्दमय परम प्रकाशवान हैं, जिनका परम पावन नाम 'श्रीराम' भव रोग की औषधि कहा गया है, श्री ब्रह्माजी, श्री विष्णुजी व श्री शंकरजी भी जिनके रहस्य को नहीं जानते तथा जिनका सभी वेदों ने 'नेति' 'नेति' कह कर बखान किया है।

दो०—राम पृथक सीता नहीं, सीता पृथक न राम ।
यथा अग्नि अरु उष्णता, एकहि तत्व ललाम ॥२४॥क॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज श्री सीताजी से अलग नहीं हैं और न श्री सीताजी श्रीरामजी महाराज से अलग हैं। ये दोनों उसी प्रकार एक ही तत्व हैं जिस प्रकार अग्नि और उसकी गर्मी (दाहिकात्मिका शक्ति) दो नहीं एक ही हैं।

शक्ति बिना ठहरत नहीं, शक्तिमान कछु भाय ।
शक्तिमान बिनु शक्ति की, स्थिति नाहिं दिखाय ॥ख॥

जिस प्रकार शक्ति के बिना शक्तिमान का कोई अस्तित्व नहीं होता तथा शक्तिमान के बिना शक्ति की भी कोई स्थिति नहीं दिखाई पड़ती।

रामहिं सीता जानि जिय, सीतहिं राम सुजान ।
भाव सहित सियराम रटि, पाइय प्रेम प्रमान ॥ग॥

उसी प्रकार श्रीरामजी महाराज को श्री सीता जी व श्री सीताजी को श्रीरामजी महाराज समझकर, भावपूर्वक "श्रीसीताराम" नाम रटने से निश्चित ही सभी जन उनके प्रेम को प्राप्त कर लेंगे।

बन्दहुँ नाम राम रघुराई । सहित नाम सीता सुखदाई ॥
विधि हरि हर निज शक्ति समेता । प्रगट रकारहिं ते श्रुति वेता ॥

मैं परम सुखदायक श्री सीताजी के नाम 'श्री सीता' के सहित श्रीरामजी महाराज के नाम 'श्रीराम' की वन्दना करता हूँ। श्री राम जी महाराज के नाम के प्रथम अक्षर 'रकार' से श्री ब्रह्माजी, श्री विष्णुजी व श्री शंकर जी अपनी अपनी शक्तियों (श्री सरस्वतीजी, श्री लक्ष्मीजी व श्री पार्वती जी) सहित प्रगट हुए हैं ऐसा श्रुति वेत्ताओं का कथन है।

पूर्ण ब्रह्म की यावत शक्ती । राम नाम थापी करि युक्ती ॥
सोऽहं प्रणव मंत्र श्री रामा । राम नाम सों उपज ललामा ॥

पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य को "श्रीराम" नाम में युक्ति पूर्वक स्थापित कर दिया है। सोऽहं, प्रणव (ॐ) तथा श्रीराम मन्त्र राज जी भी श्री राम जी महाराज के परम सुशोभन 'श्रीराम' नाम से ही उत्पन्न हुये हैं।

सादर जपे नाम जो पावन । परम प्रकाश तासु उर छावन ॥
आनँदमय बनि बनै विज्ञानी । होइ अमृत नित सुख सरसानी ॥

इस परम पवित्र नाम 'श्रीराम' का जो कोई भी आदरपूर्वक जप करता है उसके हृदय में अत्यधिक प्रकाश छा जाता है, वह आनन्दस्वरूप होकर विशिष्ट ज्ञान से युक्त विज्ञानी बन जाता है और स्वयं अमृत बनकर नित्य सुख में सरसाया रहता है।

परम प्रेम पावै हरि केरा । शान्ति हिये नित करै बसेरा ॥
मंत्र समान आप ह्वै जावै । जगत उधारन शक्ती पावै ॥
अग्नि सूर्य चन्दा गुण आवत । तासु रूप बनि सबहिं बनावत ॥

वह श्रीरामजी महाराज के महान प्रेम को प्राप्त कर लेता है तथा शान्ति के हृदय में नित्य निवास किये रहता है। स्वयं मंत्र स्वरूप बनकर संसार का उद्धार करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है, उसमें अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा के गुण आ जाते हैं तथा वह उन्हीं (श्री राम जी) के रूप वाला बनकर सभी को अपने समान भगवद् स्वरूप बनाने वाला हो जाता है।

दो०—नाम रसिक हरिदास जे, प्रभु प्रेमी निष्काम ।
तिन सँग नित पीछे फिरत, रसिया रघुवर श्याम ॥२५॥क॥

श्री रामजी महाराज के पवित्र 'नाम' के जो रसिक, प्रेमी व निष्काम भक्त हैं, रसिक शिरोमणि रघुनन्दन श्यामवपु श्री रामजी महाराज नित्य ही उनके साथ पीछे–पीछे चलते हैं।

सत्य काम संकल्प सत, सत चिद आनन्द रूप ।
निज स्वरूप लहि नामरत, दरश करैं नर भूप ॥ख॥

श्रीरामजी महाराज के 'नाम' में निरत जन पूर्ण काम, सत्य संकल्प और सच्चिदानन्दमय होते हैं तथा स्वस्वरूप को प्राप्त कर नर भूप श्रीरामजी महाराज का दिव्य दर्शन प्राप्त करते हैं।

बार बार करि दण्ड प्रणामा । नाम महाराजहिं सुख धामा ॥
चहौं परम प्रभु प्रीति अभंगा । सदा सुलभ प्रेमिन सतसंगा ॥

ऐसे परम पावन सुख के धाम श्री नाम महाराज को मैं बारम्बार दण्डवत प्रणाम कर प्रभु श्रीरामजी महाराज की अखण्ड महान प्रीति और सदैव प्रेमियों के सत्संग की सुलभता चाहता हूँ।

राम यशहिं तुम्हरे बल गावौं । कृपा करहु सुप्रबन्ध बनावौं ॥
नाम प्रभाव काह नहिं होई । मूक बदै जानौं सब कोई ॥

हे श्री नाम महाराज! मैं प्रभु श्रीरामजी महाराज की कीर्ति का गायन आपके सहारे से कर रहा हूँ, आप कृपा करें जिससे मैं इस सुन्दर 'प्रबन्ध काव्य' (श्री प्रेम रामायण) का प्रणयन कर सकूँ। आपके (श्री नाम महाराज के) प्रभाव से क्या नहीं हो सकता? गूँगे में भी वाणी का प्रसार हो जाता है, ऐसा सत्य ज्ञान सभी जानते हैं।

उलटहुँ जपे राम शुभ नामा । बाल्मीकि वरणे गुण ग्रामा ॥
शरणागत रक्षक प्रभु जानी । आयो शरण दीन बिलखानी ॥

श्रीरामजी महाराज के शुभ नाम 'राम' को, उल्टा (मरा–मरा) जप कर भी श्री बाल्मीकिजी ने

प्रभु के परम पावन चरित्रों का गायन कर लिया है। यह दीन दास अपने स्वामी श्रीरामजी महाराज को शरणागत जीवों का रक्षक समझ कर दुखी हो रुदन करता हुआ उनकी शरण आया है।

मम अवगुण प्रभु ध्यान न देहीं । निज स्वभाव लखि कृपा करेहीं ॥
पेखत अगणित पाप हमारे । नहिं निस्तार कतहुँ सुनु प्यारे ॥

हे मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज! आप मेरे अवगुणों पर ध्यान न देकर अपने स्वभाव को निहारकर मुझ पर कृपा करें अन्यथा हे मेरे प्यारे! सुनिये, हमारे अनगिनत पापों को देखकर तो कहीं भी उबार नहीं हो सकता।

दो०– प्रभु स्वभाव हिय महँ सुमिरि, धरि चरणन महँ माथ ।
पा दृष्टि लहि अभय पद, चाहत होन सनाथ ॥२६॥

मैं अपने हृदय में श्रीसीतारामजी महाराज के स्वभाव का स्मरण करते हुए उनके युगल चरण कमलों में शिर रखकर प्रणाम करता हूँ तथा उनकी कृपा दृष्टि से अभय पद प्राप्त कर सुरक्षित होना चाहता हूँ।

तुरत मारिबे योग जयन्ता । शरण राखि लीन्हो सिय कन्ता ॥
निन्दक रजक निकासन योगू । अचल धाम दै मेटेव शोगू ॥

आपकी प्राण प्रिया का अपराध करने वाला इन्द्रपुत्र जयन्त तो शीघ्र ही मार डालने के योग्य था परन्तु हे श्री सीता वल्लभ रामजी महाराज! आपने उसे अपनी शरण (सुरक्षा) में रख लिया पुनः आपकी प्रियतमा की निन्दा करने वाला धोबी तो राज्य से निष्कासित ही कर देने योग्य था परन्तु आपने उसे भी अपना अचल धाम देकर उसके शेक का निवारण कर दिया।

रावण रक्षौं शरणहिं आये । यह प्रमाण सब कपिन सुनाये ॥
ताही बल मैं सनमुख आयो । सब विधि हीन यदपि हौं जायो ॥

जिस रावण ने हमारी प्रिय वल्लभा श्री सीता जी का अपहरण किया है वह यदि मेरी श्रण में आ जाय, तो मैं उसकी भी रक्षा करूँगा यह निश्चय आपने सभी वानर वीरों को सुनाया है। मैं उसी कृपा बल के सहारे ही आपके सामने आया हूँ यद्यपि मैं जन्म से ही सभी प्रकार से हीन हूँ।

दीन जानि प्रभु राखैं शरणन । अभय बाँह दै मेटि कुतरकन ॥
मम हिय बैठि स्वशक्ति सहाया । करहिं करावहिं सब रघुराया ॥

हे नाथ! मुझे दीन समझकर, आप अपनी शरण में रख लें, मेरे सभी कुतर्कों को मिटा कर अपनी अभय बाँह प्रदान करें तथा अपनी शक्ति श्री सीता जी के सहित मेरे हृदय में विराज कर सभी कार्य करते और करवाते रहें।

प्रभु प्रेरित रामायण रचना । करहुँ हिये धरि अमृत वचना ॥
राम कृपा प्रेमामृत पाई । होइहिं कथा मधुर सुखदाई ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– अपने स्वामी श्री सीताराम जी की प्रेरणा से, उनके अमृतमय वचनों को हृदय में धारण कर मैं "श्री प्रेम रामायण" की

रचना कर रहा हूँ जो श्रीरामजी महाराज की कृपा से प्रेमामृत को प्राप्तकर मधुर और सुख प्रदायिनी सिद्ध होगी।

दो०—रसिकन जीवन प्राण यह, होइ कथा रसखानि ।
तबहिं रचब साँचो भयो, सुनिय सुसारँग पानि ॥२७॥

हे सुन्दर सारंग धनुष को धारण करने वाले श्रीरामजी महाराज! सुनिये, यह श्री प्रेम रामायण की कथा जब रसिक जनों के हेतु जीवन–प्राण के समान तथा रस की खानि सिद्ध होगी तभी मेरा लिखना सार्थक होगा।

सुत मृकण्ड आश्रम अति पावन । मिली महानदि सोन सुहावन ॥
सम्वत युग सहस्त्र इक्कीसा । कहौं कथा सुमिरत जगदीशा ॥

श्री मृकण्ड मुनि के पुत्र श्रीमान् मार्कण्डेय जी के अत्यन्त पवित्र आश्रम में, जहाँ पर सुन्दर श्रोण भद्र व महानदी का संगम हुआ है, मैं विक्रम सम्वत दो हजार इक्कीस को जगत के स्वामी श्री सीताराम जी का स्मरण करते हुए इस श्री प्रेम रामायण कथा लेखन का आरम्भ कर रहा हूँ।

भाद्र शुक्ल अष्टमि अति भाई । सोमवार शुभ लग्न लोनाई ॥
राधा जन्म रहस रस दानी । रसिक मनावहिं हिय हुलसानी ॥

आज शुभ भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की अत्यन्त सुहावन अष्टमी तिथि है, सोमवार का दिन तथा शुभ व सुन्दर लग्न है। रसिक जन हृदय में हुलास भरकर रास–रस प्रदायिका श्री राधा जी की जयंती सोल्लास मना रहे हैं।

सोइ दिन सुमिरि सीय रघुराई । कथा अरम्भ कीन्ह सुखदाई ॥
प्रेम रूप रामायण प्रेमा । सकल सुकृत दायक शुभ क्षेमा ॥

श्रीसीतारामजी महाराज का स्मरण कर मैंने उसी दिन, यह सुख प्रदायिनी श्री प्रेम रामायण कथा आरम्भ की है। यह श्री प्रेम रामायण, प्रेम स्वरूपा, सभी पुण्यों की प्रदायिका तथा शुभ व मंगल करने वाली है।

प्रेम विवर्धनि प्रभु अनुरूपी । राम कथा सब भाँति अनूपी ॥
मति गति मोरि बहुत है थोरी । चरित अगाध देखि भइ भोरी ॥

यह श्री प्रेम रामायण, भगवत्प्रेम वृद्धिंगत करने में प्रभु श्री सीताराम जी महाराज के समान तथा सभी प्रकार से अनुपमेय श्रीराम कथा है। यद्यपि मेरी बुद्धि और स्थिति तो अत्यन्त ही अल्प है तथा भगवान के असीम चरित्रों को देखकर वह बावरी भी हो गयी है।

दो०—सीय चरण सिर नाय करि, रामहिं बहुत निहोरि ।
कथा कहन साहस करत, सबहिं बन्दि कर जोरि ॥२८॥

तथापि श्री राम वल्लभा श्री सीता जी के चरणों में अपना शिर झुका प्रणाम कर, प्रभु श्रीरामजी महाराज से बार बार (अत्यधिक) प्रार्थना करते हुये तथा संसार के सभी भगवत्स्वरूप जनों की हाथ

जोड़ वन्दनाकर मैं श्री प्रेम रामायण कथा को कहने का साहस कर रहा हूँ।

देवहु सकल अशीष सुजाना । जानौं नहिं कछु छन्द विधाना ॥
करहिं कृपा रघुवीर गोसाँई । बनैं चरितसुन्दर सुखदाई ॥

आप सभी सर्वज्ञ जन मुझे आशीर्वाद दें क्योंकि मैं काव्य रचना (छन्द शास्त्र) के किंचित नियमों को भी नहीं जानता। हे समस्त इन्द्रियों के स्वामी रघुकुल प्रवीर श्री राम जी महाराज! आप कृपा करें जिससे यह सुन्दर और सुखदायक चरित्र पूर्ण हो जाय।

सुनहिं सुजन सब शुचि सुखमानी । त्यागि तरक मोहिं आपन जानी ॥
प्रभु यश ग्रथित अवद्धहु वानी । हंस तीर्थ सम संत बखानी ॥

सभी सज्जन इसे पवित्र मानकर, कुतर्कों को छोड़ मुझे अपना समझ सुखपूर्वक इसका श्रवण करें। यद्यपि भगवद्यश से सनी हुई अवद्धित वाणी (छन्द विधान से रहित) भी 'हंस तीर्थ' के समान पवित्र होती है ऐसा संतो ने बखान किया है।

सोइ वर बानि त्यागि अभिमाना । कहहिं सुनहिं समुझहिं मतिमाना ॥
जो प्रबन्ध हरि यश बिनु होई । काक तीर्थ सम कहियत सोई ॥

अतः बुद्धिमान जन उसी प्रकार की अवद्धित वाणी इस श्री प्रेम रामायण को अभिमान का त्याग कर कहने, सुनने और समझने में लग जायेंगे। यदि भगवान की कीर्ति से विहीन कोई उत्तम "प्रबन्ध काव्य" हो तो उसे भी सभी सज्जन काक–तीर्थ के समान अपवित्र कहते हैं।

अस जिय जानि उछाह बढ़ाई । कथा कहन की कीन्ह ढ़िठाई ॥
शारद शेष महेश गणेशा । वरणत थके चरित अवधेशा ॥

अपने हृदय में ऐसा जानकर ही, उत्साह को बढ़ाकर मैंने इस कथा को कहने की धृष्टता की है अन्यथा अयोध्या पति श्री रामजी महाराज के चरित्रों का वर्णन करते–करते तो श्री सरस्वतीजी, श्री शेषजी, श्री शंकरजी व श्री गणेशजी आदि भी थककर हार जाते हैं।

दो०–चरित महा महिमा अवधि, नेति नेति कह वेद ।
मैं पामर कपटी कुटिल, कहा कहौं हिय खेद ॥२९॥क॥

श्री सीताराम जी महाराज के चरित्र तो महान और महिमा की पराकाष्ठा हैं जिनका वेदों ने नेति नेति (न इति, न इति) कहकर गायन किया है। उन चरित्रों का वर्णन मैं नीच, कपटी और छली जीव किस प्रकार कर सकता हूँ, मुझे हृदय में इसका अत्यन्त दुख है।

श्री गुरु पद रज सुमिरि अब, सिर धरि नयन लगाय ।
सीय राम पद बन्दि पुनि, कहौं कथा प्रिय गाय ॥ख॥

मैं अब अपने श्री सद्गुरुदेव भगवान जी के चरणों की पावन धूल (रज) की महान महिमा का स्मरण कर उसे शिर में धारण कर, आँखों में लगाता हूँ पुनः श्री सीताराम जी महाराज के चरणों की

वन्दना करता हुआ इस "श्री प्रेम रामायण" की प्रिय कथा का बखान कर रहा हूँ।

जेहिं विधि कथा प्रसंग यह, भो प्रेमिन के हेत ।
श्रोता वक्ता समय सो, वरणि कहौं चित चेत ॥ग॥

प्रेमियों की हितकारी इस श्री प्रेम रामायण कथा का प्राकट्य जिस प्रकार से हुआ है मैं उस प्रकरण का विवरण, उसके श्रोता, वक्ता व समय आदि सहित ध्यानपूर्वक बखान कर रहा हूँ।

सुनिहहिं सज्जन अब चित लाई । हर्षि हृदय प्रिय प्रेम बढ़ाई ॥
रावण दल दलि श्री रघुवीरा । आये अवध सिया सह धीरा ॥

अब सभी सज्जन हृदय में हर्षित हो, अपने मन को एकाग्र कर, इस श्री राम कथा श्री प्रेम रामायण में प्रिय प्रेम को बढ़ाकर इसका श्रवण करें। परम धीर वीर श्रीरामजी महाराज जब रावण का दल– सहित दलन कर श्रीसीताजी सहित अयोध्या पुरी वापस आये।

देखन हेतु राम वैदेही । आयी लोक समाज सनेही ॥
जनक आदि मिथिलापुर भूपा । आये अवध मनहुँ रस रूपा ॥

उस समय श्री सीताराम जी का दर्शन करने के लिये संसार के सम्पूर्ण प्रेमी समाज श्री अयोध्या पुरी आये। श्री मिथिलापुरी के महाराज रस–स्वरूप श्री जनक जी आदि अन्य राजागण भी श्री अयोध्यापुरी पहुँचे।

अवधि जानि औरहु सब राजा । आये तहँ निज सहित समाजा ॥
देश देश ते प्रजा समूहा । आये दरश हेतु बहु व्यूहा ॥

श्रीरामजी महाराज की वन अवधि पूर्ण हुई समझ अन्यान्य सभी राजागण अपनी अपनी समाज सहित श्री अयोध्या पुरी आये। उस समय देश–देश से प्रजा पुरवासियों के विविध समूह श्री सीता राम जी के दर्शन के लिए आये।

मिले यथा विधि राम कृपाला । हिय लगाइ भरतहिं प्रण प्राला ॥
गुरु मुनि विप्र सन्त सब माता । मिले सबहिंसज्जन सुखदाता ॥

परम कृपालु श्रीरामजी महाराज विधि पूर्वक हृदय से लगाकर सर्व प्रथम श्री भरतजी से भेंट किये और वनावधि समाप्ति के प्रथम दिन दर्शन की उनकी प्रतिज्ञा पूर्ण की। पुनः सज्जनों को सुखी करने वाले श्रीरामजी महाराज अपने गुरुदेव श्री वसिष्ठजी, समागत मुनियों, ब्राह्मणों, सन्तों और सभी माताओं से मिले।

जनकहिं प्रिय परिवार सहानुज । विरह ताप मेटे मिलि भरि भुज ॥
सब भूपन मिलि पुरजन भेंटे । सकल प्रजन हिय लाइ समेटे ॥
मिलत प्रेम सागर उमगायो । देखत भालु कीश सुख पायो ॥

पुनः श्री राम जी महाराज अपने परिवार और अनुजों के सहित श्री जनकजी महाराज से भुजाओं में भर–भरकर (हृदय लगाकर) भेंट किये तथा उनके वियोग जनित ताप को शान्त किये।

तत्पश्चात सभी राजाओं से मिलकर वे अपने प्रजा–पुर वासियों (सभी) से हृदय लगाकर भेंट किये। उस समय श्रीरामजी महाराज के मिलन में प्रेम का सागर उमड़ पड़ा जिसे देखकर उनके साथी बन्दर भालुओं ने महान सुख प्राप्त किया।

दो०– प्रेम अपूरव देखि के, वानर भालु समाज।
भयो मगन बिसराय सुधि, लखत रूप रघुराज ॥३०॥क॥

उस समय, उनके अपूर्व प्रेम को देख, वानर भालुओं की समाज प्रेम मग्न हो गयी तथा स्मृति भूल कर श्री रामजी महाराज के स्वरूप को निहारने लगी।

राज सिंहासन सोह जब, सीय सहित रघुनाथ।
परमानँद लहि कीश सब, माने आपु सनाथ ॥ख॥

पुनः श्रीरामजी महाराज जब अपनी प्राण वल्लभा श्री सीता जी सहित श्री अयोध्या पुरी के सुन्दर राज्य सिंहासन में सुशोभित हुये तब सभी वानर–भालुओं ने परमानन्द प्राप्त किया और अपने आप को सनाथ समझा।

नित नित नव आनन्द अपारा। अमृत स्वाद लहहिं सुखसारा ॥
छिन छिन लखि लखि श्याम स्वरूपा। प्रेम सिन्धु सब सनहिं अनूपा ॥

इस प्रकार वे सभी नित्य प्रति नवीन असीम आनन्द व सुखों का सार अमृत स्वाद प्राप्त किये। वे श्रीरामजी महाराज के सुन्दर श्याम स्वरूप को प्रत्येक क्षण देख देखकर अनुपमेय प्रेम के सागर में डूब गये थे।

प्रभु प्रेरित बीते षट मासा। गये कीश सब निज निज वासा ॥
पवन तनय हनुमान सुशीले। प्रेम बिवश रुकि रहे रँगीले ॥

इस प्रकार छः माह व्यतीत हो जाने पर, भगवान की प्रेरणा से सभी बन्दर, भालु अपने–अपने निवास चले गये। परन्तु श्री राम जी महाराज के रंग में रँगे हुए परम सुशील पवन पुत्र श्री हनुमानजी उनके प्रेम के वशीभूत हो श्री अयोध्या पुरी में रुके रहे।

अष्ट याम सेवा सुख छाके। प्रेम पगे प्रिय राम सिया के ॥
कहुँ कीर्तन कहुँ चरित अनूपा। कहत सुनत श्री भक्तन भूपा ॥

श्री हनुमान जी श्री सीताराम जी महाराज के प्रिय प्रेम में पगे हुए आठों याम सेवा के सुख में छके रहते थे। भक्तों के भूप श्री हनुमानजी कभी कीर्तन करते तो कभी श्रीरामजी महाराज के अनुपमेय चरित्रों को कहते व सुनते रहते थे।

कबहुँ मातु सिय के ढिग जाई। प्रीति रीति पूछहिं सरसाई ॥
भ्रातन सह कहुँ राम निहोरी। पूछहिं ज्ञान विराग निचोरी ॥

कभी वे माता श्री जानकी जू के समीप जाकर उनसे रसमयी प्रीति की पद्धति पूछते तो कभी भ्राताओं के सहित श्रीरामजी महाराज से विनय कर ज्ञान और वैराग्य का सारतम रहस्य पूछते थे।

दो०– कहहिं सुनिहिं यहि विधि अवध, साने अतिहिं उछाह ।
प्राणहुँ ते प्रिय मानहीं, श्री सीता युत नाह ॥३१॥

इस प्रकार वे श्री अयोध्या पुरी में, अत्यन्त अत्साह पूर्वक, भगवान के चरित्रों को कहते और सुनते रहते थे। उनके स्वामी श्रीरामजी महाराज श्री सीताजी सहित उन्हें प्राणों से प्रिय मानते थे।

एक समय श्री लक्ष्मण लाला । सहित उर्मिला सुन्दर वाला ॥
कनकासन बैठे दोउ सोहैं । कोटिन काम रती मन मोहैं ॥

एक समय श्री लक्ष्मण कुमार जी, अपनी सुन्दर पत्नी श्री उर्मिलाजी के साथ स्वर्णासन में बैठे हुए सुशोभित हो रहे थे और अपनी छवि से करोड़ों कामदेव व रती के मन को मोहित कर रहे थे।

सेवा साज सहित सब दासी । खड़ीं चतुर्दिक प्रेम प्रकासी ॥
कोउ सखि छत्र छहर मनहारी । चवँर कोउ कोउ बींजन धारी ॥

उनके चारो ओर प्रेम प्रकाश से प्रकाशित सभी दासियाँ सेवा की सामग्रियाँ लिए हुए खड़ी थीं। कोई सखी मन को हरण करने वाला छत्र धारण किये थी तो कोई चवँर व कोई ब्यजन (पंखा) लिये हुए थी।

राम चरित कीर्तन कोउ करई । कोउ नृत्यत मन आनन्द भरई ।।
तान लेत कोउ वाद्य बजावै । कोऊ रसमय भाव बतावै ।।

कोई सखी श्री सीताराम जी महाराज के चरित्रों का कीर्तन कर रही थी तो कोई मन में आनन्दित हो नृत्य कर रही थी। कोई तान ले रही थी, कोई वाद्य बजा रही थी और कोई प्रसंगानुसार भावों का प्रदर्शन कर रही थी।

कीर्तन रंग बढ़ेव सुखदायक। सीय राम पद प्रेम विधायक ॥
सबहिं अपनपौं भूलि समाजा। प्रेमाकार भईं तजि लाजा ॥

इस प्रकार संकीर्तन में श्री सीताराम जी महाराज के चरणों के प्रति प्रेम विवर्धित करने वाला सुखदायी आनन्द बढ़ने लगा तथा सम्पूर्ण समाज अपने आपा को भूलकर, लज्जा को त्याग प्रेम स्वरूप हो गयी।

दो०– राम कीर्तन रसिक वर, पवन पुत्र हनुमान ।
तेहिं अवसर पहुँचे तहाँ, जस भूखा अतुरान ॥३२॥

उसी समय श्री राम संकीर्तन के श्रेष्ठ रसिक पवन पुत्र श्री हनुमानजी अत्यन्त भूखे व्यक्ति के समान आतुर हो वहाँ संकीर्तन में पहुँच गये।

सबहिं मनहिं मन कीन्ह प्रणामा । सबके प्रति प्रिय भाव सुजामा ॥
प्रेम प्रमोद पगे कपि राई । गिरे धरणि तल दशा भुलाई ॥

उन्होंने मन ही मन सभी को प्रणाम किया तथा सभी के प्रति उनके हृदय में प्रिय भाव उत्पन्न हो गया। पुनः वानर श्रेष्ठ श्री हनुमानजी महाराज प्रेमानन्द में पगे हुए अपनी स्थिति को भुलाकर भूमि में गिर पड़े।

ह्वै प्रकृतिस्थ सुमित्रा नन्दन । लखे ललित हनुमान सुक्रन्दन ॥
धाय उठाय सिरहिं कपि केरा । गोद राखि कर पंकज फेरा ॥

कुछ समय बाद सुमित्रा कुमार श्री लक्ष्मणजी ने प्रकृतिस्थ होकर विलाप करते हुए सुन्दर श्री हनुमानजी को देखा तथा दौड़कर उनके सिर को उठाकर अपनी गोद में रख लिया और अपना कर कमल उनके शीश में फेरने लगे।

प्रभु प्रिय परस पाइ हनुमाना । उठि बहोरि चरणन चपकाना ॥
अश्रु पोंछि मृदु वचन दुलारे । हिय लगाय लछिमन सतकारे ॥

दनन्तर श्री लक्ष्मण कुमार जी के प्रिय स्पर्श को पाकर श्री हनुमानजी प्रकृतिस्थ हो उठे व पुनः उनके चरणों में लिपट गये। उस समय श्री लक्ष्मण कुमार जी ने उनके आँसू पोंछकर उनका दुलार किया तथा अपने हृदय से लगा उनका सत्कार करते हुए कोमल वचनों से कहा।

धनि धनि तुम अंजनि प्रिय लाला । पीवत राम प्रेम पय प्याला ॥
पुनि कर पकरि समीप शुभासन । बैठायो मृदु मन्द सुहासन ॥

हे! अंजनी माता के प्रिय लाल श्री हनुमान जी! तुम धन्याति धन्य हो जो श्रीरामजी महाराज के प्रेम रस का प्याला पान करते रहते हो। पुनः मधुर मधुर मुस्कराते हुए श्री लक्ष्मण कुमार जी ने उनका हाथ पकड़कर अपने समीप सुन्दर आसन में बिठा लिया।

मुख सिंचुवाय उर्मिला रानी । कछुक पवायो बड़ प्रिय जानी ॥
पान गन्ध प्रिय माल प्रसादी । दियो लखन हिय अति अहलादी ॥

श्री उर्मिलाजी ने श्री हनुमान जी के मुख में जल सिंचन करवा प्रोच्छण कर अत्यधिक प्रिय समझ कुछ भगवत् प्रसाद पवाया पुनः श्री लक्ष्मण कुमार जी ने उन्हे अत्यन्त आह्लादित हो ताम्बूल, इत्र और अपनी उतारी हुई प्रसादी माला दी।

दो०—लखन चले गृह वाटिकहिं, पानि पकर हनुमान ।
बैठे शुचि थल आसनहिं, प्रभु प्रेमी मतिमान ॥३३॥

तदुपरान्त श्री हनुमान जी का हाथ पकड़कर श्री लक्ष्मण कुमार जी अपनी गृह वाटिका को चल दिये वहाँ पवित्र स्थान व सुन्दर आसनों में भगवान के परम बुद्धिमान दोनो प्रेमी श्री लक्ष्मण कुमारजी और श्री हनुमानजी बैठ गये।

गुप्त प्रगट हरि चरित समासा । कहत सुनत दोउ प्रेम प्रकाशा ॥
बीचहिं तिरहुत चलेव प्रसंगा । लक्ष्मीनिधि प्रिय प्रीति अभंगा ॥

प्रभु प्रेम से प्रकाशित दोनों प्रभु प्रेमी भगवान के गुप्त और प्रगट चरित्रों का समर्थन करते हुए कहने और सुनने लगे। इसी बीच तिरहुत प्रदेश श्री मिथिलापुरी का प्रसंग व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी की प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रति अटूट व प्रिय प्रीति का प्रकरण चल पड़ा।

पवन तनय सुनि आनन्द छायो । मिथिला चरित सुनन ललचायो ॥
पानि जोरि शुभ शीश नवाई । बोले लछिमन सों सरसाई ॥

जिसे सुनकर पवन नन्दन श्री हनुमानजी के हृदय में आनन्द छा गया तथा श्री मिथिलापुरी के पावन चरित्रों को श्रवण करने की जिज्ञासा जाग उठी। तब वे अत्यानन्द में भरकर श्री लक्ष्मण कुमार जी से हाथ जोड़, सिर झुका प्रणामकर बोले–

नाथ राम के प्राण प्रमाना। तुमहिं प्राण प्रिय प्रभु जग जाना॥
एकान्तिक सिय राम चरित्रा। सो सब जानहु अमित विचित्रा॥

हे नाथ! आप तो निश्चय ही श्रीरामजी महाराज के प्राण हैं तथा आपको श्रीरामजी महाराज प्राणों से अधिक प्रिय हैं। यह बात सम्पूर्ण संसार में प्रगट है। आप श्री सीताराम जी महाराज के असीमित, विलक्षण व एकान्तिक सभी चरित्रों को भली प्रकार जानते हैं।

पुनि एकान्तिक सेव महानहिं। लह्यो स्वभाविक प्रेम प्रमानहिं॥
परमारथ पथ परम प्रवीने। वेद तत्व करतल गत कीन्हे॥

पुनः प्रभु–प्रेम के प्रमाण स्वरूप श्री सीताराम जी महाराज की महान एकान्तिक सेवा भी आपने सहज ही प्राप्त की है। आप तो परमार्थ पथ में अत्यन्त कुशल हैं और वेदों के परम तत्व श्री सीताराम जी महाराज को भी आपने करतलगत कर लिया है।

भक्त कल्प तरु मृदुल स्वभाऊ। जगदाधार जान मुनिराऊ॥
आरति हरण शरण सुखदायक। मोह मूल भय शूल नशायक॥

आप भक्तों के लिए कल्पवृक्ष के समान, मृदुल स्वभाव वाले तथा सम्पूर्ण संसार के आधार हैं इस बात को श्रेष्ठ मुनिजन जानते हैं। आप भक्तों की आर्ति का हरण करने वाले, शरणागत जीवों को सुखी करने वाले तथा मोह के मूल भय और कष्ट का नाश करने वाले हैं।

दो०– नाथ कछुक पूछन चहौं, सकुचि हृदय रहि जाँव।
आयसु होय तो कहहुँ अब, बार बार परि पाँव॥३४॥क॥

हे नाथ! मैं आपसे कुछ पूँछना चाहता हूँ परन्तु हृदय में संकोच का अनुभव कर रह जाता हूँ यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आपके चरणों में बारम्बार प्रणाम कर कुछ निवेदन करूँ।

पवन तनय के वचन सुनि, बोले लखन उदार।
कछु अदेय नहिं तोहि मोहिं, संतत ऋणी बिचार॥ख॥

पवन नन्दन श्री हनुमानजी के वचनों को सुनकर उदार शिरोमणि श्री लक्ष्मण कुमार जी बोले हे श्री हनुमान जी! मेरे समीप ऐसी कोई वस्तु नही है जो आपके लिये न देने योग्य हो, आप मुझे अपना चिर ऋणी ही समझिये।

त्यागि सकुच पूछहु तुम बाता। सुनि हनुमान पूछ हरषाता॥
रिपु रण जीति राम जब आये। भरत मिलन लखि सब सकुचाये॥

आप संकोच त्यागकर अपने मन की जिज्ञासा का निराकरण कर लें, तब श्री हनुमानजी ने हर्षित होकर पूछा। हे नाथ! जब श्रीरामजी महाराज युद्ध में शत्रु–दल को जीत कर श्री अयोध्यापुरी

वापस आये उस समय श्री रामजी महाराज और श्री भरत लाल जी के मिलन को देख हम सभी संकुचित हो गये थे।

भरत प्रेम लखि बज्र कठोरा। द्रवहिं यथा लखि भानुहिं ओरा॥
प्रीति रीति मातन कर देखी। मानेउ अपनी सुकृति विशेषी॥

उस समय भइया श्री भरत लाल जी के प्रेम को देखकर वज्रवत कठोर हृदय भी उसी प्रकार द्रवित हो गये थे जैसे सूर्य को देखते ही बर्फ का गोला (ओला) गल जाता है। पुनः सभी माताओं की प्रीति पद्धति देखकर मैंने उसे अपना विशेष भाग्य ही समझा।

प्रिय पुरजन महिसुर मुनिराऊ। पुनि परिवार प्रजा समुदाऊ॥
जनक राय सह मिथिला वासी। प्रेम मूर्ति जनु सहज प्रकाशी॥

पुनः श्री अयोध्यापुरी के परम प्रिय पुरजनों, ब्राह्मणों, मुनियों, परिवार–जनों, प्रजाजनों तथा श्री जनकजी महाराज सहित सभी मिथिलापुर वासियों, जो मानों प्रेम की मूर्ति और सहज ही प्रकाशवान हैं,

परम प्रेम लखि सब कर स्वामी। ज्ञानिन हिये प्रीति अति जामी॥
पै लक्ष्मीनिधि प्रीति विलोकी। अति विचित्र हिय रुकत न रोकी॥

उनके प्रेम को देखकर तो हे नाथ! ज्ञानियों के हृदय में भी अत्यधिक प्रीति उत्पन्न हो गयी थी। परन्तु कुवँर श्री लक्ष्मीनिधिजी की अत्यन्त अद्‌भुत प्रभु प्रीति को देखकर तो हृदय उनकी ओर आकर्षित होने से रोकने पर भी नहीं रुक रहा था।

जनक सुवन लखि सब खिंचि जावै। तन मन बुधि अह तहाँ पठावैं॥
सबहिं प्राण प्रिय जनक कुमारा। सीय राम तेहिं तन मन वारा॥

उस समय जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर सभी लोग उनकी तरफ स्वयं ही आकर्षित हो जाते थे तथा अपने शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार को उनकी ओर प्रेषित कर देते थे। जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी सभी लोगों को प्राणों से प्रिय हैं एवं श्री सीताराम जी महाराज ने तो अपना शरीर, मन व सर्वस्व ही उन पर निछावर कर दिया है।

करत सुरति भूलत सब भाना। अस कहि धरणि गिरे हनुमाना॥
लखन परस लहि भये सचेतू। पाणि जोरि बोले कपि केतू॥

उनका स्मरण करते ही सम्पूर्ण स्मृति ही भूल जाती है ऐसा कहकर श्री हनुमानजी चेतना रहित हो भूमि में गिर पड़े। पुनः श्री लक्ष्मण कुमार जी के स्पर्श को पाकर चेतना युक्त हुए तब कपिध्वज श्री हनुमानजी हाथों को जोड़कर बोले–

दो०–जनक सुवन अरु राम की, प्रीति प्रतीति सुरीति।
विधि हरि हर नहिं कहि सकैं, शारद शेष सुकीर्ति॥३५॥

हे नाथ! जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी व श्रीरामजी महाराज की पारस्परिक प्रीति, प्रतीति, सुरीति और सुन्दर कीर्ति का बखान श्री ब्रह्माजी, श्री विष्णुजी, श्री शंकरजी, श्री सरस्वतीजी व श्री शेषजी भी नहीं कर सकते।

ताते विनय करौं कर जोरी। पुरवहु नाथ हृदय रुचि मोरी॥
सीय राम यश मिश्रित नाथा। श्री निधि जन्म कर्म शुचि गाथा॥

इसलिए हे नाथ! मैं हाथ जोड़कर आपसे विनय कर रहा हूँ कि आप मेरे हृदय की अभिलाषा को पूर्ण कीजिये तथा श्री सीताराम जी महाराज की कीर्ति से समन्वित मिथिलापुरी के युवराज श्री लक्ष्मीनिधिजी के जन्म कर्म की पवित्र कथा––

करि अ ति कृपा सुनावहु मोही। बन्दहुँ बार बार प्रभु तोही॥
मिथिपुर पहुँच श्री राम कृपाला। श्री निधि लखि जिमि भये निहाला॥

––अत्यन्त कृपा कर आप मुझे सुना दीजिये, हे नाथ! मैं आपकी बार बार वन्दना करता हूँ। श्री मिथिलापुरी पहुँच तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी को देखकर परम कृपालु श्रीरामजी महाराज जिस प्रकार भाव विभोर व पूर्णकाम हुए।

मिथिला मधि पुनि राम विहारा। जनक सुवन सह प्रेम पसारा॥
भ्रात भगिनि की प्रीति सुहाई। श्याल भाम ममता अधिकाई॥

पुनः जिस प्रकार श्री मिथिलापुरी में कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि के साथ श्रीरामजी महाराज का प्रेम पूर्वक विहार हुआ, भाई बहन (श्री लक्ष्मीनिधिजी व श्री सीताजी) की जिस प्रकार सुन्दर पारस्परिक प्रीति थी, साले–बहनोई (श्री लक्ष्मीनिधिजी व श्रीरामजी महाराज) का एक दूसरे के प्रति जैसा महान प्रेम था,

करि विवाह रघुवर जब आये। श्री निधि विरह विपति कस छाये॥
द्वादश वरष राम जन त्राता। अवध वसत मिथिला सुख ब्राता॥

तथा जब श्रीरामजी महाराज श्री सीताजी के साथ विवाह कर श्री अयोध्यापुरी आ गये तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी किस प्रकार विरह की दुखप्रद अवस्था में समाये रहे, बारह वर्षों तक स्वजन रक्षक, सुख संविधायक श्रीरामजी महाराज श्री अयोध्या व श्री मिथिलापुरी में निवास करते हुए–

मम मातुल लक्ष्मीनिधि संगा। कियो चरित किमि प्रेम अभंगा॥
पितु आज्ञा अपने सिर धारी। गे वन राम लखन सिय प्यारी॥

––मेरे मामा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि के साथ अविरल प्रेममयी लीलायें किस प्रकार किये पुनः जब अपने माता पिताजी की आज्ञा स्वीकार कर श्रीरामजी महाराज, श्री लक्ष्मण कुमार जी तथा प्राण प्रियतरा श्री सीताजी सहित वन को प्रस्थान कर गये,

श्री निधि दशा कहहिं प्रभु गाई। चित्रकूट जिमि गे अकुलाई॥
रघुवर सियकर मिलन वियोगा। मिथिला वसि जस त्याग्यो भोगा॥

तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी की उस अवस्था का वर्णन करें, जिस प्रकार वे आकुलता पूर्वक चित्रकूट पहुँचे, वहाँ श्रीरामजी व श्री सीताजी से उनका मिलन व पुनः वियोग हुआ तथा श्री मिथिलापुरी में निवास करते हुए भी वे जिस प्रकार सभी प्रकार के सुखदायी भोगों का त्याग किये रहे।

दो०–असुर जीति जिमि अवधपुर, आये सिय युत राम ।
जनक सुवन रघुवीर की, मिलनि प्रीति अभिराम ॥३६॥क॥

पुनः असुरों को जीतकर जिस प्रकार श्री सीताजी सहित श्रीरामजी महाराज श्री अयोध्यापुरी आये व श्रीरामजी महाराज का कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी के साथ सुन्दर प्रेम पूर्ण मिलन हुआ।

सुनहु नाथ श्री मुख सुनन, चाह हृदय अधिकाय ।
यथा प्रोषिता वृत्त पति, सुनन हेतु अकुलाय ॥ख॥

हे नाथ! उन सभी चरित्रों को आपके श्री मुख से श्रवण करने की इच्छा मेरे हृदय में उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त हो रही है जैसे पति वियोगिनी स्त्री अपने पति का समाचार सुनने को आकुल होती है।

चरित रहस्य सुनाइय देवा । श्याल भाम की प्रीति प्रभेवा ॥
तत्व सहित जिमि रघुपति लीला । जानहिं कुँवर सरस सुख शीला ॥

हे देव! श्याल–भाम श्री लक्ष्मीनिधिजी व श्रीरामजी महाराज की प्रेम से परिपूर्ण चरित्र के रहस्य को आप मुझे सुनाने की कृपा करें। पुनः कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी जिस प्रकार श्रीरामजी महाराज की रसमयी व सुख प्रदायक लीलाओं को तत्व सहित जानते हैं,–––

जनक सुवन गुण ज्ञान विरागा । बरणहु कर्म रहस्य विभागा ॥
योग त्याग बल बुधि चतुराई । विद्या विनय सुशीतलताई ॥

–––तथा जनक नन्दन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के गुण, ज्ञान, वैराग्य व कर्म के रहस्य प्रकरण का वर्णन करें। उनके योग, त्याग, बल, बुद्धि, चतुरता, विद्या, विनय एवं उद्वेग विहीनता आदि गुणों व–

औरहु गुप्त प्रगट इतिहासा । जो नहिं प्रश्न कियो प्रभु पासा ॥
किंकर मोहिं आपनो जानी । कहिय सकल सुन्दर सुखखानी ॥

––अन्यान्य गुप्त प्रगट कथानक के उन सभी सुख–खानि व सुन्दर चरित्रों को जिसका प्रश्न मैंने नाथ के समीप नहीं किया, अपना सेवक समझकर आप मुझसे बखान करें।

पूरब जनम कौन वपु वारे । देव सिद्ध मुनि जगत मझारे ॥
लक्ष्मीनिधि कर पेखि प्रभाऊ । मन न जाय करि कोटि उपाऊ ॥

वे पूर्व जन्म में देवता, सिद्ध अथवा मुनि किस रूप से संसार में शरीर धारण किये थे। क्योंकि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी के प्रभाव को देखकर मेरा मन करोड़ों उपाय करने पर भी उनसे अन्यत्र नहीं जाना चाहता––

ताते पुनि पुनि कहौ निहोरी । श्री निधि प्रेम मोरि मति बोरी ॥
श्रवण सुखद दायक प्रभु प्रीती । कहिय कथा सिय भ्रात सुरीती ॥

तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी के प्रेम में मेरी बुद्धि आप्लावित है इसलिए मैं आपसे बारम्बार विनय कर रहा हूँ कि श्री सीता जी के बड़े भइया युवराज श्री लक्ष्मीनिधिजी की श्रवण सुखदायिनी

व भगवत्प्रेम प्रदायिनी गाथा का सुन्दर रीतिपूर्वक बखान करें।

दो०—विनय शील शुचि सुख सनी, श्रवति कुवँर अनुराग ।
पवन तनय वर वानि सुनि, हरषे लखन सुभाग ॥३७॥क॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधिजी के अनुराग से परिपूरित पवन नन्दन श्री हनुमानजी की विनय, शील व सुख से सनी हुई पवित्र सुन्दर वाणी को श्रवणकर परम सौभाग्यशाली श्री लक्ष्मण कुमार जी हर्ष से भर गये।

प्रीति पगे निमिकुँवर के, लागी भाव समाधि ।
कछुक काल चित चेत लहि, बोले वचन सुसाधि ॥ख॥

निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधिजी के प्रेम में डूब जाने से श्री लक्ष्मण कुमार जी की भाव समाधि लग गयी। पुनः कुछ समय बाद चित्त में चैतन्यता प्राप्त कर वे अपने वचनों को सम्हालकर बोले—

पवन तनय धनि प्रेम अगारा । चरित श्रवण तव प्राण अधारा ॥
जनक सुवन शुभ चरित सुहायो । मोरे हिय स्मरण करायो ॥

हे प्रेमागार पवन नन्दन श्री हनुमान जी! आप धन्य हैं, प्रभु श्रीरामजी महाराज के चरित्रों को श्रवण करना ही आपके प्राणों का आधार है। आपने जनक नन्दन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शुभ व सुन्दर चरित्रों का मेरे हृदय में स्मरण कराया है।

जासु चरित सुनि राम गोसाईं । प्रेममगन सब सुधि बिसराई ॥
भक्त चरित रामायण जानौ । जहाँ रहत प्रभु प्रेम पिछानौ ॥

श्रीरामजी महाराज जिनके (कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के) चरित्रों को श्रवणकर प्रेम में मग्न हो अपनी सम्पूर्ण स्मृति भूल जाते हैं। हे तात हनुमान! सुनिये, आप भक्तों के चरित्र को ही श्रीरामजी महाराज का चरित्र समझिये, जिनमें सर्वत्र भगवान का प्रेम ही विस्तृत रूप से परिव्याप्त रहता है।

राम चरित भक्तायन गुनहू । संशय एकन मन महँ मनहू ॥
लक्ष्मीनिधि रस लीला भाई । जानहिं राम रसिक रघुराई ॥

पुनः आप श्रीरामजी महाराज के चरित्रों को भक्तों का चरित्र ही समझिये, इस तथ्य के प्रति अपने मन में एक भी सन्देह मत मानिये। हे भाई! श्री लक्ष्मीनिधिजी के रसमय चरित्रों को तो यथार्थतया रसिक श्रेष्ठ श्रीरामजी महाराज ही जानते हैं।

राम हृदय नित वसत कुमारा । सत्य सत्य सुन वचन हमारा ॥
राम प्रेममय सुभग शरीरा । प्रभुहिं सुमिरि द्रुत होत अधीरा ॥

क्योंकि कुमार श्रीलक्ष्मीनिधिजी श्रीरामजी महाराज के हृदय में निवास करते हैं, आप हमारे सर्वथा सत्य वचनों को श्रवण करें कि— कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का सुन्दर शरीर श्रीरामजी महाराज के प्रेम से ही निर्मित है तथा वे प्रभु श्रीरामजी महाराज का स्मरण करते ही शीघ्र व्याकुल हो उठते हैं।

दो०– योग ज्ञान वैराग्य वर, वसत हिये करि ठौर ।
राम कृपा शुभ गुण सदन, किंचित रहत न और ॥३८॥क॥

उनके हृदय में योग, ज्ञान व श्रेष्ठ वैराग्य अपना आवास बनाकर निवास करते हैं तथा श्रीरामजी महाराज की कृपा से वे शुभ गुणों के आगार ही बने हुए हैं, उनमें अन्य कुछ भी दिखायी नहीं देता है।

गुप्त प्रकट तिनके चरित, रहनि विवेक विराग ।
हरि रस प्रिय पागे कहहुँ, सुनत होहिं अनुराग ॥ख॥

मैं उन्हीं युवराज कुमार श्रीलक्ष्मीनिधिजी के गुप्त व प्रगट दोनों प्रकार के चरित्रों तथा ज्ञान व वैराग्य पूर्ण रहनी का श्रीरामजी महाराज के प्रेम रस में मग्न होकर वर्णन कर रहा हूँ जिसे सुनते ही श्री राम जी के चरणों के प्रेम की प्राप्ति होती है।

यागवलिक मुनिवर विज्ञानी । परम तत्व वक्ता रसखानी ॥
राम तत्व रत परम प्रवीरा । लीला रहस विवेक सुधीरा ॥

मुनियों में श्रेष्ठ, परम विज्ञानी श्री याज्ञवल्क्यजी महाराज जो परम तत्व के वक्ता, रस की खानि, श्रीराम तत्व में सदैव निरत रहने वाले, परम दक्ष, भगवल्लीला रहस्य के ज्ञाता, महान ज्ञानी व परम धैर्यवान हैं।

तिन प्रसाद सब मैथिल राजा । गृहहिं भये योगिन सिरताजा ॥
सो मुनि जनकहिं कहा बुझाई । श्री निधि जन्म कर्म हरषाई ॥

उनके कृपा प्रसाद से श्री मिथिलापुरी के सभी राजा अपने भवनों में निवास करते हुए भी योगियों के शिरताज बने हुए हैं। उन्ही मुनिवर श्री याज्ञवल्क्यजी ने हर्षित होकर श्री जनकजी महाराज से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के जन्म कर्म की गाथा समझाकर बखान की है।

को हैं राम कौन सिय भाई । कवन भूमिजा अति सुखदाई ॥
लक्ष्मीनिधि सह राम चरित्रा । आदि अन्त लौ कहेव पवित्रा ॥

श्री रामजी महाराज कौन हैं? श्री सीताजी के भइया श्री लक्ष्मीनिधिजी कौन हैं? व अत्यन्त सुख प्रदान करने वाली भूमिजा श्री सीताजी कौन हैं? एवं श्री लक्ष्मीनिधिजी सहित श्रीरामजी महाराज के प्रारम्भ से अन्त तक (जन्म से प्रयाण तक) के पावन चरित्र का मुनिवर श्री याज्ञवल्क्य जी नें श्री जनक जी महाराज से बखान किया है।

भूत भविष सुनि चरित महीपा । जाने दोउ कहँ दोउ कुल दीपा ॥
सोइ चरित्र प्रिय मातु सुनयना । दीन्ह कौशिलहिं उर अति चयना ॥

श्री जनक जी महाराज ने उस परम पावन चरित्र के भूत और भविष्य के प्रकरणों को सुनकर दोनों (श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मीनिधिजी) को, दोनों कुलों (रघुकुल और श्री निमिकुल) का प्रकाशक समझ लिया था। पुनः अम्बा श्री सुनयना जी नें वही प्रियकर चरित्र श्री कौशिल्या अम्बाजी को हृदय में आनन्दित हो प्रदान किया।

दो०–रघुकुल मणि निमि वंश मणि, पावन चरित उदार।
सुनिय सुमति सोइ कहहुँ, रसमय पवन कुमार ॥३९॥

मैं रघुकुल भूषण श्रीरामजी महाराज व निमिकुल के अलंकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी के उसी पावन और उदार चरित्र का बर्णन कर रहा हूँ, हे परम बुद्धिमान, रसस्वरूप पवन नन्दन श्री हनुमान जी! आप श्रवण करें।

योगिराज मिथिलेश कथानक। भनित लखन धारी कपि गानक ॥
सीय मातु रघुवीर सुमातहिं। यथा सुनायो चरित उदातहिं ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– योगिराज श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज व श्री जनक जी महाराज द्वारा कही व सुनी गयी कथावस्तु, श्री लक्ष्मण कुमार जी व श्री हनुमान जी द्वारा बखान किया व धारण किया गया कथानक तथा श्री सिया जी की अम्बा श्री सुनयना जी ने श्री रामजी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्याजी को जिस प्रकार का चरित्र, उदारता पूर्वक सुनाया था।

वरणहुँ सोइ हरि कथा प्रसंगा। सुनहु सुजन तजि संसृत संगा ॥
परम रम्य मिथिला शुचि नगरी। लोटत मुक्ति जहाँ प्रति डगरी ॥

मैं श्रीरामजी महाराज के उसी कथा प्रकरण का वर्णन कर रहा हूँ, हे सज्जनों! आप संसार से असंग होकर उसे श्रवण करें। एक अत्यन्त ही सुन्दर व पवित्र श्री मिथिला नगरी है जहाँ प्रत्येक गली में मुक्ति देवी लोटती रहती है अर्थात् वहाँ मुक्ति सहज ही सर्व सुलभ है।

मृत्यु बँधी तहँ हाय पुकारति। अमृतमय सब पुरी निहारति ॥
भगति ज्ञान वैराग्य सुत्यागा। वसैं पुरी कीन्हें अति रागा ॥

वहाँ पर मृत्यु बँधी हुई है और सम्पूर्ण मिथिलापुरी को अमृत स्वरूपा देखकर हाय! हाय! पुकारती रहती है। श्री मिथिलापुरी में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और त्याग अत्यन्त आसक्ति पूर्वक निवास करते हैं।

भाग विभव लखि सुन्दरताई। इन्द्र पुरी शत शत बलि जाई ॥
प्रति प्रभा किमि कहौं बखानी। पुर वैकुण्ठ छटा छहरानी ॥

वहाँ के भाग्य, वैभव और सुन्दरता को देखकर इन्द्र पुरी की शत गुणित शोभा भी उस पर बलिहार जाती है। वहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता का मैं किस प्रकार बखान करूँ, ऐसी प्रतीति होती है कि वहाँ पर साक्षात वैकुण्ठ का सौन्दर्य ही विखरा हुआ है।

सब विधि पुरी सराहन योगू। सत चित आनन्दमय सब भोगू ॥
तेहिं पुर रहैं सीरध्वज राजा। अगणित राज साज सह भ्राजा ॥

श्री मिथिलापुरी सभी प्रकार से प्रसंशा के योग्य है एवं वहाँ के सभी भोग सच्चिदानन्दमय हैं। उस दिव्य पुरी में श्री शीलध्वज जी नाम के महाराज अनगिनत राज्योचित सामग्री सहित विभ्राजमान हैं।

जासु सुयश श्रुति संतहुँ टेरे। मिलै न तुल्य जगत महँ हेरे ॥
परम सती मिथिलेश्वर नारी। नाम सुनयना सुकृत सम्हारी ॥
जनक पाट महिषी सुख अयना। रूप राशि शुभ गुण वर बयना ॥

जिनके सुन्दर कीर्ति के सम्बन्ध में श्रुतियों और सन्तों ने पुकार कर कहा है कि इनकी समता का अन्य कोई, सम्पूर्ण संसार में ढूढ़ने पर भी नहीं प्राप्त होगा। श्री मिथिलेश्वरजी की महारानी परम पति–परायणा व सुकृत सम्पन्ना हैं जिनका नाम श्री सुनयना जी है। श्री जनकजी महाराज की पटरानी श्री सुनयनाजी समस्त सुखों की आगरी, रूप की राशि, शुभ गुण संयुक्ता तथा मधुर वाणी परिपूर्णा हैं।

दो०– करत राज नृप नीति वर, प्रजहिं पुत्र सम जान।
अर्थ धर्म कामादि फल, सेवहिं सबै समान ॥४०॥

श्री जनक जी महाराज अपनी प्रजा को पुत्र के समान समझकर नीति पूर्वक राज्य शासन करते हुये अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष आदि चारों फलों का समान रूप से सेवन करते हैं।

राज करत बीते बहु काला। श्रुति आयसु सब विधि प्रतिपाला ॥
अब लगि पुत्र लाभ नहिं भयऊ। तदपि न सुवन चाह हिय ठयऊ ॥

इस प्रकार श्रुतियों की आज्ञा का सभी प्रकार प्रतिपालन करते हुए, श्री विदेहराज जी महाराज को राज्य कार्य संचालन करते हुये बहुत समय बीत गया, परन्तु अभी तक पुत्र की प्राप्ति न होने पर भी उनके हृदय में पुत्र पाने की कोई इच्छा नहीं उत्पन्न हुई।

चाह अचाह राग नहिं दोषा। शम दम शील शान्ति संतोषा ॥
बनि अकाम परजन प्रति पालैं। हरष विषाद नेक नहि सालैं ॥

श्री जनक जी महाराज में इच्छा, अनिच्छा व आसक्ति आदि दोष नहीं हैं, वे शम, दम, शील, शान्ति और संतोष से युक्त होकर निष्काम भाव से प्रजा का पालन करते थे, हर्ष तथा शोक कभी किंचित भी भी उनके हृदय का स्पर्श नहीं करते थे।

विधि विधान अति ही बलवाना। मातु सुनयना गर्भ लखाना ॥
परम तेज कछु वरणि न जाई। सुखमय शान्ति सुभग सरसाई ॥

परन्तु विधि का विधान अत्यन्त ही बलशाली होता है, श्री सुनयना अम्बाजी को गर्भ के लक्षण अनुभव मे आये। श्री अम्बाजी के उस समय के महान तेज का वर्णन नहीं किया जा सकता, वे सुख में सनी, शान्ति से संयुक्त, सुन्दर व प्रसन्नमना दिखायी पड़ती थीं।

हरि पद प्रेम दिनहिं दिन बाढ़ै। रूप शील मन मोदहिं माढ़ै ॥
दिव्य दिव्य सपने शुभ होवै। कबहुँ ध्यान हरि रूपहिं जोवैं ॥

उनके हृदय में भगवान के चरणों का प्रेम दिन प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हो रहा था तथा रूप, शील और आनन्द ने उनके मन को आवृत्त कर लिया था। उन्हें शुभदायक व दिव्य व विलक्षण स्वप्न होने लगे थे और कभी कभी ध्यान में भगवान के स्वरूप का भी उन्हे दर्शन होता था।

दो०–पंच अंग पचांग के, शुभदायक सुख मूल ।
कहा कहिय जग जीव यत, भये सकल अनुकूल ॥४१॥

इस प्रकार जब समय प्राप्तकर पंचाग के पाँचों अंग (योग, लग्न, गृह, वार व तिथि) शुभ फल प्रदान करने वाले तथा सुखों के मूल हो गये। कहाँ तक कहा जाय कि– संसार में जितने भी जीव हैं वे सभी परस्पर के अनुकूल बन गये अर्थात् प्रेम परिपूर्ण हो गये।

जेठ मास सित पक्ष सुहावन । पूर्णातिथि पंचमि प्रिय पावन ॥
रविकर उदय काल जब आवा । मृदु प्रकाश तम तुरत नशावा ॥

उस समय ज्येष्ठ महीने का सुन्दर शुक्ल पक्ष, उस पर प्रिय और पवित्र पूर्ण पंचमी तिथि को भगवान सूर्य देव के उदय होने का जैसे ही समय आया, वैसे ही एक मधुर प्रकाश ने सम्पूर्ण अधंकार को शीघ्रतापूर्वक विनष्ट कर दिया।

त्रिविध समीर बहै सुखदाई । त्रिभुवन स्वस्थ शान्ति सरसाई ॥
हरि सुमिरण शुभ समय अनूपा । चिन्तहिं सब कोउ ब्रह्म स्वरूपा ॥

तीनों प्रकार की वायु (शीतल, मन्द व सुगन्धित) सुख प्रदान करती हुई प्रवहमान होकर तीनों लोकों में स्वस्थता, शन्ति व सुख का संचार करने लगी। भगवान को स्मरण करने का अनुपमेय शुभ समय है जिसमें सभी लोग ब्रह्म चिन्तन कर रहे हैं।

मन प्रसन्न सब दिशा विभागा । सबके हृदय सहज सुख जागा ॥
गृही विरत लखि संत अवाई । जिमि प्रमोद तिमि जगत जनाई ॥

सभी लोगों के मन प्रसन्न व सम्पूर्ण दिशायें सुखमयी हो गयी हैं, सभी के हृदय में सहज ही सुख जागृत हो गया है। संतों के आगमन से जिस प्रकार गृहस्थ और विरक्त सभी आनन्दित होते हैं यह संसार उसी प्रकार का आनन्दित दिख रहा है।

नभ प्रसून झरि जय जय वानी। देखी सुनी सबहिं सुखमानी ॥
दुन्दुभि स्वर आकाश अमायो । जननि सुनयना तब सुत जायो ॥

ऐसे समय में आकाश से फूलों की विपुल वर्षा के साथ जय–जय ध्वनि हुई जिसको देख व सुनकर सभी ने महान सुख का अनुभव किया उसी समय देवताओं द्वारा किया हुआ दुन्दुभी घोष सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त हो गया तभी श्री सुनयना अम्बाजी ने एक अतिशय सुन्दर पुत्र को जन्म दिया।

दो०–जन्म समय शुभ कक्ष महँ, छायो शुभ्र प्रकाश ।
नशे अविद्या होत जिमि, हिय महँ ज्ञान उजास ॥४२॥

जन्म समय में उस शुभ कक्ष में दिव्य श्वेत वर्ण का प्रकाश छा गया जैसे अविद्या के नष्ट हो जाने पर हृदय में ज्ञान का आलोक परिव्याप्त हो जाता है।

जनमत ही शिशु गिरा उचारी। सीय राम जै राम सिया री ॥
कहाँ कहाँ करि रोवन लाग्यो। इष्ट वियोगी जनु दुख दाग्यो ॥

जन्म लेते ही शिशु ने सीताराम, जै सीताराम शब्द का प्रथम उच्चारण किया और पुनः कहाँ कहाँ कह कर रुदन करने लगा मानो वह अपने इष्ट के वियोग जनित दुख में जल रहा हो।

मातु सुनयनहिं लखि शिशु रूपा। उपजेउ वत्सल भाव अनूपा ॥
समाचार पुर वासिन पाये। लागे घर घर होन बधाये ॥

शिशु के सुन्दर स्वरूप को देखकर अम्बा श्री सुनयनाजी के हृदय में अनुपमेय वात्सल्य भाव जागृत हो गया। श्री मिथिलापुर निवासियों ने राज महल में पुत्र जन्म का समाचार पाया और प्रत्येक घर में बधाई उत्सव होने लगे।

पुत्र जन्म सुनि निमिकुल भूषण। बेगि बुलायो ऋषि कुल पूषण ॥
यागवलिक अरु गौतम पूता। आये सह शुचि शिष्य बहूता ॥

निमिकुल भूषण महाराज श्री जनकजी ने पुत्र जन्म का समाचार सुनकर ऋषि कुल के सूर्य अपने आचार्यवर को शीघ्र ही बुलवा भेजा। अनन्तर निमिकुल आचार्य श्री याज्ञवल्क्यजी व श्री गौतम ऋषि के पुत्र श्री सतानन्दजी अपने बहुत से पवित्र शिष्यों के साथ राजमहल आ गये।

लहि सनमान जन्म गृह जाई। सहित राव देखे सुतकाई ॥
गौर शरीर तेज भल भ्राजा। ऊर्ध्व पुण्ड सिर सुभग विराजा ॥

श्री जनकजी महाराज से सम्मान प्राप्त कर तथा जन्म कक्ष में जाकर उन्होने श्री जनकजी महाराज सहित जातक (शिशु) का अवलोकन किया। बालक गौर वर्ण व सुन्दर तेज से सुशोभित हो रहा था तथा उसके शिर में सुन्दर ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक लगा हुआ था।

दो०—रामायुध चिन्हित लसत, दोनो बाहु अजानु।
रूप राशि निमिलाल लखि, उमग्यो मोद महान ॥४३॥

उनकी दोनों भुजाएँ श्री राम जी महाराज के आयुधों (धनुर्बाण) से चिन्हित, बड़ी–बड़ी (जानु पर्यन्त) व परम सुशोभना थीं। ऐसे रूप की राशि श्री निमिकुल भूषण जनकजी महाराज के "लालन" को देखकर सभी के हृदय में महान आनन्द उमड़ पड़ा।

जात कर्म सब मुनि करबावा। यथा रीति वर वेदन गावा ॥
दान अनेक दिये दै माना। हय गय रथ मणि बहुत विधाना ॥

मुनिवर श्री याज्ञवल्क्य जी ने बालक के सभी जन्म के संस्कार विधि पूर्वक वेद वर्णित पद्धति से करवाये और श्री जनकजी महाराज ने सम्मान पूर्वक अनेक घोड़े, हाथी, रथ, मणियाँ आदि बहुत प्रकार से दान दिया।

भूमि धेनु रस अन्न सुवासन। वस्त्र विभूषण दिय सिंहासन ॥
सुर महिसुर मुनिजन पुरवासी। पाये सब सनमान सुपासी ॥

महाराज ने भूमि, गौ, बहुमूल्य द्रव (रस), अनाज, बर्तन, वस्त्र, आभूषण व सिंहासन आदि विविध वस्तुओं का दान दिया। उस समय देवताओं, ब्राह्मणों, मुनियों तथा पुरवासियों सभी ने समुचित सम्मान व सम्यक सुविधाएँ प्राप्त की।

याचक सूत बन्दि गुण गायक । भे मन काम हर्ष बहुतायक ॥
वाद्य बहुत विधि बाजहिं झारी । सोहिल गान मगन नर नारी ॥

याचक (मँगने), सूत, बन्दी तथा गुणों का गान करने वाले (गवैये) आदि सभी अपनी–अपनी इच्छाओं से पूर्ण हो अत्यन्त हर्ष प्रपूरित हो गये। वहाँ सभी प्रकार के वाद्य, विविध भाँति से बजने लगे तथा स्त्री–पुरुष सोहिल गीतों के गाायन में मग्न हो गये।

सींची अतरन गली सुहाई । मणिन चौक पूरी रुचिराई ॥
नगर नारि नर आवहिं द्वारा । मंगल वस्तु लिये कर थारा ॥

श्री मिथिलापुरी में इत्र से सिंचे हुये मार्ग बड़े ही सुशोभन लग रहे हैं जिनमें मणियों की मांगलिक चौके (रंगोलियाँ) बड़ी सुन्दरता के साथ पूरी हुई हैं। श्री जनक नगर के स्त्री व पुरुष हाथों में मांगलिक द्रव्यों के थाल लिये हुए राजमहल के द्वार पर आ रहे हैं।

लै लै ढोव नृपति बहु आये । करि करि व्यय आनन्द मनाये ॥
सुनि शिशु जन्म प्रजा हरषानी । प्रति गृह मंगल जस घर रानी ॥

विभिन्न देशों के बहुत से राजा गण, बधावा हेतु बहुमूल्य सामग्री ले लेकर आये और बहुत सा धन खर्च कर आनन्दोत्सव मनाया। श्री जनकजी महाराज के पुत्र–जन्म का समाचार सुनकर सम्पूर्ण प्रजा हर्षित हो गयी। उस समय प्रत्येक घर में उसी प्रकार मांगलिक गीत व बधाई उत्सव हो रहे थे जैसे महारानी श्री सुनयनाजी के भवन में बधाइयाँ हो रही थीं।

दो०– नभ प्रसून झरि वाद्य ध्वनि, नगर महा उत्साह ।
जिमि पूनो को चन्द लखि, उमगत सिन्धु अथाह ॥४४॥

आकाश से विभिन्न प्रकार की वाद्य ध्वनियों के साथ फूलों की विपुल वर्षा हो रही थी। इस प्रकार सम्पूर्ण श्री मिथिला नगरी में उसी प्रकार महान उत्साह छाया हुआ है जैसे पूर्णिमा के चन्द्रमा को देख कर उत्साहित हो अगाध समुद्र उमड़ पड़ता है।

छं०– नभ पुष्प वरषत देव सब, प्रमुदित निशान बजावहीं ।
सियराम सेवक जानि जिय, जय जयति सबन सुनावहीं ॥
पुर होत मंगल गान शुभ, प्रमदा हरष नहिं कहि परै ।
द्विज वेद बोलत बन्दि विरदहिं, धुनि सुहावन मन भरै ॥१॥

सभी देवता प्रसन्न होकर नगाड़े बजाते हुए आकाश से फूलों की वर्षा कर रहे हैं तथा हृदय में श्री जनक नन्दन जी को श्री सीताराम जी महाराज का अनन्य सेवक समझकर वे जय ध्वनि करते हुये सभी के श्रवणों में आनन्द उड़ेल रहे हैं। श्री जनकपुरी में शुभ व मांगलिक गीत हो रहे हैं तथा पौरांगनाये ऐसी हर्ष प्रपूरित हैं कि उनके हर्ष का बखान ही नहीं किया जा सकता। ब्राह्मण सस्वर वेद

पाठ कर रहे हैं तथा बन्दीजन विरुदावली की सुन्धर ध्वनि से सभी के मन को आपूरित किये दे रहे हैं।

बहु भाँति बाजत वाद्य वर, छायो नगर उत्सव महा ।
धनि भूप शोभिल पुत्र प्रिय, पायो पुरहिं सबहिन कहा ॥
दिन रात आनन्द मग्न सब, नित विविध दान लुटावहीं ।
जन राम हर्षण दास लखि, किलकारि सुख सरसावही ॥२॥

विविध प्रकार से सुन्दर वाद्य बज रहे हैं इस प्रकार श्री जनक नगर में महान महोत्सव छाया हुआ है। महाराज श्री जनक जी धन्य हैं, जिन्होंने परम शोभा सम्पन्न प्रिय पुत्र प्राप्त किया है, ऐसा सभी मिथिलापुर वासी कह रहे हैं। दिन रात आनंद में मग्न होकर सभी जन नित्य प्रति विभिन्न प्रकार के दान लुटाते हैं तथा वे श्रीरामजी महाराज को हर्ष पहुँचाने वाले सेवक को देख–देख व उनकी किलकारियाँ सुन–सुन कर सुख से फूले जा रहे हैं।

सो०–यहिं विधि होत उछाह, अहनिशि नहिं जानौ परै ।
लोगन महा उमाह, भये कुँवर मिथिलेश के ॥४५॥

श्री मिथिलापुरी में आनन्दपूर्वक इस प्रकार का महान महोत्सव हो रहा है जिससे दिन और रात्रि समझ नहीं पड़ रहे। लोगों के मन में महान आनन्द छाया हुआ है कि श्री मिथिलाधिराज महाराज के यहाँ राजकुमार का जन्म हुआ है।

पँचये दिन शिशु सुभग समाधी । सहजहिं लगि सब त्यागि उपाधी ॥
जागबलिक आये सुधि पाई । हरि कीर्तन करि कुँवर जगाई ॥

शिशु जन्म के पाँचवें दिन ही, सभी प्रकार के व्यवधानों (सांसारिक उपाधियों) को त्यागकर, बालक की सहज ही सुन्दर समाधि लग गयी। तब समाचार पाकर श्री याज्ञवल्क्यजी महाराज आये और भगवन्नाम का संकीर्तन कर कुमार को जाग्रत किया।

कह्यो शतानन्दहिं समुझाई । नित हरि चरित सुनावहिं आई ॥
स्वस्थ सदा सत बढ़ै सुभागा । है शिशु सिद्ध सुज्ञान विरागा ॥

पुनः उन्होंने श्री शतानन्दजी से समझाकर कहा कि आप नित्य ही यहाँ आकर भगवान के सुन्दर चरित्र सुनाया करें जिन्हें श्रवण कर निश्चित ही कुँअर के स्वास्थ्य और सौभाग्य की सदैव वृद्धि होगी क्योंकि यह शिशु सिद्ध, सुन्दर ज्ञान व वैराग्य से परिपूर्ण है।

बार बार चरणन धरि माथा । बोले जनक जोरि जुग हाथा ॥
आयसु होय तो करौं ढिठाई । जागवलिक कह सुनु नरराई ॥

निमिकुल आचार्य प्रवर श्री याज्ञवल्क्य जी के वचनों को सुनकर श्री विदेहराजजी महाराज ने बारम्बार उनके चरणों में अपना मस्तक रख प्रणाम किया व दोनों हाथ जोड़कर बोले– हे नाथ! यदि आज्ञा हो तो मैं एक धृष्टता करूँ। तब श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज ने उनके मनोगत भावों को समझकर कहा हे राजन! सुनें–

प्रश्न तुम्हार मोर हिय आवा। चलहु इकान्त उतर सब पावा ॥
अस कहि लै विदेह युत जाया। देश विविक्त बैठ मुनिराया ॥
बोले सरस सुखद वर वानी। भूत भविष की ज्ञान प्रदानी ॥

आपका प्रश्न मेरे हृदय में समझ आ गया है, आप एकान्त में चलें, वहाँ सभी उत्तर पा जायेंगे। ऐसा कहकर श्री याज्ञवल्क्यजी महाराज, श्री विदेहराज जी को उनकी पत्नी श्री सुनयनाजी के साथ लेकर एकान्त स्थल में विराज गये तथा रस से परिपूर्ण, भूत और भविष्य का ज्ञान प्रदान करने वाली सुख प्रद वाणी से बोले–

दो०–सुनहु महीपति कुँवर के, जन्म कर्म हरषाय।
आदि अन्त लौ ध्यान धर, तव बड़ भाग सुभाय ॥४६॥

हे राजन! आपका बड़ा ही सौभाग्य है, आप अपने कुँवर के जन्म कर्म की आद्योपान्त गाथा हर्षित होकर ध्यान पूर्वक श्रवण करें।

सच्चिद मय आकाश महाना। परमानन्द कियो श्रुति गाना ॥
चिदाकाश मधि ऊर्ध सुदेशा। ताहि कहत गोलोक अशेषा ॥

एक महान सच्चिदानन्दात्मक आकाश है जिसे श्रुतियों ने परमानन्द कह कर गायन किया है। उस दिव्य चिदाकाश के मध्य ऊपर की ओर एक सुन्दर देश है जिसे अनन्त गोलोक कहते हैं।

ता बिच सोह सुभग साकेता। अक्षराच्युताऽव्यक्त अजेता ॥
सांतानिक विमला सुअयोध्या। सत्या अपराजिता सुबोध्या ॥

उस गोलोक के मध्य सुन्दर दिव्य "साकेत" सुशोभित है जिसे अक्षर, अच्युत, अव्यक्त, अजेय, सांतानिक, विमला, अयोध्या, सत्या, अपराजिता और सुबोध्या आदि–––

कहहिं नाम श्रुति संत पुराना। प्रकृति पार पर धाम महाना ॥
ताहि सुपूरब मिथिला राजै। वृन्दावन पश्चिम दिशि भ्राजै ॥

–––नामों से श्रुतियाँ, सन्त और पुराण बखान करते हैं, यही प्रकृति से परे महान परम धाम है। साकेत धाम के पूर्व में श्री मिथिला धाम तथा पश्चिम दिशा में श्री वृन्दावन धाम सुशोभित हैं।

उत्तर महा विकुण्ठ सुशोभा। दक्षिण चित्रकूट मन लोभा ॥
ये सब चिदानन्दमय धामा। एक ब्रह्म तहँ लसत ललामा ॥
भगत हेतु बहु रूप बनाई। राजि करत लीला सुखदाई ॥

उत्तर दिशा में महा वैकुण्ठ शोभायमान है व दक्षिण में मनोमुग्धकारी श्री चित्रकूट धाम सुशोभित है। ये सभी सच्चिदानन्दमय धाम हैं जिनमें सुन्दर एक ही ब्रह्म सुशोभित होता है जो अपने भक्तों के लिए बहुत से रूप जैसे राम, कृष्ण, विष्णु आदि बना कर शासन करते हुए सुख प्रदायिनी लीला सम्पादन करता है।

दो०–उच्च धाम साकेत बिच, सुरतरु तर सिय राम ।
रत्न सिंहासन राजते, पूर्ण ब्रह्म सुख धाम ॥४७॥

उस सर्वोच्च धाम "साकेत" के मध्य सुर–वृक्ष (कल्पवृक्ष) के नीचे सुन्दर रत्न सिंहासन में सुख के धाम पूर्णतम परब्रह्म श्री सीताराम जी महाराज सुशोभित होते हैं।

एक ब्रह्म युग रूपहिं भावत । यथा चणक नित द्विदल लखावत ॥
शक्तिमान अरु शक्ति अनूपी । एकहिं दुइ कहि वेद निरूपी ॥

वे दोनो एक ही ब्रह्म होते हुये भी दो रूपों में उसी प्रकार दिखाई पड़ते हैं जैसे चने में सदैव दो दालें दीखती हैं तथा शक्तिमान व उसकी अनुपमेय शक्ति दोनों को वेदों ने एक होते हुए भी दो कहकर निरूपित किया है।

सत अरु असत सूक्ष्म स्थूला । कारण कार्य परावर मूला ॥
निर्गुण सगुण परे परमारथ । जासु नाम शिव जान यथारथ ॥

वे सत्य–असत्य, सूक्ष्म–स्थूल, कारण–कार्य, पर–अवर (श्रेष्ठ–निकृष्ट) और निर्गुण–सगुण के परे परम परमार्थ स्वरूप व सभी के मूल हैं जिनके नाम की महत्ता भगवान श्री शंकर जी यथार्थतः जानते हैं।

सोइ सियराम परात्पर भूपा । द्वादस षोडस समा स्वरूपा ॥
नित्य धाम साकेत विराजैं । निज स्वरूप तन्मय सुख साजैं ॥

वही श्री सीताराम जी जो श्रेष्ठातिश्रेष्ठ शासक और बारह व सोलह वर्षों की अवस्था (किशोरी–किशोर वय) वाले हैं। वे अपने स्वरूप में स्थित होकर नित्य धाम साकेत में विराजते हैं तथा सुख संवर्धन करते रहते हैं।

जेहिं सौन्दर्य पयोनिधि बूँदा । प्रकृति रचै जग छटा सुकूँदा ॥
जेहिं ते उत्पति थिति लय होई । अमित अण्ड श्रुति कहै सुजोई ॥
ज्ञान विराग योग सुख आकर । सब श्रुति शास्त्र कहैं तेहिं गाकर ॥

जिनके सौन्दर्य सागर की बूँद मात्र से प्रकृति, सुन्दर गढ़–गढ़ कर सम्पूर्ण संसार की सुन्दरता का निर्माण करती है, जिनके द्वारा ही असीमित ब्रह्माण्डों की, उत्पत्ति, स्थिति और संहार सुरक्षित है ऐसा श्रुतियों ने बखान किया है तथा जो ज्ञान, वैराग्य, योग व सुखों के भण्डार हैं ऐसा सभी श्रुतियाँ और शास्त्र गा–गा कर बखान करते हैं।

दो०– श्रेय गुणन वारिधि महा, नहिं निकृष्ट गुण एक ।
अवतारी अवतार पर, सीय राम इक टेक ॥४८॥

जो सभी श्रेयस (श्रेष्ठतम) गुणों के महासागर हैं और जिनमें एक भी हेय (निकृष्ट) गुण नहीं है वही अवतारों के भी अवतारी (जिनके अंश से सभी अन्य अवतार अवतरित होते हैं) व जीवों के एक मात्र आश्रय श्री सीताराम जी हैं।

करहिं सेव सब हरि अवतारा। जे ब्रह्माण्ड अनन्त अपारा॥
अमित अण्ड नायक तिरदेवा। सेवहिं खड़े राम रुख लेवा॥

अमित ब्रह्माण्डों में जो भगवान के अनन्त अवतार हैं वे सभी श्री सीताराम जी महाराज की सेवा करते हैं तथा असीमित ब्रह्माण्डों के नायक त्रिदेव (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी) भी श्रीरामजी महाराज की सेवा में उनकी इच्छा को देखते हुए नित्य तत्पर रहते हैं।

अमित लोक लोकप हरि रूपा। सेवहिं सब शुचि भाव अनूपा॥
दासी दास अनन्तहिं जानी। सखी सखा नहिं जाय बखानी॥

असीमित लोकों के लोकपाल जो स्वयं भगवत्स्वरूप ही हैं, वे भी श्री सीताराम जी की, पवित्र सेवा अनुपमेय भाव–पूर्वक करते हैं। श्री सीताराम जी के सेवक और सेविकाएँ अनन्त हैं तथा उनकी सखी–सखाओं का तो बखान ही नहीं किया जा सकता।

करहिं शान्त रस अगणित सेवा। वात्सल रसिक कहै को भेवा॥
नित्य मुक्त सेवैं बहु जीवा। प्रभु समर्थ सुखदायक सीवा॥

श्री सीताराम जी की शान्त रस भाव से भावित होकर अनगिनत जन सेवा करते हैं तथा वात्सल्य रस के तो इतने रसिक हैं कि उनका कोई बखान ही नहीं कर सकता। बहुत से नित्य मुक्त जीव भी सुख प्रदायक, सर्व समर्थ स्वामी श्री सीताराम जी महाराज की सेवा करते हैं।

मूल प्रकृति के पार प्रमाना। सीयराम कहँ वेद बखाना॥
सो प्रभु भगत हेतु अनुरागी। नर तन धरैं प्रेम रस पागी॥

श्री सीताराम जी महाराज को वेदों ने मूल, प्रकृति के पार व सभी के साक्ष्य (साक्षी भूत) कह कर बखान किया है। वे परम प्रभु ही अपने भक्तों के लिए अनुराग में भरकर, प्रेमरस में पगे हुए मनुष्य शरीर धारण करते हैं।

दो०– लीलामय रसिकेश विभु, अज अद्वैत अनाम।
लीला रस आस्वाद हित, चितयो सियहिं ललाम॥४९॥

ऐसे जन्म न धारण करने वाले अर्थात् जन्म–मरण से रहित (अजन्मा), द्वैत विहीन, अनाम, लीलामय व रसिकों के भूप प्रभु श्रीरामजी महाराज ने लीला रस आस्वादन के लिए अपनी शक्ति श्री सीता जी की ओर सुन्दर चितवनि से निहारा।

चितवत ही तेहिं समय भुआला। सबहिं हृदय रुचि बढ़ी विशाला॥
बोली सिय सुनु प्राण पियारे। लीलामय रसिकन सुखकारे॥

निमिकुल आचार्य श्री याज्ञबल्क्य जी श्री विदेहराज जी से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के रहस्य परिपूर्ण चरित्रों का वर्णन करते हुये कह रहे हैं कि– हे राजन्! उस समय श्री राम जी महाराज के दृष्टिपात करते ही सभी परिकरों के हृदय में प्रभु लीला दर्शन की प्रबल इच्छा वृद्धि को प्राप्त हो गयी। तब श्री सीता जी ने कहा– हे मेरे प्राणों के प्यारे, लीलामय तथा रसिकों को सुखी करने वाले प्रिय राघव! सुनिये–

जस संकल्प स्वामि तस देखैं । सबहिं बुझावै चरित अशेषैं ॥
मृदु मुसकाय राम खिलवारी । बोले सुनु मम प्राण पियारी ॥

––मेरे स्वामी आप जिस प्रकार का संकल्प करते हैं, वैसा ही अनन्त चरित्र सभी को समझाकर, देख लेते हैं। अपनी प्राण प्रियतरा वल्लभा श्री सीता जी की वाणी श्रवणकर कौतुक प्रिय श्रीरामजी महाराज मधुर–मधुर मुस्कराते हुए बोले– हे मेरे प्राणों की प्यारी सीते! सुनिये–

तब सहाय बिन लीला मोरी । तीनहु काल न होय किशोरी ॥
मम लीला नित तीन प्रकारा । अलख वास्तविक अरु व्यवहारा ॥

हे श्री राज किशोरी सिया जी! आपकी सहायता के बिना, मेरी लीला का सम्पादन तीनों कालों में भी सम्भव नहीं है। हे श्री सीते! नित्य ही मेरा चरित्र अलख, वास्तविक व व्यवहारिक रूप से तीन प्रकार का होता है।

लीला अलख सुनहु मुद मोई । अक्षर ब्रह्म हृदय नित होई ॥
चरित वास्तविक परिकर बीचा । नित्य धाम माचै रस कीचा ॥
चरित दिव्य व्यवहारिक प्यारी । लीला धाम होय सुखकारी ॥

हे प्रिया जू! आप आनन्द पूर्वक सुनें– मेरी अलख लीला तो अक्षर ब्रह्म के (मेरे) हृदय में नित्य हुआ करती है, मेरा वास्तविक चरित्र नित्य धाम साकेत में मेरे परिकरों को रसाप्लावित करता हुआ सम्पादित होता है एवं हे प्यारी जू! दिव्य व सुखकारी व्यवहारिक चरित्र भूमि में हमारे लीला धाम में हुआ करता है।

दो०–जाहि अयोध्या कहत हैं, मृत्यु लोक के बीच ।
नर तन धरि विहरत रमत, भक्तन हिय रस सींच ॥५०॥

जिसे मृत्यु लोक में श्री अयोध्यापुरी कहते हैं, वहाँ मैं मनुष्य शरीर धारण कर विहार तथा रमण करते हुए भक्तों के हृदय में रस सिंचन किया करता हूँ।

लीला प्रथम जो कहा बखानी । सो केवल ब्रह्महिं सुखदानी ॥
नित लीलामय निज हिय माहीं । मगन सदा अनुभव सुख पाहीं ॥

मेरी प्रथम प्रकार की लीला जिसे "अलख" कहकर बखान किया गया है वह केवल 'ब्रह्म' को (मुझे) ही सुख प्रदान करने वाली है। उस चरित्र को नित्य लीलामय ब्रह्म (मैं) अपने हृदय में नित्य अनुभव करते हुए सुख में समाया रहता है।

दूसर चरित अत्र जो होई । सो सुख जानैं परिकर लोई ॥
अहं ब्रह्म परिकर चिद गगना । करि लीला सुख होहिं सुमगना ॥

दूसरे प्रकार का चरित्र जो यहाँ नित्य "साकेत" धाम में होता है उसके सुख को तो हमारे परिकर ही जानते हैं। मैं ही ब्रह्म हूँ ऐसा विचार कर मेरे परिकर अपने चिदाकाश में लीला करते हुए शाश्वत सुख में मग्न रहते हैं–––

मृत्यु लोक जो होवहि लीला । मम सह परिकर जग सुख शीला ॥
क्रमशः सुखद अधिक विस्तारा । जिमि वीजांकुर विटप अपारा ॥

———तथा जो लीला मृत्यु लोक (लीलाधाम) में होती है वह परिकरों सहित मुझे व सम्पूर्ण संसार को सुख प्रदान करने वाली है। यह चरित्र तीनो चरित्रों से क्रमशः अधिक सुखदायक और विस्तार वाला उसी प्रकार होता है जैसे बीज का अंकुर और महान वृक्ष।

चरित रचौं जो तीसर श्रेनी । सुर नर मुनि कहँ आनँद देनी ॥
जड़ चेतन जग जीव अपारे । लखि सुनि सब अति होहिं सुखारे ॥

मैं जो तीसरे प्रकार के "व्यावहारिक" चरित्र की रचना करता हूँ वह देवता, मनुष्यों और मुनियों सभी को आनन्द देने वाला होता है। संसार के जड़ चेतन समस्त जीव समूह उसका दर्शन व श्रवण कर अत्यन्त सुखी होते हैं।

तासु अधार तरैं जग जीवा । विषइन कहँ सुख देत अतीवा ॥
प्रथम द्वितिय लीला दुर्दर्शा । जिमि विषई हिय ब्रह्म न परशा ॥

उसी चरित्र के सहारे सभी संसारी जीवों का उद्धार होता है तथा वह चरित्र विषयी जीवों को भी अत्यन्त सुख प्रदान करता है। प्रथम और द्वितीय दोनों प्रकार की लीलायें सभी लोगों को उसी प्रकार अदर्शित रहती हैं जैसे विषयी पुरुष के हृदय में ब्रह्म का स्पर्श नहीं होता।

दो०—लीला तीसरि रचन की, ताते अति रुचि होय ।
युत परिकर सह आपको, देखौं नर तन जोय ॥५१॥

इसलिए मुझे तीसरे प्रकार का व्यावहारिक चरित्र करने की अत्यधिक रुचि हो रही है। जिसमें मैं अपने परिकरों सहित आपको मनुष्य शरीर में देखना चाहता हूँ।

करि स्वीकृत मुसकाय किशोरी । बोली मधुर महा रस बोरी ॥
तीसर लीला केर विधाना । कहहु प्रकार नाथ मतिमाना ॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवणकर जनक किशोरी श्री सीताजी ने मुस्कराकर अपनी स्वीकृति दे दी। पुनः मधुर व महारस से सनी हुई वाणी से वे बोलीं— हे परम बुद्धिमान मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज! आप अपनी तीसरे प्रकार की लीला के नियम और प्रकार का बखान करें—

सुनहु प्रिया मम चरित उदारा । षट प्रकार जानहुँ सुख सारा ॥
बाल विवाह रास सुख शीला । वन रण जानहु राज सुलीला ॥

हे प्रियाजी! आप सुने! मेरे सुखों के सार, उदार तथा सुख प्रदायक व्यावहारिक चरित्र को आप बाल—चरित, विवाह—चरित, रास—चरित, वन—चरित, युद्ध—चरित और राज—चरित आदि छः प्रकार का जानिये।

एक एक के पुनि युग भेदा । माधुर ऐश्वर भनि सब वेदा ॥
तिनहूँ महँ युग भेद अनूपा । गुप्त प्रगट जानिय सुख रूपा ॥

उनमें से प्रत्येक के पुनः माधुर्य व ऐश्वर्य नामक दो भेद होते हैं ऐसा सभी वेदों ने बखान किया है। उन भेदों के भी सुख स्वरूप गुप्त और प्रगट दो अनुपमेय भेद हैं, आप ऐसा जान लीजिये।

प्रभु संक्षेप विधान बतावा। सहित सीय परिकर सुख पावा॥
जय जय शब्द रहेव तहँ छाई। वरषि पुष्प सब बलि बलि जाई॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज ने इस प्रकार संक्षेप में तीसरे प्रकार के चरित्र का विधान बताया जिसे सुनकर श्री सीता जी सहित सभी परिकरों ने सुख प्राप्त किया। उस समय वहाँ पर जय–जय का शोर व्याप्त हो गया तथा फूलों की वर्षा कर सभी ने श्री सीताराम जी की बलायें ली।

दो०–अंश कला अवतार जे, नायक अण्ड अनन्त।
दिव्य धाम हरि रूप जे, नहिं परिकर कर अन्त॥५२॥क॥

उस समय पूर्णतम परब्रह्म श्री सीताराम जी के अंश व कला आदि के सभी अवतार जो अनन्त ब्रह्माण्डों के नायक हैं और दिव्य धाम में जो भगवत्स्वरूप अनन्त परिकर हैं।

सबहिं हृदय अति चाह भइ, लीला लखिवे हेत।
समुझि सिया बोली मधुर, सुनियहिं कृपा निकेत॥ख॥

उन सभी के हृदय में प्रभु लीला दर्शन की अत्यधिक त्वरा उत्पन्न हो गयी जिसे जानकर श्रीसीताजी ने मधुर वाणी से श्री राम जी से कहा– हे कृपा के आगार! सुनिये–

लीला हेतु ललित तव लीला। कारण बिनु रघुनाथ सुशीला॥
शाप व्याज करि जिमि अवतारा। अंश कलादिक लेहिं उदारा॥

आपकी यह व्यावहारिक लीला तो केवल स्वयं के अनुभव के लिए ही है जो बिना किसी कारण ही सम्पादित हो रही है क्योंकि हे परम शीलवान, उदार श्री रघुनाथजी! जिस प्रकार श्राप आदि के बहाने से आपकी अंश–कलादि शक्तियाँ अवतार धारण करती हैं।

राउर तस अवतरण न होई। लीला स्वादन लीला जोई॥
तेहिं ते तव अवतार विलक्षण। होय चरित सुठि सुखद विचक्षण॥

उस प्रकार का आपका अवतरण नहीं है, क्योंकि लीला रस के आस्वाद के लिए ही आपकी यह लीला आयोजित की गयी है। इसलिए आपका यह अवतार असाधारण होना चाहिये और आपका यह चरित्र भी सुन्दर, सुखदायक व परम विशिष्ट प्रकार का होना चाहिए।

लीला पात्र बनैं सब परिकर। शत्रु मित्र मध्यस्थ पाठ कर॥
तव स्वरूप सब अंश कलादी। लीला थल पहुँचै अहलादी॥

अतः आपके सभी परिकर ही, इस लीला के पात्र बनें तथा शत्रुवत, मित्रवत व मध्यस्थवत अभिनय करें। आपकी सभी अंश व कलायें जो आपकी ही स्वरूप हैं वे परमाह्लादित होकर लीला स्थल में पहुँचे।

नाम रूप अरु लीला धामा। रहैं पूर्ण तहँ तत्व ललामा ॥
अत्र तत्र नहिं भेद लखाई। भोगविभूति सरिस सुखदाई ॥
सुनि बोले विभु राजिव नैना। ऐसहिं होय महा सुख दयना ॥

वहाँ भूमि की अयोध्या (मृत्यु लोक) में आपके चारो सुन्दर तत्व नाम, रूप, लीला व धाम पूर्णता के साथ विराजमान रहें। यहाँ और वहाँ में किंचित अन्तर नहीं दिखना चाहिये तथा दोनों स्थलों (दिव्य अयोध्या व भूमि अयोध्या) के वैभव और भोग भी एक समान सुख प्रदायक होने चाहिए। श्रीसीताजी के वचनों को श्रवण कर कमल नयन भगवान श्रीरामजी महाराज बोले– हे प्रिया जी! सभी कुछ ऐसा ही महान सुख देने वाला होगा।

दो०–जो विभूति लीला सुथल, परा अयोध्या माहिं।
सोइ सोइ प्यारी जानियहु, भूमि अयोध्या आहिं ॥५३॥

हे प्यारी जू! आप ऐसा समझ लीजिये कि– इस दिव्य अयोध्या में जिस प्रकार का वैभव और लीला स्थली है, वैसा ही सभी कुछ भूमि की अयोध्या में भी है ।

बहुरि सुनहु प्रिय प्राण पियारी। कछुक पात्र मैं कहउँ बिचारी ॥
विष्णु महा वैकुण्ठ अधीशा। होहिं भ्रात मम भरत अमीशा ॥

पुनः हे प्राण प्रिये! मैं अपने हृदय में विचार कर इस चरित्र के कुछ पात्रों का वर्णन कर रहा हूँ, आप श्रवण करें, श्री वैकुण्ठ धाम के अधीश्वर श्री महा विष्णु ही मेरे भैया श्री भरत जी होंगे।

क्षीर सिन्धु शायी भगवाना । होहिं लखन प्रिय अनुज सुजाना ॥
श्री हरि जिन भूमा शुभ नामा । होहिं शत्रुहन बन्धु ललामा ॥

क्षीर सागर में शयन करने वाले भगवान विष्णु मेरे प्रिय, व सुजान अनुज श्री लक्ष्मण कुमार तथा भगवान श्री हरि, जिनका शुभ नाम 'भूमा' है वे मेरे शत्रुघ्न नामक सुन्दर भ्राता बनेंगे।

महा शम्भु मम तेज महाना । होहिं नाम वानर हनुमाना ॥
अत्र भाव वात्सल्य जे सेवै । होय पिता गुरु श्वसुर सुधेवै ॥

स्वयं महा शम्भु जी, जो मेरे तेज ही हैं, वे मेरे प्रिय सेवक श्री हनुमान नाम के बन्दर होंगे तथा यहाँ दिव्य अयोध्या में जो वात्सल्य भाव से भावित हो हमारी सेवा करते हैं वे मेरे पिता, गुरुजन और श्वसुर के रूप में जन्म धारण कर मेरी लीला में सहयोग प्रदान करेंगे।

साथहिं तिनकी शक्ति अनूपा। बनै मातु त्रय भाव स्वरूपा ॥
सखा मोर जेहिं नाम प्रतापी। रावण बनि सो लीला थापी ॥

साथ ही उनकी अनुपमेय शक्तियाँ भी अपने–अपने भाव के अनुसार मेरी तीनों मातायें बनेंगी। मेरा प्रतापी नाम का सखा रावण बन कर मेरी लीला का विस्तार करेगा।

कहँ लौं कहौं गिनाय गिनाई । सखा दास सबही चलि जाई ॥
पाठ देहिं जा कहँ जस भावा। आपु रचै लीला सुख छावा ॥

सखी भाव जो अंश तुम्हारी । तव सँग उपजि होंय सुखकारी ॥

मैं अब आपको कहाँ तक गिन–गिन कर बताऊँ, यहाँ के सभी सखा और सेवक आदि वहाँ भूमि अयोध्या में चलेंगे। अतः आप उन्हें, उनके भावों के अनुसार पाठ देकर सुख पूर्वक लीला की रचना करें। पुनः आप की जो अंश स्वरूपा सखियाँ हैं, वे सभी आपके साथ प्रगट होकर हमारे सुख का संवर्धन करने वाली होंगी।

दो०–सुनहु प्रिया मिथिला पुरी, दिव्य धाम शिर मौर ।
भूमि बिवर ते निकसि तहँ, देहिं जनक सुख बोर ॥५४॥क॥

हे प्रिया जी! अब आप अपने सम्बन्ध में भी श्रवण करें, समस्त धामों की सिरमौर जो दिव्य श्री मिथिलापुरी है वहाँ आप भूमि के दरार (विवर) से प्रगट होकर श्री जनक जी महाराज को सुख–मग्न कर दीजिये।

मैथिल भावापन्न ह्वै, अत्र वसहिं तव भ्रात ।
भाम भाव मोहिं सेवते, लक्ष्मीनिधि सुखदात ॥ख॥

मैथिल भाव में भावित होकर आप के भइया श्री लक्ष्मीनिधिजी जो मेरी बहनोई के भाव से सेवा करते हुए यहाँ निवास कर मुझे सुख प्रदान करते हैं।

सो है मोर तत्व अहलादा । प्रेम रूप धरि परम प्रसादा ॥
पृथक न होहुँ कबहुँ तिन तेरे । यह परतीति तजिय जनि टेरे ॥

वे मेरे आह्लाद तत्व ही हैं जो मेरी महान कृपा से प्रेम स्वरूप धारण किये हुए हैं, मैं उनसे कभी भी अलग नहीं होता, इस बात की प्रतीति मेरे कहने पर भी आप मत त्यागियेगा अर्थात् इस विश्वास को आप दृढ़ बनाये रखियेगा।

सोउ जग जनमि भ्रात तब होइहैं । लक्ष्मीनिधि शुभ नाम सुहैहैं ॥
हौं हूँ जनमि अवधपुर माहीं । करिहौं चरित सुखद सब काहीं ॥

वे भी संसार में जन्म लेकर आपके भइया होंगे तथा उनका श्री लक्ष्मीनिधि जी शुभ नाम होगा। पुनः मैं भी श्री अयोध्या पुरी में जन्म धारण कर सभी को सुख प्रदान करने वाला चरित्र करूँगा।

मम श्रृंगार कृष्ण सुखदाई । सो जावै श्रृंगार समाई ॥
पृष्ठ अंश बलराम सुजाना । सो मम पृष्ठ वसैं सरसाना ॥

मेरा सुख प्रदायक श्रृंगार ही श्रीकृष्ण हैं अतः वे मेरे श्रृंगार में मिल जायेंगे। मेरी पीठ (पृष्ठ भाग) का अंश ही सर्वज्ञ श्री बलराम जी हैं इसलिए वे मेरे पीठ (पृष्ठ भाग) में सुखपूर्वक निवास करेंगे।

मम हृदयांश मत्स्य भगवाना । सो हिय प्रविशहिं मोद महाना ॥
शक्ति अधार कूर्म कहँ जानी । प्रविश अधार रहैं सुख सानी ॥

मेरे हृदय के अंश ही श्री मत्स्य भगवान हैं अतएव वे महान आनन्द पूर्वक मेरे हृदय में प्रवेश करेंगे तथा आप मेरी आधार शक्ति को ही श्री कच्छप भगवान जानिये इसलिए वे आधार शक्ति में

प्रविष्ट होकर सुख में सराबोर हो जायेंगे।

भुज बल अंश बराह कहावा। भुजहिं प्रविश मन मोद मढ़ावा ॥
श्री नरसिंह कोप मम मानो। प्रविश सुकोपहिं करौं स्वथानो ॥

मेरी भुजाओं के बल के अंश ही श्री बाराह भगवान कहलाते हैं अस्तु वे मेरी भुजाओं में प्रविष्ट होकर मन में आनन्दित होंगे। श्री नृसिंह भगवान को आप मेरा शोध ही समझिये अतः वे मेरे शोध में प्रविष्ट होकर अपने स्थान में पहुँच जायेंगे।

वामन प्रगट मेखला कटिके। प्रविश करधनी कहुँ जनि भटके ॥
जंघ अंश प्रगटे भृगुरामा। प्रविश जंघ सो लहैं अरामा ॥

श्री वामन भगवान जी मेरी कमर की मेखला से प्रगट हुए हैं इसलिए वे मेरी करधनी में प्रवेश कर अन्यत्र नहीं भटकेंगे। मेरी जंघाओं के अंश से श्री परशुराम जी प्रगट हुए हैं अतः वे मेरी जंघाओं में प्रवेश कर शान्ति प्राप्त करेंगे।

बुद्ध प्रगट करुणा ते आहीं। सो मम करुणा आश्रय पाहीं ॥
चित्त हर्ष कल्की उपजाये। प्रविश प्रहर्षहिं अति सुख पाये ॥

श्री बुद्ध जी मेरी करुणा से प्रगट हुए हैं अतः वे मेरी करुणा में आश्रय प्राप्त करेंगे तथा मेरे चित्त की प्रसन्न्ता ने श्री कल्कि जी की उत्पत्ति की है अतएव वे मेरे हर्ष में प्रवेश लेकर अत्यन्त सुख संप्राप्त करेंगे।

दो०—औरहुँ जे अवतार वर, अंड अनेकन ईश।
सुखमय हरि के रूप प्रिय, सिगरे लोक अधीश ॥५५॥क॥

पुनः अनेक ब्रह्माण्डों में अन्यान्य जो भी भगवान के सुन्दर अवतार हुये हैं, वे सभी सुख स्वरूप, भगवान के सुन्दर प्रिय रूप और अखिल लोकों के अधीश्वर——

तुरत प्रविशि मोरे मनहिं, मम लीला सुख लेहिं।
सुनत वचन रघुनाथ के, जय जय कहहि अजेहिं ॥ख॥

———शीघ्रता पूर्वक मेरे मन में प्रविष्ट होकर मेरी लीला का आस्वाद प्राप्त करेंगे। श्री रघुनाथजी के ऐसे वचनों को सुनकर सभी परिकर सर्वदा अपराजेय प्रभु श्रीरामजी की जय हो जय हो उच्चारण करने लगे।

जनक लली सुन अति सुख पावा। जै जै कहति मोद उर छावा ॥
सुनतहिं प्रभु मुख सबहिं समाये। हरि अनंत जे कहे सुभाये ॥

जनक दुलारी श्री सीताजी ने श्री राम जी महाराज के वचनों को सुनकर अतिशय सुख प्राप्त किया तथा जय–जयकार करने लगीं उनके हृदय में महान आनन्द छा गया। श्रीरामजी महाराज की आज्ञा श्रवणकर भगवान के पूर्व वर्णित सभी अनंत अवतार, श्री राम जी महाराज के मुख में उसी प्रकार समा गये———

भानु किरन जिमि भानु समाई । समय पाय पुनि सबहिं लखाई ॥
सुनहु जनक मैं यह इतिहासा । सुना सुखद सनकादिक पासा ॥

–––जैसे सूर्य की किरणें (सन्ध्या समय) सूर्य में समाहित हो जाती हैं पुनः वे समय प्राप्त कर (प्रभात में) सभी को दिखाई देने लगती हैं। निमिवंश आचार्य श्री याज्ञबल्क्य जी ने कहा हे श्री विदेह राज जनक! सुनें– मैंने यह सुख प्रदायक इतिहास श्री सनकादिक ऋषियों के समीप श्रवण किया था।

प्रभु निदेश लहि पार्षद सिगरे । यत्र तत्र जनमें सुख पग रे ॥
आपहुँ पार्षद सोइ प्रभु केरे । नारि सहित परिवारहुँ जे रे ॥

इस प्रकार प्रभु श्री राम जी महाराज की आज्ञा से उनके सभी परिकर सुख में सने हुए मृत्यु लोक में जहाँ तहाँ जन्म धारण किये हैं, आप भी अपनी महारानी श्री सुनयना जी और परिवार सहित श्रीरामजी महाराज के वही परिकर हैं।

सहित नारि दशरथ अवधेशा । वसत सोउ साकेत सुदेशा ॥
कछु दिन गये सुनहु महाराजा । जन्मी आदि शक्ति सुख साजा ॥
तव पुत्री बनि राम पियारी । देइय अति सुख सत्य उचारी ॥

अयोध्याधिपति चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज भी, जो अपनी महारानियों सहित यहाँ लीला भूमि श्री अयोध्या धाम में निवास करते हैं, श्री राम जी महाराज के वही परिकर हैं। हे महाराज! सुनिये, कुछ दिन व्यतीत जाने परसुख संविधायिनी परम–आद्या शक्ति श्रीसीताजी का प्राकट्य होगा एवं श्री राम जी महाराज की प्रियतमा श्री सीता जी आपकी पुत्री बनकर आपको अत्यन्त सुख प्रदान करेंगी, मैं सर्वथा सत्य इस बात को पुकार–पुकार कर कह रहा हूँ।

दो०–पूर्ण ब्रह्म रसिकेश वर, अंशन सहित उदार ।
दशरथ गृह महँ कछुक दिन, गये लेहिं अवतार ॥५६॥क॥

पूर्णतम परब्रह्म, परम सुशोभन, रसिक जनों के स्वामी, उदार शिरोमणि श्री राम जी महाराज अपनी अंश व कलादि शक्तियों सहित कुछ ही दिनोपरान्त (शीघ्र ही) चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के भवन में अवतार धारण करेंगे।

गुप्त चरित यह जानकर, प्रगट करैं जनि तात ।
अधिकारी मुनिवर्य गण, जानहिं सब सत बात ॥ख॥

हे तात, श्री जनक जी! इस चरित्र को आप अत्यन्त गोपनीय समझकर किसी से प्रगट नही करियेगा क्योंकि इस चरित्र के अधिकारी व मुनिगण तो इन सभी सत्य बातों को जानते ही हैं।

तनय तुम्हार सत्य महिपाला । मुक्त सिद्ध प्रभु प्रेम रसाला ॥
पार्षद चिन्ह लखैं हर्षाई । तिलक ललाट सोह सुखदाई ॥

अतएव हे राजन! आपके कुँवर सत्य ही मुक्त, सिद्ध और प्रभु प्रेम रस के रसाल (रस–स्वरूप) हैं। आप इनमें प्रभु पार्षदों के चिन्हों को प्रसन्नता पूर्वक देखें, इनके ललाट में कैसा सुख प्रदायक तिलक जन्म के समय से ही शोभायमान है।

आयुध अंकित बाहु विशाला । परम तेज सौन्दर्य सुबाला ॥
जन्मत ही हरि नाम उचारी । प्रभु वियोग रोयो दुख भारी ॥

इनकी भुजायें भगवान के आयुधों (धनुष व बाण) से अंकित लम्बी (जानु पर्यन्त) हैं तथा इनका शरीर अतीव सुन्दर परम तेज व सौन्दर्य से परिपूर्ण है। ये जन्म के समय ही (प्रथम) भगवन्नाम का उच्चारण किये हैं पुनः भगवान के वियोगजन्य महान दुख से इन्होने रुदन किया है।

ध्यान मगन लगि गई समाधी । योगी परम कर्म गति बाधी ॥
देखि दशा शिशु की जनि चिन्तै । शोचि सदा अति प्रिय सियकन्तै ॥

भगवान श्री राम जी महाराज के ध्यान में मग्न होने के कारण श्रेष्ठ योगियों की तरह कर्मो की गति को साध लेने (अवरुद्ध कर लेने) से इनकी सहज ही समाधि लग गयी थी। इसलिए आप अपने पुत्र की स्थिति को देखकर चिन्ता न करें तथा सदैव यही विचार करें कि ये सीतापति श्री रामजी महाराज को अत्यधिक प्रिय हैं।

सुवन खिन्न जब कबहुँ लखावैं । राउर मोकहँ बोलि पठावैं ॥
सुनि मुनि गिरा जनक हरषाने । धरि निज सिर गुरु पद लपटाने ॥

जब कभी आपके कुँवर अप्रसन्न दिखाई पड़ें तब आप मुझे बुला लिया करें। गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य मुनि जी की वाणी को सुनकर श्री जनक जी महाराज हर्ष से भर गये तथा अपना शिर रख कर उनके चरणों में लिपट गये।

नाथ कृपा करि कथा सुनायो । ईश मिलन कहि मोद बढ़ायो ॥
अब मोहि आपन किंकर जानी । चरित भविष कछु कहहु बखानी ॥

हे नाथ! आपने कृपा कर मुझे रहस्य से युक्त यह गाथा सुनाई तथा भगवान श्री राम जी से मिलने का विधान बताकर आपने मेरे आनन्द को वृद्धिंगत कर दिया है। अब आप मुझे अपना सेवक समझकर, इनके भविष्य के कतिपय चरित्रों का बखान करें।

दो०—नृप विदेह प्रिय वचन सुनि, याज्ञवल्क्य हर्षाय ।
भविष चरित वर्णन किये, श्याल भाम कर गाय ॥५७॥

श्री विदेह राज जी महाराज के प्रिय वचनों को श्रवणकर गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज ने हर्षित ह्दय श्याल–भाम श्रीलक्ष्मीनिधिजी व श्रीरामजी महाराज के भविष्य के चरित्रों का वर्णन किया।

लखन कहेउ अब सुनु हनुमाना । सो मैं तुम सन करहु बखाना ॥
कछु देखी कछु सुनी सुगाथा । पेखि प्रीति कहिहौं कपिनाथा ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! सुनिये, मैं आपसे वही चरित्र बखान कर रहा हूँ। हे कपि नाथ श्री हनुमानजी! आपकी कथा प्रीति को देखकर मैं आपसे कुछ स्वयं की देखी तथा कुछ श्रवण की हुई सुन्दर गाथा कह रहा हूँ।

श्री मिथिलेश सुनयना रानी । आपन भाग अमित अनुमानी ॥
सुवन सनेह सुखद सरसाई । दम्पति राग न जानिय भाई ॥

श्री गुरुदेव याज्ञबल्क्य जी महाराज के वचनों का स्मरण कर श्री मिथिलेश जी महाराज व महारानी श्री सुनयना जी अपने असीमित भाग्य का अनुमान करते हुये सुखदाई पुत्र स्नेह से सने रहते थे। परन्तु हे तात! इसे उन दम्पत्ति श्री विदेह राज जी महाराज व श्री सुनयना जी का पुत्र मोह (संसारासक्ति) नहीं समझना चाहिए–––

सीय राम कर दास विचारी । शुचि सुस्नेह सनेउ सुखसारी ॥
छठी भयी पुनि बरहौं कीन्हा । दान मान बहु विप्रन दीन्हा ॥

–––क्योंकि वे तो उन्हें सुखों के सार श्री सीताराम जी महाराज का सेवक विचार कर ही उनके पवित्र स्नेह में डूबे हुए थे। पुनः समय प्राप्तकर जनक कुँवर जी की छठी हुई और जन्म के बारहवें दिन श्री महाराज ने उनका बारहों उत्सव किया जिसमें ब्राह्मणों को बहुत सा दान और सम्मान दिया गया।

शतानन्द रचि जन्म सुपाती । नृपहिं सुनाई सबहिं सुहाती ॥
मुनि बोले अब सुनहु सुजाना । सुवन नाम कर कहौं प्रमाना ॥

तत्पश्चात् सभी को अत्यन्त प्रियकर, कुमार की जन्म पत्रिका शोध कर निमिकुल पुरोहित श्री शतानन्द जी महाराज ने श्री महाराज जनक जी को सुनायी व बोले हे सुजान श्री जनकजी महाराज! मैं अब प्रमाण पूर्वक आपके पुत्र का नाम बखान कर रहा हूँ।

बालक निधि श्री लक्ष्मी सीता । होई नित्य अवशि सुपुनीता ॥
सीता निधि सम शिशू सुहाना । पाई प्रेम तासु सरसाना ॥

आपके कुँवर की निधि, अवश्य ही नित्य पवित्र लक्ष्मी स्वरूपा श्री सीता जी होंगी तथा श्री सीता जी की सम्पत्ति के समान आपके ये कुँवर अवश्य ही उनके प्रेम को प्राप्त कर सुख में सरसाये रहेंगे।

ताते श्री लक्ष्मीनिधि नामा । होई जग महँ ललित ललामा ॥
सकल कृत्य करवाइ मुनीशा। गये सदन शुभ देत अशीशा ॥

इसलिए संसार में इनका सुन्दर नाम "श्री लक्ष्मीनिधि जी" होगा, ऐसा कह व सभी मांगलिक कृत्यों का सम्पादन कराकर मुनिराज श्री शतानन्द जी सुन्दर शुभाशीश देते हुए अपने आश्रम को प्रस्थान कर गये।

दो०–जननि जनक गुरु सचिव कहँ, सह पुरजन परिवार ।
प्राणन सम सबहीं सुखद, श्री निमिवंश कुमार ॥५८॥

निमि कुलोत्पन्न कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी, अपने माता–पिता, गुरुदेव, मंत्रियों, परिवार जनों तथा पुरजनों सहित सभी को प्राणों के समान प्रिय व सुख प्रदान करने वाले थे।

मास पारायण प्रथम विश्राम

मातु पिता प्रिय पाइ दुलारा। हरि वियोग कृत तदपि दुखारा॥
दिवस एक अतिशय विलखाई। करै रुदन शिशु प्रभु चित लाई॥

अपने माता–पिता के वात्सल्यजन्य प्रिय प्यार–दुलार को प्राप्तकर भी कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी भगवान के वियोग के कारण दुखी रहते थे। एक दिन कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्री सीतारामजी का ध्यान लगाकर, विलख–विलख कर अतिशय रुदन करने लगे।

अम्ब अंक पलनउ पर रोवै। सुहृद सुरति सब शान्तिहि खोवै॥
मिथिलेशहुँ यह भेद न जाने। गुरु बुलाय शिशु दशा बखाने॥

वे श्री अम्बाजी की गोद व पालना सभी जगह रुदन कर रहे थे, उनके चिर सखा श्रीरामजी महाराज की स्मृति उनकी सम्पूर्ण शान्ति को समाप्त किये दे रही थी। उनके इस रहस्य को श्री मिथिलेश जी महाराज भी नहीं जान सके, तब वे श्री गुरुदेवजी को बुलाकर उनसे अपने पुत्र की अवस्था का बखान किये–

कह मुनि जेते हरि के रूपा। कल्पित चित्र बनाइय भूपा॥
राम रसिक जे सन्त सुजाना। सुर नर मुनि महँ जो जग जाना॥

मुनिवर श्री याज्ञवल्क्य जी ने कहा– हे राजन! भगवान के जितने भी रूप (अवतार) हैं आप उनके काल्पनिक चित्र बनवा लीजिये तथा इस संसार में जो भी श्री राम जी महाराज के विख्यात सर्वज्ञ रसिक सन्त–जन हुये हैं चाहे वे देवता, मनुष्य व मुनिजन आदि कोई, क्यो न हों–––

तिनहूँ के बहु बनै सुचित्रा। कुँवर कक्ष सब सजैं पवित्रा॥
लखि लखि बाल अमित सुख पाई। सत्य बचन वरणहुँ नृपराई॥

उन सभी के बहुत से चित्र बनाये जाँय और कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के पवित्र कक्ष में सजवा दिये जायें। हे राजन! मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ कि–उन्हें देख–देखकर बालक श्री लक्ष्मीनिधि जी असीमित सुख संप्राप्त करेंगे।

सुनि नृप तुरत विधान बनायो। लखि हरि चित्र कुँवर सचु पायो॥
कहुँ किलकैं कहुँ हँसै सुमन्दा। रहैं मौन कहुँ करैं सुक्रन्दा॥

श्री गुरुदेव जी के वचनों को श्रवण कर श्री जनक जी महाराज ने शीघ्र ही वह विधान बना दिया तब उन भगवद्–भागवतों के चित्रों को देख–देखकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी परम आनन्द प्राप्त करने लगे। उन चित्रों का दर्शन कर कभी वे हर्ष से किलकारी भरते तो कभी मन्द मन्द हँसने लगते, कभी मौन हो जाते तथा कभी सुन्दर विलाप करने लगते थे।

दो०–सीय भ्रात प्रभु प्रीति सुनि, हिय हरषे हनुमान।
पुलक अंग लोचन सजल, बोले वचन सुहान॥५९॥

श्री सीताजी के भैया कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी की प्रभु श्रीरामजी महाराज के प्रति इस प्रकार की प्रीति को सुनकर श्रीहनुमानजी हृदय में हर्षित हो गये तथा पुलकित अंगों व सजल नेत्रों से सुन्दर वचन बोले–

जाकी प्रीति प्रथम अस भाई । मानहिं कस न प्राण रघुराई ॥
पुनि बोले श्री लखन कृपाला । आगिल चरित सुनहु कपि लाला ॥

हे भइया! जिनकी भगवान के चरणों में जन्म से ही ऐसी प्रीति थी उन्हें श्री राम जी महाराज, अपना प्राण क्यों न माने? पुनः परम कृपालु श्री लक्ष्मण कुमार जी बोले हे कपि नन्दन! आप अब आगे का चरित्र सुनिये।

एक दिवस श्री मातु सुनयना । शिशुहिं लगावति तेल सचयना ॥
फेरति पाणि हृदय हँसि जबहीं । लखी राम सिय मूरति तबहीं ॥

एक दिन श्री सुनयना अम्बा जी आनन्द पूर्वक शिशु श्री लक्ष्मीनिधि जी के अंगों में तेल मल रही थीं, तेल लगाते समय वे जैसे ही प्रसन्न होकर कुँवर के हृदय में अपना हाथ फिराती हैं वहाँ उन्हें श्री सीताराम जी की मूर्ति दिखाई देती है।

भीतर चर्म हृदय के झलकति । कहुँ प्रगटति कहुँ दुरत सुहलकति ॥
राम मंत्र कहुँ परै जनाई । लखि लखि मातु प्रभुहिं बलि जाई ॥

वह मूर्ति हृदय में त्वचा के भीतर झलक (आभासित हो) रही थी, कभी वह दिखने लगती तो कभी छिप जाती और कभी हिलने लगती थी। कभी वहाँ श्रीराम मंत्र दीखने लगता जिसे देख–देखकर अम्बा जी भगवद् अनुग्रह समझ प्रभु पर बार–बार बलिहारी जाती हैं।

सुनि लखि जनक राय हरषाने । पुर वासी सब अचरज माने ॥
मंगल सुवन सबहिं जन चाहैं । दै अशीश निज भाग सराहैं ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुन्दर चरित्र को श्रवण कर श्री जनक जी महाराज तो हर्षित होते परन्तु सभी पुरवासी आश्चर्य मानते थे। वे सभी अपने भावी युवराज श्री लक्ष्मीनिधि जी की मंगल कामना करते हुए उन्हें आशीर्वाद देकर अपने भाग्य की सराहना करते थे।

सो०–यहि विधि प्रेम प्रमोद युत, आयो षष्टम मास ।
अन प्राशन उत्सव भयो, आनन्द नगर निवास ॥६०॥क॥

इस प्रकार प्रेम और आनन्द पूर्वक छठवाँ महीना आया तब कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी का अन्न प्राशन उत्सव हुआ, उस समय ऐसी प्रतीति हो रही था मानों स्वयं आनन्द ने श्री मिथिलापुरी में निवास कर लिया हो।

सन्त प्रसादी प्रथम दै, पीछे प्रभू प्रसाद ।
मातु सुनयना मुख दियो, मान्यो शिशु अहलाद ॥ख॥

अम्बा श्री सुनयना जी ने सर्व प्रथम कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मुख में संतो की शीथ (जूठन) प्रसादी देकर पुनः उन्हें श्री भगवान का प्रसाद पवाया और शिशु ने अत्यन्त आह्लाद प्राप्त किया।

कबहुँ मातु लै गोद खिलावै । कबहुँ पालने मेलि झुलावै ॥
कहि हरि चरित मातु मल्हरावति । जनु घूँटी प्रभु प्रेम पियावति ॥

श्री सुनयना अम्बाजी कभी कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को गोद में लेकर लाड़ लड़ाती हैं तो कभी पालने में लिटा कर झुलाने लगती हैं और कभी वे भगवान के चरित्र कहकर पुचकारती हैं मानों वे कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को भगवत्प्रेम की घूँटी (पुष्टि वर्द्धिनी औषधि) पिला रही हों।

धनि धनि अम्ब उहै सुख दाई। जो बालहिं प्रभु प्रेम पढ़ाई ॥
सुनि सुनि कुँवर अधिक सुख मानैं। हृदय प्रेम नयनाश्रुहिं आनैं ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हें कि यथार्थ में सुख प्रदान करने वाली वही माता धन्याति धन्य है जो अपने पुत्र को वाल्यकाल से ही भगवत्प्रेम की शिक्षा देती है। कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी अम्बाजी से भगवच्चरित्र सुन–सुनकर अत्यधिक सुख मानते हैं तथा हृदय में प्रेम परिपूरित हो नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाने लगते हैं।

घुटरुन चलैं अजिर किलकारत। निज प्रभु कर जनु खोज सम्हारत ॥
हरि रस पियत प्रेम मद माते। लै प्रभु नाम बचन तुतराते ॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी घुटनों के बल आँगन में चलते हुए किलकारियाँ भरते हैं मानों वे अपने प्रभु श्री राम जी महाराज को अपने हाथों से खोजकर सम्हाल रहे हों। प्रेम की मस्ती में मतवाले बने भगवद्रस का पान करते हुए कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी तोतली वाणी से भगवान श्रीरामजी महाराज का नाम पुकारते रहते हैं।

लीला ललित लखहिं नृपरानी। सह परिवार परम सुखसानी ॥
यहिं विधि बीत गये दस मासा। बाल फँसे प्रभु प्रेम के पाँसा ॥
संत सुनहु अब अवध प्रसंगा। जेहिं मिस बाल रँग्यो हरि रंगा ॥

उनकी सुन्दर लीलाओं को परिवार सहित श्री जनक जी महाराज व श्री सुनयना अम्बाजी दोनो परम सुख में सने हुए देखते रहते थे। इस प्रकार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी भगवान के प्रेम बन्धन में बँधे हुये दस माह के हो गये। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–हे सन्त जनों! अब श्री अयोध्यापुरी के उस प्रकरण का श्रवण करें जिस कारण से बालक श्री लक्ष्मीनिधि जी भगवान के प्रेम रंग में विशेष रूप से रँगे हुए थे।

दो०–मास मनोहर मधु लग्यो, सकल सुमंगल मूल।
ब्रह्म राम अवतार हित, पंच अंग अनुकूल ॥६१॥

सकल सुमंगलों का मूल व मन को हरण करने वाला सुन्दर मधु मास (चैत्र मास) का प्रारम्भ हुआ तथा पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज के अवतार के लिये पंचाग के सभी पाँचों अंग (योग, लग्न, ग्रह, वार व तिथि) अनुकूल हो गये।

सुखद शुक्ल नौमी तिथि भाई। मध्य दिवस प्रगटे प्रभु आई ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिदेवा। आये सकल पगे प्रभु सेवा ॥

सभी को सुख देने वाली शुक्ल पक्ष की सुन्दर नौमी तिथि को दिवस के मध्य भाग में प्रभु श्री राम जी महाराज साकेत धाम से आकर प्रगट हो गये, उस समय त्रिदेव (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी

व श्री शंकर जी) भी भगवान की सेवा के भाव में भर कर उनके दर्शन के लिए श्री अयोध्या पुरी आये।

सुर नर मुनि किन्नर दिशि पाला । नारिन सह गंधर्व उताला ॥
पुष्प वरषि कहि जय जय वानी । नाचहिं गावहिं वाद्य प्रमानी ॥

सभी देवता, मनुष्य, मुनि, किन्नर, दिक्पाल और गन्धर्व आदि अपनी अपनी शक्तियों सहित आतुरता पूर्वक आ गये तथा पूर्णतम परब्रह्म पुष्पों की विपुल की वर्षा कर जय–जय नाद करते हुए नाचने–गाने व वाद्य बजाने लगे।

स्तुति करहिं मगन मन भूले । महि आकाश कोलाहल हूले ॥
देश देश के राव सिधाये । ढोव देय अतिशय सुख पाये ॥

वे अपने मन को भुलाए हुए श्री राम जी महाराज की स्तुति कर रहे थे उस समय कोलाहल (शोर) भूमि व आकाश का भेदन किये दे रहा था। विभिन्न देशों के राजागण श्री अयोध्या पुरी आये हुए थे व उपहार सामग्री दे देकर अत्यन्त सुख प्राप्त कर रहे थे।

आनँद उमड़ि बह्यो संसारा । जड़ चेतन सुख लहेव अपारा ॥
तेहिं अवसर मिथिलेशहुँ गवने । चक्रवर्ति के अति प्रिय भवने ॥

उस समय आनन्द की बाढ़ से सम्पूर्ण संसार बह गया अर्थात् संसार में आनन्द ही आनन्द परिव्याप्त हो गया। जड़ व चैतन्य सभी ने असीम सुख प्राप्त किया। उस अवसर पर श्री मिथिलेश जी महाराज भी चक्रवर्ती श्री दशरथ जी के अत्यन्त प्रिय भवन श्री अयोध्या पुरी पहुँचे।

दो०–अवध भयो आनन्द जो, शारद कहैं न शेष ।
जानहिं जो देखे दृगन, सो सुख समय अशेष ॥६२॥क॥

श्री अयोध्या पुरी में श्रीराम जन्म के समय जो आनन्द हुआ उसका बखान शेष और शारदा भी नहीं कर सकते हैं। उस समय के अनन्त सुख को तो वही जान सकता है जिन्होंने अपनी आँखों से उसका दर्शन किया है।

धन्य अवध दशरथ नृपति, धन्य कौशिला माय ।
व्यापक ब्रह्म अनादि प्रभु, प्रगट भयो जहँ आय ॥ख॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री अयोध्या पुरी, चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज व श्री कौशिल्या अम्बा जी धन्य है जिनके यहाँ नित्य साकेत धाम से आकर सर्वत्र व्यापक, अनादि व पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज प्रगट हुये हैं।

भरत लखन शत्रुघन कुमारा । कैकइ जनमि सुमित्रा दारा ॥
आनन्द महँ अति आनँद बाढ़ेउ । सुख सकेलि विधि अवधहिं आढ़ेउ ॥

तदनन्तर श्री भरत जी को महारानी श्री कैकेई जी ने तथा श्री लक्ष्मण कुमार जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी को श्री सुमित्रा जी ने जन्म दिया। उस समय श्री अयोध्यापुरी के आनन्द में भी अत्यानन्द की बाढ़ आ गयी, ऐसी प्रतीति हो रही थी मानों श्री ब्रह्मा जी ने सम्पूर्ण सुखों को एकत्रित कर श्री

अयोध्या पुरी में धकेल (प्रेषित कर) दिया हो।

तीन लोक प्रिय बजत बधाई। नृत्य गान करि दान महाई॥
लखन कहा सुनु वानर ईशा। राम चरित बहु सुने सुदीषा॥

तीनों लोकों में प्रियकर बधाइयाँ बजने लगीं तथा वृहद नृत्य–गान और दान सम्पन्न हुआ। श्रीलक्ष्मण कुमार ने कहा हे वानर राज श्री हनुमान! सुनिये– श्रीरामजी महाराज के चरित्रों को तो आपने कई बार सुना और दर्शन भी किया है।

जन्म प्रसंग राज लौं भाया। कपि कहि कैयक बार सुनाया॥
ताते इत संक्षेप सुनाई। कहौं कुँवर कीकथा सुहाई॥

पुनः आपके जिज्ञासा करने पर मैंने श्री राम जी महाराज का जन्म से राज्य तक का चरित्र कई बार आपको कह सुनाया है। इसलिये यहाँ पर "श्री राम चरित्र" को संक्षेप में सुनाकर मैं कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी की सुन्दर गाथा का वर्णन कर रहा हूँ।

कहत सुनत अनुराग बढ़ावनि। महा मोह तम घोर नशावनि॥
सहज विराग ज्ञान परकाशी। जनहिं बनावत आनन्द राशी॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी की कथा तो कहने और सुनने से प्रभु प्रेम विवर्द्धित करने वाली, महा मोह रूपी, घोर अन्धकार का विनाश करने वाली, सहज ही वैराग्न व ज्ञान का प्रकाशन करने वाली तथा अपने जनों को आनन्द की राशि बनाने वाली है।

दो०–राम जन्म के प्रथम ही, जनक सुवन आनन्द।
सम्हरि सकै नहिं शेष हूँ, को कवि कहै स्वछन्द॥६३॥

श्री राम जी महाराज के प्रगट होने के पूर्व से ही जनक कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय का आनन्द सम्हाले नहीं सम्हल रहा था, उस आनन्द का वर्णन हजार मुख वाले श्री शेषजी भी नहीं कर सकते फिर स्वतन्त्रता पूर्वक कोई कवि उसे कैसे कह सकता है।

सुभग शुक्ल नवमी परभाता। पगे प्रेम रस पुलकित गाता॥
मृदु तुतरात बनत नहिं बोलत। करि संकेत मगन मन डोलत॥

सुन्दर शुक्ल पक्ष की नौमी तिथि को प्रातः से ही कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी पुलकित शरीर हो प्रेमरस में डूबे हुए थे। यद्यपि उनसे अभी बोलते नहीं बनता था तथापि वे तोतली वाणी में बोलते हुए कुछ संकेत कर मन में मग्न हो घूम रहे थे।

मातु गोद पलका पुनि भ्राजैं। करतल देय हँसत रस राजैं॥
गुन गुन शब्द समुझ नहिं कोई। मनहुँ राम की स्तुति होई॥

वे कभी श्री अम्बा जी की गोदी में तथा कभी पालने में सुशोभित होते हैं। पुनः कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी हाथों से ताली बजाते हुए भगवद्रस में रँग जाते हैं। वे गुन–गुन शब्द करने लगते हैं जिसे कोई समझ नहीं पाता परन्तु ऐसा प्रतीत होता है मानों वे श्री राम जी महाराज की स्तुति कर रहे हों।

जन्म काल अंकहिं करि त्यागा । घुटरुन चलि शिशु विहरन लागा ॥
करि किलकारि बजाय थपोरी । पकड़ि खम्भ नाचैं ह्वै भोरी ॥

श्री राम जन्म के समय कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री अम्बा जी की गोद का त्याग कर दिया तथा घुटनों के बल चलते हुए भूमि में घूमने लगे। वे किलकारी भरते हुए ताली बजा–बजाकर मणि खम्भ को पकड़ विभोर हो नाचने लगे।

देखि दसा अस दासी दासा । होहिं मगन लखि पुत्र प्रकाशा ॥
कबहुँक गहि गल हार उतारी। फेंकि देंय काहुहिं कर धारी ॥

उनकी ऐसी अवस्था देख तथा उनकी अभिव्यक्ति को समझ कर सभी सेविकायें व सेवक प्रेम मग्न हो जाते हैं। कभी राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने गले का हार पकड़ कर उतार लेते हैं तथा उसे फेंक देते हैं जिसे कोई उठा कर हाथों में रख लेता है।

झिंगुली टोपी जटित नवीनी । दै काहुहिं पुनि दिय मणि वेनी ॥
मातु गोद गहि अम्ब अभूषण । फेंकत वितरत हरि के तोषण ॥

इस प्रकार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी झिंगुली तथा नग जटित नवीन टोपी किसी–किसी को देकर पुनः अपनी मणियों की वेणी किसी को दे देते हैं। श्री अम्बाजी की गोद में बैठे होने पर वे भगवान की प्रसन्नता के लिए श्री अम्बा जी के आभूषण आदि उतार व फेंक कर बाँटने लगते हैं।

भवन मध्य लघु वस्तु उठाई। देत काहु कहँ प्रेम बढ़ाई ॥
मणिगण निरखि बैठि तेहिं राशी। फेंकत दुहुँ कर बाल विलासी ॥

वे कभी महल के भीतर की छोटी–छोटी वस्तुयें उठाकर, किसी को प्रेम प्रपूरित हो दे देते हैं तो कभी मणियों को देख उनकी राशि (समूह) में बैठकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी दोनों हाथों से फेंकते (लुटाते) हुए बाल लीला करते हैं।–––

मनहुँ लुटावत द्रव्य विविध विधि । राम जन्म सुख मूल सबन सिधि ॥
यहिं विधि प्रेम विभोर कुमारा । बेसुध भो सुख वृद्धि अपारा ॥

–––मानो वे सुखों के मूल व सम्पूर्ण सिद्धियों के फल श्री राम जन्म के उत्साह में विभिन्न प्रकार से द्रव्य लुटा रहे हों। इस प्रकार प्रेम विभोर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी असीम आनन्दातिरेक के कारण स्मृतिहीन हो गये।

नृप बुलाय पठये मुनि ज्ञानी। कहेव बाल की दशा भुलानी ॥
सुन मुनि राम जन्म कह हेतू। बाल दशा अस भई अचेतू ॥

तब महाराज श्री जनक जी ने परम ज्ञानवान मुनि श्री याज्ञवल्क्य जी को बुला कर कुँवर की अचेतावस्था का वर्णन किया, उनकी अवस्था सुनकर मुनिवर श्री याज्ञवल्क्यजी बोले कि– श्रीराम जन्म होने के कारण कुमार की ऐसी अचेतावस्था हो गयी है।

राम नाम कीर्तन प्रिय भयऊ । लहि मुनि परश बाल उठि गयऊ ॥
लै निज अंक शिशुहिं मुनिराजा । हिय हरषे जनु पूर्ण स्वकाजा ॥

उस समय मुनिवर श्री याज्ञवल्क्य जी की आज्ञा से श्रीराम नाम का प्रिय संकीर्तन हुआ तब कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी गुरुवर श्री याज्ञवल्क्य जी का स्पर्श प्राप्तकर उठ बैठे। श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपनी गोद में लेकर हृदय में ऐसे हर्षित हुए जैसे वे आज पूर्ण काम हो गये हों।

दो०—कुवँर अंक मुनिनाथ लै, सोहत सुभग समोद ।
मनहु विधाता हर्ष युत, लिये सनक सुत गोद ॥६४॥

उस समय परम सुशोभन कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपनी गोद में लेकर निमिकुल आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज आनन्द पूर्वक ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों श्री ब्रह्मा जी हर्षित होकर अपने पुत्र सनकादिक कुमारों को गोद में लिये हों।

राम जन्म सुनि तिरहुत राजा । भयो हर्ष युत सहित समाजा ॥
परम मित्र दशरथ नृप केरे । भये सुवन बड़ भागन तेरे ॥

श्री राम जी महाराज का जन्म हुआ सुनकर तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज समाज सहित अत्यन्त हर्षित हुये कि मेरे परम मित्र चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के यहाँ बड़े सौभाग्य से पुत्रों का जन्म हुआ है।

यदपि निमंत्रण मोहिं पठइहैं । तदपि जन्म सुख वंचित बहिहैं ॥
कहिय नाथ का करिय उपाऊ। सुनत कहे भूपहिं मुनि राऊ ॥

यद्यपि चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज मुझे अवश्य ही निमंत्रण भिजवायेंगे तथापि, समय बीत जाने के कारण मैं जन्मोत्सव सुख से बंचित रह जाऊँगा। अतः हे नाथ! आप इसका उपाय कहिये। तब श्री जनक जी महाराज के वचनों को श्रवणकर मुनिराज श्री याज्ञवल्क्य जी श्री महाराज जनक जी से बोले–

मैं नृप अबहिं अवधपुर जाऊँ । जन्म महोत्सव लखि सुख पाऊँ ॥
योग गतिहिं आश्रय लै राजा । हमरे संग चलहु सुख साजा ॥

हे राजन! मैं सम्प्रति (अभी ही) श्री अयोध्या पुरी प्रस्थान कर रहा हूँ वहाँ श्रीराम जन्म होत्सव का दर्शन कर सुख प्राप्त करूँगा, अतएव हे नृपेन्द्र! आप भी सुख पूर्वक 'योग गति' का आश्रय लेकर हमारे साथ श्री अयोध्या पुरी चलें––

आन उपाय बनी नहिं बाता। समय थोर बाकी सुखदाता ॥
आयसु शिर पै नाथ सुहानी। संग चलहुँ मोरेउ मन मानी ॥

––क्योंकि वह सुखदायक समय अल्प बचने के कारण, किसी अन्य उपाय से बात नहीं बनेगी। श्री जनक जी महाराज ने कहा– हे नाथ! आपकी सुन्दर आज्ञा शिरोधार्य है, मेरे मन की भी यही इच्छा थी कि आपके साथ ही श्री अयोध्या पुरी चलूँ।

दो०–अस कहि रानि बुलाय नृप, सचिवहिं आयसु दीन्ह ।
राम जन्म उत्सव करहु, गवन अवध हम कीन्ह ॥६५॥

ऐसा कहकर श्री जनक जी महाराज ने अपनी महारानी श्री सुनयना जी को बुलाया तथा मंत्री (सचिव) को आज्ञा दी– आप, श्री राम जी महाराज का जन्मोत्सव करें, हम श्री अयोध्या पुरी जा रहे हैं।

राम जन्म सुनि सुखद सुनयना । महा महोत्सव कियो सचयना ॥
यथा भयो प्रिय पुत्र महोत्सव । पूरि अनन्द रह्यो जय जय रव ॥

श्री राम जी महाराज के सुख प्रदायक जन्म का समाचार सुनकर महारानी श्री सुनयना अम्बा जी ने उसी प्रकार आनन्दपूर्वक महान महोत्सव कराया जिस प्रकार उनके प्रिय पुत्र कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी का जन्मोत्सव हुआ था। श्री मिथिलापुर में श्री राम जन्मोत्सव में आनन्द परिपूर्ण जय–जय नाद सर्वत्र व्याप्त हो गया।

जन्म महोत्सव लखतहिं बाढ़ा । कुँवरहिं प्रेम प्रमोद प्रगाढ़ा ॥
पूरित विधु लखि यथा पयोनिधि । बाल भयो तिमि प्रेम प्रभा निधि ॥

श्री राम जन्म महोत्सव का दर्शन करते ही कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में प्रगाढ़ प्रेमानन्द की वृद्धि हो गयी। जिस प्रकार पूर्ण चन्द्र को देखकर सागर की अवस्था होती है वैसे ही बालक श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम–प्रकाश से परिपूर्ण हो गये थे।

बरहौं करि मिथिलेश भुआरा । आये भवनहिं करत बिचारा ॥
वरणे उत्सव सुख सुख काला । यथा सुहावन दशरथ लाला ॥

श्री मिथिलेश जी महाराज श्री राम जी महाराज का बारहों उत्सव कर उनका चिन्तन करते हुए अपने भवन आ गये तथा श्री राम जन्मोत्सव के सुख, सुअवसर और दशरथ नन्दन श्री राम जी महाराज की सुन्दरता का वर्णन किये।

आनन्द महा अकथ कहि गायो । सुनि विस्तार रानि सुख पायो ॥
बहुरि कह्यो श्री जनक भुआरा । वचन प्रमाण रानि सुखकारा ॥
योगि राज मुनि मोहिं बताई । तव जामाता राम गोसाँई ॥

श्री अयोध्यापुरी के अकथनीय व महान आनन्द को श्री जनक जी महाराज ने बखान किया जिसे विस्तार पूर्वक सुनकर महारानी श्री सुनयना जी ने अत्यधिक सुख प्राप्त किया। पुनः श्री जनक जी महाराज ने कहा हे महारानी! यह सब श्री गुरुदेव जी के उन्हीं सुखकारी वचनों का प्रमाणीकरण है, जिसमें हमारे आचार्य योगिराज मुनिवर श्री याज्ञबल्क्य जी ने मुझे पूर्व में बताया था कि श्री राम जी आपके जँवाई (दामाद) होंगे।

दो०–पुत्री मोरे एक नहिं, सुनहु प्रिया सुख सार ।
आदि शक्ति पति राम हैं, यह संदेह खभार ॥६६॥

हे समस्त सुखों की सारभूता प्रिये श्री सुनयना जी! सुनिये– श्री राम जी महाराज तो परमाद्या शक्ति के पति हैं, किन्तु मेरे अब तक कोई भी पुत्री नहीं है, मुझे यही सन्देह और दुख हो रहा है।

सुनि बोली शुचि सुखद सुनयना। मुनि वर वचन सदा सत ऐना ॥
सदा भक्त भावन भगवाना। करिहैं सो कल्याण महाना ॥

श्री जनक जी महाराज के वचनों को श्रवण कर परम पवित्र सुख प्रदायिनी श्री सुनयना जी ने कहा– हे नाथ! मुनिवर श्री याज्ञवल्क्यजी महाराज के वचन सदैव सत्य के सदन ही हैं तथा भगवान सदैव भक्तों की भावनाओं को पूर्ण करने वाले हैं अतः वे जो भी करेंगे उसमें हमारा महान कल्याण होगा।

अस विचारि सब सोच बिहाई। करहिं राम पर प्रीति सुहाई ॥
बालक सुनि पितु मातु सुबानी। किलकत हँसत बजाय स्वपानी ॥

ऐसा विचार कर आप सभी चिन्ताओं को छोड, श्रीरामजी महाराज के चरणों में सुन्दर प्रेम करें। बालक श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने माता–पिता के ऐसे सुन्दर वचनों को सुनकर ताली बजाते हुए हँसते तथा किलकने लगते हैं।

बाल केलि रस भाव अपारा। करत फिरत सुन्दर सुकुमारा ॥
नित नव चरित नेह सरसाने। लखि हर्षहिं पितु मातु सयाने ॥

इस प्रकार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी रस से परिपूर्ण भावमयी असीम तथा सुन्दर बाल लीलायें करते फिरते थे। उनकी नित्य, नवीन प्रेम से सनी हुई लीलाओं को देख–देखकर उनके परम चतुर माता–पिता श्री सुनयना जी व श्री जनक जी महाराज हर्ष से भर जाते थे।

पुत्र राग जानब जनि भाई। यहाँ राम पद प्रीति अमाई ॥
राम भक्ति जाके हिय माहीं। ब्रह्मादिक पूजहिं तेहिं काहीं ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–हे भाइयो! आप, इसे पुत्र आशक्ति (मोह) नहीं समझियेगा, यहाँ तो श्रीरामजी महाराज के चरणों की निष्छल प्रीति ही है अर्थात् कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को श्री राम जी महाराज का प्रेमी समझकर ही श्री जनक जी महाराज व श्री सुनयना अम्बा जी उनसे प्रेम कर रहे थे। क्योंकि श्रीरामजी महाराज की भक्ति जिसके हृदय में होती है उसकी पूजा, श्री ब्रह्मा जी आदि सभी देवता भी करते हैं।

दो०–नाते राम कृपाल के, करै जगत पर प्रीति।
सो नहि राग कहावई, रहै राग रिस जीति ॥६७॥

परम कृपालु श्रीरामजी महाराज के सम्बन्ध से की गयी सांसारिक प्रीति भी 'मोह' नहीं कहलाती बल्कि वह मोह और क्रोध को जीतने वाली होती है।

यहि विधि कछुक काल चलि गयऊ। बढ़ेव कुँवर सब कहँ सुख दयऊ ॥
मुण्डन कर्ण वेध पितु कीन्हे। विप्रन दान विविध विधि दीन्हे ॥

इस प्रकार कुछ समय और व्यतीत हुआ तब सभी को सुख प्रदान करते हुए कुँवर श्री

लक्ष्मीनिधि जी बड़े हुए तदनन्तर श्री मान दाऊ जी ने उनका मुण्डन और कर्ण–वेध संस्कार किया तथा बिविध प्रकार से ब्राह्मणों को दान दिया।

राज वेष के वस्त्र विभूषण। विहरत पहिरि जनक कुल पूषण॥
अस्त्र शस्त्र लघु हर्षित लैके। खेलत खेल प्रेम रसम्बैके॥

श्री विदेह वंश के सूर्य कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी राजकीय परिधान के वस्त्र व आभूषण पहन कर विहरण करने लगे हैं। वे छोटे–छोटे अस्त्र–शस्त्र लेकर हर्षित हो प्रेम–रस में पगे हुए क्रीड़ायें किया करते हैं।

मात्र विमात्र जनक जे भाई। तिनके पुत्र सकलसुखदाई॥
लक्ष्मीनिधि सह खेलत खेला। पगि पगि मधुर भाव भल मेला॥

श्री जनक जी महाराज के सहोदर और परिवार के जो अन्य भाई हैं उन सभी के सुख प्रदायक पुत्र कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ माधुर्य भाव में पग, मिल–जुलकर खेल खेला करते थे।

औरहु सखा सनेही बालक। खेलहिं संग जान रस पालक॥
पूर्व सखा गुनि कुँवर प्रवीना। प्यारत सबहिं प्यार कर पीना॥
आपनि हारि सखन की जीती। देखि कुँवर सुख लहत अतीती॥

श्री महाराज जनक जी के सखाओं और प्रेमियों के अन्यान्य बालक भी कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपना रस पालक समझकर उनके साथ खेलते थे। परम दक्ष कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी को अपना पूर्व सखा समझ प्रगाढ़ प्रेम करते हुए अतिशय प्यार व दुलार करते थे। कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी हार व अपने सखाओं की जीत को देखकर अत्यन्त सुख प्राप्त करते थे।

दो०–हरि कीरति युत बोल प्रिय, मधुमय श्रवण सुनाय।
चित्ताकर्षहिं सबन्ह के, देवहिं प्रेम छकाय॥६८॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मुख से सदैव भगवान की कीर्ति से युक्त प्रिय व मधुर वाणी ही लोगों के श्रवणों में सुनायी पड़ती थी एवं सभी के चित्त को आकर्षित कर वे प्रेम से आप्लावित कर देते थे।

कहूँ चित्र कहुँ पथरहिं लेई। कहुँ मणि खम्भ देव के भेई॥
सखन सहित पूजहिं बहु पूजा। करहिं आरती जय जय गूँजा॥

वे कभी किसी चित्रपट को, तो कभी पत्थरों को लेकर तथा कभी मणि खम्भों को, देवताओं के भाव से अपने सखाओं सहित विभिन्न प्रकार से पूजते व उनकी आरती उतारते थे, उस समय जय जय का शोर गुंजरित होता रहता था।

करि प्रणाम स्तुति अनुसारी। देखि मातु हिय होंय सुखारी॥
कबहुँ बैठि धरि ध्यान सुहाई। अवध चरित देखैं सुखदायी॥

पुनः वे प्रणाम कर उनकी स्तुति करते थे जिसे देखकर श्रीअम्बाजी का हृदय सुख से भर जाता था। कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी कभी बैठकर श्री अयोध्यापुरी के सुख प्रदायक चरित्रों का सुन्दर ध्यान लगाकर दर्शन किया करते थे।

लीला ललित लखत सुधि भूलैं । कहत सखन सन सोइ अतूलैं ॥
दिव्य धाम कहुँ झाँकी झाँकैं । मध्य हृदय महँ सत सुख छाकैं ॥

तब वहाँ की सुन्दर लीलाओं का दर्शन कर वे अपनी स्मृति भूल जाते तथा बाद में सखाओं से उन्हीं अतुलनीय लीलाओं का बखान करते थे। कभी अपने कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने हृदय के बीच दिव्य धाम श्री साकेत के दृष्यों का दर्शन कर सच्चे सुख में छक जाया करते थे।

यहिं विधि कुँवर नके पौगण्डा। दिन प्रति बाढ़त प्रेम अखण्डा ॥
राजदूत अभ्यागत साधू । विप्र महाजन जाचक गाधू ॥

इस प्रकार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी पौगण्डावस्था (पाँच से दस वर्ष की अवस्था) पार कर गये एवं उनके हृदय में दिन प्रति–दिन भगवान के चरणों का अखण्ड प्रेम बढ़ता ही रहा। राजदूत, अतिथि, सन्तजन, ब्राह्मण, व्यापारी, भिक्षार्थी तथा गवैये आदि–––

दो०–देश देश बागत फिरत, अपने रहनि स्वभाय ।
कहुँ मिथिला कहुँ अवध पुर, सुख सह आवत जाय ॥६९॥

–––जो विभिन्न देशों में अपनी रहनी और स्वभाव के अनुसार भ्रमण करते रहते हैं वे कभी श्री मिथिला तथा कभी श्री अयोध्या पुरी सुखपूर्वक आते जाते रहते थे।

चरित राम के कहैं बखानी । सुनहिं जनक अतिशय सुखमानी ॥
क्रमशः उत्सव सकल राम के। जनक मनावहिं सुख सुधाम के ॥

वे श्रीराम जी महाराज के चरित्रों का बखान करते थे जिन्हे सुन–सुनकर श्री जनक जी महाराज अत्यधिक सुख मानते थे। श्री जनक जी महाराज, सुख के धाम श्री राम जी महाराज के सभी उत्सवों को क्रमवार मनाया करते थे।

लक्ष्मीनिधि चित चारु अनन्दा । हृदय गगन बाढ़े रस चन्दा ॥
विविध चरित करि बालन संगा । पुरजन चित्त रँगैं रस रंगा ॥

जिन्हें देखकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मन में सुन्दर आनन्द और हृदयाकाश में रस रूपी चन्द्रमा बढ़ता रहता था। वे बाल सखाओं के साथ विभिन्न प्रकार की लीलायें कर पुरजनों के चित्त को भगवद्रस के रंग में रँगते रहते थे।

बाल चरित पुनि राम राय के। कुँवर करत अभिनय उछाय के ॥
सेवक सखा सरस सुख पावैं। जननि जनक लखि लखि बलि जावैं॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री राम जी महाराज की बाल लीलाओं का अत्यन्त उत्साह पूर्वक अभिनय करते थे जिसे देख–देखकर उनके सेवक और सखा गण रसमय हो सुख प्राप्त करते तथा

श्री अम्बा जी व श्रीमान् दाऊ जी महाराज बार–बार बलिहारी जाते थे।

समय सुपाइ भयो उपनयना । गुरु गृह गयो पढ़न सुत चयना ॥
सत शिष पाइ गुरुहिं संतोषा । लगे पढ़ावन तन मन पोषा ॥

सुन्दर समय प्राप्त होने पर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का उपनयन संस्कार हुआ और वे आनन्द पूर्वक श्री गुरु आश्रम विद्याध्ययन के लिए गये। गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी सदशिष्य पाकर संतुष्ट हुए तथा उनके शरीर व मन का पोषण करते हुये विद्याध्ययन कराने लगे।

कुँवर सकल सेवा अनुसारैं। गुरु आज्ञा मनहूँ नहिं टारैं ॥
धेनु चरावत समिधा लावत। श्रद्धा युत बहु काज बनावत ॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी गुरु आश्रम की सभी सेवायें करते थे तथा श्री गुरुदेव जी की आज्ञा को कभी मन से भी नहीं टालते थे। वे गायें चराते, यज्ञ के लिए समिधा (लकड़ी) लाते तथा श्रद्धापूर्वक बहुत से कार्य सँवारा करते थे।

दो०–आत्म निवेदन निष्कपट, अनुवृत्ती अति प्रीति ।
गुरुहिं कियो वश में कुँवर, अपने प्रेम प्रतीति ॥७०॥

कपट रहित हो आत्म निवेदन, अत्यन्त प्रीतिपूर्वक आचार्यानुवृत्ति एवं अपने प्रेम व विश्वास के द्वारा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी को अपने वश में कर लिया था।

गुरु प्रसाद सब विद्या पाई । सुप्तहिं जनु कोउ देय जगाई ॥
बची न विद्या कला सुहाई । वरी न कुँवरहिं जो बरियाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री गुरुदेव जी के कृपा प्रसाद से सभी प्रकार की विद्यायें उसी प्रकार प्राप्त कर लिये थे जैसे उनके हृदय में सोई हुई विद्याओं को कोई जाग्रत कर दे। कोई भी विद्या व सुन्दर कला शेष नही थी, जिसने कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी का हठ पूर्वक वरण न किया हो।

सकल शास्त्र अरु वेद पुराना । भयो यथारथ सब कर ज्ञाना ॥
भक्ति ज्ञान वैराग्य अनूपा । सब कर कुँवर यथार्थ स्वरूपा ॥

उन्हें सम्पूर्ण शास्त्रों व वेद–पुराणों का यथार्थ ज्ञान (बोध) हो गया था। कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी तो भक्ति, ज्ञान और अनुपम वैराग्य आदि सभी वेद वर्णित भगवत्प्राप्ति के साधनों के यथार्थ स्वरूप ही थे।

योग सिद्ध तन तेज विराजा । अपर अग्नि मानहु महि भ्राजा ॥
कर्म रहस्य अनूपम ज्ञाना । लखि लखि मुनि सब अचरज माना ॥

उनके शरीर में सहज ही योग की सिद्धि का तेज ऐसा सुशोभित होता रहता है मानों दूसरे अग्निदेव ही पृथ्वी पर विराजमान हों। उनके कर्मो के रहस्य से युक्त अनुपमेय ज्ञान को देखकर सभी मुनिजन आश्चर्य मानते थे।

ब्रह्म मुहूरत महँ नित जागत । ब्रह्म राम चिन्तन रस पागत ॥
प्रातकाल उठि दण्ड प्रणामा । गुरु पितु मातुहिं करत ललामा ॥

करि स्नान नेम निर्वाही। हरि गुरु पितु सत पूजि सदाही॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी नित्य ही ब्रह्म मुहूर्त में जग कर, पूर्ण ब्रह्म श्रीरामजी महाराज का चिन्तन करते हुए भगवद्रस में पगे रहते हैं। प्रातः काल उठकर श्री गुरुदेव जी, श्रीमान् दाऊ जी व श्री अम्बा जी को सुन्दर दण्डवत प्रणाम करते तथा स्नान कर नित्य नियमों का निर्वाह करने के पश्चात् श्री भगवान, श्री गुरुदेव तथा पिता श्रीमान् जनक जी महाराज का भाव पूर्वक नित्य पूजन किया करते हैं।

दो०–विप्र धेनु सुर सन्त महँ, राखत अति अनुराग।
सीय राम मय जग लखत, राग द्वेष सब त्याग॥७१॥

वे ब्राह्मण, गाय, देवता व सन्त जनों के प्रति अत्यन्त अनुराग रखते हैं तथा सम्पूर्ण संसार को श्री सीताराम जी का स्वरूप समझते हुए मोह और द्वेष आदि सभी विकारों का त्याग किये हुए हैं।

राम प्रेम रत नित्य पारषद। जिनहिं चहत प्रभु नित आपन वद॥
महा भाव रस रसे सुधीरा। योग विराग ज्ञानमय थीरा॥

श्री राम जी महाराज के प्रेम में उन्मत्त जो नित्य पार्षद हैं, जिन्हें प्रभु श्री राम जी महाराज नित्य अपना समझकर चाहते हैं, जो सदैव ही महा भाव (प्रेम की सर्वोच्च स्थिति) में समाये प्रेम रस में रसे हुए सुन्दर धीर पुरुष हैं तथा जो योग, वैराग्य व ज्ञानमयी दृढ़ स्थिति से परिपूर्ण हैं–––

जेहिं विधि रहनि करनि सुखदाई। भगति विराग ज्ञान निपुनाई॥
तेहिं विधि कुँवर रहनि अति प्यारी। संमत शास्त्र सुसन्त सम्हारी॥

–––उन सभी की जैसी सुख प्रदायिका रहनी–करनी, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य तथा निपुणता होती है उसी प्रकार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अतिशय प्रिय, शास्त्र–सम्मत व सन्तानुमोदित रहनी–करनी है।

मनहुँ राम परमारथ रूपा। प्रेम भाव के सहज स्वरूपा॥
कुँवर हृदय करि थान सुरीता। करत करावत भाव पुनीता॥

उन्हें देखकर ऐसी प्रतीति होती थी मानों परमार्थ–स्वरूप श्रीरामजी महाराज स्वयं अपने सहज प्रेम व भाव के स्वरूप कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी के हृदय में सुदर विधिपूर्वक स्थान बनाकर निवास करते हैं तथा पवित्र भाव से सभी कार्य करते और कराते रहते हैं।

जननि जनक आयसु प्रिय पाई। राज काज देखहिं सुखदाई॥
कार्य करैं सब बनि निष्कामी। इच्छाऽनिच्छा नहिं मन जामी॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने माता–पिता की प्रिय आज्ञा पाकर राज्य कार्य की देख–रेख करते हुये उन्हे सुख प्रदान करते हैं। वे सभी कार्य निष्काम भाव से किया करते एवं उनके मन में कभी भी कोई इच्छा और अनिच्छा उत्पन्न ही नहीं होती है।

दो०—प्रभु सेवा शुचि जानि जिय, नित नव मुख उल्लास ।
रहहिं रहसि व्यवहार रत, हरि अर्पण बुधि वास ॥७२॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी कार्यो को अपने हृदय में भगवान की पवित्र सेवा समझकर करते और नित्य नवीन मुखोल्लास में भरकर, भगवदर्पण बुद्धि से आनन्दपूर्वक व्यवहार में निरत रहते थे।

विप्र साधु सुर शास्त्र पुराना । जननि जनक हरि कृपा महाना ॥
पाइ नितहिं नित रहैं प्रसन्ना । निमिकुल वीर होहिं नहिं खिन्ना ॥

ब्राह्मण, सन्त, देवता, शास्त्र, पुराण, माता–पिता और भगवान की महान कृपा को नित्य प्राप्तकर निमिकुल प्रवीर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी नित्य प्रति प्रसन्न रहते तथा कभी भी उदासीनता को प्राप्त नहीं होते थे।

परम तत्व समुझत समुझावत । भ्रात सखन सन मोद बढ़ावत ॥
कहुँ सतसंग मोद मन भरहीं । कहुँ इकान्त हरि कीर्तन करहीं ॥

वे श्री राम जी महाराज के परम तत्व को समझकर, भ्राताओं व सखाओं को समझाते हुए उनके मन में आनन्द बढ़ाते रहते थे। कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी कभी प्रसन्नमन हो सत्संग करते तो कभी एकान्त में भगवान का कीर्तन किया करते थे।

प्रभु वियोग कहुँ विह्वल बाला । सात्विक भाव बढ़ै सुविशाला ॥
राज सभा कहुँ बैठहिं जाई । कार्य करैं कछु आयसु पाई ॥

कभी कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्री राम जी महाराज के वियोग में विह्ववल हो जाते तथा उनके हृदय में महान सात्विक भाव बढ़ जाते थे। कभी वे जाकर राज्य सभा में बैठते तथा श्री महाराज की आज्ञा पाकर कुछ राज–कार्य किया करते थे।

पुरजन परिजन प्रजा सचिव गन । कुँवरहिं लखिलखि होहिं मगन मन ॥
सबहिं सुवन पर प्रीति अथोरी । कुँवरहुँ रहैं सबहिं कर जोरी ॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देख–देखकर सभी प्रजा पुरवासी, परिवार के जन तथा मन्त्रीगण आदि आनन्द मग्न रहते थे। अपने राज कुँवर पर सभी की अत्यन्त प्रीति थी तथा कुँवर भी सभी लोगों को विनम्रतापूर्वक सम्मान प्रदान करते रहते थे।

दो०—यहि विधि कुँवर विदेह के, बनि परमारथ रूप ।
चरित करत मिथिला पुरी, सुखकर अमल अनूप ॥७३॥

इस प्रकार श्री विदेहराज जी महाराज के कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी परमार्थ स्वरूप बन कर श्री मिथिला पुरी में सुखकारी निर्मल व अनुपमेय चरित्र कर रहे थे।

जनक सुवन इक समय बिचारी । गुरु आश्रम पहुँचे अविकारी ॥
दूरहि ते गुरु दरशन पाई । भये मुदित जल नयनन छाई ॥

एक समय हृदय में विचार कर जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी निर्विकार भाव से श्री गुरु–आश्रम पहुँचे। दूर से ही श्री गुरुदेव जी के दर्शन पाकर वे आनन्दित एवं प्रेमाश्रु प्रपूरित हो गये।

शीश नाइ पुनि पूजा कीन्हीं। सह स्तुति परदक्षिण दीन्ही ॥
करि दण्डवत खड़े कर जोरी । लहि अनुशासन बैठि बहोरी ॥

उन्होंने निमिकुल गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी के चरणों में सिर झुका प्रणाम किया पुनः उनकी पूजा कर स्तुति सहित प्रदक्षिणा दी एवं दण्डवत कर हाथों को जोड़ खड़े हो गये अनन्तर उनकी आज्ञा पाकर बैठ गये।

चकुच सहित नत मस्तक भ्राजत । प्रश्न करत कछु मन महँ लाजत ॥
यागबलिक लखि भाव कुँवर के । विनय शील संकोच सुढ़र के ॥

वे संकोच से युक्त, शिर झुकाये हुए विराजे थे एवं कुछ प्रश्न करते हुए मन में संकुचित हो रहे थे। श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के विनय, शील तथा संकोच से युक्त सुन्दर भावों को देखकर–

पाणि फेरि बोले मृदु वानी। भाव भक्ति आनन्द अघानी ॥
तजि संकोच कहहु मन बाता। तुम सन कछु दुराव नहि ताता ॥
तुम समान शिष गुरुहिं पियारे। सत्य सत्य यह वचन विचारे ॥

––उनके शिर में अपना हस्त कमल फेरते हुए भाव, भक्ति और आनन्द से सन्तुष्ट हो कोमल वाणी से बोले! हे तात! कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप संकोच छोड़कर अपने मन की बात कहें क्योंकि आपसे मेरा कुछ भी छिपाव नहीं है। आप हमारे इन वचनों को पूर्णतया सत्य समझें कि आपके समान शिष्य ही गुरुदेव को परम प्रिय होते हैं।

दो०–सब विधि गुरुहिं प्रसन्न लखि, कुँवर हृदय हरषान ।
हाथ जोरि शिर नाय पुनि, बोले वचन अमान ॥७४॥

अपने ज्ञान प्रदाता श्री गुरुदेव भगवान जी को सभी प्रकार से प्रसन्न देखकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी, हृदय में हर्षित हुये पुनः हाथों को जोड, शिर झुका प्रणाम कर दैन्य–युक्त वाणी से बोले।

कृपा सिन्धु मुनिनाथ स्वभाऊ। अति उदार जानत सब काऊ ॥
अनधिकार कछु करौं ढिठाई। छमिहहिं गुरु शिष्यन सुखदाई ॥

हे कृपा के सागर मुनिनाथ आचार्य श्रेष्ठ! आप का स्वभाव तो अत्यन्त ही उदार है तथा आप सर्व प्रकार का ज्ञान रखने वाले हैं। मैं अधिकारी न होते हुए भी कुछ धृष्टता कर रहा हूँ उसे शिष्यों को सुख प्रदान करने वाले हमारे गुरुदेव क्षमा करेंगे।

प्रभु प्रसाद लहि ज्ञानहिं तारद । भे निमि वंशी आत्म विशारद ॥
कर्म ज्ञान वैराग्य सुयोगा। सहज वसैं हिय करतेउ भोगा ॥

आपकी कृपा प्रसाद को प्राप्त कर सभी निमिवंशी “उद्धारक ज्ञान” प्राप्त करने वाले तथा आत्म

विशारद हो गये हैं। उनके हृदय में कर्म, ज्ञान, वैराग्य और सुन्दर योग आदि साधन भोगों का उपभोग करते रहने पर भी सहज ही निवास किये रहते हैं।

भगति भावमय गृहहिं सुहावन । भये विदित श्रुति महँ जग पावन ॥
राउर कृपा आप पर जानी । पूछहुँ नाथ कहहु हित बानी ॥

वे सभी अपने भवनों में निवास करते हुए भी संसार को पवित्र करने वाले, भक्ति व भाव के स्वरूप हो गये हैं, यह बात श्रुतियों में विदित है। हे नाथ! ऐसे आचार्य, आप श्री की अपने ऊपर असीम कृपा जानकर मैं कुछ जिज्ञासा कर रहा हूँ, आप मेरे हित की वार्ता का विनियोग करे।

इदं विश्व किं अहै महाना । प्रगट भयो कस कहहु प्रमाना ॥
केहिं विधि नाश विश्व पुनि पावै । जा महँ जीव परे दुख दावै ॥

हे नाथ! यह महान विश्व (संसार) क्या है? किस प्रकार प्रगट हुआ है तथा जिसमें पड़ कर जीव दुखों के भार से दबा रहता है वह विश्व, किस प्रकार नाश को प्राप्त होता है? अपना निश्चय बखान करने की कृपा करें।

जीव स्वरूप कहहिं समुझाई । देवहिं माया भेद बताई ॥
ईश स्वरूप नाथ पुनि गावैं । तत्व परम परमार्थ बतावैं ॥

पुनः हे नाथ! आप जीव के स्वरूप को समझायें, माया के प्रकारों का भी बखान करें तथा ईश्वर के स्वरूप का गायन कर मुझे परम तत्व परमार्थ का वोध करावें।

केहिं विधि मिलै परम परमारथ । बोध करावैं मोहि यथारथ ॥
अस कहि कुँवर चरण लपटाना । जगी जिगासा जनु हनुमाना ॥

वह परम परमार्थ किस प्रकार प्राप्त होता है, मुझे उसका वास्तविक बोध करावें। ऐसा कहकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री गुरुदेव जी के चरणों से लिपट गये। हे श्री हनुमानजी, उस समय ऐसी प्रतीत हो रही थी जैसे उनके हृदय में विशेष जिज्ञासा ही जाग्रत हो गयी हो।

दो०—कुँवरहिं तुरत उठाय के, बोले श्री मुनिराज ।
सुनहु लाल चित चेत दे, प्रश्न सकल शुभ साज ॥७५॥

मुनिराज श्री याज्ञवल्क्य जी, अपने चरणों में लिपटे कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को शीघता पूर्वक उठाकर बोले– हे लाल लक्ष्मीनिधि! आप ध्यान पूर्वक सुनें, आपके सम्पूर्ण प्रश्न शुभ प्रदायक हैं।

सिद्ध बोध तुम यहि जग जाये । जानन योग सबै गुण पाये ॥
गुरु मुख ज्ञान अधिक विस्तारी । सो मैं तुम सन कहौं बिचारी ॥

हे राज कुमार! यद्यपि आप सिद्ध और बोध स्वरूप ही इस संसार में जन्म धारण किये हैं और सभी जानने योग समस्त गुणों को प्राप्त कर लिये हैं तथापि श्री गुरुदेव के मुख से विनिश्रित ज्ञान अधिक विस्तार वाला एवं प्रभावी होता है इसलिए मैं यह बात विचार कर बखान कर रहा हूँ।

तेल विन्दु जिमि जल विस्तारै । तिमि मम वाणी हियहिं प्रसारै ॥
गुरू वरण कर कारण एहा । शिष्य लहै परमारथ नेहा ॥

जिस प्रकार तेल की बूँद जल में गिरते ही फैल जाती है उसी प्रकार मेरी वाणी तुम्हारे हृदय में प्रसारित होगी। हे कुमार! आचार्य वरण करने का उद्देश्य भी यही है कि शिष्य परम परमार्थ–प्रेम प्राप्त कर ले।

सोई गुरु जो बोध बतावै । ब्रह्महिं करि प्रत्यक्ष दिखावै ॥
कारण यहि महँ शिष्य सुबुद्धी । प्रीति प्रतीति सुरीति सुशुद्धी ॥

पुनः यथार्थतः आचार्य वही है जो परमार्थ तत्व का बोध कराता है तथा ब्रह्म को भी प्रत्यक्ष कर नेत्रों का विषय बना देता है, परन्तु इसमें कारण शिष्य की बुद्धि, प्रीति, प्रतीति, सुरीति तथा शुद्धतापूर्वक किया हुआ अभ्यास है।

बरषहिं जलद भूमि जिमि वारी । ऊँचे थल इक बुन्द न धारी ॥
सद्गुरु शिष्य सुजान मिलापा । देय मिटाय सकल संतापा ॥

जिस प्रकार बादल भूमि में सर्वत्र समान रूप से वर्षा करते हैं लेकिन ऊँचा स्थान एक बूँद भी नहीं धारण कर पाता है उसी प्रकार अपात्र शिष्य आचार्य कृपा का लाभ नही ले पाता। श्री सद्गुरुदेव व सद्शिष्य का मिलन जीवों के सभी प्रकार के अत्यान्तिक दुखों को मिटा देने वाला होता है।

दो०–अब प्रश्नोत्तर सुनहु सब, कहौं यथार्थ स्वरूप ।
जासु ज्ञान अवशेष नहिं, जानन वस्तु अनूप ॥७६॥

अब आप अपने सभी प्रश्नों के उत्तर श्रवण करें, मैं उनके यथार्थ स्वरूप का बखान कर रहा हूँ जिसका ज्ञान होने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रहता तथा जो अनुपमेय व जानने योग्य तत्व है।

जग महँ जीव भाँति द्वै जानी । शास्त्र कहैं ज्ञानी अज्ञानी ॥
अग्यन कहँ जस जगत लखाई । सो सब सद्य कहौं समुझाई ॥

इस संसार में दो प्रकार के जीव हैं जिन्हें शास्त्र ज्ञानी व अज्ञानी कहते हैं, अज्ञानियों को यह संसार जिस प्रकार दिखाई देता है, मैं उसे शीघ्र ही समझाकर बखान कर रहा हूँ।

तिनकी दृखि दुखद संसारा । सत ब्रह्महिं जग असत पुकारा ॥
भ्रमवश सतहिं असत करि मानी । असतहिं सत गिनि कीन्हेउ हानी ॥

अज्ञानियों की दृष्टि में यह दुख प्रदायक संसार ही सत्य है तथा ब्रह्म (भगवान) तो मात्र असत्य (कल्पना) है, ऐसा कहकर वे बखान करते हैं। ऐसे लोग (अज्ञानी) भ्रम के वशीभूत होकर सत्य को असत्य तथा असत्य को सत्य समझ सभी प्रकार से अपनी हानि किये रहते हैं।

रज्जु माहिं किय सर्प प्रतीती । ताते दुखद सदा सह भीती ॥
ठूँठहि गुनहिं प्रेत बड़ भारी । रहैं सदा तेहिं हेतु दुखारी ॥

अज्ञानियों ने रस्सी में सर्प की प्रतीति कर ली है इसलिए यह रस्सी इन्हे दुख प्रदान करने वाली है तथा इसी कारण से ये सदैव भयभीत बने रहते हैं। ये पेड़ के ठूँठ को बड़ा भारी प्रेत समझकर उसी के लिए सदैव दुखी बने रहते हैं।

रविकर निकर परी जब रेती । जल मय सरिता गुन्यो अचेती ॥
जल बिनु तहँ नित मरै पियासे । ज्ञान बिना नहिं सो भ्रम नासे ॥
रजत भान उपजै नित सीपी । सो किमि सुख के होहिं समीपी ॥

जब गर्मी में सूर्य की किरणें रेत में पड़ती है तो मृग इसे अज्ञान के कारण जल से भरी नदी समझ लेते हैं तथा दौड़ते हुये वहाँ जल को खोजते–खोजते थक–हार कर मर जाते हैं, उनका सन्देह बिना ज्ञान हुए समाप्त नहीं होता। जिन्हें नित्य सीपी को देखकर चाँदी का आभास होता है वे किस प्रकार सुख के समीप हो सकते हैं अर्थात् उन्हे किसी प्रकार सुख नही प्राप्त हो सकता।

दो०–स्वप्नहिं जानत सत्य करि, बूड़े करि बिपरीत ।
शाश्वत दुखमय जगत महँ, कीन्हें प्रीति प्रतीति ॥७७॥क॥

ऐसे लोग स्वप्न को ही सत्य समझ, भागवत धर्म के विपरीत आचरण कर संसार सागर में ही रचे– पचे रहते हैं तथा नित्य दुख स्वरूप संसार को सत्य समझ उसी में प्रेम व विश्वास किये रहते हैं।

सत चित आनँद ब्रह्म महँ, जग आरोपित कीन्ह ।
महा मोह भ्रम जाल परि, खोय अपनपौ दीन्ह ॥ख॥

पुनः अज्ञानी जन सच्चिदानन्दात्मक ब्रह्म में संसार को आरोपित कर लेने के कारण महान मोह के भ्रम जाल में फँस कर अपना सर्वस्व गवाँये रहते हैं।

रज्जु माहिं जिमि सर्प न आहीं । ठूँठ मध्य नहि प्रेत लखाहीं ॥
झूँठ अहै जिमि रविकर सरिता । रजत झूँठ जिमि सीपी भ्रमिता ॥

जिस प्रकार यथार्थतया रस्सी में सर्प नहीं होता, पेड़ के ठूँठ में प्रेत दिखते हुये भी नही रहता, सूर्य किरणों से बनी नदी जिस प्रकार झूँठी है और जिस प्रकार सीपी में चाँदी का भ्रम असत्य होता है।

तथा ब्रह्म महँ जगत न भाई । केवल भ्रम वश बुद्धि बुझाई ॥
स्वप्न सत्य नहिं कौने काला । तिमि जग जानहु निमिकुल पाला ॥

उसी प्रकार हे तात! ब्रह्म में किंचित भी संसार नहीं है वह तो केवल भ्रम के कारण ही बुद्धि में समझ पड़ता है। हे निमिकुल नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि! जिस प्रकार स्वप्न किसी काल में सत्य नहीं होता उसी प्रकार ही ब्रह्म में संसार की स्थिति जानना चाहिए अर्थात् ब्रह्म में संसार का अस्तित्व अल्प भी नही है।

नित गंधर्व नगर जिमि झूँठा । यथा वृक्ष कर गगन न ठूँठा ॥
मन–पूआ कर कछु थिति नाही । इन्द्र जाल जिमि झूँठ दिखाहीं ॥

जिस प्रकार गन्धर्व नगर (काल्पनिक नगर) सदैव असत्य होता है, पेढ़ का एक ठूँठ भी आकाश में नही है, मन के मालपुआ की कोई स्थिति नहीं रहती तथा जिस प्रकार इन्द्रजाल सदैव झूँठा ही रहता है———

तिमि जग स्थिति किये बिचारा । असत होय सुनु राज कुमारा ॥
जौ लौं हृदय विचार न आवा । तौलौं ब्रह्महिं जग करि गावा ॥

———उसी प्रकार ही, हे राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि! आप श्रवण करें? कि विचार करने पर संसार की स्थिति असत्य सिद्ध हो जाती है। जब तक इस प्रकार की समझ हृदय में नहीं आती तब तक सभी लोग ब्रह्म को संसार ही कहकर गायन करते हैं।

दो०—सुन्दर बुद्धि विवेकयुत, सूक्ष्म दृष्टि लहि लोग ।
सत चित आनन्द ब्रह्म इक, देखहिं सर्व सुयोग ॥७८॥क॥

इस प्रकार ज्ञान से परिपूर्ण सुन्दर बुद्धि द्वारा सूक्ष्म दृष्टि पाकर लोग एक सच्चिदानन्दमय ब्रह्म को ही सर्वत्र (सम्पूर्ण संसार में) देखें यही सुन्दर योग है अर्थात् सम्पूर्ण संसार श्री राम जी महाराज का स्वरूप है ऐसा समझ कर सभी से प्रेम किये रहें।

ज्ञानवान जिमि जग लखैं, सुनु सत सुभग कुमार ।
दृष्टि सोइ सत सत्य है, नाहिन एक विकार ॥ख॥

हे सुन्दर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि! अब आप, इस संसार को ज्ञानी जन जिस प्रकार देखते हैं उसे सुनें, क्योंकि यथार्थतया वही दृष्टि सत्य है और उसमें ही एक भी दोष नहीं है।

ब्रह्म नयन उघरत जग होवै । गिरत पलक छन माहीं खोवै ॥
महा महिम महिमा भगवाना । तेहिं विकास जग रूप महाना ॥

यह संसार पूर्णतम परब्रह्म के आँख खोलते ही प्रगट हो जाता है तथा पलक गिरते (आँख बन्द करते) ही एक क्षण में समाप्त हो जाता है। श्री भगवान तो महान महिमा से युक्त हैं और संसार का यह महान स्वरूप, उनका ही विकास है।

मन संकल्प ब्रह्म वैराटा । जाहि कहैं जग कुमति कुठाटा ॥
जगत ब्रह्म की चिन्मय लीला । कहौं त्रिसत्य सुनहु शुभ शीला ॥

यह महान संसार पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा के मन का संकल्प है जिसे अज्ञान के कारण लोग अवगुणों का समूह कहते हैं। हे शुभ लक्षण कुमार श्री लक्ष्मीनिधि! मैं त्रिवाचा सत्य कह रहा हूँ कि यह संसार, पूर्णतम परब्रह्म की चिन्मयी लीला है।

ब्रह्म दृष्टि अरु महिमा भाई । ब्रह्म पृथक कोउ सकै न गाई ॥
तैसेहिं जानहु मन संकल्पा । ब्रह्म केर ब्रह्महिं अभिकल्पा ॥

ऐ भाई ! ब्रह्म की दृष्टि और ब्रह्म की महिमा को कोई भी ब्रह्म से पृथक नहीं कह सकता उसी प्रकार संसार को ब्रह्म के द्वारा किया हुआ मन का संकल्प अर्थात् ब्रह्म ही समझिये।

चिन्मय लीला ब्रह्म जो थापी। ब्रह्म छोड़ि नहिं दूसर ज्ञापी ॥
सत से असत कबहुँ नहिं प्रगटा। जस मृद घट मृद ही ते लपटा ॥

संसार स्वरूपी चिन्मयी लीला जिसकी ब्रह्म ने स्थापना की है वह ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है क्योंकि सत्य से असत्य का प्राकट्य उसी प्रकार नहीं हो सकता जैसे मिट्टी का घड़ा मिट्टी से ही बना रहता है।

दो०–कारण कारज पृथक नहिं, घट पट लखहु प्रमान।
जगतहिं जानौ ब्रह्म चिद, जगत ब्रह्म नहिं आन ॥७९॥

हे राज कुमार! कारण और कार्य कभी पृथक नहीं होते जिसका प्रमाण घड़े और वस्त्र से समझ लेना चाहिए अर्थात् मिट्टी के घड़े में मात्र मिट्टी व सूत से बने वस्त्र में सूत ही होता है , अतः आप संसार को सच्चिदानन्दमय ब्रह्म ही जानिये क्योंकि संसार ब्रह्म से अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।

यथा बीज बनि वृक्ष दिखावै। तथा ब्रह्म जग रूप लखावै ॥
यथा महोदधि लहर अनन्ता। तथा ब्रह्म सोहै जगवन्ता ॥

जिस प्रकार बीज ही वृक्ष बन कर दिखाई पड़ता है उसी प्रकार स्वयं ब्रह्म ही संसार के रूप में दिखाई देता है। जैसे महासागर अनन्त लहरों के रूप में शोभायमान होता है उसी प्रकार ब्रह्म संसार के रूप में सुशोभित होता है।

स्वर्ण अभूषण बनि जिमि राजै। तथा जगत बनि ब्रह्म सुभ्राजै ॥
रुई बनै जिमि वस्त्र अनूपा। बनै ब्रह्म तिमि जगत स्वरूपा ॥

जैसे स्वर्ण, आभूषण बनकर सुशोभित होता है उसी प्रकार ब्रह्म संसार बन कर शोभायमान है। जिस प्रकार रुई अनुपमेय वस्त्र बन जाती है उसी प्रकार ब्रह्म भी संसार का स्वरूप बन जाता है।

बनि मृत्तिका कलश कहवाई। ब्रह्महि बनि तिमि जगत दिखाई ॥
वाणी बनि जिमि अर्थ कहाया। तथा ब्रह्म जग रूप लखाया ॥

जिस प्रकार मिट्टी ही निर्माण के अनन्तर (बनने के बाद) कलश कहलाने लगती है उसी प्रकार ब्रह्म भी संसार बनकर दिखाई देने लगता है। जैसे वाणी अर्थ बनकर समझ आती है उसी प्रकार ब्रह्म संसार के रूप में दिखाई पड़ता है।

जिमि रवि धूप रूप ह्वै सोहै। ब्रह्महु ह्वै जग तिमि मन मोहै ॥
देहइ अंग रूप नित लखिये। ब्रह्महिं तिमि जग रूप सुभखिये ॥
जिमि हिम उपल सुजल बनि जावै। तिमि जग बनि ब्रह्महु दरशावै ॥

जिस प्रकार सूर्य, धूप के रूप में सुशोभित होता है उसी प्रकार ब्रह्म भी संसार का रूप बनकर मन को मोहित करता है। जिस प्रकार अंगों के रूप में नित्य शरीर दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार ब्रह्म को संसार का रूप बखान किया गया है। जैसे पानी से बर्फ की सुन्दर शिलायें बन जाती हैं उसी प्रकार ब्रह्म भी संसार बन कर दिखाई पड़ता है।

दो०–ऊपर युक्ती जो कही, कारण कारज एक ।
यथा लहर जल तत्व इक, दुइ नहिं किये विवेक ॥८०॥

ऊपर की युक्तियों में कारण व कार्य की एकता उसी प्रकार कही गयी है जैसे जल तथा लहर, दोनों ही ज्ञान दृष्टि से देखने में दो नहीं बल्कि एक ही तत्व समझ आते हैं।

ज्ञानी देखै उक्त प्रकारा । ब्रह्महिं बन्यो महा संसारा ॥
शुद्ध सच्चिदानन्द अनूपा । जानहिं ज्ञानी जगत सरूपा ॥

ज्ञानी लोग उक्त प्रकार से इस विराट संसार को ब्रह्म से बना हुआ देखते हैं तथा संसार के स्वरूप को शुद्ध सच्चिदानन्दमय व अनुपमेय समझते हैं।

ब्रह्म जगत दूनहु पर्याई । यहै दृष्टि परमारथ गाई ॥
भ्रम दृष्टी जग अलग बखानी । दुख समुद्र डूबे अज्ञानी ॥

ब्रह्म और संसार दोनों ही एक दूसरे के पर्याय हैं, यही दृष्टि परमार्थ पथ में वर्णन की गयी है। परन्तु भ्रम दृष्टि से संसार को ब्रह्म से अलग वर्णन कर अज्ञानी लोग दुख के सागर में डूबे रहते हैं।

ब्रह्म दृष्टि करि कै मतिवाना । सतचित आनँद भोग महाना ॥
जग असत्य नानात्व दशा में । सदा सत्य ब्रह्मत्व प्रथा में ॥

अतएव हे बुद्धिमान कुँवर! संसार में ब्रह्म दृष्टि बनाकर उसके महान व सच्चिदानन्दमय भोगों का उपभोग करना चाहिए। यह संसार नानात्व अवस्था में ही असत्य है परन्तु ब्रह्म–दृष्टि से यह सदैव सत्य है।

संशय कर स्थान न ताता । जानहु सत्य सत्य मम बाता ॥
राम रूपमय जगत निहारी । करहु प्रणाम सबहिं सुखकारी ॥

हे तात श्री लक्ष्मीनिधि! इस बात में सन्देह का किंचित भी स्थान नहीं है, आप मेरी बातों को पूर्णतया सत्य जानें तथा इस संसार को श्री राम जी महाराज का सुखकारी स्वरूप समझकर सभी को प्रणाम करें।

दो०–राग द्वेष इच्छा तजहु, परमातम लखि एक ।
द्वैत त्यागि शुभ दृष्टि लै, विचरहु सहित विवेक ॥८१॥

अतः एक परमात्मा को ही सम्पूर्ण संसार में देखते हुए राग, द्वेष और कामनाओं को छोड़, तथा द्वैत बुद्धि को त्याग, शुभ दृष्टि (ब्रह्मात्मक दृष्टि) प्राप्तकर ज्ञान पूर्वक संसार में विचरण करना चाहिये।

विश्व प्रगट जस भयो कुमारा । प्रथमहिं सो मैं कहि निरुवारा ॥
ब्रह्म कीन्ह संकल्प अमाया । मन ते तुरत महा जग जाया ॥

हे कुमार! यह संसार जिस प्रकार प्रगट हुआ है उसे मैंने पूर्व में ही निर्णय देकर बखान कर दिया है कि– ब्रह्म ने निर्लिप्त भाव से अपने मन में संकल्प किया तब शीघ्र ही उनके मन से यह विराट संसार प्रगट हो गया।

लीला रस हित जग उपराजा । एक होय बहु रूप सुभ्राजा ॥
उदधि मध्य स्वाभाविक भाई । लहर उपजि पुनि उहैं बिलाई ॥

ब्रह्म ने अपने लीला रस आस्वादन के लिए संसार की उत्पत्ति की है तथा ब्रह्म ही एक से अनेक रूप धारण कर सुशोभित होने लगा। हे भाई! जिस प्रकार समुद्र से स्वाभाविक ही लहरें उत्पन्न होती हैं व पुनः समुद्र में ही विलीन हो जाती हैं।

तथा ब्रह्म मधि जग उपराजे । ब्रह्महिं महँ लय होय सुभ्राजे ॥
सृष्टि स्वभाव ब्रह्म कर भाई । भव थिति लय सब ब्रह्म कहाई ॥

उसी प्रकार ब्रह्म से संसार की उत्पत्ति होती है तथा पुनः संसार ब्रह्म में विलीन होकर ही शोभा प्राप्त करता है। ब्रह्म का स्वभाव ही सृष्टि करना है तथा संसार की स्थिति व संसार का लय होना सभी ब्रह्म कहलाता है।

ब्रह्म चहै जस आपुहिं देखन। देखे तुरत तैसही वेखन ॥
शक्ति अचिन्त्य ब्रह्म की जोई । ब्रह्म पृथक कहि सकै न कोई ॥

ब्रह्म जब अपने आपको जिस प्रकार देखना चाहता है, वह अपने स्वयं को शीघ्र ही उसी प्रकार देखने लगता है। पुनः ब्रह्म की जो अचिन्त्य शक्ति है जिसे कोई ब्रह्म से पृथक नहीं कह सकता।

विभु इच्छा गुनि शक्ति तुरन्ता । विरचि देय जग अण्ड अनन्ता ॥
समय पाय जग पुनः समेटै । जाल विरचि जिमि मकड़ि लपेटै ॥

वही शक्ति भगवान की इच्छा समझ तत्क्षण अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना कर देती है। पुनः वह समय पाकर इस संसार को उसी प्रकार अपने आप में समेट लेती है जैसे मकड़ी अपने तन्तुओं के द्वारा जाल बनाकर पुनः उसे स्वयं ही लपेट (उदरस्थ कर) लेती है।

सब समर्थ विभु ब्रह्म अचिन्ता। जो जो चह सो होय तुरन्ता ॥
चेतन काहिं जगत संयोगा। मोक्ष हेतु या बहु विधि भोगा ॥

पूर्णतम परब्रह्म भगवान अचिन्त्य व सर्व सामर्थ्य से युक्त हैं वे जो भी इच्छा करते हैं शीघ्र ही वही हो जाता है। जीवों के लिए संसार का सुयोग बहुत प्रकार के भोगों से विरत होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेने हेतु है यदि यह न हो सका तो कर्म फल का उपभोग करते हुये संसार चक्र में फँसे रहना है।

दो०—परमारथ के रूप ते, जग उत्पति कह गाय ।
व्यवहारिक क्रम नहिं कहेव, जानहिं सब जस आय ॥८२॥

हे राज कुमार! मैनें परमार्थ रूप से (परमार्थ दृष्ट्या) संसार की उत्पत्ति का वर्णन किया है, इसके व्यावहारिक क्रम का बखान इसलिए नहीं किया क्योंकि इसका क्र्म जिस प्रकार है उसे सभी जानते हैं।

सुनहु कुँवर अब कहौं बखानी । जगत दृष्टि जेहिं विधिहिं नशानी ॥
काष्ठ मध्य जिमि वसत खिलौना । समय पाय उपजै चह जौना ॥

हे कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी! संसार की दृष्टि जिस प्रकार बिगड़ी हुई है अर्थात् जिससे यह ब्रह्म स्वरूप न प्रतीत होकर दुखदायी लगता है, मैं अब उसे बखान कर रहा हूँ आप श्रवण करें। जैसे लकड़ी के मध्य में खिलौनों का निवास होता है तथा अनुकूलता पाकर (बढ़ई के संकल्प से) उससे चाहे जो खिलौना निकल आता है।

तिमि मन महँ वस नित संसारा । आयु भोग अरु जाति प्रकारा ॥
जन्म मरण युत जस हिय आसा । लहै जीव तस आपनि वासा ॥

उसी प्रकार यह संसार आयु, भोग तथा जाति के रूप से नित्य ही मन में वसा रहता है तथा जन्म व मृत्यु के सहित जैसी हृदय में वासनाएँ रहती हैं वैसे ही जीव अपना निवास पाता है।

मन कहँ देवै अमन बनाई । तबहिं वासना जगत नशाई ॥
चित्त नाश बिनु कौनेहु यतना । भव बन्धन नहिं छूटै घतना ॥

अतएव जब जीव अपने मन को शान्त (वासनाओं से रहित) बना देता है तभी वासना रूपी उसका संसार नष्ट हो पाता है तथा मन के नष्ट हुए बिना किसी भी उपाय से यह दुखदायी भव बन्धन नहीं छूट सकता।

मन कर नाश जाहि विधि हौवै । दिव्य दृष्टि बनि ब्रह्म सुजोवै ॥
सुनहु कुँवर सो कहौं उपाऊ । सन्त शास्त्र सम्मत सत भाऊ ॥

इस मन का जिस प्रकार से विनाश होता है तथा दृष्टि दिव्य बनकर सुन्दर ब्रह्म का दर्शन प्राप्त कर लेती है, वह संत–शास्त्र सम्मत, सत्य व सुन्दर उपाय मैं कह रहा हूँ। हे कुँवर! आप श्रवण करें।

लहै जीव सुखमय हरि शरणा । दूर करन भव जाके चरणा ॥
शम संतोष विचार सुसंगति । हृदय धार नहिं करै आन मति ॥

जीवों को चाहिये कि वे भगवान की सुखमय शरणागति ग्रहण करें, जिनके श्री चरण संसार (भ्रम) को दूर करने वाले हैं। वे (जीव) शम, सन्तोष, विचार और सुन्दर संगति को हृदय में धारण किये रहे तथा कभी भी इसके प्रतिकूल अपनी बुद्धि न करे।

आदर युत अभ्यास निरन्तर । दीर्घ काल लौ करै सुखदकर ॥
साथहिं पर वैराग्य सम्हारै । साधक सत्य सत्य मन जारै ॥
सिद्धि विरोधी अवगुण त्यागी । बनै अमन जग जावै भागी ॥

इस प्रकार आदर पूर्वक सुख में सना हुआ दीर्घ काल तक निरन्तर अभ्यास करता रहे साथ ही उत्तम वैराग्य को धारण किये रहे तब वह साधक निश्चय ही मन को जलाकर समाप्त (विनष्ट) कर देता है। इस प्रकार जब वह सिद्धि में बाधक अवगुणों का त्याग कर देता है तब मन रहित (शान्त) हो जाता है और उसका संसार दूर भग जाता है।

दो०– जस का तस रहतेउ जगत, साधक मन नहिं भान ।
स्वप्न सरिस कहुँ भास पुनि, ब्रह्म बिना नहिं आन ॥८३॥क॥

ऐसे साधक के मन में, जैसा का तैसा रहते हुये भी यह संसार आभासित नहीं होता और यदि कभी स्वप्न की तरह आभासित भी होता है तो वह ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ नहीं रहता।

रसरी महँ जस सर्प भ्रम, गये छुये मिटि जाय।
रह्यो ब्रह्म महँ जगत भ्रम, लहि विवेक बिनशाय ॥ख॥

जिस प्रकार रस्सी में सर्प का सन्देह समीप जाने तथा उसे छूने से मिट जाता है उसी प्रकार ब्रह्म में जो संसार का भ्रम है वह ज्ञान प्राप्त होने से विनष्ट हो जाता है।

जगत नाश यहि विधि बनै, ब्रह्महि ब्रह्म लखाहिं।
बन्ध मोक्ष के पार ह्वै, होवै रति हरि माहिं ॥ग॥

हे कुमार! जब इस प्रकार से जीव के हृदय से संसार का नास बन जाता है तथा केवल ब्रह्म ही ब्रह्म सर्वत्र दिखाई देने लगता है तब साधक बन्धन व मोक्ष के पार हो जाता है और भगवान में उसकी प्रीति हो जाती है।

ब्रह्म शक्ति चिद से उपजि, माया जगत स्वरूप।
विद्याऽविद्या भेद युग, मोक्ष बन्ध की रूप ॥घ॥

पूर्ण ब्रह्म की चिद शक्ति से उत्पन्न होने वाली माया ही संसार स्वरूपा है तथा यह विद्या व अविद्या दो भेदों वाली मोक्ष एवं बन्धन की हेतुभूता होती है।

ब्रह्म सकासहिं ते करैं, दोनो आपन काम।
जड़ अनादि तिन जानिये, हैं परिणामी ठाम ॥ङ॥

ये दोनों (विद्या व अविद्या माया) ब्रह्म की सकासता से अपने अपने कार्य करती हैं अन्यथा ये तो नित्य ही जड़वत हैं केवल इनका स्थान ही परिणामी है।

त्रिगुणमयी माया अति प्रबला। बिनु हरि कृपा पार नहिं सबला॥
पृथक शक्ति चिद ते नहिं माया। किये विचार सुनहु निमि राया॥

यह माया तीनों गुणों (सत, रज व तम) से युक्त अत्यन्त बलवती है, बिना भगवान की कृपा के इस बलशालिनी का कोई पार नहीं पा सकता। परन्तु हे निमिराज कुमार! सुनें, विचार करने पर यह माया ब्रह्म की चिद–शक्ति से पृथक नहीं है अर्थात् भगवत्कृपा से ही इससे बचा जा सकता है।

जीव स्वरूप कहौं समुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई॥
चेतन शुद्ध लहेव बुधि संगा। करि तादात्म अहं रति रंगा॥

हे तात श्री लक्ष्मीनिधि! मैं अब जीवों के स्वरूप को समझाकर बखान कर रहा हूँ, आप बुद्धि और मन को एकाग्र कर सुनें। जब शुद्ध चेतन बुद्धि के साथ मिलकर उससे तादात्म कर लेता है तथा अहंकार के रंग में रँग जाता है।

भनै जीव ता कहँ सब लोगू। वेद शास्त्र अरु संत नियोगू॥
अणु सम सूक्ष्म कहैं तेहिं वेदा। आनन्द सत चित रूप अखेदा॥

तब उसे वेद, शास्त्र और संत–जन 'जीव' की संज्ञा देते हैं। उसे वेदों ने अणु के समान सूक्ष्म, सच्चिदानन्दमय तथा सभी प्रकार के शोकों से रहित बखान किया है।

ब्रह्म दास जिव सहजहि अहई । नहिं आगन्तुक श्रुति सब कहई ॥
मायापति सो नाहि कहावै । ब्रह्म अंश तेहिं श्रुती बतावै ॥

जीव सहज ही ब्रह्म का सेवक है उसका यह सम्बन्ध आगन्तुक नहीं है ऐसा सभी श्रुतियाँ कहती हैं। वह (जीव) मायापति नहीं कहा जा सकता क्योंकि श्रुतियों ने उसे ब्रह्म का अंश कह कर बखान किया है।

शेष भोग परमातम केरा । नहिं स्वतन्त्र सब श्रुतियन टेरा ॥
ताते कुँवर सुनहु यह जीवा । लहि परतंत्र उपासै सीवा ॥
सेवा बिनु नहिं मुक्ति त्रिकाला । कहौं त्रिसत्य वचन निमिपाला ॥

जीव तो परमात्मा का शेष और भोग है वह स्वतन्त्र नहीं है ऐसा श्रुतियों ने पुकार–पुकार कर कहा है। इसलिए हे कुँवर लक्ष्मीनिधि! सुनें, यह जीव भगवान की आधीनता ग्रहण कर भगवान की उपासना करे। हे निमिकुल पोषित श्री लक्ष्मीनिधि जी! मैं त्रिसत्य, वाणी का विनियोग कर रहा हूँ कि बिना भगवत्सेवा के तीनों कालों में जीवों की मुक्ति नहीं हो सकती।

दो०–जीव रूप भाषेउँ यथा, वरणे वेद पुराण ।
ईश रूप सुनियहिं सुमति, कहिहौं यथा प्रमाण ॥८४॥

इस प्रकार मैंने उसी प्रकार जीव के स्वरूप का वखान किया, जैसा वर्णन वेदों व पुराणों ने किया है। हे परम बुद्धिमान कुँवर! अब ईश स्वरूप का वर्णन सुनें, मैं उसका प्रमाण पूर्वक बखान कर रहा हूँ।

परब्रह्म परमार्थ सुहावा । स्थिति भेद सो ईश कहावा ॥
अण्ड नियामक पुरुष विशेषा । कार्य समय तेहिं कह हृषिकेशा ॥

जो परब्रह्म व सुन्दर परमार्थ पद है वही स्थिति भेद से ईश्वर कहलाता है तथा अनन्त ब्रह्माण्डों का नियमन करने वाले विशेष पुरुष भगवान को ही कार्य समय में हृषीकेश कहते हैं।

सब कर सब सब ज्ञान प्रकारा । एक साथ बिनु साधन सारा ॥
जानइ इक सम तीनहुँ काला । ता कहँ ईश भनैं जन पाला ॥

जिसे अखिल ब्रह्माण्डों का, सभी प्रकार का, सम्पूर्ण ज्ञान एक साथ बिना किसी साधन के ज्ञात रहता है तथा जो तीनों कालों का एक समान ज्ञान रखता है ऐसे आश्रित जन पालक प्रभु को ही ईश्वर कहते हैं।

अज सच्चिदानन्द पर धामा । जासु नाम शिव जपहिं ललामा ॥
शरण पाल भक्तन सुख दाता । योग क्षेम नित वहत अघाता ॥

जो अजन्मा, सच्चिदानन्दमय व परम पद स्वरूप है जिसके सुन्दर नाम को भगवान श्री

शिवजी सदैव जपते रहते हैं जो शरणागत जीवों के पालक, भक्तों को सुख देने वाले एवं उनके योग–क्षेम का वहन करने में नित्य संतुष्ट होने वाले है।

सुर नर मुनि ब्रह्मादिक स्वामी । गुणातीत उर अन्तरयामी ॥
मायाधीश अनादि अनूपा । जेहिं सम अतिशय नाहिं निरूपा ॥

जो देवताओं, मनुष्यों, मुनियों व ब्रह्मादिकों का स्वामी, गुणों से परे तथा सभी के हृदय की जानने वाला, मायापति, अनादि तथा अनुपमेय हैं, जिनके समान तथा अधिकता में कोई भी वर्णन नहीं किया गया–––

उत्पति थिति लय जाके हाथा । षड ऐश्वर्य वसैं नित साथा ॥
बन्ध मोक्ष पद देवन हारा । सब पर ईशन करै सम्हारा ॥
सब समर्थ सब कर प्रभु अहई । करै न करै अन्यथा बहई ॥

–––सभी की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार जिनके हाथों में है, जिसके साथ सदैव षडैश्वर्य (श्री, यश, ज्ञान, विराग, तेज व बल) बसे रहते हैं, जो बन्धन, मोक्ष व परम पद प्रदान करने वाला तथा सभी पर सम्हाल पूर्वक शासन करने वाला है। जो सर्व सामर्थ्य से युक्त, सभी का स्वामी, सभी कुछ करने वाला, कुछ न करने वाला तथा विपरीत करने वाला है–––

दो०– व्यापक अणु अणु में अहै, जगत आत्मा जान ।
ब्रह्म निरंजन महत मह, जग अलिप्त तेहिं मान ॥८५॥क॥

–––जो अणु अणु में व्यापक, सम्पूर्ण संसार की आत्मा एवं उससे सर्वथा अलिप्त तथा महान से महान (विराट), माया से रहित व पूर्ण ब्रह्म है–––

गुण अनन्त शुभ श्रेय जो, वसै सदा तिन माहिं ।
ताते सगुण कहावहीं, संत वदैं सब पाहिं ॥ख॥

–––जितने भी अनन्त, शुभ व श्रेष्ठ गुण हैं वे सदैव उनमें निवास किये रहते हैं इसीलिये वे सगुण कहलाते हैं। ऐसा संतजनों ने सभी से वर्णन किया है––

सकल हेय गुण रहित है, निरगुण कह सब लोग ।
सोई सब कर ईश है, सबके सेवन योग ॥ग॥

–––वे सभी निकृष्ट गुणों से रहित हैं इसलिए सभी उन्हें निर्गुण कहते हैं। वे ही सभी के ईश्वर तथा सभी के सेवन करने योग्य स्वामी हैं।

विषय करण सुर जीव लौं, सबहिं प्रकाशन हार ।
जो प्रेरक सबके हृदय, कहहिं ईश वुधिवार ॥घ॥

जो सभी प्रकार के विषयों (शब्द, रूप, रस, गंध व स्पर्श), पंच ज्ञानेन्द्रियों (कर्ण, नेत्र, जिह्वा, नासिका व त्वचा) पंच कर्मेन्द्रियों (हाथ, पैर, मुख, गुदा व लिंग), चार अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि

व अहंकार), देवताओं व जीवों आदि सभी को प्रकाशित करने वाले तथा सबके हृदय के प्रेरणा श्रोत हैं उसे ही सुधीजन ईश्वर कहते हैं।

काल स्वभाव कर्म गुण नाशक। कहैं ईश तेहिं मानि सुशासक॥
सुनहु लाल अब कहौं अनूपा। पर ब्रह्म परमार्थ स्वरूपा॥

जो काल, स्वभाव, कर्म व गुणों के प्रभाव को विनाश कर सभी पर शासन करने वाले है उसे ही सभी का ईश्वर कहते हैं। हे लाल लक्ष्मीनिधि! आप श्रवण करें, अब मैं अनुपमेय परब्रह्म के परमार्थ स्वरूप का बखान कर रहा हूँ।

सोइ परमारथ ब्रह्म कहावै। वेद जाहि सर्वेश बतावै॥
नाम धरे युग पर है एका। दुहुँ कर देखै बिना विवेका॥

जिसे वेदों ने सबका ईश्वर कहकर वर्णन किया है वही परमार्थ ब्रह्म कहलाता है। यह एक होकर दो नाम ईश्वर व परमार्थ पद रखे हुए है तथा ज्ञान के अभाव में ही दो दीख पड़ता है।

जिमि समाधि असमाधिहुँ माहीं। ब्रह्म प्राप्त योगी एक आही॥
जिमि प्रशान्त अरु लहर उछारी। एकइ उदधि एक रस वारी॥

जिस प्रकार ब्रह्म प्राप्त योगी अपनी समाधि व असमाधि (सामान्य स्थिति) दोनों अवस्थाओं में एक ही होता है और जिस प्रकार शान्त व लहर उछालने वाली दोनों अवस्थाओं में एक ही समुद्र एवं एक ही प्रकार का जल होता है।

तथा तुरीयातीत महाना। पर परमारथ कहैं सुजाना॥
कारण परे प्रशान्त यथारथ। नित्याकर्तृ भाव परमारथ॥
ताकर तत्व कहउँ युवराजा। वरणत श्रुति जस सन्त समाजा॥

उसी प्रकार तुरीयातीत (मोक्ष आदि से परे) और महान तत्व को श्रेष्ठ विज्ञ जन 'परम परमार्थ' कहते है, जो कारण व कार्य के परे, यथार्थतः निश्चल वृत्ति से युक्त तथा नित्य अकर्ता भाव वाला होता है वही परमार्थ पद है। हे युवराज लक्ष्मीनिधि! मैं अब परमार्थ तत्व का उसी प्रकार वर्णन कर रहा हूँ जैसा श्रुतियों और सन्त समाज ने किया है।

दो०—यत्र ईश माया नहीं, नहीं जीव युत भेद।
केवल सतचित आनँदहिं, परमारथ बद वेद॥८६॥

जहाँ ईश्वर, माया तथा जीव आदि का भेद नहीं रहता और केवल सच्चिदानन्दमय तत्व ही रहते है। उस अवस्था को वेद परमार्थ पद कहते हैं।

जेहिं महँ सत नहिं असत प्रकारा। सूक्ष्म थूल बिन वेद उचारा॥
निर्गुण सगुण एकनहिं तहँवा। तथा परावर भेद अगहवा॥

वेदों ने बखान किया है कि– जिसमें सत्य व असत्य का भेद नहीं है, जो सूक्ष्म और स्थूल आकार से रहित है तथा वहाँ निर्गुण व सगुण कोई भी विशेषण नहीं होते और उसी प्रकार श्रेष्ठ तथा निकृष्ट का भेद भी उसमें अप्राप्त है।

कारण कार्य भाव जहँ नाही । सोइ परम पद वेद बताही ॥
निर्विशेष सविशेष प्रकारा । नहिं आधे या धार विचारा ॥

जहाँ कारण और कार्य का भाव नहीं है (अर्थात जो कारण व कार्य से परे है) वही 'परम पद' है ऐसा वेद ज्ञापित करते है। जहाँ निर्विशेष व सविशेष का प्रकार नहीं है, आधेय व आधार का विचार नहीं है–––

जहँ नहिं ज्ञान और अज्ञाना । नहिं प्रकाश अरु तमहुँ महाना ॥
विद्या और अविद्या नाहीं । भेद चलाचल नहिं दरशाहीं ॥

–––जिस महान तत्व में ज्ञान व अज्ञान, प्रकाश व अन्धकार, विद्या और अविद्या तथा चल और अचल का भेद नहीं दीख पड़ता–––

जहँ नहिं द्वैत तथा अद्वैता । सृष्टि असृष्टि भाव सब खोयता ॥
बन्ध न मोक्ष न पुण्य अपुण्या । पद परमारथ सोइ वरण्या ॥

–––जहाँ द्वैत व अद्वैत नहीं है, सृष्टि व असृष्टि (संसार के होने व न होने) का सम्पूर्ण भाव जहाँ समाप्त हो जाता है, जहाँ न बन्धन है न मोक्ष है, न पाप है न पुण्य है वही वरण करने योग्य 'परमार्थ पद' है।

द्रष्टा दरशन दृष्य महाना । ज्ञाता ज्ञेय तथा वर ज्ञाना ॥
ध्याता ध्येय ध्यान जहँ नाही । तात परम पद जानहु ताही ॥

जहाँ द्रष्टा, दर्शन व दृष्य (देखने वाला, देखने योग्य तथा दर्शन) ज्ञाता, ज्ञेय व ज्ञान (जानने वाला, जानने योग्य तथा ज्ञान) एवं ध्याता, ध्येय व ध्यान (ध्यान करने वाला, ध्यान के योग्य तथा ध्यान) आदि कुछ नहीं है अर्थात् इन सभी से परे जो स्थिति है, हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी ! उसे ही आप 'परम पद'(परम परमार्थ) जानिये।

दो०–जहाँ प्रमाण प्रमेय नहिं, नहीं प्रमाता भान ।
द्वन्द रहित सो परम पद, कुँवर लेहु जिय जान ॥८७॥क॥

जहाँ प्रमाण, प्रमेय व प्रमाता (प्रमाण, प्रमाणित करने योग्य और प्रमाणकर्ता) का ज्ञान नहीं है, हे कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप अपने हृदय में उसे ही द्वन्द विहीन 'परम पद'(परम परमार्थ) समझ लीजिये।

मन चित बुधि अहमिति सबै, नशै जाहि कहँ देख ।
शोक मोह संशय दुरहिं, सुख दुख नाहीं रेख ॥ख॥

जिसका दर्शन कर मन, चित्त, बुद्धि व अहंकार आदि करण चतुष्टय विनष्ट हो जाते हैं, शोक, मोह व संशय दूर हो जाते हैं तथा सुख व दुख की संज्ञा समाप्त हो जाती है–––

हृदय ग्रन्थि तुरतहिं कटै, होवहिं कर्म विलीन ।
त्रिगुणातीतहिं लखि परै, योगिहिं परम प्रवीन ॥ग॥

———हृदय की जड़ चेतनात्मक ग्रन्थि शीघ्र ही खुल जाती है तथा सभी शुभाशुभ कर्म विलीन हो जाते हैं। ऐसा वह परम पद (परम परमार्थ) तीनों गुणों (सत,रज,तम) से परे परम दक्ष योगियों को ही अनुभव मे आता है।

सो पद परम तुरीयातीता। धामाऽव्यक्त कहैं जेहिं गीता॥
रमत योगिजन जा पद माहीं। सत चिद आनन्द तत्व बताहीं॥

वह परम पद तुरीयावस्था (मोक्ष की अवस्थाओं) से परे है जिसे 'अव्यक्त धाम' कहकर गायन किया गया है तथा जिसमें श्रेष्ठ योगीजन रमे रहते हैं और सच्चिदानन्दानत्मक तत्व कहकर बखान करते हैं।

सदा एकरस वरणि न जाई। लक्षण बाह्य कहे कछु गाई॥
मन वाणी जहँ जाइ न पारा। लौटे पुनि करि युक्ति अपारा॥

वह परम पद सदैव एकरस व अवर्णनीय है, मैंने उसके कुछ बाहरी लक्षणों का ही बखान किया है। मन और वाणी जिसके पार नहीं जा सकते तथा बार बार असीमित उपाय करने के बाद भी वे वापस लौट आते हैं, अर्थात् मन से उसका मनन और वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता।

सो पद बनि जिव पद के द्वारा। पदहिं अनुभवैं रसमय सारा॥
यथा उदधि जल अपुन सहारे। अपुन मध्य कल्लोल करा रे॥

उसी "परम पद" के द्वारा जीव "परम पद" स्वरूप होकर उस रसमय सार तत्व "परम पद" का अनुभव उसी प्रकार करता है जैसे समुद्र का जल अपने सहारे से ही अपने आप में किलोल करता रहता है।

पाये बिनु प्रिय पर पद भाई। परमारथ पद नाहिं लखाई॥
ताते कुँवर सुनहु अनुकूला। बनि परमार्थ बनै सुख मूला॥

हे तात! परम प्रियकर परमार्थ स्वरूप "परम पद" को प्राप्त किये बिना उसका अनुभव नहीं हो सकता। हे राजकुमार लक्ष्मीनिधि! सुनें, इसलिए जीवों को चाहिये कि वे भगवदनुकूलता ग्रहण कर परमार्थ स्वरूप हो, सुखों के मूल स्वरूप बन जायँ।

देखन योग अहै पद भावा। सुनन योग सोइ सब श्रुति गावा॥
मनन निदिध्यासन के योगा। करि जिज्ञासा लहैं सुलोगा॥
सो सुख जानै लहे महाना। बद्ध जीव पामर का जाना॥

वह सुन्दर "परमार्थ पद" ही देखने व सुनने के योग्य है, ऐसा सभी श्रुतियों ने गायन किया है। मनन और निदिध्यासन के योग्य उस परमार्थ पद को सज्जन जिज्ञासा कर प्राप्त कर लेते हैं। हे कुमार! उस सुख को तो वही जान सकते हैं जिन्होंने उस महान "परमार्थ पद" को प्राप्त कर लिया है, माया से बँधे हुए पाप कर्मा जीव उसे क्या समझेंगे?

दो०—अकथ अलौकिक परम पद, किंचित कियो बखान।
अति रहस्य गोपन करन, कहहुँ सुनहुँ परमान॥८८॥

हे कुमार! इस प्रकार मैंने उस अकथनीय, अलौकिक, परम परमार्थ पद (परम पद) का किंचित (सूक्ष्म रूप से) वर्णन किया है। अब मैं प्रमाणपूर्वक एक अत्यन्त गोपनीय रहस्य का बखान कर रहा हूँ, आप उसे श्रवण करें।

वेद पुराण कहहिं इतिहासा। सो मैं तुम सन करौं प्रकाशा ॥
जो परमारथ वरणि बतावा। अकल अनीह एक रस भावा ॥

वेद–पुराण तथा इतिहास जिसे वार्ता का बखान करते हैं मैं उसे ही आपसे प्रकाशित कर रहा हूँ। जिस परमार्थ पद का मैंने पूर्व में वर्णन किया है तथा जो पूर्णतिपूर्ण, सभी प्रकार की कामनाओं से रहित और एक–रस भाव वाला है–––

सो दशरथ गृह अजिर विहारी। परब्रह्म व्यापक धनुधारी ॥
लीला रस आस्वादन हेता। नर सम दीखैं सबहिं अजेता ॥

–––वही चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के भवन व आँगन में विहार करने वाले, पूर्णतम परब्रह्म, व्यापक तथा धनुष को धारण करने वाले श्री राम जी महाराज हैं। लीला रस आस्वाद के लिए सभी से अपराजेय, वे सभी को मनुष्य के समान दीख पड़ते हैं।

रसिक जनन कहँ रस वरषाई। लीला ललित करैं सरसाई ॥
सत्य सत्य पुनि सत्य उचारा। राम ब्रह्म परमारथ सारा ॥

वे रसिक जनों के लिए रस की वर्षा करते हुये, सुख समन्वित सुन्दर चरित्र करते रहते हैं। मैं त्रिवाचा सत्य, कह रहा हूँ कि श्रीरामजी महाराज ही सभी के सार तत्व परम परमार्थ स्वरूप पूर्ण तम परब्रह्म हैं।

नाम रूप लीला अरु धामा। चार अंग ताके अभिरामा ॥
सत चिद आनँद चारहुँ भाये। चारहु चन्द्र कीर्ति रस छाये ॥

उन श्री राम जी महाराज के नाम, रूप, लीला व धाम चार सुन्दर अंग हैं। ये चारों ही सच्चिदानन्दमय चन्द्रमा के समान सुन्दर कीर्ति से युक्त व रस के आगार हैं।

दो०–जानै सो यह रहस रस, राम कृपा जो पाइ।
नाहिन साधन कोटि ते, मिलै तत्व यह भाइ ॥८९॥

जिसने प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा प्राप्त कर ली है वही उनके रहस्य तथा रस को जान सकता है, नहीं तो करोड़ों साधन करते रहने के बाद भी, हे भाई! यह परम तत्व प्राप्त नहीं होता।

परम आतमा रघुवर रामा। हम जानहिं सत सत सुखधामा ॥
ऋषि बसिष्ठ कौशिक कवि आदी। अपर दीर्घ दर्शी परवादी ॥

हे कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! श्री राम जी महाराज ही सुख के धाम तथा परमात्मा हैं हम इस बात को सत्य–सत्य जानते हैं। ऋषिवर श्री वशिष्ठ जी, श्री विश्वामित्र जी, आदि कवि श्री वाल्मीकि जी तथा अन्य श्रेष्ठ दीर्घदर्शी व परमार्थदर्शी जन––

इक स्वर सबहिं कहैं सरसाई । राम ब्रह्म व्यापक विभु भाई ॥
विधि हरि हर सब जानत एहा । पर परमारथ राम सनेहा ॥

––सभी एक स्वर से प्रसन्नता पूर्वक उद्घोष करते हैं कि श्रीरामजी महाराज ही सर्वत्र व्यापक, पर ब्रह्म और सर्वेश्वर हैं। श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी आदि सभी देवता इस रहस्य को जानते हैं कि श्री राम जी महाराज का प्रेम ही परम परमार्थ स्वरूप है।

जन्म समय सेवा सरसाये । देखि महोत्सव सत सुख पाये ॥
निज शक्तिन सह देव त्रिदेवा । अहनिशि राम रटहिं करि सेवा ॥

इसीलिए श्री राम जन्म के समय सभी ने सुखपूर्वक उनकी सुखद सेवा की थी तथा जन्म महोत्सव का दर्शन कर यथार्थ सुख प्राप्त किया था। सभी देवता व त्रिदेव (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी) अपनी–अपनी शक्तियों सहित दिन–रात श्री राम जी महाराज की सेवा करते हुए उनके नाम "राम" की रटन लगाते रहते हैं।

नाम प्रताप जासु हर ईशा। देत काशि महँ मुक्ति महीशा ॥
ध्रुव प्रहलाद सनक शुक नारद । वालमीकि वर बुद्धि विशारद ॥

जिनके नाम के प्रताप से ही, महा महेश्वर श्री शंकर जी, काशी पुरी में मरने वालों को मुक्ति प्रदान करते हैं। श्री ध्रुव जी, श्री प्रहलाद जी, श्री सनकादिक कुमार, श्री शुकदेव जी, श्री नारद जी तथा श्री वाल्मीकि जी आदि श्रेष्ठ बुद्धि के पारंगत जन––

दो०– जाके महिमा नाम की, जानहिं अमित अनादि ।
सो दशरथ सुत अवध महँ, प्रगट दिखै प्रिय वादि ॥९०॥क॥

––जिनके नाम की असीम व अनादि महिमा को भली प्रकार जानते हैं, वे ही चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के पुत्र, प्रिय वाण का विनियोग करने वाले श्री राम जी, श्री अयोध्या पुरी में प्रगट होकर जन–जन के नेत्रों के विषय बने हुए हैं।

जासु नाम मुख मरत लै, तरे अमित अघ रूप ।
सुनहु कुँवर सो ब्रह्म वर, है सुत दशरथ भूप ॥ख॥

मृत्यु के समय जिनके नाम का उच्चारण कर, इस संसार सागर से असीमित पाप स्वरूप जीवों का भी उद्धार हो गया है, हे कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनें, चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के पुत्र श्री राम जी महाराज वही श्रेष्ठ ब्रह्म हैं।

सत्य राम ईशन के ईशा । हैं विराट विभु सहस सुशीषा ॥
रामहिं भीतर बाहर यामी । जानहिं काग गरुड़ नभ गामी ॥

श्री राम जी महाराज यथार्थतः ईश्वरों के ईश्वर (सर्वेश्वर), परम सुशोभन सहस्त्र शीष वाले विराट भगवान हैं। वे सभी के भीतर और बाहर सर्वत्र का ज्ञान रखने वाले हैं यह बात आकाश में विचरने वाले भक्त श्रेष्ठ श्री काग भुसुण्डि जी व श्री गरुड़ जी भली प्रकार जानते हैं।

पुनि पुनि कहौं ब्रह्म परमारथ । रामहि अहहिं त्रिवाच यथारथ ॥
परम सार कर सार सुप्रेमा । जेहिं लहि जाइ जतन तप नेमा ॥

पुनः मैं बारम्बार त्रिवाचा सत्य कह रहा हूँ कि श्री राम जी महाराज ही यथार्थ रूपेण परमार्थ ब्रह्म हैं। उस परम तत्व का सार यही है कि उनमें सुन्दर प्रेम हो जाय। जिन्हें प्राप्त करने के हेतु ही सभी साधनों, जप व नियम आदि की उपादेयता है।

ताते त्रिकरण राम सनेहा। अहै परम परमार्थ विदेहा ॥
हिय मुख रटै राम सिय रामा। बहैं विलोचन ललित ललामा ॥

हे विदेह कुमार! इसलिए मन, वचन व कर्म से श्री राम जी महाराज के प्रति प्रेम होना ही परम परमार्थ है। अतः जीवों को चाहिये कि वे अपने हृदय में श्री सीताराम जी को बिठाकर मुख से सीताराम–सीताराम रटता रहे तथा सुन्दर नेत्रों से प्रेमाश्रु विमोचन करता रहे।

बाहर भीतर लखै अनूपा। सीय राम शुभ सुन्दर रूपा ॥
लखतहिं देह दशा बिसरावै । प्रेम चिन्ह सब बाहर आवै ॥

इस प्रकार हृदय के भीतर व बाहर सर्वत्र श्री सीताराम जी के शुभ व सुन्दर रूप का अनुपमेय दर्शन करते हुए शरीर की अवस्था भूल जाय और प्रेम के सभी सात्विक चिन्ह शरीर में प्रगट हो जाँय।

लीला चिन्तन चिन्मय होई । बाहर कहै सुनै अरु जोई ॥
सत ब्रत सत्य टरत नहिं टारे । अति अनुराग सुकीर्ति उचारे ॥

परम प्रभु श्री सीताराम जी की चिन्मयी लीलाओं का वह चिन्तन करता रहे तथा संसार में उन्ही चरित्रों को कहे, सुने व दर्शन करे। इस प्रकार का सत्यव्रत ग्रहण कर उसमें अटल हो जाय तथा अत्यन्त अनुराग पूर्वक भगवान की सुन्दर कीर्ति का गायन करता रहे।

दो०–हँसत रुदत गावत नाचत, जग सब सुधिहिं बिसार ।
आत्माहुति करि राम महँ, पर परमारथ पार ॥९१॥क॥

भगवान के प्रेम में हँसते, रोते, गाते व नाचते हुए संसार की सभी स्मृति भूल जाय और श्री राम जी महाराज के चरणों में अपनी आत्मा को समर्पित कर परम परमार्थ को प्राप्त कर ले।

धाम सदा हिय महँ लखै, जहँ चितवै तहँ धाम ।
सत चित आनन्दरूप जो, बाहर भीतर याम ॥ख॥

अपने हृदय में सदैव भगवान के धाम का ही ध्यान (चिंतन) करे तथा जहाँ भी उसकी दृष्टि जाय उसे धाम ही समझे इस प्रकार भगवान का सच्चिदानन्दमय जो नित्य धाम है उसे वह भीतर और बाहर सर्वत्र सर्व समय में अनुमान करे।

सुनु हनुमान श्रवण सुखदाई । यह संवाद सरस शम छाई ॥
जो उर धरै सनेह समेता । बार बार सुनि समुझि सचेता ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी उपर्युक्त प्रसंग सुनाने के पश्चात् श्री हनुमान जी से कहते हैं कि– हे

श्री हनुमान जी! श्रवणों को सुख देने वाला यह वार्तालाप प्रेमरस से परिपूर्ण व शान्ति से ओत–प्रोत है। इसे बार बार सावधान हो सुन तथा समझकर जो कोई भी प्रेम पूर्वक हृदय में धारण करेंगे–––

पावहिं राम चरण अनुरागा। पगैं परम परमार्थ सुभागा॥
ममता अहं वासना त्यागी। प्रेम द्वार तब पहुँचै भागी॥

–––वे परम सौभाग्यशाली जन श्री राम जी महाराज के चरणों के प्रेम को प्राप्तकर परम परमार्थ स्वरूप परम पद में निमग्न हो जायेंगे। हे कुमार! जब जीव अपने हृदय से ममता, अहंकार और कामनाओं का त्याग कर देता है तभी वह शीघ्र प्रेम के दरवाजे पर पहुँच जाता है।

जानहु इहै परम पुरुषारथ। इहै जीव कर सुन्दर स्वारथ॥
लक्ष्मीनिधि सुन गुरु मुख वानी। ज्ञान विराग प्रेम सुख सानी॥

इसे ही परम पुरुषार्थ जानना चाहिए तथा यही जीवों का यथार्थतः सुन्दर स्वार्थ भी है। इस प्रकार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ज्ञान, वैराग्य, प्रेम व सुख से सनी हुई आचार्य मुख विनिश्रिता वाणी को श्रवणकर–––

चरण परे भल भाव बढ़ाई। नयनन नीर दीन्ह नहवाई॥
गुरु लगाय हिय गोद बिठारी। पानि शीश परशे दृग वारी॥
धन्य धन्य तुम कुँवर नृपाला। पायो परम तत्व रस शाला॥

–––अपने तत्व ज्ञानी आचार्य श्री याज्ञबल्क्य जी के प्रति सुन्दर भाव बढ़ाकर द्धअगाध श्रृद्धा के साथ) प्रणाम करने के लिये उनके चरणों में गिर पड़े तथा उन्हें प्रेमाश्रुओं से नहला दिये। तब श्री गुरुदेव जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को उठा, अपने हृदय से लगाकर गोद में बिठा लिया और उनके शिर का स्पर्श कर बोले– हे श्री महाराज जनक जी के कुमार! श्री लक्ष्मीनिधि! आप धन्यातिधन्य हो जिसने रस स्वरूप परम तत्व को प्राप्त कर लिया है।

दो०–पानि जोरि बोले कुँवर, मोर भाग बड़ नाथ।
राउर सम गुरु पाय जग, सब विधि भयों सनाथ॥९२॥क॥

अपने गुरुदेव श्री मान् याज्ञबल्क्य जी महाराज के बचनों को सुनकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी हाथ जोड़ विनय पूर्वक बोले– हे नाथ! मेरी अहो भाग्य है जो इस संसार में आपके समान आचार्य को प्राप्तकर मैं सभी प्रकार से सनाथ (सुरक्षित) हो गया।

बार बार वर विनय करि, बनि कृतज्ञ युवराज।
लहि आयसु सिर नाय पुनि, हरषण गे नित काज॥ख॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– इस प्रकार युवराज श्री लक्ष्मीनिधि जी कृतज्ञ बन, अपने गुरुदेव श्री से बारम्बार प्रार्थना कर, शिर झुका प्रणाम किये तथा उनकी आज्ञा पाकर हर्ष प्रपूरित हो नित्य कर्मो के सम्पादन हेतु चले गये।

कुँवर सुनहिं श्रुति शास्त्र पुराना। गुरु मुख यहि विधि बहुत विधाना॥
परम तत्व सुनि सुनि सब धारैं। प्रेम पगे परमार्थ विचारैं॥

हे सज्जनो! कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी इस प्रकार आचार्य मुख से श्रुतियों, शास्त्रों व पुराणों का विधि–विधान पूर्वक श्रवण करते रहते थे तथा उनमें प्रतिपादित सभी महान तत्वों को सुन–सुन कर हृदय में धारण करते हुए प्रेम मग्न हो परमार्थ चिन्तन करते रहते थे।

औरहु सरस सुसन्तन संगा। करत सुखद प्रभु प्रीति अभंगा॥
जदा कदा मुनि नारद आवैं। चरित पुनीत राम के गावैं॥

वे भगवान के प्रति अटूट प्रेम के लिए अन्य रसमय सन्तों का सुख प्रदायक सत्संग करते रहते थे। कभी कभी देवर्षि श्री नारद जी भी उनके समीप आते और श्री राम जी महाराज के पवित्र चरित्रों का गायन किया करते थे।

एक बार मुनि कथा सुनाई। सुनी कुँवर शुचि भाव बढ़ाई॥
बोले नारद वचन पियारा। कहुँ इकान्त सुनु राजकुमारा॥

एक बार श्री नारदजी ने एक गाथा सुनाई जिसे कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने पवित्र भाव बढ़ाकर श्रवण किया। श्री नारद जी ने अपनी प्रिय वाणी से कहा– हे राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! किसी एकान्त स्थल में चलकर आप एक चरित्र श्रवण करें।

अवध जाय निज नयनन देखा। दशरथ सुत कर चरित विशेषा॥
एक दिवस दिवि ध्यान लगाई। बैठे सुखद राम रघुराई॥

हे कुमार! मैंने अपनी आँखों से श्री अयोध्या पुरी जाकर श्री दशरथ नन्दन रामजी महाराज के एक विशेष चरित्र का दर्शन किया है। एक दिन रघुकुल राय श्री राम जी महाराज परम सुखदायी दिव्य ध्यान लगाकर बैठे हुए थे।

दो०–भये मगन घटिका द्वयक, विरह भरे पुनि राम।
अश्रु बहत हिचका चलत, कहत सखे सुख धाम॥९३॥

श्री राम जी महाराज एक दो घड़ी में ही ध्यान मग्न होकर पुनः विरह में भर गये, उस समय उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे, हिचकियाँ चलने लगीं तथा वे हा! सुख के धाम सखे! हा मेरे सखे, कहते हुये प्रलाप करने लगे।

पुनि अचेत सुधि बुधि बिसराई। आसन गिरे विकल बहुताई॥
तेहिं अवसर लक्ष्मण तहँ आये। देखि दशा मन विस्मय पाये॥

पुनः श्री राम जी महाराज अपनी स्मृति भूलकर चेतना विहीन हो गये और अत्यधिक व्याकुल हो आसन में लुढ़क गये। उसी समय वहाँ श्री लक्ष्मण कुमार जी आ गये तथा उनकी अवस्था देखकर अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हुए।

समाचार सुनि दशरथ राजा। आये गुरु सह कछुक समाजा॥
हमउ रहे तहँ विहवल रामा। दिखे गोद नृप पूरण कामा॥

यह समाचार सुनकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज रघुकुल के गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी सहित कुछ समाज को लिये हुये आ गये। श्री नारद जी ने कहा– हे कुमार! उस समय हम भी वहीं

थे, हमें पूर्ण काम श्री राम जी महाराज विह्वल अवस्था में श्री महाराज दशरथजी की गोद में दिखाई पड़े।

झार फूँक कुल गुरु द्रुत कीन्हा । परशि शरीर हमहुँ सुख लीन्हा ॥
उठि बैठे रघुवर हरषाई । पूँछे कारण कह्यो न गाई ॥

उस समय रघुकुल गुरु श्री बसिष्ठ जी ने शीघ्र ही झाड़–फूँक की तथा हमने भी उसी बहाने से उनके दिव्य शरीर का स्पर्श कर सुख प्राप्त किया, तदनन्तर रघुकुल श्रेष्ठ श्री रामजी महाराज हर्षित होकर उठ बैठे। उनकी अवस्था का कारण पूँछने पर उन्होंने कुछ भी नहीं बताया।

कहे वसिष्ठ पृथक करि राजहिं । कारण सुनहु जौन भो आजहिं ।।
पूरब सखा राम कर कोई । जनमेउ कहुँ राजा घर सोई ।।

उस समय श्री बसिष्ठ जी महाराज ने चक्रवर्ती श्री दशरथ जी को अलग कर कहा– हे राजन! आज जो चरित्र हुआ है आप उसका कारण सुनिये– श्री राम जी के कोई पूर्व सखा किसी राजा के भवन में जन्म धारण किये हैं–––

दो०–राम विरह वारिधि मगन, निशिदिन प्रेम विभोर ।
तासु विरह रामहुँ रहत, करत सुरति सुधि छोर ॥९४॥

–––वे सखा श्री राम जी महाराज के प्रेम विभोर हो विरह सागर में दिन–रात मग्न रहते हैं इसलिए श्री राम जी महाराज भी उनके विरह में समाये रहते हैं तथा उनका स्मरण करते ही स्मृति भूल जाते हैं।

सोच करहु जनि सुनहु नृपाला । रामहि गुनहुँ भक्त प्रति पाला ॥
तिन कहँ भजैं भक्त जेहिं भावा । सदा राम तेहिं तैसेहिं ध्यावा ॥

हे राजन! आप श्रीरामजी महाराज को भक्तों का प्रति–पालन करने वाला समझकर उनकी चिन्ता न करें। क्योंकि उनके भक्त–जन उनका जिस भाव से भजन करते हैं प्रभु श्रीरामजी महाराज भी नित्य उनका उसी प्रकार से ध्यान किया करते हैं।

कछु दिन गये सखहिं मिलि रामा । मनिहैं हृदय महा विश्रामा ॥
सोइ सखा तुम साँच सुजाना । हम जानहिं नीके करि ध्याना ॥

कुछ दिन व्यतीत जो जाने पर श्रीरामजी महाराज अपने उस सखा से मिलकर हृदय में महान विश्रान्ति प्राप्त करेंगे। इस प्रकार देवर्षि नारद जी चरित्र श्रवण कराकर बाले– हे प्रवीण कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप श्री राम जी महाराज के वही सखा हैं, यह बात हम भली प्रकार से ध्यान कर जान गये हैं।

जाइ राम ढिग तव प्रिय चरिता । विशद विरह वरणेउ मुद करिता ॥
सुनि सुनि राम बहुत सुख माने । भाव भगति रस रसिक अघाने ॥

क्योंकि जब मैंने श्रीरामजी महाराज के पास जाकर आपके प्रिय चरित्र व आनन्दकारी महान विरह का वर्णन किया तब उसे सुन–सुन कर श्रीरामजी महाराज ने बहुत सुख प्राप्त किया था तथा

वे रसिक शिरोमणि आपके भाव, भक्ति व रस से संतुष्ट हो गये थे।

सकुचि राम मोहि बहुत निहोरा । अनत कहहिं जनि गुप्त अथोरा ॥
धन्य धन्य जग कुँवर पियारे । रमहिं राम जेंहि तन मन वारे ॥

तदुपरान्त श्रीरामजी महाराज ने संकुचित हो मुझसे बहुत विनय की कि इस रहस्य को अत्यधिक गुप्त समझकर अन्यत्र कहीं बखान नहीं करेंगे। हे कुँवर, श्री लक्ष्मीनिधि जी! संसार में आप धन्यातिधन्य हैं, जिन पर स्वयं श्रीरामजी महाराज अपना शरीर, मन व सर्वस्व न्योछावर कर अनुरक्त बने रहते हैं।

दो०–सुनत सुखद मुनिवर बचन, गये प्रेम रस गार।
अपनिउ सुधि बुधि सब भगी, बहे प्रेम की धार ॥९५॥

मुनिवर श्री नारदजी के वचनों को सुनकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेमरस में मग्न हो गये, उन्हें अपनी सम्पूर्ण स्मृति भूल गयी और वे प्रेम की धारा में बह गये।

सुनु हनुमान सदा प्रभु रीती । निज जन पर ममता बहु प्रीती ॥
महा मन्द मति अमित अभागी । जो न भजै प्रभु अति अनुरागी ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा–हे श्री हनुमान जी! सुनिये, प्रभु श्रीरामजी महाराज की सदैव से यही रीति रही है कि वे अपने सेवकों पर अत्यधिक ममता व प्रीति करते हैं। ऐसे स्वभाव सम्पन्न श्री राम जी महाराज का अत्यानुरागपूर्वक जो भजन नहीं करते हैं वे बहुत ही निम्न बुद्धि वाले तथा असीमित अभागी हैं।

यहिं विधि कुँवर प्रीति रस पागे । करत काज प्रभु किरपहिं लागे ॥
एक दिवस मन ध्यान लगाई । कहुँ विवित्त बैठेउ हरषाई ॥

इस प्रकार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम–रस में डूबे हुए प्रभु श्रीरामजी महाराज की कृपा को प्राप्त करने के लिए सभी कार्य करते रहते थे। एक दिन किसी निर्जन स्थान में हर्ष पूर्वक बैठकर उन्होंने मन में ध्यान लगाया–––

तदाकार चित भयो सुजाना । चित्त भीति प्रभु चरित दिखाना ॥
राम जन्म जस उत्सव भयऊ । बाल केलि पित्रन सुख दयऊ ॥

–––तब परम प्रवीण कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का चित्त श्री राम जी महाराज में तदाकार हो गया और उनके चित्त–पटल में श्रीरामजी महाराज के सुन्दर चरित्रों का दर्शन होने लगा। जिस प्रकार श्रीरामजी महाराज का जन्मोत्सव हुआ और सुन्दर बाल–लीलायें कर प्रभु नें अपने पितृजनों को जैसा आनन्द प्रदान किया तथा––

काग सहित हर आवन जाना । पुरजन परिजन प्रेम पुराना ॥
बाल चरित जिमि बहु विधि कीन्हे । लखे कुँवर तिमि दिव्य नवीने ॥

–––परम भागवत श्री काग भुसुण्डि जी सहित भगवान श्री शंकर जी का अयोध्यापुरी आगमन कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने ध्यान में जान लिया। श्री अयोध्या पुरी के पुरजनों व परिजनों का

पूर्व प्रेम तथा श्री राम जी ने जो अन्य प्रकार की बहुत सी बाल लीलायें की, वह सब दिव्य व नवीन चरित्र कुँवर श्री लक्ष्मी–निधि जी ने ध्यान में उसी प्रकार से दर्शन कर लिया।

दो०–कर्ण भेद उपवीत जिमि, पढ़न गवन गुरु गेह ।
लहि विद्या कारज करन, मात पिता गुरु नेह ॥९६॥

श्री राम जी महाराज के कण–वेध व यज्ञोपवीत आदि संस्कार जिस प्रकार सम्पन्न हुये, पुनः विद्याध्ययन के हेतु श्री गुरु आश्रम जाना, विद्या प्राप्तकर सभी प्रकार के कार्यो का करना, श्री अम्बा जी, श्री मान् दाऊ जी व श्री गुरुदेव जी का उनके प्रति स्नेह–––

सखन संग आहार विहारा। यथा विरह निज राम कुमारा ॥
बहु विधि देखे चारु चरित्रा। इक से इक सब परम विचित्रा ॥

–––सखाओं के साथ आहार–विहार तथा अपने (स्वयं श्री लक्ष्मीनिधि जी के) विरह में श्रीरामजी महाराज की स्थिति आदि सभी सुन्दर व एक से एक परम विलक्षण चरित्रों का कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने चित्त प्रदेश में भली प्रकार से दर्शन प्राप्त किया।

चरित चन्द्र इक दिव्य दिखाना । चित्त पटल चम चम चमकाना ॥
सरयु कूल वर विपिन प्रमोदा । नवल निकुंज लसैं चहुँ कोदा ॥

पुनः उनकी चित्त भीति में एक अतिशय प्रकाशित दिव्य चरित्र रूपी चन्द्रमा का दर्शन हुआ कि– परम पवित्रा श्री सरयू जी के किनारे प्रमोद वन में चारों ओर कई नवीन निकुञ्ज सुशोभित हो रहे हैं।

पत्र पुष्प फल सम्पति भ्राजा । कोकिल कीर मोर रव राजा ॥
बहै त्रिविध वर वायु सुहावन । जहँ तहँ मणि मन्दिर मन भावन ॥

वह प्रमोद वन सुन्दर पत्तों, फूलों व फलों आदि प्राकृतिक सम्पत्तियों तथा कोयल, तोता व मोर आदि पक्षियों की सुन्दर ध्वनि से सुशोभित हो रहा है। तीनों प्रकार की सुन्दर वायु प्रवाहित हो रही है और जहाँ–तहाँ मणियों से बने हुये मनोभिराम मन्दिर शोभायमान हो रहे हैं।

वारहिं नन्दन वन बहु कोटी। जहँ न जाय मन वाणी लौटी ॥
सत चिद आनँद रसमय रूपा। रसिकन रसद केलि थल भूपा ॥

वहाँ के सौन्दर्य छटा पर नन्दन वन की करोड़ गुनी सुन्दरता भी न्योछावर हो रही है तथा उस शोभा तक मन व वाणी न पहुँच पाने के कारण वापस लौट आ जाते हैं अर्थात् मन उसका मनन नहीं कर सकता व वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। वहाँ पर एक सच्चिदानन्दमय, रसस्वरूप, रसिक जनों को रस प्रदान करने वाला राजकीय क्रीड़ा स्थल है––

दो०–शीतल सुखद प्रकाश जहँ, सूर्य चन्द्र बिनु होय ।
सिय रघुवर विहरन थली, नित प्रमोदमय जोय ॥९७॥

––जहाँ पर सूर्य व चन्द्रमा के बिना सुख प्रदायक शीतल प्रकाश हो रहा है, ऐसी श्री सीताराम

जी के नित्य विहार की आनन्दमयी स्थली का कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने चित्त प्रदेश में दर्शन किया।

साँझ समय श्रीराम रसाला। नटवर वेश बने जन पाला ॥
लखि लखि कोटि काम बलि जाई । छटा विन्दु जनु जग रुचिराई ॥

वहाँ सन्ध्या के समय भक्तों का प्रतिपालन करने वाले, रस के आगार श्री राम जी महाराज सुन्दर नटवर वेश धारण किये हुये सुशोभित हो रहे हैं जिन्हें देख–देखकर करोड़ों कामदेव भी बलिहारी जाते हैं व उस समय ऐसी प्रतीति हो रही है मानों उनके सौन्दर्य की एक बून्द से संसार की सम्पूर्ण सुन्दरता प्रगट हुई हो।

गेरह वर्ष वयस सुकुमारी। रही राम की मोहन हारी ॥
विहरन हित वहँ गयउ रसिक वर । मनहुँ धरे रस रूप सुढर ढर ॥

श्रीरामजी महाराज की उस समय मनमोहनी ग्यारह वर्ष की सुकुमार अवस्था है। वे रसिक–श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज प्रमोद वन में सुन्दर विहार करने हेतु गये, उस समय वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों स्वयं रस ही सुन्दर विग्रह धारण किये हो।

मध्य विपिन जब विहर कृपाला । भयो अतिहिं अचरज तेहिं काला ॥
यावत लता प्रमोद विपिन की। संख्या नहिं कहि जात तिन्हन की ॥

परम कृपालु श्रीरामजी महाराज जब प्रमोद वन के मध्य भाग में विहार कर रहे थे उस समय वहाँ एक महान आश्चर्य हुआ कि– प्रमोद वन में जितनी लताएँ थीं, जिनकी संख्या तक बखान नहीं की जा सकती।

युवती बनि ढिग जाइ राम के। परी चरन रसिया सुधाम के ॥
मिलि मण्डल करि प्रभु कहँ बीचा। खड़ी जोरि कर करि सिर नीचा ॥

वे सभी, सुन्दर युवतियों का रूप धारणकर श्रीरामजी महाराज के समीप गयीं और जाकर उन्होने परमपद स्वरूप रसिया रघुनन्दन श्री राम जी महाराज के चरणों में प्रणाम किया, पुनः वे युवतियाँ प्रभु श्रीरामजी महाराज को बीच में कर मण्डल बना, चारो ओर करबद्ध शिर झुकाये खड़ी हो गयीं।———

दो०– राम कुँवर बोलत भये, वचन सुधा सुख सींच ।
अबहिं लता लसि सब रहीं, बन प्रमोद के बीच ॥९८॥

———अनन्तर चक्रवर्ती दशरथ राज कुँवर, श्री राम जी महाराज सुखपूर्वक अपनी अमृतमयी वाणी का सिंचन करते हुये बोले– अभी–अभी तो आप सभी प्रमोद वन में लता बनी हुई सुशोभित हो रही थीं———

देखतहिं सब बनि गईं सुनारी। कोटि रती तन छवि पर वारी ॥
अहहिं कवन कस वसहिं प्रमोदा । सत सत बात कहैं अति मोदा ॥

———और अब देखते ही देखते आप सभी ऐसी सुन्दर नारियाँ बन गयीं, जिनके शरीर सौन्दर्य

पर करोड़ों "रती" (कामदेव पत्नी) भी न्योछावर है। आप कौन हैं? तथा इस प्रमोद वन में किस प्रयोजन से निवास कर रहीं हैं? आनन्दपूर्वक सत्य–सत्य बात बतायें।

पानि जोरि बोली प्रिय बयना । सुनहिं सबन विनती हित दयना ॥
पुँछतहिं जगत भई अति धन्या । हम सबहीं हैं प्रभु सुर कन्या ॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर वे युवतियाँ करबद्ध हो प्रिय वचन बोलीं– हे परम कल्याण प्रद स्वामिन् श्री राम जी महाराज! आप हम सभी की विनय को सुनें। हे नाथ! हम सभी तो आपके पूँछने मात्र से ही संसार में धन्य हो गयीं हैं, हे प्रभु! हम सभी देव कन्यायें हैं।–––

दरश पाइ तब सकल सनाथा । दशरथ नन्दन प्रभु श्रुति माथा ॥
पद विशोक पाई हम आजू । देखत तुम्है राम रघुराजू ॥

–––हे श्रुतियों के शिखामणि चक्रवर्ती दशरथ नन्दन श्री रामजी महाराज! आपका दर्शन पाकर हम सभी सनाथ हो गयीं हैं। हे रघुराज राम भद्र जी! आपका दर्शन करते ही हमने आज सर्व शोक रहित "परम पद" प्राप्त कर लिया है।

जानत हूँ पूछहिं जग स्वामी । परिचय कहहिं सुनहिं उर यामी ॥
पूरब कल्प कीन्ह तप भारी । जगत स्वप्न सत भजन बिचारी ॥
करम वचन मन तुम्हरे लागी । कीन्ही भक्ति दुराशा त्यागी ॥

हे अखिल संसार के स्वामी, सभी के हृदय की जानने वाले, श्री राम जी महाराज! आप सब जानते हुये भी पूछ रहे हैं तो हम अपना परिचय कह रही हैं, आप श्रवण करें, हम सभी ने, पूर्व कल्प में संसार को स्वप्न तथा आपके भजन को सत्य समझकर महान तपस्या की थी तथा मन, वचन व कर्म से आपकी प्राप्ति के लिए सभी प्रकार की कामनाओं का त्यागकर आपकी भक्ति की थी।

दो०–बहुत वर्ष बीते जबहिं, ब्रह्मा पहुँचे आय ।
कह्यो पुत्रि वर मागियहिं, जो सिगरेन्ह मन भाय ॥९९॥

इस प्रकार जब बहुत वर्ष व्यतीत हो गये तब श्री ब्रह्माजी हमारे समीप आये और बोले– हे पुत्रियो! तुम सभी के मन को जो अच्छा लगता हो वह वर माँग लो।

करि दण्डवत विनय बहु भाषी । कही बात जो मन महँ राखी ॥
हम वर मागैं दीन दयाला । परब्रह्म परमार्थ रसाला ॥

तब हम लोगों ने उन्हें दण्डवत कर बहुत प्रकार से अनुनय–विनय करते हुए वह बात कही जो मन में छिपा रखी थी। हे ब्रह्मन! हम यह वरदान माँगती हैं कि दीनों पर दया करने वाले, परब्रह्म, परमार्थ स्वरूप व रस के आलय–––

करै दरश भरि नयन राम के । करि सेवा छाकहिं सुधाम के ॥
सुनि बोले विधि बैन सुहावा । धन्य धन्य जो प्रभु लव लावा ॥

–––श्री रामजी महाराज के भर नेत्र दर्शन करें तथा परम–पद स्वरूप उन प्रभु की सेवा

करती हुई आनन्द में छक जायें। हम लोगों की बातें सुनकर श्री ब्रह्मा जी सुन्दर वाणी से बोले– हे देव कन्याओ! आप सभी धन्यातिधन्य हैं जो प्रभु श्रीरामजी महाराज में अपनी चित्त–वृत्ति (ध्यान) लगायी हैं।

अस्मिन कल्पे करि दिवि वासा । अग्र कल्प सुनु शब्द प्रकाश ॥
सरयू तीरे विपिन प्रमोदे । लता जन्म लै वसि तहँ मोदे ॥

अतः इस कल्प में आप सभी यहीं दिव्य निवास करिये तथा आगे आने वाले कल्प के विषय में मेरे शब्दों को सुनिये– आप सभी श्री सरयू नदी के तट पर प्रमोदवन में लताओं के रूप में जन्म ले कर आनन्द पूर्वक निवास करती हुई–––

आस करहु रघुवीर मिलन की । जानत प्रभु सब भक्त हियन की ॥
अवधपुरी तृण पादप आदी । सत चित आनँद रूप सुस्वादी ॥
हमहूँ चहहिं तहाँ दिन राती । बनि पादप सेवैं सरसाती ॥

–––श्रीरामजी महाराज के मिलन की कामना करती रहो क्योंकि प्रभु श्रीरामजी महाराज सभी भक्तों के हृदय की जानने वाले हैं। श्री अयोध्यापुरी के तिनके (तृण) तथा पौधे आदि सभी सच्चिदानन्दमय व परम सुखावह हैं। हमारी भी यही कामना बनी रहती है कि वहाँ के वृक्ष बनकर सुखपूर्वक श्री सीताराम जी की दिन–रात (अष्टयाम) सेवा करते रहें–––

दो०– पूर्ण सनातन ब्रह्म पर, लैहें पुर अवतार ।
विहरन हित तहँ आइहैं, सुनहु सुता सुकुमार ॥१००॥

–––हे पुत्रियो! सुनें, वहाँ श्री अयोध्यापुरी में पूर्णातिपूर्ण, शाश्वत, परब्रह्म श्रीरामजी महाराज अवतार धारण करेंगे तथा उस प्रमोदवन में वे विहार करने के लिए आयेंगे।

दरश करत खुलि हैं तव भागा । दिव्य नारि बनि वपु अनुरागा ॥
पाइ कृपा करि सेव सुखारी । पूजिहिं सब शुचि आस तुम्हारी ॥

उनका दर्शन करते ही आप लोगों के भाग्य खुल जायेंगे और आप सभी उनके प्रति प्रेम के कारण दिव्य स्त्री शरीर पाकर उनकी कृपा से उनकी सुखमयी सेवा पा जायेंगी, इस प्रकार आप लोगों की यह पवित्र अभिलाषा पूर्ण हो जायेगी।

अस कहि ब्रह्मा लोक सिधाये । जन्म लता हम सबहीं पाये ॥
दरश आश अब लौ सुनु रामा । करी तपस्या होइ निष्कामा ॥

ऐसा कह कर श्री ब्रह्मा जी अपने ब्रह्मलोक चले गये और हम सभी ने लताओं के रूप में जन्म प्राप्त किया। हे श्री राम जी महाराज! सुनिये, आप के दर्शन की कामना से हम सभी ने सभी प्रकार की कामनाओं से रहित हो प्रेम भाव मे भरकर अभी तक तपस्या की है।

दासी समुझि आज मम नाथा । कीन्हें सब विधि सबहिं सनाथा ॥
जय जय जय रसिकेश सुजाना । महिमा महा त्रिदेव न जाना ॥

हे हमारे स्वामी! आज आपने अपनी सेविका समझ, हमे दर्शन देकर, सभी प्रकार से सनाथ कर दिया। हे रसिकाधिराज, सर्वज्ञ श्री राम जी महाराज! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। आपकी महिमा ऐसी महान है कि उसे त्रिदेव (श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी और श्रीशंकरजी) भी नहीं जान पाते।

जय सीतापति अवध विहारी। जयति जयति जय जग भ्रमहारी॥
जय प्रमोद वन विहरन शीला। सब समर्थ प्रभु तारन भीला॥

हे श्री सीताकान्त, श्री अयोध्यापुरी में विहार करने वाले श्री राम जी महाराज! आपकी जय हो, हे संसार के मिथ्या–ज्ञान को दूर करने वाले स्वामी! आपकी जय हो, जय हो, हे प्रमोदवन विहारी, सर्व सामर्थ्यवान तथा अधम जीवों (भीलों) का भी उद्धार करने वाले स्वामिन! आपकी जय हो।

जय जय मैथिल प्राण पियारे। जय जय श्री निधि आत्म अधारे॥
जयति भक्तजन आनन्द दाता। जयति ब्रह्म परमारथ भाता॥

हे समस्त मिथिला वासियों के प्राण प्रिय रघुनन्दन! आपकी जय हो, जय हो, हे श्री लक्ष्मीनिधि जी के आत्माधार आपकी जय हो, हे भक्तजनों के आनन्द प्रदाता आपकी जय हो तथा हे सुन्दर परमार्थ ब्रह्म! आपकी जय हो।

दो०–रसिक शिरोमणि रसनिधे, जयति दाशरथि राम।
कहि कहि बहु वरषहिं सुमन, गिरीं चरण वर वाम॥१०१॥

हे रसिक शिरोमणि, रस–सागर, दशरथ नन्दन श्री राम जी महाराज आपकी जय हो कह कह कर फूलों की विपुल वर्षा करती हुई वे श्रेष्ठ देव कन्यायें श्रीरामजी महाराज के चरणों में गिर पड़ीं।

बोले कृपा सिन्धु सुखकारी। धनि धनि मम प्रिय प्राण पियारी॥
मम हित लागि तजी सब भोगा। कल्पन ते मन कीन्ह अरोगा॥

तदुपरान्त सर्व सुखकारी, कृपा के सागर श्री राम जी महाराज बोले– मुझे प्राणों से प्रिय लगने वाली, हे देवकन्याओं! आप सभी धन्यातिधन्य हैं जो मेरे लिए सभी प्रकार के भोगों को त्याग कर कल्पों से अपने मन को विकार विहीन बना रखी हैं।––

भगत मोहि नित प्राण पियारे। हौ तिन हित निज सरवस वारे॥
नर अरु नारि नीच किन होई। भगतहिं राखौं निज उर गोई॥

––मुझे भक्तजन सदैव प्राणों से प्रिय लगते हैं और मैं उनके लिए अपना सर्वस्व न्योछावर किये रहता हूँ। चाहे वे पुरुष, स्त्री या निम्न जाति के क्यों न हो, मैं उन्हें अपने ह्रदय में छुपाकर रखता हूँ।––

अस विचारि माँगहु वरदाना। नहिं अदेय भक्तन प्रिय प्राना॥
जय जय कहि सब सुर सुकुमारी। हाथ जोरि शुभ गिरा उचारी॥

––ऐसा विचार कर आप वरदान माँग लें, क्योंकि भक्तों के लिए तो मुझे मेरे प्रिय प्राण भी अदेय नहीं है। यह सुनकर सभी देव कन्याओं ने जय हो जय हो कहकर हाथ जोड़ शुभ वाणी से कहा–

एक आस हमरे मन माहीं। प्रभु सर्वज्ञ जान नित ताहीं ॥
काम रहित एकान्तिक सेवा। दरश परश लहि प्रेम प्रभेवा ॥

हे स्वामी! हमारे मन में मात्र एक ही कामना है जिसे सभी कुछ जानने वाले आप सर्वदा जानते हैं। हम आपकी निष्काम व एकान्तिक सेवा कर आपका दर्शन, स्पर्श एवं प्रेम प्राप्त करना चाहती हैं।———

दो०—नित्य नित्य अर्चा सरस, करहिं प्रभो हुलसाय।
परमानन्दहिं पाइ नित, हमहुँ रहैं रस छाय ॥१०२॥

———हे प्रभो! हम नित्य प्रति उत्साह में भरकर आनन्दपूर्वक आपकी रसमयी अर्चना किया करें तथा नित्य परमानन्द को प्राप्त कर हम भी रस में समायी रहें।———

नाथ जीव कर सहज स्वरूपा। ब्रह्म दास परतंत्र अनूपा ॥
बार बार मागहिं कर जोरी। पुरइय मंजु मनोरथ मोरी ॥

————हे नाथ! जीव का तो सहज स्वरूप ही है कि वह अनुपमेय ब्रह्म का सेवक और उनके आधीन है। इसलिए हम सभी करबद्ध विनय कर बारम्बार याचना कर रही हैं कि आप हमारी सुन्दर कामना की पूर्ति करें।

विनय विवेक प्रेम रस सानी। बोले राम मधुर मृदु वानी ॥
मम हिय कीन्ह आप सब ठामा। कवन रहेउ बाकी विश्रामा ॥

देव कन्याओं के वचनों को सुनकर श्रीरामजी महाराज विनय, ज्ञान, प्रेम व रस से सनी हुई, मीठी तथा कोमल वाणी से बोले— हे देव कन्याओ! आप सभी ने तो मेरे हृदय में अपना निवास बना लिया है फिर आप लोगों के लिए कौन सा सुख शेष है।

पूजिहिं सब अभिलाष तुम्हारी। एक बात पुनि सुनहु हमारी ॥
लीला करहुँ लोक अनुहारी। जग परिकर सह होहुँ सुखारी ॥

आपकी सभी कामनायें अवश्य पूर्ण होंगी, परन्तु हमारी एक बात आप श्रवण करें, मैं यहाँ अपने परिकरों सहित संसार के अनुरूप लीला कर सुखी हो रहा हूँ।

शक्ति जाहि जस पाठ पढावा। सो तस पढ़ै तबै सुख छावा ॥
वेद विधान जगत मरयादा। करन करावन युत अहलादा ॥

लीला विधायिनी शक्ति जिसे, जिस प्रकार का पाठ पढ़ाकर अभिनय हेतु भेजती है, वह व्यक्ति जब उसी पाठ को पढ़ता है अर्थात् तदनुरूप अभिनय करता है तभी लीला में आनन्द प्राप्त होता है। पुनः वेदों के विधान से युक्त संसार की मर्यादा को आह्लाद पूर्वक करने—कराने—

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। सबहिं दिखावन हेतु यथारथ ॥
मोर पाठ सच जानहु बाला। ताते तस दिखरैहों चाला ॥

——तथा सभी को नीति, प्रीति, परमार्थ व स्वार्थ आदि का वास्तविक स्वरूप दिखाने का ही मेरा

यथार्थतः पाठ है इसलिए हे देव कन्याओ! मैं उसी प्रकार का आचरण दिखाऊँगा।

दो०—आप सबै सुर कन्यका, मानव पूजन योग ।
छत्री कुल हम तन धरे, उचित न सेवन भोग ॥१०३॥

पुनः आप सभी देव कन्यायें तो मनुष्यों के द्वारा पूजन करने के योग्य हैं और हम क्षत्री कुल में शरीर धारण किये हैं इसलिए आप लोगों की सेवा का उपभोग हमारे लिए उचित नहीं है।

देवन ते हम सेव कराई । कहा सीख जग दीन्हेव आई ॥
पूजन करै कोइ नहि देवा । भ्रष्ट होहि जग बाढ़ी केवा ॥

यदि हम देवताओं से अपनी सेवा करायेंगे तो फिर हम संसार में अवतार धारण कर लोगों को कौन सी शिक्षा देंगे। ऐसा करने से कोई भी देवताओं की पूजा नहीं करेगा जिससे संसार भ्रष्ट हो जायेगा और दुर्व्यवस्था बढ़ जायेगी।

श्रेष्ठ जनन ते सेव कराई। परै नरक कलपन दुखदाई ॥
ताते राज सदन प्रिय भोगू । मम सह तुम्हरे नाहिन योगू ॥

श्रेष्ठ जनों से सेवा कराने पर कल्पों तक दुखप्रद नरक भोगना पड़ता है। इसलिए हमारे साथ राजमहल में हमारी सेवा करना आप लोगों के अनुकूल नहीं है।

जब लगि विहरि वसौं इह लोका। लसहु लता बनि वनहिं विशोका ॥
परा धाम जब जाब हमारा। परिकर सह होई सुखकारा ॥

अतः मैं जब तक इस संसार में निवास करता हुआ विहार कर रहा हूँ तब तक आप सभी इस प्रमोदवन में आनन्दपूर्वक लतायें बनकर सुशोभित हों। तदनन्तर जब हमारा परिकरों सहित परम धाम श्री साकेत धाम में सुखकारी प्रस्थान होगा————

तबहिं चलेव सब साथ हमारे। भोगेहु परमानन्द प्रसारे ॥
पूजिहिं सब मन आस सुहावन। योगी ज्ञानी चित ललचावन ॥

———उस समय आप सभी हमारे साथ चलकर परमानन्द में पगी हुई हमारी सेवा का उपभोग करियेगा। उस समय योगी व ज्ञानियों के मन को भी लालायित करने वाली आपकी सभी सुन्दर मनोकामनायें पूर्ण हो जायेंगी।

दो०—सुनत बैन रघुनाथ के, बाढ़ेव हरष विषाद ।
हर्षण परसो पात्र तजि, भावी भोजन बाद ॥१०४॥

श्री रघुनाथजी के उपर्युक्त वचनों को श्रवणकर देव कन्याओं के हृदय में हर्ष व विषाद (प्रसन्नता व दुख) उसी प्रकार बढ़ गया जैसे परोसी हुई थाल को छोड़कर, भविष्य में भोजन की आशा से परोसी हुई थाल छूट जाने का दुख व बाद में भोजन पाने का सुख।

दुखमय जानि हृदय सब बाला । बोले रघुवर दीन दयाला ॥
विरह ताप बहु हृदय मझारी । दूर करहिं निज युक्ति बिचारी ॥

सभी देवकन्याओं को हृदय में दुखी जानकर, दीनों पर दया करने वाले श्री राम जी महाराज पुनः बोले– हमने एक उपाय विचार किया है जिसके द्वारा आप सभी अपने हृदय के अत्यधिक वियोग ताप को दूर कर लें,

बैठि भूमि मूँदहु मुद नयना । ध्यान मगन जग छोड़ सचयना ॥
चिदाकाश बनि सत चिद रूपा । भोगहु आनन्द भोग अनूपा ॥

आप सभी आनन्दपूर्वक आँखे मूँदकर भूमि में बैठ जायें तथा संसार से विलग होकर प्रसन्न मन से, ध्यान में डूब, सच्चिदानन्दमय स्वरूप बनकर अपने चिदाकाश में अनुपमेय आनन्द और भोगों का उपभोग करें।

सुनत सरस सुखमय प्रिय वानी । मूँदि नयन बैठि चित हानी ॥
जबहिं चिदात्महिं चित्त समायो । चिदाकाश चिद खेल दिखायो ॥

श्रीरामजी महाराज की रसपूर्ण सुखमयी प्रियवाणी को सुनकर वे सभी देवकन्यायें आँखे मूँद, मन को शान्त कर भूमि में बैठ गयीं। तब जैसे ही चिद् आत्मा में चित्त का विलीनीकरण हुआ उनके चिदाकाश में चिद्लीला का दर्शन होने लगा।

सब योगिनि सब प्रेम पियासी । मनसि वासना प्रगट प्रकाशी ॥
दिवि प्रमोद वन परम सुभाषी । आनन्दमय सुख सम्पति राशी ॥

वे सभी परम योगिनी और प्रभु प्रेम–पिपासा से परिपूर्ण थीं उस समय उनके मन की वासना प्रगट होकर प्रकाशित होने लगी। उन्होंने देखा कि परम सुन्दर, आनन्दमयी, सुख व सम्पति की राशि से संयुक्त दिव्य प्रमोदवन है।

रास कुञ्ज मन मोह महासन। बैठे राम सीय रस रासन ॥
छत्र चमर बीजन मन मोहै। परिकर सखी साज सजि सोहै ॥

वहाँ रास–कुंज में मन को मोहने वाले एक महान आसन में रस के आहार (खाद्य सामग्री) के समान श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी बैठे हुए हैं। छत्र, चँवर और बिजन आदि मनमोहक सेवा साज लिए हुए परिकर तथा सखियाँ सुशोभित हो रही हैं।

दो०–पान दान कोउ अतर धर, कोउ छवि छड़ी अनूप ।
विविध वस्तु लै सेव महँ, खड़ी सखी अनुरूप ॥१०५॥

कोई पान–दान, कोई इत्र–दान तथा कोई सुन्दर अनुपमेय छड़ी लिये हुए हैं इस प्रकार विभिन्न सेवा साज धारण किये हुए श्री सीताराम जी के अनुरूप सखियाँ सेवा में खड़ी हुई हैं।

पुनः अनन्तानन्त कुमारी । सत चित आनँद रूप सँभारी ॥
नृत्य गान करि सेवन लागीं । शुद्ध प्रेम रस रासहिं रागीं ॥

पुनः अनन्तानन्त सच्चिदानन्दमय स्वरूप वाली कुमारियाँ विशुद्ध प्रेम पूर्वक रास–रस में रँगी हुई नाच और गाकर श्री सीताराम जी की सेवा करने लगीं।

मिली तुरत तब देवन दुहिता । देखी निजहुँ प्रेम रस बहिता ॥
औरहु देवि किन्नरी बाला । गन्धर्वी निज कला विशाला ॥

उस समय वे सभी देवकन्याएँ अपने आपको प्रेम रस में प्रवाहित होती हुई जानकर शीघ्रतापूर्वक श्री राम–रास में सम्मिलित हो गयीं। अन्य अपनी–अपनी महान कलाओं से परिपूर्ण देवियाँ, किन्नर–कन्यायें, गन्धर्व–कन्यायें,–––

राजकुमारी सुन्दर गोपी । आयीं प्रेम भरी रस तोपी ॥
करि सेवा आरती उतारी । रासानन्द चाह हिय धारी ॥

–––राजकुमारियाँ एवं प्रेम परिपूर्णा व रस निमग्ना सुन्दर गोपियाँ भी आ गयीं। सभी ने श्री सीताराम जी महाराज की सेवा कर आरती उतारी, उस समय उन सभी के हृदय में रास सुख प्राप्त करने की महान अभिलाषा समायी हुई थी।

सियहिं चितय रसिकेश्वर रामा । चहेव देन सुख रास अकामा ॥
रास साज सिय कृपा लखानी । नृत्य गान नहिं जाय बखानी ॥

तदुपरान्त रसिकेश्वर श्रीरामजी महाराज ने अपनी प्राण प्रियतरा श्री सीता जी की ओर निहार कर, निष्काम भाव से रास सुख देने की इच्छा प्रगट की। उस समय श्री सिया जू की कृपा से रास की सभी सामग्रियाँ प्रगट होकर दीखने लगी, वहाँ ऐसा नृत्य और गायन होने लगा जिसका बखान नहीं किया जा सकता।

दो०– चहुँ दिशि सखी विराजहीं, बिच सिय राम सुहात ।
जनु उड़गन विच सोहहीं, युगल चन्द्र सरसात ॥१०६॥

उस समय चतुर्दिक सखियों के मध्य श्री सीताराम जी महाराज उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे तारा–गणों के बीच दो चन्द्रमा शोभायमान हो रहे हों।

सीयराम लखि सुन्दरताई । कोटि रती मनसिज बलि जाई ॥
होत रास अतिसय सुखदाई । बढ़त अनन्द मनोहरताई ॥

श्री सीताराम जी के सौन्दर्य को देखकर करोड़ों रति और कामदेव बलिहार हो रहे थे। वहाँ अत्यन्त सुख–प्रदायक रास होने लगा, उस रास में आनन्द और मनोहरता प्रतिक्षण बढ़ती ही जा रही थी।

बिविध वाद्य बाजत सुखकारी। मुरज मृदंग ढोल करतारी ॥
वीणा डफ सुन्दर शहनाई। वेणु नाद हिय लेय चुराई ॥

वहाँ पखावज, मृदंग, ढोल, करताल, वीणा, डफ तथा सुन्दर शहनाई आदि विभिन्न प्रकार के सुख प्रदायी वाद्य–यंत्र बज रहे थे। बाँसुरी की ध्वनि तो हृदय को अपहृत ही कर रही थी।

कोउ नृत्यहिं कोउ भाव बतावहिं । कोउ अलाप कर गीत सुगावहिं ॥
विवश प्रेम रस रसिक रसाला । सिय भुज मेलि उठे तेहिं काला ॥

उस महा रास में कोई सखी नाच रही थी, कोई भाव दिखा रही थी तो कोई आलाप ले कर सुन्दर गीत गा रही थी। तब प्रेम रस के रसिक, रस के महा सागर, श्री राम जी महाराज प्रेम के वशीभूत होकर अपनी प्राण वल्लभा श्री सीता जी के गले में अपनी बाँहें डाल उठ खड़े हुये––

नृत्यन लगे सुवेणु बजावत । जय जय पूरि रहेव मन भावत ॥
विविध कला करि सिय सह नाथा । सबहिं डुबाय दियो रस पाथा ॥

––तथा सुन्दर बाँसुरी बजाते हुए नृत्य करने लगे। उस समय वहाँ पर मनभावनी जय–जय ध्वनि चारों ओर परिव्याप्त हो गयी। परम रसिक श्री राम जी महाराज ने रसस्वरूपा श्री सीता जी के साथ विभिन्न प्रकार की क्रीड़ायें कर सभी को रस–वारि में निमग्न कर दिया।

वरषि प्रसून देव हरषाने । लगे विलोकन रास रसाने ॥
पुनि रघुवीर सबहिं मन जानी । अमित रूप प्रगटे रसखानी ॥

देवतागण हर्षित हो फूलों की विपुल वर्षा करते हुए रस में मग्न हो श्री राम–रास का दर्शन करने लगे। पुनः रस के स्रोत श्रीरामजी महाराज सभी की मनोकामना जान कर अपने को अनेक रूपों में प्रगट कर लिये–––

दो०–प्रति प्रति सखियन के ढिगहिं, इक इक मूर्ति सुहाय ।
अंग परश अरु मिलन दै, देवति सुख सरसाय ॥१०७॥

–––तथा प्रत्येक सखी के समीप श्रीरामजी महाराज की एक एक मूर्ति सुशोभित होने लगी जो सभी को अंग स्पर्श और मधुर मिलन दे देकर सुख में सराबोर कर रही थी।

मध्य नचत सिय सह रघुचन्दा । सबहि देत सुख सुरति अनंदा ॥
महा रास रस वरसन लागेव । ता ता थेइ थेइ रव बहु रागेव ॥

उन सभी सखियों के बीच में श्रीसीताजी के सहित रघुकुल के चन्द्र, श्रीरामजी महाराज नृत्य करते हुए सभी को सुन्दर प्रेम व आनन्द प्रदान कर रहे थे। इस प्रकार महारास में रस की वर्षा होने लगी और चारो दिशाओं में ता,ता, थेइ, थेइ का स्वर गूँजने लगा।

बिवुध विलोकत व्योम विमाना । विधि हरि हर सह प्रेम समाना ॥
रासानन्द सिन्धु उमड़ायो । तीन लोक निज माहिं विलायो ॥

श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी सहित सभी देवता प्रेम प्रपूरित हो विमानों में चढ़े हुए आकाश से उस दिव्य 'महारास' का दर्शन कर रहे थे। 'महारास' में आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा जिसने तीनों लोकों को अपने में विलीन कर लिया।

सहित त्रिदेव गिरे सब देवा । रास भूमि तिय बने सुभेवा ॥
चन्द्र सूर्य सह सबहिं नछत्रा । बनि नारी रस रँगे घनित्रा ॥

उस समय त्रिदेवों सहित सभी देवता रस लुब्ध होकर रास–भूमि में गिर पड़े और सुन्दर भावपूर्वक स्त्री स्वरूप धारण कर लिये। चन्द्रमा व सूर्य सहित सभी नक्षत्र स्त्री बन कर रास के सघन

रंग में रँग गये।

अधो लोक सब सहित अहीशा। नारि वेश वर आपुहिं दीशा ॥
कह लौं कहौं गिनाय गिनाई । जड़ चेतन जग बनि तिय भाई ॥
रास भूमि सब नृत्यन लागे। गाय गाय प्रभु सेवन पागे ॥

श्री शेष जी सहित सभी पाताल निवासियों ने स्वयम् को सुन्दर स्त्री वेष में देखा। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि मैं कहाँ तक गिना–गिना कर कहूँ, उस समय संसार के सम्पूर्ण चराचर जीव, प्रभु की सेवा के भाव में पगे हुये रास स्थली में पहुँच स्त्री बन कर गाते हुये नृत्य करने लगे।

सब जग केवल नारि स्वरूपा। पुरुष एक कौशलपुर भूपा ॥
एक साथ सब कहँ सुख दीने। आपहुँ पगे ताहि रस भीने ॥
आनन्द आनन्द आनन्द व्यापा। सत चित आनन्द प्रेम कलापा ॥

रास भूमि में सम्पूर्ण संसार–मात्र स्त्री का स्वरूप तथा कौशल नरेश श्रीरामजी महाराज ही एक मात्र पुरुष थे। इस प्रकार उन्होंने एक साथ सभी को सुख प्रदान किया एवं स्वयं भी उस मधुर रस में डूब गये। वहाँ सच्चिदानन्दमयी प्रेम प्रक्रियाओं से केवल आनन्द, आनन्द और आनन्द ही परिव्याप्त हो रहा था।

दो०–परब्रह्म परमात्मा, रघुनन्दन रवि राम ।
जस चाहैं तस छनक महँ, देखैं आपु ललाम ॥१०८॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा हे अंजना नन्दन हनुमान! आप सुनिये, पूर्णतम परब्रह्म, परमात्मा, रघुकुल के सूर्य श्रीरामजी महाराज जिस समय जैसी इच्छा करते हैं, एक ही क्षण में उसी प्रकार की सुन्दर लीला का संदर्शन कर लेते हैं।

बची न कोई वस्तु सु ऐसी। जेहिं आकर्षे करि मति वैसी ॥
यथा भयो आनन्द महाना। सो रस रसना किमि करि गाना ॥

उस समय सम्पूर्ण चराचर में कोई भी शेष नहीं था जिसकी बुद्धि को रासरूप कर आकर्षित किया जाय अर्थात् सभी स्वतः ही स्त्री स्वरूप धारण कर महारास में आकर्षित हो गये थे। उस महारास में जिस प्रकार का महान आनन्द हुआ, उस आनन्द (रस) को मेरी जिह्वा किस प्रकार गायन कर सकती है अर्थात् वह वाणी से परे है।

रसमय बनि सब रसहिं समाने। रस सुख रसे रसहिं प्रभु जाने ॥
रहेव परम परमारथ एका। अत्र तत्र को गयो विवेका ॥

वहाँ सभी चराचर रसस्वरूप होकर रस में डूब गये व स्वयम् को रस सुख में समाये हुए रसमय प्रभु श्री राम जी महाराज के सदृश समझने लगे अर्थात् सभी रस स्वरूप हो गये केवल रसमय ब्रह्म ही रह गया। तब वहाँ एक परम परमार्थ ही रह गया और यहाँ और वहाँ का ज्ञान समाप्त हो गया।

यथा बाल बहु शीशन माहीं । किलकै देखि आपु परछाहीं ॥
तथा राम जगदात्मा जानहु । सब घट रमैं आप अनुमानहुँ ॥

जिस प्रकार कोई बालक कई दर्पणों में अपनी परछायी देख–देखकर प्रसन्न होता है उसी प्रकार जगत की आत्मा श्रीरामजी की स्थिति समझना चाहिये तथा उन्हें सर्वत्र घट–घट में रमा हुआ मानना चाहिए।

कलपन लौ माची यह लीला । विविध प्रकार रास सुखशीला ॥
दाशरथी रघुनन्दन रामा । करि इच्छा तब दियो विरामा ॥

इस प्रकार यह विविध प्रकार की सुखमयी श्री राम रासलीला कल्पों तक चलती रही तब दशरथ नन्दन श्री रामजी महाराज ने स्वयं की रुचि कर लीला को विराम दिया––

दै चुटकी सब देवि जगाई । कहाँ कहाँ कहि विस्मय पाई ॥
लखि बोले हँसि दीन दयाला । भई मनोरथ पूर्ण सुबाला ॥

–––और चुटकी बजा कर सभी देवकन्याओं को जगा दिये, तब वे कहाँ हैं, कहाँ हैं कहती हुई आश्चर्य में समा गयीं। उन्हें विस्मित देख दीनों पर दया करने वाले श्रीरामजी महाराज बोले– आप सभी देवकन्यायें पूर्ण मनोरथ हो गयीं।

दो०– आँख मूदि पुनि खोलतहिं, समय माप है जौन ।
कल्पन की लीला लखी, ताही छन हिय तौन ॥१०९॥क॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा हे मारुत नन्दन! अपनी आँख को मूँद कर पुनः खोलने में जो समय का माप है अर्थात् पलक झपकने में जितना समय लगता है, उसी क्षण में कई कल्पों की उस लीला का उन सभी देवांगनाओं ने अपने हृदय में दर्शन कर लिया।

यथा स्वप्न जानहिं सुजन, जन्म मरण लौ बात ।
छनकहिं महँ सब तस लखी, लीला सुखद सुहात ॥ख॥

जिस प्रकार सज्जन पुरुष अपने जन्म और मृत्यु की सभी बातें स्वप्न में देख लेते हैं उसी प्रकार उन सभी देवकन्याओं ने एक ही क्षण में उस सुखप्रद सुन्दर लीला का दर्शन कर लिया।

सुख संतोष दीन्ह सब भाँती । प्रभु प्रेरित प्रिय प्रेम प्रमाती ॥
बार बार करि दण्ड प्रनामा । मिलन आस आसी अभिरामा ॥

इस प्रकार श्रीरामजी महाराज ने उन सभी को सभी प्रकार का सुख और संतोष प्रदान किया पुनः भगवान की प्रेरणा से प्रेमोन्मत्त सभी देवकन्याओं ने उन्हें बारम्बार दण्डवत प्रणाम किया तथा मिलन की सुन्दर कामना से आशान्वित होकर–––

प्रभु पद धरि हिय रूप छिपाई । वन प्रमोद बनि बेलि सुछाई ॥
हरिहुँ गये निज भवन मँझारी । करत सुरति हिय देव कुमारी ॥

———श्रीरामजी महाराज के चरणों को हृदय में धारण कर, अपना रूप छिपा, प्रमोदवन में सुन्दर लतायें बनकर फैल गयीं। अनन्तर प्रभु श्रीरामजी महाराज भी हृदय में उन देवकन्याओं के सुन्दर प्रेम का स्मरण करते हुए अपने राजमहल चले गये।

यहिं विधि कुँवर महा मतिवाना । लख्यो ललित लीला हनुमाना ॥
प्रेम मगन मन आनँद भूला । भर्यो विरह रस बहुरि अतूला ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे हनुमान जी! इस प्रकार परम बुद्धिमान कुँवर श्री लक्ष्मीनिधिजी ने, सुन्दर श्री राम रास–लीला का दर्शन किया तथा प्रेम मग्न होकर वे उस आनन्द में अपने मन को भुला दिये, पुनः प्रभु श्रीरामजी महाराज के अतुलनीय वियोग रस में आपूरित होकर———

हाय हाय कहि रोवन लागेव । धरि धीरज पुनि प्रेम सुपागेव ॥
मातु भवन पहुँचेव हरषाई । करि दुलार जननी सुख छाई ॥

———वे हाय! हाय कह कर रुदन करने लगे। कुछ समय पश्चात् धैर्य धारण कर प्रेम में डूबे हुये हर्षित हो अम्बा श्रीसुनयनाजी के महल गये जहाँ पर श्री अम्बाजी ने उनका दुलार किया और सुख में समा गयीं।

दो०– कहहिं सुनहिं समुझहिं विविध, रघुवर चरित उदार ।
प्रेम सरोवर मगन नित, श्री निमिवंश कुमार ॥११०॥

निमि वंशोत्पन्न कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी इस प्रकार श्रीरामजी महाराज के उदार चरित्रों को विभिन्न प्रकार से कहते, सुनते व समझते हुए नित्य ही प्रेम के सरोवर में मग्न रहते थे।

सुनहिं सकल सज्जन सुख मानी । राम कथा महँ लाभ महानी ॥
साधन सकल सुतावत करई । यावत कथा प्रेम नहिं झरई ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि हे सज्जनों! आप सभी सुखपूर्वक सुनिये– श्रीरामजी महाराज की कथा में महान लाभ है। साधक जनों को तब तक सुन्दर साधनों का अनुष्ठान करते रहना चाहिए जब तक श्रीरामजी महाराज की कथा में प्रेम नहीं हो जाता।

सब साधन फल चरित राम के । सुनत प्रेम छाके सुधाम के ॥
सुनि हनुमान जोरि जुग पानी । कहे लखन सन अति मृदुवानी ॥

क्योंकि सभी साधनों का सुन्दर फल परम पद स्वरूप श्रीरामजी महाराज के चरित्रों को प्रेम में छक कर श्रवण करना ही है। श्री हनुमान जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी के वचनों को सुन, दोनों हाथों को जोड़कर, उनसे अत्यन्त कोमल वाणी में बोले–

नाथ एक संशय मन माँही । विधि हरि हर सब गिरे तहाँही ॥
अग जग सबहिं नारि तन धारी । रासहिं मिलि कस भये सुखारी ॥

हे नाथ! मेरे मन में एक सन्देह हो रहा है कि श्री ब्रह्माजी, श्री विष्णुजी तथा श्रीशंकरजी आदि

सभी देवता वहाँ रास स्थली में आकाश से उतरकर स्त्री कैसे बन गये तथा सम्पूर्ण संसार के जड़ चेतनात्मक जीव, स्त्री शरीर धारण कर रास में सम्मिलित हो किस प्रकार सुख प्राप्त किये।

दृष्टा बनि निज चित्त अकाशा । जनक सुवन लखि राम सुरासा ॥
नारि रूप नहिं धरे गोसाँई । कारण कवन कहहिं समुझाई ॥

किन्तु श्रीजनक कुमार लक्ष्मीनिधिजी अपने चित्ताकाश में श्रीरामजी महाराज की रासलीला को दृष्टा बन कर देखते हुए भी स्त्री रूप नहीं धारण किये, उसमें क्या कारण था समझाकर कहने की कृपा हो।

दो०—सुनत वचन हनुमान के, लखन कह्यो मुसक्याय ।
कारण जानहु सकल तुम, कहौं सुनहु सुख छाय ॥१११॥

श्रीहनुमानजी के वचनों को श्रवणकर श्रीलक्ष्मण कुमारजी ने मुस्कुराते हुए कहा— यद्यपि आप सभी कारण जानते है फिर भी मैं कह रहा हूँ, आप सुखपूर्वक सुनिये—

आत्म रमण श्री राम रसाला । सदा रमैं निज आत्म विशाला ॥
जनक लली हैं तिनकी आत्मा । मूल प्रकृति सों परे सुखात्मा ॥

रस के आगार श्रीरामजी महाराज सभी की आत्मा में रमण करने वाले हैं तथा सदैव अपनी महान आत्मा में रमण किया करते हैं। श्रीजनकनंदनी जानकी जी मूल प्रकृति से परे, सुख स्वरूपा व उनकी आत्मा हैं।

चिद सीतिहिं चिद राम समाये । रासोल्लास लहैं सरसाये ॥
सीतहुँ रमी राम के रूपा । जगत कार्य सब सिमिटेव चूपा ॥

उस समय चिद् स्वरूप सीता में चिद् स्वरूप श्री रामजी विलीन होकर सुख पूर्वक रासानन्द प्राप्त किये। श्री सीता जी भी श्रीराम जी महाराज के रूप में रम गयी जिससे संसार के सभी कार्य सिमट कर अपने स्वरूप में स्थित (शान्त) हो गये।

प्रकृति भयी लय सीता माहीं । प्रकृति कार्य तिरगुणहिं कहाहीं ॥
गुण स्वरूप ब्रह्मादिक अहई । भये सकल लय प्रकृतिहिं लहई ॥

प्रकृति श्री सीताजी में विलीन हो गयी। प्रकृति के विलीन होते ही तीनों गुण (सत,रज व तम) जो प्रकृति के ही कार्य कहलाते हैं, श्री सीता जी में विलीन हो गये। श्री ब्रह्मा जी,श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी आदि देवता भी गुणों के स्वरूप ही हैं अतः वे सभी प्रकृति में लीन हो गये। अर्थात् सभी कार्य अपने कारण स्वरूप में विलय हो गये।

अग जग सब गुण रूप कहाये । सोउ लय भये यथारथ गाये ॥
आनँद रूप ब्रह्म रहि गयऊ । यथा उदधि जल शान्तहिं भयऊ ॥

जड़ चेतनात्मक सम्पूर्ण संसार गुणों का ही स्वरूप है अतएव वह भी वास्तविक कारण स्वरूप में विलीन हो गया ऐसा गान किया गया है। वहाँ पर मात्र आनन्दस्वरूप ब्रह्म ही शेष रहा है जैसे जल के शान्त होने पर समुद्र।

यथा लहर बनि जल प्रगटानो । आत्म ब्रह्म तिमि नारि दिखानो ॥
अमित लहर सम अमित सुनारी । रमत राम आत्महिं सुख भारी ॥
बनि निष्काम सुयथा पयोनिधि । करत केलि तिमि राम दयानिधि ॥

पुनः जिस प्रकार समुद्र की आत्मा जल, लहर बन कर प्रगट होता है उसी प्रकार ब्रह्म की आत्मा ही स्त्री रूप में दिखाई पड़ने लगी। असीमित लहरों के समान ही असीम सुन्दर स्त्रियों के रूप में अपनी आत्मा में ही अत्यन्त सुखपूर्वक श्री राम जी महाराज रमण कर रहे थे। जिस प्रकार समुद्र निष्काम भाव से लहरों के साथ अठखेलियाँ खेलता है उसी प्रकार दया के सागर श्री राम जी महाराज उन सुन्दर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे।

दो०—लौकिक नट लीला लखन, नहि समर्थ हनुमान ।
राम ब्रह्म लीला कहन, इदमित्थ्यं को जान ॥११२॥

हे हनुमान जी! जब एक सांसारिक नट की लीला को समझने की सामर्थ्य लोगों में नहीं होती तो पूर्ण ब्रह्म श्री राम जी महाराज की लीला ऐसी ही है जानकर कौन बखान कर सकता है।

सुनु हनुमान कहौं समुझाई । यथा कुँवर देखी प्रभुताई ॥
स्वप्न माँझ जिमि दृश्य महाना । देखहिं दृष्टा बने सुजाना ॥

पुनः सौमित्रेय लखन लाल जी ने कहा– हे आंजनेय जी! सुनिये, कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने जिस प्रकार श्री राम जी महाराज की महिमा का दर्शन किया, मैं उसे समझाकर कहता हूँ, सज्जन पुरुष, जिस प्रकार स्वप्न में महान दृश्यों को दृष्टा बन कर देखते हैं–––

निज जीवन मरणहुँ तहँ देखैं । रहि इत चरित अनत करि पेखै ॥
मरि कर जरे चिता के माहीं । रहे ज्ञान बिनु सोकि लखाहीं ॥

–––स्वप्न में अपना जीवन व मृत्यु तक देख लेते हैं तथा यहाँ रहते हुए भी दूसरे स्थान के चरित्र का दर्शन कर लेते हैं यहाँ तक कि वहाँ मृत्यु को प्राप्तकर चिता में जल भी जाते हैं। तब 'ज्ञान' के अभाव में वह सब कैसे दिखाई पड़ सकता है।

सो सुधि जागेहु यथा रहाई । तथा कुँवर गति जानहु भाई ॥
चिदाकाश बनि कुँवर सुधीरा । अहं नाशि मन कियो सुधीरा ॥

जैसे उनके स्वप्न की स्मृति जागने पर भी बनी रहती है उसी प्रकार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी की स्थिति जाननी चाहिए। क्योंकि परम धीर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने अहंकार को समाप्त कर, मन को स्थिर कर स्वयं ही चिदाकाश बन गये थे।

पूर्व रँगा चित राम चरित्रा । जेहिं परमारथ कहहिं पवित्रा ॥
चिदाकाश आधारहिं पाई । चली वासना वायु सुहाई ॥

उनका चित्त पूर्व से ही श्री राम जी महाराज के चरित्रों में, जिसे पवित्र परम परमार्थ कहते हैं, रँगा हुआ था और चिदाकाश का आधार पाकर जब कामना की सुन्दर वायु प्रवाहित होने लगी–––

चित चिद तथा राम की लीला। रही तहाँ चिन्मय सुखशीला ॥
चरित सकल श्री जनक कुमारा। करण चतुष्टय बिना निहारा ॥

———तब वहाँ उनके चित्त के चिदाकाश में श्री राम जी महाराज की सुखकारी एवं चिन्मयी लीला ही शेष रही। जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी ने सभी चरित्रों को अन्तः करण चतुष्टय (मन, चित, बुद्धि व अहंकार) के बिना उसी प्रकार दर्शन किया था———

यथा थूल इन्द्रिय बिनु अपना। लखहिं लोग अतिवाहिक सपना ॥
लीला रस कुँवरहिं जब छायो। सीय चित्त महँ चित्त मिलायो ॥

———जिस प्रकार लोग बिना स्थूल इन्द्रियों के सूक्ष्म शरीर के द्वारा अपने मरणोपरान्त दृश्यों को (अतिवाहिक स्वप्न) देख लेते हैं। कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को जैसे ही लीला रस का आस्वाद मिलने लगा उन्होंने अपने चित्त को श्री सीता जी के चित्त में विलीन कर दिया।

सीय ध्यान रत सीय स्वरूपा। बनि भोग्यो रस रास अनूपा ॥
लीला ज्ञान हानि भइ नाहीं। मरण ज्ञान जिमि सपने माहीं ॥

श्री सीता जी के ध्यान में लगे होने से श्रीसीताजी का स्वरूप बन कर उन्होंने अनुपमेय रास का आनन्द प्राप्त किया। उन्हें लीला के ज्ञान की हानि उसी प्रकार नहीं हुई जैसे स्वप्न में मरने का ज्ञान बना रहता है।

कोउ जानै यह स्थिति भाई। गहे हाथ जेहिं रघुकुल राई ॥
पचि पचि साधन करै अनन्ता। मिलै न स्थिति बिनु सियकन्ता ॥

हे भाई! इस स्थिति को कोई विरले ही जान पाते हैं, जिनका हाथ रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज ने पकड़ लिया है अर्थात् श्री राम जी महाराज ने अपनी कृपा कर जिन्हे अपना बना लिया है। नहीं तो दुख सहते हुये अनन्त काल तक, अनन्त साधन करते रहने के बाद भी बिना श्री सीता–कान्त जू की कृपा के यह स्थिति प्राप्त नहीं होती।

दो०–सब साधन की आश तजि, राम शरण गहि लीन।
रस रस सूझै तिनहिं सब, राम कृपा परवीन ॥११३॥

जिन्होंने सम्पूर्ण साधनों का भरोसा छोड़कर श्रीरामजी महाराज की शरण ग्रहण कर ली है उन्हें धीरे–धीरे श्रीरामजी महाराज की कृपा से सभी कुछ सूझने लगता है और वे परम दक्ष हो जाते हैं।

मास पारायण द्वितीय विश्राम

जो पूछा सो कहा बखानी। आगिल चरित सुनहु रसदानी ॥
कुँवर जबहिं सो चरित विलोका। बढ्यो प्रेम उर रहत न रोका ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी नें कहा– हे श्री हनुमानजी! आपने जो प्रश्न किया था, उसका निराकरण मैंने कहकर बखान किया, अब आप आगे का रस प्रदायक चरित्र श्रवण कीजिये, कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी

ने जब से उस चरित्र (श्री राम रास) का दर्शन किया तब से उनके हृदय में इतना प्रेम प्रवाह ऐसा बढ़ा कि रोकने पर भी नहीं रुक रहा था।

मिलन चाह उपजी उर भारी । मिलौं कवन विधि अवध विहारी ॥
दिन नहिं भूँख नींद नहिं राती । बढ़ी भावमय प्रीति सुहाती ॥

उनके हृदय में प्रभु मिलन की तीव्र त्वरा उत्पन्न हो गयी, कि अयोध्या विहारी श्रीरामजी महाराज से मैं किस प्रकार मिलूँ। उन्हें न तो दिन में भूख लगती और न रात में नींद ही आती थी। उनके हृदय में भावना के अनुरूप सुन्दर प्रीति बृद्धिंगत हो गयी थी।

प्रण कीन्हेव निज हृदय महाना । भाम भाव बिनु मिलब न आना ॥
यागवलिक मोहि आज्ञा दीना । नित्य भाम तव राम प्रवीना ॥

उन्होंने अपने हृदय में एक महान संकल्प लिया कि– भाम (बहनोई) भाव के अतिरिक्त किसी अन्य सम्बन्ध से हमारा श्री राम जी महाराज से मिलन न हो क्योंकि निमिकुल आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज ने मुझे आज्ञा दी है कि परम प्रवीण श्री राम जी महाराज तुम्हारे शाश्वत (नित्य) भाम (बहनोई) हैं।

मुनि वर वचन मृषा नहिं होई । हे विधि समय लहौं कब सोई ॥
करि करि दरश सिया पिय रामा । कबहुँ हृदय होइहिं विश्रामा ॥

मुनि श्रेष्ठ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज के वचन असत्य नहीं हो सकते अतः हे श्री ब्रह्माजी! मैं कब वह सुखदायी समय प्राप्त करूँगा? श्री सीतापति रामजी महाराज का दर्शन कर क्या कभी मेरा हृदय विश्राम प्राप्त करेगा?

दो०– विरहातुर होइ निमि कुँवर, यथा क्षुधातुर लोग ।
शंकर करन प्रसन्न हित, तपहिं लगायो योग ॥११४॥

भूँख से व्याकुल लोगों के समान श्री निमि कुँवर लक्ष्मीनिधिजी, विरह विह्वल हो अपने मन की इच्छा पूर्ति हेतु शंकर भगवान को प्रसन्न करना उचित समझ तपस्या करने का निश्चय किये।

पितु समीप गवने रस पागे । परे चरण अतिशय अनुरागे ॥
पुनि कर जोरि माथ नत कीन्हे । विनय संकोच वपुष मनु लीन्हें ॥

तब रस मग्न हुए वे अपने पिता श्रीजनकजी महाराज के समीप गये व अत्यन्त अनुराग पूर्वक चरणों में गिरकर, प्रणाम किये पुनः हाथ जोड, सिर झुकाये खड़े हो गये मानो विनय व संकोच का स्वरूप ही धारण कर लिये हों।

कहेउ जनक मन आश कहीजे । सुनत कुँवर प्रिय प्रेम पसीजे ॥
हाथ जोरि बोले मृदु वानी । भाव सहित जल लोचन आनी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को, इस मुद्रा में देख श्रीजनकजी महाराज ने कहा– आप अपने मन की इच्छा कहें, ऐसा सुनते ही कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी प्रिय प्रेम के कारण अत्यन्त द्रवित हो गये तथा

हाथ जोड, भाव पूर्वक, नेत्रों में अश्रु भरकर कोमल वाणी से बोले——

मन महँ आस अहै इक दाऊ । पूजन हित शिव शिवा सुचाऊ ॥
आयसु होय पूजि षट मासा । लहहुँ कृपा शिव शिवा प्रकाशा ॥

हे श्री दाऊजी! मेरे मन में श्री शंकर भगवान व श्रीपार्वतीजी की सुन्दर उत्साह पूर्वक आराधना करने की एक सुन्दर कामना है। यदि आज्ञा हो तो छः महीने तक उनका पूजन कर श्रीशिव–पार्वतीजी की कृपा का प्रकाश प्राप्त कर लूँ।

प्रथमहिं मैं यह चाह जनाई । पूरि करैं करि कृपा महाई ॥
देखि जिगासा बढ़ी सुराजा । आशिष दीन्ह होहु कृत काजा ॥

मैंने यह अपनी प्रथम इच्छा प्रगट की है अतः अपनी महान कृपा कर आप इसे पूर्ण करें। श्री जनक जी महाराज ने उनके हृदय में बढ़ी हुई जिज्ञासा को देखकर आशीर्वाद दिया कि आप पूर्ण मनोरथ हों।

मातु पिता लहि आसयु भावत। नगर वाह्य शिव पूजि मनावत ॥
कठिन नेम ब्रत प्रेम सुसाधी। करत ध्यान लग जात समाधी ॥
विविध वस्तु लै पूजन करहीं । महा मोद मन आनँद भरहीं ॥

अपने माता–पिता की मन भावनी आज्ञा पाकर वे नगर के बाहर श्री शंकर भगवान का पूजन कर उन्हें प्रसन्न करने लगे। वहाँ कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त कठिन नियम, व्रत व प्रेम को साधकर ध्यान करने लगे, ध्यान करते समय उनकी समाधि लग जाती थी। वे विभिन्न प्रकार की पूजन सामग्री लेकर पूजन करते और मन में महान आनन्द से भर जाते थे।

दो०–यहिं बीते मास षट, देह न रहत सम्हार ।
कुँअर विकल शिव दरश बिनु, कीन्हे बहुत खभार ॥११५॥

इस प्रकार छः महीने बीत गये अब कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी का शरीर सम्हाले नहीं सम्हलता था, वे श्री शंकर भगवान के दर्शन न हो पाने के कारण अत्यधिक व्याकुल होकर अपने मन में बहुत दुखी हुए।

आशुतोष शिव धाम कृपाला। भये प्रगट प्रभु दीन दयाला ॥
कुँवर गिरे चरणन भहराई । पाहि पाहि शिव पाहि गोसाँई ।।

तब शीघ्र संतुष्ट हो जाने वाले, दीनों पर दया करने वाले, कल्याण के धाम, कृपालु, प्रभु श्रीशंकरजी प्रगट हो गये। उन्हें देखते ही कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी उनके चरणों, में रक्षा करो, रक्षा करो, रक्षा करो, हे श्रीशिवजी मेरी आप रक्षा करो कहते हुए भहरा कर गिर पड़े।

प्रेमातुर शिव कुँवर विलोकी। हिय लगाय मेटे सब शोकी ॥
कुँवर धीर धरि स्तुति सारा । जय जय जय शिव कृपा अगारा ॥

प्रेम में अधीर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर भोलेनाथ, श्री शिव जी ने उन्हें उठा, अपने

हृदय से लगाकर उनके सभी शोकों का शमन कर दिया पुनः धैर्य धारण कर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री शिव जी की स्तुति करने लगे– हे कृपा के आगार श्री शिव जी आपकी जय हो, जय हो, जय हो।

नमामि दीन रक्षिणम्, उमा पतिं सुदक्षिणम् ।
सुभक्त काम दायकं, सदा प्रसन्न नायकम् ॥

हे दीनों की सर्व विधि रक्षा करने वाले श्रीपार्वतीजी के प्राण वल्लभ! आप सदैव मेरे अनुकूल बने रहें, आप तो भक्तों की सुन्दर कामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा सदैव प्रसन्न रहने वाले अधीश्वर है, आपको मेरा नमन है।

निरीह लोक व्यापकं, महा महेश थापकम् ।
जगत्त्रयं विभर्षि भो, महर्षि चित्त कर्षियो ॥

हे महा महेश्वर! आप तो नित्य निष्काम मन वाले, सर्वत्र व्यापक, सम्पूर्ण लोकों की स्थापना कर पुनः तीनों लोकों का संहार करने वाले व महान ऋषियों के चित्त को भी आकर्षित करने वाले हैं।

स्वतेज लोक दाहकं, स्वभक्त भाव ग्राहकम् ।
जपामि गौर रूपिणं, भजामि काम दूषिणम् ॥

हे स्वामिन्! अपने तेज से सम्पूर्ण लोकों को विदग्ध कर देने वाले, अपने भक्तजनों की भावनाओं को ग्रहण करने वाले, गौर वर्णधारी व सौन्दर्य के अधिदेवता कामदेव के शत्रु, मैं आपका जप और भजन करता हूँ।

नमामि मुण्ड मालिनं, सुशोभि चन्द्र भालिनम् ।
स्मरामि गंग मस्तकं, त्रिशूल राज हस्तकम् ॥

हे प्रीति–स्वरूप–नरमुण्डों की माला धारण करने वाले श्री शिव जी आपको मेरा नमन है, आपके मस्तक पर सुन्दर चन्द्रमा सुशोभित है। अपने शिर में श्रीगंगाजी व हाथों में अस्त्रराज "त्रिशूल" को धारण करने वाले स्वामिन! मैं आपका स्मरण (ध्यान) करता हूँ।

विरञ्चि विष्णु पूजितं, नमामि नाथ सेवितम् ।
सुनाम राम जापकं, तदैव ध्यान ज्ञापकम् ॥

श्रीब्रह्माजी व श्रीविष्णुजी से पूजित व सेवित, हे स्वामी! आपको मेरा नमन है, आप श्रीरामजी महाराज के सुन्दर नाम के श्रेष्ठ जापक व उन्हीं के ध्यान तथा उपदेश कार्य में संलग्न रहने वाले हैं।

भजामि ब्रह्म चिन्मयं, सुबोध रूप सन्मयम् ।
नमामि पाहि हर्षणं, प्रदेहि राम दर्शनम् ॥

हे ज्ञान स्वरूप सर्वेश्वर, सुन्दर बोध व सत्य स्वरूप स्वामी! मैं आपका भजन करता हूँ। आप मेरी रक्षा करे तथा मुझे श्रीरामजी महाराज का दर्शन प्रदान करें, आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है।

ब्रह्म अनामय दीन दयाला। सदा स्वामि प्रणतन प्रतिपाला॥
विधि हरि सेवित पद युग नाथा। देखि आज मैं भयो सनाथा॥

हे दीनों पर दया करने वाले, विकार रहित सर्वेश्वर ! आपने सदैव ही प्रणत जनों का प्रतिपालन किया है। श्रीब्रह्माजी व श्रीविष्णुजी के द्वारा सेवित आपके युगल चरणों को देखकर मैं आज सनाथ हो गया।

इतना कहत भूल सब भाना। नयन अश्रु नहिं बोल सकाना॥
चरण चिपटि अति भयो अधीरा। शिव दयाल तब दीन्हेव धीरा॥

इतना कहते ही वे स्मृति शून्य हो गये, नेत्रों मे प्रेमाश्रु भर आये, वाणी अवरुद्ध हो गयी और श्री शिव जी के चरणों से लिपट कर वे अत्यन्त अधीर हो उठे तब परम दयालु श्रीशिवजी ने उन्हें धैर्य प्रदान किया।

दो०– माँगु मागु वर माँगु सुत, मन भावत सब देहुँ।
अति प्रसन्न मोहि जानि पुनि, दानि महा गनि लेहु॥११६॥

हे पुत्र, श्री लक्ष्मीनिधि! आप मुझे अत्यन्त प्रसन्न और महान दानी समझ कर मुझसे वरदान माँग लीजिये, माँग लीजिये, माँग लीजिये, मैं आपका सभी मनोभिलषित प्रदान कर दूँगा।

सुनत कुँवर कह बैन सप्रीती। जानत प्रभु किमि कहौं स्वगीती॥
गुरु पितु मातु नाथ सब मोरे। देहिं मोहि उर भाव जो तोरे॥

श्रीशंकर भगवान के सुन्दर वचनों को सुनकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेमपूर्वक वाणी से बोले– हे नाथ! आप तो सभी कुछ जानते ही हैं, मैं अपने मुख से किस प्रकार कहूँ? आप मेरे गुरुदेव, पिता, माता व स्वामी सभी कुछ हैं। अतः आप मुझे प्रभु श्री राम जी के प्रति अपने हृदय का भाव (श्री राम प्रेम द्ध प्रदान कर दीजिये।

सुनि तोषे शिव अवढर दानी। बोले मधुर मनोहर वानी॥
राम प्रेम अति उच्च विशद वर। मिलै तोहि सुनु श्री निमिकुल धर॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को सुनकर, अकारण प्रसन्न हो सर्वस्व प्रदान कर देने वाले श्री शिवजी संतुष्ट हुए तथा मधुर व मनोहर वाणी से बोले– हे निमिकुल नन्दन कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी! आपको श्रीरामजी महाराज का अत्यन्त उत्कृष्ठ, निर्मल और श्रेष्ठ प्रेम प्राप्त हो।

ब्रह्म राम श्री अवध विहारी। व्यहिहैं बहिन सिया सुकुमारी॥
राम प्राण प्रिय बनहु सदाहीं। नेत्र विषय मानैं तोहि काहीं॥

पूर्णतम परब्रह्म, अवध–विहारी श्री रामजी महाराज आपकी परम सुकुमारी बहन श्रीसीताजी से विवाह करेंगे। आप सदैव श्रीरामजी महाराज के प्राणों के प्यारे बने रहेंगे तथा श्री राम जी महाराज आपको अपने नेत्रों का विषय बनाये रखेंगे–––

भगति विराग ज्ञान अरु योगा । वसहिं हिये तव तजि जग रोगा ॥
सद्‌गुण सदन होहु तुम ताता । मिलहिं राम कछु गये प्रभाता ॥

---भक्ति, वैराग्य, ज्ञान व योग आदि परमार्थ प्राप्ति के साधन, संसारी विकारों को त्याग कर, आपके हृदय में निवास किये रहेंगे। हे तात! आप सभी सद्‌गुणों के भवन होंगे तथा कुछ ही दिनों बाद (अति शीघ्र) आपको श्रीरामजी महाराज की प्राप्ति होगी।

दो०–सीय राम अतिशय कृपा, रहिय रसद नित छोह ।
सत्य सत्य पुनि सत्य है, करौं सदा मैं मोह ॥११७॥

श्री सीताराम जी महाराज की महान व रसदायी कृपा आप पर स्नेह पूर्वक नित्य बनी रहेगी। हे तात लक्ष्मीनिधि! हमारे ये वचन त्रिवाचा सत्य हैं, हम भी आप पर सदैव प्रेम करते रहेंगे।

विप्र धेनु सुर सन्तन चरणा । होय प्रीति कछु जाय न वरणा ॥
ममता अहं अशक्ति कुईछा । होय नाश जानहु मम दीक्षा ॥

ब्राह्मण, गौ, देवता व सन्तजनों के चरणों में आपकी अवर्णनीय प्रीति होगी। आपकी ममता, अहंकार, आशक्ति और दुराशाओं आदि का समूल नाश हो जायेगा यही मेरा संकल्प जानिये।

कर्म रहस्य जानि तुम वाला । बने रहहु जग बीच रसाला ॥
देव पितर ऋषि द्विज समुदाया । करहिं कृपा मम सदा सहाया ॥

हे लाल लक्ष्मीनिधि! आप कर्मो के रहस्यों को जानकर संसार में रस के आगार बने रहोगे। देवता, पितर, ऋषि व ब्राह्मण समुदाय आप पर कृपा करेंगे तथा आपको मेरी सहायता सदैव प्राप्त रहेगी।

औरहु एक बात सुनि लेहू । अस्त्र शस्त्र विद होहु वरेहू ॥
यावत अस्त्र प्रकार महाना । विद्या शस्त्र सकल जग जाना ॥

मेरी एक बात और भी आप सुन लें– आप अस्त्रों–शस्त्रों के श्रेष्ठ ज्ञाता होंगे। अस्त्रों के जितने भी प्रकार हैं तथा शस्त्रों की सम्पूर्ण विद्यायें जिन्हें संसार जानता है---

सहित तत्व मंत्रन युत भेदा। संहर उपसंहर भनि वेदा ॥
सो सब जानहु बिनहिं प्रयासा। अस्त्रादिक सेवैं बनि दासा ॥

---उन सबके तत्वों व मंत्रों के प्रकार सहित संहार व उपसंहार करने की वेद वर्णित विधि आदि आप बिना प्रयास ही जान जायेंगे तथा अस्त्र–शस्त्र आदि सेवक बन कर आपकी सेवा करेंगे।

जो इच्छा करिहौ मन माहीं। होय सिद्ध नहि वृथा कहाहीं ॥
मोर दरश तव चाह अधीना। सदा होय प्रिय पुत्र प्रवीना ॥

मैं वृथा नहीं कह रहा, आप अपने मन में जो भी इच्छा करेंगे, वे सभी पूर्ण होंगी तथा हे परम दक्ष प्रिय पुत्र लक्ष्मीनिधि! मेरा दर्शन तो आपको इच्छानुसार सदैव होता रहेगा।

दो०–यहिं विधि दै वरदान भल, भे शिव अन्तर्ध्यान ।
महा मोद मन गवन गृह, उसव भयो महान ॥११८॥

इस प्रकार उन्हें सुन्दर वरदान देकर श्रीशिवजी अन्तर्ध्यान हो गये, तदुपरान्त अत्यधिक आनन्दित मन से वे अपने भवन गये जहाँ पर महान उत्सव हुआ।

आशिष शंकर पाय प्रमाना । मानहिं नित नव मोद महाना ॥
नित नव अधिक अधिक अनुरागा । सीय राम पद पंकज पागा ॥

भगवान श्रीशंकरजी के आशीवर्चन प्रमाण–स्वरूप पाकर कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी नित्य नवीन महान आनन्द मानते थे तथा श्रीसीतारामजी के चरण कमलों में नित्य प्रति अत्यधिक अनुराग प्रपूरित हो पगे रहते थे।

कुँवर सुकृत बनि यश कर रूपा । चहुँ दिशि फैलेउ विशद अनूपा ॥
दक्षिण दिशि एक नगर विड़ावल । श्रीधर राजा वसै तासु थल ॥

कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी के सत्कर्म, अनुपमेय तथा व्यापक कीर्ति का रूप धारण कर चारो दिशाओं में व्याप्त हो रहे थे। दक्षिण दिशा में विड़ावल नामक एक नगर था जहाँ श्री श्रीधरजी महाराज निवास करते थे।

सब विधि राज साज सो पूरे । सुत द्वै कान्ति धरे यश भूरे ॥
पुत्रि चारि बड़ि सिद्धि कुमारी । व्याहन योग भई सुकुमारी ॥

वे सभी प्रकार की राजकीय सम्पन्नता से परिपूर्ण थे जिनके श्रीकान्तिधर व श्रीयशधर नाम के दो पुत्र थे। उनकी चार पुत्रियाँ थी जिनमें सबसे बड़ी पुत्री सुकुमारी श्री सिद्धि कुँवरि जी विवाह योग्य हो चुकी थीं।

लक्ष्मीनिधि यश सुनि सोइ राजा । सहित सिया सुन्दर सुख साजा ॥
परम प्रभावित होइ मन चाहा । करहुँ कुँवर कहँ कन्या नाहा ॥
सिद्धि कुँवरि मन रमेव कुँवर में । देवि पूजि माँगै वर उर में ॥

उन्हीं महाराज श्री श्रीधरजी ने वैभव परिपूर्ण, अयोनिजा श्रीसीताजी सहित, कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की कीर्ति को सुनकर अत्यधिक प्रभावित हो अपने मन में इच्छा की कि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी को अपना जँवाई (कन्या श्री सिद्धि कुँवरि का पति) बनाऊँ। श्रीसिद्धि कुँवरिजी का मन भी कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी में रमा हुआ था तथा वे 'श्रीलक्ष्मीजी' का पूजनकर अपने हृदय में श्रीलक्ष्मीनिधिजी को ही वर रूप में माँगती थीं।

दो०–समय पाइ श्रीधर नृपति, विप्र जनकपुर भेज ।
लहि स्वीकृति फलदान दै, कीन्ह विधान वरेज ॥११९॥

उपयुक्त समय पाकर श्री श्रीधर जी महाराज ने श्रीजनकपुरी में एक ब्राह्मण भेज श्रीजनकजी महाराज की स्वीकृति प्राप्त कर तिलक फलदान किया और वर प्राप्त करने का विधान (वरीक्षा) किया।

नृप विदेह गुरु आयसु पाई । मंगलमय शुभ घरी सोधाई ॥
किय पयान बजवाय नगारा । विप्र साधु सह मोद अपारा ॥

श्रीविदेहराजजी महाराज अपने गुरुदेव श्रीयाज्ञवल्क्यजी की आज्ञा पाकर, मंगलमय व शुभप्रद मुहूर्त का शोधन कराकर नगाड़े बजवाते हुए ब्राह्मणों व साधुओं सहित असीम आनन्दपूर्वक श्री बिड़ावल नगर को प्रस्थान किये।

पहुँचि बरात सुस्वागत पाई । भयो विवाह महानँद छायी ॥
मिला सुदाइज बहुत विधाना । हय गय रथ मणि दासी नाना ॥

वहाँ पहुँचकर बारात ने सुन्दर स्वागत प्राप्त किया तथा महान आनन्दपूर्वक श्रीलक्ष्मीनिधिजी व श्री सिद्धि कुँवरिजी का विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह में विभिन्न प्रकार के हाथी, घोड़े, रथ, मणि और अनेक दासियाँ सुन्दर दहेज के रूप में प्राप्त हुई।

दूलह दुलहिन इक अनुरूपा । सुकृत त्याग गुण सदन अनूपा ॥
मनहुँ मदन रति सुन्दर जोरी । शील प्रेम माधुर रस बोरी ॥

दूलह और दुलहिन (श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी) दोनों ही एक दूसरे के अनुरूप तथा पुण्य, त्याग एवं गुणों के अनुपमेय सदन थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह शील, प्रेम, माधुर्य व रस में डूबी हुई कामदेव और रती की सुन्दर जोड़ी हो।

जानि विदा अवसरहिं कुमारा । पितु आयसु गृह श्वसुर सिधारा ॥
मान प्रेम विनती करि रानी । कुँवरहिं सिधि सौंपी सनमानी ॥
सिद्धि कुँवरि गोदहिं लै माता । बहु विधि सिखई कहि प्रिय बाता ॥

विदाई का समय जानकर कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी अपने पिताजी की आज्ञा पाकर जनवासे से अपने श्वसुरालय प्रस्थान किये वहाँ महारानी श्री कान्तिमतीजी ने उनका आदर, प्रेम व विनयपूर्वक सम्मान कर श्रीसिद्धि कुँवरिजी को उन्हें सौंप दिया। पुनः श्रीसिद्धि कुवँरिजी को अपनी गोद में लेकर उनकी माताजी ने बहुत प्रकार की प्रिय बातों से शिक्षा दी।

दो०–कुँवरि सुनहु चित लाय के, धरहु सदा मन माहिं ।
पति सेवा सम धरम नहि, जानहु नारिन काहिं ॥१२०॥

हे सिद्धि कुँवरि! तुम अपना ध्यान लगाकर सुनों तथा इसे समझकर मन में यह धारण कर लो कि स्त्रियों के लिए अपने पति की सेवा के समान दूसरा धर्म नहीं है।

जीव केर यह है पुरुषारथ । श्रीश सेव नित करै यथारथ ॥
सब साधन कर फल श्रुति गाई । राम प्रेम अति विशद अथाई ॥

जीव का मात्र यही एक परम पुरुषार्थ है कि वे श्रीजी के स्वामी श्रीरामजी महाराज की यथार्थतया नित्य सेवा करते रहें, क्योंकि सभी साधनों का फल अत्यन्त व्यापक व अथाह श्रीराम प्रेम ही है ऐसा श्रुतियों ने गायन किया है–––

श्रुति विहीन साधन असमर्था। अबला अबल लेन परमर्था ॥
तहाँ वेद बदि सुगम उपाई। तियहिं बतायो पति सेवकाई ॥

———परन्तु श्रुतियों के अधिकार से रहित, साधनों में असमर्थ व निर्बल स्त्री को परमार्थ प्राप्ति करने के लिए वेदों ने सरल उपाय पति सेवा ही बताया है।

मानै नारि हरिहिं पति रूपा। सेवन भाव बढ़ाय अनूपा ॥
गुनै मनहि मन राम हमारे। मिले मोहि पति रूप सुखारे ॥

स्त्री अपने पति को भगवान का रूप समझ, उसमें अपना अनुपमेय भाव बढ़ाकर सेवा करे तथा अपने मन में यह अनुभव करे कि हमारे सुख प्रदायक श्रीरामजीही हमे पति के रूप में प्राप्त हुए है।

नित नित नव मन मोद बढ़ाई। हरिहिं सेव पति रूप दृढ़ाई ॥
प्रीति प्रतीति सुरीति बनाया। दृढ़ निश्चय यह भाव समाया ॥

वह अपने मन में नित्य प्रति नवीन आनन्द बढ़ाकर दृढ़तापूर्वक भगवान की पति रूप में सेवा करती रहे तथा प्रीति, प्रतीति और सुरीतिपूर्वक दृढ़ निश्चय कर यही भाव मन में बनाये रखे कि——

दो०—प्राप्त जनम पति रूप में, मिले हरी मोहिं आय।
तन तजि जाय विकुण्ठ महँ, मिलिहैं प्रभु हिय लाय ॥१२१॥

——मुझे इस जन्म में पति के रूप में भगवान ही आकर प्राप्त हुए हैं तथा शरीर छूटने के बाद बैकुण्ठ में जाने पर वे मुझसे हृदय से हृदय लगा कर भेंट करेंगे।

तन मन धन पति पूजन साजा। नारि गिनै निष्काम सुभ्राजा ॥
बनि अनन्य त्रिकरण पति सेवा। करै भावमय गुनि हरि देवा ॥

स्त्री अपने शरीर, मन व सम्पत्ति को पति की पूजन सामग्री समझ निष्काम भाव से पति की अनन्या बन, मन वचन व कर्म से भावानुसार उसे भगवान समझकर सेवा करे।

सब समेटि ममता पति चरणा। बाँधै मनहिं मानि हरि शरणा ॥
एक पुरुष मम पती सुहावन। जगत नारि मय लखि मन पावन ॥

सम्पूर्ण सम्बन्धों की ममता को समेटकर उसे पति के चरणों में भगवान की शरणागति समझ अपने मन को बाँध दे। संसार में मेरे पति ही एक मात्र सुन्दर पुरुष हैं ऐसा मान कर सम्पूर्ण संसार को स्त्री के रूप में समझ वह अपने मन को पवित्र बनाये रखे।

पति सुख सो निज सुखहिं बिचारै। पति इच्छा तन मन सब वारै ॥
विनय शील संकोच बचन मृदु। मन अकाम अरु प्रेम सुपति पदु ॥

स्त्री को चाहिये कि— वह पति के सुख से ही अपने को सुखी समझे तथा पति की इच्छा में अपना शरीर, मन व सर्वस्व न्योछावर कर दे। उसे विनय, शील व संकोच से युक्त, मृदु वचन बोलने वाली तथा निष्काम मन से पति चरणों में प्रेम करने वाली होना चाहिये।

भगति विराग ज्ञान उर धारे । धर्म कर्म श्रुति विहित सम्हारे ॥
पति हित करै सुचेष्टा नारी । ईश सेव गुनि हृदय मझारी ॥

पतिव्रता स्त्री अपने हृदय में भक्ति, वैराग्न व ज्ञान को धारण कर श्रुति सम्मत धर्म पूर्वक सभी करणीय कर्मो का निर्वाह करती हुई अपने पति के हित के लिये, अपने हृदय में भगवान की सेवा समझकर सुन्दर चेष्टायें करती रहे।

सासु श्वसुर अरु गुरुजन सेवा । पति सुख लागि करै मन देवा ॥
शौच दया गृह काज सम्हारै । राम प्रेम छन छनहिं सुधारै ॥
सदा प्रसन्न खेद नहिं लावै । सब समर्थ पति भक्ति बनावै ॥

वह अपने पति के सुख के लिए मन लगाकर सास, श्वसुर और गुरुजनों की सेवा करे, पवित्रता तथा दयापूर्वक घर के सभी कार्यो को सँवारती हुई श्रीराम प्रेम को छण–प्रतिक्षण धारण किये रहे। वह सदैव ही प्रसन्न रहे, कभी भी मन में दुख न लावे क्योंकि 'पति भक्ति' स्वयं ही स्त्री को सर्व सामर्थ्यवान बना देती है।

दो०–नारि धर्म यह जानि कर, हरि सेवै पति रूप ।
अचल धाम जाकहँ मिलै, फिरि न परै भव कूप ॥१२२॥

स्त्रियाँ इस धर्म को समझ व धारण कर यदि पति रूप में भगवान की सेवा करती हैं तो उन्हें भगवान का अचल धाम प्राप्त होता है फिर वे संसार कूप में नहीं पड़तीं–––

बिनु हरि भाव करै पति सेवा । त्रिकरण गती आन नहिं लेवा ॥
सो तिय पुनि सति लोक सिधारै । स्वर्ग माँहि पति सह सुख सारे ॥

–––और यदि स्त्री बिना भगवद्भाव के अपने पति की त्रिकरण (मन, वचन व कम से) अनन्य भाव भावित हो सेवा करती है तो वह स्त्री सती लोक को जाती है तथा स्वर्ग में अपने पति के साथ सुख प्राप्त करती है।

मृत्यु लोक पुनि आय सिधाई । नाना भाँति सुखहिं सरसाई ॥
अच्युत लोक भाव हरि केरे । मिलै सत्य यह वेद निबेरे ॥

पुनः वहाँ से प्रस्थान कर मृत्युलोक में आकर विभिन्न प्रकार के सुखों में डूबी रहती है। परन्तु भगवान के भाव से पति सेवा करने पर निश्चित ही उसे भगवान का अच्युत धाम प्राप्त होता है ऐसा वेदों ने निरूपण किया है।

पर पति सेवन ते तिय काहीं । मिलै नरक अघ लोक सदाहीं ॥
यह विचारि मम प्राण पियारी । हरि गुन सेयो पतिहिं सुधारी ॥

पर पति का सेवन करने से स्त्री को सदैव नरक व निम्न लोकों की प्राप्ति होती है। ऐसा विचारकर हे मेरी प्राण प्रिय पुत्री सिद्धि कुँवरि! तुम मेरी शिक्षा हृदय में धारण कर, अपने पति को भगवान समझ, सेवा करती रहना।

बार बार सिख देइ पुनीता। कीन्हीं विदा मातु अति प्रीता॥
सुभग पालकी सिद्धि पवित्रा। चली श्वसुर गृह प्रेम विचित्रा॥

इस प्रकार नारी धर्म की पवित्र शिक्षा बारम्बार देकर उनकी अम्बा श्रीकान्तिमतीजी ने अत्यन्त प्रेम पूर्वक श्री सिद्धि कुँवरिजी की विदाई की अनन्तर सुन्दर पालकी में बैठकर परम पवित्र व प्रेम–वैचित्र परिपूर्णा श्रीसिद्धि कुँवरिजी अपने श्वसुरालय चल दीं।

दो०– दै निशान हर्षित चले, श्री निमिकुल महाराज।
सबहिं भेंट अति प्रेम सों, लीन्हे सकल समाज॥१२३॥

तत्पश्चात् निमिकुल नरेश श्री जनकजी महाराज नगाड़े बजवाते हुये, सभी से अत्यन्त प्रेमपूर्वक भेंटकर, सम्पूर्ण समाज को साथ ले, हर्षित हृदय हो जनकपुरी चल दिये।

शुभ दिन अरु शुभ समय सुहावा। आये कुँवर व्याहि मन भावा॥
सब कहँ सबहिं भाति सन्माना। दान मान करि मोद महाना॥

कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी सुन्दर शुभ दिन व शुभ समय में अपना मन–भावन विवाह कर अपने भवन आ गये, उस समय सभी का सभी प्रकार से सन्मान कर, दान–मान दिया गया तथा महान आनन्द मनाया गया।

पुत्रवधू मन भावत पाई। जनक वसै गृह शान्ति सुछाई॥
कुँवरहुँ मुदित नारि भल पाई। रूप शील जग एक सोहाई॥

अपने मनोनुकूल पुत्रवधू को प्राप्तकर श्रीजनकजी महाराज अपने भवन में सुन्दर शान्ति पूर्वक निवास करने लगे। कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी भी परम रूप व शील सम्पन्ना अद्वितीय पत्नी पाकर आनन्दित हुए।

निज अनुकूल सबहिं विधि जानी। रहहिं प्रसन्न ईश रुचि मानी॥
दम्पति मिलि सेवैं हरि चरणा। परम प्रीति कछु जाय न वरणा॥

कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी पत्नी श्री सिद्धि कुँअरि जी को सभी प्रकार से अपने अनुकूल समझ, भगवान की कृपा समझकर प्रसन्न रहते थे। वे पति–पत्नीं (श्री सिद्धि कुँवरिजी व श्रीलक्ष्मीनिधिजी) मिल कर अत्यन्त प्रीति पूर्वक श्री भगवान के श्री चरणों की सेवा करने लगे, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सिद्धि कुँवरि सह दासि अनेका। सेवहिं सुखद बढ़ाइ विवेका॥
रहैं सदा निर्लिप्त कुँवर वर। पद्म पत्र पय माँहि यथा धर॥
प्रेम नेम नित बाढ़त जाई। शुक्ल चन्द्र जिमि बढ़े सुहाई॥

श्री सिद्धि कुँवरिजी अपने ज्ञान को बढ़ाकर अपनी अनेक दासियों सहित कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी की सुख प्रदायक सेवा करती रहती थी परन्तु 'कुँवर श्रेष्ठ' श्री लक्ष्मीनिधि जी सदैव ही उसी प्रकार सबसे निर्लिप्त रहते थे जैसे जल में कमल पत्र रखा हो। उनका भगवत्प्रेम व नियम ठीक उसी प्रकार अनुछिन वृद्धिंगत हो रहे थे जैसे शुक्ल पक्ष का सुन्दर चन्द्रमा वृद्धि को प्राप्त होता है।

दो०–यहिं विधि षोडस वर्ष गे, कुँवरहिं राम वियोग ।
नयन डसाये लखत मग, कब होइहि संयोग ॥१२४॥क॥

इस प्रकार कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी को श्रीरामजी महाराज के वियोग में सोलह वर्ष व्यतीत व्यतीत हो गये, वे नित्य अपने नेत्रों के पाँवड़े बिछाये मार्ग देखते रहते थे कि हमारा प्रभु श्रीरामजी से कब मिलन होगा।

धन्य धन्य माता पिता, धन्य अहै सो बाल ।
रघुपति चरण सरोज प्रिय, मानै जग कहँ काल ॥ख॥

हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं वे बालक व उनके माता–पिता धन्य हैं जिन्हें श्रीरामजी महाराज के चरण कमल प्रिय लगते हैं और जो संसारद्धसंसार की आसक्ति) को काल के समान (दुखदाई) समझते है।

रसना पावन नाम रटि, लै प्रसाद मुख नाक ।
राम कथा सुनि श्रवण शुचि, संत दरश दृग छाक ॥ग॥

भगवान के परम पवित्र नाम का निरन्तर जपकर जिह्वा, भगवत्प्रसाद ग्रहण कर नाक व मुख, श्रीराम कथा श्रवण कर कान और संतों के दर्शन कर जीवों के नेत्र पवित्र हो जाते हैं।

सिर पावन परणाम करि, हृदय वसाये राम ।
हरि गुरु सन्तन के परश, त्वक पवित्र अठयाम ॥घ॥

भगवान को प्रणाम करने से शिर तथा हृदय में श्रीरामजी को धारण करने से हृदय पवित्र हो जाता है और भगवान, गुरु व सन्तजनों के स्पर्श से जीवों की त्वचा आठो याम पवित्र बनी रहती है।

पग पवित्र तीरथ किये, कर पवित्र दिय दान ।
तन पवित्र सत सेवते, मन बिन वास सुजान ॥ङ॥

हमारे पैर तीर्थो में जाने से, हाथ दान देने से, शरीर सत्य का सेवन करने से तथा मन भगवान के अतिरिक्त अन्य किसी का आवास न बनने से सदैव पवित्र रहते हैं।

बुधि पवित्र मैं मोर बिनु, अहम् बने हरिदास ।
आत्मा पावन प्रेम सों, जग नित प्रभुमय भास ॥च॥

मैं और मेरे (अहंकार व ममकार) से रहित बुद्धि, भगवान के सेवक बन जाने पर, जीवों के अहंकार भगवान के प्रेम से आत्मा और संसार को भगवत्स्वरूप समझने से यह संसार सदैव पवित्र बना रहता है।

यह सब चरित यथा मति भाषा । हनुमत सुनहु जो बीचहिं राखा ॥
जन्म कर्म सीता शुचि गावौं । भ्रात भगिनि की प्रीति सुनावौं ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमानजी! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार यह सम्पूर्ण

चरित्र बखान किया, अब उस चरित्र को श्रवण करिये जिसे मैंने, बीच में रख छोड़ा था। मैं अब राम वल्लभा श्री सीताजी के पवित्र जन्म व कर्म का गायन करता हूँ तथा भाई–बहन (श्री लक्ष्मी–निधि जी व श्री सिया जू) की पारस्परिक प्रीति का वर्णन कर रहा हूँ।

कुँवर उमर जब रहि षट चारा । समय प्रसंग कहौं विस्तारा ॥
नृप विदेह की प्रीति सुहाई । गुरु निदेश रघुवर प्रति छाई ॥

जब कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी की अवस्था दस वर्ष थी, उस समय के प्रकरण को मैं विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ। निमिकुल गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी की आज्ञानुसार श्रीरामजी महाराज के प्रति श्रीविदेहराजजी महाराज के मन में सुन्दर प्रीति समायी हुई थी।

गूढ़ प्रेम नित हृदय मझारे । बढ़त चन्द्र सम सुरति सहारे ॥
मन ही मन नित करहि सुशोचा । मानत भाग आपनो पोचा ॥

श्रीरामजी महाराज के प्रति उनके हृदय में अत्यन्त गम्भीर प्रेम नित्य–प्रति चन्द्रमा के समान आचार्य वचनों की स्मृति के सहारे वृद्धि प्राप्त कर रहा था। परन्तु वे मन ही मन में इसी सम्बन्ध की नित्य चिन्ता करते हुये अपनी भाग्य को मन्द समझते थे–––

अब लगि शक्ति पुत्रि नहिं आदी । का विधि मिलैं राम अहलादी ॥
गुरु निदेश तव राम जमाता । सो सब जानै बात विधाता ॥

–––क्योंकि अभी तक आदि शक्ति पुत्री रूप में मेरे यहाँ प्रगट नहीं हुई हैं, अतः आह्लाद प्रदान करने वाले श्रीरामजी महाराज किस प्रकार मुझे प्राप्त होंगे? श्रीगुरुदेवजी का निर्देश है कि श्रीरामजी महाराज तुम्हारे जामाता होंगे अतः उन सभी बातों को श्री ब्रह्मा जी ही जाने।

दो०– करत शोच तन्द्रा लगी, शिव शुभ आयसु दीन्ह ।
पुत्रि इष्ट सारहु सुभग, यज्ञ यथा विधि चीन्ह ॥१२५॥

,ऐसा विचार करते–करते उन्हें कुछ ऊँघ (तन्द्रा) सी लग गयी तब श्री शिव जी ने उन्हें स्वप्न में शुभ आज्ञा प्रदान की कि–हे राजन! आप पुत्री की प्राप्ति हेतु –'पुत्रीष्टि यज्ञ' विधि विधानपूर्वक सम्पन्न कराइये।

समाचार सब गुरुहिं सुनाई । सपन बीच जो देखेउ राई ॥
अकनि सुगुरु अनुशासन कीना । करहु यज्ञ नृप परम प्रवीना ॥

तदनन्तर श्री विदेहराज जी ने जो स्वप्न देखा था, वह सभी समाचार श्री गुरुदेव जी को सुना दिया। उसे सुनकर गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी ने आज्ञा दी कि– हे परम दक्ष राजन! आप, पुत्रीष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कीजिये।

विधिवत सकल विधान सुहावा । कतहुँ छिद्र नहिं परै प्रभावा ॥
हल कर्षण करि तुम निज हाथा । करहु भूमि शोधन निमिनाथा ॥

आप विधिपूर्वक सभी सुन्दर विधान करवायें जिसमें कहीं रंचमात्र भी त्रुटि नहीं होनी चाहिए तथा हे निमिकुल नरेश! आप अपने हाथों से हल कर्षण कर यज्ञ की भूमि का शोधन करें।

फलिहैं सकल मनोरथ बेली । शंकर कृपा सदा सुख भेली ॥
सुनि गुरु वचन माथ महि नाई । यज्ञ सम्हार सकल सुखदाई ॥

आपके मन की सभी आशा–लतायें फलवती होंगी क्योंकि भगवान श्रीशंकरजी की कृपा सदैव ही सुख प्रदान करने वाली है। श्रीगुरुदेवजी के वचनों को सुन, उन्हें मस्तक झुका प्रणाम कर यज्ञ की सुख प्रद सम्पूर्ण सार सम्हार हेतु श्री महाराज जी प्रस्थित हो गये।

कीन्ह यथा विधि शास्त्र निबेरी । चलेउ भूमि शोधन शुभ बेरी ॥
पहुँचि तहाँ सब सहित समाजा । सचिव विप्र भट परिजन राजा ॥
समय प्रतीक्षा करत सुभूपा । भ्राजत अपर इन्द्र सम रूपा ॥

श्री विदेह राज जी महाराज ने शास्त्रों में वर्णित विधि के अनुसार तैयारी की तथा शुभ बेला में भूमि शोधन करने के लिए चल पड़े। अनन्तर श्री महाराज जनकजी यज्ञ स्थली में मंत्रियों, ब्राह्मणों, वीरों तथा परिवार के सदस्यों आदि सम्पूर्ण समाज सहित पहुँच गये। उस समय महाराज श्री जनक जी शुभ समय की प्रतीक्षा करते हुए दूसरे इन्द्र के समान सुशोभित हो रहे थे।

दो०–लखन कहा हनुमान सों, शोधन समय सुभूमि ।
गगन सहित जन संकुलित, अचरज लग जनु दूमि ॥१२६॥

श्री लक्ष्मण कुमार ने हनुमान जी से कहा, हे तात! सुन्दर, यज्ञ भूमि का शोधन करते समय देव विमानों व देवताओं से भरे हुए आकाश सहित भूमि में व्याप्त जन समूह को देखकर ऐसा आश्चर्य लग रहा था जैसे धरती व आकाश हिलने लगा हो।

लगन सुहावन मंगल दानी । ऋषिन कहा तब आनँद मानी ॥
शुक्ल नवमि तिथि माधव मासा । अभिजित प्रिय दिन मध्य प्रकाशा ॥

सुन्दर और सुमंगलदायी लग्न को देखकर ऋषियों ने मन में आनन्दित होकर कहा– बैशाख मास के शुक्ल पक्ष की नौमी तिथि, अभिजित योग व प्रिय दिन का मध्य प्रकाशित भाग आ गया है।

अब नरनाह समय शुभ आवा । करहु भूमि कर्षण सुख छावा ॥
सुनि मुनि गिरा पूजि गणनायक । महि पूजे गिरिजहिं प्रिय भायक ॥

हे महाराज! अब शुभ समय आ गया है अतः आप सुखपूर्वक 'हल कर्षण' कर भूमि का शोधन कीजिये। तब मुनियों की वाणी (आज्ञा) सुनकर श्री महाराज जनकजी ने श्री गणेशजी का पूजन कर श्री भूमि देवी व श्री पार्वती जी की भी भावपूर्वक पूजा की।–––

करी तैयारी शोधन काजा । युगल वृषभ बहु तेज विराजा ॥
आये अंग अलंकृत कीन्हे । युग नन्दी जनु अहहिं प्रवीने ॥

–––तथा भूमि शोधन की तैयारी का कार्य पूर्ण किया। पुनः वहाँ अत्यन्त तेज से परिपूर्ण, सभी अंगों में आभूषणों से अलंकृत दो सुन्दर बैल आये, जो ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों वे श्री शिव जी के वाहन परम दक्ष दो नन्दी ही हों।

नगन जड़ित हल शोभ महाना। रतन यष्टि लै जनक सुहाना॥
शान्ति पाठ बोलहिं मुनिराया। वेद मंत्र रव चहुँ दिशि छाया॥
पणव निशान शंख बहु बाजे। गीत गान अति आनन्द छाजे॥

अनन्तर परम ज्ञानी श्रीजनकजी महाराज मणियों से जड़े हुए हल व रत्न छड़ी लेकर शोभा प्राप्त करने लगे। उस समय मुनिजन शान्ति पाठ बोल रहे थे, चारों दिशाओं में वेदों के मंत्र गूँज रहे थे पणव (लकड़ी से बजाने वाला ढोल), नगाड़े एवं शंख आदि बहुत से वाद्य बज रहे थे तथा मांगलिक गीतों के गायन से अत्यानन्द छाया हुआ था।

दो०– जबहिं राव हल पकरि कर, सुमिरि शम्भु चल कीन।
जयति जनक जय जयति शुभ, गूँजेव रव सुख भीन॥१२७॥

जैसे ही श्री जनक जी महाराज हाथ में हल पकड, भगवान श्री शिव जी का स्मरण कर चलने को उद्यत हुए वैसे ही श्रीजनकजी महाराज की जय हो, जय, जय हो की सुख मिश्रित शुभ–ध्वनि सर्वत्र गूँज गयी।

बाजहिं गगन दुन्दुभी नाना। वरषहिं सुमन अपसरा गाना॥
त्रिविध समीर बहै सुखदायी। आनँद आनँद दस दिशि छाई॥

आकाश में अनेक दुन्दुभी वाद्य (नगाड़ें) बज रहे थे, अप्सरायें गीत गाती हुई पुष्प वर्षा कर रही थीं, तीनों प्रकार का (शीतल, मन्द व सुगन्धित) सुखदायी समीर प्रवाहित हो रहा था तथा दसों दिशाओं में आनन्द ही आनन्द छाया हुआ था।

जड़ चेतनमय सब जग जीवा। सबहिं मगन मन होत अतीवा॥
संत हृदय मन मोदित भयऊ। सो सुख जानहिं जिन हरि दयऊ॥

संसार के सभी जड़ चेतनात्मक जीवों के मन अत्यन्त आनन्द से मग्न हुये जा रहे थे तथा सन्त जनों का हृदय व मन अतिशय प्रमुदित हो गया था, उस समय के सुख को वही जान सकता है जिसे भगवान ने वह सुख प्रदान किया हो अर्थात् जिसे प्रभु कृपा ने वरण कर लिया हो।

सबहिं विलक्षण भाव दिखावैं। सबहिं मनै मन रस उपजावै॥
यहिं विधि जनक बहुत हरषाने। हलहिं चलावत दृग ललचाने॥

उस समय सभी के हृदय में अद्भुत भाव दिखाई पड़ रहे थे तथा वे भाव सभी के मन ही मन में आनन्द रस उत्पन्न कर रहे थे। इस प्रकार श्रीजनकजी महाराज हल चलाते हुए अत्यधिक हर्षित हुये तथा अपनी निधि को प्राप्त करने के लिये उनकी आँखें लालायित हो रही थीं।

शक्ति प्रेम वश सोह नृपाला। खिला कमल जनु सोह सुताला॥
दस दिशि देवहिं सगुन जनाई। फरकहि अंग सुभग सुखदाई॥

श्री जनक जी महाराज परमाद्या शक्ति के प्रेम–विवश हो उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे पूर्ण सुन्दर तालाब में खिला हुआ कमल सुशोभित होता है। उस समय दसों दिशाओं में शुभ शगुन

दिखाई पड़ रहे थे तथा सभी के सुन्दर सुखप्रद अंग फड़क रहे थे।

दो०– रस रस हल रेखा करत, श्री निमिवंश उदार ।
रत्नावेषण हितहिं जनु, निज कर धूरी टार ॥१२८॥

निमिवंश विभूषण उदार शिरोमणि श्री जनकजी महाराज हल के द्वारा धीरे–धीरे भूमि पर गहरी रेखा सी कर रहे थे मानों वे रत्नों की खोज करने के लिए अपने हाथों से धूल हटा रहे हों।

चलत चलत हल रुकेव यकायक । भयेव विवर महि तेज महायक ॥
दिव्य सिंहासन ऊपर आवा । जटित रत्न बहु सूर्य बनावा ॥

चलते–चलते अचानक हल रुक गया तथा भूमि में महान तेज युक्त दरार हो गयी जिससे विविध रत्न जटित व अमित सूर्य सम प्रभान्वित एक दिव्य सिंहासन ऊपर आया।

भूमि देवि के अंकहि मोही । आदि शक्ति जग मातु सुसोही ॥
बैठि सिंहासन बीच प्रकाशै । कोटि सूर्य जनु उगे अकाशै ॥

उस सिंहासन के बीच श्री भूमिदेवी की गोद में परमाद्याशक्ति, जगजज्जनी श्रीसीताजी सुन्दर शोभा सम्पन्न, प्रकाश बिखेरती विराजी हुई, सभी को मोहित कर उसी प्रकार सुशोभित हो रही थीं जैसे करोड़ों सूर्य आकाश में एक साथ उदय हो गये हों।

वसन विभूषण झलमल झलकै । सिरन चन्द्रिका कुण्डल अलकैं ॥
चरण कमल युग नूपुर सोहैं । कर कंकण हिय हार सुमोहैं ॥

उनके अंगों के वस्त्राभूषण झलमलाते हुये अत्यधिक प्रकाश विखेर रहे थे, उनके शिर में चन्द्रिका व कर्णो पर कुण्डल तथा सुन्दर अलकें सुशोभित हो रही थी। दोनों चरण कमलों में नूपुर, हाथों में कंकण तथा हृदय में मनमोहक हार सुशोभित हो रहा था।

तन शोभा सक शेष न गाई । अमित त्रिशक्ती छबिहिं लजाई ॥
चित्ताकर्षनि छवि सुखकारी । सुर तिय मोहन अनुप अपारी ॥
सज्जन मन महँ लेहिं विचारी । अण्ड छटा छुद्रांश सम्हारी ॥

उनकी शारीरिक शोभा का तो सहस्त्र मुख श्री शेष जी भी बखान नहीं कर सकते तथा वह छवि असीमित त्रिदेवियों की छवि को भी विलज्जित कर रही थी। वह चित्त को आकर्षित करने वाली परम सुखकारी सुन्दरता अनुपमेय, असीम तथा देव पत्नियों को भी मोहित कर लेने वाली थी। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–हे सज्जनों! आप सभी अपने मन में इसी बात से विचार कर लें कि असीमित ब्रह्माण्डों की सम्पूर्ण सुन्दरता उस छवि के एक छोटे अंश से निर्मित है तब वह सम्पूर्ण शोभा कैसी होगी।

दो०– अष्ट सखी सेवा सरहिं, चमर छत्र छवि सोइ ।
विजन पान इत्रादि वर, लिये कृपा को जोह ॥१२९॥

जगत वन्द्या आद्याशक्ति श्री सीता जी की चँवर, छत्र, बिजन, पान तथा इत्र आदि सुन्दर

सेवा साज लिए हुए कृपा दृष्टि को निहारती हुई आठ सखियाँ सेवा कार्य में संलग्न शोभायमान हो रही थीं।

शेष लिए सिर शुभ्र सिंहासन । जगमग जगमग परम प्रकाशन ॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मण्डा । आनन्द उमड़ि डुबायो अण्डा ॥

उस परम प्रकाशित जगमगाते हुए सुन्दर सिंहासन को श्रीशेषजी अपने सिर में धारण किये हुए थे। उस समय जय–जय की ध्वनि समस्त ब्रह्माण्डों में गूँज गयी तथा आनन्द ने उमड़कर सभी ब्रह्माण्डों को अपने आप में डुबा लिया।

पुष्पमाल झर झर झरि वरषहिं । भूमि अकाशहिं ते मन करषहिं ॥
गंध वृष्टि बहु गगनहिं तेरे । होति हर्षि पगि प्रीति घनेरे ॥

भूमि और आकाश से मनोमुग्धकारी पुष्प मालाओं व पुष्प वृष्टि की झड़ी लगी हुई थी तथा आकाश से सुन्दर हर्ष और सघन प्रीति में पगी हुई इत्र की विपुल वर्षा हो रही थी।

दुन्दुभि स्वर सुर करहिं सुखारी । भूमि ढोल बाजादिक भारी ॥
वीणा वेणु मृदंग नगारे । बाजहिं शंख घड़ी करतारे ॥

देवता आकाश में सुखपूर्वक दुन्दुभी नाद कर रहे थे तथा भूमि में ढोल, वीणा, बाँसुरी, मृदंग, नगाड़े, शंख, घड़ियाल व करताल आदि वाद्य बज रहे थे।

स्तुति करहिं प्रसन्न त्रिदेवा । सहित इन्द्र सुर सने सुसेवा ॥
किन्नर सिद्ध नाग गन्धर्वा । रंभादिक अपसरा सुसर्वा ॥
नाचहिं गावहिं गगन मझारी । वरषि पुष्प जय जयति उचारी ॥

प्रसन्नतापूर्वक त्रिदेव (श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी) भी इन्द्र व सभी देवताओं सहित सेवा भाव में सने हुए स्तुति कर रहे थे। किन्नर, सिद्ध, नाग, गन्धर्व तथा रम्भा आदि अप्सरायें सभी मिलकर आकाश में नाच गा रहे थे तथा फूलों की वर्षा कर जय जय उच्चारण कर रहे थे।

दो०–ताही विधि शुचि भूमि महँ, पंच शब्द धुनि होय ।
नाग देव मुनि विप्रगण, स्तुति कर मुद मोद ॥१३०॥

उसी प्रकार ही भूमि में भी पवित्र पंच ध्वनि (वेद–ध्वनि, मंगल गीत–ध्वनि, जय–ध्वनि,नगाड़ों की ध्वनि व बन्दी–ध्वनि) हो रही थी तथा नाग, देवता, मुनि और ब्राह्मण आदि सभी आनन्दपूर्वक परमाद्या शक्ति श्री जानकी जी की स्तुति कर रहे थे।

––:स्तुति:––

दो०–जय जय अविनाशिनि सब घट वासिनि, आदि शक्ति सुखकारी ।
जय आनन्द बर्धिनि प्रेम समृद्धिनि, सब जग पालन हारी ॥
दुख दोष नशावनि पाप मिटावनि, करति अमित लय अण्डा ।
निज भृकुटि विलासा रचति सुभासा, अमित कोटि ब्रह्माण्डा ॥

हे, अविनाशिनी, प्रत्येक घट–घट में निवास करने वाली, परम सुखकारिणी आद्या शक्ति आपकी जय हो। हे, समस्त लोको में आनन्द का विवर्धन करने वाली, प्रेम वैभव परिपूर्णा तथा सम्पूर्ण संसार का पालन करने वाली देवि! आपकी जय हो। आप जीवों के दुख व दोषों का विनाश करने वाली तथा पापों को मिटा देने वाली है। आप ही असीमित ब्रह्माण्डों का विनास करती हैं पुनः अपने भृकुटि विलास से परम सुशोभन अपरिमित करोड़ो ब्रह्माण्डों की रचना करती रहती हैं।

जय आनन्द रूपे ब्रह्म स्वरूपे, कोटि सूर्य तन आभा ।
शत चन्द्र लजावन प्रिय तव आनन, जनकहिं दीन्ह सुलाभा ॥
चम–चम द्युति वस्त्रा परम पवित्रा, विद्युत ज्योतिहुँ लाजै ।
अति दिव्य विभूषण सब निरदूषण, कंकन किंकिनि बाजै ॥

हे आनन्द रूपिणी, ब्रह्म स्वरूपिणी, करोड़ों सूय की आभा से आभान्वित दिव्य वपु सम्पन्ना आपकी जय हो। आपका प्रिय मुख कमल सैकड़ों चन्द्रमा की छवि को भी विलज्जित करने वाला है, आपने कृपा कर श्री जनक जी महाराज को परम संलाभ प्रदान किया है। हे देवि! आपके परम पवित्र वस्त्रों से चमचमाती हुई ज्योति निकलती है जो विद्युत की आभा को भी विलज्जित कर रही है, आप अत्यन्त दिव्य व सभी प्रकार के दोषों से रहित आभूषणों से अलंकृत हैं तथा आपके कर कमल के कंकण व कटि की किंकिणी सुन्दर स्वर से ध्वनित हो रही है।

बहु शक्ति स्वअंशी उपजि प्रशंसी, सेवहिं नित तव पादा ।
अगणित गुण खानी रमा भवानी, शारद युत अहलादा ॥
सत चिद आनन्दी जय जय बन्दी, रचति त्रिदेव अनेका ।
विधि हरि हर सेवैं मुनिजन धेवै, देवि स्वराट सुएका ॥

हे समस्त श्रेय गुणों की खानि! असीमित उमा, रमा व ब्रह्माणी आदि बहुत सी शक्तियाँ, आह्लाद पूर्वक आपके अंश से उत्पन्न होकर आपकी प्रशंसा करती हुई आपके चरणों की सेवा करती रहती हैं। हे सच्चिदानन्दमयी, जगत बन्दनीया! आप समयानुसार अनेक त्रिदेवों (श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी) की रचना करती रहती हैं, आपकी सेवा ईश कोटि के देवता श्री ब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी भी करते हैं तथा सभी मुनिजन आपका ध्यान करते हैं, हे देवि! आप ही एक मात्र सभी का सुन्दर शासन करने वाली साम्राज्ञी हैं।

साकेत विहारिणि भव भय हारिणि, जयति जानकी माता ।
श्रुति अन्त न पावैं भगतन भावैं, जयति जननि सुखदाता ॥
सिर शेष सिंहासन तेहिं पर आसन, धरणी गोद पधारी ।
जय परम सुज्योती झल–झल होती, दरश महा सुखकारी ॥

हे दिव्य साकेत धाम में विहार करने वाली, संसार के भय का हरण करने वाली अम्बे श्री जानकी जी! आपकी जय हो। आपकी महिमा का सभी श्रुतियाँ अन्त नहीं पाती हैं, हे भक्तों को अतिशय

प्रिय लगने वाली! सुख प्रदायिका जगज्जननी आपकी जय हो। श्री शेष जी के सिर पर रखे हुए सिंहासन में आप विराजी हुई श्री भूमि देवी की गोद में सुशोभित हैं, हे स्वकीय दर्शन से महान सुख प्रदान करने वाली व परम आभा सम्पन्ना परम ज्योति स्वरूपा आपकी जय हो, जय हो।

सिर छत्र सुलहरैं चमर सुफहरैं, अष्ट सखी कर सेवा ।
करि जनकहिं दाया प्रगटि अमाया, दरश लहैं मुनि देवा ॥
अति सुखद सुलीला कर शुभ शीला, पावन परम प्रकाशी ।
सुनि सुनि बड़ भागी प्रेमहिं पागी, पावहिं गति अविनाशी ॥

आपके सिर पर सुन्दर छत्र सुशोभित है, चँवर फहरा रहा है तथा अप्रतिम आठ सखियाँ आपकी सेवा कर रही हैं, आप सर्वथा माया से रहित हैं व श्रीजनकजी महाराज पर दया कर प्रगट हुई हैं। अतः आपका दर्शन देवता और मुनिगण प्राप्त कर रहे हैं। अब आप अपनी अत्यन्त सुखदायिनी, शुभप्रदा, परम पवित्रा व प्रकाशमयी सुन्दर लीला करें जिसे सुन–सुन कर सौभाग्यशाली जन प्रेम में पग जायँ और अविनाशी (जन्म–मरण से मुक्त) गति को प्राप्त करें।

जय जय रसरूपे प्रेम वरूपे, महाभाव रसखानी ।
जय जय अहलादिनि सुखद सुवादिनि, कृपा स्वरूप महानी ॥
मिथिला धनि धन्या नहिं जग अन्या, प्रकटीं प्रेम पुनीता ।
हिय हर्षण दासा प्रेम प्रकाशा, सेवहिं तव पद सीता ॥

,हे रस विग्रहे, प्रेम स्वरूपिणी, महा भाव (प्रेम की अत्युच्चावस्था) परिपूर्णा, रस की खानि आपकी जय हो, जय हो, हे आह्लाद स्वरूपिणी, परम सुखदायी मधुर वाणी का विनियोग करने वाली, कृपा स्वरूपिणी, महा महिमा सम्पन्ना देवि! आपकी जय हो। आपकी जन्म भूमि श्री मिथिला पुरी धन्याति धन्य है, जिसके समान संसार में कोई अन्य पुरी नहीं हैं तथा जिसके पवित्र प्रेम के कारण आप प्रगट हुई हैं। हमारे सदुगुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि यह दास हृदय में हर्षित होकर प्रार्थना करता है कि मुझे आपका प्रेमालोक प्राप्त हो जिससे मैं आपके चरण कमलों की सेवा कर सकूँ।

दो०–स्तुति करि मुनि देव सब, वरषहिं सिय पर फूल ।
जयति जयति जय सीय कहि, हनि दुन्दुभि सुखमूल ॥१३१॥

इस प्रकार सभी मुनिगण व देवता श्रीसीताजी की स्तुति कर उन पर पुष्प वरषाते हुए श्रीसियाजू की जय, जयकार करते हुये सुखों की मूल दुन्दुभी वाद्य (नगाड़े) बजा रहे हैं।

देखि जनक अति आनन्द पावा । निरखहिं एकटक रूप सुहावा ॥
पर वश प्रेम भये सुधि हीना । पूर्व राग जनु तनु धर लीना ॥

परम कृपार्णवा श्री सीता जी को देखकर श्रीजनकजी महाराज ने अत्यानन्द प्राप्त किया तथा

वे उनके सुन्दर रूप को एकटक निहारते हुए प्रेम के वशीभूत हो स्मृतिहीन हो गये मानो उनके पूर्व राग ने ही शरीर धारण कर लिया हो।

दण्ड समान गिरे महि माहीं । सीय शरण सारे सिर काहीं ॥
उतरि सिंहासन सिय अतुराई । कर गहि भूपति काहिं उठाई ॥

वे भूमि में लकड़ी के दण्ड के समान गिर पड़े तथा अपने सिर को श्रीसीताजी की शरण में डाल दिये। तब आतुरतापूर्वक सिंहासन से उतरकर श्रीसीताजी ने श्रीजनकजी महाराज के हाथ को पकड़कर उन्हे उठा लिया।

कृपा पाय श्री जनक भुआरा । हिय महँ माने मोद अपारा ॥
जोरि पाणि स्तुति अनुसारी । जय जय जय सब जगत अधारी ॥

उनकी महती कृपा को प्राप्तकर श्रीजनकजी महाराज ने अपने हृदय में असीम आनन्द माना पुनः अपने हाथों को जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे। हे सम्पूर्ण संसार की आधार शक्ति, आपकी जय हो, जय हो।

नेति नेति नित वेद बखाना। उपजहिं अंश त्रिदेवी नाना ॥
जय अनन्त ब्रह्माण्ड निरूपिणि । जन प्रतिपालिनि कृपा स्वरूपिणि ॥
आदि शक्ति अहलादिनि रूपे । सब सुखदानि अनन्द अनूपे ॥

आपका वेदों ने नित्य नेति नेति कह कर बखान किया है आपके अंश से अनेकों त्रिदेवियाँ (उमा, रमा, ब्रह्माणी) प्रगट होती हैं। हे अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना करने वाली तथा अपने जनों का प्रतिपालन करने वाली, कृपा स्वरूपिणी आपकी जय हो। आप आह्लाद स्वरूपा, परमाद्याशक्ति, समस्त सुखों की प्रदात्री और अनुपमेय आनन्द स्वरूपिणी हैं।

दो०–बार बार वर विनय करि, गिरेउ धरणि पुनि भूप ।
कृपा सीय सत समुझि शुचि, मानहुँ आनन्द रूप ॥१३२॥

श्री महाराज जनकजी जग जननी श्री सीता जी की बारम्बार सुन्दर विनती कर पुनः स्मृति हीन हो भूमि में गिर गये मानो श्रीसीताजी की वास्तविक व पवित्र कृपा को समझकर आनन्द स्वरूप बन गये हो।

पुनि उठाय सिय कहेउ बहोरी। वाणी मधुर प्रेम रस बोरी ॥
सुनहिं पिता वर बैन सुहावन । पूरब प्रेम पगेव मन भावन ॥

पुनः श्री सीता जी ने श्री विदेह राज जी को उठाकर प्रेम रस सिक्त मधुर वाणी से कहा– श्री मान् पिताजी! आप मेरे सुन्दर वचनों को श्रवण कीजिये, पूर्वकाल में मेरे मनोभिलषित प्रेम में पगकर आपने–––

सुता भाव तव बहु विधि सेवा । कीन्हेसि प्रगट मोहि गुनि लेवा ॥
सत्य सत्य तुम मोरे दाऊ। पुत्रि मानि पालिय चित चाऊ ॥

–––पुत्री भाव से मेरी विविध प्रकार की सेवा की है। आप ऐसा जान लें कि उसी सेवा ने मुझे प्रगट किया है । आप निश्चय ही मेरे सत्य पिताजी हैं अतः मुझे पुत्री मानकर आप आनन्द व उत्साह पूर्वक मेरा पालन–पोषण कीजिये।

देन प्रतीति रूप दरशायो। मुनि मन अगम नेति श्रुति गायो ॥
इतना कहत भई नभ वानी। ब्रह्म गिरा जेहिं विदुष बखानी ॥

मैंने, विश्वास दिलाने के लिए ही, आपको अपना यह मुनियों के मन को भी अगम्य तथा श्रुतियों के द्वारा नेति नेति बखान किया जाने वाला सुन्दर स्वरूप दर्शन कराया है। श्री सिया जू के इतना कहते ही आकाश वाणी हुई जिसे विद्वानों ने ब्रह्मवाणी कहकर बखान किया है।

धन्य धन्य तुम भूपति भाये । आदि शक्ति के पिता कहाये ॥
जासु भौंह निरखत तिरदेवा। करहिं जगत कारज गुनि सेवा ॥

हे श्री जनकजी महाराज! आप धन्याति धन्य हैं जो संसार में परमाद्याशक्ति के पिता के पद को प्राप्त किये हैं। जिनके भ्रू विलास को (इच्छा को) त्रिदेव (श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी) भी निहारते रहते हैं तथा उनकी सेवा समझकर संसार के सभी कार्य (उत्पत्ति, पालन व संहार) करते रहते हैं।

मानि पुत्रि तेहिं प्रेम बढ़ाई । बहु विधि लालह पालहु जाई ॥
ब्रह्म गिरा सुनि सुर सब हरषे । प्रमुद प्रसून प्रजेशहिं वरषे ॥
धन्य जनक धनि जय जय वानी। गूँजी भूमि व्योम सुखदानी ॥

ऐसी परमाद्या शक्ति को अपनी पुत्री मान, उनमें अत्यन्त प्रेम बढ़ाकर विविध प्रकार से आप उनका लालन पालन कीजिये। इस प्रकार श्री ब्रह्म वाणी (आकाश वाणी) को श्रवण कर सभी देवता अत्यन्त हर्षित हुए तथा श्रीविदेहराजजी महाराज पर पुष्पों की वर्षा करने लगे। श्रीजनकजी महाराज धन्य हैं, उनकी जय हो, जय हो की सुख प्रदायिका ध्वनि भूमि व आकाश में सर्वत्र गूँज गयी।

दो०–सीय कृपा लखि जनक तब, ब्रह्म गिरा सुनि कान ।
सुरन्ह प्रसन्नहिं जानि मन, बोलेउ वचन सुजान ॥१३३॥

तब परम ज्ञानी श्रीजनकजी महाराज ने श्रीसीताजी की कृपा को देख, श्री ब्रह्म वाणी को श्रवणों से सुन तथा देवताओं को अपने मन में प्रसन्न जानकर मधुर वचनों से कहा–

सब विधि देवि धन्य मैं भयऊँ । तव पद रेणु शीष जो लयऊँ ॥
मोहि सम भाग्यवन्त कोउ नाही । निज मुख कहेउ पिता यहि काहीं ॥

हे देवि! मैं सभी प्रकार से धन्य हो गया जो आपके चरणों की धूल को अपने सिर में धारण कर पाया। मेरे समान भाग्यवान भी कोई नहीं है क्योंकि आपने इस दास को (मुझे) अपने मुख से अपना पिता कहा है।

देवि एक वर विनय हमारी । लखहिं ललित शिशु केलि तुम्हारी ॥
धरि शिशु रूप अनूप विमोहन । मातु पिता भ्राता सुख दोहन ॥

परन्तु हे देवि! हमारी एक विनय है कि हम आपकी सुन्दर बाल लीलाओं का दर्शन करें तथा आप अनुपमेय विमोहनकारी शिशु रूप धारण कर अपने माता–पिता व भ्राता के सुख का संवर्धन करें–––

विहरहु सदा मोर अँगनाई । रहहुँ निरखि निरुपम सुखछाई ॥
भ्रात नाम सुनि प्रेम अथोरा । पवन तनय सिय भईं विभोरा ॥

–––तथा मेरे आंगन में आप नित्य विहार करें जिससे मैं आपकी अनुपमेय सुखकारी छवि का दर्शन करता रहूँ। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे पवन नन्दनजी! अपने श्री भैयाजी का नाम सुन प्रेमाधिक्य से श्रीसीताजी विभोर हो गयीं,

बहुरि धीर धरि जनक दुलारी। प्रेम भरे दृग नृपहिं निहारी ॥
कहेउ पिता कहँ भ्रात सनेही । जानत यदपि पूछ वैदेही ॥

पुनः धैर्य धारण कर श्री जनक नन्दिनी जी प्रेम प्रपूरित नेत्रों से श्रीजनकजी महाराज की ओर निहारने लगीं तथा बोलीं– हे श्री मान् पिताजी! मेरे स्नेह पात्र श्री भैया जी कहाँ हैं? श्रीविदेहराज नन्दिनीजी यद्यपि सभी कुछ जानती थीं फिर भी पूछ रही थी।

लखि निज सुवन कहेव नरपाला । परेउ धरणि तल प्रेम विहाला ॥
कृपा कोर तव प्रथम किशोरी । प्रगटत लख्यो सो भयो विभोरी ॥

तब अपने कुमार की ओर देखकर श्रीजनकजी महाराज ने कहा– वे प्रेम विह्वल हो भूमि में गिरे पड़े हैं। हे किशोरी! आपके प्राकट्य के समय ही आपकी प्रथम कृपा को प्राप्त कर तथा आपका दर्शन कर आपके अग्रज कुँअर लक्ष्मीनिधि, विभोर हो गये थे।

दो०–वचन सुनत मिथिलेश के, भूमि सहित द्रुत जाय ।
कुँवर जगायो परशि कर, वैभव रूप दिखाय ॥१३४॥क॥

श्री मिथिलेश जी महाराज के वचनों को सुनते ही श्री भूमि देवी के सहित शीघ्रता पूर्वक कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के समीप जाकर श्रीसीताजी ने उन्हें अपने कर स्पर्श से जागृत किया तथा अपना वैभवशाली स्वरूप दिखाया।

भूमि तुरत सिय अंक लै, कुँवरहिं लीन्हे गोद ।
दिव्य सिंहासन भ्राजती, भरेउ हिये अति मोद ॥ख॥

उस समय श्री भूमि देवी ने शीघ्र ही श्रीसीताजी के साथ ही कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी को भी अपनी गोद में उठा लिया एवं दिव्य सिंहासन में सुशोभित होने लगीं तथा उनका हृदय आनन्द से भर गया।

भ्रात भगिनि लै भूमि सुहाई । यथा सुनैना शोभ महाई ॥
वरषहिं फूल नाग मुनि देवा । बाजत वाद्य गगन सिय धेवा ॥

भाई व बहन दोनों को गोद में लिये हुए श्रीभूमिदेवी उसी प्रकार सुन्दर सुशोभित हो रही थी मानो श्रीसुनैनाजी महान शोभा प्राप्त कर रही हो। उस समय सभी नाग, मुनि व देवता आदि फूलों की वर्षा कर रहे थे तथा आकाश में श्रीसियाजू की आराधना के हेतु विविधि प्रकार के बाजे बज रहे थे।

हरषहिं सिय दर्शन प्रिय पाई । लक्ष्मीनिधि की करत बड़ाई ॥
जय जय जनक सुवन बड़भागी । सीय कृपा अस लहैं न त्यागी ॥

वे सभी श्रीसीताजी के प्रियकारी दर्शन पाकर हृदय में हर्षित होते हैं तथा कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिाजी की प्रशंसा करते हैं। हे श्रीजनकजी महाराज के बड़भागी प्रिय पुत्र श्रीलक्ष्मीनिधिजी! आपकी जय हो, जय हो। आपने श्री सिया जू की जैसी कृपा प्राप्त की है ऐसी कृपा तो बड़े बड़े त्यागियों को भी दुर्लभ है।

सियहिं प्राण प्रिय अहहु कुमारा । सीय अहैं तव प्राण अधारा ॥
भ्रात भगिनि दूनहु परमारथ । दीर्घ दर्शि अस कहैं यथारथ ॥

हे कुमार! आप श्रीसीताजी को प्राण प्रिय हैं तथा श्रीसीताजी आपकी प्राणाधार हैं। आप दोनों भाई व बहन परमार्थ स्वरूप हैं ऐसी यथार्थ वार्ता दीर्घ दर्शीजन बखान करते हैं।

कुँवर प्यार लहि उतर सुगोदे। स्तुति करत हीय भरि मोदे ॥
जयति जयति जय सत चिद रूपे। आनँदमय जय ब्रह्म स्वरूपे ॥
उमा रमा ब्रह्माणि वन्दिते। जय त्रिदेव पद कमल सेविते ॥

श्री भूदेवी सहित श्री सिया जू का प्यार पाकर कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी गोद से उतर आनन्द भरे हृदय से स्तुति करने लगे– हे सत, चिद व आनन्दमयी ब्रह्म स्वरूपिणी देवि! आपकी जय हो, हे उमा, रमा व ब्रह्माणी द्वारा बन्दित तथा त्रिदेवों (श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी) के द्वारा चरण कमलों की सेवा की जाने वाली, आपकी जय हो।

दो०–कृपा रूपिणि तव कृपा, भयों आज अति धन्य ।
परम प्रेम नित नव चरण, बाढ़े विमल अनन्य ॥१३५॥

हे कृपा स्वरूपिणी! आपकी कृपा प्राप्त कर मैं आज अत्यन्त धन्य हो गया, अब यही कामना है कि आपके नवीन चरणों में मेरी नित्य निर्मल, अनन्य व महान प्रीति बढ़ती रहे।

स्तुति करत हीय भरि आयो। चरण पर्‌यो प्रेमाकुल कायो ॥
सिय सिर परशि धीर तब दीन्हीं । कुँवरहु लखत सियहिं दृक पीनी ॥

स्तुति करते करते उनका हृदय भर आया और वे प्रेम विह्वल शरीर से उनके चरणों में गिर पड़े। तब श्रीसीताजी ने उनका सिर स्पर्श कर उन्हें धीरज प्रदान किया। उस समय कुँवर

श्रीलक्ष्मीनिधिजी श्रीसीताजी को अपलक नेत्रों से निहार रहे थे।

वरषि सुमन सुर गिरा उचारी । एक साथ जय सिय जगकारी ॥
जय जग जननि जनक जो कहहीं । करिय तौन हिय आनँद बहहीं ॥

तदनन्तर देवता फूलों की वर्षा करते हुए एक साथ मिलकर जग–कारिणी श्रीसीताजी की जय हो कहकर सुन्दर वाणी का उच्चारण किये– हे जगज्जननी! आपकी जय हो! श्रीजनकजी महाराज जो कह रहे हैं आप वैसा ही करिये तथा सभी के हृदय में आनन्द प्रवाहित कीजिये–––

धरि शिशु रूप जनक अँगनाई । खेलहिं खेल जननि सुखदाई ॥
सुनत सुरन्ह की गिरा सुहावन । धरि शिशु रूप सुभग सुख छावन ॥

–––आप शिशु स्वरूप धारण कर श्रीजनकजी महाराज के आँगन में अपनी माता को सुख प्रदान करने वाली क्रीड़ा करें। देवताओं की सुन्दर वाणी को सुन, श्रीसीताजी ने सुन्दर, सुख वर्द्धक शिशु रूप धारण कर लिया।

कहाँ कहाँ कहि रोदन कीन्हा । भूमि सिंहासन भयो विलीना ॥
नृपति उठाय ललिहिं भरि मोदू । दीन्ह सुनयनहिं के प्रिय गोदू ॥

पुनः कहाँ–कहाँ कहते हुए वे रुदन करने लगीं तब सिंहासन भूमि में विलीन हो गया और श्रीविदेहराजी महाराज नें लली श्रीसियाजू को आनन्द में भर, उठाकर श्रीसुनयनाजी की प्रिय गोद में दे दिया।

दो०–दम्पति सिय धन पाइ के, शोभित सहित समाज ।
करि प्रवेश अन्तः पुरहिं, गनेउ निजहिं कृत काज ॥१३६॥

श्री सीता रूपी धन पाकर दम्पति (श्रीजनकजी महाराज व श्रीसुनयनाजी) ससमाज सुशोभित हुए पुनः अपने अन्तःपुर में जाकर उन्होंने अपने आपको कृत कृत्य माना।

परम प्रेममय पुलक शरीरा । दम्पति मगन सनेह सुनीरा ॥
आदि शक्ति जग जननि कहाई । सोइ बनी नृप पुत्रि सुहाई ॥

इस प्रकार दम्पति (श्रीजनकजी महाराज व श्रीसुनयनाजी) परम प्रेम से युक्त, पुलकित शरीर हो श्री सीता जी के प्रेम रूपी सुन्दर जल में डूब गये। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि पूर्णतम परब्रह्म की परमाद्या शक्ति, जो सम्पूर्ण संसार की जननी कहलाती हैं वे ही श्री महाराज जनकजी की सुन्दर पुत्री बनी हुई हैं –––

मिथिला अजिर विहर भरि चाऊ । देखहु प्रेमा भक्ति प्रभाऊ ॥
घर घर बाजहिं नगर बधावा । सोहिल गान सकल दिशि छावा ॥

–––तथा श्रीमिथिलापुरी में श्रीजनकजी महाराज के आँगन में अत्यानन्दित होकर विहार कर रही हैं, प्रेमाभक्ति के प्रभाव को तो देखिये। उस समय श्री जनक पुरी के प्रत्येक घर में बधावा बज रहा है तथा सोहिल गीत सम्पूर्ण दिशाओं में गूँज रहे हैं।

पुरवासिन कर मोद महाना । शारद शेष न सकहिं बखाना ॥
जनक द्वार बहु बाजन बाजे । तोप तुपक रव दस दिशि गाजे ॥

श्रीमिथिलापुर निवासियों के हृदय में जो का महान आनन्द हो रहा है उसका बखान श्रीसरस्वतीजी व श्रीशेषजी भी नहीं कर सकते। श्रीजनकजी महाराज के दरवाजे पर बहुत प्रकार के बाजे बज रहे हैं, तोप तथा तुपकों के धमाके दसों दिशाओं में गूँज रहे हैं।

करि सन्मान गुरुहिं नृप आनी । श्राध नन्दि मुख कियो विधानी ॥
विधिवत जात कर्म सब कीन्हा । विप्रन दान विविध विधि दीन्हा ॥

श्री मिथिलेश जी महाराज ने गुरुदेव श्रीयाज्ञबल्क्य जी को बुला, उनका सम्मान कर विधिवत नाँन्दी मुख श्राद्ध किया तथा सभी जन्म संस्कार विधि विधान से सम्पन्न करवा कर ब्राह्मणों को विभिन्न प्रकार से दान दिया।

स्वर्ण धेनु मणि वसन सुहाये । हय गय रथ अरु चमर सुभाये ॥
अन्न भूमि घर दासी दासा । लहे सबहिं सब निज निज आसा ॥

उस समय स्वर्ण, गौ, मणि, वस्त्र, घोड़े, हाथी, रथ, चँवर, अनाज, भूमि, भवन, दासी और दास आदि सहज ही सुन्दर वस्तुएँ सभी ने अपनी इच्छा के अनुरूप प्राप्त की।

दो०—कोष भवन खुलवाय नृप, सबहिं लुटावत दान ।
धरणि परे मणि गण लसत, जनु नभ नखत लखान ॥१३७॥

श्रीमहाराज जनकजी अपना कोषागार खुलवाकर सभी लोगों को दान लुटा रहे हैं, वहाँ भूमि पर विखरे पड़े हुए मणियों के समूह ऐसे सुशोभित हो रहे हैं जैसे आकाश में नक्षत्र दिखाई पड़ते हैं।

पुरजन सकल अवर परिवारा । सबहिं लुटावत निज धन सारा ॥
सेठ महाजन भूपति आये । परम प्रेम बहु द्रव्य लुटाये ॥

सभी नगर निवासी तथा परिवार के लोग अपना सम्पूर्ण धन लुटाये दे रहे हैं। बहुत से सेठ, महाजन तथा राजागण आ आकर परम प्रेम पूर्वक असीमित द्रव्य लुटा रहे हैं।

जनक सुवन मन महा उछाहू । देत स्व सरवस सबहिं उमाहू ॥
मिथिला विविध भाँति सजवाई । तोरन ध्वज पताक फहराई ॥

जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधिजी के मन में महान आनन्द छाया हुआ है वे उत्साहपूर्वक सभी को अपना सर्वस्व दिये जा रहे हैं। उन्होंने मिथिलापुरी को विभिन्न प्रकार से सजवाया है जिसमें तोरण, ध्वजा तथा पताका आदि फहरा रहे हैं।

इतर सुगन्धित वस्तु अनेका । छिड़के गलिन उदार विवेका ॥
भाँति भाँति के पुष्प मनोहर । बीथिन पूरे वरषि वरषि कर ॥

इत्र तथा अनेक सुगन्धित द्रव्य गलियों में विवेकपूर्ण उदारता के साथ छिड़काये गये हैं तथा विभिन्न प्रकार के मनोहारी पुष्प वरष वरष कर मार्गो को आपूरित कर दिया गया है।

नर अरु नारि मगन सब होहीं। नाचहिं गावहिं प्रेम समोहीं॥
चोवा चन्दन अतर अरगजा। दधि अबीर केशर मृग मदजा॥

वहाँ के सभी पुरुष व स्त्री मग्न होकर प्रेम में समाये हुए नाच–गा रहे हैं और चोवा (विविध सुगन्धित पदार्थो का लेप), चन्दन, इत्र, अरगजा, दधि, अबीर, केशर तथा कस्तूरी आदि वस्तुएँ––

दो०–लै लै छिड़कहिं प्रेम वश, इक इक ऊपर लोग।
जो आनन्द मिथिला पुरहिं, जन्म मैथिली योग॥१३८॥क॥

–––ले ले कर प्रेम विवश हो सभी एक दूसरे के ऊपर छिड़क रहे हैं। मिथिलेश नन्दिनी श्री सीताजी के जन्म के समय श्रीमिथिलापुरी में जो आनन्द हो रहा है–––

सो न सकै कहि शेष श्रुति, अवर कहा मति वान।
देखे सुने सो धन्य अति, पामर कहा बखान॥ख॥

–––उसे श्रीशेषजी व श्रुतियाँ भी बखान नहीं कर सकतीं फिर अन्य कौन बुद्धिमान है जो उसका वर्णन कर सके? हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि उस आनन्द को तो जिसने देखा व सुना है वही धन्यातिधन्य हैं, इस छली जीव से उसका बखान कैसे हो सकता है? अर्थात् मैं समग्रतया उसका वर्णन नहीं कर सकता।

पंच शब्द धुनि चहुँ दिशि गूँजी। होत महा मंगल मन पूजी॥
चहुँ दिशि आवत नारिन यूथा। सिन्धु जाहिं जिमि नदी बरूथा॥

चारों दिशाओं में पंचध्वनि गुंजरित हो रही है, श्री सिया जू की प्राप्ति रूपी सभी की मनोकामना पूर्ण हो जाने पर महान मंगल हो रहे हैं तथा चारों दिशाओं से नारियों के समूह राज महल को उसी प्रकार आ रहे हैं जैसे समुद्र की ओर नदियों का समूह आता है।

बहु रति मद सब मर्दन हारी। वसन विभूषण विविध सम्हारी॥
मणिगण थार सोह वर पानी। कनक कलश सिर लिये सुहानी॥

असीमित रति के अभिमान का मर्दन करने वाली वे सभी नारियाँ विविध प्रकार के वस्त्राभूषण धारण किये सुन्दर हाथों में मणियों के थाल तथा शिर में सोने के कलश लिये सुशोभित हो रही हैं।

गावत सोहिल सरस सुहागिनि। राज भवन रस रंग सुपागिनि॥
करहिं आरती जनक लली की। रूप राशि उर मोद थली की॥

सुन्दर रस से परिपूर्ण सोहिल गीत गाती हुई सुहागिनी स्त्रियाँ राजमहल के उत्सवीय आनन्द में पगी हुई रूप की राशि तथा हृदय की आनन्द स्थली जनक लली श्री सीताजी की आरती उतार रही हैं।

करि निवछावर होहिं सुखारी। चरण परैं सब बलि बलि नारी॥
दै अशीष लखि होहिं अनन्दा। मनहुँ कुमुदनी पूरण चन्दा॥

वे सभी स्त्रियाँ बहुमूल्य मणिगण न्योछावर कर सुखी होती हैं तथा श्री सिया जू के चरणों में

प्रणाम कर बलिहारी जाती हैं। पुनः उन्हें आशीष दे उनका दर्शन कर उसी प्रकार आनन्दित होती हैं मानों कुमुदनी पूर्ण चन्द्र को देख रही हो।

दो०— मातु सुनयना भाग की, करहिं प्रशंसा भूरि ।
सोऽपि सबहिं सनमानहीं, बचन सुधा रस पूरि ॥१३९॥

वे सभी अम्बा श्रीसुनयनाजी के भाग्य की बारम्बार प्रशंसा करती हैं तथा श्रीसुनयनाजी भी उन सबको अमृतमय वचनों द्वारा सभी प्रकार से सम्मानित कर रही हैं।

रमा गौरि शचि गिरा सुहाई । प्राकृत नारि रूप अपनाई ॥
गयीं सीय ढिग दरशन आसा । सुखी भयीं जिमि जल लहि प्यासा ॥

श्रीलक्ष्मीजी, श्रीपार्वतीजी, श्रीशचीजी और श्रीसरस्वतीजी आदि सुन्दर देवियाँ सामान्य लौकिक स्त्रियों का रूप धारण कर श्रीसीताजी के दर्शन की कामना से उनके समीप गयीं तथा उसी प्रकार सुखी हुई जैसे कोई अत्यन्त प्यासा जल पाकर सुखी होता है।

नृत्य नृत्य सब सोहिल गाई । करी लली की सेव सुहाई ॥
स्तव मंगल पाठ सुकीन्हीं । करि करि दरश शुभ्र सुख लीन्हीं ॥

उन सभी ने नृत्य करते हुए सोहिल गा–गा कर श्रीजनक लली जू की सुन्दर सेवा की तथा मांगलिक स्तोत्रों का सुन्दर पाठ किया और श्री जनक लली जू का दर्शन प्राप्त कर निर्मल सुख प्राप्त किया।

मातु सुनयना अति प्रिय जानी । भाव भगति युत बहु सनमानी ॥
औरहुँ देवि किन्नरी नाना । गन्धर्वी अहि पुत्रि सुजाना ॥

अम्बा श्री सुनयनाजी ने उन्हें अत्यन्त प्रिय समझकर भाव भक्ति पूर्वक बहुत सम्मान दिया। जन्मोत्सव के समय अनेक कला निष्णात देवियाँ, किन्नरियाँ, गन्धर्वियाँ तथा नाग कन्यायें–––

जनक लाड़िली सेवा हेतू । नृत्य गान करि गयीं निकेतू ॥
विधि हरि हर सह औरहु देवा । विविध वेष आये हित सेवा ॥

–––जनक लाड़िली श्री सियाजी की सेवा के लिए आयीं तथा नृत्य–गान कर अपने अपने भवनों को चली गयीं। श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी, श्रीशंकरजी सहित अन्य देवता भी विभिन्न प्रकार की वेषभूषा धारण कर उनकी सेवा के लिए आये–––

किन्नर नाग पुरुष गन्धर्वा । सुर नर मुनि जेते दिशि सर्वा ॥
नृत्य गान जैकार सुकीने । वेद मन्त्र युत परम प्रवीने ॥
पुर अरु व्योम मचेव मनभावा । अकथनीय सुख सरस सुहावा ॥

तथा सभी दिशाओं के किन्नर, नाग, गन्धर्व, देवता, मनुष्य और मुनि आदि जितने भी में जीव थे उन सभी परम कला प्रवीणों ने नाच गाकर, वेद मन्त्रों सहित सुन्दर जयकार की। इस प्रकार मिथिलापुरी की भूमि व आकाश सर्वत्र मनचाहा, अकथनीय रस परिपूर्ण तथा सुन्दर आनन्द मचा हुआ था।

दो०– मागध बन्दी सूतगन, विरदहिं कहत बखानि ।
नटी विदूषक भाट गन, सजहिं स्वाँग सुखदानि ॥१४०॥

मागध, बन्दी व सूत आदि उनके सुन्दर विरद का बखान कर रहे थे तथा नट, विदूषक और भाट आदि सुन्दर सुख प्रदायक परिहासपूर्ण खेल तमासे कर रहे थे।

बरषहिं सुमन छनहि छन माला । देव बजावहिं वाद्य विशाला ॥
इक रस भूमि अकाश दिखाई । आनन्द सिन्धु अकथ उमड़ाई ॥

देवता प्रत्येक क्षण पुष्प व पुष्प मालाएँ वरषाते हुए महान वाद्य बजा रहे थे। उस समय आनन्द से ओत–प्रोत भूमि व आकाश एक रस दिखाई पड़ रहा था और अकथनीय आनन्द का सागर उमड़ा रहा था।

सुर नर मुनि सब आपा भूले । फिरहि मगन मन पुर सुख मूले ॥
सूर्य व्योम मधि करि रथ थीरा । जन्म महोत्सव लखेउ सुधीरा ॥

देवता, मनुष्य तथा मुनि आदि सभी जन अपना अस्तित्व भुलाये हुए श्री मिथिलापुर में मन मगन हो सुख पूर्वक विचरण कर रहे थे। सूर्यदेव भी आकाश के मध्य अपने रथ को रोक कर सुन्दर धैर्य पूर्वक श्रीसीताजी का जन्मोत्सव देख रहे थे।

ताते दिन बहु भयो महाना । मर्म न कोउ प्रेमवश जाना ॥
सुनु हनुमान कहौं सत तोही । महत महा महिमा सिय सोही ॥

इसलिए वह दिन बहुत ही बड़ा हो गया परन्तु प्रेम विवश होने से किसी ने यह रहस्य नहीं जाना। श्री लक्ष्मण कुमारजी ने कहा– हे हनुमान जी! सुनिये, मैं आपसे सत्य, सत्य कहता हूँ कि श्री सीता जी महा महिमा सम्पन्ना हैं।

जनक लली महिमा महताई । जानत राम सकैं नहिं गाई ॥
जन्म महोत्सव केर विधाना । महिमा आगे हीन दिखाना ॥

श्रीजनक लली जानकीजी की महानतम महिमा को एकमात्र श्रीरामजी महराज ही जानते हैं परन्तु वे भी उसका बखान नहीं कर सकते। उनके जन्म महोत्सव का आयोजन उनकी महानता के आगे लघु ही प्रतीत हो रहा था।

दो०– तदपि रसिक सन्तन सुखद, जो परमारथ चीन्ह ।
रहहिं सदा लीला मगन, फल कर फल गुनि लीन्ह ॥१४१॥

फिर भी वह रसिको व सन्तों को, जिन्होंने परमार्थ पद को समझकर सम्पूर्ण साधनों के फल के भी फल श्रीराम चरित्र को ग्रहण कर लिया है तथा सदैव भगवल्लीला में मग्न रहते हैं, सुख प्रदान करने वाला है।

उत्सव देखि त्रिलोक निवासी । चले भवन धनि भाग सुभाषी ॥
जागत बीत गयी सब रजनी । जनु सुख मूल मनोहर रमनी ॥

तीनों लोकों (सुर,नर,नाग) के सभी निवासी जन्म महोत्सव का दर्शन कर तथा अपने भाग्य की सराहना करते हुए अपने अपने भवन को चले गये। इस प्रकार जगते जगते ही सम्पूर्ण रात व्यतीत हो गयी जैसे कोई सुखों की मूल–मन को हरण करने वाली स्त्री का साथ हो।

दम्पति भूलि गये ऐश्वर्या। पुत्रि नेह रँगि रसे मधुर्या॥
सीय कृपा सब वैभव भूलो। माधुर रस सुख उपज अतूलो॥

दम्पति श्रीजनकजी महाराज व श्री सुनयना जी उस समय श्री सियाजू के ऐश्वर्य को भूल कर पुत्रि प्रेम में अनुरक्त हो माधुर्य रस में रंगे हुए थे। श्रीसियाजी की कृपा से उन्हें उनका सम्पूर्ण वैभव भूल गया था और उनके हृदय में माधुर्य रस का अतुलनीय सुख उत्पन्न हो गया था।

छठी भयी पुनि बरहौं आवा। उत्सव भयो महा रस छावा॥
सतानन्द उपरोहित आई। शास्त्र रीति सब कृत्य कराई॥

इस प्रकार श्रीसीताजी की छठी हुई और बारहों उत्सव आया, जिसमें अतिशय आनन्दपूर्वक महान उत्सव हुआ और पुरोहित श्रीशतानन्दजी ने आकर शास्त्र विधि से मांगलिक क्रियाओं को सम्पादित कराया।

यागबलिक संकेतहिं पाया। नामकरण हिय गुनि पुनि गाया॥
सुनु विदेह तव सुता सुनामा। कहउँ यथा मति मन अभिरामा॥

आचार्य श्री याज्ञबल्क्य जी के निर्देश को पाकर श्रीशतानन्द जी ने अपने हृदय में विचार कर श्रीसीताजी का नामकरण संस्कार किया। उन्होने कहा– हे श्री विदेहराज जी! सुनिये, मैं आपकी पुत्री का सुशोभन नाम अपनी बुद्धि व मन के अनुसार बखान कर रहा हूँ।

उपजि रेखहल पुत्रि पुनीता। ताते याहि कहैं सब सीता॥
जन्म कर्म अति दिव्य अनन्ता। नाम चरित तस कहैं सुसन्ता॥

आपकी परम पवित्र पुत्री हल के अग्र भाग की रेखा (सीर) से प्रगट हुई हैं इसलिये सभी इन्हें श्री सीता जी कहेंगे। जिस प्रकार इनके जन्म व कर्म दिव्य तथा अनन्त हैं उसी प्रकार इनके नाम व चरित्र भी अनन्त हैं ऐसा सन्तजन बखान करते हैं।

दो०–धारक पोषक सबहिं की, रक्षक दायक नंद।
सकल सुलक्षण खानि यह, जानहु निमिकुल चन्द॥१४२॥

ये सभी की धारक, सभी का पोषण व संरक्षण करने वाली तथा समस्त लोक को आनन्द प्रदायिनी हैं। आप सम्पूर्ण शुभ लक्षणों की खानि पुत्री श्री सीता जी को निमिकुल में चन्द्रमा के समान ही समझिये।

नामकरण करि गुरु गृह गयऊ। दम्पति मुदित महा मन भयऊ॥
प्रेम मगन मन दिन अरु राती। जाहिं पलक सम सुख सरसाती॥

श्रीसीताजी का नामकरण कर श्रीगुरुदेव अपने भवन को चले गये और दम्पति (श्रीजनकजी महाराज व श्रीसुनयनाजी) मन में महान आनन्दित हुए। प्रेम में मग्न होने के कारण उनके दिन और

रात सुख सरसाते हुए पलक झपकने के समान बीतने लगे।

कबहुँ पालने कबहुँ उछंगा । मातु मल्हावहिं प्रीति अभंगा ॥
लोरी गावति अति दुलरावति । कबहुँ पौढ़ि पय पान करावति ॥

कभी पालने में तो कभी गोद में लेकर अम्बा श्रीसुनयनाजी अविचल प्रेम के कारण श्रीसीताजी को पुचकारती हैं। वे कभी लोरी गाती हुई उनका अत्यन्त दुलार करती हैं तो कभी लेटकर दुग्धपान कराती हैं।

कबहुँ धुनधुना वाद्य मनोहर । सरस मन्द नादति सिय सुखकर ॥
किलकति हँसति सिया सुखदानी । उछरति हृदय अमित हरषानी ॥

कभी श्री सीता जी मनहरण, सुखकारी, रसयुक्त घुनघुना वाद्य मन्द मन्द बजाती है तो कभी सुख प्रदायिनी वे किलकारियाँ ले लेकर हँसती है और हृदय में असीमित हर्ष भरकर उछलने लगती हैं।

लक्ष्मीनिधि जब आय दुलारैं । सीय महा मन मोद प्रसारैं ॥
विहँसति लखति एकटक लाई । मनहुँ सुखद निज वस्तुहिं पाई ॥

भइया श्री लक्ष्मीनिधिजी आकर जब उनका दुलार करते हैं तब श्री सीताजी अपने मन में महान आनन्द प्राप्त करती हैं वे हँसती हुई टकटकी लगाकर उनकी ओर इस प्रकार देखती हैं मानो वे सुख प्रदायिका कोई अपनी वस्तु प्राप्त कर ली हों।

दो०—यहि विधि बीते मास षट, प्राशन अन्न सुकीन्ह ।
पूजि पितर गुरु अतिथि सुर, दान विविध विधि दीन्ह ॥ १४३॥क॥

इस प्रकार छः महीने व्यतीत हो गये तब अन्न प्राशन उत्सव किया गया तथा सभी पितरों, गुरुदेव, अतिथि व देवताओं का पूजन कर विभिन्न प्रकार से दान दिया गया।

सीय जनम के समय ते , षट महिना पर्यन्त ।
राज सदन परिवार मँह , पुत्रि बहुत प्रगटन्त ॥ख॥

विदेह राज नन्दिनी श्री सीता जी के जन्म के उपरान्त छः महीनें तक श्री मिथिला राज परिवार में बहुत सी बालिकाओं का प्राकट्य हुआ।

सीय विमात्र सुकान्ति सुनामा । जन्मि उर्मिला पुत्रि ललामा ॥
युग पुत्री कुशकेतु सुनारी । जन्मीं रूप गुणन उजियारी ॥

श्री सीता जी की विमाता जिनका सुन्दर नाम श्री सुकान्ति जी था, ने सुन्दर पुत्री श्री उर्मिला जी को जन्म दिया। पुनः श्री विदेहराज जी के अनुज श्री कुशध्वजजी की पत्नी ने परम गुणमयी और रूप सम्पन्ना दो पुत्रियों को जन्म दिया———

नाम माण्डवी अरु श्रुतिकीरति । सिय सेवा हित तन मन धी रति ॥
चन्द्रकला प्रिय चन्द्रभानु घर । शीला चारु जनमि अरिजित वर ॥

उनका नाम श्री माण्डवी जी व श्री श्रुतिकीर्ति जी था जो श्रीसीताजी की सेवा में तन, मन, बुद्धि व प्रेम लगाये रहती थीं। श्रीचन्द्रकला जी श्री चन्द्रभानु जी के यहाँ व श्री चारुशीला जी श्री अरिजित जी के यहाँ जन्म धारण कीं।

हेमा क्षेमा मदन मञ्जरी। वरारोह सुभगा सुखाकरी॥
गंधा-पद्म और सुलक्ष्मना। सुखमा चित्रा विपुल जनमना॥

पुनः श्री हेमा जी, श्री क्षेमा जी, श्री मदनमञ्जरी जी, श्री वरारोहा जी, श्री सुभगा जी, श्री पद्मगन्धा जी, श्री सुलक्ष्मणा जी, श्री सुषमा जी व श्री चित्रा जी आदि कई सुखों की राशि बालिकाओं का जन्म हुआ।

यहि विधि पुत्रि राज परिवारा। भयीं प्रगट मन मोद अपारा॥
घर घर आनन्द अमित सुहावा। दिन प्रति बाजत मोद बधावा॥

इस प्रकार राज्य परिवार में अनेक पुत्रियाँ प्रगट हुई व सब के मन में असीम आनन्द छा गया। उस समय प्रत्येक घर में असीमित सुहावना आनन्द छाया हुआ था तथा प्रत्येक दिन आनन्द बधाईयाँ बज रही थीं।

दो०-आदि शक्ति जहँ प्रगट भइ, शक्तिन अंश सुसाथ।
मिथिला सुख नहिं कहि सकैं, कवि शारद अहिनाथ॥१४४॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि परमाद्या शक्ति श्रीसीताजी ने अपनी अंश कलादि शक्तियों के साथ जहाँ अवतार धारण किया है उस श्रीमिथिलापुरी के सुख को आदि कवि श्री बाल्मीकि जी, श्री सरस्वती जी तथा श्री शेष जी भी नहीं कह सकते हैं।

घुटरुन चलत सीय मन मोही। नील झीन झिंगुली तन सोही॥
लघु भूषण अँग अंग सुराजे। किलकनि बोलनि तोतरि भ्राजे॥

श्री सीता जी घुटनों के बल चलती हुई सभी के मन को मोहित कर रही हैं तथा उनके शरीर में सुन्दर नीली पारदर्शी झिंगुली सुशोभित हो रही है। उनके सभी अंगों में छोटे-छोटे आभूषण सजे हुए हैं तथा वे किलकती हुई तोतली वाणी से युक्त सुशोभित हो रही हैं।

विहरति अजिर जननि सुखदाई। सो सुख मोपै कह्यो न जाई॥
कबहुँ मातु पितु लै लै कनिया। सीय दुलारहिं बहु सुख गनिया॥

श्री सिया जू जब मणिमय आँगन में अम्बा श्रीसुनयनाजी को सुख प्रदान करती हुई विहार करती है उस समय श्री अम्बा जी को जो सुख होता है उसका वर्णन मुझसे नहीं किया जाता। कभी-कभी श्री अम्बाजी व श्रीदाऊजी गोद में ले लेकर श्रीसीताजी का दुलार करते हुये अत्यधिक सुख मानते हैं।

भ्रात गोद महँ जब सिय आवै। करतहुँ रुदन महा सुख पावै॥
चन्द्रकला सम नित सिय बाढ़ें। लखि लखि प्रेम सबन हिय माढ़ें॥

श्री सिया जू जब अपने भइया श्रीलक्ष्मीनिधिजी की गोदी में आती हैं उस समय वे रुदन करते होने पर भी अत्यन्त सुख प्राप्त करती हैं। श्रीसीताजी नित्य चन्द्रमा की कलाओं की भाँति वृद्धि को प्राप्त हो रही थीं तथा उन्हें देख–देखकर सभी का हृदय प्रेम से आवृत्त हो जाता हैं।

कहुँ शिव हरि कहुँ ब्रह्मा आवत । सनकानिक कहुँ नारद गावत ॥
निज निज मन करि विविध बहाना । सीय दरश पावत सुख नाना ॥

कभी श्री शंकर जी, कभी श्री विष्णु जी, कभी श्री ब्रह्मा जी, कभी सनकादिक कुमार तो कभी हरि कीर्तन करते हुए देवर्षि श्री नारद जी आदि अपने अपने मन में विभिन्न प्रकार के बहाने बनाकर आते तथा श्रीसीताजी के दर्शन कर अनेक सुख प्राप्त करते थे।

दो०–कबहुँ रमा कहुँ शारदा, कबहुँ सती हरषात ।
विविध वेष धरि दरश करि, सेवहिं सुख सरसात ॥१४५॥

कभी श्री लक्ष्मी जी, कभी श्री सरस्वती जी व कभी श्री पार्वती जी आदि देवियाँ हर्षित हो विभिन्न वेष धारण कर श्रीसीताजी के दर्शन करतीं तथा सुख में फूली हुई सेवा करती रहती थी।

कछुक समय बीते हनुमाना । बड़ी भयीं सिय सब सुख दाना ॥
एक बार जेहिं कृपा विलोचनि । देखइ सीय शोक भय मोचनि ॥

सौमित्रेय श्री लखन लाल जी ने कहा–हे श्री हनुमान जी! इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर सभी को सुख प्रदान करने वाली श्रीसीताजी बड़ी हुईं। समस्त दुखों व डर को मिटाने वाली श्रीसीताजी जिसकी ओर एक बार भी अपनी कृपा दृष्टि से देख लेती थीं–––

गनै कृतार्थ आपु कहँ सोई । अति अनन्द मन रहै समोई ॥
प्रात होत नित सखिगण आवैं । सीय दरश करि सुठि सुख पावैं ॥

–––वह अपने आपको कृतार्थ समझने लगता तथा उसका मन अत्यानन्द में डूब जाता था। प्रातःकाल होते ही नित्य प्रति उनकी सखियाँ आ जाती थीं तथा श्री सीता जी का दर्शनकर सुन्दर सुख प्राप्त करती थीं।

खेलति सीय सखिन के संगा । विविध भाँति क्रीड़न रति रंगा ॥
खेलन योग अनूपम साजा । जोरि धरी प्रिय भ्रात सुराजा ॥

श्री सिया जू प्रेम में रँगी हुई अपनी सखियों के साथ विभिन्न प्रकार के खेल, खेलती रहती थीं। उनके खेलने योग्य अनुपमेय क्रीड़ा सामग्री उनके भ्राता श्रीलक्ष्मीनिधिजी व पिता श्री मान् जनक जी महाराज जुटा कर रख दिये थे।

कबहुँ भ्रात लै सिय कहँ गोदी । विचरहिं गृह वाटिका सुमोदी ॥
कबहुँक क्रीड़न गेंद बतावैं । कबहुँक भ्रमरा फेंकि दिखावैं ॥

कभी भइया श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी अनुजा श्री सीता जी को अंक में लेकर आनन्दपूर्वक सुन्दर गृह वाटिका में विहार करते तो कभी गेंद खेलने की कला बताते और कभी लट्टू (भ्रमरा) फेंक (घुमाकर) दिखाते थे।

दो०—मातु पिता की गोद कहुँ, कबहुँ भ्रात की गोद ।
बैठि सिया सुख सानहीं, भोजन करैं सुमोद ॥१४६॥

श्री सीता जी कभी अपने माता–पिता की गोद में तो कभी अपने भइया श्रीलक्ष्मीनिधिजी की गोद में बैठकर सुख में सनी हुई आनन्दपूर्वक भोजन किया करती थीं।

संसकार बालापन जेते । विधिवत भये सिया के तेते ॥
जानि समय श्री तिरहुत राजा । गुरुहिं बुलायो विद्या काजा ॥

बाल्यावस्था के जितने भी संस्कार होते हैं वे सभी श्रीसियाजू के विधिपूर्वक सम्पन्न हुए। तब तिरहुत नरेश श्रीजनकजी महाराज ने समय जानकर अपनी पुत्री श्री सीता जी के विद्याध्ययन के हेतु गुरुदेव श्रीयाज्ञबल्क्य जी को बुलवाया।

करि वर विनय पूजि गुरुदेवा । करि गणनायक गौरि सुसेवा ॥
विद्यारंभ करायहु सीतहिं । उत्सव भयो सुखद श्रुति गीतहिं ॥

श्री गुरुदेव जी की बहुत प्रकार से श्रेष्ठ विनय पूर्वक पूजा कर, श्रीगणेशजी व श्रीपार्वतीजी की सुन्दर सेवा कर श्रीमहाराज ने श्रीसीताजी का विद्याध्ययन आरम्भ करवाया तथा एक सुख प्रदायक, श्रुतियों में वर्णित उत्सव मनाया गया।

सन्यासिन बनि सरसुति आई । करिबे शिक्षा मिस सेवकाई ॥
शास्त्र वेद स्मृती पुराना । अल्पकाल जान्यो सब ज्ञाना ॥

उस समय श्रीसरस्वतीजी सन्यासिनी का वेष बना शिक्षा देने के बहाने सेवा करते हेतु आयीं। श्रीसीताजी ने थोड़े समय में ही शास्त्रों, वेदों, स्मृतियों–पुराणों आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

जासु अंश शुचि विद्या माया । उपजे ज्ञान रूप श्रुति गाया ॥
सो सिय पढ़ति करन प्रिय लीला । जानहिं यह परमारथ शीला ॥

जिनके अंश से ही ज्ञानमयी पवित्र माया 'विद्या' की उत्पत्ति होती है ऐसा श्रुतियों ने गायन किया है वे श्रीसीताजी प्रिय लीला करने के हेतु ही अध्ययन कर रही हैं इस बात को परमार्थ वेत्ता जानते हैं।

दो०—रूप शील शम दम दया, क्षमा कृपा गुण ज्ञान ।
रस माधुर सिय हिय बसे, श्री विराग तप दान ॥१४७॥

रूप, शील, शम, दम, दया, क्षमा, कृपा, गुण, ज्ञान, रस, मधुरता, श्री, वैराग्य, तप तथा दान आदि सभी गुण श्रीसीताजी के हृदय में अपना निवास बनाये हुए थे।

लखन कहा सुनु वायु कुमारा । भ्रात भगिनि की प्रीति अपारा ॥
कहि न जाय समुझत हिय बनई । अकथ अलौकिक दिवि रस सनई ॥

श्री लक्ष्मण कुमार ने कहा– हे पवन नन्दन हनुमानजी! सुनिये, उन दोनों भाई–बहन (श्रीलक्ष्मीनिधिजी व सियाजू) की असीम प्रीति वर्णन नहीं की जा सकती, वह तो केवल हृदय में अनुभव करते ही बनती है। वह प्रीति अकथनीय, अलौकिक, दिव्य, एवं रस से सनी हुई है।

एक समय सिय सखिन समेता । गयीं मुदित मन भ्रात निकेता ॥
लक्ष्मीनिधि करि प्यार अपारी । माल गन्ध दिय भूषण सारी ॥

एक समय अपनी सखियों सहित श्रीसीताजी प्रसन्न मना हो अपने श्री भइया के भवन गयीं। वहाँ श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने असीमित प्यार कर सभी को माला व इत्र देकर वस्त्राभूषण प्रदान किया।

निज कर लै कछु भोग पवायो । पान देय पुनि गोद बिठायो ॥
बोलीं सिय कछु कथा सुनावै । जासों भ्रात मोद उर छावै ॥

पुनः अपने हाथों से उन्हें कुछ भोग पवाकर ताम्बूल दिये और अपनी गोद में बिठा लिये। तब श्रीसीताजी ने कहा– हे भइयाजी! आप कुछ कथा सुनायें जिससे हमारे हृदय में आनन्द की प्राप्ति हो।

यथा भयो रुकिमणी विवाहा । सकल सुनायो कुँवर उछाहा ॥
रुक्म कृष्ण के मारन हेतू । यथा दुष्ट बाँधेउ बहु नेतू ॥

तब कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने आनन्द पूर्वक, श्री रुक्मिणी जी का विवाह जिस प्रकार हुआ था वह सम्पूर्ण चरित्र कह सुनाया। श्रीकृष्णजी को मारने के लिए जिस प्रकार रुक्म ने बहुत से उपाय किये थे।–––

वैधव देन भ्रात गुनि आयो । तापै रुक्मिणि प्राण बचायो ॥
कथा श्रवण करि जनक कुमारी । भ्रात भगिनि धनि प्रीति विचारी ॥
बाढ़यो हृदय भ्रात प्रति प्रेमा । निश्चय करी करन बहु क्षेमा ॥

–––अपने भाई रुक्म को, वैधव्य देने आया हुआ जान कर भी श्रीरुक्मिणीजी ने उसके प्राणों की रक्षा की, यह कथा सुन तथा उनकी भ्रात–भगिनि प्रीति को धन्यातिधन्य समझकर श्रीजनक नन्दिनी जानकी जी के हृदय में अपने भइया के प्रति अत्यधिक प्रेम बढ़ गया तब उन्होंने उनकी बहुत प्रकार से रक्षा करने का निश्चय कर लिया।

दो०–मैं अरु मोरा स्वत्व जो, सरवस भइया तोर ।
कथा श्रवण फल जानियहिं, कही प्रीति रस बोर ॥१४८॥

तदुपरान्त प्रेम व रस में भीगी मृदु वाणी से उन्होंने कहा– हे भइयाजी! मुझ सहित जो कुछ मेरा है वह सभी कुछ आपका है, उसे आप कथा सुनने का फल समझ लीजिये।

सुनि लक्ष्मीनिधि हिय हरषाने । जात दिवश निशि पल अनुमाने ॥
पंच वर्ष की जनक दुलारी । भ्रात ब्याह तब भयो सुखारी ॥

श्रीसीताजी के वचनों को सुनकर श्रीलक्ष्मीनिधिजी हृदय में हर्षित हुए। इस प्रकार उनके दिन व रात पल के समान व्यतीत होने लगे। जब श्रीजनक दुलारी सियाजू पाँच वर्ष की थीं उस समय

उनके भइयाजी का सुखकर विवाह सम्पन्न हुआ था।

सिद्धि करति सिय कर मन भावा । प्रेम अपार हृदय महँ छावा ॥
भाभी ननँद प्रीति अति लोनी । भई अहै नहि नहिं कहु होनी ॥

उनकी भाभी श्रीसिद्धि कुँवरिजी श्रीसीताजी के मन की इच्छा अनुरूप कार्य करती थीं तथा उनके हृदय में उनके प्रति असीम प्रेम समाया रहता था। उन ननद–भौजाई की अत्यन्त सुन्दर पारस्परिक प्रीति जैसी है वह भूत, भविष्य व वर्तमान तीनों कालों में अन्यत्र नही देखी गयी।

सिद्धि कुँवरि अरु कुँवर सुजाना । सेव सियहिं नित प्राण प्रमाना ॥
एक दिवश हिय कुँवर विचारा । सीय सदा मम प्राण सहारा ॥

परम सुजान श्रीलक्ष्मीनिधिजी व श्रीसिद्धि कुँवरिजी श्रीसीताजी की नित्य, अपने प्राणों के समान सेवा करते थे। एक दिन कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने अपने हृदय में विचार किया कि श्रीसीताजी तो मेरे प्राणों की आधार हैं।

सम्भव दूजे जन्म न पावा । मन आनत अति विरह सतावा ॥
सिद्धि कुँवरि सिय प्रीति सुनाई । कीन्ह प्रबोध तासु गुन गाई ॥
स्वस्थ होय पुनि गे सिय गेहा । मिले सखिन सहँ सियहिं सनेहा ॥

सम्भव हो कि श्री सीता जी दूसरे जन्म में मुझे न प्राप्त हों, ऐसा मन में विचार करते ही कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी को श्री सीता जी का वियोग अत्यधिक दुखी करने लगा तब श्रीसिद्धिकुँवरिजी ने उनके प्रति श्रीसीताजी की अतिशय प्रीति का वर्णन किया व उनका गुण गान कर कुँवर को धैर्य प्रदान किया। पुनः वे स्वस्थ होकर श्रीसीता–सदन गये वहाँ सखियों सहित प्रेम पूर्वक श्रीसीताजी से मिले–––

दो०–अंक धारि सिय सोह सुठि, बैठि सिंहासन लाल ।
छत्र चमर सिर राजहीं, चहुँ दिशि बैठी बाल ॥१४९॥

तथा कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी श्रीसीताजी को गोद में लेकर सुन्दर सिंहासन में बैठ सुशोभित होने लगे उस समय उनके शिर पर छत्र व चँवर चलने लगा तथा उनके चारो दिशाओं में अन्य बहनें बैठ गयी।

करि दुलार बहु भेंटी दीना । खेलन योग वस्तु सुख भीना ॥
भ्रात गोद सिय अति सुख मानत । सो जानय यह भाव जो आनत ॥

कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने श्रीसीताजी को उस समय प्यार दुलार कर सुखपूर्वक क्रीड़ा के योग्य बहुत सी अनुपमेय सामग्री भेंट दी। श्रीसीताजी अपने भइया को गोद में अत्यधिक सुख मानती थी, इस बात को वही जान सकता है जिसने अपने हृदय में यह भाव धारण किया है।

बोली सिया सुनहु मम भइया । स्वप्न आज को कहौं अमइया ॥
बैठि रही सखियन के बीचा । चन्द्रकलादि प्रेम तव सींचा ॥

श्रीसीताजी ने कहा– हे मेरे भइयाजी! सुनिये, मैं आपसे अपना आज का सुन्दर स्वप्न बतला रही हूँ। मैं अपनी चन्द्रकलादि सखियों के बीच आपके प्रेम में विभोर हुई बैठी थी।

मन महँ लहर एक उमड़ानी । राउर प्रेम विरह रस सानी ॥
जनम जनम मोहि मिलैं सुभ्राता । को अस भगिनि प्रेम में माता ॥

उस समय मेरे मन में आपके प्रेम व वियोग रस से सनी हुई एक लहर सी उमड़ पड़ी कि मुझे मेरे भइया प्रत्येक जन्म में प्राप्त हों, क्योंकि आपके समान भगिनि प्रेम में मतवाला कौन हो सकता है।

नहि मिलिहैं तो करत विचारा । बेसुध भई वियोग सहारा ॥
तहाँ लखी मैं दृश्य सुहावन । सुनहिं भ्रात मोरे मन भावन ॥

यदि आप अन्य जन्मों में मुझे नहीं मिलेंगे तो..., ऐसा विचार करते ही भावी वियोग के कारण मैं स्मृति शून्य हो गयी तब मैंने वहाँ एक सुहावने दृश्य का दर्शन किया, हे मेरे प्रिय व श्रेष्ठ भइया जी! उसे आप सुनें।

दो०–परम प्रकाशी धाम इक, तेहिं बिच भवन अनूप ।
रत्न सिंहासन बैठि दिवि, परम पुरुष सुख रूप ॥१५०॥

एक अत्यन्त प्रकाशित धाम है उस धाम के मध्य अनुपमेय भवन में रत्न सिंहासन पर एक दिव्य, सुख स्वरूप परम पुरुष विराजमान है।

छोड़त श्वास अमित ब्रह्मण्डा । नायक सह प्रगटत बिन खण्डा ॥
श्वास लेत सबही लय होई । उदर माँझ कछु जान न कोई ॥

उस परम पुरुष के श्वास छोड़ते ही नायकों सहित अनेक ब्रह्माण्ड अखण्ड रूप से प्रगट होते हैं तथा उसके श्वास ग्रहण करते ही सभी उसके पेट में विलीन हो जाते हैं परन्तु उसके इस रहस्य को कोई भी नहीं जान पाता है।

मैं अरु आप लखैं यह लीला । इदमित्थ्यं यह चरित रंगीला ॥
देखि आप कहँ पुरुष सुहावा । उठेउ मुदित मन हृदय लगावा ॥

मैं और आप इस परम सत्य, विलक्षण चरित्र को देख रहे हैं, यह चरित्र इतना ही नही है, आपको देखकर वह सुन्दर पुरुष उठ खड़ा हुआ व आनन्दित मन से हृदय लगा लिया।

तेहीं विधि मोहिं मिलेउ महाना । छायो निज हिय प्रेम प्रमाना ॥
अति सप्रेम आसन बैठारी । मोदित भयो महा सुखकारी ॥

उसी प्रकार वह दिव्य पुरुष अपने हृदय में प्रेम भर कर मुझसे मिला और अत्यधिक प्रेमपूर्वक आसन में बिठाकर महान आनन्दित हुआ।

मोहि कहेउ यह नित तव भ्राता । छिनहुँ वियोग न होंहि लखाता ॥
तुम कहँ कहेव सत्य तव भगिनी । जानहुँ सदा न कबहुँ अलगिनी ॥

उसने मुझसे कहा– ये आपके नित्य भइया हैं, इनसे आपका एक क्षण का भी वियोग नहीं होगा, मुझे ऐसा समझ आ रहा है। पुनः उसने आपसे कहा कि ये आपकी सत्य व शाश्वत बहन हैं, इन्हें तुम सदैव अपने से कभी विलग न होने वाली समझिये।

दो०–सुनत प्रेमवश हिय भयो, शंक विरह भै दूरि ।
जाग परी तावत सुखद, रहेउ दृश्य मन पूरि ॥१५१॥

उस परम पुरुष के ऐसे वचन सुनते ही हृदय प्रेम के वशीभूत हो गया तथा मेरी वियोग जनित आशंका दूर हो गयी। वह सुखदायी दृश्य मेरे जागृत होने के बाद भी मन में पूर्ण रूपेण छाया रहा।

ताते मम मन बोध अपारा । भयउ सत्य पर पुरुष अधारा ॥
तीनहु काल आप मम भ्राता । सत्य सत्य पुनि सत्य दिखाता ॥

इसलिए मेरे मन में उस परम पुरुष की वार्ता के आधार पर सत्य व असीम बोध हो गया कि आप तीनों कालों में मेरे भइया हैं। यह बात मुझे त्रिसत्य दिखलाई पड़ने लगी।

भविष माहिं मिलिहैं नहि भइया । संशय मोहि बहुत दुख दइया ॥
सुनतहिं कुँवर सिया मुख बैना । भे अधीर कछु बोल सकैना ॥

भविष्य में मुझे आप भइया के रूप में न मिलेंगे इस सन्देह ने मुझे बहुत दुख प्रदान किया था। श्रीसीताजी के मुख से इस प्रकार के वचनों को सुनकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त अधीर हो गये व कुछ भी न बोल सके।

सात्विक भाव प्रेम के जागे । भये अचेत प्रेम रस पागे ॥
सीय परश उपचारहिं तेरे । तन सुधि लहि पुनि सीतहिं हेरे ॥

उनके हृदय में प्रेम के सात्विक भाव उत्पन्न हो गये तथा वे प्रेम–रस में डूबे हुए चेतनाहीन हो गये। पुनः श्रीसियाजू के स्पर्श व उपचार के द्वारा शरीर स्मृति प्राप्तकर श्रीसीताजी को निहारने लगे–––

बोले वचन सनेह जनाई । सुनहु सिया मम प्राण प्रदाई ॥
मोरे हृदय उठी यह बाता । बिना सीय सिगरो दुख दाता ॥

तथा स्नेह प्रगट करते हुए वचन बोले– हे मेरी प्राण–प्रदायिनी श्रीसियाजू! सुनिये, मेरे हृदय में यह बात उठी थी कि श्रीसीताजी के बिना सभी कुछ दुख प्रदान करने वाला ही है।

दो०–तासु उतर प्रिय पायऊँ, मम अनुजा विख्यात ।
पूर्ण कृपा हिय हेरि नित, हर्षण हर्षित गात ॥१५२॥

अतः हे मेरी परम प्रख्यात अनुजे श्रीसियाजू! मैंने उसी का प्रिय उत्तर प्राप्त किया है। अब अपने हृदय में नित्य आपकी पूर्ण कृपा का अवलोकन करते हुए मैं हर्ष प्रपूरित शरीर वाला बना रहूँगा।

भ्रात भगिनि कर प्रेम अलौकिक । को वरणै बिन प्रेम के मौखिक ॥
लागेव कार्तिक मास सुहावा । भ्रात द्वितीया पर्व सुआवा ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उन दोनों (भाई–बहनों) की अलौकिक प्रीति का वर्णन बिना प्रेम हुये मौखिक रूप से कौन कर सकता है। इस प्रकार सुन्दर कार्तिक मास लग गया व भ्रातृ (भैया–दूज) द्वितीया का सुन्दर त्योहार आया।

जनक लड़ैती भ्रात जिवाँवन । कीन्ह निमन्त्रण नव नव भावन ॥
बहु उत्सव कर कीन्ह सम्हारा । विविध प्रकार बनी जेवनारा ॥

तब श्री जनक लाड़िली सियाजू ने नवीन–नवीन भावों में भरकर अपने भ्रातृ गणों को जिवाँने (पवाने) के लिये आमंत्रित किया और बहुत प्रकार की उत्सवीय सार सम्हाल कर विभिन्न प्रकार के व्यंजन तैयार करवाये।

सखन सहित प्रिय भ्रात बिठाई । परस लली निज हाथ जिवाँई ॥
झुन झुन बाजति पग पयजनिया । परसब चलब कहब नहिं बनिया ॥

श्री सीता जी नें सखाओं सहित अपने प्रिय भ्राताओं को बिठाकर अपने हाथों से परोसकर पवाया। उस समय उनके श्रीचरणों की पैजनी रुनझुन–रुनझुन बज रही थी तथा उनका परोसना व चलना तो ऐसा था कि वाणी का विषय ही नहीं बन रहा।

जनक सुवन निज भाग सराही ।पावत अन्नसुधा सुख माहीं ॥
अचमन करि पुनि बैठे आसन । दिय बीरी सिय गंध सुभाषन ॥

श्रीजनक नन्दन लक्ष्मीनिधिजी अपने भाग्य की सराहना करते हुए सुख में सने अमृतान्न पा रहे हैं। पुनः आचमन कर वे आसन में बैठ गये तब श्रीसियाजू ने मधुर बातें करते हुए ताम्बूल व इत्र प्रदान किया।

दो०–निज कर गूँथी माल प्रिय, भइयहिं दिय पहिराय ।
टीका करि किय आरती, सखि सह मंगल गाय ॥१५३॥

पुनः अपने हाथों से गूँथी हुई माला अपने प्रिय भइयाजी को पहना, टीका लगाकर सखियों के सहित मंगलानुशासन कर उन्होंने आरती उतारी।

करत प्रणाम लिये उर लाई । जनक सुवन शुचि गोद बिठाई ॥
बोले सरस मनोहर वानी । आपुन भाग अमित अनुमानी ॥

श्रीसियाजू के प्रणाम करते ही श्रीजनक कुमार लक्ष्मीनिधिजी ने उन्हें हृदय से लगा लिया तथा अपनी पवित्र गोद में बिठाकर रसपूर्ण मनहरण वाणी से अपनी असीमित भाग्य का अनुमान करते हुए बोले–

सुनहु सिया मम भाग सुहावन । तुम जो भगिनि मिली जग पावन ॥
ललचत निरखि भाग बड़ि देवा । दुरलभ जिनहिं भगिनि अस सेवा ॥

हे सियाजू! सुनें मेरी तो अत्यन्त ही सुन्दर सौभाग्य है जो संसार को पवित्र करने वाली आप जैसी बहन मुझे प्राप्त हुई हैं। मेरे इस सौभाग्य को देखकर देवता भी ललचाते रहते हैं, जिन्हें बहनों की इस प्रकार की सेवा अप्राप्त है।

सकल भगिनि बिच मैं जब राजत । विधि हरि हर लखि मन महँ लाजत ॥
आज तिथी बड़ि भाग सुदायिनि । जो तुम मोकहँ परसि पवायिनि ॥

जब मैं अपनी सभी बहनों के बीच बैठता हूँ उस समय मुझे देखकर श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी आदि देवता भी मन में लजाने लगते हैं फिर आज की तिथि तो बड़े भाग्य की प्रदायिनि है जो अपने मुझे परोसकर पवाया है।

भगिनि अहै जिनके घर नाहीं । मन्द भाग तिन शास्त्र बताहीं ॥
मोहि मिली तिरदेव सुधेवित । उमा रमा ब्रह्माणी सेवित ॥

जिनके घर बहन नहीं होती उन्हें शास्त्र हत–भागी बतलाते हैं फिर मुझे तो त्रिदेवों के द्वारा ध्यान की जाने वाली तथा श्री पार्वतीजी, श्री लक्ष्मीजी व श्री सरस्वतीजी के द्वारा सेवित बहन प्राप्त हुई है।

धिग धिग भगिनि पाय अस प्यारी । प्रेम कियेउ नहिं तत्व बिचारी ॥
इतना कहत हृदय भरि गयऊ । प्रेम मगन मुख शब्द न अयऊ ॥

ऐसी महिमामयी व प्रिय बहिन पाकर भी मैंने उनके तत्व का विचार कर प्रेम नहीं किया, मुझे धिक्कार है, धिक्कार है। ऐसा कहते हुए उनका हृदय भर गया तथा प्रेम मग्न हो जाने से मुख में शब्द न आ सके।

दो०–धीरज धरि कछु काल महँ, बोलेउ पुनि निमिलाल ।
आपन ओर निहारि ललि, नित्यहिं करहु सम्हाल ॥१५४॥

पुनः निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधिजी कुछ समय में धैर्य धारण कर बोले– हे लली जू! आप अपनी ओर देखते हुए नित्य मेरी सार सम्हाल करती रहियेगा।

आज भगिनि कहँ दै कछु भ्राता । होहिं कृतारथ पुलकित गाता ॥
हौहूँ ढूँढ़ेव भवन मझारा । भीतर बाहर बारम्बारा ॥

आज के दिन भाई अपनी बहनों को कुछ उपहार (भेंट) देकर कृतार्थ व पुलकित होते हैं अतः मैं भी उसी हेतु अपने सदन व हृदय में भीतर–बाहर पुनः पुनः कोई वस्तु खोजने लगा––

जो पायो सो सबहिं तिहारो । आपन वस्तु न नेक निहारो ॥
अहं भाव करि ममता लाई । लली वस्तु आपन कर गाई ॥

––परन्तु वहाँ मैंने जो कुछ भी पाया, वह सभी तो तुम्हारा ही था, अपनी कोई वस्तु मुझे नहीं दिखाई पड़ी। तथापि हे लाड़िली जू! अहं के भाव से भावित हो, उसमें ममत्व बनाकर, आपकी वस्तु को अपनी समझ–––

देन हेतु लायउँ मैं लाला । हौं कृतघ्न अरु आतम घाला ॥
तुमहिं योग मोरे कछु नाहीं । देवहुँ लली काह तुम काहीं ॥

–––आपको देने के लिए, मैं ले आया हूँ। हे लली सिया जू! मैं अत्यन्त ही कृतघ्न और

आत्मघाती हूँ और मेरे पास आपके योग्य कुछ भी नही है अतः मैं आपको क्या दूँ।

अस कहि कुँवर सुनहु हनुमाना । स्वत्व सहित निज देह भुलाना ॥
परम अकिंचन भाव प्रजागा । साधन हीन दैन्य मन पागा ॥
आत्म भाव जब चित्त विला नेव । लगी समाधि सून सब जानेव ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे हनुमानजी! सुनिये, ऐसा कह कर कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी स्वयं सहित अपने शरीर की स्मृति भूल गये। उनके हृदय में परम अकिंचनत्व भाव जागृत हो गया, साधनहीनता तथा दैन्य भाव ने मन को डुबा लिया और जैसे ही उनका यह आत्म भाव चित्त में विलीन हुआ उनकी समाधि लग गयी व उन्होंने सभी कुछ शून्य समझ लिया।

दो०–जनक लली कर फेरि करि, भैयहिं स्वस्थ कराय ।
मधुर वचन अमृत सने, बोली हिय हर्षाय ॥१५५॥

जनक लली श्री जानकी जू ने तब अपने भैया कुँअर श्री लक्ष्मी निधि जी के शरीर में हाथ फिराकर उन्हें स्वस्थ कराया। पुनः वे हर्षित हृदय हो अमृत से सने मधुर वचन बोलीं–

तुम सन भइया काह न पायो। करि विचार सच देहु बतायो ॥
निज शरीर सह अन्तःकरणा । सौंपि आत्महिं प्रेम प्रवरणा ॥

हे श्री भइया जी! आप स्वयं विचार कर सत्य सत्य बतला दें कि– मैंने आपसे क्या नहीं प्राप्त किया? आपने तो प्रेमाधिक्य के कारण अपने अन्तःकरणों (मन, चित्त, बुद्धि व अहंकार) सहित शरीर व आत्मा तक को मुझे सौंप दिया है।

त्यागि स्वसुख मम सुख सुख मानेव । मम इच्छहिं निज इच्छा जानेव ॥
भाभी सिद्धि कुँवरि जग एकी। रूप शील गुण प्रेम विवेकी ॥

अपना सुख त्याग आपने मेरे सुख को ही सुख समझा है एवं मेरी इच्छा को ही आप सदा अपनी इच्छा जानते हैं। पुनः मेरी भाभी श्री सिद्धि कुँवरिजी जो रूप, शील, गुण, प्रेम और ज्ञान में इस संसार में अद्वितीय हैं।–––

दासी सम मोहि सेव निरन्तर । बढ़ति प्रीति दिन दिन अभ्यन्तर ॥
स्वारथ अरु परमारथ सारा । मोर प्रीति नित भ्रात विचारा ॥

–––वे मेरी सेवा निरन्तर सेविका के समान करती रहती हैं, उनके हृदय में मेरी प्रीति दिन प्रतिदिन वृद्धि को ही प्राप्त होती रहती है। हे श्री भइयाजी! आपने तो मेरी प्रीति को ही स्वार्थ व परमार्थ की सार–भूता समझा है।

चार फलन कर फल मम प्रेमा। गुनेउ आप तजि योगहिं क्षेमा ॥
राउर चेष्टित मम हित रहहीं । देह गेह कछु नेह न चहहीं ॥

आपने अपने योग व क्षेम तक की चिन्ता को छोड़कर मेरे प्रेम का ही, चारों फलों (अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष) का फल समझ लिया है तथा आप सदैव मेरे हित के लिये ही सभी चेष्टायें करते हैं व

मेरे प्रेम के अतिरिक्त आपको शरीर व भवन आदि कुछ भी नही चाहिये अर्थात् मेरे अतिरिक्त आपको अन्य किसी में किंचित भी प्रेम नही है।

दो०–काह देन बाकी रहेव, कहहु सत्य सत बात ।
मोरे ढिग जो कछु अहै, सो सब तुम्हरो भ्रात ॥१५६॥

इसलिए हे श्री भइयाजी! आप ही सत्य बतलायें कि– मुझे देने के लिये अब क्या शेष रह गया, मेरे पास जो कुछ भी है वह सभी आपका ही है।

आपु सरिस प्रिय भइया पाई । भाग्याधिक मैं भई सुहाई ॥
उमा रमा ब्रह्माणी ललचत । अस भइया अपने नहिं चरचत ॥

आपके समान प्रिय भाई पाकर मैं सुन्दर सौभाग्याधिका हो गयी हूँ क्योंकि श्री पार्वतीजी, श्री लक्ष्मीजी व श्री सरस्वतीजी भी आपको भाई के रूप में पाने के लिए लालायित बनी रहती हैं तथा आपस में बातें करती हैं कि ऐसे भइया तो हमारे भी नहीं हैं।

धारि अंक जब वाटिक घूमत । वरषहिं सुमन देव झरि झूमत ॥
लहिहौं तदपि नेग मैं आजू । हँसि बोली सिय सखी समाजू ॥

आप जब मुझे गोद में लेकर वाटिका में विहार करते हैं उस समय देवता फूलों की झड़ी लगा वर्षा करते हुए आनन्द से झूमने लगते हैं, फिर भी मैं आज अपना नेंग अवश्य लूँगी, अपने सखि समाज में हँसती हुई किशोरी जी ने भइया जू से कहा,

मन भावत निज नेगहिं लीजै । लाड़िलि स्व कहि मोंहि सुख दीजै ॥
सुनतहिं सिया भ्रात मृदु बैना । बोली सखि सह बात सचैना ॥

भगिनि प्रेम में पगे हुये कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे लाड़िली जू! आप अपना मनचाहा नेग ले लीजिए तथा मुझे अपना कह कर सुख प्रदान कीजिये। अपने भैया के कोमल वचनों को सुनकर सखियों सहित श्रीसीताजी आनन्दपूर्वक बोलीं––

बने रहें मोरे बड़ भइया । लिए गोद मोहिं प्यारि अथैया ॥
भरि वात्सल्य प्यार प्रिय पाऊँ । यही चाह मन नाहिं अधाऊँ ॥

––मेरे बड़े भइया ऐसे ही बने रहें तथा मुझे गोद में लिये हुए अत्यन्त प्यार करते रहें। मेरी यही कामना है कि– मैं उनका वात्सल्य भरा प्रिय प्यार पाती हुई कभी भी मन में किंचित तृप्ति न प्राप्त करूँ।

दो०–अमृत सुख अरु मोक्ष सुख, लोक विकुण्ठहुँ जान ।
सार्व भौम सुख नहि गिनहुँ, भइया प्यार समान ॥१५७॥

क्योंकि मैं अपने भैया के प्यार के समान अमृत–सुख, मोक्ष–सुख, वैकुण्ठ–धाम का सुख तथा सार्वभौमिक सुख आदि को भी नहीं समझती।

सुनि बोले धनि कुँवरि लाड़िली । मम सुख हेतु सुनेग काढ़िली ॥
भगिनी अहै दया कर रूपा । शास्त्र बीच सत बात निरूपा ॥

अपनी अनुजा के ऐसे वचनों को सुनकर कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी बोले– हे लाड़िली जू! आप धन्य हैं। आपने मेरे सुख के लिए कैसा सुन्दर नेग निकाल लिया। बहन तो दया का स्वरूप है यह सत्य बात शास्त्रों में ठीक ही वर्णन की गयी है।

सबहिं भाँति मोहि दीन्ह सहारा । बहिता बहतहिं भइसि अधारा ॥
भगिनि भ्रात लखि प्रेम सराहैं । वरषहिं सुमन सुदेव उमाहैं ॥

हे मेरी अनुजे सीते! आपने मुझे सभी प्रकार से सहारा प्रदान किया है तथा दुख धार में बहते हुए अपने इस भाई की आधार बनी हैं। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि दोनों भाई–बहन (कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिया जू) के प्रेम को देखकर देवता उल्लास में भर पुष्पों की वर्षा करते हुए उनके प्रेम की प्रशंसा करने लगे।

प्रीति सने नित भगिनी भाई । यहि विधि लीला करैं सुहाई ॥
श्रावण पूनो जब शुभ आवै । रक्षा करन लली लव लावै ॥

इस प्रकार भाई व बहन द्धकुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिया जू) दोनों प्रेम में सने हुए नित्य सुन्दर लीलायें करते रहते थे। जब भी श्रावण की शुभ पूर्णिमा (रक्षा बन्धन की तिथि) आती तब श्री जनक लली जू अपने भातृगणों के हाथों में रक्षा–सूत्र बाँधने के लिये समुत्सुक हो उठती हैं–––

रक्षा बन्धन भ्रात हाथ में । बाँधे सीता सखिन साथ में ॥
बहु विधि रक्षा करैं सुहाई । नेग पाय सुख सिन्धु समाई ॥

तथा वे अपने सखियों के साथ भाइयों के हाथों में रक्षा सूत्र बाँधती हैं। पुनः उनकी सभी प्रकार से योग–क्षेम करने का संकल्प करती हैं और अपना नेग पाकर सुख के सागर में समा जाती थीं।

दो०– कबहुँ कुँवर लै गोद सिय, भवन ऊपरे जाय ।
अनुपम नगर दिखावहीं, लखि लखि सो सुख पाय ॥१५८॥

कभी कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी अपनी अनुजा श्री सीता जी को अंक में लेकर राजमहल के ऊपरी भाग में जाते हैं तथा श्री मिथिलापुरी का अनुपमेय दर्शन उन्हें कराते हैं जिसे देख–देख कर श्री सिया जू अतिशय सुख प्राप्त करती हैं।

शोभ चतुर्दिक शिव कर आलय । होहिं सुखी सिय लखि शशि भालय ॥
कबहुँ देहिं सिय पानि पतंगा । हर्षहिं कुँवर उड़ावन रंगा ॥

वहाँ पुरी के चारो दिशाओं में श्री शिव जी के मंदिर सुशोभित हैं, उनमें भगवान चन्द्रमौलि श्री शिव जी को देखकर श्री सिया जू अत्यन्त सुखी होती हैं। कभी कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सिया जू के हाथों में पतंग देते हैं और उनकी पतंग उड़ाने की कला देख–देख कर हर्ष से भर जाते हैं।

झूलन महँ सिय बैठि झुलावैं । कबहुँ बिविध विधि खेल खिलावैं ॥
कबहुँ सियहिं दै वेणु सुवीणा । सुनैं सुनावहिं कुँवर प्रवीना ॥

कभी वे झूलन में बैठकर श्रीसिया जी को झुलाते हैं तो कभी विभिन्न प्रकार के खेल खिलाते हैं। कभी श्री सियाजू को बाँसुरी व वीणा देकर परम दक्ष कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुन्दर वादन सुनते

व सुनाते हैं।

भगिनि भ्रात कहुँ मातु सुगोदी । राजत होत महा मन मोदी ॥
मातु पिता लखि दोउन प्रीती । होहिं प्रसन्न राग रिस जीती ॥

कभी दोनों भाई–बहन (कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सीता जी) अपनी अम्बा श्रीसुनयना जी की गोद में बैठ जाते हैं तथा मन में महान आनन्दित होते हैं। उनके माता–पिता (श्रीसुनयना जी व श्री जनक जी महाराज) दोनों की पारस्परिक प्रीति देख, आसक्ति व क्रोध से विमुक्त हुये परम प्रसन्न होते हैं।

कबहुँ कुँवर सिय भवन सिधारैं। कबहुँ लाड़िली आप पधारैं ॥
सीतहिं निरखि कुँवर सुख मानत । बिना भ्रात सिय सबहिं अजानत ॥

कभी कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्रीसीता–सदन चले जाते तो कभी श्री लाड़िली सिया जू ही उनके भवन आ पधारती हैं इस प्रकार कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी श्री सिया जू को देखकर अत्यन्त सुख मानते हैं तथा श्री सीता जी भी अपने भइया जी के अतिरिक्त अन्य किसी को जानती तक नहीं।

दो०–भोजन भगिनी सिया बिनु, कबहुँ कुँवर नहिं खात ।
अनुपम वस्तु सुहावनी, लावहिं नित्य प्रभात ॥१५९॥क॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी अनुजा श्री सिया जी के बिना कभी भी भोजन नहीं करते तथा उन्हें नित्य ही प्रातः अनुपमेय सुन्दर वस्तुएँ लाकर प्रदान करते हैं।

भ्रात भगिनि शुचि प्रेम को, वरणव श्री हनुमान ।
नखत गिनब अँगुरीन सो, लेहु हिये महँ जान ॥ख॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे हनुमान जी! आप अपने हृदय में ऐसा समझ लीजिए कि– दोनों भाई–बहन (कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सीता जी) के पवित्र प्रेम का वर्णन करना तो आकाश के नक्षत्रों को हाथ से गिनने के समान असम्भव कार्य है।

मातु पिता अरु भ्रात सनेही । नयन पलक सम राखत तेही ॥
प्राण प्राण अरु जीवन जीवन । सियहिं गिनत सब भाव अतीवन ॥

श्री सीता जी को उनके प्रिय माता–पिता व भइया उसी प्रकार रखते थे जैसे पलकें नेत्रों को रखती हैं। वे सभी अत्यन्त भावपूर्वक श्रीसीताजी को प्राणों की प्राण व जीवों की जीवनी शक्ति समझते थे।

नित नव प्रीति सीय सो पागति । यथा सुबेलि शाख लहि लागति ॥
सीय सुयश सुनि राजकुमारी । सखी बनी बहु कृपा अधारी ॥

श्रीसीताजी भी उनकी (माता–पिता व भइया) नित्य नवीन प्रीति में उसी प्रकार पगी रहती हैं जिस प्रकार कि सुन्दर लता किसी सहायिका शाखा को पाकर आनन्दित रहती है। श्रीसीताजी की सुन्दर कीर्ति को सुन सुनकर बहुत सी राजकुमारियाँ उनकी कृपा को प्राप्त कर उनकी सखियाँ बन

गयीं।

विप्र छोड़ि तिरवर्ण सुबाला । अमित बनीं दासी सुख पाला ॥
जन्मी आय जबहिं सो सीता । भाग बढ़ै नित नृपति पुनीता ॥

ब्राह्मण कन्याओं के अतिरिक्त, तीनो वर्णो (क्षत्रीय, वैश्य व सूद्र) की असीमित बालिकायें सुख में समायी हुई श्री सिया जू की दासियाँ बन गयी थीं। जब से त्रिभुवन वन्द्या श्रीसीताजी ने आकर श्री जनकपुरी में जन्म धारण किया तब से महाराज श्री जनक जी की पवित्र भाग्य नित्य वृद्धि को प्राप्त हो रही थी।–––

कीर्ति सम्पदा मान प्रकाशा । ज्ञान विराग नेह श्री भाषा ॥
सब प्रकार बल बाढ़त जाई । दिनहिं दून निशि चौगुन चाई ॥
अहनिशि हर्षित प्रजा सुखारी । करतल भये पदारथ चारी ॥

–––उनकी कीर्ति, सम्पत्ति, सम्मान, आलोक, ज्ञान, वैराग्ञ, प्रेम, श्री तथा वैदूष्य आदि तथा सभी प्रकार की सामर्थ्य दिन–दुगना व रात–चौगुनी गति से आनन्द पूर्वक वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे। उनकी प्रजा अहर्निशि हर्ष से भरी व सुखी रहती थी, उन्हें चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष) करतल गत (सहज ही सुलभ) हो गये थे।

दो०–जाकी कृपा कटाक्ष हित, मरत त्रिदेवहुँ प्यास ।
अमित त्रिदेवी अंश सो, प्रगटहिं सेव हुलास ॥१६०॥क॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– जिनकी कृपा–दृष्टि रूपी वारि धारा के लिए त्रिदेव भी अतीव तृषान्वित रहते हैं तथा जिनके अंश से असीमित त्रिदेवियाँ प्रगट होकर उत्साह में भरी हुई सेवा करती रहती हैं।–––

सो सीता प्रिय मैथिलन, दरश परश दे आप ।
पुत्रि भगिनि बनि विहर नित, देखहु भजन प्रताप ॥ख॥

–––भजन के प्रभाव को तो देखिये कि वे श्रीसीताजी ही अपने प्रिय मैथिल–जनों को अपना दर्शन व स्पर्श प्रदान करती रहती हैं तथा पुत्री व बहन बन कर सदैव विहार करती हैं।

अस कृपालु सिय जानि जिव, कस न भजहिं तजि पाप ।
हर्षण तू मोरे कहे, सेवसि अजहुँ अनाप ॥ग॥

हे जगज्जीवो! श्री सीता जी को ऐसी कृपामयी जानकर, सभी पापों को त्याग उनका भजन क्यों नहीं करते। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि ऐ मेरे मन! मेरे इतना समझाने पर भी तू व्यर्थ (संसार) की सेवा क्यों करता है।

बाल चरित सिय सुखद सुनावा । आगिल कथा सुनहिं मन लावा ॥
बालहिं ते सिय मातु समीपा । मुनि मुख सुनहिं कथा रघुदीपा ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे आंजनेय! इस प्रकार मैंने जनक दुलारी श्री सीता जी का

सुख प्रदायक बाल चरित्र सुना दिया, अब आप आगे की कथा मन लगाकर श्रवण करें। बाल्यावस्था से ही श्रीसीताजी अपनी अम्बाजी के समीप मुनियों के मुख से रघुकुल के प्रकाशक श्रीरामजी महाराज की कथा सुनती रहती थीं।

यदपि राम सिय अलग न होहीं । भानु प्रभा जस नाहिं विछोही ॥
तद्यपि पृथक हेतु प्रिय लीला । सुन सुख लहहिं भक्त रस शीला ॥

यद्यपि श्री राम जी व श्री सीता जी एक दूसरे से पृथक नहीं है तथा सूर्य व किरणों के समान उनका कभी भी वियोग नहीं होता तथापि अपनी प्रिय लीला रस स्वादन के लिए, जिसे सुनकर भक्त व रसिक जन सुख प्राप्त करते हैं, वे अलग दिखाई पड़ते हैं।

जस जस चरित करन दोउ चाहैं । तस तस भाव दिखाव उमाहैं ॥
जनक लाड़िली हृदय मँझारा । आत्म रमण प्रभु रमेव उदारा ॥

वे दोनों जैसा चरित्र करना चाहते हैं, उल्लासपूर्वक उसी प्रकार के भाव दिखाते रहते हैं। श्री सीता जी के हृदय में तो आत्मा में रमण करने वाले, उदार प्रभु श्रीरामजी महाराज पूर्व से ही रमे हुए थे।

वारेहिं ते रघुपति पद राँचो । मन अनन्य ढर प्रेम सुसाँचों ॥
एक बार नारद मुनि आये । चरित पुनीत राम के गाये ॥
मातु सुनयना पूजन करि कै । सियहिं परायो चरणन परि कै ॥

श्री सीताजी का मन बाल्यकाल से ही श्रीरामजी महाराज के चरणों की सुन्दर व अनन्य प्रीति के साँचे में ढला हुआ था। एक बार देवर्षि श्री नारद जी राज–महल पधारे और श्री राम जी महाराज के पवित्र चरित्रों का गायन किया। अम्बा श्री सुनयना जी ने उनका विधिवत पूजन कर उन्हें प्रणाम किया तथा अपनी पुत्री श्री सीता जी को उनके चरणों में दण्डवत करवाया।

दो०–शीश नाय सिय मातु पुनि, विनय कीन्ह कर जोरि ।
लली हस्त फल रेख प्रभु, कहहु सुनन रुचि मोरि ॥१६१॥

पुनः श्रीसीताजी की अम्बा श्री सुनयना जी ने श्री नारद जी को सिर झुका प्रणाम किया तथा हाथ जोड़ विनय पूर्वक बोलीं– हे नाथ! आप हमारी श्री लली जू के हाथ की रेखाओं का फल बखान कीजिये, उन्हें श्रवण करने की मेरी अत्यधिक रुचि हो रही है।

नारद सिय महिमा अनुमानी । कीन्ह प्रणाम मनहिं सुखसानी ॥
सेवा जान हाथ लखि बोले । सकल सुलक्षण चिन्ह अमोले ॥

तब श्री नारद जी ने श्रीसीताजी की महान महिमा का अनुमान कर सुख मग्न हो उन्हें मानसिक प्रणाम किया व उनकी सेवा समझ हाथ देखते हुए बोले– इनके कर कमलों में तो सम्पूर्ण सुलक्षणों के अनमोल चिन्ह हैं।

जस वर मिलै सियहिं मनभावत । सुनहिं सुनयना रेख बतावत ॥
शासन करै सबहिं पर जोई । सद्गुण सदन स्वस्थ मन होई ॥

हे श्रीसुनयनाजी! इनकी हस्त रेखायें जैसा बता रही हैं तथा इन्हें जिस प्रकार का मनोभिलषित वर प्राप्त होगा, आप श्रवण करें। जो, अखिल ब्रह्माण्ड के चराचर सभी जीवों पर शासन करने वाला, सद्गुणों का आगार, स्वस्थ मन वाला,––––

पूरण काम एकरस वीरा। समर जितै नहिं मिलि रणधीरा॥
आत्म वसी धृतमान अनूपम्। ललित ललित लावण्य स्वरूपम्॥

–––पूर्ण काम, एक रस, महान वीर जिसे सभी बड़े–बड़े योद्धा मिलकर भी युद्ध में नहीं जीत नहीं सकते, आत्मा को वश में करने वाला, परम धैर्यवान, अनुपमेय, सुन्दरातिसुन्दर स्वरूप वाला,–––

नीति प्रीति परमारथ वेता। बुद्धिमान मृदु बोल सुचेता॥
अंग अंग शुभ उच्च सुखाकर। बाहु अजानु प्रताप दिवाकर॥

–––नीति, प्रीति व परमार्थ के रहस्य को जानने वाला, अतिशय बुद्धिमान, मृदु–भाषी, सदैव सजग, सुखों की राशि, शुभ व उच्च अंगों से युक्त, आजानु बाहु, सूर्य समान प्रतापी,–––

पीन सुवक्ष नयन अभिरामा। खंज कंज सम सोह ललामा॥
अमित मार मद मर्दन हारा। शोभा धाम नित्य सुख कारा॥
श्री यश ज्ञान विरति भण्डारा। वीर्य तेज बल योग अपारा॥

–––पुष्ट वक्षस्थल युक्त, कमल व खंजन पक्षी के समान सुन्दर नेत्रों से सुशोभित, असीमित कामदेवों के अभिमान का मर्दन करने वाला, शोभा का धाम, नित्य सुखी, श्रीद्धऐश्वर्य), कीर्ति, ज्ञान व वैराग्य का भण्डार, असीमित वीर्य, तेज, बल व योग से परिपूर्ण,–––

दो०–वर्ण सुच्चिकन जानि पुनि, माँसल सुभग अनूप।
अपने रूप उदारता, मोहइ पुंसन भूप॥१६२॥

––––सुन्दर चिक्कन वर्ण वाला, अनुपमेय, सुन्दर माँसल शरीर वाला, अपने रूपोदार्य से पुरुषों को भी मोहित करने में सक्षम, सबका स्वामी–––

सत्य–संध जित क्रोध शरण्या। शरणागत पालक ब्रह्मण्या॥
वेद धर्म कर्ता कारयिता। श्रुति रक्षक अरु स्व पर रखयिता॥

–––सदैव सत्य पर आरूढ़, जित–क्रोध, शरणागति के योग्य, शरणागत जनों का प्रतिपालक, ब्राह्मण प्रिय, वेद धर्म के कर्ता व कारयिता, श्रुतियों की रक्षा करने वाला, स्वयं व दूसरों के स्वरूप का रक्षक,–––

शशि सम सब कहँ नित प्रिय लागै। देखत ताप त्रिविध भय भागै॥
धैर्य हिंमाचल सिन्धु गँभीरा। विष्णु समान तेज बल वीरा॥

–––चन्द्रमा के समान सभी को नित्य प्रियकारी, अपने दर्शन से तीनों प्रकार के ताप व भय को दूर कर देने वाला, हिमालय के समान धैर्यवान, सागर के समान गम्भीर, विष्णु भगवान के समान

तेज, सामर्थ्य व वीरता से युक्त,———

भू सम क्षमा काल सम क्रोधा । वेद तत्व जनु स्वयं सुबोधा ॥
धनुर्वेद गन्धर्व सुवेदा । पूर्ण विशारद ज्ञान अभेदा ॥

———भूमि के समान क्षमाशील, काल के समान क्रोधवान, वेद तत्व के समान सुन्दर बोध–स्वरूप, धनुर्वेद व गान्धर्व वेद में अभेद ज्ञान वाला पूर्ण पारंगत,———

योग रूप योगीश सुयोगा । दायक साधु अदीन अरोगा ॥
एक अमल चित सहज समाधी । सत चित आनन्द भोग सुसाधी ॥

सुन्दर योग का योग स्वरूप स्वामी, दाता, साधु स्वभाव परिपूर्ण, दैन्य रहित, विकारहीन, अद्वितीय, सहज समाधि युक्त, निर्मल चित्तवाला, सच्चिदानन्दमय भोगों का उपभोग करने वाला, परम–साधक,———

त्याग कुबेर धर्म सत अपरा । सदा प्रसन्न रहै मन उजरा ॥
अमित यशस्वी परम दयाला । रहै दान रत तीनहु काला ॥

श्री कुबेरजी के समान त्यागी, परम धार्मिक, सत्यसन्ध व लौकिक विद्याओं से पूर्ण, सदैव प्रसन्न रहने वाला, उज्जवल मन , असीमित कीर्ति सम्पन्न, परम दयालु, तीनों कालों में दान निरत,

सर्व भूत हित रत मति धीरा । भूत आत्म जानहु शुचि थीरा ॥
सब सुख धाम श्याम मनहारी । मिलैं अजित वर सियहिं सदारी ॥

सभी जीवों के हित में नित्य निरत, धीर बुद्धि, सब की आत्मा, परम पवित्र व स्थिर, सम्पूर्ण सुखों का धाम, मनहरण, श्याम शरीर वाला तथा अजेय है वही आपकी पुत्री श्री सिया जी को नित्य वर रूप में प्राप्त होगा।

दो०–शाखा चन्द्र सुन्याय ते, तुमहिं जनावन हेत ।
उपलक्षण गुण मैं कहेउँ, लेहिं हिये निज चेत ॥१६३॥क॥

आपको ज्ञापित कराने लिए मैंने चन्द्र–शाखा न्याय से आपकी इन पुत्री को मिलने वाले वर के कुछ उपलक्षण गुणों का बखान किया है, आप अपने हृदय में इनकी महिमा का विचार कर लीजिये।

पूजित बन तिरलोक का, पर हित निरत कुमार ।
निश्चय सीतहिं वर मिलै, वचन न मृषा हमार ॥ख॥

तीनों लोकों से पूजित व सभी के आत्म कल्याण में सदा संलग्न राजकुमार ही निश्चय श्री सीता जी को वर रूप में प्राप्त होंगे, हमारे ये वचन असत्य नहीं हो सकते।

जो जो वर गुण कहा बखानी । दशरथ पुत्र माहिं सो रानी ॥
रामहिं वर जो देय विधाता । सिया भाग बढ़ जाय सुभाता ॥

हे श्री महारानी जी! मैंने वर के जो–जो गुण बताये हैं वे सभी अयोध्या नर नरेन्द्र चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज के पुत्र श्री रामजी महाराज में सन्निहित हैं अतः यदि विधाता श्रीरामजी महाराज को वर रूप में प्रदान करता है तो श्रीसीताजी का भाग्य और भी सुन्दर व बृद्धि को प्राप्त हो जायेगा।

औरहुँ एक कहहुँ मैं बाता । सुनहिं मातु जस मोहिं लखाता ॥
गिरिजा बाग मध्य जेहिं देखी । सिय मन रम करि प्रेम विशेषी ॥

हे अम्बा जी! जिस प्रकार मुझे समझ आ रहा है, मैं एक बात और कह रहा हूँ, आप सुनें! श्रीपार्वतीजी के बाग में जिसे देख–कर श्रीसीताजी का मन विशेष प्रेम परिपूर्ण हो अनुरक्त हो जायेगा।–––

सो वर मिलै विगत सन्देहा । धरहु वचन मम हिय शुचि गेहा ॥
अस कहि विधि लोकहिं मुनि गयऊ । आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ॥

–––निस्सन्देह इन्हें वे ही वर रूप में प्राप्त होंगे, आप मेरे इन वचनों को अपने पवित्र हृदय भवन में धारण कर लें। ऐसा कहकर देवर्षि श्री नारदजी श्री ब्रह्मलोक चले गये। हे हनुमान जी! अब आगे का चरित्र जिस प्रकार हुआ, उसे आप श्रवण करें।

नारद वचन सुरति करि सीता । रमति राम पद प्रेम पुनीता ॥
दिन प्रति विरह दशा हिय आवै । अन्तर दाह लखी नहिं जावै ॥

श्री नारद जी के वचनों का स्मरण करती हुई श्रीसीताजी श्रीरामजी महाराज के चरणों में पवित्र प्रेम पूर्वक अनुरक्त रहती थीं जिससे उनके हृदय में प्रत्येक दिन प्रभु वियोग की अवस्थायें प्रगट होने लगी थीं परन्तु उनके हृदय की जलन (विरह पीड़ा) किसी के समझ में नहीं आ रही थी।

दो०–सकुचि सिया मनहीं मनहिं, सुमिरत निशि दिन राम ।
कबहुँ लहैं एकान्त जब, प्रगट विरह हिय धाम ॥१६४॥

श्रीसीताजी संकोच के कारण मन ही मन में रात–दिन श्रीरामजी महाराज का स्मरण करती रहती थीं परन्तु जब कभी वे एकान्त प्राप्त करती तब उनका वियोग उनके हृदय से बाहर प्रगट हो जाता था।

सात्विक भाव चिन्ह दर्शावै । पिया विरह की बात रुबावै ॥
लाज दबावति जिय कर भावा । कोउ न जान जिय प्रेम प्रभावा ॥

उस समय उनके शरीर में प्रेम के सात्विक भावों के चिन्ह (अश्रु,पुलक,कम्प,स्वेद, स्तब्धता, विवर्णता, स्वर भंग व मूर्छा) दिखाई पड़ने लगते तथा प्रियतम रघुनन्दन के वियोग की बात उन्हें रुलाने लगती थी, तभी लज्जा उनके हृदय के भावों को दबा देती थी इसलिए कोई भी उनके हृदय के प्रेम प्रभाव को नहीं समझ पाता था।

एक दिवस सिय बैठि विवित्का । राम प्रेम मय रँगी सुरक्ता ॥
चन्द्रकला लै सखिन समाजा । गई तहाँ सिय दर्शन काजा ॥

एक दिन श्रीसीताजी एकान्त में श्रीरामजी महाराज के प्रेम रूपी सुन्दर रंग में रँगी हुई बैठी

थीं। तभी श्रीचन्द्रकलाजी अपनी सखियों का समाज लेकर वहाँ पर श्रीसीताजी के दर्शन करने के लिए गयीं———

सियहिं प्रणमि पुनि बैठि सकाशा। दशा देखि सब भई उदासा॥
बोली स्वामिनि छमब हमारी। अविनय यथा बाल महतारी॥

———तथा श्रीसीताजी को प्रणाम कर पुनः उनके समीप बैठ गयीं उस समय उनकी अवस्था को देखकर सभी सखियाँ उदास हो गयीं और बोलीं— हे स्वामिनी जू! आप हमारी धृष्टता को उसी प्रकार क्षमा करेंगी जिस प्रकार बालक को उसकी माता क्षमा करती हैं।

राउर दशा देखि हम बाला। सहजहिं होत कृशी तव पाला॥
येन केन विधि ढोवहिं देहा। केवल स्वामिनि सेव सनेहा॥

हे श्री स्वामिनी जू! आप की स्थिति देख–देख कर आप की पाली हुई हम सभी बालिकायें सहज ही क्षीण हो रही हैं व केवल आपकी सेवा–प्रेम के कारण ही अपना शरीर किसी प्रकार वहन कर रही हैं।

दो०—कारण कवन दयालुनी, रहैं अशान्त अधीर।
विरह चिन्ह सों लखि परैं, हमहिं बतावैं वीर॥१६५॥

हे दयामयी! क्या कारण है कि आप, अशान्त व व्याकुल रहती हैं? हमें तो ये चिन्ह किसी प्रिय–वियोग के लक्षण के समान समझ आते हैं, हमें बताने की आप कृपा कीजिये।

बोली सिय मन रहस छिपाई। मैं निरोग मन स्वस्थ सुहाई॥
सहज स्वभाव भयो अस मेरो। कारण मोहिं परै नहिं हेरो॥

सखियों की वाणी सुनकर श्री सीता जी अपने मन के रहस्य को छिपा कर बोलीं— मैं तो सदैव ही निरोग व स्वस्थ–मना हूँ, मेरा सहज स्वभाव ही ऐसा हो गया है, मुझे इसका कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता।

कबहुँ कबहुँ परमातम चिन्तन। करि विविक्त मन होत अकिंचन॥
निमिकुल सदा सुहावन रीती। नित परमारथ राखत प्रीती॥

यह अवश्य है कि— कभी–कभी एकान्त में परमात्मा का चिन्तन कर मन अकिंचनता का वरण कर लेता है। हे सखि! हमारे इस श्रीनिमिकुल की सदैव से यह सुन्दर रीति चली आयी है कि सभी लोग परमार्थ पद में नित्य प्रेम करते रहे हैं।———

वंश स्वभाव सोइ प्रिय ध्यावैं। राग रंग मन नेक न भावै॥
अवर हेतु नहिं सखी यथारथ। जनि सोचहु कछु लखि मम स्वारथ॥

———अतः निमिवंश के स्वभाव के अनुसार मेरा मन भी उसी प्रिय परमार्थ ब्रह्म का ध्यान करता है जिससे मेरे मन को संसारी राग व रंग किंचित भी अच्छे नहीं लगते। इसमें वास्तव में कोई दूसरा कारण नहीं है, आप लोग इसे मेरा स्वार्थ समझकर, अपने मन में कोई चिन्ता मत करें।

चन्द्रकला सुनि वचन जानकी । गूढ़ रहस रस भरे खान की ॥
सिया मनहिं लखि गयी महीनी । परम चतुर बहुकला प्रवीनी ॥

श्रीचन्द्रकलाजी श्रीजानकी जू के गूढ़ रहस्य रस से भरे हुए वचनों को सुनकर उनके मन की बात को समझ गयीं क्योंकि वे परम चतुरी, सूक्ष्म–दृष्टा तथा कई कलाओं में दक्ष थीं।

प्राण समान सीय प्रिय आली । सिय मुख मलिन न देखन वाली ॥
मनहीं मन अस कीन्ह बिचारा । सिय सुख लहैं सुधर्म हमारा ॥

वे श्रीसीताजी की प्राण प्रियतरा सखी तथा श्रीसिया जू का कभी भी उदास मुख न देख सकने वाली थी। उन्होंने मन ही मन में विचार किया कि श्री सिया जू जिस कार्य से सुखी हों वही करना हमारा परम धर्म है।

दो०– प्रगट लली नहिं कछु कहहिं, कारण होन अधीर ।
तदपि ताड़ हिय बात मैं, करहुँ उपाय अपीर ॥१६६॥

श्री लाड़िली किशोरी जू प्रगट रूप से अपनी उद्विग्नता का कुछ भी कारण नहीं कह रहीं फिर भी मैं उनके हृदय की बात समझ कर उन्हें पीड़ा मुक्त करने का उपाय करती हूँ।

हौहुँ जनावहुँ नाहि सो सीतहिं । क्रीड़ा मिस सुख देहुँ अभीतहिं ॥
करि निश्चय बोली कर जोरी । सुनहिं सिया मिथिलेश किशोरी ॥

मैं भी श्रीसीताजी के समक्ष वह बात प्रगट नहीं करूँगी तथा क्रीड़ा के बहाने से उन्हें अभय कर, सुख प्रदान करूँगी। ऐसा निश्चय कर अपने हाथ–जोड़ श्री चन्द्रकला जी बोलीं– हे मिथिलेश किशोरी श्री सिया जू! सुनिये,

बालहिं ते तव कृपा महानी । मो पै रही सखिन सह सानी ॥
खेलब खाब पढ़ब सँग भयऊ । दरशन प्यास सदा वश कियऊ ॥

बचपन से ही प्रेम से सनी हुई, आपकी महान कृपा, सखियों सहित मुझ पर रही आयी है। क्रीड़ा, भोजन व अध्ययन आदि हमारी सभी क्रियायें आपके साथ–साथ सम्पन्न हुई हैं तथा आपके प्रसन्न मुख दर्शन की तृषा ने मुझे सदैव ही विवश किये रखा है।

नृत्य गान कल कला नाटकी । योग सिद्धि सब गुण सुठाट की ॥
कृपा तुम्हारि सकल हम पाई । सेवा हित तव सों निपुणाई ॥

नृत्य, गायन, सुन्दर नाटकीय कला व योग की सिद्धियाँ आदि सभी सुन्दर गुणों का समूह हमने आपकी कृपा से प्राप्त किया है तथा ये सभी हमारी कला–कुशलतायें आपकी सेवा के लिए ही है।

सेवा करहिं सखिन मिलि साथा । होहिं सबहिं तब सुखी सनाथा ॥
कहहुँ हृदय अभिलाष भामिनी । सुनहिं कृपा कर मोर स्वामिनी ॥

जब हम सभी सखियाँ साथ मिलकर आपकी सेवा करती हैं तभी सुखी व सुरक्षित होती हैं।

अतः हे श्रीस्वामिनी जू! हम अपने हृदय की इच्छा बखान कर रही हैं, आप कृपा कर श्रवण करें।

दो०— नृत्य गान रस रहस वर, नाटय कला सुखरूप ।
तव निकुञ्ज एकान्त महँ, सहचरि करैं अनूप ॥१६७॥

आपके निकुञ्ज के एकान्त स्थल में हम सभी सखियाँ सुन्दर नृत्य गायन तथा रस–रहस्य से परिपूर्ण सुख स्वरूप अनुपमेय अभिनय करना चाहती हैं।

सुभग सिंहासन आप पधारैं । सेवा सरस लखै सुख सारैं ॥
सुनि बोली मिथिलेश लड़ैती । करहु सखी शुभ आश बड़ैती ॥

अतः आप वहाँ सुन्दर सिंहासन में विराजकर रसमयी सेवा का दर्शन करती हुई सुख संप्राप्त करें। श्री चन्द्रकला जी की विनय सुनकर मिथिलेश लाड़िली श्री सिया जू बोलीं– हे सखी! ऐसा ही करो, मेरे हृदय में भी यही महान शुभेच्छा है।———

चेष्टा मोर सुनहिं सब सखियाँ । तुम्हरे हेतु आन नहिं अखियाँ ॥
सखिगण कहि जय जनक दुलारी । परी पदहिं भल भाव सम्हारी ॥

———हे सखियों! मेरी सभी चेष्टायें तुम लोगों के लिए ही हैं तथा तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी मेरी दृष्टि में नहीं है। ऐसा श्रवणकर सभी सखियाँ श्री जनक दुलारी सिया जू की जै हो कहकर सुन्दर भाव पूर्वक उनके चरणों में प्रणाम करने लगीं।

चन्द्रकला शुभ आयसु धरिकै । सखि सब साज सजी मुद भरिकै ॥
रत्न निकुंज बैठि शुभ सीता । नखत बीच जनु चन्द्र पुनीता ॥

श्री चन्द्रकला जी की शुभ आज्ञा शिरोधार्य कर सभी सखियों ने आनन्द पूर्वक सम्पूर्ण सेवा साज सजा लिये। सुन्दर व शुभप्रद रत्न निकुञ्ज में श्री सिया जू उसी प्रकार विराज गयीं जैसे नक्षत्रों के बीच पवित्र चन्द्रमा सुशोभित हो।

सखि गण पूजि आरती कीन्हीं । बीड़ा गंध माल पुनि दीन्हीं ॥
पानि जोर शशिकला प्रवीनी । बोली मधुर बचन रस भीनी ॥

सखियों ने उनका पूजन कर आरती उतारी पुनः ताम्बूल, इत्र व पुष्पमाला अर्पित कीं। तब परम दक्ष श्री चन्द्रकला जी हाथों को जोड़कर रस सिक्त मधुर वचन बोलीं।

दो०— स्वामिनि हम सबहीं सुनी, कथा रमायण केर ।
मात पिता अरु सन्त मुख, ऋषि मुख कैयक मेर ॥१६८॥

हे श्री स्वामिनी जू! हम सभी ने अपने माता–पिता, सन्तों व ऋषियों के मुख से कई प्रकार से श्रीरामायण की कथा सुन रखी है।

परम धाम साकेत विहारी । दिव्य दिव्य कर चरित उदारी ॥
सह परिकर जिमि दिव्य निकुंजे । रचहुँ सो अभिनय तिमि सुख पुंजे ॥

दिव्य धाम साकेत विहारी श्री रामजी महाराज, अपने परम धाम में, परिकरों सहित दिव्य निकुंज में, जिस प्रकार का दिव्य व उदार चरित्र किया करते हैं मैं उन्हीं सुख–पुञ्ज चरित्रों को उसी प्रकार अभिनय करने की रचना कर रही हूँ।

पानि फेरि वर बुद्धि बखानी । स्वीकृति दीन्ह सिया सुखदानी ॥
चितवत चहुँ दिशि सखियन ओरी । खोजत मनहुँ राम रस बोरी ॥

ऐसा श्रवण कर, श्री सीता जी ने श्री चन्द्रकला जी के शिर का स्पर्श कर दुलराते हुये उनकी श्रेष्ठ बुद्धि की प्रशंसा की तथा अपनी सुखदायी स्वीकृति प्रदान कर वे चारों दिशाओं में सखियों की ओर निहारने लगीं मानों रस में डूबी हुई वे श्रीरामजी महाराज का अनुसंधान कर रहीं हों।

होन लगी लीला सुखदाई । नाट्य पात्र सब सखी सुहाई ॥
भाँति भाँति के चरित सुखाकर । ललित लसत जनु सत्य सत्यवर ॥

इस प्रकार सुख प्रदायिनी भगवल्लीला प्राम्भ हो गयी, उस लीला के पात्र उनकी सभी सुन्दर सखियाँ ही थीं। वहाँ पर विभिन्न प्रकार के सुखदायी सुन्दर चरित्र ऐसे सम्पादित हो रहे थे जैसे वे सभी सत्य व वास्तविक हों।

रास कुञ्ज शुभ समय सुहावन । रास केलि होती मन भावन ॥
नृत्य गान गति प्रेम सुहायो । वीणा वेणु सुखद रव छायो ॥
तदाकार बनि प्रेम समाधी । भई मगन सब मिटी उपाधी ॥

वहाँ सुन्दर रास कुञ्ज में शुभ व सुहावने समय मनभावनी रासलीला होने लगी, जिसमें प्रेम पूर्वक लय युक्त नृत्य गान हो रहा था तथा वीणा व बाँसुरी की सुन्दर ध्वनि गूंज रही थी। तब सभी प्रकार की बाधायें मिट जाने के कारण सम्पूर्ण समाज तदाकार होकर प्रेम समाधि में मग्न हो गया।

दो०–अन्तःकरण विलीन भे, सखियाँ भई विभोर ।
प्रेम दशा अति उच्चतम, सहित सिया रस बोर ॥१६९॥

उन सभी के अन्तःकरण चतुष्टय रासानन्द में विलीन हो गये तथा श्रीसीताजी सहित सभी सखियाँ विभोर हो गयीं उन्हें प्रेम की अत्यधिक ऊँची स्थिति प्राप्त हो गई और वे सभी भगवद्रस में डूब गयीं।

भये प्रेम वस ब्रह्म विशाला । प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला ॥
अमित प्रकाश निकुंजहिं छावा । कोटि सूर्य जनु उये सुहावा ॥

तब अपने प्रति किये गये उपकार को मानने वाले (कृतज्ञ) एवं परम कृपालु, पूर्णतम परब्रह्म श्रीरामजी महाराज प्रेम विवश हो वहाँ प्रगट हो गये। उस समय निकुञ्ज में असीमित प्रकाश छा गया मानों करोड़ों सूर्य एक साथ उदित हो गये हों।

कोटि काम मद मर्दन वारे । सौख्य सिन्धु सौन्दर्य सम्हारे ॥
सिर किरीट श्रुति कुण्डल लोलैं। छूटी अलकैं छुयें कपोलैं ॥

वे करोड़ों कामदेव के अभिमान को चूर–चूर करने वाले, सुख के सागर तथा महान सौन्दर्य

का वरण किये हुए हैं। उनके शिर में सुन्दर क्रीट सुशोभित है, कानों में सुन्दर कुण्डल झूल रहे हैं एवं उनकी खुली हुई केशावलि कपोलों का स्पर्श कर रही हैं।

अर्ध चन्द्र द्युति ललित ललाटा । सोह तिलक गोरोचन साटा ॥
सोहत खौर मोह मन लेई । भृकुटि काम धनु उपमा देई ॥

उनके अर्द्ध चन्द्राकार सुन्दर भव्य भाल में गोरोचन का तिलक अत्यन्त सुशोभित हो रहा है, उस पर लगी हुई केशरिया खौर मन को मोहित कर रही है तथा उनकी भव्य भौहों को देखकर तो कामदेव के धनुष की ही उपमा दी जा सकती थी।

नयन सुभग बड़रे अनियारे । कंज मीन मृग खंजन वारे ॥
शुक नासा हँसि हलकति मोती । रमन चित्त हिय जगवति जोती ॥
सोह मुकुर सम सुभग कपोला । छाँह सुखद तहँ कुण्डल डोला ॥

श्री राम जी महाराज के नेत्र सुदीर्ध तथा कोरदार हैं जिन पर कमल, मछली, हिरण व खंजन पक्षी के नेत्र भी न्योछावर है। उनकी शुकाकार नासिका में सुशोभित नक मुक्ता, हँसते समय हिलती हुई उनमें रमण करने के लिए हृदय में ज्योति सी जगा रही थी अर्थात् प्रेम करने हेतु आमंत्रण दे रही थी एवं उनके सुन्दर कपोल दर्पण के समान सुशोभित हो रहे थे जिनमें हिलते हुए कुण्डलों की सुख प्रदायिनी प्रतिछाया दिखाई दे रही थी।

दो०—अमित कपोती छवि लिये, सुन्दर चिबुक सुहात ।
त्रिभुवन शोभा लखि लजी, मारहु मन सकुचात ॥१७०॥

उनकी सुन्दर ठोढ़ी असीमित कबूतरी की सुन्दरता को लिये हुए सुशोभित हो रही थी जिसकी शोभा को देखकर तीनों लोकों की सुन्दरता भी लज्जित हो रही थी तथा सौन्दर्य के अधिदेवता कामदेव का मन भी संकुचित हो रहा था।

मुख छवि कहहुँ कहा मैं गाई । छन—छन अधिक मनोहर ताई ॥
मोहक अधर अमिय रस साने । स्वाद जान कोउ रसिक सयाने ॥

श्री राम जी महाराज के मुख—कमल की शोभा का मैं किस प्रकार गायन करूँ. उसमें तो प्रतिक्षण अत्यधिक मनोहरता विवर्द्धित हो रही थी, उनके अमृत रस से सने हुए अधर सभी के मन को मुग्ध किये ले रहे थे जिनका आस्वाद कोई परम चतुर रसिक ही जानते हैं।

बिम्ब अधर बिच दाड़िम दसना । छहरत चन्द निकर सम हँसना ॥
बोलब मधुर सुखद गंभीरा । कोकिल मेघ मोर लज थीरा ॥

———बिम्बा फल के समान लाल अधरों के बीच उनकी अनार के दानों के समान दन्तावलि हँसते समय चाँदनी सी बिखेर देती थी, उनका बोलना मधुर सुखप्रद तथा अत्यन्त गम्भीर था जिसे सुनकर कोयल, बादल तथा मोर भी लज्जित होकर स्थिर हो जाते थे।

चम–चम धोति रेशमी धारे। उत्तरीय छवि कहौं कहा रे ॥
द्विभुज मनोहर करि कर रूपा। भूषण भूषित सुभग अनूपा ॥

वे सुन्दर चमचमाती हुई रेशमी धोती धारण किये हुए थे तथा उस पर रखे हुये उपरना की छवि को मैं क्या कहूँ? कि वह कितनी सुन्दर लग रही थी। हाथी की सूड़ के समान मन को हरण करने वाली उनकी सुन्दर व अनुपमेय दोनों भुजायें आभूषणों से सुसज्जित थीं।

करतल कमल सुखद भयहारी। जिन परशे जानै मनहारी ॥
केकि कण्ठ अरु वक्ष विशाला। शोभित माँसल भूषण जाला ॥

कमल के समान, सुख प्रदायक व भय का हरण करने वाले उनके करतल अत्यन्त ही मनमोहक थे, उनकी कोमलता व सुख का समनुभव तो वही कर सकता है जिसका उन्होंने स्पर्श किया हो। उनकी ग्रीवा मोर के समान, वक्ष विशाल, माँसल तथा आभूषणों के जाल से सुशोभित था।

उदर मनोहर त्रिवली राजत। नाभि गँभीर भँवर छवि छाजत ॥
केहरि कटि करधनी विराजित। मणिगन हीरन स्वर्ण सुसाजित ॥

उनके उदर में मन को हरण करने वाली तीन रेखायें तथा नाभि गम्भीर व भँवर के समान शोभायमान हो रही थी। उनकी सुन्दर कमर, सिंह के समान तथा मणि, हीरा व सोने से बनी करधनी से सुसज्जित थी।

जानु जँघ उरु गुल्म सुशोभा। वरणै अस मति जग कवि कोभा ॥
नूपुर युत पद पंकज सोहैं। अंगुलि देखि मुनिन मन मोहैं ॥
चरण रेख शुभ सोह ललामा। वार मदन सुख सुन्दरता मा ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के घुटनों, जंघाओं, उरुओं तथा गुल्मों (पिण्डलियों) की सुन्दर शोभा का वर्णन संसार में ऐसा कौन प्रबुद्ध कवि है जो कर सके अर्थात् उनका वर्णन कोई नहीं कर सकता। उनके चरण कमल नूपुरों से युक्त परम सुशोभित हो रहे थे तथा चरणांगुलियों को देखकर तो मुनियों का मन भी मोहित हो जाता था। उनके चरण तलवों में शुभ रेखायें सुशोभित थीं जिनकी सुन्दरता व सुख में सौन्दर्य अधिदेव कामदेव की सुन्दरता व सुख भी न्योछावर हो रही थी।

दो०–अधर विराजित मुरलि कर, चितवन चोट चलाय।
बनन त्रिभंगी मन हरण, मन्द मन्द मुसकाय ॥१७१॥क॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के कर कमलों में पकड़ी हुई मुरली उनके होठों पर सुशोभित हो रही थी, दृष्टि निक्षेप कर वे चारों ओर प्रहार सा कर रहे थे, उनके त्रिभंगी (गर्दन, कमर व चरण को टेढ़ा करना) बनने की कला मन को हरण किये ले रही थी तथा वे मंद मंद मुस्करा रहे थे।

चुअत सकल अँग अंग ते, सुन्दरता सुख मूल।
त्रिभुवन मनहुँ डुबावने, बढ़ सुख सिन्धु अतूल ॥ख॥

उनके सम्पूर्ण अंगों से सुखों की मूल सुन्दरता श्रावित हो रही थी मानों तीनों लोकों को अस्त करने के लिए सुख का अतुलनीय सागर उमड़ रहा है।

भयो नृत्य राघव मिलन, रास रंग रस राज ।
दरश परश सुख सबहिं लै, सबहिं भई कृतकाज ॥ग॥

इस प्रकार अभिनय नृत्य में रास आनन्द के रस–भूप श्रीरामजी महाराज का मिलन हुआ तथा उनका दर्शन व स्पर्श सुख प्राप्त कर सभी सखियाँ पूर्ण मनोरथा हो गयीं।

मास पारायण तृतीय विश्राम

श्याम सरोज सुभग सुखकारी । श्यामल वदन परशि सखि सारी ॥
दिव्य सिंहासन पुनि पधराई । पूजि यथा विधि हिय हरषाई ॥

श्री राम जी महाराज के नीले कमल के समान, सुन्दर व सुखकारी श्याम शरीर का दिव्य स्पर्श कर सभी सखियों ने उन्हें सुशोभन सिंहासन में पधराया व हृदय में हर्षित हो विधिपूर्वक पूजन किया।

गन्ध माल दिवि बीड़ा दीन्ही । करि आरती प्रणाम सुकीन्ही ॥
सियहिं निरखि प्रभु प्रेम विभोरे । भये मगन छवि सिन्धु हिलोरे ॥

पुनः इत्र व दिव्य–माल धारण करा कर चन्द्रकला जी ने ताम्बूल दिया तथा उनकी आरती उतार सभी सखियों ने प्रणाम किया। उस समय श्रीरामजी महाराज अपनी नित्य प्रियतमा श्री सिया जू को देखकर प्रेम विभोर हो गये तथा उनकी सुन्दरता के सागर में हिलोरे लेते हुए मग्न हो गये।

प्रभुहिं देखि सिय भयीं सुखारी । निज निधि पाइ मनहुँ तन धारी ॥
बोले प्रभु शशिकलहिं सुहाती । पूर्व भई निज धाम जो बाती ॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज को देखकर उनकी अभिन्ना श्री सीता जी उसी प्रकार सुखी हुई मानो शरीर धारण किये हुये अपने हृदय धन को प्राप्त कर ली हों। अनन्तर प्रभु श्रीरामजी महाराज ने श्रीचन्द्रकलाजी से वह सुन्दर बात कही जो नित्य धाम साकेत में पूर्व में हो चुकी थी।–––

हम अरु सीता नहिं द्वै जानहु । छिनहु वियोग होय नहिं मानहु ॥
लीला हेतु वियोग लखाई । सोउ मिटिहिं कछु वासर जाई ॥
जो हम सो सत अवध मझारा । विहरहिं नित्य संग परिवारा ॥

–––आप सभी, हमें और 'सीता' को दो नहीं समझिये तथा इस बात को सत्य मान लीजिये कि– हमारा कभी भी एक क्षण का वियोग नहीं होता। यह जो वियोग दिखाई दे रहा है वह तो लीला कार्य के लिये है और वह भी कुछ दिन बाद समाप्त हो जायेगा। हम जो भी हैं, अपने उसी सत्य स्वरूप से श्री अयोध्या पुरी में अपने परिवार–जनों के साथ नित्य विहार कर रहे हैं।

दो०–कछु दिन बीते आइहैं, मिथिला गलिन मझार ।
परिणय लीला होयगी, संग सिया सुकुमार ॥१७२॥क॥

कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर हम श्री मिथिला पुरी की गलियों में आयेगें तब परम सुकुमारी श्री सिया जू के साथ हमारी वैवाहिक लीला सम्पन्न होगी।

जनक लड़ैती जानतीं, यद्यपि यह सब बात ।
तदपि उच्चतम प्रेम सों, विरह हृदय दुखदात ॥ख॥

श्री जनक दुलारी जानकी जी यद्यपि ये सभी बातें जानती हैं तथापि प्रेम की अत्यन्त ऊँची अवस्था में स्थित होने से इन्हें हृदय में हमारा विरह दुखी करता रहता है।

जौन वेष हम मिथिला ऐहैं । लखहु प्रिया मोहि चीन्हे पैहैं ॥
सो स्वरूप द्रुत राम दुरावा । राजकुँवर नर रूप दिखावा ॥

अतः हे प्रिये! हम जिस वेष से श्री मिथिलापुरी आयेंगे वह वेष आप देख लें तभी हमें पहचान सकेंगी। तदुपरान्त श्रीरामजी महाराज ने अपना वह साकेत संस्थित स्वरूप तुरन्त ही तिरोहित कर दिया और अपना मनुष्य शरीर–धारी "राजकुमार" का स्वरूप उन्हें दिखाया।

कोटि मनोज लजावनि हारा । धनुष बाण निज करहिं सम्हारा ॥
सिंह ठवनि गति मति सब सोही । निरखि द्रवहिं मन जाय सुमोही ॥

उनका वह स्वरूप करोड़ों कामदेव की छवि को भी विलज्जित करने वाला तथा हाथों में धनुष व बाण धारण किये हुए था। उनके उठने व चलने की कला सिंह के समान सभी को प्रिय लगने वाली थी जिसे देखकर मन द्रवित हो मोहित हो जाता था।

अमित अलौकिक सुन्दरताई । कहि न जाय मन ही मन भाई ॥
देखि रूप सब भई विभोरी । को हम कहाँ बिसरि सब गोरी ॥

उनकी सुन्दरता असीम तथा प्रकृति से परे थी जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता केवल मन ही मन में अनुभव किया जा सकता है। उनके उस सुन्दर स्वरूप देखकर वे सभी विह्वल हो गयीं तथा हम कौन हैं, कहाँ हैं? उन्हें सभी ज्ञान भूल गया।

भो चित चेत कछुक छन माहीं । देखे तहाँ न राम लखाहीं ॥
मन अधीर विरहाकुल सीता । हृदय राखि प्रभु रूप पुनीता ॥

कुछ क्षणोपरान्त जब उनका चित्त चैतन्यता को प्राप्त हुआ तब उन्होंने देखा तो वहाँ उन्हें श्रीरामजी महाराज नहीं दीख पड़े। उस समय जनक नन्दिनी श्री सिया जी अधीर–मना विरह में व्याकुल हो प्रभु श्रीरामजी महाराज का वह पवित्र रूप अपने हृदय में धारण कर–––

लाज सकुचवश धरि उर धीरा । बोली सखि सन बचन गँभीरा ॥
नृत्य गान रस क्रीड़ा काला । भूलि गयी जब तन मन बाला ॥

–––लज्जा व संकोच के वशी हो हृदय में धैर्य धारण कर सखियों से गम्भीर वाणी में बोलीं–हे सखियो! नृत्य, गायन तथा रास क्रीड़ा करते समय जब सभी सखियाँ अपने शरीर व मन की स्मृति

भूल गयी थी–––

दो०– स्वप्न लखी हम सुनहु सखि, परम पुरुष नर रूप ।
दरश देय कछु बात कहि, दुरि गो दृश्य अनूप ॥१७३॥

–––तब हमने स्वप्न में मनुष्य रूप में एक महान पुरुष का दर्शन किया, हे सखियो! सुनों, जिसने हमें अपना दर्शन देकर, कुछ बातें कही और वह अनुपमेय दृश्य दूर हो गया।

आनन्द धाम स्वप्न सखि देखी । अबहुँ हृदय महँ हर्ष विशेषी ॥
हमहुँ हमहुँ सब कही सुहावा । लखी स्वप्न सुखकर सुखछावा ॥

हे सखीगण! आनन्द के धाम–स्वरूप उस स्वप्न को देखकर अभी भी हृदय में विशेष हर्ष हो रहा है। श्री सिया जू के वचन सुनकर सभी ने कहा– हाँ स्वामिनी जू! हमने भी, हमने भी वह सुन्दर सुखकारी स्वप्न दर्शन किया है जिससे हृदय में आनन्द में छाया हुआ है।

करि विस्तार कहहिं अरु सुनहीं । सीय सहित मन आनँद सनहीं ॥
बोली सिय अस स्वप्न महाना । कहे सुने नशि जात दिखाना ॥

वे सभी सखियाँ, श्रीसीताजी सहित परस्पर में विस्तार पूर्वक स्वप्न वृतान्त कहती व सुनती हुई मन को आनन्द में डुबा रही थीं। पुनः श्री सीताजी ने कहा– इस प्रकार का महान स्वप्न कहने व सुनने से नष्ट होता देखा गया है–––

काहू सन जनि कहियो ऐरी । मोर बात रखि नित्य हियेरी ॥
सबहिं बुझाय मातु ढिंग आई । सखियाँ निज निज सदन सिधाई ॥

–––इसलिए हे मेरी सखियो! मेरी बात को नित्य हृदय में रखकर, आप किसी से भी यह स्वप्न नहीं कहियेगा। इस प्रकार श्रीसीताजी सभी को समझा–बुझा कर अम्बाजी के समीप आ गयीं तथा सभी सखियाँ अपने अपने सदन को चली गयीं।

माता सियहिं गोद बैठारी । चूमि बदन बहु प्यार सम्हारी ॥
भोजन मधुर स्वकरहिं करायो । रतन पलँग पुनि सियहिं सुवायो ॥

अम्बा श्री सुनयना जी ने श्री सिया जू को गोद में बिठा, मुख चूम कर बहुत प्यार करते हुए अपने हाथों से मधुर भोजन करवाया तथा पुनः लाड़िली श्री सियाजी को रत्न विनिर्मित पलँग में शयन करा दिया।

दो०– यहि प्रकार सिय सुरति शुभ, दिन दिन बढ़ति अथोर ।
मिलिहैं कब रघुवंश मणि, सोचति हृदय विभोर ॥१७४॥क॥

इस प्रकार श्रीसीताजी का शुभ व सुन्दर प्रेम दिन प्रतिदिन अत्यधिक बढ़ता जा रहा था तथा रघुवंश मणि श्रीरामजी महाराज कब मिलेंगे ऐसा सोचकर वे हृदय विभोर बनी रहती थी।

रामहु चित सिय महँ वसत, हृदय मिलन की चाह ।
मुनि मुख सुनि सुनि सुजश नित, बाढ़इ प्रेम प्रवाह ॥ख॥

श्रीरामजी महाराज का चित्त भी नित्य श्रीसीताजी में बसा रहता था, उनके हृदय में उनसे मिलने की तीव्र उत्कण्ठा थी तथा मुनियों के मुख से नित्य प्रति श्री सिया जू का सुन्दर यश सुन–सुन कर हृदय में प्रेम प्रवाह और भी बृद्धि को प्राप्त हो जाता था।

रघुवर सिय के प्रेमवश, बनि अन्तः सिय रूप ।
सिया सनी रस राम के, बनी हृदय नर भूप ॥ग॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि इस प्रकर श्री सीताजी के प्रेम विवश हो श्रीरामजी महाराज हृदय में श्रीसीताजी के स्वरूप बन गये थे तथा श्रीरामजी महाराज के प्रेम रस में सनी हुई श्रीसीताजी अपने हृदय में नर–राज श्रीरामजी महाराज का स्वरूप बनी हुई थीं।

कैसो यह अद्वैत वर, जानहिं रसिक सुजान ।
एकहिं दुइ बन लसत हैं, दुइ महँ एक लखान ॥घ॥

यह कैसा श्रेष्ठ अद्वैत है जिसे परम विज्ञानी–रसिक जन ही जान सकते हैं क्योंकि ये एक ही दो स्वरूप बनकर दिखाई पड़ते हैं तथा दोनों में एक ही तत्व दिखाई पड़ता है।

तेइ जाने यह चरित सयाने। राम कृपा जे प्रेम समाने ॥
यहि प्रकार सिय प्रीति दिखाई । आगे कहहुँ चरित सुखदाई ॥

उनके इस चरित्र को तो वही चतुर लोग जान सकते हैं जो श्रीरामजी महाराज की कृपा से प्रभु–प्रेम में डूबे हुए हैं। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! इस प्रकार श्रीसीताजी की प्रभु प्रीति का वर्णन कर मैं आगे के सुखदायी चरित्रों का बखान कर रहा हूँ।

एक दिवस प्रिय मातु सुनैना । बोली जनक पाँय परि बैना ॥
सुनहु नाथ मम विनय कृपा करि । यथा होय रुचि करहिं सो उर धरि ॥

एक दिन श्री सिया जू की प्रिय अम्बा श्रीसुनैनाजी श्रीजनकजी महाराज के चरणों में प्रणाम कर बोली– हे नाथ! आप कृपा कर मेरी विनती सुनें तथा हृदय में धारण कर आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिये।

यदपि सिया षट वर्ष सुहाई । तदपि लगति श्यामा सरसाई ॥
अहैं विवाह योग सुकुमारी । सब विधि जानहिं करहिं बिचारी ॥

यद्यपि हमारी परम सुशोभना श्री सिया जू छः वर्ष की ही हैं तथापि ये रसमयी, किशोरावस्था वाली प्रतीत होती है। अतः ये सुकुमारी सिया जू सभी प्रकार से विवाह के योग्य हैं, आप ऐसा समझ विचार कर तदनुसार कार्य करें,–––

पितृ धर्म शास्त्रन महँ भनई । सुता विवाह समय सो करई ॥
जनक कहेउ भल कही पियारी । सीतहिं लखि मोरेहुँ रूचि भारी ॥
निशि दिन करहिं सुशोच बिचारा । केहिं विधि करहिं व्याह संभारा ॥

———क्योंकि शास्त्रों में पिता के धर्म में कहा गया है कि— कन्या का विवाह समय से करना चाहिए। महारानी श्री सुनयना जी की बात सुनकर श्रीजनकजी ने कहा— हे प्यारी! आपने ठीक ही कहा है, 'श्रीसीता' को देखकर मेरे मन में भी ऐसी ही महान इच्छा हो रही है। हम भी रात–दिन यही सुन्दर सोच–विचार करते रहते हैं कि किस प्रकार से इनके विवाह की सम्हाल की जावे।

दो०–सीतहिं लायक वर प्रिये, दशरथ नन्दन राम ।
गुरु सुबात अति रहस की, प्रथम सुनायो माम ॥१७५॥

हे प्रिये! अपनी पुत्री श्रीसीताजी के अनुरूप वर तो दशरथ नन्दन श्री रामजी महाराज ही है यह सुन्दर अत्यन्त रहस्यमयी वार्ता गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी ने पूर्व में ही मुझे सुना रखी है।

नृप दशरथ अरु हम प्रिय दोई । एकहिं वंश प्रथम का होई ॥
यदपि बीतगै बहुतक पीढ़ी । गोत्रहुँ बदल गयो निज सीढ़ी ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज व हम दोनों एक दूसरे को अत्यन्त प्रिय तथा पूर्व के एक ही वंश के हैं। यद्यपि अब तक बहुत सी पीढ़ियाँ बीत गयी हैं तथा हमारी परम्परा का गोत्र भी बदल चुका है।———

तदपि प्रीति निज कुलहिं समाना । खाब पियब व्यवहार सुहाना ॥
तनिक भेद नहिं जाय लखाया । दोनहु वंश एक कर भाया ॥

———तथापि प्रेम के कारण दोनों कुलों में सुन्दर खान–पान व व्यवहार आदि अभी भी एक ही प्रकार का है। दोनों ही कुलों में किंचित भी अन्तर नहीं समझ आता तथा दोनों वंश एक ही प्रतीत होते हैं।———

केहिं विधि बात चलावहुँ तहँवा । बनै न कहत सकुच है जहँवा ॥
चलत बतकही बीचहिं सीता । आयी सखि सह भाव विनीता ॥

———अतः मैं वहाँ किस प्रकार से विवाह की बात चलाऊँ क्योंकि जहाँ संकोच होता हैं वहाँ कोई बात कहते नहीं बनती। इस प्रकार की बातचीत के मध्य ही सखियों सहित विनम्र भावपूर्वक श्रीसीताजी वहाँ आ गयीं।———

आतुर बोली सखी सयानी । दाऊ सुनहिं मोर वर वानी ॥
स्वामिनि सिया संग सब बाला । खेलन गयीं सुभग धनु शाला ॥

———तथा आतुरता पूर्वक एक चतुर सखी बोली— हे श्री दाऊ जी! आप मेरी वाणी सुनें, हम सभी बालिकायें स्वामिनी श्री सिया जू के साथ सुन्दर धनुष–शाला में खेलने गयी थीं।

खेलनि मिस धनु चक्कर देहीं । सीय सहित सब सखी सनेही ॥
खेलत सिया साटिका छोरा । अरुझि धनुहिं खिसकायो जोरा ॥
जस जस घूमै सिय दै चकरा । तस तस घूमै धनु जनु भमरा ॥

श्री सीताजी के सहित हम सभी सखियाँ खेल के बहाने से प्रेम पूर्वक धनुष का चक्कर

(परिक्रमा) लगा रही थी तभी खेलते समय ही सिया जू की साड़ी का किनारा उलझकर उस महान धनुष को खिसका दिया और जैस–जैस चक्कर देती हुई श्री सीता जू घूम रही थी उसी प्रकार लट्टू (भमरा) की तरह धनुष भी घूमने लगा।

दो०–हम सब देखी तहँ खड़ी, विस्मय भयो अपार ।
बहुरि सिया गति रोक के, कर साटी निरुआर ॥१७६॥

हम सभी वहाँ खड़ी होकर यह दृष्य देखती रहीं, तब हमें असीम आश्चर्य हुआ, पुनः श्री सिया जू ने अपनी चाल रोककर हाथों से साड़ी को सुलझा लिया।–––

धनुष भूमि सब विमल बनाई। कचरा फेंकेव दूर भगाई ॥
निज कर धनुषहिं पुनि तहँ सीता । धरी यथावत पूजि पुनीता ॥

–––पुनः श्रीसीताजी ने धनुष के नीचे की सम्पूर्ण भूमि को स्वच्छ बनाकर, वहाँ जमे हुये कचड़े व तृणजाल आदि को दूर फेंक दिया तथा अपने हाथ से 'धनुष' का पवित्र भाव से पूजन कर ज्यों का त्यों वहीं रख दिया।

ताते सब सखि इत द्रुत आई । शिव अपचारहिं देखि डराई ॥
मंगल लली सदा सब चाहैं। देवी देव पूजि भरि आहैं ॥

इसलिए हम सभी सखियाँ भूत–भावन भगवान श्री शिवजी के अपचार को देख, डर कर शीघ्रता पूर्वक यहाँ आई हैं क्योंकि हम सभी अपनी लली जू का नित्य मंगल चाहती हैं तथा उसी हेतु आर्त्त भावपूर्वक सभी देवी–देवताओं का पूजन करती रहती हैं।

सुनत सखिन की बात नृपाला । गुनि अचरज तहँ गये उताला ॥
यथा सखी सिय चरित बतावा । तथा देखि बड़ विस्मय छावा ॥

सखियों की बातें सुनते ही श्री जनक जी महाराज आश्चर्य समझ वहाँ (धनुष–शाला) त्वरा पूर्वक गये तथा सखी ने जिस प्रकार श्रीसीताजी का चरित्र बताया था उसी प्रकार वहाँ देख कर महान आश्चर्य को प्राप्त हुए।

सिय महिमा मन कीन्ह विचारी। नारि सुनयनहिं कहे हँकारी ॥
सहजहिं सिय शिव चाप उठावा । शक्ति अचिन्त्य यथा मुनि गावा ॥

तदनन्तर श्री सीता जी की महिमा का मन में अनुमान कर श्री जनक जी महाराज ने अपनी महारानी श्रीसुनयनाजी को बुला उनसे कहा–हे प्रिया जी! अपनी लाड़िली श्री सीताजी ने श्री शिवजी के परम प्रचण्ड धनुष को सहज ही उठा लिया है। अतः ये अतुलनीय शक्ति सम्पन्ना हैं, जैसा कि निमिकुल श्री याज्ञवल्क्यजी महाराज ने पूर्व में ही गायन किया था।

ललिहिं योग वर मिलै अनूपा। करिय विवाह सुखद अनुरूपा ॥
आजु नेम धरि शिव कहँ ध्याऊँ । शासन देहिं तथा चित लाऊँ ॥

अतएव हमारी लली जू के योग्य अनुपमेय व अनुरूप वर मिल जाय तो सुख प्रदायक विवाह

किया जाय। मैं आज नियम पूर्वक श्रीशिवजी का ध्यान करता हूँ पुनः वे जैसी आज्ञा प्रदान करेंगे उसी के अनुसार कार्य करूँगा।

अस कहि नृप शिव मन्दिर जाई । ध्यान मगन तन सुधि बिसराई ॥
जानि मनोरथ शिव वरदानी । ध्यानहिं महँ सब कहा बखानी ॥

ऐसा कहकर श्री महाराज जनकजी श्री शिव मन्दिर जाकर ध्यान मग्न हो गये और शरीर स्मृति भूल गये। तब उनके मन की इच्छा जान कर अभीष्ट वर–प्रदाता श्री शिव जी ने ध्यान में ही सब बातें समझाकर कही–

दो०–चाप मोर तव गृह धरो, पूजहु जेहिं करि नेम ।
तासु भंग शुभ यज्ञ करि, पइहौ योग सुक्षेम ॥१७७॥

हे श्री विदेहराज जी! मेरा जो धनुष आपके भवन में रखा है व जिसका आप नियम पूर्वक नित्य पूजन करते हैं उसी को भंजन करने हेतु एक यज्ञ करने पर आप सुन्दर योग तथा क्षेम (श्री सिया जू के विवाह का योग व उनका मंगल) प्राप्त करेंगे।

अस प्रण करहु सुनहु नरपाला । जो यह तोड़ै धनुष विशाला ॥
सीता ब्याह ताहि सन होई । कहहुँ त्रिसत्य जान सब कोई ॥

हे राजन्! सुने, आप इस प्रकार की प्रतिज्ञा करें कि– इस विशाल धनुष को जो भी खण्डित करेगा उसी के साथ श्री सीता जी का विवाह सम्पन्न होगा, मैं त्रिसत्य कह रहा हूँ, इस बात को सभी लोग जान लें।

यहि विधि ब्रह्म राम परमारथ । दैहैं दर्शन कहौं यथारथ ॥
इष्ट देव नृप सो प्रभु मेरो । भंजि चाप सिय वरै सुबेरो ॥

हे नरेश! मैं सत्य कह रहा हूँ कि इस प्रकार से परमार्थ ब्रह्म आपको अपना दर्शन अवश्य प्रदान करेंगे। हे मिथिलेश जी! वे प्रभु श्रीरामजी महाराज, मेरे इष्टदेव हैं, वे मेरे धनुष का खण्डन कर शीघ्र ही श्री सीता जी का वरण करेंगे।

सुख यश पइहो विशद महाना । राम पाइ कछु रहै न पाना ॥
शासन करि शिव रूप दुरायो । जनक जागि निज शीश चढ़ायो ॥

उस समय आप विस्तृत व महान कीर्ति तथा सुख संप्राप्त करेंगे और श्रीरामजी महाराज को प्राप्तकर आपको कुछ भी पाना शेष नहीं रहेगा। इस प्रकार आज्ञा देकर भगवान श्री शिव जी अपना रूप छिपा अन्तरहित हो गये तब श्रीजनक जी महाराज ध्यान से जागृत हो श्री शिव जी की आज्ञा शिरोधार्य कर लिये।

गयउ भवन सब बात बतायउ । सुनत सुनैना सुठि सुख पायउ ॥
एक दिवस नृप सभा मझारा । बात कही सिय व्याह सम्हारा ॥
शम्भु चाप जिमि सीय उठावा । प्रण कीन्हेव तिमि आपु बतावा ॥

पुनः श्री जनक जी महाराज अपने भवन गये तथा श्री शिव जी के द्वारा प्राप्त निर्देश को महारानी श्री सुनयना जी को बताया जिसे श्रवणकर उन्होने महान सुख प्राप्त किया। अनन्तर एक दिन श्री जनक जी महाराज ने सभा के मध्य श्री सीता–विवाह की बात चलाते हुये, श्री सीताजी ने जिस प्रकार श्री शिवजी के धनुष को उठाया था तथा स्वयं महाराज ने जैसी प्रतिज्ञा की थी, आदि सभी बातें उसी प्रकार बखान कर दिया।

दो०–गुरु सन कहेउ सुपाँव परि, जस प्रभु आयसु होय ।
सोइ करहु नहि आन कछु, कहउँ मृषा नहि गोय ॥१७८॥

तदनन्तर निमिकुल गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी के सुन्दर चरणों में प्रणाम कर श्री जनक जी महाराज बोले– हे नाथ! अब जैसी आपकी आज्ञा हो, मैं अन्य कुछ न कर, वही करूँगा। मैं आपसे कोई छिपाव तथा असत्य भाषण नहीं कर रहा हूँ।

सुनि नृप गिरा विनय रस सानी । साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी ॥
कीन्हेउ भल प्रण सुनहु भुआरा । पूजिहैं मन अभिलाष तुम्हारा ॥

श्री जनकजी महाराज की प्रेम–रससिक्त विनय सुनकर, परम ज्ञानवान मुनिवर श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज उनका साधुवाद कर बोले हे राजन्! सुनें, आपने निश्चय ही श्रेष्ठ प्रतिज्ञा की है, आपकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी।

रंग भूमि सजवाय सुहावन । तामहँ वेदि मध्य जग पावन ॥
तहाँ धराय समुद शिव चापा । सबहिं जनावहु जो प्रण थापा ॥

आप सुन्दर रंगभूमि सजवा कर उसके बीच वेदी में संसार को पवित्र करने वाले श्री शिवजी के धनुष को आनन्दपूर्वक रखवा दीजिये तथा आपने जो प्रतिज्ञा की है उसे सभी में प्रकाशित करवा दें।

दर्शक वास राज सतकारहिं । यथा उचित बहु वेग सम्भारहिं ॥
ऋषि थल बाहर नगर बनाई । स्वागत साज धरैं सजवाई ॥

दर्शकों तथा राजाओं के निवास व सत्कार की शीघ्रता पूर्वक यथा उचित व्यवस्था करवायें, ऋषियों के ठहरने हेतु नगर के बाहर सुन्दर ऋषि शालायें बनवायी जाँय तथा वहाँ स्वागत की सम्पूर्ण सामग्रियाँ सजा कर रखवा दें।

दीप दीप सब नृपन सकासा । तव प्रण हौवै तुरत प्रकाशा ॥
ऋषिन मुनिन कहँ न्योत बुलावहु । विप्र साधु सनमानि जिवाँवहु ॥

सभी द्वीप तथा देशों के राजाओं के समीप आपकी प्रतिज्ञा शीघ्र ही प्रकाशित हो, आप ;षियों व मुनियों को आमंत्रण देकर उन्हें बुलवावें तथा ब्राह्मणों व साधुओं को आदरपूर्वक भोजन करवायें।

दो०–चार वरण आश्रम चतुर, नारि नीच जन कोय ।
प्राणि मात्र सतकार करु, छिद्र तनिक नहिं होय ॥१७९॥

पुनः चारों वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व सूद्र) तथा चारों आश्रमों (ग्रहस्थ, ब्रह्मचर्य, बानप्रस्थ व सन्यास) के सभी प्राणी–मात्र का आप सत्कार करें, चाहे वे स्त्री व निम्न जाति के ही क्यों न हो, इस कार्य में रंचमात्र भी त्रुटि नहीं होनी चाहिये।

मंगल हेतु लली वैदेही। दान मान प्रिय वचन सनेही॥
पूजहिं सबहिं यथा श्रुति सारा। ईश जानि जग सकल भुआरा॥

हे राजन्! आप लाड़िली श्री वैदेही जू के मंगलानुशासन के लिए दान, मान व प्रिय वचनों से सम्पूर्ण संसार का श्रुतियों के निर्देशानुसार ईश्वर के भाव से पूजन करें।

मंगल द्रव्य मँगाय अथोरी। नगर सजावहु चारहु ओरी॥
महा मोद मंगल पुर छावै। ताकी समता कतहुँ न आवै॥

विविध प्रकार के मांगलिक द्रव्य मँगवा कर चारो ओर से नगर की सजावट करवायें। इस प्रकार श्री मिथिला पुरी में महान आनन्द व मंगल छा जाय जिसकी बराबरी कहीं भी न हो सके।

गुरु शासन लहि तिरहुत राऊ। चरण परेउ अति प्रेमहिं छाऊ॥
आज्ञा सिर सब नाथ तुम्हारी। अस कहि भवनहिं गयो सिधारी॥

अपने श्री गुरुदेव जी की ऐसी आज्ञा प्राप्तकर तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज अत्यन्त प्रेम में डूबे हुए उनके चरणों में गिरकर प्रणाम किये, हे नाथ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, ऐसा कहकर वे अपने भवन में चले गये।

आयसु दियो यथा मुनि नाथा। तस तस कियो अधिक नृप माथा॥
देश देश निज प्रणहिं जनायो। सकल ऋषिन नृप बोलि पठायो॥

मुनिनाथ श्री याज्ञवल्क्य जी ने जो–जो आज्ञा प्रदान की थी, राजाओं के शिरोमणि श्री जनक जी महाराज ने उन्हें उसी प्रकार से प्रत्युत अधिकता के साथ कार्य रूप में परिणित किया। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा देश देशान्तरों में प्रकाशित करवाई व सभी ऋषियों मुनियों को आमन्त्रित किया।

दो०–विश्वामित्र मुनीश वर, आश्रम करत सुयज्ञ।
मंत्रि पठायो विप्र युत, तहँ नृप वर बड़ विज्ञ॥१८०॥

मुनीश्वर श्री विश्वामित्र जी अपने सिद्धाश्रम में सुन्दर यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे वहाँ परम ज्ञानी श्री जनक जी महाराज ने ब्राह्मण के सहित अपने मंत्री को आमन्त्रित करने हेतु भिजवाया।

देश देश के भूपति आये। सिया वरन बहु वेष बनाये॥
अति सतकार भूप सन पाये। अशन शयन बहु भाँति सुहाये॥

श्री विदेहराज जी महाराज की प्रतिज्ञा सुनकर देश देशान्तरों के बहुत से राजा कई प्रकार के वेश बनाकर श्रीसीताजी का वरण करने के लिए आ गये जिन्होंने श्रीजनकजी महाराज से भोजन व शयन आदि विभिन्न प्रकार की सुविधाओं से युक्त अत्यधिक सत्कार प्राप्त किया।

चहुँ दिशि आयी परजन टोली । सब सब विधि सुख लहा अमोली ॥
सबन्ह वास सब भाँति सुहाये । रहहिं सुखी निज निज मन भाये ॥

वहाँ चारो दिशाओं से प्रजा वर्गो (परजनों) के समूह आये तथा सभी ने सभी प्रकार का अनमोल सुख प्राप्त किया। श्री मिथिलापुरी में सभी के लिये सभी प्रकार से सुन्दर निवास गृह बने हुये थे जिनमें सभी अपने मनोनुकूल सुविधायें पाकर सुखी हो रहे थे।

जनक सुवन मन मोद अपारा। सीय स्वयम्बर देखि सम्हारा ॥
मन अभिलाष बढ़े दिन दूनी। भाम लखन की उमँग बहूनी ॥

जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधिजी के मन में असीमित आनन्द छाया हुआ था तथा वे अपनी अनुजा श्रीसीताजी के स्वयंवर की देखभाल कर रहे थे। उनके हृदय में अपने बहनोई जी का दर्शन करने की इच्छा व उमंग अनुदिन दुगने रूप से अत्यधिक बढ़ रही थी।

प्रेम हृदय नृप कुँवर सलोने । सोचत सदगुरु वाक्य सुहोने ॥
हृदय मनाव शम्भु गिरिजाऊ। लली योग वर श्री रघुराऊ ॥

अत्यन्त सलोने नृपति कुमार वे श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम पूर्ण हृदय से श्री सदगुरुदेव भगवान के वचनों पर विचार करते तथा अपने हृदय में भगवान श्रीशंकरजी व श्रीपार्वतीजी को मना रहे थे कि–हे श्री शिव–पार्वती जी! हमारी लली सिया जू के योग्य वर तो रघुकुल नरेश श्री रामजी महाराज ही हैं।–––

दो०–आवहिं यज्ञ पधार प्रभु, भंजि महा शिव चाप ।
जनक सुतहिं शुचि व्याह करि, देहिं दिखाय प्रताप ॥१८१॥

–––अतएव वे प्रभु श्रीरामजी महाराज इस यज्ञ में आकर इस प्रचण्ड शिव धनुष को तोड़ डालें तथा श्रीजनक तनया जानकीजी से पवित्र विवाह कर अपनी वीरता का दिग्दर्शन करा दें।

धनुष तोड़ि कोउ राज कुमारा । व्याह न लेवै प्रण अनुसारा ॥
प्रेमातुर जब संसय होई । बेसुध अंग शिथिल जनु सोई ॥

महाराज की प्रतिज्ञा के अनुसार धनुष को तोड़कर कोई अन्य राजकुमार श्री सीता जी से विवाह न कर ले, प्रेमातुरता में इस प्रकार का जब उन्हें सन्देह हो जाता तब उनके अंग शिथिल हो जाते और वे स्मृतिहीन हो जाते थे मानो शयन कर रहे हों।

शिव गुरु वचन जबहिं सुधि आवै। मन बुधि चित तबहीं थिर पावै ॥
एक दिवस लक्ष्मीनिधि राता। प्रेम विवश नहिं नीदहिं माता ॥

पुनः जब उन्हें भगवान श्री शंकर जी व अपने श्री गुरुदेव जू के वचनों की स्मृति आती तभी उनका मन, बुद्धि व चित्त स्थिरता को प्राप्त करता था। एक दिन कुँवर श्री लक्ष्मी निधि जी को प्रेमातिशयता के कारण रात में नींद ने वरण नहीं किया।

ब्रह्म मुहूरत आलस आयो । तन्द्रा मधि शुभ स्वप्न दिखायो ॥
सुनु हनुमान सुनावौं तोही । कहत सुनत प्रभु प्रीति सुहोही ॥

परन्तु ब्रह्म मुहूर्त के समय आलस्य आ गया, उस समय तन्द्रावस्था में उन्हें एक शुभ स्वप्न दिखाई पड़ा। हे हनुमानजी! श्रवण करिये, मैं आपको वही चरित्र सुना रहा हूँ, इसके कहने और सुनने से भगवान श्रीरामजी महाराज के चरणों के प्रति सुन्दर प्रीति उत्पन्न होगी।

गाधि तनय पहँ गे शशि–भाला । स्वप्न दीन्ह तेहिं दीन दयाला ॥
व्याज यज्ञ रक्षण तुम जाहू । अवध बोलि रघुनन्दन लाहू ॥

जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वप्न देखा कि– दीनों पर दया करने वाले, चन्द्र–भाल प्रभु श्री शंकरजी, गाधिनन्दन श्री विश्वामित्रजी के समीप गये एवं उन्हें स्वप्न दिये कि– आप यज्ञ रक्षा का बहाना लेकर श्री अयोध्यापुरी जायें और वहाँ से रघुनन्दन श्री रामजी महाराज को माँग कर ले आयें।–––

ब्रह्म राम रघुवर कहँ लेई । मिथिला जाहु अमित सुख भेई ॥
सीता शक्तिहिं तिनहिं मिलावो । जग हित लीला आपु करावो ॥

–––पुनः परब्रह्म रघकुल श्रेष्ठ श्रीरामजी महाराज को लेकर असीमित सुख की भावना से श्री मिथिलापुरी जाँय तथा परमाद्याशक्ति श्रीसीताजी से उनका संयोग कराकर संसार के हित के लिए लीला विस्तार करवायें।–––

बिना सीय रसिकेश्वर आधे । पूरण होहिं योग युग साधे ॥
दूनहु मिलि करि चरित सुहाना । बोरहिं आनन्द सकल जहाना ॥

–––क्योंकि श्री सीता जी के बिना रसिकेश्वर श्रीरामजी महाराज अधूरे हैं और वे दोनों का संयोग विधान करवाने पर ही पूर्णता को प्राप्त करेंगे तब दोनों मिलकर सुन्दर चरित्र करते हुए सम्पूर्ण संसार को आनन्द के सागर में डुबा देंगे।

दो०– कौशिक मुनी प्रबुद्ध ह्वै, शिव अनुशासन मान ।
शिष्यन कहेव सनेह सो, सुनहु सकल मतिमान ॥१८२॥क॥

तदुपरान्त श्री विश्वामित्र जी जागृत हो चैतन्यता प्राप्त कर भगवान श्री शिवजी की आज्ञा स्वीकार अपने शिष्यों से प्रेम पूर्वक बोले– हे समस्त बुद्धिमान शिष्य गण, सुनें–––

मख राखन हित अवध हम, जावहिं नृपति समीप ।
राम लखन इत आइ युग, देइहैं निशिचर लीप ॥ख॥

–––हम अपने इस यज्ञ की रक्षा हेतु चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के पास श्री अयोध्या पुरी जा रहे हैं वहाँ से उनके दोनों राज कुमार श्रीरामजी व श्रीलक्ष्मण कुमार जी यहाँ आकर सभी राक्षसों को सहजतया समूल समाप्त कर देंगे।

प्रेम भाव भरि कौशिक धीरा । गये यथा विधि सरयू तीरा ॥
करि स्नान पहुँचि नृप द्वारे । लखे कुँवर तिमि स्वप्न प्रकारे ॥

अनन्तर परम धीर श्री विश्वामित्र जी जिस प्रकार प्रेम भाव में भरे हुए श्री सरयूजी के तट पर पहुँचे और वहाँ स्नान कर राजमहल के दरवाजे पर गये, कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने स्वप्न में उसी प्रकार का दर्शन किया।

दशरथ सुनि निज सहित समाजा । चरण शीश धरि ह्वै कृत काजा ॥
षोडस पूजि सुआसन आनी। सेवा कीन्ह सहित सुत रानी ॥

महा मुनीश्वर श्री विश्वामित्र जी का आगमन सुन, ससमाज श्री दशरथ जी महाराज उनके चरणों में सिर रख कर प्रणाम किये व पूर्ण काम हो गये। पुनः उन्हें सुन्दर आसन में बिठाकर उन्होने षोडसोपचार पूजन किया तथा पुत्रों व रानियों सहित उनकी सेवा की।

रामहिं देखि नयन भरि वारी । प्रेम मगन मुनि सुरति बिसारी ॥
कौशिक हिय नहिं दूसर भावा । रामहिं जान्यो ब्रह्म सुहावा ॥

श्री रामजी महाराज को देखकर श्री विश्वामित्र जी आँखों में अश्रु भर, प्रेम मग्न हो अपनी स्मृति भुला दिये। उस समय श्री विश्वामित्र जी के हृदय में कोई अन्य भाव नहीं था, उन्होंने श्री राम जी महाराज को सुन्दर पूर्णतम परब्रह्म ही जाना था।

भूप कहा किमि आयो नाथा। लहि आयसु हम होहिं सनाथा ॥
यज्ञ विघ्न की बात बखानी। माँगे रामहिं मुनि हित जानी ॥

तदुपरान्त चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज ने कहा– हे नाथ! आपका आगमन किस कारण हुआ है, आज्ञा प्राप्तकर हम सनाथ (सुरक्षित) हो जायेंगे। श्री महाराज का निवेदन श्रवणकर मुनिवर श्री विश्वामित्र जी ने अपने यज्ञ विघ्न की बात का बखान कर, श्री राम जी महाराज से सभी का हित समझ, चक्रवर्ती जी से श्री राम जी की याचना की।

दो०–राम विरह की सुरति करि, प्रेम विवश जिमि धीर ।
देन राम मन नहिं रुच्यो, स्वप्न लखा निमि वीर ॥१८३॥

श्री रामजी महाराज के वियोग का स्मरण कर प्रेम विवश हो परम धैर्यवान श्री दशरथजी महाराज को अपने मन में जिस प्रकार श्रीरामजी महाराज का देना अच्छा नहीं लगा उसी प्रकार का चरित्र निमिकुल वीर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने स्वप्न में दर्शन किया।

पुनि बशिष्ठ कहि कौशिक तेजा। नृपहिं प्रबोधेउ वच उर भेजा ॥
बहुरि इकान्त नृपहिं लै गयऊ। बोले वचन प्रेम उर उयऊ ॥

पुनः श्री बशिष्ठ जी ने श्रीविश्वामित्रजी के तेज व प्रताप का बखान कर, श्री दशरथ जी महाराज के हृदय व मस्तिष्क में अपने वचनों से शान्त्वना प्रदान की पुनः चक्रवर्ती महाराज श्री दशरथ

जी को एकान्त में ले जाकर प्रेम भरे हृदय से बोले–

सुनहिं नृपति नित करहिं विचारा । बैठे राउर सभा मझारा ॥
राम व्याह धौं केहिं विधि होई । दिखै न जगत कन्यका कोई ॥

हे राजन्! सुनें, आप नित्य ही सभा में बैठे हुए विचार करते रहते हैं कि श्रीरामजी का विवाह भला किस प्रकार होगा क्योंकि संसार में उनके योग्य कोई कन्या ही नहीं दीख रही।–––

राम समान वधू अनुकूला । मिलै तबहिं मैं होउँ निशूला ॥
सोइ मनोरथ पूरण हेतू । आये कौशिक आप निकेतू ॥

–––जब श्रीरामजी के समान व अनुकूल पुत्र–वधू मिलेगी तभी मैं शोकहीन (सुखी) हो पाऊँगा अतः आपकी उसी मनोकामना की पूर्ति के लिए श्री विश्वामित्र जी आपके भवन आये हुए हैं।

कौशिक संग राम कल्याना । होई सब विधि सुजस सुजाना ॥
अस्त्र रहस्यन ज्ञान मुनीशा । इन सम एइ जग अन्य न दीशा ॥

आप यह समझ लीजिये कि श्रीविश्वामित्रजी के साथ श्रीरामजी को सभी प्रकार से कल्याण व सुयश की प्राप्ति होगी। पुनः अस्त्रो–शस्त्रों के रहस्य का ज्ञान भी मुनीश्वर श्री विश्वामित्रजी को ऐसा है जिसमें इनके समान ये ही हैं तथा अन्य कोई नहीं दिखाई पड़ता।

रामहिं सो सब भाँति बताई । करिहहिं योग क्षेम सुखदाई ॥
औरहु विद्या कला सुहावन । दै रामहिं करिहैं जग भावन ॥

श्री राम जी को ये सभी प्रकार से वह ज्ञान बतलाकर सुख प्रदायक योग–क्षेम करेंगे तथा अन्य सुन्दर विद्यायें व कलायें आदि प्रदान कर ये श्रीरामजी महाराज को जगत प्रिय बना देंगे।

दो०–गुरु के वचन प्रतीति करि, प्रेम सहित नर नाह ।
राम लखन सौंपे तुरत, मन उत्साह अथाह ॥१८४॥

रघुकुल गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी के वचनों में अपरिमित विश्वास कर प्रेमपूर्वक मन में अपार उत्साह भरकर श्रीदशरथजी महाराज ने शीघ्र ही श्रीरामजी महाराज व श्री लखन लाल जी को श्री विश्वामित्र जी को सौंप दिया।

मातु पिता गुरु आयसु माँगी । कौशिक संग चले पद लागी ॥
राम चलत सब सखन बुलाई । दान मान दै तोष सुहाई ॥

तदनन्तर श्रीरामजी महाराज अपनी श्री अम्बा जी, श्री मान् पिता व श्री गुरुदेवजी से आज्ञा माँग व उन सभी के चरणों में प्रणाम कर श्री विश्वामित्र जी के साथ चल दिये। श्रीरामजी महाराज ने चलते समय अपने सभी सखाओं को बुलाकर सुन्दर दान, मान से संतुष्ट कर दिया।

मधुर मधुर गवने मन मोहत । प्रकृति दृश्य सब मारग जोहत ॥
जेहिं विधि तहाँ ताड़का मारी । लही सुगति अति दुष्टा नारी ॥

वे मन को मोहते हुए, प्रकृति के दृश्यों व मार्गों का अवलोकन करते हुए धीरे–धीरे प्रस्थान

किये। पुनः वहाँ उन्होंने ताड़का नामक राक्षसी का जिस प्रकार संहार किया और उस अत्यन्त दुष्टा स्त्री ने सुन्दर गति प्राप्त की–––

कौशिक प्रीति प्रतीति प्रमाना । अस्त्र कृशाश्व दिये मति वाना ॥
आश्रम लाय सुपूजा कीन्ही । देखी कुँअर बात सब झीनी ॥

–––तथा श्री विश्वामित्र जी ने अपनी प्रीति व प्रतीति के प्रमाण स्वरूप जिस प्रकार कृशाश्व मुनि द्वारा प्रदत्त अस्त्रों को प्रदान किया और उन्हें आश्रम लाकर उनकी सुन्दर पूजा की, ये सभी सूक्ष्म बातें कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वप्न में दर्शन की।

यज्ञारम्भ कराय कृपाला । रक्षत नित सह लछिमन लाला ॥
मारीचहिं बिनु फर शर मारी । दियो उड़ाय समुद्रहिं पारी ॥

पुनः कृपालु श्रीरामजी महाराज ने श्री विश्वामित्र जी का यज्ञ प्रारम्भ कराकर अपने अनुज श्रीलक्ष्मण कुमार सहित यज्ञ की नित्य रक्षा करने लगे तथा मारीच नामक राक्षस को वे बिना नोक का बाण मार कर समुद्र के पार उड़ा दिये।

दो०–बहुरि सुबाहुहिं जारि दिय, अग्नि बाण रघुराय ।
शेष हने लक्ष्मण शरहिं, निशिचर अधम निकाय ॥१८५॥

श्रीरामजी महाराज ने अग्नि–बाण से सुबाहु नामक राक्षस को भष्म कर दिया तथा बचे हुए निम्न कर्मा राक्षस समूहों को श्री लक्ष्मण कुमार जी ने बाणों से मार डाला।

सकल सुरन मिलि स्तुति कीन्हीं । पुष्प वरषि जय जय कहि दीन्ही ॥
धनुष यज्ञ सुनि राम गोसाईं । कौशिक संग चले हरषाई ॥

उस समय सभी देवताओं ने मिलकर श्री राम जी महाराज की अनुज सहित स्तुति की तथा पुष्प वरषाते हुए उन का जयनाद किया पुनः धनुष–यज्ञ का समाचार सुनकर श्रीरामजी महाराज श्री विश्वामित्र जी के साथ हर्षित होकर चल पड़े।

गंगा तरण अहिल्योद्धारण । देखि कुँवर सब तन मन वारण ॥
स्वप्नहिं लखि गुरु आनि उधारा । स्वप्नहिं मानेव मोद अपारा ॥

श्री राम जी का श्रीगंगाजी को पार करना तथा श्री अहल्या जी का उद्धार देखकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन पर अपना सर्वस्व शरीर व मन आदि न्योछावर कर दिया। पुनः स्वप्न में यह देखकर कि श्री गुरुदेव जी मेरे भवन पधार कर अपनी कृपा से मेरा उद्धार किये हैं अर्थात अनिश्चय की स्थिति से उबार लिये हैं, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी ने स्वप्न में ही असीम आनन्द प्राप्त किया।

स्वप्नहिं बहु विधि धनहिं लुटावा । गुरु सेवा शुभ रीति दिखावा ॥
देखे कुँवर राम रघुवीरहिं । पहुँचे मिथिला पावन तीरहिं ॥

उस समय स्वप्न में ही कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने बहुत प्रकार से धन लुटाते हुये श्री गुरुदेव

भगवान के सेवा की पवित्र पद्धति प्रगट की अर्थात् विविध प्रकार से अपने आचार्य का पूजन किये। पुनः कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने देखा कि श्रीरामजी महाराज श्री मिथिला पुरी के पवित्र अंचल में (समीप) पहुँच गये हैं।

कौशिक संग लखन रघुनाथा। सोह जमात ऋषिन की साथा॥
नगर ढिगहिं उपवन महँ उतरे। देखन चले नारि नर सिगरे॥

श्री रामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार श्री विश्वामित्र जी व ऋषियों की समाज सहित सुशोभित हो रहे हैं तथा श्री मिथिला नगर के समीप के बाग में ठहरे हुए हैं उन्हें देखने हेतु सभी स्त्री–पुरुष जा रहे हैं।

दो०–कुँवर लखेउ पुनि आपु कहँ, पितृ मंत्रि भट साथ।
जाइ मिले हरषाइ हिय, मिलि भेटे रघुनाथ॥१८६॥

पुनः कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने आपको श्री मान् पिताजी, मंत्रियों तथा वीर–रक्षकों सहित वहाँ जाकर हर्षित हृदय हो श्रीरामजी महाराज से भेंट करते हुए स्वप्न में देखा।

मिलन प्रीति शुचि सुखद सुहाई। भावत मनहिं वरणि नहिं जाई॥
मिलतहिं पुनि जगि परेउ कुमारा। तहँ नहि राम न दृश्य अपारा॥

हमारे श्री सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि उनकी वह पारस्परिक मिलनि व प्रीति अत्यन्त ही पवित्र सुखप्रद, सुन्दर तथा मन भावनी थी जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री राम जी से भेंट करते ही जनक कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी जागृत (स्वप्न से विरत) हो गये तब न तो वहाँ पर श्रीरामजी महाराज ही थे और न ही वह अपरिमित दृश्य था।

श्याम सुन्दर हे मोहन रामा। छोड़ि गये कहँ करि दुखधामा॥
शरण पाल प्रभु प्रिय जनपालक। मोर अभाग बनी सुख घालक॥

तब कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी, हे श्याम सुन्दर, हे मनमोहन! श्रीरामजी महाराज! आप मुझे छोड़, दुख का धाम बनाकर कहाँ चले गये? हे शरणागत पालक! हे प्रभु! हे प्रियकर! हे जनपालक! आज मेरी अभाग्य ही मेरे सुखों की विनाशक बनी हुई है।

नाथ नाथ हा राम पुकारत। भूली सुधि नहिं देह सम्हारत॥
विलखि विलखि पुनि रोवन लागेव। अश्रु प्रवाह बढ़त दुख पागेव॥

हे नाथ! हे नाथ, हे श्री राम जी पुकारते हुए कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी सम्पूर्ण स्मृति भूल गये, वे अपनी देह नहीं सम्हाल पा रहे थे, पुनः विलख–विलख कर रोने लगे, उनके आँसुओं का प्रवाह बढ़ गया और वे दुख में डूब गये।

सिद्धि कुँवरि लखि दशा विभोरी। कुँवर शीश धरि अंक बहोरी॥
पोछि अश्रु बहु किय उपचारा। स्वप्न अहै कह बारम्बारा॥

कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी की प्रेम विह्वल दशा को देखकर श्री सिद्धि–कुँवरिजी ने उनका सिर गोद में रख आँसुओं को पोंछ कर बहुत प्रकार से उपचार किया तथा पुनः पुनः समझाते हुये बोली–हे

नाथ यह तो स्वप्न था।

दो०– तदपि स्वस्थ नहिं पिय भयो, देखि कुँवरि धरि धीर ।
हरि कीर्तन अरु हरि कथा, करी सखिन सह वीर ॥१८७॥

जब उनके प्रिय स्वामी श्रीलक्ष्मीनिधिजी स्वस्थ नहीं हुए तब श्री सिद्धि–कुँवरि जी उन्हें देख, धैर्य धारण कर सखियों सहित हरि कीर्तन व भगवत्कथा कहने लगीं।

दण्ड चार महँ भये सचेता । हरषि कुँवरि नहवाय निकेता ॥
स्वस्थ शरीर होन के काजा । गंध माल पय औषध साजा ॥

तब चार दण्ड (९६ मिनट) में वे सचेत हुए, उन्हें देख श्रीसिद्धि कुँवरिजी ने हर्ष पूर्वक महल में ही स्नान कराया तथा उनका शरीर स्वस्थ होने के लिए, इत्र, माला, दूध व औषधि आदि वस्तुएँ–––

दै पुनि कछु हरि भोग पवायो । पूर्ण स्वस्थ तब कुँवर लखायो ॥
स्वप्न सुनायो प्रिय हँकारी । विधिवत यथा लखेव सुखकारी ॥

–––देकर पुनः कुछ भगत्प्रसाद पवाया तब कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी पूर्ण स्वस्थ दिखाई पड़े। स्वस्थ होने के उपरान्त श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने अपनी प्रिया श्री सिद्धि–कुवरि जी को बुलाकर विधिवत वह सुखकारी स्वप्न सुनाया जो उन्होंने देखा था।

कहि सुनि पुनि दम्पति अनुरागे । बोली कुँअरि अधिक सुख पागे ॥
ब्रह्म मुहूरत स्वप्न पियारे । होय सत्य सत्य योगि लखारे ॥

इस प्रकार दम्पति श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँवरि जी परस्पर में स्वप्न को कह–सुनकर अनुराग में भर गये। पुनः श्री सिद्धि कुँवरि जी अत्यधिक सुख में डूब कर बोली हे प्यारे! ब्रह्म मुहूर्त का स्वप्न निश्चय सत्य होता है, ऐसी बात योगियों ने अनुभव की है।

सुभग अंग देखहिं मम फरकत । आपहुँ अंग दहिन अति उमकत ॥
मन प्रसन्न अस भयो न कबहूँ । होहि स्वप्न सब सत्यहिं कहहूँ ॥

हे प्राणनाथ! देखिये तो, मेरे सुन्दर बायें अंग फड़क रहे हैं तथा आपके भी दाहिने अंग अत्यधिक उमग रहे हैं। हमारे मन भी ऐसे प्रसन्न हो रहे हैं जैसे कभी नहीं हुए अतः मैं सत्य कह रही हूँ कि आपका यह स्वप्न निश्चय सत्य होगा ।

दो०– भाँति भाँति के सगुन शुभ, प्रति दिन सुभग लखात ।
अवशि पुजै मन कामना, संशय नाहिं दिखात ॥१८८॥

इस समय प्रतिदिन हमें विभिन्न प्रकार के शुभ शकुन दिखाई पड़ते हैं अतएव हमारी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी, इस बात में किंचित भी सन्देह नहीं दीख रहा।

नवाह्न पारायण प्रथम विश्राम

करतल देखहिं अबहिं निहारी । इष्ट दरश दिवि रेख उदारी ॥
प्रकटी सम्प्रति सुनु मम नाथा । मोरे कर अरु आपहुँ हाथा ॥

हे नाथ! आप इन हथेलियों को तो देखिये, इष्ट दर्शन की दिव्य व उदार रेखा अभी अभी मेरे तथा आप (हम दोनों) के हाथों प्रगट हो गयी है।

प्रिया वचन सुनि कुँवर प्रवीना । भयो प्रेममय सुख रस भीना ॥
हरि प्रेमी गुनि हृदय लगाई । कुँवरि प्यार कीन्हेव सुखदाई ॥

अपनी प्रिया श्रीसिद्धि कुँवरिजी के वचनों को सुनकर परम दक्ष कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी सुख व रस में भीग, प्रेम–स्वरूप हो गये तथा श्रीसिद्धि कुँवरिजी को भगवप्रेमी समझ हृदय से लगाकर सुख प्रदायक प्यार किये।

मन उत्साह कहै को पारा । कुँवर देह जनु प्रीति सम्हारा ॥
दरश प्यास नयनन अति भारी । कब मिलिहैं रघुवर धनुधारी ॥

उनके मन के उत्साह का वर्णन कर कौन पार पा सकता है, कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी का शरीर तो मानो प्रेम से ही बना हुआ था। कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी के नेत्रों में श्री राम दर्शन की अत्यधिक तृषा थी कि धनुष को धारण करने वाले श्रीरामजी महाराज से उनका कब मिलन होगा।

कहन चहत कोउ लागत मन में । आय गयो प्रभु जनक अँगन में ॥
सो वासर बीत्यो निशि आई । राम राम करि गई बिताई ॥
प्रातकाल उठि नित्य निबाही । बैठे कुँअर भवन मधि माही ॥

उनके मन में ऐसा लगता है था मानो कोई कहना ही चाहता हो कि प्रभु श्रीरामजी महाराज मिथिलेश्वर श्री जनक जी के आँगन में पधार गये। इस प्रकार वह दिन व्यतीत हुआ तथा रात्रि आई जो श्रीराम नाम जपते जपते ब्यतीत की गयी। पुनः प्रातः काल उठकर नित्य की दिनचर्या का निर्वाह कर कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधि जी अपने महल के मध्य भाग विराज गये।

दो०– याज्ञवलिक मुनि आवते, सुनतहिं द्रुत उठि धाय ।
परेउ चरण अति हर्ष युत, प्रेम वारि दृग छाय ॥१८९॥

श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज आ रहे हैं यह समाचार सुनते ही कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी शीघ्र उठकर दौड़ते हुए अत्यन्त हर्ष में भरकर, नयनों में प्रेमाश्रु भरे हुए श्री गुरुदेव जी के चरणों में गिर पड़े।

चरण धूरि सिर नयनन लाई । कंठ लगाय कछुक लिय खाई ॥
देत पाँवड़े वस्त्र सुशोभित । छत्र चँवर लिय करन प्रलोभित ॥

उन्होंने श्री गुरु चरणों की पवित्र रज (धूल) को सिर, नेत्र व गले में लगाकर किंचित मुख मे डाल लिये, पुनः परम सुशोभित वस्त्रों के पाँवड़े विछाते हुये, छत्र व चँवर हाथों में लिए हुए आचार्य मुख पंकज पर लुब्ध बन–––

शान्ति पाठ सह द्विजन कुमारा । गयउ गुरुहि लै भवन मँझारा ॥
अन्तः पुर सिंहासन भ्राजा । गुरुहिं बिठायो सुन्दर साजा ॥

ब्राह्मणों के साथ वेद–पाठ करते हुए कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी अपने गुरुदेव श्रीयाज्ञवल्क्यजी को अपने भवन के मध्य अन्तःपुर में ले गये वहाँ सुन्दर सुशोभित सिंहासन में सुन्दर साज–सज्जा सहित पधरा दिये।

सहित स्वनारि दण्डवत कीन्हा । पद पखारि पादोदक लीन्हा ॥
षोडस भाँति पूजि सनमानी । आरति करि पुनि स्तुति ठानी ॥

पुनः श्रीलक्ष्मीनिधिजी अपनी पत्नी श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित दण्डवत कर, आचार्य चरणों का प्रच्छालन कर चरणामृत पान किये तथा आदरपूर्वक षोडसोपचार पूजन कर आरती उतारी व स्तुति की।

करि परदक्षिण पुष्प सुदीन्हा । भाव सहित प्रणाम पुनि कीन्हा ॥
मणिगन वसन भूमि धन गाई । अंह रहित अरप्यो हरषाई ॥

पुनः उन्होंने अपने आचार्य श्री याज्ञबल्क्य जी की प्रदक्षिणा कर पुष्पा०जलि दी तथा भाव पूर्वक प्रणाम किया अनन्तर अभिमान रहित व हर्षित होकर मणि, वस्त्र, भूमि, धन तथा गौ आदि वस्तुएं समर्पित किये।

पानि जोरि पुनि विनय उचारे । धन्य भाग गुरुदेव हमारे ॥
बिन बोले प्रभु आपन जानी । कियो पुनीत भवन इत आनी ॥

पुनः श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने हाथ जोड़कर विनय की– हे श्रीगुरुदेवजी! हमारे धन्य भाग्य हैं जो आप श्री ने मुझे अपना समझ बिना बुलाये ही यहाँ पधार कर इस भवन को पवित्र कर दिया।

त्यागि महत्व सुनेह पसारा । मनहु कृपा कर रूप सम्हारा ॥
गुरु प्रसन्न तिरदेव प्रसन्ना । गुरू खिन्न सब देवहु खिन्ना ॥

आपने अपनी महानता को त्याग, मानों कृपा का रूप धारण करमुझ पर प्रेम का प्रसार किया है क्योंकि यदि श्री गुरुदेव जी प्रसन्न हैं तभी त्रिदेव (श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी) भी प्रसन्न हैं व यदि श्रीगुरुदेवजी दुखी हो गये तो सभी देवता स्वयं दुखी हो जाते हैं।

दो०–नाथ दास अहनिशि रहौं, इहै कृपा करि देहु ।
मुखोल्लास मम रहनि सो, रहै गुरु करि नेहु ॥१९०॥

हे नाथ! आप मुझे कृपा कर यही दीजिये कि मैं अहिर्निश आपका सेवक बना रहूँ, मेरे आचरण से आप (श्री गुरुदेव जी) का मुखोल्लास हो तथा आपका मुझ पर सदैव स्नेह बना रहे।

कारण कवन नाथ इत आये । मोकहँ कत नहिं बोलि पठाये ॥
आयसु हो तजि सकल संकोचा । करहुँ शीष धरि बिन कछु सोचा ॥

हे नाथ! क्या कारण है? कि आप स्वयं यहाँ चलकर आ गये, मुझे नहीं बुला भेजा, आप सभी

प्रकार के संकोच का त्याग कर आज्ञा प्रदान करें, मैं कोई विचार किये बिना आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर लूँगा———

बड़ी भाग शिष होवै जबहीं। गुरु निदेश कछु देवै तबहीं॥
सुनि बोले मुनिराज सुबानी। धन्य कुँवर गुरु तत्वहिं जानी॥

———क्योंकि जब शिष्य की प्रबल सौभाग्य होती है तभी श्री गुरुदेव उसे कुछ आज्ञा प्रदान करते हैं। उनके वचनों को सुनकर मुनिराज श्री याज्ञवल्क्य जी बोले— हे कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी! 'गुरु तत्व' को भली प्रकार जानने वाले, आप धन्य हैं।

भक्ति आपने मोहि वश कीन्हा। जगतहिं लियो लुभाय प्रवीना॥
सुनहु भयो जेहि कारण आना। तात करहुँ सो बेगि बखाना॥

हे परम दक्ष कुमार! आपने अपनी भक्ति से मुझे वशीभूत और संसार को लुब्ध कर लिया है। हे तात! सुनिये! हमारा यहाँ आना जिस कारण हुआ है, मैं शीघ्र ही उसे बखान कर रहा हूँ।

ब्रह्मचारि यह शिष्य हमारा। आय बतायो बात सुसारा॥
तुम्हहिं बतावन आयउँ ताता। सुनतहिं श्रवण अमित सुखदाता॥
जासु विरह सागर नित मगना। त्याग जगत सुख रहहु अलगना॥

हे तात! यह ब्रह्मचारी हमारा शिष्य है, इसने हमे सुन्दर सार युक्त बात आकर बताई है। अतः श्रवणों को असीम सुख प्रदान करने वाली वह बात, श्रवण करते ही मैं आपको बताने आ गया। आप जिनके वियोग—सागर में नित्य मग्न रहते हैं तथा सांसारिक सुखों का त्यागकर उनसे असंग बने हुये हैं———

दो०—परब्रह्म परमार्थ पर, राम लखन सुख रूप।
दशरथ अजिर विहारिणौ, कौशिक संग अनूप॥१९१॥

———तथा जो सुख स्वरूप, अनुपमेय, परम परमार्थ स्वरूप, पूर्णतम परब्रह्म व चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज के प्रांगण में विहार करने वाले श्रीरामजी महाराज हैं वे अपने अनुज श्री लक्ष्मण कुमार जी के सहित श्री विश्वामित्र जी के साथ———

उतरे उपवन बाहर नगरी। अबहिं दीन यह शिष सुधि सगरी॥
जान जिये की प्रीति तुम्हारी। तुरत बतायों आय सुखारी॥

———नगर के बाहर उपवन में आये हुए हैं, यह सभी समाचार इस शिष्य ने अभी—अभी मुझे दिया है अतः आपके हृदय की उनके प्रति प्रीति को समझ, यहाँ आकर मैने यह सुखकारी समाचार शीघ्रतापूर्वक आपको सुनाया है।

सुनत कुँवर सुख सिन्धु डुबोयो। बचन कढ्यो नहि जनु सुख सोयो॥
कछुक काल धीरज लहि बोले। वाणी गद्‌गद् प्रिय रस घोले॥

अपने गुरुदेव भगवान की बातें सुनते ही कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी सुख के सागर में डूब गये, उनके वचन नहीं निकल पाये जैसे वे सुख से सोये हुए हों। पुनः कुछ समय में धैर्य धारण कर प्रिय व रस से घुली हुई गदगद वाणी से बोले–

धन्य धन्य गुरुदेव कृपाला। दीन्ह दिखाय गुरुत्व सुकाला॥
इष्ट देव दिवि दरशन हेतू। मोहिं बुलावन आय निकेतू॥

हे परम कृपालु श्री गुरुदेव जी! आप धन्यातिधन्य हैं जो आपने सुन्दर समय में अपने आचार्यत्व को दिखा दिया तथा मुझे इष्टदेव का दिव्य दर्शन कराने के लिए मेरे भवन, मुझे बुलाने हेतु आये हुए हैं।

बहु विधि नाथ कीन्ह उपकारा। बन्दौ प्रभु पद बारम्बारा॥
सद्गुरु सो जो ब्रह्म मिलावै। करि उपदेशहिं जगत छुड़ावै॥

हे नाथ! आपने मुझ पर बहुत प्रकार से उपकार किया है मैं आपकी बारम्बार चरण वन्दना करता हूँ। यथार्थ में श्री सदगुरु तो वही हैं जो जीव का ब्रह्म से मिलन करा दें तथा उपदेश दे–देकर सांसारिक सम्बन्धों से शिष्य को मुक्त कर दें।–––

दो०–शिष्य सोइ सदगुरु भगत, प्रीति प्रतीति सुरीति।
ब्रह्म दरश की लालसा, लियो राग रिस जीति॥१९२॥क॥

–––तथा शिष्य वही है जो प्रीति, प्रतीति व सुरीति पूर्वक श्री सद्गुरु देव जी का भक्त और ब्रह्म दर्शन करने की लालसा से युक्त राग तथा क्रोध को जीत लिया है।

कपट रहित अनुवृत्ति लहि, आत्म दैव निज मान।
आत्मार्पण युत सेव गुरु, पावै मोद महान॥ख॥

कपट रहित हो आचार्यानुवर्तन कर, उन्हें अपनी आत्मा से भी प्रिय देवता समझ व आत्म समर्पण युक्त श्रीगुरुदेवजी की सेवा करने वाला ही महान आनन्द प्राप्त करता है।

यदपि नाथ मैं सब विधि हीना। शिष्य धरम नहिं एकहुँ लीना॥
राउर तदपि कीन्ह अति छोहा। लहिहौं ब्रह्म आज दृग जोहा॥

हे नाथ! यद्यपि मैं सभी प्रकार से हीन हूँ तथा शिष्य के एक भी धर्म को धारण नहीं किया हूँ फिर भी आपने, मुझ पर अत्यधिक कृपा की है कि– आज मैं नेत्रों से पर ब्रह्म श्रीराम का दर्शन प्राप्त करूँगा।

धन्य धन्य मैं सब विधि धन्या। पायों गुरु की कृपा सुमन्या॥
अस कहि चरण पर्यो भहराई। गुरु उठाय निज हिये लगाई॥

मैं सभी प्रकार से धन्यातिधन्य हो गया जो श्रीगुरुदेवजी की कृपा से अपनी मनोभिलाषित सुन्दर निधि प्राप्त कर लिया ऐसा कहकर वे उनके चरणों में भहरा कर गिर पड़े तब श्री गुरुदेवजी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया–––

बोले अमिय सरिस मृदु बाता । दरशन हेतु चलहु द्रुत ताता ॥
परब्रह्म नर देव कुमारा । धोखेउ जनि कहुँ कियो प्रचारा ॥

–––तत्पश्चात् आचार्य श्री अपनी अमृत समान कोमल वाणी से बोले– हे तात! शीघ्र ही उनके दर्शन के लिए चलिये, परन्तु वे राजकुमार श्री राम, मनुष्यों के देवता तथा परब्रह्म हैं ऐसा विज्ञापन आप भूल कर भी मत करियेगा।

लीला ललित गुप्त नर भावा । करन हेतु प्रभु प्रिय मन लावा ॥
जाय पितहिं सब सुधि बतरावो । विधि विधान युत दरश सिधावो ॥

क्योंकि प्रभु श्रीरामजी महाराज ने अपनी यह प्रिय सुन्दर लीला गुप्त रूप से मनुष्य के भाव में करने का ही मन में निश्चय किया है। अब आप जाकर अपने श्री मान पिताजी को सम्पूर्ण समाचार बताइये और विधि–विधान पूर्वक उनके दर्शनों को प्रस्थान करिये।

चलिहैं हमहुँ मिलन मुनि नाथहिं । सह सुकुमार राम रस गाथहिं ॥
अस कहि गवने मुनि निज आसन । कुँवर प्रीति वरणत मन भाषन ॥

परम सुकुमार रस स्वरूप श्रीरामजी महाराज सहित मुनि–नाथ श्री विश्वामित्र जी से मिलने के लिए वहाँ हम भी चलेंगे, ऐसा कहकर मुनिवर श्रीयाज्ञवल्क्यजी कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी की प्रीति का वर्णन मन व वाणी से करते हुए अपने आश्रम को प्रस्थान कर गये।

दो०–सिद्धि कुँवरि सन द्रुत कहेउ, भयो स्वप्न सब सत्य ।
आज मिलौं निज देव सों, होहिं सुफल सब कृत्य ॥१९३॥

तब श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने श्रीसिद्धि कुँवरिजी से शीघ्रतापूर्वक कहा कि हमारे सभी स्वप्न सत्य हो गये। मैं आज अपने इष्टदेव श्रीरामजी महाराज से मिलूँगा तथा मेरी सभी चेष्टायें सुन्दर फलीभूत हो जायेंगी।

गुरु निदेश राखहु मन गोपी । कहि अस चलेउ पिता घर सोपी ॥
जाइ कुँअर निज शीष नवावा । प्रेम पुलकि दृग नीर बहावा ॥

श्री गुरुदेवजी की आज्ञानुसार, इसे अपने मन में गुप्त ही रखना, ऐसा कहकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने पिताजी के महल को चल दिये। वहाँ जाकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें शीश झुका प्रणाम किया उस समय उनका शरीर प्रेम से पुलकित हो गया और आँखों से आँसू बहने लगे।

शीश सूँघि पितु बचन उचारे । कहहु कुशल प्रमुदित सुख सारे ॥
पानि जोरि तन पुलकित ठाढ़े । बोले बयन प्रेम वर बाढ़े ॥

पिता श्री जनक जी महाराज ने उनका सिर सूँघकर कहा– हे सुख के सारभूत कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप आनन्दपूर्वक अपनी कुशलता बखान करें। तब कुँवर श्री लक्ष्मीनिधिजी पुलकित शरीर खड़े हो गये तथा सुन्दर प्रेम बढ़ाकर बोले–

दाऊ आज भवन मम आई । अबहिं बतायो गुरु सुख छाई ॥
मुनि कौशिक युग राज कुमारा । ऋषिन्ह सहित उपवन पगु धारा ॥

हे श्रीमान दाऊजी! आज मेरे सदन में आकर सुखपूर्वक श्री गुरुदेव जी ने अभी–अभी बताया है कि दो राजकुमारों तथा ऋषि मण्डली सहित श्री विश्वामित्र जी नगर के वाह्य उपवन में पधार चुके हैं।

आपहु जेहिं हित लगन लगाई । आये ब्रह्म राम रघुराई ॥
बोले जनक छिपावहु ताता । गुरु निदेश नहिं कहेउ सुबाता ॥

आप श्री भी जिनके प्रेम के लिये लगन लगाये रहते हैं वे रघुकुल नरेश पूर्णतम परब्रह्म श्रीरामजी महाराज आ गये। उनकी बातें सुनकर श्री जनक जी महाराज बोले– हे तात! इसे गुप्त ही रखिये, श्री गुरुदेव जी आज्ञानुसार इस सुन्दर बात को प्रकाशित मत कीजिये।

दो०– जाहु तयारी करन सब, ऋषिहिं मिलन के काज ।
ज्ञाति सचिव बहु वीर लै, विप्र साधु सँग साज ॥१९४॥

अब जाकर आप ऋषिवर श्री विश्वामित्र जी से भेंट करने हेतु सभी तैयारियाँ कर ले तथा बन्धु–बान्धवों, मन्त्रियों, बहुत से वीरों, ब्राह्मणों व साधुओं को साथ लेकर भेंट की साम्रगी सजा लीजिये।

पुरजन परिजन अरु उपहारा । हमहुँ चलैं लैं मोद अपारा ॥
करि प्रणाम द्रुत कुँवर सिधाये । सकल सखन कहँ तुरत बुलाये ॥

हम भी असीम आनन्दपूर्वक पुरजनों व परिजनों सहित विविध उपहारों को लेकर साथ चलेंगे। श्री विदेहराज जी महाराज की आज्ञा स्वीकार, कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी उन्हें प्रणाम कर त्वरा पूर्वक प्रस्थान कर गये तथा शीघ्र ही अपने सभी सखाओं को बुलाये।

समाचार कहि कहेउ चलहिं सब । सुनि सुख लहे सखा परिकर तब ॥
ह्वै तयार पुनि गे पितु पासा । चलेउ जनक ऋषि मिलन सुआसा ॥

अपने सखागणों से सभी समाचार सुनाकर कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी बोले–आप सभी उनके दर्शन को चलें, तब ऐसा सुनकर सभी सखाओं व परिकरों ने सुख प्राप्त किया। पुनः कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी सभी तैयारी पूर्णकर अपने श्री मान् पिताजी के समीप गये। इस प्रकार श्री जनक जी महाराज अपने हृदय में सुन्दर अभिलाषा लेकर ऋषिवर श्री विश्वामित्रजी से मिलने हेतु चल दिये।

सबहिं भाँति करि विविध बनाऊ । जात मिलन सब कहँ लै राऊ ॥
कुँवर हृदय मन मोद अपारा । आज मिलिहिं मम प्रीतम प्यारा ॥

श्री महाराज जनक जी विभिन्न प्रकार के साज–सज्जा से युक्त होकर सभी को साथ ले ऋषिवर श्री विश्वामित्र जी से मिलने जा रहे हैं। उस समय कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय व मन में असीम आनन्द हो रहा था कि आज मेरे प्राणों के प्यारे प्रियतम श्री राम जी मुझसे मिलेंगे।

चलत हृदय अति लागत नीको । त्रिभुवन सुख सब मानत फीको ॥
अस सूझत द्रुत उड़ि प्रभु मिलऊँ । बिन प्रभु लखे काल सब बिलऊँ ॥

चलते समय उनके हृदय में अतीव आनन्द हो रहा था उसके आगे वे तीनों लोकों के सभी सुखों को निकृष्ट समझ रहे थे, उन्हें ऐसा लग रहा था कि शीघ्र ही प्रभु श्रीरामजी महाराज से उड़कर जा मिलूँ तथा प्रभु श्री राम जी के दर्शन बिना जो समय व्यतीत होरहा है उसे समाप्त कर दूँ।

दो०—रघुकुल मणि श्रीराम प्रिय, मिलिहैं निज जन जानि ।
अहो भाग्य मम अमित जग, सन्मुख तिरशुल पानि ॥१९५॥

अहा! श्री रघुकुल के मणि परम प्रिय श्री रामजी महाराज अपना जन समझ कर मुझसे मिलेंगे। इस संसार में मेरी असीम सौभाग्य है तथा त्रिशूल पाणि श्री शिव जी अनुकूल हो गये हैं।

गये जनक मुनिराज समीपा । राजत मुनि बिच ऋषि कुल दीपा ॥
कीन्ह दण्डवत पद धरि शीशा । लीन्ह लगाय हृदय मुनि ईशा ॥

श्री जनकजी महाराज मुनिराज श्री विश्वामित्रजी के समीप गये जहाँ पर ऋषिकुल के प्रकाशक श्री विश्वामित्र जी मुनियों के बीच विराज रहे थे। श्री जनकजी महाराज ने उनके चरणों में सिर रख प्रणाम किया तब मुनीश श्री विश्वामित्र जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया।

सबहिं द्विजन नृप माथ नवायो । पाइ सुआशिष सुठि सुख पायो ॥
कुँअरहिं करत दण्डवत देखी । कौशिक हिय भो प्रेम विशेषी ॥

श्री जनक जी महाराज ने सभी ब्राह्मणों को सिर झुका प्रणाम किया व उनसे सुन्दर आशीष पाकर परम सुख प्राप्त किये। कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधि जी को दण्डवत करते देख कर श्री विश्वामित्र जी के हृदय में विशेष प्रेम उमड़ आया।

शीष सूँघि कर परशि सुभाये । कीन्ह प्यार गुनि भक्त अमाये ॥
कौशिक वन्दी सकल समाजा । बैठि यथा विधि पूरण काजा ॥

श्री विश्वामित्र जी ने कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधि जी का सिर सूँघ, हाथों से सुन्दर शिर स्पर्श करते हुए निश्छल भक्त समझकर अतिशय प्यार किया। पुनः विदेह राज जी महाराज के साथ आये समाज ने श्री विश्वामित्र जी की पद–वन्दना की तथा पूर्ण–काम हो यथा–रीति बैठ गयी।

भूप भेंट चरणन धरि आगे । पद समीप बैठे सुख पागे ॥
छेम कुशल इक एकन पूछे । प्रेम पगे मन भाव अछूछे ॥

तदुपरान्त श्री महाराज जनक जी श्री विश्वामित्र जी के चरणों के आगे अपनी भेंट रखकर, चरणों के समीप सुख में पगे हुए बैठ गये, तत्पश्चात् प्रेम प्लावित मन व भाव में भर कर उन्होने परस्पर कुशल क्षेम पूँछी।

दो०—कुँवर लखे नहिं राम को, चितवत ऋषि की ओर ।
मनहु मूक भाषा बदत, देवैं नृपति किशोर ॥१९६॥क॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने जब श्रीरामजी महाराज को नहीं देखा तब वे मुनिवर श्री विश्वामित्र जी की तरफ ऐसे निहारने लगे, मानों वे मूक भाषा से कह रहे हों कि मुझे राज किशोर श्री राम जी महाराज का दर्शन प्रदान करें।

चितवत चारौं ओर, रवि कुल रवि रघुनाथ कहँ ।
करि अन्वेषण भोर, मनहु धनिक निज निधिहिं चह ॥ख॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी चारों–तरफ सूर्य–कुल के सूर्य श्री राम जी को खोजते हुए इस प्रकार देख रहे थे मानो कोई धनवान अपनी खोई हुई निजी सम्पति को आतुरता पूर्वक प्राप्त करना चाहता हो।

राम लखन मन हरण सलोने । श्यामल गौर हरित मणि सोने ॥
आये तहँ दोउ नयनन तारे । गये रहे वाटिक हिय हारे ॥

उसी समय मन को हरण करने वाले, श्याम और गौर वर्ण वपुधारी, हरित मणि (मरकत मणि) व सुवर्ण की छवि से सम्पन्न, सभी के नेत्र–सितारे, सलोने युगल राज कुमार, श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार जी वहाँ आ गये, हृदय हरण करने वाले वे दोनो राजकुमार वाटिका में गये हुए थे।

सहित भूप सब सभा समाजा । उठी देखि आवत द्युति भ्राजा ॥
पानि जोरि करि सभहिं प्रणामा । गुरु पद धरेउ शीश शुभ रामा ॥

परम प्रकाशवान श्रीरामजी महाराज को आते देख श्रीजनकजी महाराज सहित उपस्थित सम्पूर्ण समाज उठकर खड़ा हो गया तब श्रीरामजी महाराज ने अपने हाथ–जोड़ सभी को प्रणाम किया व गुरुदेव श्री विश्वामित्र जी के चरणों में अपना शुभ शिर रखकर प्रणाम किया।

करत प्रणाम हृदय मुनि लाये । निकटहिं बैठे आयसु पाये ॥
रामहिं देखि सभा सब हरषी । पुलक अंग लोचन जल वरषी ॥

श्री राम जी को प्रणाम करते देख मुनिवर श्री विश्वामित्र जी ने उठाकर हृदय से लगा लिया पुनः उनकी आज्ञा पाकर समीप ही वे बैठ गये। श्रीरामजी महाराज का दर्शनकर सम्पूर्ण सभा हर्षित हुई तथा सभी के शरीर पुलकित व नेत्रों से अश्रु प्रवाह होने लगा।

मनहर मूरति देख नृपाला । प्रेम विभोर भये तेहि काला ॥
प्रेम भाव सात्विक तन दरशे । जनि कोउ गुनै राग रिस परशे ॥
परमानन्द मगन नृप राई । ज्ञान विराग विरागहिं पाई ॥

अनन्तर महाराज श्री जनक जी श्री राम जी का मनोहारी विग्रह देखकर प्रेम विभोर हो गये, उनके शरीर में प्रेम के सात्विक चिन्ह दिखाई पड़ने लगे। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि श्री विदेहराज जी की ऐसी अवस्था देखकर किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि उनके हृदय में राग और द्वेष का स्पर्श भी है। श्री राम जी महाराज का दर्शन कर श्री जनक जी महाराज तो परमानन्द की स्थिति में मग्न हो गये थे व उनके ज्ञान व वैराग्य ने भी वैराग्य

की अवस्था प्राप्त कर ली थी।

दो०–सहज ब्रह्म सुख लीन मन, तुरतहि कीन्हो त्याग।
राम रूप रति जाल फँसि, चहत न निकसन भाग ॥१९७॥

सहज ही ब्रह्म सुख में लीन उनके मन ने अपने ब्रह्म सुख का तुरन्त त्याग कर दिया तथा वह श्री राम जी महाराज के रूप–प्रेम के जाल में फँस कर वहाँ से अब निकलना नहीं चाहता।

कुँवर दशा वरणिय केहि भाँती। प्रेम छकी रस रीति दिखाती ॥
प्रथमहिं सुखकर श्यामल रामा। कुँअरहिं लखे जानि निज धामा ॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अवस्था का किस प्रकार वर्णन किया जाय वह तो अपने प्रेमास्पद के प्रेम में छकी हुई रसमयी पद्धति के समान दिख रही थी। सुखकरण श्याम सुन्दर श्रीरामजी महाराज ने कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के पूर्व ही उनके हृदय को अपना निवास समझकर देखा।

कुँअरहुँ लखे लखत निज ओरा। महा भाव रस रँगेउ किशोरा ॥
को हम कहाँ बिसरि सुधि गयऊ। प्रेम सिन्धु मन मग्नहिं भयऊ ॥

अनन्तर जनक किशोर कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने श्री राम जी महाराज को अपनी ओर निहारते देखा तो वे रस की महाभाव दशा (प्रेम की सर्वोच्च अवस्था) में रँग गये। हम कौन हैं, कहाँ हैं आदि सभी स्मृतियाँ उन्हे भूल गयी व उनका मन प्रेम के सागर में मग्न हो गया।

कहँ रघुवीर कहाँ निज देहा। भूल ज्ञान इक रहेव सनेहा ॥
रोम खड़े तन थर थर काँपी। चित्र समान बैठ तन थापी ॥

श्री राम जी महाराज कहाँ हैं? उनका स्वयं का शरीर कहाँ है? यह सभी ज्ञान उन्हें भूल गया– केवल प्रेम ही प्रेम शेष रहा। उनके रोम खड़े हो गये व शरीर थरथराहट के साथ प्रकम्पित होने लगा तब वे चित्र लिखित मूर्ति के समान शरीर को स्थापित कर बैठ गये।

अश्रु प्रवाह स्वेद तन भीजा। भयो भंग स्वर प्रेम पसीजा ॥
शिथिल शरीर मुखहुँ कुम्हलाया। लुढ़कि धरनि जनु प्रलय जनाया ॥

आँसुओं के प्रवाह व पसीने से शरीर भीग गया, स्वर भंग हो गया, प्रेम के सात्विक भाव प्रगट हो गये, शरीर शिथिल तथा मुख कुम्हला गया और वे इस प्रकार भूमि में लुढ़क पड़े मानों प्रलय आ गया हो अर्थात् उनके शरीर में प्रेम के सभी सात्विक चिन्ह उदित हो गये और अन्तिम अवस्था आ गयी।

दो०–हृदय हरण जन मन रमण, वशीकरण रघुचन्द।
चख सर हनि जनु रुज हरत, देखत निमिकुल नन्द ॥१९८॥

उस समय हृदय हरण करने वाले, सभी जीवों के मन में रमण कर वश में कर लेने वाले

रघुकुल के चन्द्रमा श्री राम जी महाराज निमि कुल नन्दन श्री लक्ष्मीनिधिजी को ऐसे निहार रहे थे जैसे अपने नयन बाण का प्रहार कर उनके समस्त विकारों का निवारण कर रहे हों।

देखि कुँअर की प्रीति सुहावन। आपहुँ छके प्रेम प्रिय पावन॥
बूड़त प्रेम सिन्धु रघुराया। लखे सबहिं तहँ कीन्ह उपाया॥

निमिकुल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रीति को देखकर प्रभु श्रीरामजी महाराज भी परम पवित्र प्रेम में डूब गये। अन्नतर श्री राम जी महाराज ने अपने प्रेम के महा सागर में सभी को डूबते हुये देखकर उससे उबारने के लिये प्रयत्न किया।

सब समर्थ प्रभु निजहिं सँभाला। धीरज धरेउ मनहिं ततकाला॥
जबहिं राम धीरज कहँ लयऊ। तबहिं सभा नृप कुँअरहुँ भयऊ॥

सर्व समर्थवान प्रभु श्रीरामजी महाराज ने अपने आपको संभाल शीघ्र ही मन में धैर्य धारण कर लिया तब श्रीरामजी महाराज के धैर्य धारण करते ही सम्पूर्ण सभा, श्रीजनकजी महाराज तथा कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी को भी धैर्य आ गया।

जगदात्मा प्रेरक हिय स्वामी। करहिं छनक जस चाह भ्रमामी॥
धीरज धरि सब प्रभुहिं सुधीवत। मनहुँ नयन मग चाहहिं पीवत॥

प्रभु श्री राम जी महाराज सम्पूर्ण संसार की आत्मा व हृदय के प्रेरणा श्रोत हैं, वे जैसी इच्छा करते हैं, एक ही क्षण में सभी को भ्रमित कर वैसा कर लेते हैं। उस समय सभी लोग धैर्य धारण कर प्रभु श्री राम जी महाराज को ऐसे अपलक निहार रहे थे मानों वे उन्हें नेत्रों के रास्ते पी जाना चाहते हों।

ब्रह्म ज्ञान अरु रूप पान की। घमासान भइ युद्ध सान की॥
ज्ञान विराग योग बड़ वीरा। इक इक नासहिं जग गंभीरा॥

वहाँ अपनी–अपनी प्रतिष्ठा के लिए ब्रह्म–ज्ञान व श्री राम रूपामृत का आपस में घमासान युद्ध छिड़ा हुआ था। जिसमें ज्ञान, वैराग्य व योग जैसे बड़े वीर जो अकेले ही सम्पूर्ण संसार का नाश कर सकते हैं।–––

दो०–वीर चढ़े सब दिव्य रथ, सबही भाँति अभेद।
याज्ञवल्क्य मुनिगन जनक, निमिवंशी रथ वेद॥१९९॥क॥

–––वे ज्ञान, वैराग्य व योग जैसे बड़े वीर, श्री याज्ञवल्क्य जी, मुनि–मण्डली, निमिवंशी व श्री जनक जी महाराज स्वरूप सभी प्रकार से अटूट वेद वर्णित दिव्य रथों में सवार थे–––

रथी सहारे सब सुरथ, रहे सदा भर पूर।
तनिक नयन सर राम के, भे सब चकना चूर॥ख॥

–––तथा अपनी–अपनी चरमावस्था को प्राप्त वे सभी ज्ञान, वैराज्ञ व योग आदि रथी–जन

अपने–अपने श्रीयाज्ञवल्क्यजी, मुनि–मण्डली, निमिवंशी व श्रीजनकजी महाराज आदि सुन्दर रथों को भली प्रकार सम्हाले हुए थे परन्तु श्रीरामजी महाराज के नयन बाण के किंचित प्रहार से सभी चूर–चूर हो गये अर्थात् उपर्युक्त सभी रथीजन (ज्ञान, वैराग्य व योग) अनन्त सौन्दर्य सम्पन्न श्री राम जी महाराज को देखकर अपने रथों (श्रीयाज्ञवल्क्यजी, मुनि–मण्डली, निमिवंशी व श्रीजनकजी महाराज) को छोड़, पलायन कर गये और उनका स्थान श्री राम प्रेम ने ग्रहण कर लिया।

जहँ अस दशा वीर गन केरी। लघु भावुक की कौन गने री ॥
लखन हृदय सो समय दिखाया। भये मगन रस सिन्धु समाया ॥

जहाँ पर बड़े–बड़े वीरों की ऐसी अवस्था है वहाँ छोटे भावुक प्रेमी जनों की गिनती ही क्या है। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– उस समय श्री लक्ष्मण कुमारजी के हृदय में वह दृश्य दिखाई पड़ने लगा और वे उसमें मग्न हो रस के सागर में समा गये।

कछुक काल मन बाहर भयऊ। आगे चरित कहन मन दयऊ ॥
ब्रह्म राम रस रूप लुभाना। को न रँगे रँग लखि हनुमाना ॥

पुनः कुछ समय उपरान्त उनका मन उस दृश्य से बाहर हुआ तब उन्होंने आगे का चरित्र कहने में मन को लगाया और बोले– हे हनुमान जी! पूर्णतम परब्रह्म श्रीरामजी महाराज का रसमय परम लुभावना रूप देखकर कौन है जो उनके रंग में नहीं रँग जायेगा अर्थात् सभी जड़ चेतन जीव उसे देखकर व्यामोहित हो जाते हैं।

जौ लौं राम रूप नहि देखै। तौ लौ ब्रह्म ज्ञान बुधि पेखै ॥
लखतहिं सगुण ब्रह्म रस रूपा। निरस लगै वेदान्त अनूपा ॥

जब तक श्रीरामजी महाराज के स्वरूप का दर्शन नहीं होता तभी तक, बुद्धि में ब्रह्म ज्ञान दिखाई देता है परन्तु रस स्वरूप, सगुण ब्रह्म श्रीरामजी महाराज का दर्शन होते ही अनुपमेय वेदान्त रसहीन समझ आने लगने लगता है।

व्यक्ताव्यक्त भाव परमारथ। एकहिं कहँ द्वै कहैं यथारथ ॥
माथ धनी अव्यक्त विचारैं। हृदय धनी प्रिय व्यक्तहिं धारैं ॥

परमार्थ ब्रह्म के व्यक्त (सगुण) व अव्यक्त (निर्गुण) दो प्रकार के भाव हैं परन्तु वास्तव में एक ही ब्रह्म को दो रूपों में बखान किया गया है। मस्तिष्क प्रधान व्यक्ति उनके अव्यक्त (निर्गुण) भाव को तथा हृदय के धनी व्यक्ति, प्रिय व व्यक्त (सगुण) भाव को धारण करते हैं।

अमृत बनि अव्यक्तहिं धेई। सोऽहं ब्रह्म रँगे मन देई ॥
व्यक्त उपासक अमृत होई। प्रेमामृत सुख भोगहि जोई ॥

अव्यक्त (निर्गुण) भाव की उपासना करने वाले अमृत बन कर सोऽहं ब्रह्म में अपने मन को लगा कर उसी में रँगे रहते हैं तथा व्यक्त (सगुण) भाव के उपासक अमृत बन, सगुण ब्रह्म का दर्शन कर उनके प्रेमामृत का सुख प्राप्त करते हैं।

ईश कृपा तेहिं केर उबारा । तुरत होय पथ शरण अधारा ॥
सुलभ सुखद मारग यह मानौ । कठिन अव्यक्त धारि तन जानौ ॥
कृपा साध्य प्रभु प्रेम महाना । मौन वेद जहँ नेति बखाना ॥

ईश्वर की कृपा से व्यक्त (सगुण) भाव के उपासकों का शरणागति पथ के आधार पर शीघ्र ही उद्धार हो जाता है अतः यह मार्ग अत्यन्त सुलभ व सुख प्रदायक है। किन्तु अव्यक्त (निर्गुण) भाव की उपासना शरीर धारियों के लिए तलवार की कठिन धार के समान है। प्रभु श्रीरामजी महाराज के महान प्रेम की प्राप्ति, जहाँ पर वेद भी नेति नेति कह कर मौन हो जाते हैं, उनकी कृपा साध्य है।

दो०–प्रेम रंग मम मन रँगेव, आगे वरणव भूल ।
वायु सुवन रसमय सुनहु, चरित सुखद अनुकूल ॥२००॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे पवन नन्दन श्री हनुमानजी! मेरा मन प्रभु श्रीरामजी महाराज के प्रेम रंग में रंग गया है अतएव आगे का चरित्र वर्णन करना मुझे भूल गया। अब आप उन प्रभु के रसमय, सुख–प्रदायक तथा प्रेमीजनों के अनुरूप चरित्र का श्रवण करें।

गाधि तनय जब चित थिति पाई । जनकहिं परश सुप्रीति दिखाई ॥
धीरज धरि हिय जनक विचारा । राम लखन प्रिय प्रान अधारा ॥

जब गाधि नन्दन श्री विश्वामित्रजी का चित्त स्थिर हो गया तब उन्होंने श्रीजनकजी महाराज का बार बार स्पर्श कर अपनी सुन्दर प्रीति का प्रदर्शन किया। पुनः श्री जनक जी महाराज ने धैर्य धारण कर हृदय में विचार किया कि श्रीरामजी महाराज व श्री लखन लाल जी तो मेरे अतिशय प्रिय व प्राणों के आधार ही हैं।

दोउ अहैं पर तत्व महाना । जानहुँ जिय हिय परत लखाना ॥
तदपि सबहिं के ज्ञापन हेतु । पूछहुँ मुनिहिं हृदय करि चेतू ॥

ये दोनों ही महान परम तत्व हैं यह बात मैं अपने मन में भली प्रकार जानता हूँ तथा हृदय में इसका अनुभव भी हो रहा है फिर भी सभी लोगों को इनके परत्व का ज्ञान कराने के लिए मुनिवर श्री विश्वामित्र जी से इनके सम्बन्ध में चैतन्य–चित्त होकर पूछता हूँ।

करि बिचार हिय धीर दृढ़ाई । कहेव मुनिहिं शुचि शीश नवाई ॥
बोलत गद्‌गद्‌ बैन सुहावा । भागत मनहुँ विवेक प्रभावा ॥

ऐसा बिचार, हृदय में दृढ़ता पूर्वक धैर्य धारण कर परम पवित्र मुनिवर श्री विश्वामित्रजी को शिर झुका प्रणाम कर श्री जनक जी महाराज कहने लगे, बोलते समय उनकी वाणी सुन्दर गद्‌गद हो गयी मानों उनके ज्ञान का प्रभाव भागा जा रहा हो।

पूछहुँ नाथ छमब अपराधू । हैं परमारथ दर्शि सुसाधू ॥
श्यामल गौर किशोर सुहाये । दोउ यह कौन कहाँ ते आये ॥

हे नाथ! मेरे अपराध को क्षमा करेंगे, मैं आपसे कुछ जिज्ञासा करना चाहता हूँ, आप तो परमार्थ दर्शी, सुन्दर व साधु स्वभाव वाले हैं। ये दोनों श्याम व गौर वर्ण वाले, सुन्दर किशोरावस्था से युक्त

बालक कौन हैं और कहाँ से आये हैं?

दो०—कोटि मदन मन मद हरैं, चितवनि जादू डार ।
हमन्ह सरीखे वश किये, बहे प्रेम की धार ॥२०१॥

ये अपनी दृष्टि निक्षेप का जादू डाल कर करोड़ों कामदेव के मन के अभिमान का मर्दन करते हुए हमारे समान (ज्ञानी) जनों को भी अपने वश में कर लिये हैं तथा हम लोग इनके प्रेम की धारा में प्रवाहित हो गये हैं।

प्रेम बाँध हिय कमल सुहावा। ज्ञान विराग योग दृढ़ दावा ॥
गुप्त रहेव मम फूटि सो गयऊ। यदपि बाँध अति ही दृढ़ ठयऊ ॥

मेरे हृदय में ज्ञान, वैराग्य तथा योग के द्वारा दृढ़ता—पूर्वक दबा—कर बनाये गये प्रेम के बाँध में, सुन्दर ब्रह्म—कमल खिला हुआ था, यद्यपि वह बाँध अत्यन्त ही गुप्त व मजबूत था परन्तु इन राजकुमार (श्री राम जी) की दृष्टि पड़ते ही वह टूट गया।

ज्ञान विराग योग परकोटे । जलहिं भये लय मिलहिं न गोटे ॥
रूप दरश अस भयउ अकाला । काह कहौं मुनि नाथ दयाला ॥

उस बाँध के रक्षक (परकोटा) ज्ञान, वैराग्य तथा योग आदि इनके दर्शन—जल में विलीन हो गये हैं व अब अन्वेषण करने पर भी उनके टुकड़े नहीं मिल रहे अर्थात् इनके सौन्दर्य ने मेरे ज्ञान व वैराग्य के अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया। हे दयालु मुनिनाथ! इनके रूप के दर्शन से असमय में ही यह हो गया, मैं अब और ज्यादा क्या कहूँ?

रूप अग्नि ज्ञानिन घर फूँका। नयन प्रहार नेक नहिं चूका ॥
मोर चकोर मेघ शशि देखी। हर्ष तथा मम हृदय विशेषी ॥

इनके रूप की आग ने ज्ञानियों के घर को भी भष्म कर दिया तथा इनके नेत्र प्रहार ने अपने लक्ष्य भेद में किंचित भी भूल नहीं की। मोर व चकोर को, बादल व चन्द्रमा देखकर जैसा हर्ष होता है उसी प्रकार का विशेष हर्ष मेरे हृदय में इन्हें देखकर हो रहा है।

ब्रह्मानन्द हृदय नहि जागा। कहाँ दुरेउ इन देख सुभागा ॥
आनन्द मगन एक मन चाहा। लखैं सदा इन कहँ सउछाहा ॥

मेरे हृदय में अब ब्रह्मानन्द जागृत भी नहीं हो रहा, परम भाग्यवन्त इन कुमारों को देखकर वह न जाने कहाँ छिप गया। अब तो आनन्द में मग्न हुआ मेरा मन मात्र यही कामना करता है कि मैं सदैव इन्हें उत्साह पूर्वक देखता रहूँ।

दो०—ऋषिकुल नृपकुल देवकुल, दीन्हे काहि सुभाग ।
जासु भाग हम रहुँ खुली, भाग अनुपम जाग ॥२०२॥

इन्होंने ऋषि कुल, राजकुल और देवकुल में से किस कुल को सौभाग्य प्रदान किया है, जिसकी अनुपमेय भाग्य से इस संसार में हमारी भी भाग्य जागृत हो गयी है अर्थात् इनका दर्शन कर

हम भी भाग्यवन्त हो गये है।

मोहिं लगत जनु ब्रह्म महाना । नेति नेति जेहिं श्रुति कर गाना ॥
अमल एक अनवद्य अनामय । गुणातीत प्रभु सचराचरमय ॥

मुझे तो ऐसी प्रतीति हो रही है कि, मानो ये वही महान ब्रह्म हैं, जिनका श्रुतियाँ नेति नेति कहकर गायन करती हैं और जो निर्मल, एक, निर्दोष, निरुज, गुणों से परे, चराचर–स्वरूप, सबके स्वामी–––

परम धाम साकेत विहारी । लीला हेतु वपुष नर धारी ॥
युगल प्रीति लखि सहज सुभाई । शेषी शेष गुनहुँ मुनिराई ॥

–––परम धाम साकेत में विहार करने वाले तथा लीला रस–आस्वादन के लिए मनुष्य शरीर धारण किये हैं। हे मुनिराज! इन दोनों की सहज–स्वाभाविक प्रीति को देख कर तो मैं इन्हें शेषी व शेष ही समझ रहा हूँ।

नाथ मोहिं किंकर जिय जानी । देहु बताय सत्य शुभ बानी ॥
श्री मुख सुनन चहत मम काना । अति आतुर छुधितार्त समाना ॥

हे नाथ! मुझे हृदय में अपना सेवक समझ कर आप शुभ वाणी से सत्य बात बता दें। मेरे श्रवण आप श्री के मुख विनिसृत इस वार्ता को उसी प्रकार सुनना चाहते हैं, जैसे अत्यन्त भूँख से दुखी व्यक्ति आतुर होकर भोजन करना चाहता है।

आरत पात्र शिष्य जब पावैं । गुप्त गूढ़ गुरु तत्व बतावैं ॥
अस कहि राउ चरण धरि शीशा । शान्त भयो तब कहेउ मुनीशा ॥

क्योंकि श्री गुरुदेव जी जब आर्त्ति से युक्त शिष्य प्राप्त करते हैं तब गुप्त से गुप्त, गूढ़ परम तत्व भी ज्ञापित कर देते हैं। ऐसा कहकर श्रीजनकजी महाराज उनके चरणों में शिर रख प्रणाम कर शान्त हो गये तब मुनिराज श्री विश्वामित्र जी ने कहा–

दो०–सुनहु नृपन सिरमौर मणि, ज्ञान विराग निधान ।
सिद्धि योग निष्काम बल, सबकर सब विधि ज्ञान ॥२०३॥

हे राजाओं में मुकुट–मणि के सदृष श्रीमान जनकजी महाराज! सुनिये, आप तो ज्ञान व वैराग्य के निधान तथा सिद्धि, योग, निष्कामता व सामर्थ्य आदि सभी का भली प्रकार ज्ञान रखने वाले हैं।

तव अनुभव कछु वृथा न होई । जो कछु कहा साँच सब होई ॥
आत्म समान सबहिं प्रिय लागैं । प्राणि मात्र इनके रस रागैं ॥

आपका अनुभव व्यर्थ नहीं है, आपने जो कुछ कहा है वह सभी सत्य है। ये सभी को आत्मा के समान प्रिय लगते हैं तथा सभी जीव इन्हीं के रस में रँगे हुए हैं।

सुनत राम मुसकाय महीने । तत्व कहन निरोध जनु कीन्हें ॥
अवध नृपति दशरथ के बालक । राखन यज्ञ हेतु खल घालक ॥

ऐसा सुनते ही श्रीरामजी महाराज मन्द–मन्द मुस्कराने लगे मानों वे अपना तत्व बतलाने को रोक रहे हों। तब श्री विश्वामित्र जी ने कहा– ये श्री अयोध्या पुरी के महाराज चक्रवर्ती श्री दशरथजी के पुत्र हैं। अपने यज्ञ की रक्षा तथा दुष्टों (राक्षसों) का नाश करने के लिए इन्हें,–––

लायो मागि भयो मम काजा । नशा सुबाहू सहित समाजा ॥
धनुष यज्ञ देखन के हेतू । मम सँग आये कृपा निकेतू ॥

मैं मांग लाया था, व मेरा काम पूर्ण हुआ, सुबाहु राक्षस अपने समाज सहित विनाश को प्राप्त हुआ। सम्प्रति धनुष यज्ञ देखने के लिए कृपा के आगार ये, मेरे साथ यहाँ आये हुए हैं।

गौतम तिय मग माँहि उधारी । गै पति लोक अनन्द अपारी ॥
श्याम गौर सुन्दर सुख धामा । राम लषण दोउ बन्धु ललामा ॥
सुनत राम यश तिरहुत राऊ । पगे प्रेम चित चौगुन चाऊ ॥

इन राजकुमारों ने मार्ग में गौतम ऋषि की पत्नी श्री अहल्या जी का उद्धार किया जो असीम आनन्दपूर्वक अपने पति लोक चली गयी। ये श्याम व गौर वर्ण वाले व सुन्दर तथा सुख के धाम दोनों भाई, श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार हैं। श्रीरामजी महाराज का यश सुनकर तिरहुत नरेश श्रीजनकजी महाराज अपने चित में चौगुना उत्साह भरकर प्रेम पग गये।

दो०–धन्य धन्य मुनिवर सुकृत, शिष्य अनूपम पाइ ।
तीन लोक सुख सम्पदा, अंशहुँ नाहि लखाइ ॥२०४॥

हे मुनिश्रेष्ठ, श्रीविश्वामित्रजी! आपके सत्कर्म धन्याति धन्य हैं जो आपने ऐसे अनुपमेय शिष्य प्राप्त किये हैं जिनकी तुलना में तीनों लोकों की सुख–सम्पत्ति अंशमात्र भी नहीं दीखती।

रामहिं कहा बुझाय द्विजेशा । जनक सुहृदवर प्रिय अवधेशा ॥
इनहिं प्रणामैं पिता समाना । कुँअरहिं मानैं सखा सुजाना ॥

द्विजराज श्री विश्वामित्र जी ने श्री राम जी महाराज को समझा कर कहा– श्रीजनकजी महाराज श्रीअयोध्या नरेश दशरथजी महाराज के प्रिय व श्रेष्ठ मित्र हैं। हे परम प्रबुद्ध श्री राम जी! आप इन्हें अपने पिताजी के समान प्रणाम करें तथा कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपना सखा मानें।

सुनत राम मुनिवर प्रिय बानी । कीन्ह प्रणाम नृपहिं सुखसानी ॥
तुरत राउ निज गोद बिठाई । शीश सूँघि प्यारेव रस छाई ॥

मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के प्रिय वचन सुनते ही श्री राम जी महाराज ने महाराज श्री जनक जी को सुख में सनकर प्रणाम किया तब शीघ्र ही महाराज ने उन्हें गोद में बिठा लिया तथा उनका सिर सूँघ, रस में समाकर प्यार दुलार किया।

प्रेम वारि नयनन शिर ढारी । मनहु कियो अभिषेक सुखारी ॥
लखनहुँ अंक लिये नरपाला । प्यारेउ प्रेम प्रमोद विशाला ॥

महाराज श्री जनक जी के नेत्रों से प्रेमाश्रु बहते हुए श्री राम जी महाराज के सिर में गिरकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सुखपूर्वक वे उनका अभिषेक कर रहे हों। श्री महाराज जनक जी ने श्री लखन लाल जी को भी गोद में लेकर प्रेमानन्द पूर्वक अत्यधिक प्यार किया।

सोहत जनक दुहुन लै गोदा। दशरथ मनहुँ भरे अति भोदा ॥
सो सुख कहिय कौन विधि राती। दास राम हर्षण पवि छाती ॥

दोनों राज कुमारों (श्री राम जी व श्री लखन लाल जी) को गोद में लिये श्री जनक जी महाराज ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों अत्यन्त आनन्द में भरे हुए चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ही हों। हमारे श्रीआचार्य महाप्रभु श्री स्वामी जी राम हर्षण दासजी महाराज कहते हैं कि मेरा हृदय तो अत्यन्त ही कठोर है मैं उस सुख व प्रेम का बखान किस प्रकार करूँ?

चितवत कुँअर राम कहँ कैसे। चन्दहिं रात चकोरक जैसे ॥
उठे राम द्रुत जनक सुगोदे। भेंटे कुँअर हृदय अति मोदे ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्रीरामजी महाराज को इस प्रकार देख रहे थे जैसे रात्रि में चकोर चन्द्रमा को देखता है। श्री जनक जी महाराज की सुन्दर गोद से उतरकर शीघ्र ही श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से हृदय लगाकर अत्यन्त आनन्दित हो भेंट किये।

दो०—मिलन प्रीति युग लाल की, देखत देव सिहाहिं।
अन्तःकरण विलीन करि, दै गल बाहिं सुहाहिं ॥२०५॥

दोनो राजकुमारों (कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्रीरामजी महाराज) की प्रीति पूर्वक मिलनि को देख—देखकर देवता भी स्पृहा कर रहे थे। वे दोनों अपने अन्तःकरण (मन, चित, बुद्धि व अहंकार) को विलीन कर गलबहियाँ डाले हुए सुशोभित हो रहे थे।

महि आकाश सुमन बहु वरषै। जय जय धुनि गूँजत मन करषै ॥
रामहिं मिलि पुनि लखनहिं भेंटे। एक सदृश दोउ प्रेम लपेटे ॥

दोनों राजकुमारों की मिलनि को देखकर पृथ्वी व आकाश से सुमनों की विपुल वर्षा हो रही थी तथा जय—जय ध्वनि गूँजती हुई सभी के मन को आकर्षित कर रही थी। पुनः श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री राम जी महाराज से मिलकर श्री लक्ष्मण कुमार जी से भेंट किये, वे दोनों एक समान गौर वर्ण वाले राज कुमार प्रेम परिपूर्ण हो लिपटे हुए थे।

बैठि पूर्ववत निज निज आसन। प्रेम भरा मन छूँछ सुभाषन ॥
बहुरि अहिल्या कथा सुहाई। कौशिक मुनि नृपवरहिं सुनाई ॥

पुनः वे सभी पूर्व की भाँति अपने अपने आसनों में बैठ गये, उस समय सभी के मन, प्रेम से परिपूर्ण तथा वाणी से रिक्त थे। तदुपरान्त मुनिवर श्री विश्वामित्रजी ने राजाओं में श्रेष्ठ श्री जनक जी महाराज से श्री अहल्या जी के उद्धार की सुन्दर कथा कह सुनाई।

शतानन्द सह तिरहुत राजा। सहित द्विजन सब ऋषिन समाजा ॥
हरषे अकथ अहिल्या पूता। पद रज गुने महत्व बहूता ॥

अनन्तर श्री शतानन्द जी सहित तिरहुत नरेश श्रीजनकजी महाराज व ब्राह्मणों सहित सम्पूर्ण ऋषि समाज श्री अहिल्या जी का उद्धार सुनकर अवर्णनीय हर्ष को प्राप्त हुए तथा श्रीरामजी महाराज के चरणों की धूलि के महनीय महत्व को समझ गये।

जय जय कहि जय राम गोसाई । वरषी सुमन सभा समुदाई ॥
बहुरि विदेह माथ महि लाई । पानि जोरि बोले सुख छाई ॥

श्रीरामजी महाराज की जय हो, जय हो, जय हो कहकर सभा में उपस्थिति सम्पूर्ण समुदाय ने फूलों की वर्षा की। पुनः श्री विदेहराज जी महाराज अपना शिर भूमि में रख श्री विश्वामित्र जी को प्रणाम कर, हाथ–जोड़ सुख पूर्वक बोले–

दो०– नाथ एक मोरी विनय, करन कृतारथ हेत ।
कृपा कोर लखि जनहिं प्रभु, चलिय पुरहिं सुख देत ॥२०६॥

हे नाथ! मेरी एक विनय है कि अपने इस सेवक पर कृपा दृष्टि निक्षेप कर मुझे कृतार्थ करें तथा हम सभी को सुख प्रदान करते हुए श्री मिथिला पुरी प्रस्थान करें।

विश्वामित्र विनय बड़ि जानी । कहेव चलन अतिशय सुखसानी ॥
सुनत जनक बजवाय निसाना । चलन साज साजेव सविधाना ॥

श्री विश्वामित्र जी ने श्रीजनकजी महाराज के अत्यधिक आग्रह को समझ अत्यन्त सुख में सनकर चलने की अनुमति प्रदान कर दी जिसे सुनते ही श्रीजनकजी महाराज ने नगाड़े बजवा कर चलने की विधि पूर्वक व्यवस्था की।

सबहि बिठाये यान सुसाजी । तेज पुञ्ज कौशिक रथ राजी ॥
ऐरावत कुल हस्ति सुहावा । श्वेत वर्ण देखत मन भावा ॥

उन्होंने सभी को सुन्दर सजे हुए वाहनो में बिठा दिया व परम तेजवान श्री विश्वामित्र जी एक सुन्दर रथ में विराज गये। ऐरावत कुल का एक सफेद रंग का हाथी जो दर्शन करते ही मन को मुग्ध कर रहा था।

नख शिख सोहत भूषण भारी । मणि गण साजित झूल सुधारी ॥
स्वर्ण रचित मणि खचित अम्बारी । झालर देखि काम मन हारी ॥

नख से शिख तक विविध आभूषणों से सुसज्जित तथा मणियों से सजी हुई सुन्दर झूल (वस्त्र) को धारण किये हुए था। उस हाथी का हौदा सोने से बना तथा मड़ियों से जड़ा हुआ था जिसकी झालर को देख कामदेव का मन भी पराजित हो रहा था।

आसन मरकत मणिन बनाया । देख ताहि इन्द्रहुँ ललचाया ॥
भाँति अनेक सिंगार सजाई । लायो हस्तिप हिय हरषाई ॥
घण्टा घण्टि दसहुँ दिशि गूजैं । सुनि सुनि सब सुख शान्ति सुकूजै॥

उस सुन्दर हौदे के ऊपर मरकत मणियों से बना हुआ आसन था जिसे देख कर देवराज इन्द्र

भी लालायित हो रहे थे। इस प्रकार उस गज को अनेक प्रकार के श्रृंगार से सुसज्जित कर हृदय में हर्षित हो हस्तिपाल (महावत) ले आया। गज के चारो ओर लगे हुये घण्टा तथा घण्टियों की ध्वनि दसों दिशाओं में गूँज रही थी जिसे सुन–सुनकर सभी सुख व शान्ति पूर्वक कलरव कर रहे थे।

दो०– पानि पकरि मिथिलेश नृप, राम लखन दोउ भ्रात ।
गजहिं बिठाये हर्ष युत, प्रेम न हृदय समात ॥२०७॥

तदनन्तर श्री जनक जी महाराज ने दोनों भाइयों श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार को हाथ पकड़कर हर्ष पूर्वक उस गज में बैठा दिया, उस समय उनका हृदय प्रेमोच्छलित हो रहा था।

छत्र चमर शिर ढ़रत सुहाये । कुँअर सखा मन मोद बढ़ाये ॥
जनक सुवन बनि स्वयं महावत । लै अंकुश प्रिय गजहिं चलावत ॥

उनके शिर पर छत्र व चमर चलाते हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सखागण आनन्द प्रपूरित मन से सुशोभित हो रहे थे तथा श्री लक्ष्मीनिधि जी स्वयं महावत (हस्ति–चालक) बनकर अंकुश (दो मुँहा छोटा सा भाला) लेकर प्रिय गज को चला रहे थे।

वह शोभा सुख सुनु हनुमाना। समय समाज न जाय बखाना ॥
पनव निसान शंख घड़ियाला। ढोल मृदंग झाँझ करताला ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे हनुमान जी! सुनिये, उस शोभा, सुख, समय तथा समाज आदि का वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समय पणव (डण्डे से बजाई जाने वाली ढोल), नगाड़े, शंख, घड़ियाल, ढोलक, मृदंग, झाँझ करताल,–––

बजत भेरि सुन्दर शहनाई। मनहुँ मुनिन मन लेत चुराई ॥
पुष्प वरषि जय लछिमन रामा। कहत चले सब पुरहिं लतामा ॥

–––भेरी व सुन्दर शहनाई आदि वाद्य बजते हुए अपनी सुखावह ध्वनि से मुनियों के मन को भी चुराये ले रहे थे। इस प्रकार पुष्प वरषाते व श्री राम जी महाराज तथा श्रीलक्ष्मण कुमार की जय कहते हुए सभी लोग सुशोभना श्री मिथिला पुरी को प्रस्थान किये।

बन्दी विरद बदहिं ह्वै आगे। करहिं वेद ध्वनि विप्र सुभागे ॥
लिये कलश शुभ सोह कुमारी । वस्त्रा भूषण विविध सँभारी ॥

बन्दीजन आगे आगे विरद का बखान कर रहे थे, परम सौभाग्यशाली ब्राह्मण वेद–ध्वनि कर रहे थे तथा विविध वस्त्राभूषणों से सजी सँवरी कुँवारी कन्यायें शुभ–कलश लिये हुए सुशोभित हो रही थी।

दो०– गाधि सुवन आगे सुरथ, तिन पीछे गज राम ।
यथा योग सबहीं चलत, सरस समाज स्वधाम ॥२०८॥

गाधि नन्दन श्री विश्वामित्रजी का सुन्दर रथ सबसे आगे व उसके पीछे श्रीरामजी का गज चल रहा था, उनके पीछे यथा उचित रीति से श्री मिथिलापुरी का रस पूर्ण समाज अपने धाम श्री

मिथिलापुरी को जा रहा था।

देवन लखे मदन मनहारी। सुन्दर गज पर किये सवारी ॥
झर झर सुमन छनहिं छन वरषैं। जय जय कहि सब आनँद सरसै ॥

कामदेव के मन का हरण करने वाले श्रीरामजी महाराज को सुन्दर गज पर सवारी किये हुए देख कर देवता प्रत्येक क्षण झर–झर फूलों की वरषा करने लगे तथा जय जयकार करते हुए आनन्द से फूले जा रहे थे।

जनक सुवन धनि भाग तुम्हारा। हस्तिपाल बनि सेव सम्हारा ॥
धन्य जनक धनि मिथिला देशा। सहित राम जहँ चलैं द्विजेशा ॥

हे श्रीजनक कुमार लक्ष्मीनिधिजी! आप धन्य–भाग हैं जो हस्तिपाल बनकर सर्वेश्वर श्रीरामजी महाराज की सेवा कर रहे हैं। श्री जनक जी महाराज व श्री मिथिला पुरी धन्यातिधन्य है जहाँ श्रीरामजी महाराज के सहित द्विजराज श्री विश्वामित्र जी गवन कर रहे हैं।

कहत देव ढफ ढोल नगारे। दुन्दुभि वाद्य वदत सुखकारे ॥
मस्स मस्स गज चलत सुहावा। बाजत घण्टा गले बँधावा ॥

ऐसा कहते हुए देवगण, ढफ, ढोल नगाड़े तथा दुन्दुभी आदि सुखकारी वाद्य बजा रहे थे। इस प्रकार वह परम सौभाग्यशाली गज, सुन्दर चाल से मस्स–मस्स आवाज करता हुआ चल रहा था उसके गले में बँधा हुआ गज–घण्टा बजता जा रहा था।

कहुँ कहुँ कुँअर राम फिरि जोहैं। धीर बने करि सेव सुसोहैं ॥
निरखि कुँअर की प्रीति अमोली। भाव भक्ति अनुनय रस घोली ॥

कभी–कभी कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी पीछे मुड़–मुड़ कर श्रीरामजी महाराज को देख लेते थे तथा कभी वे परम धैर्यवान बन सेवा करते हुए सुशोभित हो रहे थे। कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी की भाव, भक्ति, विनय व रस से घुली हुई अनमोल प्रीति को देखकर–––

दो०–मानहीन अतिदीन बनि, ममता अहं बिसार।
चित अकाम सेवा सरत, राम गये बलिहार ॥२०९॥

–––तथा अमानी हो, अत्यधिक दीन बन, ममता व अहंकार को भूल, निष्काम भाव से सेवा करते हुये कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी पर श्रीरामजी महाराज स्वयं को बलिहार गये।

आनँद नदी भरी भर पूरी। डूबी सकल समाज चतूरी ॥
यहि विधि राम लिवाय नृपाला। लूट मचावत मणिगन माला ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे पूर्ण रूपेण भरी हुई आनन्द की सरिता प्रवाहित हो रही हो जिसमें सम्पूर्ण ज्ञानमय व चतुर समाज डूब गया हो। इस प्रकार श्रीरामजी महाराज को लिये हुए श्री जनक जी महाराज मणियाँ व मालायें लुटाते हुए–––

याचक करत अयाचक राजा । पहुँचेव नगर मझार समाजा ॥
सुन्दर मरकत अनुपम भवना । सुखद सदा मंगलमय फबना ॥

---याचकों को अयाचक बनाते हुए समाज सहित नगर के मध्य भाग में पहुँच गये। वहाँ एक सुन्दर मरकत मणियों से विनिर्मित सदैव सुखप्रद, मंगलमय एवं सुशोभित अनुपमेय भवन था।

तहाँ वास कर कीन्ह विचारा । उतरि यान नृप सबहिं उतारा ॥
जनक सुवन तुरतहिं गज उतरे । रामहिं लिये उतार सुसँभरे ॥

वहाँ निवास देने का विचार कर श्री जनक जी महाराज वाहन से उतर पड़े और सभी लोगों को उतार लिये अनन्तर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी शीघ्र ही गज से उतरे और श्री राम जी महाराज को सम्हाल कर उतार लिये---

राम लखन दोउ हृदय लगाई । थलहिं पधारे अति सुख छाई ॥
वरषत मन्द सुगन्धित इतरा । मनहुँ राम रस झरत सुनगरा ॥

---तथा श्रीरामजी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार दोनों को हृदय से लगा अत्यन्त सुख में भरकर सुन्दर स्थान में विराज दिये। वहाँ सुगन्धित इत्र की मन्द-मन्द वर्षा हो रही थी मानों परम सहावनी 'श्री मिथिला नगरी' में श्रीरामजी महाराज का सुन्दर प्रेम-रस निर्झरित हो रहा हो।

विविध वसन पाँवड़ बिछवाया । कर धरि चले जनक मुनिराया ॥
छत्र चमर धरि करन कुमारा । राम लखन लै चलेव अगारा ॥
पुष्प वृष्टि जय रव बहु बाजा । भयो कोलाहल सकल समाजा ॥

वहाँ विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के पाँवड़े विछवाये गये तब श्रीजनकजी महाराज का हाथ पकड़ कर मुनिराज श्री विश्वामित्र जी भवन के अन्दर चले तथा हाथों में छत्र व चँवर लिये हुए जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार को लेकर भवन को चल दिये। पुष्पों की विपुल वर्षा, जयनाद तथा विविध वाद्यों की ध्वनि से सम्पूर्ण समाज में उस समय कोलाहल सा छाया हुआ था।

दो०-परम दिव्य सिंहासनहिं, ऋषि समेत युग भाइ ।
बैठाये नर वर हरषि, पूर्ण पदारथ पाइ ॥२१०॥

नर-श्रेष्ठ श्री जनक जी महाराज ने ऋषिराज श्री विश्वामित्र जी सहित दोनों भाइयों श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार को परम दिव्य सिंहासन में हर्ष पूर्वक इस प्रकार बैठा दिया मानों प्राप्त करने योग्य वे सभी पदार्थ (अर्थ, धर्म,काम व मोक्ष) प्राप्त कर लिये हों।

षोडष पूजि आरती कीन्ही । करि दक्षिण पुष्पाञ्जलि दीन्ही ॥
परे दण्ड इव अवनि भुआरा । बोले धनि धनि भाग हमारा ॥

पुनः उन्होंने श्री विश्वामित्र जी का षोडषोपचार पूजन कर आरती उतारी तथा प्रदक्षिणा कर पुष्पाञ्जलि समर्पित किया एवं श्री जनक जी महाराज भूमि में दण्ड के समान गिर, उनको दण्डवत

प्रणाम कर बोले– हमारा धन्याति धन्य भाग्य है–––

आपु सरिस मुनिवर घर आये। पूर्ण मनोरथ भये सुहाये॥
शतानन्द ऋषि सुजस सुनावा। सहित विदेह सबहिं सुख पावा॥

–––जो आपके समान श्रेष्ठ मुनिवर हमारे घर पधारे हैं, अब हम पूर्ण काम हो गये हैं। तदुपरान्त निमिकुल पुरोहित श्री शतानन्द जी ने मुनिवर श्री विश्वामित्र जी की सुन्दर कीर्ति का बखान किया जिसे सुनकर श्री विदेहराज जी सहित सभी ने सुख प्राप्त किया।

देशन के जिमि भूपति आये। चरित समास विदेह बताये॥
ठाढ़ भये जोरे युग हाथा। बोले बचन सुखद नर नाथा॥

पुनः श्री विदेहराज जी महाराज ने जिस प्रकार देश–देशान्तरों के राजा आये थे वह सभी समाचार श्री विश्वामित्र जी को बताया और उठ खड़े हो, दोनों हाथ जोड़कर सुख प्रदायक वचन बोले–––

आयसु होय भवन कहँ जाऊँ। रहै कृपा माँगे यह पाऊँ॥
कुँअर इतै सेवा महँ रहिहैं। समय समय हमहूँ नित अहहैं॥

–––हे नाथ! आज्ञा हो तो, अब मैं भवन को प्रस्थान करूँ। मेरी यही कामना है कि मुझ पर आपकी कृपा बनी रहे, कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी यहाँ आपकी सेवा में रहेंगे तथा समय–समय पर हम भी नित्य आते रहेंगे।

दो०–जो कछु सेवा होय प्रभु, कुँअरहिं देहिं बताय।
नेक सकुच नहि होय हिय, राउर घर यह आय॥२११॥क॥

हे नाथ! जिस सेवा की आवश्यकता हो आप कुमार श्रीलक्ष्मीनिधिजी को सूचित कर दीजियेगा तथा हृदय में रंच मात्र भी संकोच नहीं करियेगा क्योंकि यह घर आपका ही है।

कुँअरहिं कहेव बुझाय पुनि, करेव सेव सविवेक।
यथा शरीरहिं सेव नित, अविवेकी करि टेक॥ख॥

पुनः श्री जनकजी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को समझाकर कहा कि आप इनकी विवेक पूर्वक ऐसी सेवा कीजियेगा जिस प्रकार अज्ञानीजन यत्नपूर्वक अपने शरीर की सेवा करते हैं।

करि प्रणाम गृह राउ सिधावा। ऋषि सह रघुवर भोजन पावा॥
यथा योग शैय्या मन भाती। किय विश्राम भयो सुख शान्ती॥

इस प्रकार श्री जनक जी महाराज श्री विश्वामित्र जी को प्रणाम कर अपने भवन चले गये तब श्री विश्वामित्र जी के सहित श्री राम जी महाराज ने भोजन किया। पुनः मनोनुकूल यथोचित शैय्या में सभी ने शयन किया तथा सुख व शान्ति प्राप्त की।

गाधि तनय पद कुँअर सुचाँपी । सेयो राम लखन हिय थापी ॥
कुँअरहिं पाय राम सुख साने । देह गेह सब सुरति भुलाने ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने गाधि–नन्दन श्री विश्वामित्रजी की चरण सेवा की तथा श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार को हृदय में बसा कर उनकी सेवा किये। कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को पाकर श्री राम जी महाराज सुख में डूब गये तथा अपने शरीर व भवन की सम्पूर्ण स्मृति भुला दिये।

यथा सिन्धु लखि पूरण चन्दा । कुँअरहिं देखि भये रघुनन्दा ॥
करि विश्राम हाथ मुह धोई । बैठे आसन मुद मन मोई ॥

पूर्ण चन्द्रमा को देखकर जिस प्रकार समुद्र की स्थिति हो जाती है उसी प्रकार ही श्री राम जी महाराज की अवस्था कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी को देखकर हो गई थी। इस प्रकार विश्राम कर हाथ मुँह धो सभी आनंद पूरित मन से सुन्दर आसनों में विराज गये।

गन्ध माल बीड़ा शुभ दीन्हा । कुँअर यथोचित आदर कीन्हा ॥
लहर उठत रघुवर मन माहीं । आवहिं देखि जनकपुर काहीं ॥

तदुपरान्त कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने इत्र, माला व शुभ ताम्बूल देकर सभी का यथोचित सत्कार किया। उस समय श्री राम जी महाराज के मन में श्री जनकपुरी का दर्शन करने की इच्छा उसी प्रकार उठ रही थी जिस प्रकार समुद्र में लहरे उठती हैं।

दो०–रघुवर हिय की चाह शुभ, लषण हृदय प्रगटान ।
ऋषि डर अरु संकोच वश, प्रगट न करहिं बखान ॥२१२॥

श्री राम जी महाराज के हृदय की वह शुभ इच्छा श्री लक्ष्मण कुमार जी के हृदय में प्रगट हो गयी परन्तु मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के भय और श्रीरामजी महाराज के संकोचवश वे कहकर उसे प्रगट नहीं किये।

भक्तन भावन नाथ उदारा । अंतर यामी सुख दातारा ॥
मन मुसकात महिम्न महाना । बोले मुनि सन कृपा निधाना ॥

तब अपने भक्तों की भावनाओं को पूर्ण करने वाले परम उदार, अन्तर्यामी, सुख–प्रदायक, महा महिमामय कृपा–निधान प्रभु श्रीरामजी महाराज मन में मुस्कुराते हुए श्री विश्वामित्र जी से बोले–

गुरु कृपाल इक करौं ढिठाई । राउर नेह विवश दोउ भाई ॥
निरखन नगर नाथ अति चाऊ । लखन हृदय मोहिं परत जनाऊ ॥

हे कृपालु गुरुदेव! मैं एक धृष्टता कर रहा हूँ क्योंकि हम दोनों भाई आप के प्रेम के वशीभूत हैं। हे नाथ! मुझे श्री लक्ष्मण कुमार के हृदय में जनक–नगर देखने का अत्यधिक उत्साह समझ आ रहा है।–––

आयसु होय बन्धु लै जाई । आवहुँ लौटि पुरहिं दिखराई ॥
सकुचि राम नत मस्तक कीन्हा । मनहु सकोच रूप धरि लीन्हा ॥

–––यदि आपकी आज्ञा हो तो अपने भैया लक्ष्मण कुमार को ले जाकर श्री जनकपुरी का दर्शन करा कर मैं वापस आ जाऊँ। ऐसा कहकर संकोच से श्री राम जी महाराज ने अपना शिर नीचे झुका लिया मानों वे संकोच का रूप धारण कर लिये हों।

बोले मुनि धनि भाव तुम्हारा । वेद धर्म रक्षक भरतारा ॥
रूप प्यास तव नर अरु नारी । दरश वारि दै करहु सुखारी ॥
लालन जनक सुवन सुन लेहू । नगर दिखावन जतन करेहू ॥

श्री राम जी की विनय युक्त वाणी श्रवणकर, श्री विश्वामित्र जी बोले– हे वेद व धर्म की रक्षा करने वाले, सर्व–स्वामी श्रीरामजी! आपके भाव धन्य हैं, आप जायें और अपने रूप के प्यासे श्री मिथिलापुरी के पुरुष व स्त्रियों को अपना दर्शन–जल देकर आप सुखी करें। हे लाल लक्ष्मीनिधिजी! सुनिये, आप इन राजकुमारो को नगर दिखाने का उपाय करें।

दो०–गाधि तनय के वचन सुनि, कुँअर हृदय हर्षान ।
आयसु सिर पहँ राखि द्रुत, कियो योग भल जान ॥२१३॥

गाधि नन्दन श्री विश्वामित्र जी के वचनों को सुनकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी का हृदय हर्षित हो गया और वे तुरन्त ही उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर, अच्छा संयोग समझ, उत्तम व्यवस्था कर दिये।

मंत्रि पुत्र शिर आयसु धारी । लायो गज रथ तुरत हँकारी ॥
सोह शिखर कैलाश सुयाना । चम चम चमकत सूर्य समाना ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की आज्ञा स्वीकार कर मन्त्री पुत्र शीघ्र ही 'गजरथ' बुला लाया, जो कैलाश पर्वत की चोटी के समान ऊँचा तथा सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा था।

मणि माणिक हीरा वैदूरा । लाल प्रबाल सुवर्णन पूरा ॥
नगन खचित रथ बनेउ अनूपा । मनसिज बनो मनहु रथ रूपा ॥

वह रथ मणि, माणिक्य, हीरा, वैदूर्य, लाल व मोती आदि रत्नों से पूरी तरह जड़ा हुआ सुन्दर अनुपमेय बना हुआ ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वयं कामदेव ही रथ स्वरूप बने हुए हों।

बीच सिंहासन सुन्दर शोभित । सूरज चन्द्र होहिं बहु छोभित ॥
नहे चतुर्गज सोह सिंगारे । ऐरावत सम सित वपु धारे ॥

रथ के मध्य में एक सुन्दर सिंहासन सुशोभित था जिसे देखकर बहुत से सूर्य व चन्द्रमा छुब्ध हो रहे थे। उस रथ में ऐरावत के समान श्वेत वर्ण के, श्रृंगार से युक्त सुन्दर चार गज जुते हुए सुशोभित हो रहे थे।

करि प्रणाम कौशिक दोउ भाई । बैठे रथहिं कुँअर सह जाई ॥
दहिन लखन अरु बाम कुमारा । बीचहिं राजत राम उदारा ॥

श्री विश्वामित्र जी को प्रणाम कर दोनों भाई जाकर कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी सहित उस रथ में विराज गये। उस रथ में दाहिनी ओर श्री लक्ष्मण कुमार तथा बाँयी ओर श्री लक्ष्मीनिधि जी व बीच में उदार शिरोमणि श्रीरामजी महाराज शोभायमान थे---

दो०—छत्र चमर मैथिल सखा, लीन्हे व्यजन अनूप ।
पान दान कोउ इत्र वर, कोउ छड़ी सुख रूप ॥२१४॥क॥

---तथा मैथिल सखा अनुपमेय छत्र, चँवर व व्यजन आदि सेवा साज लिये हुए थे, उनमें से कोई पान दान, कोई इत्र तथा कोई सुन्दर छड़ी लिये हुए सुख स्वरूप बने हुए थे।

सेवा साज न जाय कहि, बहु विधि छटा बनाय ।
कुँअर सैन लखि सारथी, दीन्हेव रथहिं चलाय ॥ख॥

उनकी सेवा के उपकरणों का वर्णन नहीं किया जा सकता क्योंकि उनकी सुन्दरता विविध प्रकार से सुशोभित हो रही थी। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का संकेत समझ कर सारथी ने रथ को चला दिया।

घर घर शब्द ललित अति लागा । मन्द मन्द रथ चलेव सुभागा ॥
गज घण्टा धुनि घन घन छाई । मनहुँ गरुड़ घण्टा सुखदाई ॥

उस सौभाग्य शाली रथ का अत्यन्त मनभावना घरर–घरर शब्द हुआ और धीरे धीरे रथ चल दिया। उसमें जुते हुए हाथियों के गले में बँधे घण्टों की घनन–घनन ध्वनि वहाँ इस प्रकार छा गयी मानों सुखदायी गरुड़ घण्टा बज रहा हो।

मधुर मधुर बहु बाजन बाजे । सुनत लगत मधु मेघ गराजे ॥
श्री चिन्हित रथ धुजा सुहावै । मनहुँ सीय यश फहरि बतावै ॥

उस समय मधुर–मधुर स्वर सेबहुत से वाद्य बज रहे थे जिन्हें सुनकर लगता था मानों मधुर स्वर से बादल गरज रहे हों। रथ में श्री चिन्ह से चिन्हित ध्वजा सुशोभित हो रही थी मानों वह फहरा–फहरा कर श्री सीता जी के यश का बखान कर रही हो।

बिरदावलि वर बन्दि उचारैं । भाँट सूत प्रभु सुयश प्रसारैं ॥
वारमुखी शुभ सुयश बखानी । निरतत आगे भाव समानी ॥

बन्दीजन सुन्दर बिरदावली का उच्चारण कर रहे थे, भाँट व सूतगण भगवान के सुन्दर यश को प्रसारित कर रहे थे तथा नर्तकियाँ शुभ व सुन्दर यश का बखान करती हुई भाव में समायी रथ के आगे–आगे नाच रही थीं।

राज साज सब भाँति सम्हारी । नगर विलोकन हित हितकारी ॥
प्रमुदित कुँअर चले लै रामहिं । राजमार्ग सुठि सुख सुविधा महिं ॥

इस प्रकार राज्योपचार की सम्पूर्ण सामग्री की सम्हाल कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रमुदित हो, परम हितकारी प्रभु श्रीरामजी महाराज को नगर दर्शन के लिये, लेकर सुन्दर, सुख व सुविधापूर्ण राजमार्ग से चले।

दो०–दशरथ सुभग कुमार दोउ, नगर विलोकन काज ।
चढ़ि गज–रथ सँग आवते, जनक सुवन रस राज ॥२१५॥

अयोध्या नर नरेन्द्र चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के दोनों सुन्दर कुमार श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी श्री मिथिला नगर देखने के लिए गज–रथ में सवार हो, रसराज जनक–नन्दन श्री लक्ष्मीनिधिजी के साथ आ रहे हैं।

अस सुधि पाय नगर नर नारी । बालक वृद्ध वयस्क अपारी ॥
धाये सब तजि दरशन हेता । धन्य प्रेम जहँ रहै न चेता ॥

यह समाचार पाकर श्री मिथिला पुरी के बालक, बृद्ध व जवान असीमित स्त्री–पुरुष अपने सभी कार्यो को छोड़कर उनके दर्शनों के लिए दौड़ पड़े। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्शण दास जी महाराज कहते हैं कि– यथार्थ प्रेम वही धन्य है जहाँ किसी प्रकार का ज्ञान नहीं रह जाता।

लखि अनूप नृप बालक दोऊ । नयन अतिथि कीन्हे सब कोऊ ॥
सुफल जन्म मानहिं सब अपनो । देखि राम जग लागत सपनो ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज के अनुपमेय दोनों बालकों को देखकर सभी उन्हें अपनी नेत्रों के अतिथि बना लिये तथा अपने जन्म को सफल मानने लगे। श्रीरामजी महाराज को देखकर उन्हें सम्पूर्ण संसार स्वप्न जैसे प्रतीत होने लगा।

विधि सन कहहिं जोरि युग पानी । सुनहिं विधायक मम हिय बानी ॥
हमहिं सुकृत फल चार न चाहिय । पावै दरशन सदा राम सिय ॥

वे सभी हाथ–जोड़कर श्री ब्रह्मा जी से विनय करने लगे कि– हे श्री ब्रह्मा जी! आप हमारे हृदय की पुकार सुनें, हमें अपने पुण्यों के फल्स्वरूप चारों फलों (अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष) में से कुछ भी नहीं चाहिए, हम श्री सीताराम जी का सदैव दर्शन मात्र पाना चाहते हैं।

श्याम गौर मनहर वर जोरी । नयन विषय बनि विलग न होरी ॥
सबन्ह हृदय अस होत जनावा । छन वियोग नहिं सहै सहावा ॥
उर संशय आनत बहु लोगू । गिरे भूमि हिय भरे वियोगू ॥

सुन्दर श्याम व गौर वर्ण (श्रीरामजी व श्रीलक्ष्मणजी) की मनहरण श्रेष्ठ जोड़ी हमारे नेत्रों का विषय बन कर कभी भी पृथक न हो। उस समय सभी के हृदय में ऐसा समझ आता था कि इनका एक क्षण का वियोग भी हमसे नहीं सहन होगा, अधिकांश लोग तो वियोग की शंका हृदय में लाते ही वियोग में भर कर भूमि में गिर पड़े––––

दो०–तिन संगी उपचार करि, कहैं लखो रघुलाल ।
होइ सचेत पुनि ते लखहिं, प्राणन प्रिय युग बाल ॥२१६॥

–––तब उनके साथियों ने उपचार द्वारा स्वस्थ कर उनसे कहा कि– अभी तो रघुकुल के

राजकुमारों का दर्शन करिये, तब वे चैतन्यता धारण कर प्राणों से प्रिय युगल कुमारों (श्री राम जी व श्री लक्ष्मण जी) को देखने लगे।

भूप मार्ग भै भीर महाना। सेवक करहिं प्रबन्ध विधाना॥
सेठ महाजन इन्द्र लजाई। बैठे आसन मोद अमाई॥

इस प्रकार राजमार्ग में भारी भीड़ हो गयी तब सेवकगण नियम पूर्वक प्रबन्ध करने लगे। वहाँ देवराज इन्द्र को भी विलज्जित करते हुए सेठ व महाजन अपने आसनों में आनन्द पूर्वक बैठे हुए थे।

देखत रामहिं होंय सुखारी। द्रव्य लुटावहिं सुरति बिसारी॥
सेवा योग राम के जानी। भूषण नख शिख बसन महानी॥

वे श्री राम जी महाराज को देखकर सुखी हो रहे थे तथा सम्पूर्ण स्मृति भुलाकर द्रव्य आदि लुटा रहे थे तथा श्रीरामजी महाराज की सेवा के योग्य समझ कर नख शिखान्त आभूषण एवं अमूल्य वस्त्र,–––

विविध रत्न उपहार अपारा। डारहिं रथ पर करत सम्हारा॥
आरति हरण आरती करहीं। शीश झुकाय प्रणामहुँ परहीं॥

–––विभिन्न प्रकार के रत्न तथा असीमित उपहार आदि सँभाल कर रथ में डाल देते थे पुनः उनके कष्ट निवारण के हेतु आरती उतारते तथा शिर झुकाकर प्रणाम भी करते थे।

घर घर मंगल कलश सँभारे। बन्दनवार पताका द्वारे॥
सुभग चौक मणियन भरि पूरी। गृह गृह आरती सजे कपूरी॥
पुष्प वरषि सब जय जय बोलैं। देखि श्याम सुख लहैं अतोलैं॥

श्री मिथिलापुरी के प्रत्येक घर में मांगलिक कलश सजाये रखे थे, पताका व बन्दनवार दरवाजों पर बँधे हुए थे, सुन्दर मणियों से भरी हुई चौके पूरी हुई थीं तथा प्रत्येक घर में सभी कपूर की सुन्दर आरती सजाये खड़े थे। वे सभी पुरवासी पुष्पों की वरषा कर जय जयकार करते तथा श्याम सुन्दर रघुनन्दन जू को देख कर अतुलनीय सुख प्राप्त कर रहे थे।

दो०–यहि विधि रघुवर जात पथ, लखहिं जनकपुर लोग।
परमानँद सुख सिन्धु महँ, डूबे जगत वियोग॥२१७॥

इस प्रकार रघुश्रेष्ठ श्रीरामजी महाराज राजमार्ग से चले जा रहे थे जिनका जनकपुर निवासी सुन्दर दर्शन कर रहे थे। उस समय वे संसार से विरत होकर परमानन्द में पगे हुए सुख के सागर में डूब गये थे।

अटा अटा चढ़ि निरखहिं नारी। कोउ कोउ गृह गवाक्ष दृग कारी॥
मरकत मृदुल कलेवर श्यामा। वारहिं अमित काम अभिरामा॥

जनक पुरी की वामांगनायें अट्टालिकाओं में चढ़–चढ़ कर श्री राम जी महाराज का दर्शन कर रही थीं तो कोई–कोई कज्जल–रंजित–अंगनायें भवन के झरोखों से ही उनका दर्शन कर रही थी

तथा उनके मरकत मणि समान, कोमल श्याम वपुष पर अपरिमित कामदेवों की सुन्दर छवि को वे निछावर कर रही थीं।

पीत वसन राजत तन माहीं । चम चम द्योति भहर भहराहीं ॥
कुण्डल हलकनि लसत कपोलनि । नासा मणि की अधर सुडोलनि ॥

श्री राम जी महाराज के शरीर में सुन्दर पीले रंग का वस्त्र सुशोभित हो रहा था जिससे चमचम चमकती हुई आभा अतीव प्रिय दर्शन प्रतीत हो रही थी। उनके सुन्दर दर्पण समान कपोलों पर कुण्डलों की हिलनि अत्यन्त सुशोभित हो रही थी तथा नाक की मणि (नासा मणि) उनके सुन्दर अधरों पर झूलती हुई शोभा प्राप्त कर रही थी।

अलक छलक छुटि जाहिं कपोले । रसिकन प्राण लेत बिन मोले ॥
शशि सत कोटि लजावन आवन । चितवनि मुसकनि मनहिं लुभावन ॥

उनकी सुन्दर अलकें छिटक–छिटक कर कपोलों पर बिखर जाती तथा रसिक जनों के प्राणों को बिना मोल ही क्रय किये ले रही थीं। उनका मुख मयंक सौ करोड़ चन्द्रमा को भी लजाने वाला तथा चितवनि व मुसुकनि (देखने व मुस्कराने की कला) सभी के मन को लुभाने लेने वाली थी।

अँग अँग भूषण भूषित सारे। युगल करन धनु सायक धारे ॥
शोभित गज रथ चढ़े अनूपा। मधुमय रहनि मधुहिं मय रूपा ॥

उनके सभी अंग आभूषणों से सजे हुए थे तथा दोनों हाथों में धनुष व बाण धारण किये वे अनुपमेय गज रथ में चढ़े हुए सुशोभित हो रहे थे। उनकी पारस्परिक प्रीति व सुन्दर स्वरूप अमृत के समान था।

दो०—मन्मथ मोहन राम के, लखत जनकपुर वाम ।
तन मन बुधि अह ख्वै गई, पागी प्रेम प्रधाम ॥२१८॥

कामदेव को भी मोहित कर लेने वाले श्रीरामजी महाराज को देखते ही जनकपुरी की स्त्रियों के शरीर, मन, बुद्धि तथा अहंकार आदि विनष्ट हो गये तथा वे सुन्दर प्रेम–राशि में पग गयीं।

श्यामल गौर अनूपम जोरी। देखहिं नारि सकल तृण तोरी ॥
होहिं सुखी लखि ललित लुभावन। मनहिं लगत अब अनत न जावन ॥

मिथिलापुरी की सभी नारियाँ अनुपमेय श्याम व गौर जोड़ी को निहाल होकर (तृण तोड़ती हुई) देख रही थीं तथा उनके सुन्दर लुभावने स्वरूप को देख देखकर सुखी हो रही थीं, उनके मन में ऐसा लगता था कि– अब ये अन्यत्र न जायें हमारे नेत्रों के सामने ही बने रहें।

कहहिं परस्पर सब मृदु बाता। सुनु सखि इन लखि मन न अधाता ॥
दर्प हरहि कोटिक कन्दर्पा। मिलि त्रिदेव नहिं इन सम सरपा ॥

वे सभी आपस में बातें करतीं कि हे सखी सुनो– इन्हें देखकर तो मन तृप्ति ही नही पा रहा। ये तो करोड़ों कामदेव के अभिमान को भी हरण कर रहे हैं तथा त्रिदेव भी मिलकर इनकी समता नहीं कर सकते।

चेतन सकल अचेतन जीवा । को न मोह लखि मोहन सीवा ॥
इक एकन कहँ कहैं बुझाई । योग सिया सखि सुन्दर ताई ॥

सभी चेतन व जड़ जीवों में ऐसा कौन होगा जो मोहकत्व की सीमा श्रीरामजी महाराज को देखकर मोहित नहीं होगा। वे सभी नारियाँ एक दूसरे से समझाकर कहतीं कि हे सखी! इनकी सुन्दरता तो श्री विदेहराज नन्दिनी सिया जू के ही योग्य है।

कहैं एक ये मृदुल गुलाबा । किमि तोरिहै धनु संशय आवा ॥
बिनु तोरे नहिं सीय विवाहा । करैं नृपति निज प्रण निरवाहा ॥
कहा एक सुनियत बड़ वीरा । निशिचर निकर दले रणधीरा ॥

एक सखी कहती– ये तो गुलाब पुष्प के समान सुकोमल हैं अतः संदेह हो रहा है कि किस प्रकार श्री शिव धनुष को तोड़ पायेंगे तथा महाराज तो अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करेंगे ही अतः बिना धनुष तोड़े तो श्री सिया जू का विवाह होगा नहीं। ऐसा सुनकर एक सखी ने कहा– मैने तो सुना है कि ये बड़े वीर हैं व युद्ध में धैर्य पूर्वक इन्होंने राक्षसों के समूह का संहार कर दिया है।

दो०–एक सखी वर्णन करी, जन्म करम रघुनाथ ।
गौतम तिय को तरन कहि, गाधि तनय मुनि साथ ॥२१९॥

अनन्तर एक सखी ने श्रीरामजी महाराज के दिव्य जन्म–कर्म, श्री विश्वामित्र जी के साथ आना तथा श्री गौतम मुनि की पत्नी श्री अहल्याजी के उद्धार आदि का वर्णन किया।–––

अवशि भंजि शिव धनुष कुमारा । सिय सह करिहैं व्याह सुखारा ॥
कहा एक सिय योग विधाता । इनहि बिरचि वर लाय लखाता ॥

–––अतः कुमार श्री राम जी महाराज अवश्य ही श्री शिव जी के धनुष का भंजन कर श्रीसियाजू के साथ अत्यन्त सुखकर विवाह करेंगे। यह सुनकर एक सखी ने कहा– मुझे तो ऐसा समझ आ रहा है कि श्रीसियाजू के योग्य इन वर की रचना कर श्री ब्रह्मा जी इन्हें यहाँ ले आये हैं।

मंगल मय सुनि सब सखि वानी । भरी उछाह न जाय बखानी ॥
निज निज भाव ते नात बनाई । तदाकार रस सिद्ध लखाई ॥

वे सभी सखियाँ यह मंगलमयी वाणी सुनकर ऐसे उत्साह में भर गयीं जिसका बखान नहीं किया जा सकता। पुनः सभी अपने अपने भावों के अनुसार श्रीरामजी महाराज से सम्बन्ध बना कर तदाकार हो रस सिद्ध सी दिखाई पड़ने लगीं।

राम प्रेम मूरति सब नारी । वरषहिं सुमन सप्रेम अटारी ॥
जब तब राम ऊर्ध्व अवलोकहिं । लखहिं नारि गति प्रीति सुझोंकहि ॥

श्री राम प्रेम की मूर्ति वे सभी स्त्रियाँ प्रेम पूर्वक अट्टालिकाओं से फूलों की वरषा करने लगीं। उस समय जब–तब श्री राम जी महाराज ऊपर की ओर निहारते थे तभी उन प्रेम झोंकों से युक्त गति वाली नारियों को कृपा भरी दृष्टि से देख पाते थे।

कृपा दृष्टि लखि सब विधि वामा । भईं नेह वश पूरण कामा ॥
मन महँ सबहिं कहिं अभिलाषा । गावहिं मंगल व्याह सुभाषा ॥

वे सभी प्रेम पारंगता पौरांगनायें श्रीरामजी महाराज की सभी प्रकार से कृपा दृष्टि पाकर प्रेम के विवश हो पूर्ण काम हो गयीं तथा अपने मन में अभिलाषा करने लगीं कि हम इनके वैवाहिक मंगल गीतों का गायन करें।

दो०–युगल नयन तरवार लै, काजल सान सुधार ।
कतल करत दुहुँ ओर हरि, छप छप मारत मार ॥२२०॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज अपने दोनों नेत्रों की तलवार लेकर, उनमें काजल की सुन्दर धार लगाकर छपा–छप मारते हुए दोनों ओर कत्ल किये जा रहे थे अर्थात् अपनी मनमोहिनी दृष्टि से सभी को व्यामोहित किये जा रहे थे।

धायल बिना जीव नहिं बाँचे । अजब शिकारी हिसंक साँचे ॥
जियत मरत झुकि झुकि सब जीवा । नयन चोट के घले अतीवा ॥

उस समय कोई भी जीव शेष नही था जो उनके नेत्र प्रहार से घायल न हो क्योंकि प्रभु तो निराले शिकारी व सच्चे हिंसक (संसार से मुक्त कर देने वाले) हैं जिनके नेत्रों के प्रहार आधिक्य से मारे हुए सभी झुक–झुक कर जीव जीते व मरते रहते हैं अर्थात् उनके नेत्रों के स्मरण से जीवित हो जाते तथा विस्मरण से मृत प्राय हो जाते थे।

मिथिला नगरी धूम मचायो । रूप जाल नर नारि फँसायो ॥
निज नयनन देखी हनुमाना । कही जनकपुर प्रीति प्रमाना ॥

रघुवंश विभूषण श्री राम जी महाराज ने श्री मिथिला पुरी में धूम मचा दी थी व अपने रूप–सौन्दर्य के जाल में वहाँ के सभी स्त्री–पुरुषों को फँसा लिया था। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा–हे हनुमान जी! मैने अपनी आँखों देखी हुई श्री जनक पुर की प्रामाणिक प्रीति का वर्णन किया है।

जनक सुवन मन महा उछाहा । दरश परश प्रभु रूपहिं लाहा ॥
मधुर मधुर बतरात कुँअर । नगर दिखावत हरषि हर्षधर ॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज के सुन्दर वपु का दर्शन व स्पर्श लाभ प्राप्त कर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी के मन में महान उत्साह छाया हुआ था इस प्रकार वे मधुर–मधुर बातें करते हुए हर्ष पूर्वक आनन्द स्वरूप श्री राम जी महाराज को श्री मिथिला पुरी का दर्शन करा रहे थे।

विविध बजार रुचिर देवालय । मंत्रिन घर घनि धनिक धनालय ॥
राज भवन रघुवरहिं दिखाये । रथहिं बैठि देखे भल भाये ॥

विभिन्न प्रकार की बाजार, सुन्दर देवालय, मन्त्रियों के घर तथा धनिकों के कोषागार एवं राजभवन आदि श्रीरामजी महाराज को उन्होंने दिखाया जिन्हें रथ में बैठे हुए ही श्रीरामजी महाराज ने सुन्दर भाव पूर्वक अवलोकन किया।

दो०–रंग भूमि पहँ पहुँचि प्रभु, मोहन मधुमय राम ।
हरषि उतरि गजयान सो, पायन चले प्रधाम ॥२२१॥

पुनः सभी को मोहित कर लेने वाले, रसस्वरूप, प्रभु श्रीरामजी महाराज पवित्र रंगभूमि में पहुँचकर हर्षित हो सुन्दर गजयान से उतर गये तथा पैदल चलने लगे।

मैथिल बालक पेखि पयादे । आये भरे अमित अहलादे ॥
पेखि प्रेम रघुवर सुख साने । बचन विशेष परशि सनमाने ॥

उस समय प्रभु श्रीरामजी महाराज को पैदल चलते देख मैथिल बालक असीम आह्लाद में भरे हुए उनके समीप आ गये तब उनके प्रेम को देख श्रीरामजी महाराज सुख में सनकर उनका स्पर्श करते हुये विशेष वचनों से सम्मान किये।

जनक कुँअर कर पकरि राम के । दिखरावहिं रचना सुधाम के ॥
विविध भाँति दिवि छटा दिखाई । रथ चढ़ि चले पुनः सरसाई ॥

जनक कुँवर श्री लक्ष्मीनिधिजी श्रीरामजी महाराज का हाथ पकड़ कर सुन्दर रंगभूमि की रचना दिखाने लगे तथा वहाँ की विभिन्न प्रकार की दिव्य शोभा का दिग्दर्शन कराकर पुनः रथ में सवार हो आनन्द पूर्वक चल दिये।

पितृव्यन के सदन अनूपा । कुँअर दिखायो लखत सुरूपा ॥
पूछहिं राम मनहु अनजाने । बेगि बतावहिं कुँअर सयाने ॥

कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने श्रीरामजी महाराज का सुन्दर रूप निहारते हुए अपने चाचाओं के अनुपमेय भवनों को उन्हें दिखलाया। उस समय श्रीरामजी महाराज अज्ञानी व्यक्ति के समान सभी कुछ पूछते थे जिसे परम कुशल कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी शीघ्र ही बता देते थे।

राम कहहिं लखु लखन प्रवीरा । रचना पुरी अमित गंभीरा ॥
मदन विमोहन शुचि सुठि शोभा । इन्द्रपुरी शत लजै प्रछोभा ॥
पुर परिकोट सुवर्ण सुहावा । मनहु मार निज हाथ बनावा ॥

उस समय वहाँ श्रीरामजी महाराज ने कहा – हे परम वीर श्री लखन लाल जी! आप इस पुरी की असीमित गम्भीर रचना को देखिये। कामदेव को भी मोहित कर लेने वाली इस सुन्दर पवित्र शोभा को देखकर सैकड़ों इन्द्र पुरियाँ भी छोभ प्राप्त कर लजा रही हैं। पुरी का बाहरी रक्षक–आवरण (परकोटा)सुन्दर व स्वर्ण निर्मित है जिसे देखकर ऐसा लगता है मानों कामदेव ने इसे अपने हाथों से ही बनाया है।

दो०–पुर विभ्राजत भवन सब, मनहु सूर शशि लोक ।
राजा परजा एक सम, सुभग सदन द्युति ओक ॥२२२॥

इस पुरी के सभी भवन अत्यन्त तेज युक्त ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानों सूर्य व चन्द्रलोक के हों। यहाँ राजा व प्रजा सभी के एक समान सुन्दर व प्रकाश विखेरने वाले भवन हैं।

अटा अटा पर नारि समूहा । दिखत छिपत जनु विद्युत व्यूहा ॥
उमा रमा ब्रह्माणी रसदा । तन द्युति लाजत लखि पुर प्रमदा ॥

प्रत्येक अट्टालिका पर स्त्रियों का समूह ऐसे दिखता व छिप जाता है जैसे वे विद्युत की समूह हों। श्री जनकपुरी की स्त्रियों के शरीर की आभा को देखकर रसदायिनी श्रीपार्वतीजी, श्रीलक्ष्मी जी व श्रीसरस्वतीजी भी लज्जित हो जाती है।

देखत बनैं नगर नर नारी। काम रती बहु छवि छकि हारी ॥
त्रिकरण पूत सुभग सब साधू । नारि पुरुष प्रभु प्रेम अगाधू ॥

यहाँ के नगर निवासी पुरुष–स्त्री तो देखते ही बनते हैं जिनके सौन्दर्य के आगे अनेक कामदेव व रती भी आश्चर्य चकित हो पराजित हो जाते हैं। सभी पुरुष–स्त्री मन, वचन व कर्म से पवित्र सुन्दर साधु स्वभाव सम्पन्न एवं असीम भगवत्प्रेम से परिपूर्ण हैं।

ज्ञान विराग स्वभावहिं सबके। ईहा अहं ममहिं नहिं खटके ॥
धर्म निरत विज्ञान समाये। कला प्रवीण गुणज्ञ सुहाये ॥

ज्ञान व वैराज्ञ तो इन सभी में स्वाभाविक ही विद्यमान है, वासना, अहंकार व ममता आदि विकार कभी भी इनके मन में स्पर्श नहीं करते तथा ये सभी धर्म परायण, विशेष ज्ञान से संयुक्त, सम्पूर्ण कलाओं में दक्ष, सुन्दर एवं अत्यन्त गुणवान हैं।

नीचहुँ वैभव देख सुरेशा। लजेव मनहिं मन सहित घनेशा ॥
भूप भवन नहिं पटतर योगू। शत शत इन्द्र लजहिं लखि भोगू ॥

यहाँ के निम्न से निम्न व्यक्ति के वैभव को देखकर श्री कुबेर जी सहित देवराज श्री इन्द्र भी मन ही मन लज्जा मानते हैं। श्री महाराज जनकजी के भवन की तो कहीं समानता ही नहीं हैं, जिनके भोगों को देखकर सैकड़ों इन्द्र भी विलज्जित हो जाते हैं।

दो०–सकल भुवन भूपाल मणि, लगत जनक नर नाह ।
सबहिं नृपति सेवहिं सुखद, धरैं मुकुट पद माँह ॥२२३॥

श्री जनक जी महाराज सम्पूर्ण लोकों के राजाओं में मणि के समान लगते हैं व सभी राजागण इनकी सुखपूर्वक सेवा करते हुए अपने राज मुकुटों को इनके चरणों में रखे रहते हैं अर्थात् इनका अनुशासन मानते हैं।

रंग भूमि जस भई रचाई । देखी सुनी कतहुँ नहिं भाई ॥
मनहुँ काम अणु अणु करि वासा । चहत लखन रंग भूमि प्रकाशा ॥

पुनः रंगभूमि की जिस प्रकार रचना हुई है, हे भाई! वह कहीं भी देखी व सुनी तक नहीं गयी ऐसा लगता है मानों स्वयं कामदेव यहाँ के एक एक अणु में निवास कर रंगभूमि की सुन्दरता देखना चाह रहा है।

कुँअर कुँअरि के भवन अनूपा । मनहु काम निज हाथ निरूपा ॥
हय गय रथ संकुल वर शालन । सेन अमित तिरलोकी घालन ॥

यहाँ के राजकुमारों व राजकुमारियों के अनुपमेय भवनों को तो मानो सौन्दर्य के अधिदेवता कामदेव ने स्वयं अपने हाथों से ही निर्मित किया है। यहाँ घोड़े, हाथी तथा रथ आदि के भवनों के सुन्दर समूह हैं तथा यहाँ की असीमित सैन्य शक्ति तीनों लोकों का संहार करने मे सक्षम है।

सुभट चतुर्दिक रक्षत नगरी । आवन पाव न कालहुँ डगरी ॥
बाहर नगर प्रबन्ध महाना । लह आगन्तुक तहँ सुख नाना ॥

यह मिथिला नगरी चारों दिशाओं में श्रेष्ठ वीरों से सुरक्षित है, जहाँ की गलियों में भी स्वयं कालदेव भी प्रवेश नहीं करने पाते। नगर के बाहर का प्रबन्ध भी अत्यन्त श्रेष्ठ है जहाँ अतिथि अभ्यागत अनेक प्रकार के सुख प्राप्त करते रहते हैं।

कमला तट बहु घाट मनोहर । राजत मणि सोपान यशोधर ॥
बाग तड़ाग बहुत पुर सोहैं । नन्दन मानस लजत बड़ो हैं ॥

परम यशस्विनी श्रीकमला नदी के तट पर बहुत से मनोहारी घाट हैं जहाँ मणियों की सीढ़ियाँ बनी हुई है। इस पुरी में बहुत से बाग व तालाब सुशोभित हो रहे हैं जिन्हें देखकर नन्दन बाग तथा मानसरोवर भी अत्यधिक लज्जित हो जाते हैं।

सरि सर तीर अमित देवालय । मुनिहुँ रहैं तहँ रचि तृणशालय ॥
बहै बयार त्रिविध अनुकूला । विहरत पुरिहिं बिबुध मनफूला ॥

इन नदियों व तालाबों के तट पर असीमित मंदिर बने हुए हैं तथा वहाँ पर ऋषि मुनि भी अपनी अपनी पर्णशालायें बनाकर निवास करते हैं। तीनों प्रकार का (शीतल, मन्द, सुगन्धित) अनुकूल वायु प्रवाहित होता रहता है तथा देवता भी प्रफुल्लित मन श्री मिथिला पुरी में विहार करते रहते हैं।

पंच शब्द धुनि सदा सुनाई । ईश सेव सब करैं महाई ॥
वैष्णव योगी अरु सन्यासी । भगवत आत्मा ब्रह्म उपासी ॥

यहाँ सदैव ही पंच–ध्वनि होती रहती है तथा सभी लोग ईश्वर की अत्यधिक सेवा करते रहते हैं। वैष्णव–योगी और सन्यासी जो कि श्रीभगवान, आत्मा व ब्रह्म की उपासना करते हैं–––

तिन सो पूरित नगर सुहावै । मनहु धर्म पुर रूप दिखावै ॥
नगर अलौकिक सब विधि भागा । विधि विरचित नहिं नेकहुँ लागा ॥

–––उन सभी से परिपूर्ण यह नगर ऐसे सुशोभित है मानो स्वयं धर्म ही पुरी के रूप में दिखाई पड़ रहा हो। यह श्रीमिथिला नगर सभी प्रकार से भाग्यवान और अलौकिक है तथा यह तनिक भी श्री ब्रह्मा जी के द्वारा निर्मित किया नहीं प्रतीत हो रहा।

यहि ते अधिक कहौं का भाई । मोरहु मन बहु गयो लुभाई ॥
सुनत राम के बैन सुहाये । बोले लखन ललित सुख छाये ॥

हे भाई लक्ष्मण कुमार! इससे अधिक मैं अब क्या कहूँ, कि मेरा मन भी यहाँ अत्यधिक लुब्ध हो गया है। श्री राम जी महाराज के इन सुन्दर वचनों को सुनकर श्रेष्ठ लक्ष्मण कुमार जी सुख में भर कर बोले–

दो०–धन्य धन्य मिथिला पुरी, करी प्रशंसा नाथ ।
वैकुण्ठन की तिलक वर, जहँ मोहे रघुनाथ ॥२२४॥

हे नाथ! जिसकी आप ने सराहना की है, यह श्री मिथिला पुरी धन्याति धन्य तथा सम्पूर्ण वैकुण्ठ लोकों की सुन्दर शिरमौर (तिलक स्वरूपा) है जहाँ श्री रघुकुल के स्वामी स्वयं आप मोहित हो गये हैं।

यहि ते अधिक कहौं का स्वामी । आदि शक्ति नित विहरइ यामी ॥
नाथ नृपति की यावत रचना । मन वाणी नहिं करय प्रक्चना ॥

हे स्वामिन्! मैं इस पुरी की प्रशंसा में इससे अधिक क्या कहूँ, कि परमाद्या शक्ति नित्य ही यहाँ विहार करती हैं। हे नाथ! श्री जनक जी महाराज की जितनी भी रचना है उसका बखान तो मन और वाणी से नहीं किया जा सकता।

अणु अणु लागत सच्चिद रूपा । आनन्द राशि आप अनुरूपा ॥
श्री गुरु कृपा लखे इत आई । राउर लाये साथ लिवाई ॥

यहाँ का प्रत्येक कण सच्चिदानन्दमय, आनन्द की राशि तथा आप श्री के योग्य लग रहा है। श्री गुरुदेव जी कृपा से ही यहाँ आकर इसका दर्शन हम कर सके हैं तथा मुझे तो आप श्री ही अपने साथ ले आये थे अन्यथा इसके दर्शन से बंचित ही रहता।

धन्य कुँवर जहँ करै विहारा । आत्म ज्ञान गति भक्ति उदारा ॥
जनक सुवन सुनि लखन सुबानी । बोले वचन प्रेम सरसानी ॥

आत्म ज्ञानमयी स्थिति व उदार भक्ति से परिपूर्ण कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी धन्य हैं जो यहाँ नित्य विहार करते हैं। श्री लक्ष्मण कुमार जी के सुन्दर वचनों को सुनकर जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधिजी प्रेम में सरसाये हुए बोले–

मृषा न होय तात जो कह्यऊ । हम धनि धन्य नगर युत भयऊ ॥
जौ पै आय दरश प्रभु दीन्हा । हमहिं पुरी सह पावन कीन्हा ॥

हे तात्! आप श्री ने जो भी कहा है वह असत्य नहीं है हम निश्चय ही इस नगरी सहित धन्याति धन्य हो गये हैं जो आप लोगों ने यहाँ आकर दर्शन दिया तथा श्री मिथिला पुरी सहित हमें पावन कर दिया।–––

दो०–श्रुति पुराण सब संत कह, भल जग राम भलाइ ।
नतरु जीव अहमिति रँग्यो, हर्ष शोक समुदाइ ॥२२५॥

–––श्रुतियाँ, पुराण एवं सन्त सभी यही कहते हैं कि यह संसार तभी तक भला है जब तक श्रीरामजी महाराज की भलाई से युक्त है नहीं तो यह संसार जीवों के अहंकार व ममकार से रँगा हुआ

प्रसन्नता और दुख का समूह ही है।

नाथ बड़ेन कर सहज स्वभाऊ। देवहिं मान सदा सब काऊ॥
यहि विधि कहत सुनत रघुराई। देखहिं नगर मनोहरताई॥

हे नाथ! फिर बड़े लोगों का तो सहज ही स्वभाव होता है कि वे सभी को सदैव सम्मान देते रहते हैं। इस प्रकार की बातें कहते व सुनते हुये श्रीरामजी महाराज मिथिला नगर की मनोहरता का दर्शन कर रहे थे तथा–––

हरत सबन्ह मन रूप लोनाई। मानहु मोहन मंत्र जगाई॥
कुँअर कहेव मृदु वचन सप्रीती। सुनहिं नाथ वर विनय विनीती॥

–––अपने रूप की सुन्दरता से सभी के मन का अपहरण कर रहे थे मानों वे वशीकरण मंत्र सिद्ध किये हुए हो। पुनः कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने प्रेमपूर्वक कोमल वाणी से कहा– हे नाथ! मेरी विनय पूर्वक की हुई प्रार्थना को श्रवण करें–

इक अभिलाष अहे अति भारी। तुमहि जनावौं गिरा उचारी॥
मातुहिं प्रभु प्रिय दरशन दीजै। पावन भवन आपनो कीजै॥

मेरी एक अत्यन्त प्रबल इच्छा है जिसे मैं वाणी से कह कर ज्ञात करा रहा हूँ। आप अपना प्रिय दर्शन हमारी श्री अम्बा जी को प्रदान करें तथा अपने उस भवन को पवित्र बना दें।

मृदु मुसकाय भक्त भय हारी। कहेव मातु दरशन रुचि भारी॥
हमरे चाहत तुम कहि पारे। अबहिं चलौं प्रिय प्राण पियारे॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचन श्रवण कर भक्तों के भय का हरण करने वाले प्रभु श्री रामजी महाराज मन्द–मन्द मुस्कराते हुए बोले– श्री अम्बा जी का दर्शन करने की तो हमारी भी अतीव इच्छा थी और हम कहना ही चाहते थे कि आपने कह दिया। अतः हे प्रिय प्राणों के प्यारे! कुमार, मैं अभी चल रहा हूँ।

दो०–नीति प्रीति प्रभु की निरखि, सूधो शील सुभाव।
कुँअर गये बलिहार हिय, मन महँ परम उछाव॥२२६॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज की नीति, प्रीति व सरल शील–स्वभाव देखकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने मन में परम उत्साह पूर्वक अपना हृदय उन पर न्योछावर कर दिया।

मास पारायण चौथा विश्राम

सारथि कुँअर सुआयसु पाई। मातु महल रथ दियो चलाई॥
पहुँचि कुँअर रथ उतरि चाव ते। प्रभुहिं उतारेउ अति उराव ते॥

अनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी की आज्ञा पाकर सारथी ने रथ को अम्बा श्री सुनैनाजी के महल की ओर चला दिया, वहाँ पहुँच कर अत्यन्त उत्साहपूर्वक कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने रथ से उतर आनन्द पूर्वक प्रभु श्रीरामजी महाराज को उतार लिया।

यथा रीति सह प्रीति कुमारा । कर गहि राम लखन पगु धारा ॥
मरकत स्वर्ण निरखि प्रिय जोरी । सीय मातु भई प्रेम विभोरी ॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने विधि–विधान से श्रीरामजी महाराज व लक्ष्मण कुमार को प्रेम पूर्वक हाथ पकड़ कर महल में पधरवा दिया। मरकत मणि व सुवर्ण की छवि वाली प्रिय जोड़ी श्री रामजी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार को देखकर श्री सीता जी की अम्बा सुनैनाजी प्रेम विभोर हो गयीं।

सखिन सहित धरि धीर सुनैना । आरति करी हृदय अति चयना ॥
रतन सिंहासन दुहुँ बैठाई । पूजी षोड़स भाँति विधाई ॥

पुनः धैर्य धारण कर श्री सुनैना जी ने सखियों सहित हृदय में अत्यधिक आनन्दित हो उनकी आरती उतारी तथा दोनों भाइयों को रत्न सिंहासन में बैठाकर षोडसोपचार विधि से उनका पूजन किया।

वस्त्राभूषण विविध प्रकारी । अरपि मातु अति भई सुखारी ॥
गोद बिठाय प्यार अति कीन्हीं । लोचन लाहु आपु गिन लीन्हीं ॥

पुनः अम्बा श्री सुनैना जी उन्हें विभिन्न प्रकार के वस्त्र व आभूषण अर्पित कर अत्यधिक सुखी हुई तथा अपनी गोद में बैठाकर अत्यन्त प्यार किया व उन राजकुमारों के दर्शन को अपने नेत्रों का परम लाभ समझा।

बोली बहुरि सुखद मृदु वानी । पायी दरश भाग बड़ मानी ॥
सब विधि लाल मोहिं अपनाइय । इहैं चाह मन मागे पाइय ॥

पुनः वे सुखप्रद कोमल वाणी से बोलीं– मैंने आपका दर्शन पा लिया, यह मेरा बड़ा ही सौभाग्य है, हे लाल रघुनन्दन! अब आप मुझे सभी प्रकार से अपना लें, मैं आपसे यही कामना करती हूँ मेरी मनोभिलषित यही इच्छा मुझे प्राप्त हो।

दो०–राम कहेव सुनु मातु मम, कौशिल्या सम आहिं ।
श्रवण सुयश सुनते रहे, आज लखे चख माहिं ॥२२७॥

श्री रामजी महाराज ने कहा– हे श्रीअम्बाजी! आप मेरे लिये तो श्री कौशिल्या अम्बा जी के समान हैं, अभी तक आपके सुन्दर यश को ही हम सुनते रहते थे परन्तु आपका दर्शन आज ही प्राप्त कर सके हैं।

जनक राय तेहि अवसर आये । राम लखन लखि अति सुख पाये ॥
दूनहु भाइ भूप शिर नाये । लीन्हे भूपति गोद बिठाये ॥

उसी समय श्री जनक जी महाराज आ गये तथा श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार को देखकर अत्यधिक सुख प्राप्त किये। दोनों भाइयों (श्रीरामजी व श्रीलक्ष्मणजी) ने उन्हें सिर झुका प्रणाम किया तब श्री महाराज ने उन्हें अपनी गोद में बैठा लिया।

अति उत्साह सदन करवावा । विप्रन दान विविध विधि पावा ॥
रक्षा मन्त्र राय रस रानी । मंगल स्तव पढ़े सुबानी ॥

श्री विदेहराज जी महाराज ने महल में उत्साह पूर्वक महोत्सव करवाया, ब्राह्मणों ने विभिन्न प्रकार से दान प्राप्त किया तथा महारानी श्रीसुनैनाजी सहित श्रीजनकजी महाराज ने रक्षा मन्त्र और मंगल स्तव का पाठ किया।

यावत बनेव महा सतकारा । कीन्हे रानि राउ सुख सारा ॥
हाथ जोरि रघुवीर कृपाला । कीन्ह प्रगट इच्छा तेहिं काला ॥

महारानी श्री सुनयनाजी व महाराज श्री जनक जी ने श्री राम जी महाराज का सुखों का सारभूत जितना बन सका महान सत्कार किया। अनन्तर परम कृपालु रघुवीर श्री रामजी महाराज हाथ जोड़कर उस समय अपने हृदय की अपनी इच्छा प्रगट की।

आयसु होय जाउँ गुरु पाहीं । यहाँ रहब नहिं उचित लखाहीं ॥
गुरु सेवा रत मान महीपा । कहेउ कुँअर सह जाहु प्रदीपा ॥

यदि आज्ञा हो तो मैं अपने श्री गुरुदेव जी के पास जाऊँ क्योंकि यहाँ रहना उचित नहीं जान पड़ता। तब श्री गुरुदेवजी की सेवा में तत्पर जानकर महाराज श्री जनकजी ने कहा– हे रघुकुल दीप (रघुकुल के प्रकाशक) श्रीराम! आप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ प्रस्थान करें।

दो०– यथा योग मिलि सबहिं प्रभु, मन महँ महा अनन्द ।
जाय विराजे गज रथहिं, लीन्हें निमिकुल चन्द ॥२२८॥

इस प्रकार सभी से यथोचित भेंट कर मन में महान आनन्द पूर्वक प्रभु श्रीरामजी महाराज निमिकुल के चन्द्रमा श्री लक्ष्मीनिधि जी को लिये हुए गज–रथ में जाकर विराज गये।

चलेव तुरत रथ बाजत बाजा । पंच शब्द ध्वनि मंगल साजा ॥
पहुँच गयो रथ सुभग अगारे । रोक रथहिं लक्ष्मीनिधि प्यारे ॥

तदुपरान्त शीघ्रतापूर्वक रथ चल पड़ा, उस समय बहुत से वाद्य बजने लगे, पंच ध्वनि होने लगी तथा मांगलिक वस्तुयें सजा दी गयी। पुनः जब वह गज–रथ एक सुन्दर भवन के समीप पहुँचा तब प्रिय श्री लक्ष्मीनिधि जी ने रथ को रोक कर कहा–––

राउर भवन इहै है नाथा । श्री पद चलि करि देहिं सनाथा ॥
सुनत श्याम सुठि कोमल वानी । दैन्य भगति वैराग प्रधानी ॥

–––हे नाथ! यह भवन आप श्री का ही है, श्री चरण चल कर इसे सनाथ कर दें। श्री लक्ष्मीनिधि जी की सुन्दर, कोमल, दैन्य, भक्ति व वैराग्य की प्रधानता से युक्त वाणी को श्रवणकर श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज––

बन्धु सहि द्रुत आगे उतरे । पीछे जनक सुवन लखि ठगरे ॥
पाँवड़ पड़े पुष्प बिछवायी । गंध सींचि गृह चलेव लिवाई ॥

———अपने भैया श्री लक्ष्मण कुमार जी सहित शीघ्रता पूर्वक गज रथ से प्रथम ही उतर गये, जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी उन्हें ऐसा करते देख चकित हुये समान बाद में उतरे तथा सुन्दर पाँवड़े विछवा कर, उन पर पुष्प बिखेर व वहाँ इत्र सिंचन करते हुए कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी श्री राम जी महाराज व लक्ष्मण कुमार जी को अपने भवन लिवाकर ले चले।

अन्तः पुरहिं गये रसि रामा। आरति करी कुँअर की बामा॥
सिंहासन अति दिव्य मनोहर। शोभे सदन सुभग शोभाकर॥

उनके प्रेम में डूबे हुए श्रीरामजी महाराज अन्तःपुर पहुँच गये वहाँ कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी की धर्मपत्नी श्री सिद्धि कुँवरिजी ने आरती उतारी। तब उनके भवन में अत्यन्त दिव्य मनोहारी सिंहासन में शोभा–धाम रघुनन्दन श्री राम जी महाराज विराजकर सुशोभित होने लगे।

छत्र चमर गहि सखि गण राजैं। अगणित भूषण वस्त्र सुसाजै॥
दम्पति षोडस भाँति सुपूज्यो। जानि ईश कछु भाव न दूजो॥

उस समय वस्त्राभूषणों से सुसज्जित अनगिनत सखियाँ छत्र, चँवर आदि सेवा सामग्री लिये हुए सुशोभित होने लगीं। दम्पति श्रीलक्ष्मीनिधिजी व श्रीसिद्धि कुँवरिजी ने श्री राम जी महाराज का सर्वेश्वर भाव से षोड़सोपचार पूजन किया उनके मन में कोई अन्य भाव नहीं था।

परम प्रेम दोउ सुधिहिं बिसारी। निरखहिं राम नयन भरि वारी॥
कर गहि राम कुँवर बैठाये। मेलि कंठ भुज सुठि सुख छाये॥

वे दोनों (श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँवरि जी) परम प्रेम में पगे हुए अपनी स्मृति भूल नेत्रों में अश्रु भरकर श्री राम जी महाराज को देखने लगे तब श्री राम जी महाराज ने कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी का हाथ पकड़ कर बिठा लिया और उनके गले में बाँहें डाल कर सुन्दर सुख प्राप्त किया।———

दो०– सुनहु कुँअर मम प्राण प्रिय, सब विधि राउर मोर।
बचन अन्यथा कहहुँ नहिं, हिय महँ मूरति तोर॥२२९॥

———और बोले– हे कुमार! सुनिये, आप सभी प्रकार से मेरे हैं तथा मुझे प्राण–प्रिय हैं, मैं मिथ्या वाणी नहीं कह रहा, मेरे हृदय में आपकी ही मूर्ति बसी हुई है।———

नहि विश्वास देख किन लेहू। कहत राम खोलउ उर नेहू॥
जनक सुवन निज मूरति देखी। मंजु मनोहर हिये विशेषी॥

———यदि आपको विश्वास न हो तो देख ही क्यों न लीजिये, ऐसा कहते हुए प्रेम में भरकर श्रीरामजी महाराज ने अपना वक्षस्थल खोल दिया तब जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उनके हृदय में अपनी मनोहारी, सुन्दर मूर्ति का दर्शन किया।———

झलमल झलकति राम हृदय महँ। वसहिं प्राण रघुवीर मनहु तहँ॥
राम कृपा लखि नेह महाना। कुँवर प्रेम के सिन्धु समाना॥

———वह श्री राम जी महाराज के हृदय में झिलमिलाती हुई ऐसी दीख रही थी मानो वहाँ

श्रीरामजी महाराज के प्राण निवास कर रहे हों। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने ऊपर श्री राम जी महाराज की ऐसी कृपा देखकर प्रेम के सागर में डूब गये।

ह्वै अचेत खसि गयो कुमारा । हिय लगाय प्रभु तबहिं सम्हारा ॥
करि स्पर्श पोछि जल नयना । कुँअर सखे कहि बोलत बैना ॥

अनन्तर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी स्मृति–हीन हो गिर पड़े तभी प्रभु श्रीरामजी महाराज ने उन्हें हृदय से लगाकर सम्हाल लिया एवं उनका स्पर्श कर आँसुओं को पोछते हुए हे सखे! हे कुमार! कहकर पुकारने लगे।–––

पुनि उपचारि सचेत करायो । मुख धुवाय प्रभु पान पवायो ॥
कुँअरहिं जानि प्रसन्न स्वधामा । बोले वचन अमिय अभिरामा ॥

–––पुनः प्रभु श्री राम जी महाराज ने उपचार द्वारा उन्हें सचेत कराया तथा मुख धुलाकर पान खिलाया और तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रसन्न जानकर सुन्दर अमृत स्वरूप वचन बोले–

दो०– चलहु सखा गुरु पहँ द्रुतहिं, भई यहाँ बहु बेर ।
गुरु कृपालु सोचहिं कहा, डर लागत हिय हेर ॥२३०॥

––हे सखे! अब शीघ्र ही श्री गुरुदेव जी के समीप चलिये, यहाँ बहुत ही बिलम्ब हो गया। कृपालु गुरुदेव न जाने क्या सोच रहे होंगे? ऐसा हृदय में बिचार कर मुझे डर लग रहा है।

भृकुटि विलास काल लय होई । राखत वेद धर्म प्रभु सोई ॥
गुरु महँ प्रीति करै मति माना । सुत अरु आत्म अधिक अनुमाना ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– जिनकी भौहों के संकेत से काल का भी विनास हो जाता है ऐसे प्रभु श्री राम जी महाराज वेद व धर्म की रक्षा कर रहे हैं। हे बुद्धिमान जीवो! श्री गुरुदेव जी में पुत्र और आत्मा से भी अधिक प्रीति करना चाहिये–––

गुरु महँ करै अमित विश्वासा । आत्म सुमित्रहुँ ते बढ़ दासा ॥
नृपति काल सो अधिक डराई । सेवै गुरु अस जानि सदाई ॥

––– जीवों को चाहिये कि श्री गुरुदेव जी मे अपनी आत्मा व सच्चे मित्र से भी अधिक असीम विश्वास करे तथा सदैव राजा और काल से भी अधिक भयभीत होकर श्री गुरुदेव जी की सेवा करना चाहिए ।

लोकहिं शिक्षण हेतु प्रधामा । कुँअरहिं बोले बच अभिरामा ॥
सुनत कुँअर कह पानिहिं जोरी । राखी राम रसिक रुचि मोरी ॥

हे सज्जनो! श्री राम जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से संसार को शिक्षा देने हेतु ही ऐसे सुन्दर वचन कहे हैं। श्री राम जी महाराज के वचन सुनते ही कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने हाथ जोड़कर कहा– हे रसिक श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज! आपने मेरी इच्छा रख ली।

अस कहि नारि सहित सुकुमारा । कहे करैं प्रभु रुचि अनुसारा ॥
सिद्धि कुँवरि नव नेह नहाई । कीन्हीं विदा कुँअर रघुराई ॥
प्रभु पधारि पुनि सारथि बन कर । गुरु पहँ चलेउ लिवाय कुँअर वर ॥

तत्पश्चात् पुनः अपनी पत्नी श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी बोले– हे प्रभु! आपकी जैसी रुचि हो वैसा ही किया जाय। अनन्तर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने नवीन प्रेम में अवगाहन कर चक्रवर्ती कुमार श्रीरामजी महाराज की विदा की और कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्रीरामजी महाराज को रथ में बैठा कर स्वयं सारथी बन, उन्हें श्री गुरुदेव जी के समीप लिवाकर ले चले।

दो०– राजमार्ग अनुपम अमल, शोभित विविध प्रकाश ।
आवत जस आनन्द भयो, गवनतहूँ तस भास ॥२३१॥

राजमार्ग में अनुपमेय निर्मल व विभिन्न प्रकार का प्रकाश सुशोभित हो रहा था। श्री गुरुदेव जी के समीप जाते समय भी उसी प्रकार का आनन्द हो रहा था जिस प्रकार का आनन्द नगर दर्शन हेतु आते समय हुआ था।

वास भवन पहुँचेव रथ आई । पंच शब्द धुनि होत सुहाई ॥
कुँअर उतरि रथ राम उतारे । चले लिवाय चमर शिर ढारे ॥

इस प्रकार चलता हुआ रथ मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के निवास–गृह पहुँच गया तब सुन्दर पंच ध्वनि होने लगी तथा श्री लक्ष्मीनिधि जी रथ से उतरकर श्री राम जी महाराज को उतार, उनके शिर में चवँर चलाते हुए लेकर चले।

गुरुहिं देखि छत्रहिं उतराये । चमर चलाव निरोध करायो ॥
भय सकोच भरि भये प्रवेशू । हाथ जोरि तन सिकुर सिरेशू ॥

गुरुदेव श्री विश्वामित्र जी को देखकर श्री राम जी महाराज ने छत्र उतरवा दिया तथा चँवर चलाना भी बन्द करवा दिया और भय व संकोच में भरे, हाथों को जोड़, शरीर संकुचित कर, शिर झुकाये हुए वे श्री गुरुदेव जी के समीप प्रवेश किये।

गुरुहिं दण्डवत कीन्ह कृपाला । सहित कुँअर अरु लछिमन लाला ॥
दै अशीष मुनि हृदय लगाये । राम स्वभाव मनहिं मन भाये ॥

परम कृपालु श्रीरामजी महाराज ने कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी व श्रीलक्ष्मण कुमार सहित श्रीगुरुदेवजी को दण्डवत किया तब मुनिवर श्रीविश्वामित्रजी ने आशीर्वाद देकर उन्हें हृदय से लगा लिया, मुनिवर श्री विश्वामित्र जी को श्रीरामजी महाराज का स्वभाव मन में बहुत ही अच्छा लगा।

नित्य कर्म हित आज्ञा पाई । जाइ निबाहे रघुकुल राई ॥
करि प्रणाम मुनि कहँ दोउ भाई । कथा सुनी हिय अति हुलसाई ॥

पुनः नित्य कर्म करने की आज्ञा पाकर रघकुल नरेश श्री रामजी महाराज ने उसका निर्वाह किया तदुपरान्त दोनों भाइयों ने मुनिवर श्री विश्वामित्र जी को प्रणाम कर अत्यन्त हुलसित हृदय कथा

श्रवण की।———

यथा विदेह जनक कहवाये। मैथिल राजा सबै सुहाये॥
जिमि मिथि नृप नव नगर बसायो। मिथिला नगरी नाम धरायो॥

———जिस प्रकार सभी मैथिल राजा विदेह और जनक नाम से सुशोभित हुये तथा महाराज श्री मिथि जी ने जिस प्रकार नवीन नगर बसाया और उसका नाम श्री मिथिला पुरी रखा———

दो०— मुनि मुख सुनि निमिकुल कथा, हर्षण हृदि हर्षाय।
नगर मनोहरता कही, यथा लखे दोउ जाय॥२३२॥

———यह श्री निमिकुल की कथा मुनिराज श्री विश्वामित्रजी के मुख से सुनकर श्रीरामजी महाराज का हृदय हर्षित हो गया। पुनः श्री राम जी महाराज ने जिस प्रकार श्री मिथिला पुरी की सुन्दरता का दर्शन किया था, उसी प्रकार उसका वर्णन किया।

आनन्द मगन बीत अध राता। शयन किये मुनि सुख न समाता॥
तीनहुँ कुँअर सेइ ऋषि काहीं। भये अमित आनन्द उछाहीं॥

इस प्रकार आनन्द में मग्न हुए आधी रात बीत गयी तब मुनिवर श्री विश्वामित्र जी सुखपूर्वक शयन किये व तीनों राजकुमार ऋषिश्रेष्ठ श्री विश्वामित्र जी की सेवा कर असीमित आनन्द व उत्साह में भर गये।

बार बार गुरु आज्ञा पाई। सोये श्याम शान्ति सुख छाई॥
ललित लखन सेवत पद पागे। कुँअरहिं प्रभु गहि बरजन लागे॥

श्री गुरुदेव जी की बार–बार आज्ञा पाकर श्री राम जी महाराज शान्ति व सुख में भरकर शयन किये। तब उनके सुन्दर अनुज लखन लाल जी प्रेम में पगे हुए श्री राम जी की चरण सेवा करने लगे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को सेवा करते समझ, प्रभु श्री राम जी महाराज उनका हाथ पकड़कर मना करने लगे।

आपु करैं जनि सेव चरन की। मोरे आत्म सखा सत मन की॥
कुँअर कहेव प्रभु मान जरै सब। जासो छूटै सेवन पद तव॥

हे कुमार! मैं अपने मन की सच्ची बात कह रहा हूँ कि आप मेरे आत्म सखा हैं, अतः मेरे चरणों की सेवा मत करें। तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे प्रभु! मेरे उस सम्पूर्ण सम्मान में आग लग जाय जिससे आपके चरणों की सेवा छूटती हो।

जीव स्वरूप सहज परतन्त्रा। नित्य दास सेवन पद यन्त्रा॥
मोरे सरवस चरण तुम्हारे। अस कहि कुँअर हृदय निज धारे॥

हे नाथ! जीव का स्वरूप तो सहज ही आपके परतन्त्र रहना हैं फिर सेवक तो नित्य ही स्वामी की चरण सेवा करने वाला यंत्र है। मेरे लिये तो आपके श्री चरण ही सर्वस्व है ऐसा कह कर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उनके चरणों को हृदय से लगा लिया।

दो०–तुरतहिं रघुवर भक्त प्रिय, लीन्हेउ हृदय लगाय ।
करि प्रवोध सोवन कहेउ, चले कुँअर सुख पाय ॥२३३॥

उनकी ऐसी बातें सुनकर सर्व–प्रिय श्रीरामजी महाराज ने तुरन्त ही उन्हें हृदय से लगा लिया तथा शान्त्वना प्रदान कर शयन करने के लिए बोले तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुख–पूर्वक शयन हेतु चल दिये।

लखनहुँ राम रजायसु पाई । पौढ़े चरण कमल चित लाई ॥
कुँअर कीन्ह सेवन विधि जाई । परम प्रेम पुलकावलि छाई ॥

श्री लक्ष्मण कुमार भी श्री राम जी महाराज की आज्ञा पाकर उनके चरण कमलों का ध्यान करते हुए लेट गये। कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने उनकी सेवा करनी चाही परन्तु उनके मना करने पर प्रेम के कारण उनके शरीर में पुलकावली सी छा गयी।

दूनहु हिलि मिलि निज निज आसन । सोये राम नाम चल श्वासन ॥
प्रात काल उठि जनक कुमारा । भेंटेव लखन राम क्रम वारा ॥

तत्पश्चात् दोनों एक दूसरे से हिल मिल कर अपने अपने आसनों में शयन कर गये उनकी श्वासों में श्रीराम नाम का जप चलता रहा। प्रातः काल श्रीजनक कुमार लक्ष्मीनिधिजी उठकर क्रमशः श्री लखनलालजी तथा श्रीरामजी महाराज से भेंट किये।

विधिवत करि स्नान प्रवीने । नित निर्वाह गुरुहिं रस भीने ॥
कीन्ह दण्डवत युग नृप वारे । आशिष लहि पुनि बैठि सुखारे ॥

पुनः परम दक्ष कुमारों ने विधिवत स्नान कर नित्य कर्मो का निर्वाह किया तथा रस में सने हुए दोनों राजाओं (श्रीदशरथजी व श्रीजनकजी) के कुमारों ने श्रीगुरुदेवजी को दण्डवत किया और वे आशीर्वाद प्राप्त कर सुखपूर्वक बैठ गये।

पाइ सुआयसु जनक दुलारा । कछुक कार्य वश गयो अगारा ॥
कछु बासर बीते यहि भाँती । जान न परै दिवस अरु राती ॥

पुनः श्रीजनक कुमार लक्ष्मीनिधिजी आज्ञा पाकर कुछ कार्य विशेष हेतु महल चले गये। इस प्रकार से कुछ दिन व्यतीत हुये किन्तु दिन व रात्रि समझ नहीं पड़े अर्थात् समय अति शीघ्र व्यतीत हो गया।

दो०–एक दिवस कौशिक हृदय, उपजी मन महँ बात ।
विधि सुजोग नारद कथन, होइहिं सत्य प्रभात ॥२३४॥

एक दिन मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के मन में यह बात उत्पन्न हुई कि श्री ब्रह्मा जी का संयोग और श्री नारद जी की कही हुई बार्ता अब शीघ्र ही सत्य होगी।

चाँपत पद निशि मुनि कह रामहिं । लखे कोट भीतर सब धामहिं ॥
पार्वती शिव वाग अनूपा । पूजन हित रनिवास सभूपा ॥

ऐसा विचारकर, एक दिन रात्रि में चरण सेवा करते समय मुनिवर श्री विश्वामित्रजी ने श्रीरामजी महाराज से कहा– क्या आपने परकोटे के भीतर सभी स्थानों का दर्शन कर लिया है? वहाँ अनुपमेय बाग में श्री महाराज जनक जी सहित रनिवास के पूजन करने हेतु एक श्री पार्वती जी व श्री शंकरजी का–––

अति कमनीय शोभ शुभ मंदिर । त्रिभुवन छटा देख मन कन्दिर ॥
अर्ध अर्ध मूरति शिव गिरिजा । एकहिं विग्राह लसैं सुविरजा ॥

––अत्यन्त सुन्दर व शुभ मन्दिर सुशोभित है जिसे देखकर तीनों लोकों की छटा मन को तुच्छ प्रतीत होती है। वहाँ एक ही विग्रह में आधी श्रीशंकरजी तथा आधी श्रीपार्वतीजी (अर्द्ध नारीश्वर शिव जी) की मूर्ति सुशोभित है।

रानि सुनैना सह परिवारा । भाव सहित पूजहिं प्रति वारा ॥
जनक लड़ैतिहुँ सेवन करई । नारद वचन मान सुख भरई ॥

महारानी श्री सुनैना जी परिवार सहित जिनका प्रतिदिन भावपूर्वक पूजन करती हैं तथा देवर्षि श्री नारदजी के वचनों मे प्रतीति कर जनक लाड़िली श्री सियाजी भी सुख में भरी हुई उन अर्द्ध–नारीश्वर श्री शिवजी की सेवा करती हैं।

राम कहा नहिं मन्दिर गयऊँ । दूरिहिं देखि शिखर शुभ लयऊँ ॥
कह मुनि काल्ह जाय सुख भरहू । पारवती शिव दरशन करहू ॥

श्री राम जी महाराज ने कहा– हे गुरुदेव! मैं मन्दिर नहीं गया परन्तु दूर से ही मन्दिर के शुभ शिखर (गुम्बज) का दर्शन किया हूँ। तब मुनिवर श्रीविश्वामित्रजी ने कहा– आप कल वहाँ जाकर सुखपूर्वक उन श्रीपार्वतीजी व श्रीशिवजी के दर्शन कर लीजियेगा।

दो०– अस कहि मुनिवर शयन किय, भ्रातहुँ युग गे सोय ।
ब्रह्म मुहूरत जाग करि, नित्य कर्म किय दोय ॥२३५॥

ऐसा कहकर मुनि श्रेष्ठ श्रीविश्वामित्रजी ने शयन किया पुनः दोनों भाई भी सो गये तथा ब्रह्म मुहूर्त में जग कर दोनों भाइयों (श्री राम जी व लक्ष्मण कुमार जी) ने नित्य कर्म किया।

मुनिवर पद पुनि वन्दन कीन्हा । हाथ फेरि मुनि आशिष दीन्हा ॥
कुँअरहिं कहा बुलाय बहोरी । इनहिं जाहु लै आयसु मोरी ॥

दोनों भाइयों ने मुनि श्रेष्ठ श्री विश्वामित्रजी के चरणों की वन्दना की तब श्रीविश्वामित्रजी ने उनके शिर में अपना हस्त कमल फिराते हुए आर्शीवाद दिया और कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी को बुलाकर बोले– हे कुमार! मेरी आज्ञा है कि आप इन्हें ले जाइये–––

पार्वती शिव पूजि सनन्दा । देखिहहिं बाग अनूप अनन्दा ॥
तहँ पहुँचाय आप द्रुत आई । कीन्हेउ राज काज हर्षाई ॥

–––ये आनन्दपूर्वक श्रीपार्वतीजी व श्रीशिवजी का पूजन कर अनुपमेय पुष्प वाटिका का दर्शन करेंगे। आप इन्हें वहाँ पहुँचाकर, शीघ्र ही वापस आ हर्ष पूर्वक राजकार्य कीजियेगा।

ये इकान्त लहि ध्यान लगाई । पाय मनोरथ अइहै भाई ॥
द्रुत नरयान बुलाय कुमारा । चले लिवाय प्रमोद अपारा ॥

ये श्रीरामजी वहाँ एकान्त में ध्यान लगायेंगे तथा पूर्ण मनोरथ होकर वापस आ जायेंगे। कुमार श्रीलक्ष्मीनिधिजी उनकी आज्ञा मानकर शीघ्र ही पालकी (नरयान) बुला, दोनों भाइयों को लेकर असीम आनन्द पूर्वक चल पड़े।

यथा रीति लै प्रभुहिं सो गयऊ । बाग द्वार धरि यानहिं दयऊ ॥
अन्य पुरुष तहँ कोय न जावै । रक्षक सदा सचेत रहावै ॥

वे प्रभु श्रीरामजी महाराज को विधिपूर्वक लेकर गये व पुष्प वाटिका के दरवाजे पर पालकी रखवा दिये। वहाँ बाग के अन्दर कोई भी अन्य पुरुष नहीं जाता था इस हेतु रक्षक सदैव ही सजग रहते थे।

निशि दिन रक्षहिं बाग महाना । लहि शासन नृप जनक सुजाना ॥
आपहुँ भीतर बाग न जावैं । द्वार देश सब समय लखावैं ॥

वे बाग–रक्षक दिन–रात श्रीजनकजी महाराज की आज्ञानुसार उस महान वाटिका की रक्षा करते रहते थे। वे स्वयं भी वाटिका के भीतर नहीं जाते थे तथा हर समय दरवाजे पर दिखाई पड़ते थे।

दो०–राम लखन लै कुँअर गे, गिरिजा भवन सुहाय ।
देखि देखि मन मोद अति, टरत न चित कहुँ जाय ॥२३६॥

श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार को लेकर कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी श्रीपार्वतीजी के सुन्दर मन्दिर में गये जिसे देख–देखकर श्रीरामजी महाराज के मन में महान आनन्द हो रहा था तथा उनका चित्त जहाँ भी जाता वहाँ से हटाने पर भी नहीं हटता था।

जनकसुवन दिखराय शिवालय । आसन दियो बिठाय सुथालय ॥
पूजन साज सजाय सो दीनी । जो चाहिय वर वस्तु नवीनी ॥

श्रीजनक कुमार लक्ष्मीनिधिजी ने वह शिव–मन्दिर दिखला कर सुन्दर स्थान में आसन लगा उन्हें बिठा दिया तथा पूजनोपयोगी सभी सुन्दर नवीन वस्तुएँ सजा कर रख दीं।

ध्यान करन की जान तयारी । पूँछि कुँअर पुनि गयो सिधारी ॥
द्वार देश द्वारपहिं चेताई । लै पितु आयसु कार्य बँटाई ॥

पुनः ध्यान करने की तैयारी समझ कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी उनसे पूँछ कर प्रस्थान कर गये तथा दरवाजे में द्वार पाल को सचेत करते हुए जाकर श्रीमान् पिताजी की आज्ञा से राज्य कार्य में हाथ बँटाने लगे।

जासु ध्यान शिव मनहिं न आई । ध्यावै शिव सो ब्रह्म महाई ॥
यह रहस्य जानहिं शुचि संता । जिन जग जीति लखे भगवंता ॥

जिनका ध्यान श्रीशिवजी के मन में नहीं आ पाता, वे ही महान ब्रह्म श्रीरामजी महाराज, श्रीशिवजी का ध्यान कर रहे हैं, उनके इस रहस्य को वे पवित्र संत ही जान सकते हैं जिन्होंने संसार को जीतकर श्रीभगवान का दर्शन प्राप्त कर लिया है।

माध्यम जासु ब्रह्म मिलि जीवा। जीवहिं मिले सो माध्यम सीवा ॥
उमा रमण पुजबावन हेतू। पूजे शंकर रघुकुल केतू ॥
शिवहिं सेइ प्रभु ध्यान लगाये। रक्षत बाहर लखन चुपाये ॥

हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं– कि सर्वश्रेष्ठ माध्यम वही है जिस माध्यम से जीवों को ब्रह्म की प्राप्ति तथा ब्रह्म को जीवों की प्राप्ति हो जाय। अतः श्रेष्ठ पुरुषकार स्वरूप पार्वती पति श्री शंकर भगवान की संसार में पूजा कराने के लिए ही रघुकुल के ध्वज श्री रामजी महाराज ने स्वयं उनकी पूजा की है। अनन्तर श्री शिवजी की सेवा कर प्रभु श्रीरामजी महाराज ने उनका ध्यान किया उस समय बाहर श्री लक्ष्मण कुमार जी शान्तिपूर्वक सुरक्षा में तत्पर थे।

दो०– करत ध्यान रघुनाथ के, प्रगटे उमा महेश ।
जयति जयति श्रीराम जै, कहे जयति अवधेश ॥२३७॥

श्री रामजी महाराज के ध्यान करते ही श्री पार्वतीजी व श्रीशंकर भगवान प्रगट हो गये तथा श्रीरामजी महाराज की जै हो, अयोध्यापति की जै हो, इस प्रकार वचन बोले।

सुनत राम निज नयनन खोली। उमा शम्भु देखेउ हिय घोली ॥
करि प्रणाम प्रभु स्तुति कीन्ही। विनय विवेक प्रेम रस भीनी ॥

यह सुनते ही श्रीरामजी महाराज ने अपनी आँखों को खोलकर (ध्यान से विरत हो) श्री पार्वती जी व श्री शंकर जी का हृदय–द्रावी दर्शन प्राप्त किया। प्रभु श्रीरामजी महाराज उन्हें प्रणाम कर विनय, ज्ञान व प्रेम–रस से सनी हुई स्तुति किये।

सुनि बोले शिव शशि अवतंशा। करौ कौन विधि प्रभू प्रशंसा ॥
अमित त्रिदेव अमित ब्रह्मण्डा। रचैं दृष्टि तव कर कोदण्डा ॥

स्तुति सुनकर शशि–भूषण श्रीशिवजी बोले– हे नाथ! मैं आपकी किस प्रकार प्रशंसा करूँ?, हे धनुष वाण धारण करने वाले प्रभु! आपकी दृष्टि मात्र से ही असीमित त्रिदेवों व असीमित ब्रह्माण्डों की रचना हो जाती है–––

सब मिलि लहैं न प्रभु तव अंता। राउर कृपा जानि कछु सन्ता ॥
सो प्रभु पूजे मोहि सप्रेमा। धन्य धन्य अस तुम्हरे नेमा ॥

–––तथा वे असीमित ब्रह्माण्डों के त्रिदेव भी मिलकर आपकी महिमा का अन्त नहीं पा सकते किन्तु आपकी कृपा से ही सन्त–जन उसके कुछ अंश को जान पाते हैं। ऐसे प्रभु आपने प्रेम पूर्वक मेरा पूजन किया आपके ऐसे विधान को धन्यवाद है।–––

लीला करहु नरन अनुहारी । जय प्रमोद वन अवध विहारी ॥
शिक्षण हेतु लोक मरयादा । करहु कर्म प्रभु पगि अहलादा ॥

———हे श्री अयोध्या पुरी व प्रमोद वन में विहार करने वाले, मेरे स्वामी! आप मनुष्यों की तरह लीला कर रहे हैं, संसार को मर्यादा की शिक्षा देने के लिए ही आप आह्लाद में डूबकर ऐसे कार्य कर रहे हैं।———

दो०—सुफल मनोरथ होहिं सब, डरहु न मम अपचार ।
मोरिहिं इच्छा जानि प्रिय, करहु सकल संभार ॥२३८॥

———आपकी सभी मनोकामनायें फलीभूत होंगी आप मेरे अपचार से नहीं डरें तथा इसे मेरे हृदय की इच्छा जानकर सभी सम्हाल कीजिये।———

गाधि तनय मम पाइ निदेशा । लाये माँगि तुमहिं अवधेशा ॥
हमहिं जनक कहँ कहा बुझाई । धनुष यज्ञ मिलिहैं हरिराई ॥

क्योंकि गाधिनन्दन श्री विश्वामित्रजी मेरी आज्ञा पाकर ही आपको चक्रवर्ती श्री दशरथजी से माँग लाये हैं तथा हमने ही श्री जनकजी महाराज को समझाकर बताया था कि धनुष यज्ञ में प्रभु श्रीरामजी महाराज का मिलन होगा।

मम धनु रहा जनकपुर माहीं । पूजत आये नृपति सदाहीं ॥
सो केवल तव दरशन हेतू । शक्ति ब्रह्म मिलि थापहि सेतू ॥

मेरा वह धनुष जो पूर्व से श्री जनकपुर में रखा हुआ है तथा जिसकी सभी मैथिल नरेश पूजा करते आ रहे हैं वह केवल आपके दर्शन व शक्ति–ब्रह्म को मिलाकर कीर्ति–सेतु स्थापित करने हेतु ही है।

अस बिचार नहि कीजिय सोचू । करिय कार्य तजि मोर सकोचू ॥
जय जय कहि शिव शिवा सुहाना । अन्तरध्यान भये भगवाना ॥

ऐसा बिचार कर आप चिन्ता मत करें तथा मेरा संकोच छोड़कर सभी कार्य सम्पादित करें। आपकी जय हो, जय हो, ऐसा कहकर श्रीपार्वतीजी व श्रीशंकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गये।

पार्वती शिव वन्दि कृपाला । आये बाहर मनहर लाला ॥
ललित लखन लिय हिय हरषाई । देखन बाग चले सुखदाई ॥

तब मन को हरण करने वाले, परम कृपालु, रघुनन्दन श्रीरामजी महाराज श्रीपार्वतीजी व श्रीशिवजी की वन्दना कर बाहर आये तथा सुन्दर लक्ष्मण कुमार को हृदय से लगा कर हर्षित हो परम सुख प्रदायिनी पुष्प वाटिका का दर्शन करने चले।

दो०—सुन्दर वाग अनूप वर, बन्धु सहित प्रभु राम ।
देखत फिरत प्रमोद मन, कहत धन्य आराम ॥२३९॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज अपने भाई श्रीलक्ष्मण कुमार सहित उस अनुपमेय सुन्दर वाटिका की

प्रशंसा में धन्य धन्य कहते हुए आनन्दित मन उसे देखते फिर रहे हैं।

सदा बसन्त वसै तेहिं वागा । लता विटप सबहीं बड़ भागा ॥
पत्र पुष्प फल सम्पति धारे । देवहुँ होत विलोक सुखारे ॥

उस बाग में बसन्त ऋतु सदैव ही निवास किये रहती थी, वहाँ के लता, वृक्ष आदि सभी परम सौभाग्य संपन्न, पत्र, फूल व फल रूपी सम्पत्ति धारण किये हुए थे जिन्हे देख देखकर देवता भी सुखी होते थे।

मोर चकोर कीर अरु कोली । औरहुँ पक्षी बोलत बोली ॥
सुभग सरहिं प्रिय चारि प्रकारा । फूले पंकज सोह अपारा ॥

वहाँ पर मोर, चकोर, तोता और कोयल आदि अन्य पक्षी भी प्रिय बोलियाँ बोल रहे थे व सुन्दर सरोवर में असीमित मात्रा में प्रिय तथा चार प्रकार के (श्वेत, पीत, अरुण व नील) कमल खिले हुए सुशोभित हो रहे थे।

भ्रमर गुञ्जरहिं मोद महाना । बोलहिं जल पक्षी रव नाना ॥
क्यारी चारु न जाय बखानी । मनहुँ बनायो काम स्वपानी ॥

उनमें महान आनन्दपूर्वक भँवरे गुञ्जार कर रहे थे तथा जल पक्षी कई प्रकार की बोलियाँ बोल रहे थे। वहाँ की सुन्दर क्यारियों का वर्णन ही नहीं किया जा सकता, मानों स्वयम् कामदेव ने अपने हाथों से बनाया हो।

अमित लजैं नन्दन वन तहवाँ । विहरत लली जनक की जहँवा ॥
भाँति भाँति की पुष्प सुपाँती । लखत ताहि मनसिज मन हाती ॥

श्री देवराज इन्द्र के असीमित नन्दन वन भी वहाँ पर विलज्जित हो रहे थे जहाँ पर श्रीजनकजी महाराज की पुत्री श्रीसीताजी विहार करती हैं। वहाँ विभिन्न प्रकार के फूलों की सुन्दर कतारें सुशोभित थीं जिन्हें देखते ही कामदेव का मन भी अपहृत हो जाता था।

दो०—नृप विदेह के वाग महँ, सब प्रकार फल फूल ।
एकहुँ बचेव न जगत जेहिं, रहि लगावन भूल ॥२४०॥

श्री विदेहराज जी महाराज के बाग में सभी प्रकार के फल व फूल थे, संसार में कोई एक प्रकार भी शेष नहीं था जिसे इस बाग में लगाने की भूल रह गयी हो।

अनुपम वाग देखि दोउ भाई । करत परस्पर तासु बड़ाई ॥
भये मगन मन राम गोसाई । सुख स्वरूप सुख सिन्धु समाई ॥

इस प्रकार उस अनुपमेय बाग को देख कर दोनों भाई आपस में उसकी बड़ाई करते हैं तथा सुखस्वरूप श्रीरामजी महाराज अपने मन में मग्न होकर सुख के सागर में डूब गये।

देखि फूल शुचि सुन्दर श्यामा । लेन चहे गुरु पूजन कामा ॥
याहि बीच आईं कछु मालिनि । देखि राम नत मस्तक भेलिनि ॥

वहाँ पवित्र व सुन्दर फूलों को देखकर श्याम सुन्दर श्रीरामजी महाराज श्रीगुरुदेवजी के पूजन हेतु उन्हें लेना चाहे, इसी बीच कुछ मालिनें (बाग–सेविकायें) आ गयीं जो श्रीरामजी महाराज को देखकर शिर–नत हो गयीं।

रामहिं निरखि मार मद हारी । भईं विवश मन मोहि महारी ॥
परि मुरछि कछु सुधि बुधि नाहीं । राम लखन चलि आगे जाहीं ॥

कामदेव के अभिमान का मर्दन करने वाले अतुलनीय सौन्दर्य सम्पन्न श्रीरामजी महाराज को देखकर वे मालिनें उनके विवश हो मन में अत्यन्त मोहित हो गयीं तथा मूर्छित होकर सुधि–बुधि भुला गिर पड़ी तब तक श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार आगे चले गये।

बहु विस्तार वाग कर घेरा। जहँ तहँ मालिनि केर वसेरा ॥
जित जित राम जाहिं सुख माने । तित तित नारिन देखि लजाने ॥

उस बाग की परिसीमा अतिशय विस्तार वाली था तथा उसमें जहाँ तहाँ मालिनियों का निवास था। श्रीरामजी महाराज सुख में सने हुए जहाँ भी जाते थे वहीं स्त्रियों को देखकर लज्जित हो जाते थे।

दो०–देखि देखि रघुवीर तन, सकल बाग की वाम ।
गिरी मुरछि जहँ तहँ बिसुध, प्रेम विवश बिन काम ॥२४१॥

श्री रामजी महाराज के शारीरिक सौन्दर्य को देख–देखकर बाग की सभी मालिने सुध भुलाकर, मूर्छित हो निष्काम भाव से उनके प्रेम के वशीभूत होकर गिर पड़ीं।

एक बची नहिं माला कारी । प्रेम विवश जो सुधिहिं सँभारी ॥
राम लखन दोउ बन्धु मनोहर। देखहिं बाग अनूप यशोधर ॥

वहाँ एक भी मालिन ऐसी नहीं बची थी जो उनके प्रेम के वशीभूत हो अपनी स्मृति सम्हाल सकी हो। इस प्रकार मन को हरण करने वाले, दोनों भाई श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार उस अनुपमेय तथा परम यशस्वी बाग का दर्शन कर रहे थे।

बोलहिं शकुन भाँति बहु बोली । कहहिं मनहु प्रभु निर्भय डोली ॥
दरश परश रघुवर को लाही। वाग वृक्ष रस रूप लखाही ॥

बाग के पक्षी गण भाँति–भाँति की बोली बोल रहे थे मानों वे कह रहो हों हे प्रभु! आप निडर होकर यहाँ विहार करें। श्रीरामजी महाराज का दर्शन व स्पर्श प्राप्त कर बाग के वृक्ष रसमय दिलखाई पड़ रहे थे।

सत चित आनँद तेज प्रकाशित। धन्य धन्य प्रभु सुखद सुभाषित ॥
देव सकल जाचहिं मन माहीं। वृक्ष विहँग बनि बाग वसाहीं ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हें कि वहाँ के वृक्ष सच्चिदानन्दमय, परम तेज से प्रकाशवान तथा धन्यातिधन्य हैं जो प्रभु श्रीरामजी महाराज को सुखदायी प्रतीत हो रह थे। उन्हे देखकर देवता भी अपने मन में यही याचना करते थे कि हम पेड़

और पक्षी बनकर इस बाग में नित्य निवास करें।

वरषत सरसि सुभग सुरफूला। सेवा सरहिं राम रस भूला ॥
राम लखन दोउ विहरत संगा। कहत कथा वर बाग प्रसंगा ॥

देवता सुख में सरसाये हुए सुन्दर फूलों की वरषा कर प्रेम–रस में भूले हुये श्रीरामजी महाराज की सेवा कर रहे थे तथा श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार दोनों सुन्दर बाग विषयक कथा कहते हुए साथ साथ विहार कर रहे थे।

दो०– तेहि अवसर सिय लाड़िली, मातु निदेशहिं पाय।
राज सदन के द्वार ते, रक्षक तहँ तिय गाय ॥२४२॥

उसी समय जनक लाड़िली श्री सिया जू अपनी अम्बा श्री सुनयनाजी की आज्ञा प्राप्त कर राज–भवन के दरवाजे से स्त्री रक्षिकाओं के सहित–––

आईं चढ़ि शुभ सुखद सुयाना। वाहक तिय शिक्षित तेहिं ज्ञाना ॥
द्वारहिं त्यागि दियो सिय याना। मखमल पावँड़ परे विधाना ॥

शुभ व सुखप्रद विमान में, जिसका संचालन करने वाली उसके ज्ञान से शिक्षित स्त्रियाँ थी, चढ़कर आ गयीं। श्री सिया जू ने दरवाजे पर की विमान त्याग दिया तब वहाँ राजोचित विधान के अनुसार मखमल के पाँवड़े बिछा दिये गये।–––

छत्र चमर शिर सखिगन ढ़ारै। विंजन लिये छड़ी कर धारैं ॥
पान दान इतरादिक लीने। पूजन साज सुपात्र नवीने ॥

–––सखियाँ उनके शिर पर छत्र लगाये हुए चँवर चलाने लगीं, कोई सखी बिजन तो कोई हाथों में छड़ी धारण कर लीं, कोई पानदान तथा इत्र आदि पूजनोपयोगी नवीन सुन्दर वस्तुएँ लिये हुए–––

गावत गीत चलीं अलबेली। मधुर बजावहिं वेणु बँसेली ॥
कोइ लिये कर वीण बजावैं। वीणा शब्द कोउ झनकावैं ॥

–––उनकी सभी अलबेली सखियाँ गीत गाते चल रहीं थीं, कोई मधुर–मधुर बाँस की बाँसुरी बजा रही थी, कोई हाथों में लेकर बीन बजा रही थी तो कोई बीणा में स्वरों की झनकार दे रही थी।–––

ढोल मधुर अरु मधुर मजीरा। बाजत पायल करत अधीरा ॥
निरतत सखि कोउ भाव बताई। जात चलीं घर गिरिजा माई ॥

–––मधुर स्वर में ढोलक तथा मजीरा बज रहा था, नूपुररों की आवाज सुनने वालों को अधीर कर रही थी, कोई सखी नृत्य करती तो कोई भावों का प्रदर्शन करते हुये सभी किशोरियाँ अम्बा श्री पार्वती जी के मन्दिर चली जा रहीं थी।

दो०—यहि विधि सीता जात मग, सुभग सखिन के संग ।
आदि शक्ति अंशहि लिये, ब्रह्म मिलन जनु रंग ॥२४३॥

इस प्रकार जनक लाड़िली श्री सीता जी अपनी सुन्दर सखियों सहित परम सुखावह मार्ग में उसी प्रकार चल रही थीं जैसे परमाद्याशक्ति अपनी अंश–कलादि शक्तियों सहित प्रेम रंग में रँगी हुई पूर्णतम परब्रह्म से मिलने जा रही हों।

करि तड़ाग मज्जन सखि सीता । गई भवानी भवन पुनीता ॥
सविधि पूजि अति नेह जनाई । गद् गद् वाणी विनय सुनाई ॥

सुन्दर सरोवर में स्नान कर श्री सीता जी सखियों सहित श्रीपार्वती जी के परम पवित्र मन्दिर गयीं। वहाँ उनका विधि–पूर्वक पूजन कर अत्यन्त प्रेम प्रगट करते हुए गद्‌गद वाणी से उन्हें अपनी प्रार्थना सुनाई———

निज अनुरूप सुभग पति चाही। सीय परी गिरिजा पद पाहीं ॥
बाम अंग फरकन शुभ लागे। पाई आशिष जनु जिय माँगे ॥

———तथा अपने योग्य सुन्दर पति की कामना कर श्रीसीताजी श्री पार्वती जी के चरणों में दण्डवत करने हेतु गिर पड़ीं। उस समय उनके शुभ बाँये अंग फड़कने लगे मानों वे अपनी मन–माँगी आशीष प्राप्त कर ली हों।

सखिन सहित सिय बाहर आई । मंगल गान कीन्ह हरषाई ॥
भानुकला सखि सुनहु पियारी। सुन्दर नयन सुजोहन वारी ॥

पुनः श्री सीता जी सखियों सहित मन्दिर के बाहर आयीं तब सखियों ने हर्षित होकर मंगल गान किया। अनन्तर श्री सीता जी नें श्री भानुकला सखी से कहा– हे प्रिय भानुकला जी! सुनिये, आप तो सुन्दर नेत्रों से युक्त एवं परम सुदर्शना हैं।

सेवन हार बाग की मालिनि। रहती शत शत भाव सुपालिनि ॥
तिन महँ कछु जानहुँ परधाना। सम्प्रति एकहुँ नाहिं लखाना ॥

इस बाग की सेवा करने वाली जो सैकड़ों मालिनें रहती थी तथा सच्चे भावपूर्वक इस बाग का प्रति पालन करती थीं, उनमें से कुछ प्रधान को मैं जानती भी हूँ वे इस समय एक भी नहीं दिखाई दे रहीं।

दो०—करत रहीं नित सेव मम, काह कहूँ सुनु वीर ।
कारण नहिं जानो परै, होवत मनहुँ अधीर ॥२४४॥

वे सभी मेरी नित्य ही सेवा करती थीं, हे सखी! मैं क्या कहूँ? उनके यहाँ न होने का कोई कारण भी नहीं समझ आता अतः मेरा मन अधीर हुआ जा रहा है।

बेगि जाय बगिया सुधि लाई । आवहु सखि तब धीर बँधाई ॥
सिय आयसु सो सखि चलि दीन्ही। कछुक सुखद सखियाँ सँग लीन्ही ॥

हे सखी! आप शीघ्र ही बाग में जाकर समाचार ले आओ, तभी मुझे धैर्य प्राप्त होगा। श्री सीता जी की आज्ञा पाकर वह भानुकला नामक सखी कुछ अन्य सुखद सखियों को साथ ले बाग को चल दी।

बाग प्रभा तेहि अमित लखाई । जनु जड़ चेतन भये सुहाई ॥
भूमि सरोवर वृक्ष पुराने । आज दिखैं सब आनहिं आने ॥

भानुकला सखी को उस बाग की आभा असीमित दीखने लगी जैसे वहाँ की सभी जड़ वस्तुएँ सुन्दर चैतन्य हो गयी हों। वहाँ की भूमि, तालाब तथा पुराने वृक्ष भी आज उसे अन्य प्रकार ही दीख रहे थे।

परम प्रकाश परेव छहराया । मनहुँ अँधेरे आदित आया ॥
विस्मित भई देखि सो बाला । कवन भयो अचरज यहि काला ॥

भानुकला सखि ने देखा कि बाग में अत्यन्त प्रकाश उसी प्रकार छाया हुआ है जैसे अँधेरे स्थल में भगवान सूर्य आ गये हो। ऐसा देखकर वह भानुकला सखी विस्मय में भर गयी कि इस समय यहाँ कौन सा आश्चर्य हो गया।

आगे चली चतुरि द्रुतकारी । देखी गिरीं सेविका नारी ॥
जहँ तहँ ताकिसि तिनहिं बिहाली । बोले बिना नयन जल ढाली ॥

वह परम चतुरी सखी श्री भानुकला जी शीघ्र ही आगे को चली, तब वहाँ बाग की सेवा करने वाली स्त्रियों को भूमि में गिरी हुई अत्यन्त विह्वल अवस्था में जहाँ तहाँ मौन, आँखों से अश्रु बहाते हुए देखा———

दो०—जानि कछुक संकेत तिन, भानु कला सखि धीर ।
आगे चलि चष विषय किय, राम लखन दोउ वीर ॥२४५॥

———उन सेविका मालिनियों से कुछ संकेत समझ वह भानुकला सखी धैर्य पूर्वक आगे की ओर चली तब उसने परम सौन्दर्य सम्पन्न रघुकुल—वीर श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार को अपने नेत्रों का विषय बनाया।———

कुंचित केश नागिनी काली । देखत तुरत गई डस आली ॥
सुधि बुधि भूल गिरी महि माहीं । सात्विक भाव उदय उपराहीं ॥

———उनकी नागिन के समान काली—काली घुँघराली केशावलियों को देखते ही वह सखी तुरन्त ही उनके द्वारा डस ली गयी और अपनी सुध—बुध भूलकर भूमि में गिर पड़ी, उसके शरीर में प्रेम के सात्विक भाव प्रगट होकर बाहर आ गये।———

भई भाव वश संग सहेली । तदपि धीर धरि प्रेम सकेली ॥
करि उपचार सचेत कराई । भानु कलहिं लै चली तुराई ॥

———उसके साथ की अन्य सखियाँ भी भाव—मग्न हो गयी थीं परन्तु वे अपने प्रेम को नियंत्रित कर धैर्य धारण करते हुए श्री भानुकला जी को उपचार द्वारा स्वस्थ करा कर शीघ्रता पूर्वक ले चलीं।

भानुकला तन सम्हलत नाही। प्रेम प्रवाह बहे दृग माहीं ॥
कम्पत वदन रोम सब ठाढ़े। वाणी गद्गद् निकसत गाढ़े ॥

श्री भानुकला जी का शरीर सम्हल नहीं रहा था, उनकी आँखो से प्रेमाश्रुओं की धारा बह रही थी, शरीर कम्पित हो रहा था, सभी रोम खड़े हो गये थे तथा उनकी आवाज गद्गद् एवं बड़ी कठिनाई से निकल पा रही थी।

जहँ देखैं तहँ राम दिखाहीं । पादप लता बिहँग सखि माहीं ॥
प्रेम हृदय महँ रुकत न रोकी । पहुँची सिय पहँ सखी सुशोकी ॥

वह जहाँ भी देखती वहीं, पेडों, लताओं, पक्षियों व सखियों सभी में उसे श्रीरामजी महाराज ही दीख रहे थे। उसके हृदय में प्रेम रोकने पर भी नहीं रुक रहा था इस प्रकार वह सखी सुन्दर शोक में डूबी हुई श्रीसीताजी के समीप पहुँच गयी।

दो०–भानुकला की लखि दशा, पूछहिं सखि मृदु बात ।
काह भयो तोहि कहहु किन, सुनन श्रवण अकुलात ॥२४६॥

श्री भानुकला जी की ऐसी अवस्था देखकर सखियाँ मधुर शब्दों से पूँछती हैं, हे सखी! तुम्हे क्या हो गया, बताती क्यों नहीं? हमारे कान सुनने के लिए आकुल हो रहे हैं।

पूछहिं कहा मोहि सब आली । गई नयन शर सब विधि घाली ॥
युगल कुमार लखे मनहारी । श्याम गौर मनसिज मदमारी ॥

सखियों की बात सुनकर श्री भानुकला जी ने कहा– हे सखियो! आप सभी मुझसे क्या पूछ रही हो? मैं तो उनके नयण वाण के द्वारा सभी प्रकार से आहत की गयी हूँ। मैंने बाग में मन को हरण करने वाले तथा कामदेव के अभिमान का मर्दन करने वाले दो श्याम व गौर वर्ण के राजकुमारों को देखा है।–––

लखत मोर यह गति भइ बाला। कहत भरेउ पुनि तेहिं कर गाला ॥
होय शिथिल भुँइ बैठि सम्हारी। करत सुधिहिं बह नयनन धारी ॥

–––उन्हें देखते ही हे सखियो! मेरी यह स्थिति हो गयी, ऐसा कहते ही पुनः उसकी आवाज भर गयी तब वह शिथिल होकर सम्हलकर भूमि में बैठ गयी परन्तु उनका स्मरण करती हुई वह आँखों सें अश्रु–धारा प्रवाहित कर रही थी।

सीय सहित सब सखी सयानी। हरषीं अधिक तासु सुन वानी ॥
एक कहा सुनु सखी प्रवीना। सोई कुँअर जान हम लीना ॥

उसकी बातें सुनकर श्री सीताजी सहित सभी चतुरी (मर्मज्ञा) सखियाँ अत्यधिक हर्षित हुई। एक सखी ने कहा– ऐ परम दक्ष सखियो! सुनो, हमने समझ लिया, ये वही राजकुमार हैं।

मालिन परी सकल नहि चेता । देखि वदन उनहिन बिन हेता ॥
अवध नृपति दशरथ के जाये । गाधि तनय सँग मिथिला आये ॥

उन्ही राजकुमारों का मुख दर्शन कर बिना किसी कारण सभी मालिनें स्मृति शून्य हो भूमि में गिरी पड़ी हैं। वे श्री अयोध्यापुरी के महाराज चक्रवर्ती दशरथजी के पुत्र हैं जो मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के साथ मिथिला आये हुए हैं।

नगर विलोकन ब्याज सुभाये। रूप फाँस नर नारि फँसाये ॥
मुनि त्रिदेव सह शक्ति कुमारा। सुनियत जगत विमोहन हारा ॥

नगर देखने के बहाने से उन्होंने अपने अप्रतिम रूप के बन्धन में यहाँ के सभी पुरुष व स्त्रियों को बाँध लिया है तथा ऐसा सुना जाता हैं कि वे कुमार तो समस्त ऋषियों–मुनियों तथा शक्तियों सहित त्रिदेवों और सम्पूर्ण संसार को भी विमोहित कर लेने वाले हैं।

दो०– मातु भवन भाभी भवन, पाये प्रिय सतकार।
दाऊ भैया प्रेम सों, राखत उन्हें सम्हार ॥२४७॥

उन राज कुमारों ने श्री अम्बाजी के भवन तथा श्री भाभी जी के भवन में प्रियकर आतिथ्य प्राप्त किया है तथा उन्हें श्रीमान् दाऊ जी व श्री भैया जी प्रेम पूर्वक सम्हाल कर रखते हैं।

राजकुँवर जब दाऊ भवना। आये भैया सह उर छवना ॥
लोक लाज रखि कुल मर्यादा। सिया सदन सब रहीं सुखादा ॥

जब वे दोनों राजकुमार श्री राम जी व श्री लक्ष्मण कुमार जी, श्री भैयाजी के साथ उल्लसित हृदय श्रीमान् दाऊजी के भवन पधारे थे उस समय हम सभी लोकलज्जा व कुल की मर्यादा को धारण किये हुए सुखपूर्वक श्रीसीताजी के महल में थीं।

नगर माहिं सखि दिन अरु राती। चरचा चलति रूप गुण पाँती ॥
देखन योग अवशि नृप बालक। सुख गुण रूप राशि जन पालक ॥

हे सखी! उनके सुन्दर रूप व गुणों की चरचा दिन रात हमारे मिथिला–नगर में चलती रहती है। अतएव सुख, गुण तथा रूप के राशि एवं अपने जनों का प्रति–पालन करने वाले वे राजकुमार, अवश्य ही देखने योग्य हैं।

श्रवण योग कीरति सुखकारी। खल दलि सर पद रज तिय तारी ॥
मनन योग जेहिं तत्व स्वरूपा। प्राणहुँ प्राण अहें नर भूपा ॥

जिन्होंने दुष्टों राक्षसों को अपने बाणों से विनाश किया है और अपनी चरण धूल से गौतम पत्नी श्री अहल्या जी का उद्धार किया है ऐसा उनका महान सुखकारी सुयश श्रवण करने योग्य है। जिनका तात्विक स्वरूप मनन करने योग्य है, जो सभी के प्राणों के भी प्राण व मनुष्यों के राजा हैं।

लायक निदिध्यासन हिय हारा। सबहिं रमावैं अपुन मँझारा ॥
करि अन्वेषण सखी सहेली। सींचहु सकल मनोरथ बेली ॥

जिनका तात्विक स्वरूप मनन करने योग्य है, जो सभी के प्राणों के भी प्राण व मनुष्यों के राजा हैं, जो हृदय के हार निदिध्यासन करने योग्य तथा अपने आप में सभी को रमाने वाले हैं, हे सखियों! उन राजकुमारों को खोजकर सभी अपने मन की कामना रूपी लता को सींच लें।

दो०–तासु वचन सुनि हर्ष अति, भयो सियहिं सुखमूल ।
दरश जिगासा जिय जगी, होवहिं विधि अनुकूल ॥२४८॥

उस सखी के वचनों को सुनकर श्री सीता जी को अत्यधिक हर्ष हुआ तथा उनके हृदय में सुखों के मूल, राजकुमार श्री राम जी का दर्शन करने की जिज्ञासा जागृत हो गयी तब वे मन में प्रार्थना करने लगी कि हे विधाता जी! आप हमारे अनुकूल हो जाँय अर्थात् हमें राजकुमार श्री राम जी का दर्शन करा दें।

भानुकला प्रिय प्राण समाना। देवहिं रूप दिखाय सुहाना ॥
अस कहि चलीं सिया सुख पागे । भरि उत्साह सखी सो आगे ॥

हे प्राणों के समान प्रिय सखी भानुकले! आप हमे भी उन राजकुमारों सुन्दर स्वरूप दिखा दीजिये। ऐसा कहकर, श्री सिया जू सुख में पगी हुई उत्साह में भर उस सखी को आगे कर चल दी।

सिया प्रीति की जानिनि हारा। नित्य अभेद पुरातन सारा ॥
नारद वचन सुरति करि सीता । करति प्रतीति मिलिहिं मम मीता ॥

वह सखी श्रीरामजी महाराज के प्रति राज किशोरी श्री सीताजी की नित्य, कभी अलग न होने वाली, शाश्वत तथा सारतम प्रीति को जानने वाली थी। देवर्षि श्री नारद जी के वचनों की स्मृति कर श्री सीता जी विश्वास करती हैं कि मेरे 'प्राण प्रियतम सुहृद' मुझे अवश्य प्राप्त होंगे।

रूप सुरति कहुँ मन महँ आवै । ध्यान जनित सुख पद न बढ़ावै ॥
कहुँ अतुराय तीव्र गति चलई। लखन चाह अतिशय हिय बलई ॥

श्री राम जी महाराज के रूप की स्मृति जब श्री सिया जी के मन में आती है तब वे ध्यान से उत्पन्न सुख के कारण आगे पैर नहीं बढ़ा पातीं पुनः हृदय में दर्शन की त्वरा अत्यधिक बलवती हो जाने के कारण कभी वे आतुर हो तेज चाल से चलने लगती हैं।

छनक अदर्शन नहिं सहि जाया । विश्व विराग हिये महँ छाया ॥
करन चतुष्टय अन्तः केरे। राम रूप महँ लीन्ह वसेरे ॥

श्री रामजी महाराज का एक क्षण का अदर्शन भी उन से नहीं सहा जा रहा था तथा ऐसा प्रतीत रहा था मानों सम्पूर्ण संसार का वैराग्य ही उनके हृदय में प्रगट हो गया हो। उनके चारो अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि व अहंकार) श्री रामजी महाराज के रूप में निवास किये हुए हैं।

दो०–जनक लड़ैती याहि विधि, जात सखिन सँग सोह ।
झुन झुन बाजत पैजनी, सुनत साम श्रुति मोह ॥२४९॥

इस प्रकार श्री जनक लाड़िली सिया जू सखियों के सहित गिरिजा बाग में श्री राम जी महाराज के दर्शन के लिये जाती हुई सुशोभित हो रही थीं। उनके चरणों के नूपुर झुन–झुन–झुन–झुन बज रहे थे जिसे सुन कर सामवेद भी व्यामोहित हो रहा था।

जनक लली चितवत चहुँ ओरी । गई निधिहिं जनु ढूँढ़त भोरी ॥
कटि कर पद भूषण धुनि छाई । श्रवण रंध्र रघुवर उर आई ॥

जनक लली श्री सीता जी चारों दिशाओं में राजकुमार श्री राम जी को ऐसे देख रही थीं जैसे वे अपनी खोई हुई सम्पत्ति को बावली बनकर खोज रही हों। श्री सिया जू के चलनें से उनके कमर, हाथ तथा चरणों के आभूषणों (किंकिणी, कंकण तथा नूपुर) की प्रिय ध्वनि वहाँ छाई हुई थी जो श्रीरामजी महाराज के हृदय में श्रवणों के द्वार से प्रवेश कर गयी।

सुनतहिं भये प्रेम वश रामा । हृदय भरयो रस ललित ललामा ॥
कहेउ लखन सन सकुचत वानी । रुन झुन शब्द सरस सुखदानी ॥

जिसे सुनते ही श्रीरामजी महाराज प्रेम के वशीभूत हो गये तथा उनका हृदय परम सुन्दराति–सुन्दर प्रेमरस से आपूरित हो गया। तब वे अनुज श्री लखन लाल जी से सकुचाते हुए बोले–हे तात! यह रस से परिपूर्ण रुनझुन–रुनझुन शब्द अत्यन्त ही सुख प्रदान करने वाला है।

उमा रमा शारद पद नूपुर । शची रती वर ललना शुभ सुर ॥
मोरे हृदय अकामहिं रागा । भरि न सकै लछिमन बड़ भागा ॥

हे बड़–भागी लक्ष्मण! श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी, श्री सरस्वती जी, श्री शची जी, श्री रती जी तथा अन्य देव–कन्याओं के पैरों के नूपुरों की ध्वनि मेरे निष्काम हृदय में प्रेम उत्पन्न नहीं कर सकती।

अवशि अलौकिक शब्द सुहाना । काम अकामै जेहिं सुनि काना ॥
कहतहिं कहत दृष्टि उत जाई । देखी सियहिं सरस सुखदाई ॥

यह सुन्दर शब्द अवश्य ही अलौकिक है जिसे कानों से सुनकर मेरे निष्काम मन में भी कामनाएं उत्पन्न हो रही हैं। ऐसा कहते ही उस ओर दृष्टि गयी तो उन्होंने सुन्दर सुख प्रदायिनी, रस स्वरूपिणी श्री सीता जी का दर्शन किया।

दो०–अमित कोटि सत चन्द्रहँ, लाजै लखि मुख तासु ।
अमृत रस झर झर झरै, बूँद सखी सब जासु ॥२५०॥

श्री सिया जू के अनन्त सौन्दर्य सार श्री मुख को देखकर असंख्य सौ करोड़ चन्द्रमा भी विलज्जित हो रहे थे तथा उस चन्द्र–मुख से अमृत रस का अनवरत रूप से निर्झरण हो रहा था जिसकी बूँदे ही उनकी सखियाँ थी।

अनिमिष निरखत सियहिं स्वधामा । राम ब्रह्म भे पूरण कामा ॥
आपा भूलि सियहिं मन लीना । बाढ़ेव रंग महा रस भीना ॥

राज कुमार श्री रामजी महाराज, स्वयं से अभिन्ना जनक दुलारी श्री सीताजी को अपलक नेत्रों से देख रहे थे उन्हे देखकर वे पूर्णतम परब्रह्म 'पूर्ण काम' हो गये। श्री राम जी महाराज ने अपना निजत्व भूल कर श्री सीता जी में अपना मन विलीन कर लिया उस समय महान रस से ओत प्रोत (आनन्द) वृद्धि को प्राप्त हो गया।

लोचन टारन बाँधन नेता । बरवश उतहिं लगैं निज हेता ॥
अमित अण्ड आभा मिलि एकी । सिय सुख कण नहिं गिनैं विवेकी ॥

प्रभु श्री रामजी महाराज अपने नेत्रों को वहाँ से हटाने का उपक्रम करते हैं फिर भी प्रेम के कारण वे नेत्र हठात् उधर ही लग जाते हैं। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा, हे हनुमान जी! असीमित ब्रह्माण्डों की सुन्दरता मिल कर एकत्र होने पर भी, परम ज्ञानी जन उसे श्री सीताजी के मुख की शोभा के एक कण के समान भी नहीं गिनते।

सिय सम सीय सुभग सुखकारी । जो रघुवीरहिं प्राण पियारी ॥
अस मन गुनत बढ़ेउ अनुरागा । धीर धुरंधर प्रभु रस पागा ॥

श्री सीता जी के समान सुन्दर तथा सुखकारी श्री सीता जी ही हैं जो प्रभु श्रीरामजी महाराज को प्राणों से भी प्रिय हैं। ऐसा मन में समझते ही परम धीर लक्ष्मण कुमार जी के अनुराग की वृद्धि हो गयी तथा वे श्रीरामजी महाराज के प्रेम–रस में डूब गये।

लषण कहा प्रभु सुमन सुलेहीं । सुनत राम मन बाहर देहीं ॥
सकुचि बन्धु सन मनहिं सँभारी । बोले राम सरस सुखकारी ॥

श्रीरामजी महाराज की ऐसी दशा देखकर श्रीलक्ष्मण कुमार ने कहा– हे नाथ! अब फूल ले लिये जाँय। ऐसा श्रवण कर श्री राम जी ने अपने मन को बाहर किया और अनुज श्री लक्ष्मण कुमार से संकुचित हो, मन को सम्हाल, रसमयी व सुखकारी वाणी से बोले–

दो०– लखन ओर निरखत प्रभू, नयन निबुकि भगि जाय ।
प्रेम दशा की दुरदशा, प्रेमिहिं सहत सुहाय ॥२५१॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज देख तो श्री लखन लाल जी की ओर रहे थे परन्तु उनके नेत्र अवसर पाते ही श्री सीता जी की ओर भाग जाते थे। प्रेम की ऐसी असहनीय अवस्था को तो केवल प्रेमी ही सहन कर सकते हैं।

जनक लड़ैती लली सुनैना । श्रीनिधि अनुजा रूप अबयना ॥
प्राण प्राण अरु जीवन जी की । अकथ अमित प्रिय तीनहु हीकी ॥

श्री राम जी ने कहा–हे लक्ष्मण! ये श्री जनकजी महाराज की लाड़ली बेटी, श्री सुनैनाजी की प्रिय लली तथा श्रीलक्ष्मीनिधिजी की अवर्णनीय सौन्दर्य सम्पन्ना छोटी बहन श्रीसीताजी हैं जो सभी के प्राणों की प्राण, जीवों की जीवनी शक्ति तथा उपर्युक्त तीनों के हृदय को अकथनीय एवं असीम प्रिय हैं।

या हित रचेव स्वयम्बर भारी । धनुष यज्ञ मिस वरहिं बिचारी ॥
पूजन हित शिव शिवा नवेली । मातु रजायसु संग सहेली ॥

इन्हीं के लिए यह विशाल स्वयम्बर रचा गया है जिसमें धनुष यज्ञ के माध्यम से ये विचार कर अपने पति का वरण करेंगी। ये नवल कुमारी श्रीसीताजी, यहाँ श्रीअम्बाजी की आज्ञा से सहेलियों के साथ श्रीशिव–पार्वतीजी का पूजन करने हेतु आयी हुई हैं।

आयीं तात फिरति फुलबरिया । पूरि प्रकाश भरेउ मनहरिया ॥
अमृत मूरि सजीवन देही । गिरीं सेविका उठीं सनेही ॥

हे तात लखन लालजी! ये भ्रमण करती हुई पुष्पवाटिका में आयी हुई हैं जिनका मनोहारी प्रकाश पूर्ण रूप से यहाँ समाया हुआ है। इनकी देह–अमृत स्वरूपा एवं संजीवनी बूटी के समान है जिसे दर्शन करते ही गिरी हुई सेविकायें प्रेमपूर्वक उठ पड़ी हैं।

यहि तन वायु परश शुचि पाई । सकल शान्तिमय मालिनि जाई ॥
करहिं सेव सब स्वामिनि सीता । धन्य धन्य व्रत प्रेम पुनीता ॥

इनके शरीर की वायु का पवित्र स्पर्श पाकर सभी मालिनें शान्ति स्वरूपा हो अपनी स्वामिनी श्री सीता जी की सेवा करती रहती हैं, इन सेविकाओं का व्रत व पवित्र प्रेम धन्याति धन्य है।

सीय सुभगता लखि लखि भ्राता । भयो प्रेम वश चित्त सुहाता ॥
आत्म देखि जिमि आत्म विवेकी । रमहिं आत्म तजि विषय अनेकी ॥

हे भाई! श्रीसीताजी की सुन्दरता देख देख कर मेरा चित्त, उनके सुन्दर प्रेम के वशीभूत हो गया है। हे तात! जैसे आत्म ज्ञानी जन आत्मा का दर्शन कर अनेक प्रकार के विषयों को त्याग, आत्मा में रमने लगते हैं।

दो०–सीय दरश तिमि मोर मन, तजि जग विषय विकार ।
जानि परत तेहिं पहँ रमत, जानहिं विधि करतार ॥२५२॥

उसी प्रकार मेरा मन श्रीसीताजी का दर्शन कर, संसार के सभी विकारों को त्याग उनमें ही रमता हुआ जान पड़ता है। अब आगे क्या होगा? विधाता ही जाने।–––

फरकहिं सुभग अंग सुखदाई । सगुन सुखद बहु देंय जनाई ॥
उपजै मन महँ परम प्रतीती । नित्य प्रिया मम अहै अजीती ॥

–––परन्तु मेरे शुभ व सुख प्रदायक अंग फड़क रहे हैं, बहुत से सुखद शगुन भी दिखाई दे रहे हैं एवं मेरे मन में महान विश्वास उत्पन्न हो रहा है कि ये अजेया सीता मेरी नित्य की द्धशाश्वत) प्रिया हैं।

स्वप्नेहु नाहि लखी पर नारी । मम मन पूत सदा अविकारी ॥
सीय पेखि शुचि प्रेमहि पागहिं । ताते अवशि प्रिया मम लागहिं ॥

पुनः मैंने स्वप्न में भी दूसरे की स्त्री का दर्शन नहीं किया तथा मेरा मन सदैव पवित्र एवं निर्विकार है जो श्री सीता जी को देखकर पवित्र प्रेम में पगा जा रहा है इसलिए ऐसा लगता है कि–ये अवश्य ही मेरी प्राण प्रियतमा हैं।

रघुकुल सहज स्वभाव बताऊँ । वेद मार्ग नित राखत भाऊ ॥
पर नारिन मानै महतारी । दृष्टि करहिं नहिं छन सविकारी ॥

मैं अपने श्री रघुकुल के सहज स्वभाव को बता रहा हूँ कि– रघुवंशी वेदों के द्वारा निर्दिष्ट पथ में पूर्ण श्रृद्धा रखते हुये, दूसरे की नारियों को माता मानते हैं तथा अपनी दृष्टि एक क्षण के लिए भी दोष युक्त नहीं करते।

याचक सदा अयाचक करहीं । पीछे पैर न रण महँ धरहीं ॥
सत्य–संध शरणागत पालक । वेद तत्व धारक खल घालक ॥

वे भिखारियों (मँगनों) को सदैव पूर्ण काम कर देते हैं, युद्ध में कभी भी अपने कदम पीछे नहीं रखते, सदैव सत्य का अनुसंधान करने वाले, शरण में आने वालों के पालक, वेद के तत्वों को धारण करने वाले तथा दुष्टों का दलन करने वाले होते हैं।

दो०–पुनि मम सम तेहि कुल उपजि, मेटहुँ धर्म प्रमान ।
बिना समय सत जानियहिं, होवै प्रलय महान ॥२५३॥

पुनः उस कुल में उत्पन्न होकर, मेरे समान व्यक्ति यदि धर्म के प्रमाण को मिटायेंगे तो सत्य समझ लो कि असमय में ही महान प्रलय हो जायेगा।

करत बात भ्राता सन रामा । बहुरि विलोकेउ सिय सुखधामा ॥
मुख सरोज मकरंद सुरंगा । परम प्रेम पीवत चख मृंगा ॥

अपने भाई श्रीलक्ष्मण कुमार के साथ इस प्रकार की बातें करते हुए श्रीरामजी महाराज नें सुखों की धाम श्रीसीताजी की ओर पुनः देखा मानों महान प्रेम–पूर्वक उनके नेत्र–भ्रमर सिय मुख–कमल के सुन्दर पराग का पान कर रहे हों।

लखन कहा तब रामहिं ताता । लेवहिं सुमन पूछि मन भाता ॥
सीतहिं आवत जान कुमारे । छवि छिपटाय छिपे सुखकारे ॥

तब श्रीलखन लालजी ने श्रीरामजी महाराज से कहा– हे तात्! इनसे पूछ कर मन चाहे पुष्प ले लिये जाँय। श्रीसीताजी को अपनी ओर आते समझकर राजकुमार श्रीरामजी महाराज अपनी छवि को छिपाकर सुखपूर्वक छिप गये।

इत सीता चहुँ दिशहिं विलोकी । खोजत मनहर कुँअर सशोकी ॥
एक सखी तहँ सियहिं लखावा । लता ओट दोउ कुँअर प्रभावा ॥

इधर श्री सीता जी शोक मग्न हो चारों दिशाओं में, मन को हरण करने वाले श्रीरामजी महाराज को खोजने लगीं तब एक सखी ने वहाँ पर श्रीसीताजी को लता की ओट में छिपे दोनों राजकुमारों के प्रभाव को दिखा दिया।

देखि रूप मन भई अलोली । चित्र लिखी सी नेक न डोली ॥
तुरत गयी निज निधि पहिचानी । नयन लजीले नेह समानी ॥

श्री राम जी महाराज का स्वरूप देखते ही श्री सिया जू मन स्थिर हो गया तथा वे चित्रित मूर्ति के समान हो गयीं, किंचित भी हिल डुल न सकीं। उन्होंने तुरन्त ही अपनी परम निधि श्री राम जी महाराज को पहचान लिया तथा सलज्ज नेत्रों से उनके प्रेम में डूब गयीं।

दो०–प्रेम भाव चिन्हित वदन, सब सुधि गयी भुलाय ।
बाँधि टकटकी राम कहुँ, लखत सिया सुख पाय ॥२५४॥

श्री सीता जी का शरीर, प्रेम के सात्विक भावों से चिन्हित हो गया, उन्हें सभी स्मृति भूल गयी तब वे अपलक नेत्रों से सुख पूर्वक श्रीरामजी महाराज को निहारने लगीं।

राम रूप मन मोहन श्यामा। आयो हृदय अमित अभिरामा॥
नयन मूँदि सिय निज उर माहीं। पेखति प्रभुहिं बिसरि तन काहीं॥

उस समय प्रभु श्रीरामजी महाराज का मन मोहित करने वाला, असीम सौन्दर्य सम्पन्न, श्याम स्वरूप श्री सीता जी के हृदय में दिखाई देने लगा और वे आँखों को मूँद कर शारीरिक स्मृति भूल उनका अपने हृदय में दर्शन करने लगीं।

प्रगटे तबहिं राम दोउ भाई। लता भवन सो विलग जनाई॥
सोहत युगल चन्द्र सम दोऊ। बने सुधामय सुखकर सोऊ॥

उसी समय श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार दोनों भाई लताओं के कुंज से निकल कर प्रगट हो गये वे सर्व सुखकारी दोनों भाई अमृत स्वरूप बने हुए दो चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे।

अँतरन सिंचे केश अति कारे। रसिकन प्राण हरण घुँघुरारे॥
शोभित सिर सिर पेंच सुहाई। टोपी पचरँग धरी बनाई॥

उनके केश अत्यधिक काले, इत्र सिंचित, घुघराले तथा रसिकों के प्राणों का अपहरण करने वाले थे। उनके शिर में सुन्दर शिर–पेंच सुशोभित थी जिस पर पाँच रंगों की टोपी सँवार कर रखी हुई थी।

पेंचहि लगी सुमोती अलकैं। छूटि कपोलन छविमय छलकैं॥
कुण्डल मकर शोभ शुभ काना। जा प्रतिविम्ब कपोल सुहाना॥

पेंच में लगी हुई सुन्दर मोती की लड़ियाँ व सुन्दर छवि युक्त अलकें उनके सुन्दर कपोलों पर छूट–छूट कर छवि छहरा रही थीं। मकर के आकार के कुण्डल शुभ कानों में सुशोभित हो रहे थे जिनका सुन्दर प्रतिविम्ब कपोलों पर पड़ रहा था।

दो०–सुन्दर भृकुटि मनोज धनु, तिलक रेख युत खौर।
वशीकरण जनु यंत्र शुभ, देखत भो मन बौर॥२५५॥

उन राज कुमारों की सुन्दर भौहें कामदेव के धनुष के समान थी तथा उनका भव्य भाल सुन्दर खौर सहित तिलक की रेखाओं से सुसज्जित ऐसा लग रहा था जैसे वश में कर लेने वाला कोई शुभ यन्त्र हो, उसे देखते ही सभी का मन बावला हो जाता था।

सुभग नासिका मधुर कपोला। अधर लसै नक मोती डोला॥
आनन अमित चन्द्र छवि सारी। टपकत अमृत विन्दु सुखारी॥

उनकी नासिका सुन्दर व कपोल अत्यन्त ही मधुर थे उनके अधरों पर नाक का मोती हिलते हुए सुशोभित हो रहा था। उनका मुख मण्डल असीमित चन्द्रमा की सुन्दरता के सार–तत्व के समान

था जिससे सुख श्राविणी अमृत की बूँदें श्रावित हो रही थीं।

मोहक मयन मीन मदवारे । लोचन ललित कलित कजरारे ॥
मधुर मधुर मुस्कान मोहनी । मनहु सुधा रस भरी दोहनी ॥

उन राजकुमारों के नेत्र कामदेव को भी मोहित करने वाले, मछली के समान, सुन्दर, काजल से युक्त, मद से आपूरित थे तथा उनकी मोहित कर लेने वाली मुस्कान अत्यधिक मधुरी थी मानो अमृत रस से भरी हुई दोहनी (कलशी) हो।

मुख छबि सिन्धु बूड़ि मन गयऊ । कौन लखै अँग दूसर चयऊ ॥
सुषमा सदन श्याम छवि देखी । भई विदेही सखी विशेषी ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि हे भाइयो! प्रभु श्री राम जी महाराज के मुख सौन्दर्य सागर में मेरा मन डूब गया है अतः अब आनन्द से भरे उनके अन्य अंगों का दर्शन कौन करे। उस समय सुन्दरता के आगार श्रीरामजी महाराज की श्याम छवि को देखकर सभी सखियाँ विशेष भावपूर्वक शरीर के भान से रहित हो गयी थीं।

कही धीर धरि सखी सयानी । स्वामिनि लखहु दृगन सुखदानी ॥
सुनत सखी मुख बैन सुहाये। खोलि नयन निरखेउ छवि छाये ॥

पुनः धीरज धारण कर एक चतुर सखी ने कहा– हे श्री स्वामिनी जू! आप अपने नेत्रों से सुख प्रदायक रघुनन्दन जू का दर्शन तो कर लें। अपनी सखी के मुख से निकले सुन्दर वचनों को सुनकर श्री सीता जी ने नेत्र खोलकर सौन्दर्य सार श्री रामजी महाराज का दर्शन किया।

मोहन मन्मथ श्याम सलोना। सुन्दर सुखद मधुर रस भौना ॥
अरपि अपुहिं रघुवरहिं सलोनी । भई विवश कहुँ सकत न गौनी ॥

श्री रामजी महाराज का कामदेव को भी मोहित कर लेने वाला, श्याम वर्ण, सुन्दर, सुखप्रद, सलोना, मधुर तथा रस का आगार स्वरूप देख कर सलोनी श्री सिया जू ने अपने आपको श्रीरामजी महाराज को अर्पित कर दिया और उनके वशीभूत हो वे अन्यत्र जाने में समर्थ न हो सकीं।

दो०–एक सखी सो सिय दशा, लखि बोली कर जोर ।
चलहिं भवन बहु बेर भइ, अहहैं पुनि कल भोर ॥२५६॥

श्री सीता जी की वह अवस्था देखकर एक सखी उनसे हाथ जोड़ कर बोली, हे श्री स्वामिनी जू! अब महल चला जाय, यहाँ बहुत समय हो गया, कल सबेरे पुनः यहाँ आ जायेंगी।

लली विरह तुम्हरे कहुँ माता। आवहिं खोजन शंक दिखाता ॥
जो पै आय लखैं यहि काला । तो सखि होवै लाज विशाला ॥

हे लली जू! ऐसी आशंका दिखाई पड़ रही है कि आपके वियोग में कहीं श्री अम्बा जी आप को ढूढ़ने न आ जाँय और यदि वे यहाँ आकर इस समय की स्थिति देखेंगी तो हे सखी! बहुत बड़ी लज्जा की बात होगी।

ताते जावहिं सद्य सिधाई । सुनत सियहिं जननी डर आई ॥
धीर धिये धरि विरह छिपाई । चली सिया निज सखिन लिखाई ॥

अतः अब शीघ्र ही प्रस्थान कर दिया जाय। ऐसा सुनते ही श्रीसीताजी को श्रीअम्बाजी का भय आ गया तब वे धैर्य धारण कर अपने प्रभु–विरह को छिपा, सखियों को लेकर चल दीं।

देह आपनी पितु आधीना । प्राण प्राण बिन प्राण रहीना ॥
सोचति फिरति पुनः पुनि देखन । मृग तरु मिस पुनि शकुनहिं पेखन ॥

यह मेरी देह तो श्रीमान् पिताजी के आधीन है परन्तु प्राणों के प्राण श्रीरामजी महाराज के बिना तो मेरे प्राण भी नहीं रहेंगे, ऐसा सोचती हुई श्री सिया जू बार–बार मुड–मुड़ कर हिरण, वृक्ष तथा पक्षियों को देखने के ब्याज से श्री राम जी महाराज को देख लेती थीं।

जस जस लखति राम शुचि शोभा । तस तस अधिक होत मन छोभा ॥
कहँ सुकुमार फूल के फूला । कहँ शिव धनुष परम प्रतिकूला ॥

वे श्रीरामजी महाराज की पवित्र शोभा का दर्शन जैसे जैसे करती थीं वैसे वैसे उनके मन में अधिक छोभ होता जाता था कि कहाँ ये परम सुकुमार फूलों के भी फूल, श्री राम जी और कहाँ वह परम कठोर श्रीशिवजी का धनुष।

दो०–तोरैं धनुष कुमार वर, गिरिजहिं लेउँ मनाय ।
हृदय विचारति सेव गुनि, करिहैं अवशि सहाय ॥२५७॥

ये सुन्दर राजकुमार श्रीरामजी धनुष का भंजन कर दे, इस के लिये मैं श्रीपार्वतीजी को प्रसन्न कर लूँ, ऐसा हृदय में वे विचार करती हैं तथा अपने द्वारा की गयी उनकी सेवा का स्मरण कर आश्वस्त हो जाती हैं कि वे अवश्य ही मेरी सहायता करेंगी।

रामहिं उर धरि वर वैदेही । चली सखिन सह गिरिजा गेही ॥
भीतर बाहर रामहि रामा । श्याम सुहावन सुठि सुख धामा ॥

परम सौन्दर्य सम्पन्ना श्रीविदेहराज नन्दिनी जू अपने हृदय में श्रीरामजी महाराज को धारण कर सखियों सहित श्रीगिरिजाजी के मन्दिर को चलीं। उस समय उनके भीतर (हृदय प्रदेश) और बाहर (बाह्य देश) सर्वत्र परम सुहावने, सुन्दर सुख के धाम, श्याम सुन्दर श्रीरामजी महाराज ही थे।

श्रवण सुनैं जनु रघुवर वानी । मधुर सरस सज्जन हित सानी ॥
गंध ग्रहण बिनु सूक्ष्म घ्राणा । लहै राम तन गंध प्रमाणा ॥

उनके श्रवण तो जैसे सज्जनों के हित से सनी, मधुर व रसमयी श्रीरामजी महाराज की वाणी श्रवण कर रहे थे, उनकी नासिका सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय द्वारा बिना गंध ग्रहण किये हुए भी श्रीरामजी महाराज के शरीर की गंध ग्रहण कर रही थी।

राम परश सुख सियहिं जनाई । मन अनन्द तन रोमहुँ चाई ॥
मन महँ बोलति रामहि बाती । निकसत मुख सिय सकुचि सुहाती ॥

श्रीरामजी महाराज के स्पर्श का सुख श्रीसीताजी को समझ आता था तथा उनका मन आनन्दित व शरीर रोमांचित हो जाता था। उनके मन में श्रीरामजी महाराज की ही वार्ता चल रही थी, जिसके मुख से निकल पड़ने पर श्री सीता जी संकुचित हो जाती थीं।

विविध प्रकाश लखति हिय नैना। भूषण वसन तेज छबि छैना ॥
प्रेम दशा जब सुखद समावै। ऐसहिं प्रेमी हिय दरशावै ॥

वे अपने हृदय व नेत्रों में उनके परम तेजवान आभूषणों तथा सुन्दर वस्त्रों के विभिन्न प्रकार के प्रकाश को देखती थीं। हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–हे सज्जनो! जब प्रभु प्रेमी के हृदय में परम सुखदायी प्रेम की ऐसी अवस्था हो जाती है तब उसके हृदय में ऐसा ही सर्वत्र दिखाई पड़ता है।

दो०– रानि सुनैना लाड़िली, यहि विधि प्रेम प्रसार ।
विनय करन अतुराय हिय, गयी भवानी द्वार ॥२५८॥क॥

महारानी श्री सुनैना जी की लाड़िली श्री सीता जी इस प्रकार प्रभु–प्रेम में पगी हुई आतुर हृदय, प्रार्थना करने के लिए श्री पार्वतीजी के मन्दिर गयीं।

पुष्प अरपि सिर नाय शुभ, हाथ जोरि सुख शाल ।
अतिहिं प्रेम अस्तुति करत, गिरजहिं करन निहाल ॥ख॥

गिरिराज कुमारी श्री पार्वती जी को प्रसन्न करने के लिए श्री सीता जी ने पुष्प अर्पित कर शिर झुका प्रणाम किया व हाथ जोड़ कर प्रेम से स्तुति करने लगीं।

छं०– जय जयति भवानी, जन सुखदानी, प्रणत पालि जग माता ।
गिरिराज कुमारी, भव भय हारी, सबहिं भाँति सुख दाता ॥
मुख लखि तव भोला, चित्त अडोला, होहिं प्रेम वश धीरा ।
षडमुख की जननी, गणपति करनी, सेवत तव पद तीरा ॥१॥

हे श्री पार्वती जी! आप तो अपने सेवकों को सुख देने वाली, आश्रितजनों का पालन करने वाली तथा सम्पूर्ण संसार की जननी हैं, आपकी जय हो, जय हो। हे सम्पूर्ण संसार के भय को हरण करने वाली व सभी प्रकार से सुख–प्रदान करने वाली, श्री पर्वत राज हिमालय की पुत्री! आपके सुन्दर मुख को देखकर, सदैव अडिग चित्त वाले श्री भोले नाथ शिवजी भी प्रेम के वशीभूत हो जाते हैं। हे धीर स्वभाव वाली, षडानन श्री कार्तिकेय जी की माता व श्री गणेश जी जन्म–दात्री मैं आपके श्री चरणों की सेवा करती हूँ।

भव सम्भव कारिणि, पालन हारिणि, देती बहुरि सँघारी ।
दामिनि द्युतिवन्ती, मोह करन्ती, रहति सदा अविकारी ॥
हौ परम स्वतन्त्रा, संग सुभर्ता, विहरति वन कैलासा ।
जय मातु अनादी, अन्तन वादी, कृपा लहत इक दासा ॥२॥

आप तो सम्पूर्ण संसार को उत्पन्न करने की कारण स्वरूपा व पालन करने वाली हैं तथा पुनः संहार कर देने वाली हैं। हे विद्युत के समान ज्योति संयुक्ता व सभी को मोहित कर लेने वाली देवि! आप सदैव ही निर्विकार हैं तथा परम स्वच्छन्दता पूर्वक अपने सुन्दर पति–देव श्री भोले नाथ शिव जी के साथ कैलास वन में विहार करने वाली हैं। हे आदि व अन्त रहित माता श्री पार्वती जी! आपकी कृपा तो आपके सेवक ही प्राप्त कर सकते हैं। आपकी सदैव जय हो।

जय जय पति देवा, करि सुर सेवा, चाहत कृपा महाना।
कहि सकत न शेषा, ऋषय अशेषा, महिमा वेद पुराना॥
सुर नर मुनि सेवत, बलि बलि लेवत, तव पद पदुम परागा।
पूजत मन कामा, लहत अरामा, रह नित भाग सुजागा॥३॥

अपने पति को इष्ट मानने वाली हे देवि! देवता भी आपकी सेवा करते हुए आपके महान कृपा की कामना करते हैं। सहस्त्र मुख श्री शेष जी, सभी ऋषि–मुनि महात्मा तथा वेद–पुराण भी आपकी महिमा का बखान नहीं कर सकते। देवता, मुनि तथा मनुष्य सभी आपकी बार–बार बलैया लेते हुए चरण कमलों के पराग का सेवन करते हैं जिससे उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं, वे सुख प्राप्त करते हैं तथा उनकी भाग्य सदैव जागृत बनी रहती है, आपकी जय हो, जय हो, जय हो।

मम मनहिं सुहाती, जानत बाती, सब उर अन्तर जानी।
तव शरणहिं आई, माँग सो पाई, मम सिर धरहु सुपानी॥
जय देवि सयानी, जय जग जानी, प्रगट न कारण कीन्हा।
जय मातु महानी, जय शिव रानी, सीय शरण गहि लीन्हा॥४॥

आप तो मेरी मनभावनी बात जानती ही हैं क्योंकि सभी के हृदय में निवास करने वाली हैं। अतः मैं आपकी शरण आई हूँ। आप मेरे शिर में अपना सुन्दर कर कमल रखकर मेरा मनोभिलाषित मुझे प्रदान करें। हे चतुर देवि! आप सम्पूर्ण संसार की जानने वाली हैं इसलिए मैंने अपना मनोर्थ प्रगट नहीं किया है। हे परम महिमामयी, श्री शिव जी की पटरानी जगज्जननी श्रीपार्वतीजी! आपकी जय जय हो, अब सीता ने आपकी शरण ग्रहण कर ली है।

दो०–स्तुति करि सिय लाड़िली, धरेउ चरण महँ माथ।
प्रेम विवश सुख रूपिणी, चाहति सुखद स्वनाथ॥२५९॥

इस प्रकार सुख स्वरूपा श्री सीता जी ने श्री पार्वती जी की स्तुति कर उनके चरणों में अपना मस्तक रख दिया तथा प्रेम के वशीभूत हो अपने सुखप्रद स्वामी की कामना करने लगीं।

विनय विवश गिरिजा प्रगटानी। बोली सुखद सरस शुभ वानी॥
धन्य धन्य तव कृपा महानी। जो पै मोहिं दियो अति मानी॥

जनक लाड़िली श्री सिया जी के विनय के वशीभूत हो अम्बा श्री पार्वती जी प्रगट हो गयीं तथा सुख प्रदायिनी रस युक्त शुभ वाणी से बोलीं– हे श्री सिया जी! आपकी महान कृपा धन्याति धन्य है जो आपने मुझे इतना अधिक आदर प्रदान किया है।

रमा शारदा हम युत जेती । उपजहिं अंश तुम्हारे तेती ॥
राउर भेद हमहुँ नहिं जानैं । शेष गिरा श्रुति नेति बखानै ॥

मेरे सहित श्री लक्ष्मी जी, श्री सरस्वती जी आदि जितनी भी शक्तियाँ हैं वे सभी आपके अंश से ही उत्पन्न होती हैं, आपके रहस्य को तो हम लोग भी नहीं जानती तथा श्री शेष जी, श्री सरस्वती जी एवं सभी श्रुतियाँ नेति नेति कर बखान करती हैं।

तदपि सुनहु सर्वेश्वरि मोरी । देउँ अशीष सेव गुनि तोरी ॥
सुफल मनोरथ सब विधि होई । या महँ संशय नेक न कोई ॥

तथापि हे मेरी सर्वेश्वरी श्री सीता जी! सुनिये, मैं आपकी सेवा समझ कर आपको आर्शीवाद दे रही हूँ कि आप सभी प्रकार से पूर्ण मनोरथा होंगी इस में किसी प्रकार का किंचित भी सन्देह नहीं है।

सत्य सत्य पुनि सत मम वानी । होइहिं सब विधि संशय हानी ॥
तव रुचि मेटन कवन समर्था । पूजहिं सब मन काम यथर्था ॥

मेरी यह त्रिसत्य वाणी है कि सभी प्रकार से आपके संदेहों का नाश होगा क्योंकि आपकी इच्छा मिटाने की सामर्थ्य किसी में भी नही है अतः आपकी सभी मन–कामनायें यथार्थतः पूर्ण होंगी।

दो०–जासो सिय तव मन रमेउ, सहज सुहावन श्याम ।
सोइ मिलै पति प्राण प्रिय, जन मन पूरण काम ॥२६०॥क॥

हे श्री सिया जी! आपका मन जिनमें अनुरक्त हुआ है तथा जो सहज सुहावन श्याम वर्ण वाले राजकुमार आपको प्राणों से प्रिय हैं वही अपने सेवकों के मन की कामनायें पूर्ण करने वाले श्रीरामजी महाराज आपको पति रूप में प्राप्त होंगे।–––

सबको प्रभु सबको हितू, सब हिय वसनो वार ।
शील प्रेम शुचि भाव सत, जानय सकल तुम्हार ॥ख॥

–––तथा वे सभी के स्वामी, हितैषी तथा हृदय में निवास करने वाले स्वामिन् श्री राम जी महाराज आपके शील, प्रेम व पवित्र भावों को सत्यता पूर्वक जानते हैं।

दै अशीष गल मालहिं डारी । अन्तरधान भई हर नारी ॥
लहि अशीष स्रग शुचि सिय हुलसी । चली सखिन सह सदन सुफलसी ॥

इस प्रकार शिवजी की पटरानी श्री पार्वती जी आशीर्वाद दे, श्री सीता जी के गले में अपनी प्रसादी माला डालकर अन्तर्ध्यान हो गयीं। तब आशीष स्वरूप माला प्राप्त कर पवित्र श्री सीता जी उत्साह पूर्वक सुफल मनोरथा होकर सखियों सहित राज महल को चल दीं।

मातहिं जाय प्रणाम सो कीन्ही । अम्ब प्यार करि गोदहिं लीन्ही ॥
इतै राम गवनत सिय देखी । होत असह मन विरह विशेषी ॥

अनन्तर श्री सीता जी ने जाकर श्री अम्बा जी को प्रणाम किया तब श्री अम्बा जी ने उनका

प्यार कर उन्हें गोद में बिठा लिया। इधर श्री राम जी महाराज ने श्री सीता जी को जाते देखा तो उनके मन में विशेष वियोग की असहनीय पीड़ा होने लगी।

सिय स्वरूप धरि हिय महँ रामा । मनहिं सराहत ललित ललामा ॥
मालिनि पूँछ लखन हर्षाई । लिये पुष्प चुनि दूनहु भाई ॥

तब श्री सीता जी के सुन्दर स्वरूप की मन ही मन सराहना करते हुए श्रीरामजी महाराज उनके स्वरूप को अपने हृदय में धारण कर लिये। पुनः श्री लक्ष्मण कुमार जी ने बाग की सेविका मालिनों से पूँछकर दोनो भाइयों ने हर्ष में भर कर पुष्प चयन कर लिया।

लिये पुष्प कर दोनन माहीं । राम लखन अति अधिक सोहाहीं ॥
यहिं विधि जाय बाग के द्वारा । चढ़ि नर यान चले सुख सारा ॥

उस समय 'पुष्प–द्रोणों' को हाथ में लिए हुए श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे। इस प्रकार सुखों के सार वे दोनो बाग के दरवाजे पर जाकर पालकी में विराजकर सुख पूर्वक चल दिये।

दो०–वास थलहिं पहुँचे तुरत, छोड़ि दियो नर यान ।
गुरु पद बन्दे जाय प्रभु, सहित लखन हरषान ॥२६१॥

शीघ्र ही अपने गुरुदेव श्री विश्वामित्र जी के निवास भवन पहुँच कर वे पालकी छोड़ दिये तथा श्री लक्ष्मण कुमार सहित प्रभु श्री राम जी महाराज ने हर्षपूर्वक समीप जाकर श्री गुरुदेव जी के चरणों की वन्दना की।

पुष्प अरपि गुरु ढिग रघुराई । बैठे हरषि सुआयसु पाई ॥
समाचार कहि बाग सुनावा । छल विहीन सुनि मुनि सुख पावा ॥

श्री गुरुदेव जी को पुष्प समर्पित कर आज्ञा पाकर श्री राम जी महाराज समीप ही हर्षित हो बैठ गये तथा पुष्प वाटिका के सभी समाचार श्री गुरुदेव जी से कह सुनाये। जिसे सुनकर श्री विश्वामित्र जी ने उन्हें निश्छल हृदय जानकर अत्यन्त सुख प्राप्त किया।

आशिष दीन्ह अमित हरषाना । सुफल मनोरथ होहु सुजाना ॥
गुरु आशिष सिर राखि कृपाला । भये सुखी बहु होत निहाला ॥

श्री विश्वामित्र जी ने अत्यन्त हर्षित होकर आशीर्वाद दिया कि हे सुजान, श्रीरामजी! आपके मनोरथ सुफल हों। श्री गुरुदेव जी की शुभाशीष को सिर में धारण कर कृपालु श्रीरामजी महाराज भली भाँति संतुष्ट व अत्यन्त सुखी हुए।

भोजन करि पुनि मुनिवर साथा । कछु विश्राम किये रघुनाथा ॥
बहुरि कथा सुनि मुनिवर पाहीं । चले करन शुचि सन्ध्या काहीं ॥

पुनः श्रीरामजी महाराज मुनिराज श्री विश्वामित्रजी के साथ भोजन कर कुछ विश्राम किये तथा श्री विश्वामित्र जी से सुन्दर कथा श्रवणकर पवित्र सन्ध्या करने के लिए चले।

होइ निवृत्त प्रभु पूरब देखा । पेखि चन्द्र हिय हर्ष विशेषा ॥
तेहिं विलोकि सीता सुधि आई । सिय मुख छवि कछु चन्द्रहुँ पाई ॥
ध्यान करत प्रभु सिय महँ लीना । तदाकार भे प्रेम प्रवीना ॥

संध्यादि कर्मो से निवृत्त होकर प्रभु श्रीरामजी महाराज ने पूर्व दिशा की ओर दृष्टिपात किया तो वहाँ चन्द्रमा को देख, उनके हृदय में विशेष हर्ष हुआ, उसे देखकर उन्हें श्रीसीताजी की स्मृति आ गयी क्योंकि श्रीसीताजी के मुख की किंचित छवि चन्द्रमा ने भी प्राप्त की है। तब श्री सीताजी का ध्यान करते ही प्रेम पारंगत प्रभु श्रीरामजी महाराज का मन श्री सीता जी में लीन हो जाने से वे तदाकार हो गये।

दो०—बाहर भूलेउ भान सब, बाग दृश्य चित छाय ।
आपुहिं मानहिं वाटिकहिं, लखत सियहिं चित चाय ॥२६२॥

श्री राम जी महाराज को उस समय सम्पूर्ण वाह्य–ज्ञान भूल गया तथा पुष्प वाटिका के दृश्य उनके चित्त में उदित हो गये तथा वे आनन्दपूर्वक स्वयम् को पुष्प वाटिका में ही श्रीसीताजी को निहारते हुए, समझने लगे।

राम कहा सुनु सुखद सुभ्राता । लखहु सीय दामिनि द्युति गाता ॥
जड़ चेतन जग जीव घनेरे । परम प्रकाशित सुख हिय हेरे ॥

श्री राम जी महाराज ने कहा– हे सुखदायक भ्राता, लखन लाल जी! सुनिये, इन विद्युत वर्णा श्री सीता जी को तो देखिये , सभी जड़ चेतनात्मक जीव इन्हीं के प्रकाश से महान प्रकाशित तथा हृदय में सुखी दिखाई दे रहे हैं।

अहह पद्म गन्धा तन अहई । शुचि सुगन्ध मम घ्राणहु लहई ॥
सखि बिच सोह यथा शशि पूनो । नखत बीच राजत दुख सूनो ॥

अहा हा! इनका शरीर कमल की सुगन्धि से आपूरित है तथा मेरी नासिका इनकी पवित्र सुगन्धि को ग्रहण कर रही है। सखियों के बीच श्री जनक दुलारी उसी प्रकार सुशोभित हो रही हैं जैसे नक्षत्रों के बीच आनन्द पूर्वक पूर्णिमा का चन्द्र सुशोभित होता है।

मुख छवि कहि न जात सुनु भाई । शरद कोटि शत शशिहुँ लजाई ॥
मम मन जीति सखे सिय लीन्हा । लखहु हृदय भल ताकर चीन्हा ।।

हे भइया लक्ष्मण! इनके मुख मण्डल की शोभा तो कहते ही नहीं बनती, इन्हें देखकर सौ करोड़ शारदीय चन्द्रमा भी विलज्जित हो रहे हैं। हे सखे! श्री सीता जी ने मेरे मन को जीत लिया है, तुम इसके सुन्दर चिन्हों (लक्षणों) को मेरे हृदय में देख ही रहे हो।

सिय मुख कला न गिनहुँ त्रिलोकी । सिमिटै शोभा सब सुख ओकी ॥
धन्य सखी सिय सेव सुजानी । रहहिं संग नित भाव भुलानी ॥
अमित अण्डनायक प्रभु जोई । मिलन योग याको पति सोई ॥

सुखों की आगरी श्री सीता जी के मुख की शोभा के सामने, तो मैं तीनों लोकों की पुंजीभूत सौन्दर्य राशि को भी कुछ नहीं मानता हूँ अर्थात् नगण्य मानता हूँ। वे सखियाँ धन्य हैं जो श्रीसीताजी की सेवा कुशलता पूर्वक करती हुई भावों में भूली नित्य उनके साथ–साथ रहती हैं। हे भाई! जो असीमित ब्रह्माण्डों का अधीश्वर तथा सबका स्वामी है, वही इन्हें पति रूप में प्राप्त होने योग्य है।

दो०– लखन कहा हनुमान सुनु, रघुपति भावा वेश ।
निरखि अलौकिक मोहि भयो, प्रिय प्रभु प्रेम विशेष ॥२६३॥

श्री लखन लाल जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! सुनिये, श्रीरामजी महाराज को प्रेम–भाव के वशीभूत देखकर मुझे अपने प्रिय स्वामी के प्रति अलौकिक तथा विशेष प्रेम हो गया।

करत विचार हृदय अस आवा । चाहिय रामहिं तुरत जगावा ॥
कहेउँ सुनहु रघुवीर कृपाला । भई अबेर चलिय मुनिशाला ॥

विचार करने पर मेरे हृदय में ऐसा ज्ञान हुआ कि शीघ्र ही श्री राम जी महाराज को जाग्रत कर देना चाहिए अतः मैंने कहा– हे कृपालु श्री राम जी महाराज! सुनिये, बहुत विलम्ब हो गया है, अब मुनिराज श्री विश्वामित्र जी के निवास चलना चाहिये।

बहुरि काल्ह अइहैं यहि बेरा । देखिहैं सीता अवध किशोरा ॥
कौशिक आज अमित अनषैहैं । अब कहुँ विहरन नाहिं पठइहैं ॥

हे अवध किशोर रघुनन्दन श्री राम जी! कल पुनः इसी समय आकर श्री सीता जी का दर्शन कर लीजियेगा। आज श्री विश्वामित्र जी बहुत ही कुपित होंगे तथा अब कहीं भी विहार करने हेतु नहीं भेजेंगे।

गुरु भय भरि भय भयद सुजाना । स्वस्थ भये मन माहिं लजाना ॥
आज लखहु मम मन मति वाना । उदय अस्त घर वनहिं न जाना ॥

अपने अनुज लक्ष्मण कुमार जी के वचन श्रवण कर, श्री गुरुदेव जी के भय से भयभीत होकर, डर को भी डर प्रदान करने वाले (अकुतोभय) परम सुजान श्री राम जी महाराज स्वस्थ हुए तथा मन में लज्जित हो कर बोले– अहा! देखो तो, मेरा परम बुद्धिमान मन चन्द्रमा का उदय एवं अस्त होना तथा घर व वन का ज्ञान तक नहीं कर सका।–––

चलहु गयी निशि अब युगदण्डा । काह कहैं मुनि क्रोध प्रचण्डा ॥
पहुँचि परे चरणन रघुराई । लखि स्वभाव मुनि हृदय लगाई ॥

–––चलिये, अब दो घड़ी (४८मिनट) रात्रि भी बीत गयी है, अतिशय क्रोधित स्वभाव वाले मुनिवर श्री विश्वामित्र जी न जाने क्या कहेंगे? ऐसा कह, शीघ्रता पूर्वक चलकर वहाँ पहुँच गये तथा श्री राम जी महाराज मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के चरणों में गिर पड़े। तब उनके स्वभाव को देख श्री विश्वामित्र जी ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया।

दो०– बैठे समय सुआसनहिं, मुनि मुख सुनत सुबात ।
सीय स्वयम्बर धनुष की, जिमि नृप आवत जात ॥२६४॥

अनन्तर वे दोनो श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी उस समय सुन्दर आसन में बैठकर मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के मुख से जनक दुलारी श्री सीता जी के स्वयम्बर व धनुष यज्ञ की तथा देश–देशान्तरों से राजा गणों के आवागमन की सुन्दर वार्ता श्रवण करने लगे।

तेहिं अवसर तहँ पहुँचि विदेहू । मुनिहिं प्रणाम कियेउ अति नेहू ॥
यथा योग रामहिं मिलि राजा । हरषि प्रणामी मुनिन समाजा ॥

उसी समय श्री विदेहराज जी महाराज वहाँ पहुँच, अत्यन्त प्रेम पूर्वक मुनिवर श्री विश्वामित्र जी को प्रणाम किये और यथोचित विधि से श्रीरामजी महाराज से भेंटकर हर्षपूर्वक सभी मुनि मण्डली को प्रणाम किये।

मुनि संकेत बैठि शुभ आसन । समाचार सब कहेउ सुभाषन ॥
पानि जोरि बोले मुनिराई । नाथ दरश तव शोक मिटाई ॥

पुनः श्री विश्वामित्र जी के संकेत पर शुभ आसन में बैठकर श्री जनक जी महाराज ने रंगभूमि का सम्पूर्ण समाचार सुन्दर वचनों से कह सुनाया तत्पश्चात् हाथ जोड़कर वे श्री विश्वामित्र जी से बोले– हे नाथ! आपका दर्शन ही समस्त शोक मिटाने वाला है।–––

दीप दीप के नृपति महाना । आये सब मम प्रण सुनि काना ॥
अति अभिमान जाय ढिग चापा । चले हारि सब निज निज दापा ॥

–––क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा को श्रवण कर द्वीप–द्वीपों से विशाल संख्या में राजागण आये तथा अत्यन्त अभिमान पूर्वक श्री शिव धनुष के समीप गये किन्तु अपने–अपने अभिमान को पराजित कर वापस चले गये हैं।–––

धनुहिं उठाउब तोरब छोड़ी । अणु भर भूमि सके नहि मोड़ी ॥
रावण बाण दैत्य बल वारे । रहे महा विजयी भट भारे ॥

–––वे सभी भगवान भूत–भावन श्री शिव जी के धनुष को उठाना व तोड़ना तो दूर, अणु–मात्र भी भूमि से अलग नहीं कर सके। यहाँ तक कि रावण तथा वाणासुर आदि बलवान दैत्य जो महान विजयी व वीर हैं वे भी वहाँ उपस्थित थे।––––

दो०–खेलहिं लेय उठाय दोउ, पर्वत राज महान ।
शम्भु चाप लखि धुनत शिर, कीन्हे गवहिं पयान ॥२६५॥

–––जो खेल ही खेल में परम विशाल पर्वतराज 'कैलाश' को उठा लेते हैं, वे दोनों रावण व बाणासुर, श्री शंकर जी के धनुष को देखकर अपनी असमर्थता पर शिर धुनते (पछताते) हुए अपने अपने देश को प्रस्थान कर गये।

अबहुँ जुरी बहु राज समाजा । चाह भरी धनु तोड़न काजा ॥
धनुष यज्ञ पूर्णाहुति काली । जानहिं सब प्रभु हृदय विशाली ॥

हे नाथ! अभी भी विविध राजाओं का समाज धनुष तोड़ने की कामना से एकत्र है तथा कल धनुष यज्ञ की पूर्णाहुति भी है, आगे क्या होगा? महान हृदय स्वामिन्! वह सभी कुछ आप श्री जानते

ही हैं।———

अन्तिम दिवस नाथ बल तोरे । होय सुफल विनबहुँ कर जोरे ॥
अस कहि भूप अधिक अनुरागेव । बार बार मुनि वर पद लागेव ॥

———अतएव हे नाथ! आपसे कर–बद्ध विनय है कि आपकी कृपा–बल से अन्तिम दिन यह यज्ञ सफलता को प्राप्त हो जाय। ऐसा कहकर श्री महाराज जनक जी अत्यन्त प्रेम परिप्लुत हो मुनिराज श्री विश्वामित्र जी के चरणों में बारम्बार प्रणाम करने लगे।

पानि फेरि शिर मुनि हरषाई । भूपहिं बोलेव वचन सुहाई ॥
सुकृत स्वरूप भूप बड़ भागी । परम भागवत ज्ञान विरागी ॥

तब श्री विश्वामित्र जी हर्षित होकर श्री महाराज जनक जी के शिर में हाथ फिराते हुए सुन्दर वचन बोले– हे राजन! आप तो पुण्य स्वरूप, अत्यन्त भाग्यवान, परम भागवत, ज्ञानवान एवं अतिशय विरागी हैं।

तव संकल्प व्यर्थ नहि जाई । सरिहैं शंकर सविधि भलाई ॥
होनी होवै काल महीपा । देखिहौ विधि कर रचा समीपा ॥

अतः आपका संकल्प व्यर्थ नहीं जायेगा, भगवान भोले नाथ श्री शिव जी आपका सभी प्रकार से मंगल करेंगे। हे महाराज! भविष्य में जो भी होना निश्चित है कल वही होगा, आप उसे देखेगें ही, क्योंकि श्री ब्रह्माजी का बनाया विधान अब समीप ही है।

दो०–शयन करहु गृह जाइ अब, सब विधि चिन्ता त्याग ।
ईश चहैं सोई करैं, अन्य उपाय न लाग ॥२६६॥

अब आप सभी प्रकार की चिन्ताओं को छोड़ महल में जाकर शयन करें, क्योंकि परमात्मा जो चाहता है वही करता है उसमें अन्य कोई उपाय काम नहीं आता।

मुनिहिं वन्दि पुनि आयसु पाई । गयउ भवन कछु सोचत राई ॥
सहित कुमार कीन्ह मुनि शयना । जगे भोर दोउ राजिव नयना ॥

मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के वचनों को सुन, उनकी चरण वन्दना कर तथा आज्ञा प्राप्तकर श्री जनक जी महाराज कुछ विचार करते हुए अपने महल को चले गये। तदुपरान्त दोनों राजकुमारों श्री राम जी महाराज व लक्ष्मण कुमार जी के सहित श्री विश्वामित्र जी ने शयन किया और बहुत सबेरे ही कमल के समान नेत्र वाले दोनों भाई श्री राम जी महाराज व लक्ष्मण कुमार जी जग गये।

नित्य निबाहि आइ गुरु वन्दे । शुभ अशीष लहि भाव अनन्दे ॥
इतै जनक गुरुवरहिं बुलाये । याज्ञवल्क्य ज्ञानी मुनि आये ॥

नित्यकर्मो का निर्वाह कर दोनों भाई श्री गुरुदेव जी की वन्दना किये तथा भाव–भरी शुभ आशीष पाकर आनन्द में डूब गये। इधर श्री जनक जी महाराज ने निमिकुल गुरुदेव जी को बुलवाया और परम–ज्ञानी मुनिराज श्री याज्ञवल्क्य जी आ गये।

करि प्रणाम विधि पूजि नृपाला । कहेउ विनय युत वचन विशाला ॥
नाथ आज अन्तिम दिन आवा । अब लगि सत मन काम न पावा ॥

श्री महाराज जनक जी ने निमिकुल आचार्य को प्रणाम कर उनका सविधि पूजन किया तथा विनय पूर्वक वचनों से बोले– हे नाथ! आज धनुष–यज्ञ का अन्तिम दिन आ गया परन्तु अभी तक मेरी सच्ची मनोभिलाषा पूर्ण नहीं हुई।

नृपति सहस्त्रन आइ पधारे । बैठे मनहिं आस अति धारे ॥
देखन हेतु यज्ञ फल भारी । आये रंग भूमि नर नारी ॥

यद्यपि हजारों राजागण आकर पधार चुके हैं और वे अपने मन में शिव–धनुष तोड़ने की तीव्र लालसा लगाये हुए बैठे हैं तथा रंगभूमि में धनुष–यज्ञ के महान परिणाम को देखने के लिए बहुत से स्त्री–पुरुष भी आये हुए हैं।

दो०– देश विदेशहिं ते प्रजा, आई आज विशेष ।
समय भयो अतिशय निकट, पूरण यज्ञ द्विजेश ॥२६७॥

हे द्विजश्रेष्ठ! पुनः आज तो देश–विदेशों से विशेष ही प्रजा आयी हुई है और यज्ञ पूर्णाहुति का समय भी अत्यन्त समीप है।–––

कौशिक मुनि युत राज कुमारा । अब लौ नाथ नहीं पगु धारा ॥
कृपा कोर मोहिं राउर देखी । लाय लिवावैं उन्हें विशेषी ॥

–––परन्तु हे नाथ! राजकुमारों के साथ श्री विश्वामित्र जी अभी तक नहीं पधारे हैं। आप मुझ पर अपनी कृपा दृष्टि का निक्षेप करते हुए विशेषतया उन्हें लिवा लाने की कृपा करें।

आयो आशिष कर दिन आजा । करहिं मोहिं प्रभु पूरण काजा ॥
याज्ञबल्क मन महँ मुसकाई । बोले लावौं अबहिं लिवाई ॥

आज आपके आशीर्वाद का दिन आ गया है अतः आप मुझे पूर्ण–काम कर दें। श्री महाराज जनक जी की प्रार्थना श्रवण कर श्री याज्ञबल्क्य जी मन में मुस्कराते हुए बोले– हे राजन! मैं अभी ही उन्हें लिवाये ला रहा हूँ।

अस कहि चले चतुर मुनिराया । पहुँचे कौशिक पहँ अतुराया ॥
मिले परस्पर युगल मुनीशा । एक एक कहँ नावहिं शीशा ॥

ऐसा कहकर, परम चतुर मुनिराज श्रीयाज्ञवल्क्यजी चल पड़े तथा आतुरता पूर्वक श्री विश्वामित्र जी के समीप पहुँच गये। दोनो मुनिराज श्री विश्वामित्र जी व श्री याज्ञवल्क्य जी एक दूसरे से गले मिले पुनः एक दूसरे को दण्डवत प्रणाम किये।

हिलमिलि दोउ पुनि आसन राजे । मनहुँ दिवाकर युग तहँ भ्राजे ॥
कीन्ह दण्डवत रघुवर श्यामा । सहित लखन भलभाव ललामा ॥
आशिष दीन्ह मुनिहुँ हरषाई । पेखि प्रभुहिं पुलकावलि छाई ॥

पुनः परस्पर भेंटकर दोनों मुनिवर श्री याज्ञवल्क्य जी व श्री विश्वामित्र जी आसनों में विराज गये मानों वहाँ पर दो सूर्य सुशोभित हो रहे हों। अनन्तर रघुकुल श्रेष्ठ श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज ने श्रीलक्ष्मण कुमार सहित उन्हें सुन्दर भावपूर्वक दण्डवत प्रणाम किया। मुनिराज श्री याज्ञवल्क्य जी ने हृदय से हर्षित होकर उन्हें आशीर्वाद दिया तथा प्रभु श्रीरामजी महाराज को देखकर उनके शरीर में पुलकावली सी छा गयी।

दो०–प्रेम मगन कछु काल मुनि, बहुरि सुधीरज लीन्ह ।
कहेउ कौशिकहिं लहि बिलग, बात बिविध बिधि चीन्ह ॥२६८॥

मुनिवर श्री याज्ञवल्क्य जी कुछ समय तक प्रेम में डूबे रहे पुनः धैर्य धारण कर, श्री राम जी महाराज को पहचान, श्री विश्वामित्र जी को अलग ले जाकर विभिन्न प्रकार की बातें किये।

याज्ञवल्क कह जनक भुआरा । बोलि पठायो सहित कुमारा ॥
रंग भूमि महँ भूप समाजा । बैठी आज होन कृत काजा ॥

श्री याज्ञवल्क्य जी ने कहा– आपको राजकुमारों सहित श्री जनक जी महाराज ने बुला भेजा है तथा रंगभूमि में राजाओं के समाज भी आज कृत–कृत्य होने हेतु बैठे हुये हैं।

राउर हाथ यज्ञ परिणामा । सुर नर मुनिन्ह देन विश्रामा ॥
कौशिक कहा आप योगीशा । राम तत्व जानहिं हृदि दीशा ॥

पुनः देवता, मनुष्य और मुनियों को परम विश्रान्ति प्रदान करने वाले इस यज्ञ का परिणाम भी आपके हाथ है। श्री याज्ञबल्क्य जी के वचन श्रवणकर श्री विश्वामित्र जी ने कहा– आप तो योगियों के भी भूप तथा श्री राम तत्व का हृदय में दर्शन कर ज्ञान रखने वाले हैं।

राम कवन केहिं कारण आये । करहिं काह सब ज्ञान सुभाये ॥
जानहुँ तीन काल सब ज्ञाना । रावरि कृपा विदेह महाना ॥

श्री राम जी महाराज कौन हैं? किस कारण यहाँ आये हैं तथा क्या करेंगे? इन सभी बातों का आपको स्वाभाविक ही ज्ञान है। आपको तो तीनों कालों का भी सम्पूर्ण ज्ञान है तथा आपकी महान कृपा से श्री विदेहराज जी को भी सम्पूर्ण ज्ञान हो गया है।

राम लखन सह मुनिन बुलाई । कौशिक कहेव हृदय हर्षाई ॥
रंग भूमि पधरावन हेतू । आये मुनिवर कृपा निकेतू ॥

तदुपरान्त श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार सहित सभी मुनियों को बुलाकर श्री विश्वामित्र जी ने हृदय में हर्षित होकर कहा– कृपा के आगार ये मुनि श्रेष्ठ श्री याज्ञवल्क्य जी, हम सभी को रंग–भूमि में विराजने हेतु बुलाने आये हुए हैं।

दो०–सीय स्वयंवर लखन हित, चलहिं राम हर्षाय ।
सीय विजय कीरति मिलन, लखैं पात्र तहँ जाय ॥२६९॥

अतएव, हे श्री राम जी! जनक नन्दिनी श्रीसीताजी के स्वयंवर को देखने के लिए हर्षित होकर

चलिये, वहाँ जाकर श्री सीताजी की विजय रूपी कीर्ति प्राप्त करने वाले पात्र का अवलोकन करें।———

ईश कृपा को पाय सुजाना। होइहि सब विधि भाग्य प्रधाना॥
सुनत सभा सह लखन कुमारा। बोले वचन प्रभाव बिचारा॥

———वह कौन सुजान है जो परमात्मा की कृपा को प्राप्त कर सभी प्रकार से सौभाग्य प्रमुख होगा? तब सम्पूर्ण सभा सहित श्री लखन लाल जी ने श्री विश्वामित्र जी की बातें सुन व उनके प्रभाव को स्मरण कर कहा———

रावरि कृपा जाहि पर होई। कीर्ति विजय पाइय प्रभु सोई॥
याज्ञवल्क तब उठेव प्रवीना। राम लखन कौशिक सँग लीना॥

———हे नाथ! जिस पर आपकी कृपा होगी वही इस कीर्ति व विजय को प्राप्त कर सकता है। तदुपरान्त परम दक्ष श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज उठ पड़े और श्री विश्वामित्र जी, श्रीरामजी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार को साथ लेकर ———

रथ चढ़ि चले सकल हर्षाया। जय जय शब्द तहाँ शुभ छाया॥
वरषि सुमन दुन्दुभी बजाई। हरषी सकल सुरन्ह समुदाई॥

——————सभी लोग रथ में चढ़कर हर्ष पूर्वक चल दिये, वहाँ जय–जय की शुभ ध्वनि छा गयी, पुष्पों की वरषा कर देवताओं ने दुन्दुभी बजायी तथा समाज सहित हर्षित हुए।

होहिं सगुन शुभ सुखद अनेका। सुखी होहिं सब करत विवेका॥
जात राम कौशिक मुनि संगा। पंच शब्द धुनि होत अभंगा॥

ससमाज श्री विश्वामित्र जी के चलते ही अनेक प्रकार के सुखदायी व शुभ सगुन होने लगे, जिनका ज्ञान करते हुए सभी सुखी हो रहे थे। इस प्रकार श्री राम जी महाराज मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के साथ चले जा रहे थे तथा वहाँ अखण्ड पंच–ध्वनि (जय ध्वनि, बन्दी ध्वनि, वेद ध्वनि, मंगल गीत ध्वनि, व निसान ध्वनि) हो रही थी।

दो०–राम लखन दोउ बन्धुवर, रंग भूमि कहँ जात।
सुनि सुनि पुर वासी सकल, चले लखन अतुरात॥२७०॥

अयोध्या चक्रवर्ती कुमार श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार दोनों सुन्दर भाई रंग–भूमि जा रहे हैं। यह समाचार सुन–सुनकर सभी पुरवासी आतुर हो उनके दर्शन के लिए चल पड़े।

सबहिं प्रकार छोड़ि गृह काजा। चली सकल नर नारि समाजा॥
बालक बृद्ध जरठ समुदाया। रस रस चले हृदय हर्षाया॥

अपने घर के सभी प्रकार के कार्यो को छोड़कर पुरुष–स्त्रियों का सम्पूर्ण समुदाय चल पड़ा पुनः बालक, वृद्ध व प्रौढ़ समाज भी हृदय में हर्षित हो श्री राम जी के दर्शन हेतु धीरे–धीरे चल दिया।

चले ध्यान तजि तुरतहिं ध्यानी। ब्रह्मानंदहि तजि विज्ञानी॥
योग निरत तजि योग समाधी। चले सुकर्मठ मानि उपाधी॥

ध्यानी–जन शीघ्र ही ध्यान करना छोड़कर चल दिये, विज्ञानी जन ब्रह्मानन्द को त्याग कर चल पड़े, योग में आरूढ़ योगी–जन अपनी योग–समाधियों को छोड़ तथा कर्म–वादी अपने कर्मों को व्यवधान समझ, त्याग कर श्री राम जी महाराज के दर्शन को चल दिये।

तप बिहाय तपसी सब धाये। देखन राम लखन लव लाये॥
भजनी भजन करत हर्षाई। चले इष्ट दर्शन सुखछाई॥

सभी तपस्वी–जन अपनी अपनी तपस्याओं को छोड़कर, प्रेम में डूबे हुये श्रीरामजी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार को देखने के लिए दौड़ पड़े परन्तु भजन करने वाले भक्त–जन भजन करते हुए हर्ष पूर्वक सुख में समाये अपने इष्टदेव प्रभु का दर्शन करने चले।

भोजन त्यागि पुरुष सब धावहिं। परसत नारि थाल धरि जावहिं॥
शिशुहिं पियावत पयद सुमाता। तजि तजि चली सुहर्षि सगाता॥
ईश कृपा बालक सचुपाये। सोये सुख नहि मरम लखाये॥

भोजन करते हुये पुरुष भोजन करान छोड़कर दौड़ पड़े, भोजन परोसती हुई स्त्रियाँ थाल रखकर चल दीं व छोटे बालकों को दूध पिलाती हुई मातायें दूध पिलाना छोड़ हर्षित होकर साथ–साथ चल पड़ीं। भगवान की कृपा से वे बालक भी चुप होकर सुख पूर्वक सो गये, इस रहस्य को कोई नहीं समझ सके।

दो०– करत सिंगारहिं छोड़ि तिय, भूषण वसन बिसार।
अति आतुर निरखन चली, दशरथ नृपति कुमार॥२७१॥

श्रृंगार करती हुई युवतियाँ श्रृंगार करना छोड़ आभूषणों तथा वस्त्रों को भूलकर अत्यधिक आतुर हो चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज के कुमारों को देखने के लिए चल दीं।

छं०– निज गोद बालक तुच्छ तजि, मन हरण दरशन हित चली।
सरिता किलोलति बीचि उछ्लति, मनहुँ चल उदधिहिं भली॥
नर नारि धावत संग तजि, कछु गिरत महि हरबर गली।
धनि प्रेम हर्षण रंग रस, जग दुख दुराशा दलमली॥

अपने गोद के बालकों को तुच्छ समझ, मिथिलापुरी की स्त्रियाँ उन्हें छोड़कर मन हरण रघुनन्दन के दर्शन के लिए उसी प्रकार चल दीं जैसे नदियाँ किलोल करती व लहरें उछालती हुई सागर से भली प्रकार मिलने जा रही हों। परम प्रभु श्री राम जी महाराज के दर्शन के लिये पुरुष–स्त्रियाँ एक दूसरे का साथ छोड़कर दौड़ रहे हैं तथा शीघ्रता वश रास्ते में गिर पड़ते हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्रीरामहर्षण दासजी महाराज कहते हैं कि उन सभी का प्रेम और आनन्द धन्यातिधन्य है जिसका दर्शन कर संसार के सभी दुख और दुराशाएँ नष्ट हो गयी हैं।

सेठ महाजन द्रब्यहिं त्यागी। चले लखन उमगत अनुरागी॥
कहँ लौ कहौं सुनहु हनुमाना। जड़ चेतन सब प्रेम समाना॥

श्री मिथिलापुरी के वणिक तथा व्यापारी वर्ग धन का लोभ छोड़कर अनुराग पूर्वक उमगते हुए प्रभु दर्शन को चले। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा—हे श्री हनुमान जी! सुनिये, मैं कहाँ तक कहूँ? उस समय सभी जड़ तथा चेतन जीव प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेम में डूब गये थे।

महा भीर लखि कर्म सुचारी। सभा प्रबन्धक ज्ञान अपारी॥
भाव समन्वित सबहिं बिठाये। वचन सप्रेम सुनाय सुभाये॥

वहाँ महान भीड़ देख, सुन्दर कर्मचारियों तथा असीम ज्ञानवान सभा प्रबन्धकों ने भाव में भरकर प्रेम पूर्वक सुन्दर स्वाभाविक वचनों से निवेदन कर सभी को यथेचित आसनों में बैठा दिया।

पाय सुआसन निज निज लोगू। वर्ण धर्म आश्रम के योगू॥
बैठे शान्त सकल नर नारी। हृदय राम दर्शन रुचि भारी॥

अपने वर्ण, धर्म व आश्रम के अनुरूप आसन पाकर सभी स्त्री—पुरुष शान्त हो श्रीरामजी महाराज के दर्शन की तीव्रतर इच्छा लिये हुए बैठ गये।

तेहिं अवसर रघुवीर कृपाला। आये कौशिक सह मखशाला॥
जनक आइ आगै ह्वै लीने। रथहिं उतारे रामहिं भीने॥
मुनिहिं दण्डवत कीन्ह भुआरा। लहि आशिष बहु भयो सुखारा॥

उसी समय परम कृपालु श्रीरामजी महाराज श्रीविश्वामित्रजी सहित यज्ञशाला में आये। श्रीजनकजी महाराज आगे आकर भाव में भर श्रीरामजी महाराज को रथ से उतार लिये। पुनः श्रीजनकजी महाराज ने सभी मुनियों को दण्डवत किया तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर अत्यन्त सुखी हुए।

दो०—सबहिं प्रवेशेउ हरषि नृप, धनुष यज्ञ थल माहिं।
राम लखन मधु माधुरी, को कवि वरणि सिराहिं॥२७२॥

मिथिला महाराज श्री जनक जी ने श्री विश्वामित्र जी सहित सभी को हर्षपूर्वक धनुष यज्ञ स्थली में प्रवेश कराया। उस समय श्री राम जी महाराज व श्री लखन लाल जी के अनुपमेय सौन्दर्य का कौन कवि वर्णन कर सकता है अर्थात् वह सौन्दर्य अवर्णनीय था।

नख शिख सुभग सरस दोउ भ्राता। श्याम गौर रसमय सुखदाता॥
क्रीट मुकुट शिर कुण्डल काना। तिलक ललाट मधुर द्युतिवाना॥

वे दोनों भाई श्री राम जी महाराज व श्री लखन लाल जी नख से शिखा पर्यन्त सुन्दर व रस से परिपूर्ण, श्याम गौर वर्ण से युक्त, रस स्वरूप तथा सुख प्रदान करने वाले थे। उनके सिर में क्रीट मुकुट, कानों में कुण्डल तथा ललाट में मधुर व दैदीप्यमान तिलक सुशोभित था।

भृकुटि दृगन देखत मन लोभा। चितवन चारु नास शुक शोभा॥
आनन अमल मदन मन हारी। कलित कपोल हँसनि सुख सारी॥

उनकी भौहें तथा आँखों को देखते ही सभी का मन लुभा जाता था, उनकी चितवनि अतिशय सुन्दर व शुकाकार नासिका अतीव सुशोभित हो रही थी। उनका निर्मल मुख–मण्डल कामदेव के मन का अपहरण करने वाला, कपोल अतिशय कमनीय तथा विहँसनि तो सुखों की सार ही थी।

केहरि कंधर बाहु अजानू । भूषण भूषित बलहु महानू ॥
बाम धनुष दक्षिण कर बाना । चलेउ जितन जनु काम महाना ॥

उनके कंधे सिंह के समान, बाहें घुटनों तक लम्बी, आभूषणों से भूषित तथा महान बलशालिनी थीं। वे बायें हाथ में धनुष तथा दाहिने हाथ में बाण लिये ऐसे चल रहे थे जैसे परम सौन्दर्य सार कामदेव को जीतने के लिए चल रहे हों।

केकि कण्ठ आयत उर भ्राजा । मणिन हार अरु तुलसि बिराजा ॥
केहरि कटि भलि ठवनि सुहाई । कसि तूणीर चलत रघुराई ॥

उनकी ग्रीवा मोर के समान व विशाल वक्षस्थल मणियों व तुलसी के हारों से सुशोभित था, उनकी सिंह के समान सुन्दर कमर तथा उठने बैठने की कला अत्यन्त सुन्दर थी तथा वे रघुकुल नन्दन तरकस कसे हुए चल रहे थे।

दो०–पीत वसन भ्राजत तनहिं, दम दम द्योति विशाल ।
कण्ठ जानु लौं अति लसै, दिवि बैजन्ती माल ॥२७३॥

उन राजकुमारों के शरीर में पीले वस्त्र सुशोभित हो रहे थे जिनसे चमकती हुई महान ज्योति निकल रही थी तथा गले में घुटनों तक झूलती हुई दिव्य वैजन्ती माला अत्यन्त सुशोभित हो रही थी।

चरण सुभग सरसीरुह शोभा । काक शम्भु उर घरे प्रलोभा ॥
देखि राम सब सभा सुखारी । पायेउ सरवस मनहुँ दुखारी ॥

उनके चरण सुन्दर कमल की शोभा से युक्त थे जिन्हें श्री कागभुसुण्डि जी व श्रीशंकरजी लुभाये हुए अपने हृदय में धारण किये रहते हैं। श्री राम जी महाराज को देखकर सम्पूर्ण सभा उसी प्रकार सुखी हो गयी मानों दुखी व्यक्ति ने सर्वस्व प्राप्त कर लिया हो।

जा विधि भाव जासु जिय माहीं । ते तस देखेउ रघुपति काहीं ॥
देखहिं मल्ल वीर बलवाना । बज्र देहधर अहहिं महाना ॥

उस समय जिनके हृदय में जिस प्रकार का भाव था उसने उसी प्रकार से श्रीरामजी महाराज का दर्शन किया था। रंगभूमि में उपस्थित पहलवान लोग उन्हें बज्रवत देह–धारी अत्यन्त बलशाली वीर के रूप में देख रहे थे।

नृप वर वेश असुर जे आये। रामहिं लखैं काल के भाये ॥
रहे वीर वर जे नर भूपा । देखे रुद्र सँहारन रूपा ॥

वहाँ राजाओं के वेश में जो राक्षस आये हुए थे वे श्रीरामजी महाराज को काल के भाव से देख रहे थे तथा जो वीर राजा–गण थे उन्होंने श्रीरामजी महाराज को श्री शिव जी के संहारकारी रूद्र रूप में देखा था।

नारि विलोकहिं स्मर जैसा । मूर्तिमान श्रृंगार अभैसा ॥
पुर नर लखैं राम रस रूपा । कोटि मदन मन मोह अनूपा ॥

श्री जनक पुरी की स्त्रियाँ श्री राम जी महाराज को परम सुशोभन श्रृंगार की साक्षात प्रतिमा कामदेव के समान के समान देख रही थीं। श्री मिथिलापुरी के पुरुष श्रीरामजी महाराज को रस स्वरूप तथा करोड़ों कामदेव के मन को मोहित करने वाले अनुपमेय रूप में देख रहे थे।

दो०–विदुष विलोकहिं राम कहँ, विश्व विराट स्वरूप ।
मुख शिर दृक कर पग अमित, वरणि न जाय अनूप ॥२७४॥

विद्वज्जन श्री राम जी महाराज को असीमित मुख, शिर, आँख, हाथ व पैर वाले अनुपमेय संसार के विराट स्वरूप में देख रहे थे जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

योगिन लखे एक रस रामा । आत्म परम सुख सत चिद धामा ॥
वेद वेद्य देखहिं वेदान्ती । राम निरख सुख लहैं सुशान्ती ॥

योगीजनों ने श्रीरामजी महाराज को एक–रस, सच्चिदानन्दमय, परमानन्द आत्म स्वरूप में देखा तथा वेदान्ती जन श्रीरामजी महाराज को वेदों में प्रतिपाद्य रूप में देखते हुए सुन्दर शान्ति का सुख प्राप्त कर रहे थे।

निरखहिं भक्त प्राण प्रिय प्रीती । इष्ट देव करि हिये प्रतीती ॥
जे निमिवंशी नर अरु नारी । देखि स्वजन सम होहिं सुखारी ॥

भक्तजन अपने हृदय में पूर्ण विश्वास किये हुए उन्हें प्रीति पूर्वक प्राणों से प्रिय इष्टदेव के रूप में देख रहे थे तथा श्री निमिवंश के जो भी पुरुष–स्त्री वहाँ थे वे श्री राम जी महाराज को स्वजन के समान देखकर सुखी हो रहे थे।

सखन सहित श्री जनक कुमारा । मानि भाम लखि होत सुखारा ॥
सिद्धि कुँअरि सह सखिन सुजोई । होहिं सुखी गुनि निज ननदोई ॥

अपने सखाओं सहित जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी श्रीरामजी महाराज को अपना बहनोई मानकर देखते हुए सुखी हो रहे थे तथा श्री सिद्धि कुँवरिजी अपनी सखियों सहित उन्हें अपना ननदोई समझ, देख देखकर सुखी हो रही थीं।

दम्पति श्री महाराज विदेहू । लखहिं राम कन्यापति नेहू ॥
जनकलली सह सखिन विलोकति । उर अनुराग लजाय सुरोकति ॥
महाभाव रस रूप किशोरी । लखि रामहिं सुख सिन्धु हिलोरी ॥

श्री विदेहराजजी महाराज अपनी महारानी श्री सुनयनाजी सहित प्रेम में पगे हुए श्रीरामजी महाराज को जँवाई (दामाद) के रूप में देख रहे थे व सखियों सहित जनक दुलारी श्री सीताजी श्री राम जी महाराज को देखती हुई लज्जित होकर अपने हृदय के प्रेम को रोक रही थीं। प्रेम की अति उच्चतम अवस्था महाभाव में पगी हुई रस स्वरूपा जनक किशोरी श्री सीताजी श्री राम जी महाराज को देखकर सुख के सागर में हिलोरें ले रही थीं।

दो०—शारद शेष गणेश कवि, शिव विधि वेद पुरान ।
सिय हिय प्रेम सुभाव सुख, करि न सकत कछु गान ॥२७५॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि—श्री सरस्वतीजी, श्री शेष जी, श्रीगणेशजी, आदि—कवि श्री वाल्मीकि जी, श्री शिवजी, श्री ब्रह्माजी तथा वेद—पुराण आदि सभी मिलकर भी श्री सीता जी के हृदय के प्रेम, सुन्दर भाव तथा सुख का किंचित भी गान नहीं कर सकते।

अनुभव करति नेह सुख सीता । सोउ कहै नहिं आत्म सुप्रीता ॥
यहिं विधि निज निज भाव समाना । देखे रामहिं सकल सुजाना ॥

उस प्रेम व सुख का श्री सीता जी अनुभव तो करती थीं परन्तु उस सुन्दर आत्मवत प्रीति का वे भी बखान नहीं कर सकतीं। इस प्रकार अपने—अपने भावों के अनुसार सभी ने श्री राम जी महाराज का दर्शन किया।

भूप कौशिकहिं कहि दिखराई। रचना रंग भूमि रस छाई ॥
देखत सुनत मुनिहुँ सुख मानी । नृपहुँ भाग आपन बड़ जानी ॥

पुनः श्री जनकजी महाराज ने श्री विश्वामित्र जी को वखान करते हुए रंगभूमि की रसमयी रचना दिखाई जिसे देख व सुनकर मुनिराज श्री विश्वामित्र जी ने भी सुख प्राप्त किया तथा श्री जनक जी महाराज ने अपना सौभाग्य समझा।

मुनिहिं लिवाय चलेव पुनि राजा । बैठी जहँ बहु नृपन समाजा ॥
मुनिवर सहित राम कहँ देखी । उठे सकल नृप प्रीति विशेषी ॥

पुनः श्री जनक जी महाराज श्री विश्वामित्र जी को संगभूमि के उस भाग में चले जहाँ बहुत से राजाओं का समाज उपस्थित था, अनन्तर मुनिवर श्री विश्वामित्र जी सहित श्री राम जी महाराज को देखकर सभी राजागण विशेष—प्रीति पूर्वक उठ खड़े हुए————

हाथ जोरि सब शीष नवाये । परम प्रतापी जानि सुभाये ॥
मध्य सबन्ह सिंहासन सोहा । तेज पुञ्ज बहु बर्ध विमोहा ॥

————तथा स्वाभाविक ही सबने श्री राम जी महाराज को महान प्रतापवान समझ, हाथ जोड़कर शिर झुकाया। वहाँ सभी राजाओं के बीच एक सुन्दर तेजयुक्त, विशाल तथा विमोहनकारी सिंहासन सुशोभित था————

रत्न जटित अति दिव्य बनावा । रत्न वेदिका बीच धरावा ॥
तहाँ सजाव बहुत विधि तेरे । परम विचित्र मनहिं हर हेरे ॥

———जो रत्नजटित अत्यन्त दिव्य बना हुआ रत्न वेदिका के बीच रखा हुआ था वह परम विलक्षण विविध प्रकार की साज सज्जा से सुशोभित और देखने मात्र से मन को हरण कर लेने वाला था। ———

दो०—राम लखन दोउ बन्धुवर, सह कौशिक नरपाल ।
हर्ष विठायेउ भाव भरि, चमर ढुरैं निमि लाल ॥२७६॥

उस दिव्य सिंहासन में श्री जनक जी महाराज नें श्री विश्वामित्र जी सहित दोनों भाइयों श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार को भाव में भर हर्ष प्रपूरित हो बैठा दिया तथा निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी उन पर चवँर चलाने लगे।

मास पारायण पाँचवा विश्राम

सुखहिं विराजत कौशिक ज्ञानी । सहित राम लछिमन धनु पानी ॥
करि सतकार कुँअर अरु राजा । देखन अन्य गये रँग काजा ॥

उस सुशोभन सिंहासन में परम ज्ञानवान मुनि श्री विश्वामित्र जी व धनुष–बाण हाथों में लिये हुए श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार सहित सुख पूर्वक विराज गये तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री जनक जी महाराज उनका यथोचित सत्कार कर रंगभूमि के अन्य कार्यो के निर्देशन हेतु चले गये।

रामहिं निरखि नृपति सब हरषे । लोचन लाह लहे सुख सरसे ॥
साधु असाधु न परहिं जनाई । सबहिं राम पर प्रेम महाई ॥

श्रीरामजी महाराज को देखकर सभी राजागण हर्षित हुए मानों सुख में सरसाये हुए अपने नेत्रों का परम लाभ प्राप्त कर लिये हो। उन राजाओं में कौन साधु तथा कौन असाधु स्वभाव वाले हैं, समझ नहीं आ रहा था, उन सभी का श्रीरामजी महाराज के प्रति महान प्रेम था।

तेज प्रताप रूप बल अयना । देखि प्रभुहिं माने चित चयना ॥
ताटक सह मारीच सुबाहू । हते राम निशिचर बल बाहू ॥

तेज, प्रताप, सौन्दर्य और बल के धाम प्रभु श्रीरामजी महाराज को देखकर सभी ने अपने चित्त में आनन्द प्राप्त किया। श्रीरामजी महाराज ने ताड़का सहित मारीच और सुबाहु आदि राक्षसों का अपनी भुजाओं के बल से संहार किया है।

गौतम तिय गति कथा सुहाई । सुनि सब गुने ईश रघुराई ॥
कौशिक कृपा देखि तिन्ह ऊपर । जान लिये नहि इन सम भूपर ॥

गौतम पत्नी श्री अहल्याजी के उद्धार की अत्यन्त सुन्दर कथा सुन कर सभी ने श्रीरामजी महाराज को परमात्मा समझ लिया तथा कौशिक मुनि श्रीविश्वामित्र जी की इनके ऊपर कृपा देखकर सबने समझ लिया कि इनके समान इस पृथ्वी–मण्डल में कोई भी नहीं है।

दो०—अस प्रतीति सबके हृदय, राम कुँवर घनश्याम ।
तोरि शम्भु धनु सिय वरहिं, इहै यज्ञ परिणाम ॥२७७॥

उस समय सभी के हृदय में ऐसी प्रतीति हो रही थी कि मेघ समान श्याम वर्ण वपुष राजकुमार श्री राम जी महाराज ही श्री शिव जी के धनुष का भंजन कर श्रीसीताजी का वरण करेंगे, इस धनुष

यज्ञ का यही परिणाम होगा।

शंकर मानस विहरन वारे । जिन महँ रमहिं योगि जन सारे ॥
वेद वेद्य प्रभु ब्रह्म अखण्डा । कालहुँ काल वीर बरवण्डा ॥

ये राज कुमार श्री राम जी तो भगवान श्री शंकर जी के हृदय में विहार करने वाले, जिनमें सभी योगीजन रमे रहते हैं ऐसे वेदों के प्रतिपाद्य, सबके स्वामी, अखण्ड, पूर्णतम परब्रह्म, काल के भी काल तथा श्रेष्ठ वीर हैं।

विश्व रूप व्यापक रघुराई । घट घट वसहिं सबहिं सुखदाई ॥
आदि शक्ति जग कारण सीता । रचहिं छनक महँ अण्ड अमीता ॥

श्रीरामजी महाराज संसार–स्वरूप, सर्वत्र–व्यापक, प्रत्येक घट–घट के निवासी व सभी को सुख प्रदान करने वाले हैं तथा जनक दुलारी श्रीसीताजी परमाद्याशक्ति, संसार की कारण भूता तथा एक ही क्षण में असीमित ब्रह्माण्डों की रचना कर देने की सामर्थ्य से युक्त हैं।

राम प्रिया संतत वैदेही । सीता वल्लभ राम सनेही ॥
श्रवण किये रामायण पावन । बहुत भाँति मुनि मुखहिं सुहावन ॥

श्री विदेहराज तनया सीताजी श्रीरामजी महाराज की शाश्वत प्रिया हैं तथा श्रीरामजी महाराज ही उनके प्राण–पति एवं परम प्रिय है। ऐसा हमने पवित्र रामायणों में बहुत प्रकार से सुन्दर मुनियों के मुख से श्रवण किया है।

प्रति युग प्रति प्रति कलपन माहीं । राम वरी सिय संशय नाहीं ॥
सदा शम्भु धनु रामहिं भंजा । परसि मनोहर निज कर कंजा ॥

–प्रत्येक कल्प के प्रत्येक त्रेता युग में श्रीसीताजी का वरण श्रीरामजी महाराज ने ही किया है इसमें सन्देह नहीं है तथा श्रीरामजी महाराज ने अपने मनोहारी कर कमलों से स्पर्श कर सदैव ही भगवान श्रीशंकरजी के धनुष का खण्डन किया है।–––

दो०– जनक लड़ैती सीय शुचि, निज कर कमल रसाल ।
राम गले पहिरावती, सदा दिव्य जय माल ॥२७८॥

–––श्री जनक जी महाराज की लाड़िली पुत्री पवित्र श्री सीता जी भी सदा ही अपने सरस कर कमलों से श्री राम जी महाराज के गले में दिव्य जय–माल पहनाती आयी हैं।

अवधपुरी मिथिला अभिरामा । जनमहिं राम सिया सुखधामा ॥
करहिं चरित्र अनेक प्रकारा । दम्पति मिलि प्रभु सत्य उदारा ॥

सुखों के धाम श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी सुन्दर श्री अयोध्या पुरी व श्री मिथिला पुरी में जन्म धारण करते हैं तथा पुनः दोनों मिलकर अनेकों प्रकार के सत्य व उदार चरित्र करते रहते हैं।

दशरथ जनक पिता नित होहीं । कौशिल मातु सुनैना सोहीं ॥
भरत लखन रिपुहन लघु भ्राता । सदा राम के होहिं विखाता ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज व श्री जनक जी महाराज नित्य ही इनके पिता तथा श्री कौशिल्या जी व श्री सुनैना जी माता बनकर सुशोभित होती हैं। श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण जी तथा श्री शत्रुघ्न जी सदैव ही श्रीरामजी महाराज के विख्यात अनुज होते आये हैं।

लक्ष्मीनिधि प्रिय भ्रात सिया के। होहिं सतत प्रभु प्रेम धिया के॥
सरयू कमला सरित सुहानी। बहतीं युग पुर महिम महानी॥

भगवत्प्रेम स्वरूप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सदैव ही श्री सीता जी के प्रिय भइया होते हैं। श्री सरयू व श्री कमला जी आदि महान महिमा मण्डित सुहावनी सरितायें सदैव ही दोनों पुरियों (श्रीअयोध्या व श्रीमिथिला) में प्रवाहित होती रहती हैं।

सो प्रसंग सब मिलै अनूपा। यथा रामायण बीच निरूपा॥
जगत पिता रसिकेश्वर रामा। जगत जननि शुचि सीय स्वधामा॥

यहाँ भी वह सभी अनुपमेय प्रसंग प्राप्त हो रहा है जैसा श्री रामायण में वर्णन किया हुआ है। अतएव रसिकों के ईश्वर श्री राम जी महाराज संसार के पिता तथा परम पद–स्वरूप पवित्र श्री सीता जी सम्पूर्ण संसार की जननी हैं।

दो०–सत्य सत्य पुनि सत अहै, प्रभु प्रेरित वर बात।
सब समर्थ विभु बैठि हिय, देत प्रकाश लखात॥२७९॥

हमारी यह वार्ता भगवद् प्रेरणा से त्रिवाचा सत्य है क्योंकि सर्व सामर्थ्यवान ईश्वर ही हमारे हृदय में बैठकर ऐसा ज्ञानालोक दिखा रहे हैं।

अस बिचारि सिगरे नर नाहा। भरे भाव मन महा उछाहा॥
सबहिं किये प्रण मुद मन माहीं। मातु पिता सिय रघुवर आहीं॥

ऐसा बिचार कर सभी राजाओं ने भाव प्रपूरित हो, उत्साहपूर्वक प्रसन्न मना अपने मन में महान संकल्प किया श्री सीता जी व श्री राम जी महाराज हमारे माता–पिता हैं–––

तोरब धनुष बात मन आनत। होइहिं पाप परम सत जानत॥
मातहिं यथा नारि कहिं भाषै। होय दोष तिमि नरकन राखै॥

–––अतएव शिव–धनुष तोड़ने की बात मन में लाने पर भी महान पाप लगेगा, यह सत्य बात हम जानते हैं। माता को अपनी पत्नी कहने से जो दोष होता है वही दोष हमें यह बात मन में लाने पर होगा तथा नरक भी हमें आश्रय नहीं दे पायेगा।

सबहिं भाँति हिय भाव दृढ़ाई। चितवहिं राम जनन सुखदाई॥
मनहर सुन्दर श्याम सुरूपा। निरखहिं इकटक सब नर भूपा॥

इस प्रकार सभी राजागण अपने–अपने हृदय के भावों को दृढ़ कर जन–जन को सुख प्रदान करने वाले श्री राम जी महाराज का दर्शन करने लगे तथा उनके मनोहारी, सुन्दर, श्याम स्वरूप को अपलक नेत्रों से निहारने लगे।

राम लखन कहँ लोचन दोने । पीवत भरि भरि सुधा सलोने ॥
भये मगन रस रूप विलोकी । जिमि चकोर लखि चन्द्र विशोकी ॥

इस प्रकार वे समस्त राजागण श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार के रूपामृत का अपने नेत्र प्यालों में भर–भर कर पान करने लगे तथा उनके रसमय स्वरूप को देख–देखकर वे ऐसे मग्न हो गये जैसे चन्द्रमा को देखकर चकोर सुखी हो जाता है।

दो०–प्रीति रीति सबकी लखत, सुखकर श्याम सुजान ।
कृपा विलोकन नृप गणन, वितरत मोद महान ॥२८०॥

परम सुखकारी, सर्वज्ञ, श्याम सुन्दर, श्री रामजी महाराज उस समय समस्त राजागणों की सुन्दर प्रीति–पद्धति को निहार रहे थे तथा अपनी कृपामयी दृष्टि से उन्हे महान आनन्द वितरित कर रहे थे।

छं०– प्रभु दृष्टिहिं पाई नृप हरषाई, लखत ललित भरि नयना ।
अति ह्यि अनुरागा भाव सुजागा, कहत बनै नहि बयना ॥
अस मन अभिलाषा शिव धनु नाशा, करहिं राम निज हाथा ।
मेलहिं सिय माला प्रभु सुख शाला, लखहिं विवाह सुगाथा ॥१॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज की कृपा–दृष्टि प्राप्तकर सभी राजागण हर्षित हो उनके सौन्दर्य को भर नेत्र निहारने लगे तथा उन सभी के ह्रदय में अत्यानुराग पूर्वक सुन्दर भाव जागृत हो गया, जिसे वाणी के द्वारा बखान नहीं किया जा सकता। उनके मन में ऐसी कामना हो रही थी कि श्री शिवजी के धनुष को श्री राम जी महाराज अपने हाथों से तोड़ डालें तथा परम सुकुमारी श्री सीता जी, सुखों के सार श्री राम जी महाराज के गले में जय–माला पहनावें और हम सभी वैवाहिक चरित्रों का दर्शन करें।

इक आसन राजैं, दम्पति भ्राजैं, छत्र चमर सखि ढारैं ।
वरषहिं सुर फूला, मंगल मूला, जय जय उच्च उचारैं ॥
निज कुँअरि प्रकाशी, करि सिय दासी, सेवन हितहिं समोदा ।
अरपैं भरि चयना, सियहि सुखैना, होय जननि धनि गोदा ॥२॥

दम्पति श्री सीताराम जी एक आसन में विराजकर शोभा संप्राप्त करें, सखियाँ छत्र व चमर चलाती रहें, देवता पुष्पों की वर्षा कर सभी मंगलों की मूल जय–जय की ध्वनि उच्च स्वर से करें और उस समय हम सभी राजागण आनन्दपूर्वक अपनी अपनी कन्याओं को श्रीसीताजी की सेवा हेतु, उनके सुख के लिए सेविकायें बनाकर अर्पित कर दें जिससे उनकी माताओं की कोंख भी धन्य हो जायेगी।

दो०–यहि विधि भरी उमंग महँ, सिगरी राज समाज ।
अधिक अधिक सुख रस सनी, देखि राम रस राज ॥१८१॥

इस प्रकार सम्पूर्ण राजाओं का समाज उत्साह में भरा हुआ रस–राज श्रीरामजी महाराज को देख–देखकर अधिकाधिक सुख और रस में सन गया था।

सोचहि सकल नृपति मन माहीं । आये यहाँ कीन्ह भल नाहीं ॥
चले चढ़ावन हित शिव चापा । ताते भयो परम परि पापा ॥

सभी राजागण अपने मन में विचार कर रहे थे कि यहाँ आकर हमने अच्छा नहीं किया तथा श्री शिव–धनुष को उठाने के लिए चले इससे तो हमारे द्वारा और भी महान पाप बन गया।

नरहरि राम केर प्रिय भागा । चहे लेन हम हुलसि अभागा ॥
सिंह भाग जस चाह श्रृगाला । तथा भयो हम सब कर हाला ॥

मनुष्यों में सिंह के समान श्री राम जी महाराज के प्रिय हिस्से को हम हत भागियों ने उत्साहित होकर लेना चाहा था, सिंह के हिस्से को जैसे कोई शियार लेने की इच्छा करे वैसे ही हम सभी की स्थिति हो गयी थी।

दारुण दोष तबहिं यह नाशी । कन्या देहिं सियहिं करि दासी ॥
नतरु घटै पातक अति भारी । निशि दिन तन मन धन सब जारी ।।

अतः यह भीषण दोष तभी नष्ट होगा जब हम दासियाँ बना कर श्रीसीताजी की सेवा में अपनी कन्यायें दे देंगे, नहीं तो हमें महान पाप लगेगा जो रात–दिन हमारे शरीर, मन व धन को जलाता रहेगा।

सोचत यहि विधि सकल भुआरा । बढ़ै सुकृत प्रिय प्रेम प्रसारा ॥
रहा न कोउ अस नृपति सभा महँ । जो न प्रेमवश पेख राम कहँ ॥

सभी राजागण इस प्रकार का बिचार करते हैं कि ऐसा करने से हमारे पुण्यों की वृद्धि तथा प्रिय प्रेम का प्रसार होगा। वहाँ राजाओं की सभा में ऐसा कोई भी शेष नहीं था जिसने प्रेम के वशीभूत होकर श्रीरामजी महाराज को न देखा हो।

दो०–सकल सभा के मन हरत, रघुवर राज किशोर ।
वपुष सितासित शुभ सुखद, विश्व विलोकि विभोर ॥२८२॥

उस समय किशोरावस्था वाले, रघुकुल श्रेष्ठ, राजकुमार श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार सम्पूर्ण सभा के मन का अपहरण कर रहे थे तथा उनके शुभ व सुखदायक श्याम गौर वर्ण को देख देख कर सम्पूर्ण संसार विभोर हो रहा था।

समय जानि जब जनक बुलाये । बन्दी विरद भनत तहँ आये ॥
कह विदेह मम प्रणहिं सुनाई । आजु अन्त दिन कहहु बुझाई ॥

अनन्तर श्री जनक जी महाराज ने जब समय को उपयुक्त समझा तब बन्दीजनों को बुलवाया और वे उनकी विरुदावली बखान करते हुए रंगस्थली में आ गये। उनके आने पर श्री विदेहराज जी महाराज ने कहा, ऐ बन्दीजनो! आप सभी को मेरी प्रतिज्ञा सुनाकर समझाते हुए कहो कि आज इस धनुषयज्ञ का अन्तिम दिन है।

सुनत बन्दि तुरतहिं चलि दीन्हें । नृप समाज बोलन चित कीन्हे ॥
सुनहु सकल नृप सभा मझारा । कहहुँ नृपति कर सत प्रण सारा ॥

श्री महाराज की आज्ञा सुनते ही बन्दीजन अपने मन में बोलने का बिचार कर राजाओं के समाज में शीघ्र ही चल दिये तथा बोले– सभा में उपस्थित सभी राजागण! सुनिये, हम श्री जनक जी महाराज की सत्य–प्रतिज्ञा को प्रकाशित कर रहे हैं।

शम्भु चाप बड़ गरुअ कठोरा । त्रिभुवन विदित महा वरजोरा ॥
रावण बाण वीर बहु आये । देखि चाप सब गवहिं सिधाये ॥

भगवान भोलेनाथ श्री शंकर जी का अत्यन्त भारी तथा कठोर यह "धनुष" जो अपनी विशालता के लिए तीनों लोकों में विख्यात है। जिसे तोड़ने के लिए रावण, बाणासुर व अन्य बहुत से वीरगण आये और इसे देखते ही अपने अपने राज्यों को चले गये।

तोरिहिं धनुष आजु जो राजा । सीय वरिहिं सो बनि कृत काजा ॥
विजय माल सीता पहिरावइ । कीर्ति विजय सो सब विधि पावइ ॥

उसी शिव–धनुष को जो राजा भंजन करेगा वही जनक दुलारी श्री सीता जी का वरण कर कृत–कृत्य हो जायेगा। श्री सीता जी उसे जयमाल पहनायेंगी तथा वह सभी प्रकार से यश व विजय को प्राप्त कर लेगा।

दो०–जानि जिये अन्तिम दिवस, मन महँ भरि उत्साह ।
यतन करहु खण्डन धनुष, सुनहु सकल नरनाह ॥२८३॥

अतः हे समस्त नृपति गण! सुनें, आज धनुषयज्ञ का अन्तिम दिन समझ, आप अपने मन में उत्साह भरकर इस श्री शिव धनुष को तोड़ने का उपाय करें।

बीते अवधि आज सब सुनहू । विफल प्रयास सबन्ह कर गुनहू ॥
सुभट सुरक्षित रतन अटारी । बैठि सिंहासन सिय सुकुमारी ॥

क्योंकि, प्रतिज्ञा की समय–सीमा समाप्त होते ही आप सभी का प्रयास निष्फल होगा, यह बात सभी लोग सुनकर समझ लें। वीरों से सुरक्षित उस रत्न अट्टालिका में परम सुकुमारी श्री सीता जी सिंहासन में विराजी हुई हैं।

सखिन मध्य जस सोह सुहाई । लखहु अमित चन्दा छबि छाई ॥
पानि सरोज दिव्य जयमाला । बैठी करत प्रतीक्षा काला ॥

सखियों के बीच सुन्दर सुशोभित होने वाली असीमित चन्द्रमा की छवि सम्पन्न श्री सीता जी का आप सभी, दर्शन कर लें, वे अपने सुन्दर कर कमलों में दिव्य जयमाल लिये, शुभ समय की प्रतीक्षा करती हुई विराजी हैं।

अमित प्रभाव न तेहिं कहि जाई । तेज आपने विश्व जराई ॥
रूप खानि गुन शील अपारा । धर्म सुकृत सुख यशहिं पसारा ॥

उनके असीमित प्रभाव का वर्णन नहीं किया जा सकता, वे अपने तेज से सम्पूर्ण संसार को भस्म कर सकती हैं। श्री सीताजी रूप की खानि, असीमित गुणों व शील से संयुक्त, धर्म, पुण्य, सुख तथा यश का विस्तार करने वाली हैं।

कहहु काहि अस ईश्वर करई । धनुष भंजि जो शुचि सिय वरई ॥
अस कहि बन्दि दुन्दुभी दीन्हा । मेघ शब्द सबहिन सुनि लीन्हा ॥

कहिये, किस व्यक्ति को परमात्मा ने ऐसा बनाया है जो धनुष को तोड़कर पवित्र श्रीसीताजी का वरण कर सके। ऐसा कह–कर बन्दी नें दुन्दुभी नाद किया (नगाड़े बजाये), जिसके बादलों के समान गम्भीर स्वर को सभी लोगों ने सुना।

दो०–पुर वासिन की हिय दशा, प्रीति रीति सरसात ।
काह कहैं कवि बुद्धि पर, मनहु तहाँ नहिं जात ॥२८४॥

हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री मिथिलापुर वासियों के हृदय की उस समय की स्थिति तथा उनकी सुखों से आपूरित, बुद्धि से परे, प्रीति व रीति को कोई कवि केसे बखान करें क्योंकि मुझे ऐसी प्रतीति होती है कि उनकी बुद्धि वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकती।

श्यामल रघुवर गौर किशोरी। देखि सबहिं भै प्रीति अथोरी ॥
अपलक देखहिं युग छवि मोही। प्रीति मनहु बहु तन धरि सोही ॥

श्याम वर्ण वाले रघुकुल श्रेष्ठ श्रीरामजी महाराज व गौर वर्णा श्री जनक किशोरी सीताजी को देखकर सभी को अत्यन्त प्रेम हो गया, वे उन दोनों की सुन्दरता को बिना पलक गिराये मोहित हुए ऐसे देख रहे थे, मानों प्रभु प्रेम ही विविध शरीर धारण कर सुशोभित हो रहा है।

अति अभिलाष सबन्ह के एही। सोहन श्याम योग वैदेही ॥
जनक लाड़िली लायक रामा। जानि न जाय काह परिणामा ॥

उन सभी के हृदय में यही अतीव अभिलाषा हो रही थी कि परम सुहावने श्याम सुन्दर श्रीरामजी महाराज के योग्य विदेहराज नन्दिनी श्री सिया जू हैं तथा श्री जनक लाड़िली जू के योग्य श्रीरामजी महाराज ही हैं परन्तु न जाने इस धनुष यज्ञ का परिणाम क्या होगा?

जो पै धनुष तोरि नृप आना। वरै सीय नृप प्रण प्रविधाना ॥
तौ विधि मरण देय हम सबहीं। अस अनीति निरखन नहिं चहहीं ॥

श्री जनक जी महाराज की प्रतिज्ञा के अनुसार यदि कोई अन्य राजा श्री शिव धनुष का भंजन कर श्री सीता जी का वरण कर ले तो हे श्री ब्रह्मा जी! आप हम सभी को मृत्यु दे दीजियेगा क्योंकि हम ऐसी अनीति नहीं देखना चाहते।

बन्दि वचन सुनि सब नर नारी। विधिहिं मनावैं हाथ पसारी ॥
नृपन हृदय करु हे विधि वासा। फेरि मतिहिं धनु भंजन आसा ॥

बन्दीजनों के बचन को सुनकर, सभी पुरुष व स्त्रियाँ हाथ फैलाकर श्री ब्रह्मा जी से मनाने लगे कि हे श्री ब्रह्माजी! आप राजाओं के हृदय में निवास कर उनके धनुष तोड़ने की कामना वाली बुद्धि को ही उलट दीजिये।

तोरन धनुष उठत करि चाहा। आसन चिपकैं सब नर नाहा ॥
जाय समीप धनुष कहँ लपकैं। छुटन न पावैं कर बहु चपकैं ॥

धनुष तोड़ने की इच्छा से उठते ही सभी राजागण आसन में ही चिपक जायें और यदि वे समीप जाकर धनुष को पकड़ें तो उनके हाथ धनुष में ही चिपक जायें तथा उससे प्रयत्न करने पर भी छूटने न पायें।

दो०– कोटि यत्न करि चाह नृप, धनुष सकैं नहिं तोरि।
यह मागे विधि पाइयहिं, पुनि पुनि करहिं निहोरि ॥२८५॥

करोड़ों उपाय करने पर राजागण इच्छा करते हुए भी इस शिव–धनुष को न तोड़ सके, हे श्री ब्रह्मा जी! हम आपसे बारम्बार विनती कर यही माग रहे हैं, आप हमें यही दीजिये।

हे विधि सदा उचित फलदाता। तुमहि कहहिं कवि कोविद ज्ञाता ॥
राम छोड़ि वर जगत त्रिलोकी। सिय कहँ नहि कोउ परत विलोकी ॥

हे श्री ब्रह्मा जी! सभी कवि, विद्वज्जन व ज्ञानी लोग, आपको सदैव उचित फल प्रदान करने वाला ही कहते हैं तथा तीनों लोकों में श्री राम जी महाराज के अतिरिक्त श्रीसीताजी के लिए कोई भी अन्य अनुकूल 'वर' दिखाई नही दे रहा।

ताते विनय करहिं तुम पाहीं। सीतहिं देहु राम वर चाही ॥
गहि गुरु आयसु राम कृपाला। छन महँ भंजै धनुष विशाला ॥

इसलिए हम सभी आपसे प्रार्थना करते हैं कि जनक दुलारी श्री सीता जी को दूलह रूप में श्रीरामजी महाराज ही प्रदान करें, यही हमारी मनोकामना है, परम कृपालु श्री राम जी महाराज गुरुदेव श्री विश्वामित्र जी की आज्ञा पाकर एक क्षण में ही इस विशाल धनुष को खण्ड–खण्ड कर डालें–––

कीरति विजय सीय छवि छाई। पावहिं राम श्याम सुखदाई ॥
यहिं विधि सकल नगर नर नारी। चाह भरे मन करत विचारी ॥

–––तथा कीर्ति व विजय स्वरूपी परम सौन्दर्य परिपूर्णा श्री सीता जी को सुख प्रदायक श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज प्राप्त कर लें। श्री मिथिलापुरी के सभी पुरुष–स्त्री उपर्युक्त प्रकार की कामना से भरे हुए अपने मन में इस प्रकार बिचार कर रहे थे।

सुख समुद्र सिय रामहिं देखी। मगन भये भव त्याग विशेषी ॥
वन्दि वचन सुनि सब नरपाला। बनि अमान कह समय स्वहाला ॥

वे सभी सुख के सागर श्री सीताराम जी को देखकर सांसारिक भावनाओं को त्याग उनके विशेष प्रेम में मग्न हो गये। अनन्तर बन्दीजनों के बचन को सुनकर अमानी बन सभी राजागण उस समय की अपनी स्थिति का बखान करने लगे।

दो०– सकल नृपन कर एक मत, सुनहु भाट पतिआव।
सत्य वदहिं सब मन रुचिहिं, करहिं न नेक छिपाव ॥२८६॥

हे बन्दी–जनों! आप हम सम्पूर्ण राजाओं के एक मत को श्रवण कर विश्वास करें, क्योंकि हम सभी आपसे कोई भी छिपाव न रखते हुए अपने मन की इच्छा का सत्य–सत्य बखान कर रहे हैं।–––

जो धनु रावण बाण लजावा । सो नहिं हमसे उठै उठावा ॥
दूजे शिव धनु तोरि महाना । गिनहिं अक्षम अपचार सुजाना ॥

–––जिस शिव–धनुष ने रावण व बाणासुर जैसे अनेक वीरों को भी लज्जित कर दिया है, प्रथम तो वह हम से उठाये ही नहीं उठेगा तथा द्वितीय यह कि– श्री शंकर भगवान के महान धनुष को तोड़नें में हम उसका अक्षम्य अपचार समझते हैं।–––

तीजे जगत जननि सिय आहीं । यह प्रतीति हम सब मन माहीं ॥
खण्डन चाप मनहिं निज आनी । अति अपचार होय हित हानी ॥

–––तीसरी बात यह है कि– हम सभी के मन में यह विश्वास हो रहा है कि श्री सीता जी संसार की जननी हैं इसलिए धनुष तोड़ने का बिचार मन में लाने पर भी महान अपचार तथा हमारे यथार्थ हित की हानि होगी।–––

जगत पिता रघुनाथ गोसाँई । भंजि धनुष सिय लैहैं भाई ॥
अटल प्रतीति जानि सब कोरी । भाँट हमहिं जनि कहहिं बहोरी ॥

–––अतः सम्पूर्ण संसार के पिता श्रीरामजी महाराज श्री शिव–धनुष का भंजन कर श्रीसीताजी को ग्रहण कर लेंगे, हम सबके ऐसे अटल विश्वास को समझ कर, हे भाँट जनो! हमें पुनः धनुष तोड़ने के लिये मत कहियेगा।

राम तोरि धनु सीय विवाहैं । बढ़ति सबहिं मन महत उमाहैं ॥
तोरन धनुष रंच नहि चाहा । जानहिं हिय शिव गिरिजा नाहा ॥

श्री रामजी महाराज श्री शिव–धनुष को तोड़कर श्री सीता जी से विवाह कर लें यही महान कामना हम सभी के मन में उत्साहपूर्वक बढ़ रही है। धनुष तोड़ने की हमारे हृदय में रंच मात्र भी इच्छा नहीं है, हमारे हृदय की इस बात को पार्वती पति श्री शंकर भगवान जानते हैं।

दो०–सकल नृपन के वचन सुनि, बन्दी अति गम्भीर ।
कछु न कह्यो ठाढ़ो सुनत, देखि राम बलवीर ॥२८७॥

सभी राजाओं के इन वचनों को सुनकर बन्दीजन अत्यन्त गम्भीर हो बिना कुछ कहे, खड़े–खड़े उनकी बातें सुनते रहे तथा परम बलशाली श्रीरामजी महाराज की ओर देखते रहे।

नृपन वचन सुनि कौशिक ज्ञानी । चुपहिं रहे मन मोद महानी ॥
जनक भाव जानन के हेता । कहेउ न रामहिं कछु चित चेता ॥

सभी राजागणों के वचनों को सुनकर परम ज्ञानवान श्री विश्वामित्र जी मन में अत्यधिक आनन्दित हुए, परन्तु शान्त बैठे रहे, श्री जनक जी महाराज के मनोभावों को अपने हृदय में जानने के बिचार से उन्होंने श्रीरामजी महाराज से कुछ नहीं कहा।

परम गँभीर धीर धुर रामा। शील सकुच निधि पूरण कामा॥
बैठे सहज स्वभाव कृपाला। धनु तोरन नहिं भये उताला॥

परम गम्भीर, धैर्य को धारण करने वाले (धुरी), शील व संकोच के निधान, पूर्णकाम तथा परम कृपालु श्रीरामजी महाराज भी अपने सहज स्वभावानुसार शान्त बैठे रहे, धनुष तोड़ने को उतावले नहीं हुए।

गुरु इच्छहिं निज इच्छा मानी। बिन निदेश पूछब हित हानी॥
मुनि सर्वग्य शिष्य हितकारी। करहिं सदा शुभ समय विचारी॥

श्री गुरुदेव जी की रुचि को उन्होंने अपनी इच्छा मान कर, बिना गुरु–आज्ञा कुछ भी पूछनें में अपने हित की हानि समझ व मुनिवर श्रीविश्वामित्रजी सभी कुछ जानने वाले व शिष्यों का परम हित करने वाले हैं अतः वे सदैव समय बिचार कर मंगल ही करेंगे–––

अस विचार रघुवर सुख राशी। बैठे सहज स्वरूप प्रकाशी॥
गो युग दण्ड काल इमि बीता। चुपहिं रहे सब मन करि रीता॥

–––ऐसा बिचार कर सुखों की राशि श्री राम जी महाराज अपने सहज स्वरूप को प्रकाशित करते हुए बैठे रहे। वह दो घड़ी का समय इस प्रकार व्यतीत हुआ कि सभी लोग अपने मन को रिक्त कर शान्त बैठे रहे।

दो०– नृपन वचन सुनि जनक कहँ, गाधि तनय लखि शान्त।
चितय काम पूरण प्रभू, हृदय भयो अति भ्रान्त॥२८८॥

सभी राजाओं के वचनों को सुनकर भी गाधिनन्दन श्री विश्वामित्र जी को शान्त देख तथा मनोभिलाषा पूर्ण करने वाले श्रीरामजी महाराज को निहारकर श्री जनक जी महाराज का हृदय अत्यधिक सशंकित हो गया।–––

छं०– आतुर प्रेम हृदय भ्रम छायो, बोलत वचन दुखारी।
गाधि तनय सह रामहु आये, कोउ नहिं करत उबारी॥
बैठे राम काम परिपूरण, कौशिक लखि मम बाता।
भानु तले अँधियार दिखावे, काह करौं मैं धाता॥१॥

––––इस प्रकार जब श्री जनक जी महाराज का हृदय प्रेमातुरता के कारण भ्रमित हो गया तब वे अत्यन्त दुख भरे बचन बोले– इस सभा में अपर विधायक गाधिनन्दन श्री विश्वामित्रजी के साथ श्री राम जी महाराज भी आये हुए हैं परन्तु कोई भी मेरा उद्धार नहीं करता। हे श्री विश्वामित्र जी! आप मेरे हृदय की स्थिति को समझिये, क्योंकि श्रीरामजी महाराज भी पूर्णकाम बने विराजे हुए हैं। हाय विधाता! मैं क्या करूँ? मुझे तो सूर्य के नीचे भी अंधकार दिखाई पड़ रहा है।

हा हा प्यारी प्राण अधारी, जीवन जननि दुलारी ।
भ्रात प्राण की प्राण सदा तुम, अमृत मूरि सुखारी ॥
देखि कुँआरी तुम कहँ रखिहौं, कहहु कवन विधि प्राना ।
बृथा तुमहि जनमायो ब्रह्मा, मो अभागि गृह आना ॥२॥

हाय, हाय, प्यारी पुत्री सीते! आप तो मेरे प्राणों की आधार तथा अपनी माता की दुलारी व उसका जीवन ही हो। आप सदैव ही अपने भैया के प्राणों की प्राण तथा परम सुखकारी अमृत की मूल हो। आपको कुँवारी (बिना–विवाह के) देखकर मैं किस प्रकार अपने प्राणों को धारण कर सकूँगा? आपको ब्रह्मा ने व्यर्थ ही मुझ भाग्यहीन के घर में लाकर जन्म दिया है।

जगत सकल करिहैं उपहासी, कहिहैं जनक अभागा ।
रूप शील गुण सुखमय कन्यहिं, मिलेव न वर विधि दागा ॥
दीप दीप के भूपति बटुरे, कोउ नहिं चाप चढ़ायो ।
मनहु वीर या जगती तल महँ, नहि विरंचि उपजायो ॥३॥

सम्पूर्ण संसार मेरा उपहास करेगा तथा कहेगा कि यह 'जनक' तो अत्यन्त अभागी है क्योंकि इसकी परम रूप सम्पन्ना, शील संयुक्ता, गुणवान तथा सुख स्वरूपा कन्या को दूलह ही नहीं प्राप्त हुआ मानो विधाता ने इसके लिये वर का सुनिश्चिय ही नही किया। इस रंग–भूमि में तो सभी द्वीपों के राजागण एकत्रित हुए हैं परन्तु किसी ने इस धनुष को उठाकर प्रत्यंचा नही चढ़ायीं, ऐसा लगता है मानों ब्रह्मा जी ने इस भूतल में वीरों का सृजन ही नहीं किया।

प्रण छोड़े शुचि सुकृति जात है, वेद धरम हो नासा ।
सुर नर मुनि मिलि सब इमि कहिहैं, जनक अधर्मन दासा ॥
फूट जाहु मोरे अब नैना, लखहुँ न क्वाँरी सीता ।
हृदय फटै मम सत सत टूका, गिनसि जो सीतहिं प्रीता ॥४॥

अपनी प्रतिज्ञा छोड़ने पर मेरे सभी सुकृत ही नष्ट हो जायेंगे तथा वेदों में प्रतिपादित धर्म का विनास हो जायेगा। देवता, मनुष्य व मुनि सभी मिलकर ऐसा कहेंगे कि यह जनक तो अधर्म का दास बन गया है। हे मेरे नेत्र, तुम ज्येति विहीन हो जाओ क्योंकि मैं पुत्री श्री सीता को अविवाहित नहीं देखना चाहता। हे मेरे हृदय! यदि तुम श्री सीता जी से प्रीति करते हो तो तुम्हारे भी सैकड़ों टुकड़े हो जाओ।

निमिकुल चन्द्र राहु मैं जायो, दियो कलंक लगाई ।
मोर अभाग प्रबल लखि देवहुँ, कियो न नेक सहाई ॥
हा सीते हा सीते कहि कहि, नयनन नीर बहाया ।
शिथिल शरीर प्रेम शुचि परवश, गिरेउ भूप भहराया ॥५॥

हाय! हाय! मेरा जन्म अपने इस निमि–कुल रूपी चन्द्रमा के लिए राहु के समान दुखदायी हुआ व मैंने उसमें कलंक लगा दिया। मेरे बलशाली दुर्भाग्य को देखकर देवताओं ने भी मेरी किंचित सहायता नहीं की। इस प्रकार हा सीते, हाय सीते! कह कहकर श्री जनक जी महाराज आँखों से आँसू बहाने लगे, शरीर शिथिल हो गया तथा पवित्र प्रेम के वशीभूत हो मूर्छित होकर वे गिर पड़े।

सेवक मंत्री दुखमय पागे, किये बहुत उपचारा ।
स्वस्थ होइ नृप आसन बैठे, बहत नैन जल धारा ॥
नयन लगावत कौशिक ओरी, विनय करहिं जनु सैना ।
देखि देखि रघुवर तन शोभा, भरि भरि जावहिं नैना ॥६॥

उस समय दुख में डूबे हुए उनके सेवक तथा मन्त्रीगण उन्हे स्वस्थ करने हेतु बहुत से उपचार किये तब श्रीजनकजी महाराज स्वस्थ होकर आसन में विराज गये परन्तु अभी भी उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। वे श्री विश्वामित्रजी की ओर अपनी आँखें लगाकर ऐसे देख रहे थे जैसे संकेत से कृपा करने हेतु विनय कर रहे हों। श्रीरामजी महाराज की शारीरिक शौष्ठवता को देख–देखकर उनके नेत्र बार–बार भर जाते थे।

दो०– सहज विरागी भूप वर, मन अकाम हिय प्रेम ।
राम सीय पद प्रीति बिनु, योग ज्ञान जर नेम ॥२८९॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– यद्यपि श्री जनक जी महाराज सहज वैराग्यवान, श्रेष्ठ राजा, निष्काम मना तथा प्रेम पूर्ण हृदय वाले थे तथापि उन्होंने बिचार किया कि श्रीरामजी महाराज व श्री सीताजी के चरणों की प्रीति के बिना हमारे योग, ज्ञान तथा नियम आदि सभी कुछ भस्म हो जाय अर्थात् व्यर्थ हैं।

छं०– शोक मगन नृप निरखि सुनैना, बैठि सखिन बिलपाती ।
लखि लखि तहँ सिय रूप सलोना, धरत करहिं शिर घाती ॥
ललिहिं योग वर राम दिखाई, मनहर रूप सलोने ।
अब नहिं प्रेरत राम हृदय विधि, तोड़न चाप हरोने ॥१॥

अपने स्वामी श्री जनक जी महाराज को शोक में डूबे हुए देखकर अम्बा श्री सुनैना जी सखियों के साथ बैठकर विलाप कर रही हैं तथा वहाँ से श्री सीता जी का परम सलोना स्वरूप देख–देख कर अपने हाथों से सिर में प्रहार करती हुई कह रही हैं– हाय! हमारी लली जू के योग्य वर तो श्री राम जी महाराज ही दिखाई पड़ रहे हैं परन्तु अब श्री ब्रह्मा जी शीघ्र धनुष तोड़ने की प्रेरणा श्रीरामजी महाराज के हृदय में क्यों नहीं दे रहे।

बिन विवाह सिय रहै हमारी, देखिहैं नयन कठोरा ।
हे विधि कौशिक पाय सुआससु, राम देहिं धनु तोरा ॥
नतरु प्राण बिन देह हमारी, देखिहैं सिगरे लोगू ।
कहि अस मुरछि परी निमिनारी, स्वस्थ करैं सखि योगू ॥२॥

हाय! हाय! क्या? हमारी श्री सिया जू अब अविवाहिता ही रहेंगी तथा हमारे कठोर नेत्र यह सब देखेंगे। हे श्री ब्रह्मा जी! श्री विश्वामित्र जी की आज्ञा पाकर श्री राम जी महाराज शिवधनुष को तोड़ डालें नहीं तो हमारे शरीर को सभी प्राण–विहीन देखेंगे। ऐसा कहकर निमि–राज्ञी श्री सुनैना जी मूर्छित होकर गिर पड़ीं तब उनकी सखियाँ उन्हें उपचार द्वारा स्वस्थ कराने लगीं।

मातु पिता की देखि दशा यह, भूलि सीय कर ज्ञाना ।
मधुर रसहिं लक्ष्मीनिधि पागे, देखि भगिनि विलपाना ॥
जो पै सीय व्याह नहिं होई, अस आनत हिय बाता ।
गिरे धरणि तल सुधिहिं बिसारी, मनहु मृतक चित गाता ॥३॥

अपने माता–पिता की यह अवस्था देखकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी अनुजा श्री सीता जी के ऐश्वर्य का ज्ञान भूल, माधुर्य रस में डूबकर अपनी बहन श्री सीता जी को देख–देखकर विलाप करने लगे। 'यदि श्री सीता जी का विवाह न हुआ' तो... ऐसी बात हृदय में लाते ही वे स्मृतिहीन होकर भूमि में ऐसे गिर पड़े मानो उनका चित्त व शरीर शव (मृत) के समान हो।

भ्रात सखा उपचार करहिं प्रिय, जागत नाहिं जगाये ।
अश्रु बहत कहुँ सीय सुबोलत, लगे प्रेम के घाये ॥
सीय सुरति पुर वासी करि करि, भे सब प्रेम विभोरा ।
व्याह शंक आनत हिय भीतर, शोक सिन्धु दह बोरा ॥४॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के भ्रातृ व सखागण उन्हे जाग्रत करने के प्रिय उपचार करने लगे परन्तु वे जगाने पर भी चैतन्यता नही प्राप्त कर रहे थे। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे तथा प्रेम की चोट खाये हुए वे कभी–कभी हा सीते! हाय सीते! बोल रहे थे। सभी मिथिलापुर वासी श्री सीता जी का स्मरण कर कर प्रेम विभोर हो रहे थे तथा उनके विवाह ही आशंका हृदय में लाते ही वे दुख के सागर में डूबे जा रहे थे।

दो०–भरे नयन जल लखि परैं, शोक मगन पुर लोग ।
राम लषण चितवत कबहुँ, कहुँ सिय देखत योग ॥२९०॥

उस समय सभी मिथिलापुर–वासी दुख में डूबे व आँखों में अश्रु भरे हुए दिखाई दे रहे थे, वे कभी श्री राम जी महाराज व श्री लखन लाल जी को, कभी श्री सीता जी को, तो कभी उनके संयोग को देख रहे थे।

यहि विधि पुरजन सह परिवारा । महिप मगन दुख सागर खारा ॥
सीय दशा कछु जाय न गाई । भीतर हृदय अधिक अकुलाई ॥

उस समय श्री जनक जी महाराज पुर–वासियों तथा अपने परिवार सहित दुख के खारे समुद्र में डूबे हुए थे। श्री सीता जी की स्थिति का तो किंचित भी बखान नहीं किया जा सकता वे अपने हृदय में भीतर ही भीतर अत्यधिक व्यग्र हो रही थीं।

तन मन रोम रोम रम रामा । भीतर बाह्य एक परिणामा ॥
पुरुष कुजोगिहिं जिमि तन प्राना । निकसत होवैं दु:ख महाना ॥

उनके शरीर, मन तथा रोम–रोम में श्री राम जी महाराज रमें हुए थे और उनके हृदय व बाह्य प्रदेश में सर्वत्र एकमात्र श्रीरामजी महाराज ही विद्यमान थे। जिस प्रकार कुयोगी (संसारी) पुरुष के शरीर से प्राण निकलते समय महान दुख (छटपटाहट व ब्याकुलता) होते हैं–––

तैसहिं दशा सिया हिय केरी । बैठे लखि रामहिं करि देरी ॥
जननि जनक अरु भ्रात विशेषी । प्रेम दशा पुर वासिन देखी ॥

–––वैसी ही अवस्था, श्री रामजी महाराज को बिलम्ब करते बैठे हुए देखकर श्री सीता जी के हृदय में हो रही थी। अपने माता, पिता, विशेषकर श्री भैया जी एवं पुरवासियों की प्रेम–अवस्था को देखकर–––

नेह सनी सिय सखि सन बोली । धन्य प्रीति मम विषय अमोली ॥
अति प्रिय मोहि जनकपुर वासी । जननि जनक भ्राता सम भाषी ॥
शोक मगन सब सभा लखाई । कौशिक छोड़ि लषन रघुराई ॥

–––श्री सीता जी उनके प्रेम में आपूरित हो सखियों से बोलीं–हे सखि! मेरे प्रति की गयी इन सभी की अमूल्य प्रीति धन्य है। मुझे श्री जनक पुर के निवासी अत्यन्त प्रिय हैं तथा वे श्री अम्बा जी, श्री मान् दाऊ जी व श्रीमान् भैया जी के समान प्रिय प्रतीत होते हैं। इस समय श्री विश्वामित्र जी, श्री राम जी महाराज व श्री लखनलाल जी को छोड़कर सम्पूर्ण सभा दुख में डूबी हुई दिखायी दे रही है–––

दो०–संत शिरोमणि ऋषि प्रवर, देत काहु नहिं ज्ञान ।
रामहिं तोरन चापहूँ, कहत नहीं मति मान ॥२९१॥

–––परन्तु संतों के शिरोमणि, ऋषि श्रेष्ठ व परम बुद्धिमान श्री विश्वामित्र जी किसी को भी ज्ञान नहीं प्रदान कर रहे और न ही श्री राम जी महाराज को धनुष तोड़ने की आज्ञा ही दे रहे।

जानि न जाय काह सखि होई । प्रेम विवश सबहीं रह सोई ॥
पानि जोरि बोली सखि एका । परम चतुरि करि हिये विवेका ॥

हे सखी! समझ नहीं आता कि क्या होगा? क्योंकि यहाँ तो सभी प्रेम के वशीभूत हो सुप्त से हो गये हैं। श्री सिया जू के वचन सुन, एक परम चतुर सखी अपने हृदय में ज्ञान को सम्हाल, हाथ जोड़कर बोली–

स्वामिनि रघुवर सहज दयाला । देखत मुनि कहँ सकुचि विशाला ॥
प्रीति रीति जानत रघुराई । तोरिहिं धनु मुनि आयसु पाई ॥

हे श्री स्वामिनी जू! रघु–श्रेष्ठ श्री रामजी महाराज तो सहज ही दयालु हैं वे मुनिवर श्री विश्वामित्र जी को अत्यन्त संकोच पूर्वक देख रहे हैं। प्रभु श्री राम जी महाराज प्रीति की रीति जानने वाले हैं वे मुनिवर श्री विश्वामित्र जी की आज्ञा पाकर श्री शिव जी के धनुष का अवश्य खण्डन कर

देंगे———

करिहिं आप सन रुचिर विवाहा। मम मन होवै परम उछाहा॥
फरकहिं सुभग अंग मम प्यारी। अवशि पूजिहैं आश तुम्हारी॥

———तथा आपके साथ सुन्दर विवाह करेंगे क्योंकि मेरे मन में महान उत्साह हो रहा है। हे प्यारी जू! मेरे शुभ–अंग भी फड़क रहे हैं अतः अवश्य ही आपकी मनोकामना पूर्ण होगी।

अब लौ आयसु मुनि नहि दीन्हा। परखन प्रीति भाव जनु कीन्हा॥
लखन लखत मुनि अरु सब ओरी। मुनिहिं कहत जनु दुख सब कोरी॥

मुनिवर श्री विश्वामित्र जी ने प्रेम की परीक्षा लेने के भाव से ही अभी तक उन्हें आज्ञा प्रदान नहीं की। देखिये तो, राज कुमार श्री लक्ष्मण कुमार जी, श्री विश्वामित्र जी व अन्य सभी की ओर ऐसे देख रहे हैं मानों वे मुनिवर से सभी का दुख बखान कर रहे हों।

दो०–सखी वचन सुनि सीय तब, धीरज मन कछु कीन्ह।
उतै लखन मुनि पद प्रणमि, पावन पद रज लीन्ह॥२९२॥

अपनी सखी के वचनों को सुनकर श्री सीता जी ने मन में कुछ धैर्य धारण किया। उधर उसी समय श्री लक्ष्मण कुमारजी ने श्री विश्वामित्र जी के चरणों में प्रणाम किया व उनकी पवित्र चरण धूलि शिर में धारण किये।

ठाढ़ भये पुनि युग कर जोरे। बोले वचन जियावन सो रे॥
बिन पूँछे बोलौं कछु स्वामी। यद्यपि जानत अन्तरयामी॥

पुनः वे खड़े हो, दोनों हाथ जोड़कर, मृतकों को जीवन दान देने वाली वाणी से बोले– हे नाथ! यद्यपि मैं बिना आपकी आज्ञा लिये ही कुछ कह रहा हूँ, तथापि अन्तर्यामी आप मेरी स्थिति को जानते ही हैं।

नाथ नृपति वर श्री मिथिलेशा। सहत समय यहि कठिन कलेशा॥
सोचहिं सभा सकल मुनिराया। तव मुख निरखत प्रेम सुभाया॥

हे नाथ! राजाओं में श्रेष्ठ श्री मिथिलेश जी महाराज इस समय अत्यन्त दारुण दुख सहन कर रहे हैं तथा सम्पूर्ण सभा विचार में डूबी हुई स्वाभाविक रूप से प्रेम में भर आपको देख रही है।

नाथ नृपति सह सब परिवारा। संशय शोच मगन मझधारा॥
रघुकुल बालक एकहुँ होई। अस संशय तहँ परय न कोई॥

हे नाथ! श्री जनक जी महाराज के साथ उनका सम्पूर्ण परिवार संदेह और दुख के मझधार में डूबा हुआ है। जहाँ रघुवंश का एक भी बालक हो वहाँ इस प्रकार का कोई सन्देह नहीं उपस्थित हो सकता।

धनु भंजन फल होत न पापा। करतेउँ चूर चूर प्रण थापा॥
मुनिवर नेक विलम्ब न कीजे। अबहिं राम कहँ आयसु दीजे॥

यदि धनुष तोड़ने का परिणाम मुझे पाप लगना न होता तो मैं अभी ही इस शिवधनुष को चूर–चूर कर श्री महाराज जनक जी के द्वारा की गयी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर देता। अतः हे मुनिश्रेष्ठ! आप अब किंचित विलम्ब न करें व अभी श्री राम जी महाराज को धनुष तोड़ने की आज्ञा प्रदान करें।

दो०–आयसु लहि रघुवीर प्रभु, बिन प्रयास भव चाप ।
भंजहि कौतुक करन सम, मिटिहिं सकल संताप ॥२९३॥

आप की आज्ञा प्राप्तकर रघुकुल प्रवीर प्रभु श्री राम जी महाराज बिना प्रयास, श्री शिव जी के धनुष को क्रीड़ा करने के समान तोड़ देंगे तब सभी के शोक समाप्त हो जायेंगे।

छत्रक दण्ड यथा शिशु तोरी। बिन प्रयास नहि मेहनत थोरी ॥
यथा मत्त गज पंकज नाला । भंजिहिं तिमि प्रभु धनुष विशाला ॥

जिस प्रकार एक शिशु कुकुर–मुत्ते की डण्डी को बिना प्रयास, अल्प श्रम में ही तोड़ देता है तथा जिस प्रकार मतवाला हाथी कमल के दण्ड को सहजतया तोड़ डालता है उसी प्रकार प्रभु श्रीरामजी महाराज इस विशाल शिव–धनुष का भंजन कर देंगे।

यदपि राम परिपूरण कामा। तदपि देन भक्तन विश्रामा ॥
अस कहि लखन शीष पद नाई । माँगत छमा जो कीन्ह ढिठाई ॥

यद्यपि प्रभु श्री राम जी महाराज पूर्णकाम हैं तथापि वे अपने भक्तजनों को सुख प्रदान करने वाले हैं। ऐसा कहकर श्री लक्ष्मण कुमार जी मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के चरणों में शीष झुका प्रणाम कर अपनी की हुई धृष्टता के लिए क्षमा माँगने लगे।

मुनिवर परशि सप्रेम दुलारा। धन्य लखन कहि शील अपारा ॥
परहित निरत स्वभाव सुहाये । क्षमा दया शम दम अधिकाये ॥

मुनि श्रेष्ठ श्री विश्वामित्र जी ने उनका स्पर्श कर प्रेम पूर्वक दुलार किया तथा कहा– हे श्री लखन लाल जी! आप धन्य हैं, आपका शील असीम है, आप दूसरों के हित में लगे रहने वाले सुन्दर स्वभाव से युक्त हैं तथा क्षमा, दया, शम व दम आदि गुणों का आप में आधिक्य है।

सकहु न दुखित देखि नृप वारे। याही हेतु जगत तन धारे ॥
सुनि सकुचाय सुआयसु पाई। बैठे लषण जनन सुखदायी ॥
सुनत लषन की बात सुहाई। हरषी सकल सभा समुदाई ॥

हे राजकुमार लक्ष्मण! तुम किसी को भी दुखी नहीं देख सकते हो, इसीलिए (संसार के दुखों को दूर करने के लिये) ही संसार में शरीर धारण किये हो। श्री विश्वामित्र जी के ऐसे वचनों को सुनकर श्री लखन लाल जी संकुचित हो गये पुनः आज्ञा प्राप्त कर जन–सुखदायी श्री लक्ष्मण कुमार जी बैठ गये। श्री लक्ष्मण कुमार की सुन्दर बातें सुनते ही सम्पूर्ण सभा–समुदाय हर्षित हो गयी।

दो०–जनक नृपति परिवार युत, सुनि हिय धीरज कीन ।
मनहुँ क्षुधातुर सुख लहै, देखत अन्न रसीन ॥२९४॥

अपने परिवार सहित श्रीजनकजी महाराज ने श्री लखन लाल जी के वचनों को सुनकर हृदय में उसी प्रकार धैर्य धारण किया मानों भूख से आतुर व्यक्ति रसयुक्त अनाज देखकर सुख–प्राप्त कर रहा हो।

कौशिक दशा सबन्ह की देखी। प्रेम भाव आतुर रस रेखी ॥
समय सुहावन जानि पुनीता । बोले रामहिं परशि सुप्रीता ॥

तदनन्तर श्री विश्वामित्र जी सभी लोगों की प्रेम–भाव से आतुर रस–सनी अवस्था देख व परम पवित्र सुहावना समय समझ, श्रीरामजी महाराज का सुन्दर प्रीति पूर्वक स्पर्श कर बोले–

आरत हरण सदा जन रक्षक । अघट सुघट घट अघट सुदक्षक ॥
उठहु लाल धनु निकट सिधावहु । भंजि ताहि नृप त्रास मिटावहु ॥

हे जीवों के हृदय की छटपटाहट (आर्त्ति) को हरण करने वाले, अपने जनों की सदैव रक्षा करने वाले, असम्भव को सम्भव तथा सम्भव को असम्भव बनाने में सुप्रवीण लाल रघुनन्दन! उठिये तथा श्री शिव–धनुष के समीप जाइये और उसका खण्डन कर श्री जनक जी महाराज के शोक का शमन कीजिये।

भूप कुँअर की तपनि मिटाई । आनँद बोरहु पुरहिं पुराई ॥
भंग धनुष लखि संत सुखारे । होइहैं सब कोउ देखन वारे ॥

पुनः आप राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय के संताप को मिटाकर सम्पूर्ण मिथिलापुरी को पूर्ण रूपेण आनन्द में डुबा दें क्योंकि धनुष को टूटा हुआ देखकर संतजन तथा सभी दर्शक–गण अत्यन्त सुखी होंगे।

सुनत राम गुरु मुख वर वानी । कीन्ह प्रणाम न कछु हिय आनी ॥
धनुष बाण धरि तहँ तूणीरा । सहज सुभाव खड़े रघुवीरा ॥

गुरुदेव श्री विश्वामित्र जी के मुख से निकली हुई सुन्दर वाणी को सुनते ही श्रीरामजी महाराज ने अपने हृदय में किसी भी प्रकार का भाव न लाते हुये श्री विश्वामित्र जी को प्रणाम किया तथा रघुकुल के वीर श्री राम जी महाराज अपने धनुष–बाण व तरकस वहीं रखकर सहज स्वभाव से खड़े हो गये।

दो०–सिंह ठवनि अनुपम लखनि, लेत सबहिं चित चोर ।
उदित उदय जनु बाल रवि, तम नशि देत अजोर ॥२९५॥

सिंह के समान उठने की अपनी शोभा व अनुपमेय चितवनि से निहार कर राजकुमार श्री राम जी महाराज सभी के चित्त को इस प्रकार अपहृत कर रहे थे जैसे बाल सूर्य उदयाचल में उदित होते ही अंधकार का हरण कर प्रकाश फैला देते हैं।

छं०– तम घोर नाशक भानु जनु, प्रिय उदित उदयाचल भयो ।
सब संत मोदित कंज जन, हरषत विकस निज सुख मयो ॥

नृप नारि श्रीनिधि जन्म नव, जनु सह सुआनन्द विधि दयो।
सिय केर आनन्द अन्त नहि, हरषण हरषि गहि पद लयो॥

हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री रामहर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे घने अंधकार को नष्ट करने वाले प्रियकारी सूर्य भगवान उदयाचल में उदय हो गये हों जिससे सभी कमल स्वरूप संत व जन समूह हर्षित हो सुखपूर्वक विकसित हो गये हों। श्री जनक जी महाराज, महारानी श्री सुनैना जी तथा कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को तो मानों श्री ब्रह्मा जी ने आनन्द पूर्वक नवीन जन्म ही प्रदान कर दिया हो। पुनः श्री सीता जी के आनन्द का तो अन्त ही नहीं था मानों उन्होंने हर्षित होकर अपने हृदय हर्षण श्रीरामजी महाराज के चरण ही प्राप्त कर लिये हों।

गुरु पद पंकज पुनि प्रभु लागे। सहित मुनिन सन आयसु मागे॥
गुरु निदेश अघटित घटवाऊँ। होनहार हठि तुरत मिटाऊँ॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज ने अपने गुरुदेव श्री विश्वामित्र जी के चरण कमलों में पुनः प्रणाम किया तथा सभी मुनियों के सहित उनसे आज्ञा माँगी। यह राम श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से असम्भव को सम्भव तथा सम्भव को हठपूर्वक तुरन्त ही असम्भव बना सकता है---

थापे उथपूँ उथपहिं थापूँ। रिक्तहिं भरूँ भरे पुनि खापूँ॥
काह करौं नहिं कृपा अधारी। सब कछु करउँ त्रिसत्य उचारूँ॥

---स्थापित किये हुए को उखाड़ तथा उखड़े हुए को स्थापित और खाली को भर तथा भरे हुए को पुनः खाली कर सकता है। ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे श्री गुरु-कृपा के बल पर यह राम नहीं कर सकता? मैं त्रिवाचा सत्य कह रहा हूँ कि गुरुदेव की आज्ञा से (करणीय, अकरणीय व विपरीत) सभी कुछ कर सकता हूँ।

राम वचन सुनि मुनि सुख पावा। प्रभु प्रताप जन हृदय जुड़ावा॥
गाधि तनय शुभ आशिष कीन्हीं। विजय पत्र जनु कर लिख दीन्ही॥

श्रीरामजी महाराज के वचनों को सुनकर मुनिवर श्री विश्वामित्र जी ने सुख प्राप्त किया तथा प्रभु के प्रताप से सभी का संतप्त हृदय शीतलता को प्राप्त हो गया। गाधि नन्दन श्री विश्वामित्र जी ने तब श्री राम जी महाराज को शुभ आशीर्वाद प्रदान किया मानों उन्होंने अपने हाथों से विजय पत्र लिख दिया हो।

पुनि पुनि चरण वन्दि रघुवीरा। सहजहिं चले हरण जन पीरा॥
गज मद मत्त मन्द गति कारी। रस रस चलत राम रसवारी॥

रघुकुल प्रवीर श्री राम जी महाराज मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के चरणों की बारम्बार वन्दना कर सहज गति से भक्तों के शोक का निवारण करने चल पड़े। उस समय प्रभु श्री राम जी महाराज मतवाले गज के समान धीमी गति से धीरे-धीरे रस वितरण करते हुए चल रहे थे।

छं०– जनु सिंह शावक मंदरहिं, तिमि चलत रघुवर मंच ते ।
मनु मत्त मोहत मंद गज, कहँ चलत कोमल कंज ते ॥
छवि मूर्ति राजित राज रस, तम हरण जनु दिनकर चले ।
पुनि लाज लाजित व्याह के, सुठि सकुचि हरषण चख भले ॥

हमारे सद्‌गुरु देव भगवान स्वामी श्री रामहर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि जिस प्रकार सिंह का बच्चा पर्वत पर चलता है उसी प्रकार श्री राम जी महाराज मंच से उतर कर चल रहे थे, मानों वे सुकुमार चरण कमलों से मतवाले हाथी की मन्द गति को भी मोहित करते हुए चल रहे हों। किं पुनः सुन्दरता की प्रतिमा बने हुए रसराज श्री राम जी महाराज मंद–मंद ऐसे चल रहे थे जैसे संसार के अंधकार का हरण करने के लिए सूर्य भगवान धीरे–धीरे चलते है, वे सुन्दर हर्ष में भरे हुए वैवाहिक लज्जा से लज्जित हो अभिराम नेत्रों से सकुचाये हुए धीरे–धीरे चल रहे थे।

दो०– नयन लजीले अति भले, ताकत जाकी ओर ।
दास राम हर्षण हरषि, आपा देवत बोर ॥२९६॥

श्री रामजी महाराज अत्यन्त सुन्दर लजाये हुए नेत्रों से जिसकी ओर देख लेते थे हमारे श्री गुरुदेव भगवान अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री राम हर्षण दासजी महाराज कहते हैं कि वह हर्षित होकर अपने अस्तित्व को उनकी रूप माधुरी में अस्त कर देता था।

चलत राम सुर वरषहिं फूला । जय जय कहि मुद मंगल मूला ॥
दुन्दुभि हनत वदहिं अति प्रीते । आनँद जग बहु बढ़ी सुनी ते ॥

श्री राम जी महाराज के धनुष तोड़ने हेतु चलते ही देवता पुष्प वरषाने लगे, आनन्द व मंगलों की मूल जय–जयकार करने लगे तथा दुन्दुभी बजाते हुए अत्यन्त प्रेम पूर्वक श्री राम जी महाराज का मंगलानुशासन करने लगे जिसे सुनकर संसार में आनन्द की परिवृद्धि हो गयी।

पुर नर नारि मगन अति होहीं । चलत राम पुलकित अँग होहीं ॥
राम रूप सौन्दर्य निधाना । सुठि सुकुमार न जाय बखाना ॥

श्री मिथिला पुरवासी पुरुष– स्त्री अत्यानन्द में मग्न हो रहे थे तथा श्री राम जी महराज को शिव धनुष भंजन हेतु जाते हुये देख उनके अंग पुलकित हो जाते थे। रूप और सौन्दर्य के निधान श्रीरामजी हाराज की उस समय की सुन्दरता और सुकुमारता का बखान नहीं किया जा सकता।

माधुर सिन्धु सुखद सुठि श्यामा । कोटि काम लावण्य ललामा ॥
सौष्ठव सिन्धु सुमोहकताई । वशीकरण की सीम सुहाई ॥

श्री राम जी महाराज माधुर्य के सागर, सुख प्रदायक, सुन्दर श्याम शरीर वाले, करोड़ों कामदेव की सुन्दर छवि समन्वित, सौष्ठवता के समुद्र, मोहित करने वाले तथा वशीकरण की सुन्दर पराकाष्ठा हैं।

कोमल कोमल देह सुगन्धा। कीन्हे मनहुँ विमोहन धंधा ॥
लखि लालित्व वरणि नहिं जाई। संकेतहिं करि कछुक जनाई ॥

उनकी कोमलातिकोमल देह सुगन्धि से आपूरित है, ऐसा लगता था मानों वे मोहित कर लेने का व्यापार किये हुए हैं। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने श्री हनुमान जी से कहा कि श्री राम जी महाराज का सौन्दर्य तो देखने ही योग्य है तथा उसका वर्णन नही किया जा सकता, मैंने तो संकेत के द्वारा उसे किंचित समझाने का प्रयास किया है।

दो०–अमित गरुअ गुण धाम प्रभु, रस वरषत चहुँ ओर।
पूर्ण पूर्ण मन काम हरि, जात चले चित चोर ॥२९७॥

इस प्रकार असीमित श्रेष्ठ गुणों के धाम व सदैव पूर्णकाम प्रभु श्रीरामजी महाराज चतुर्दिक रस की वर्षा करते हुए व सभी के चित्त को चुराते हुए शिव–धनुष भंजन हेतु चले जा रहे थे।

पुंसा मोहन रूप अकामा। सबहि लुभायो ललित ललामा ॥
भूलेव सबहिं ज्ञान ऐश्वरजा। तन मन छाय रहेव माधुरजा ॥

पुरुषों को भी मोहित कर लेने वाले उनके निष्काम स्वरूप ने अपनी सुन्दरतम छवि से सभी को लुब्ध कर लिया था अतः सभी को उनके ऐश्वर्य का ज्ञान भूल गया तथा सभी के शरीर व मन में माधुर्य भाव समा गया।

सुठि सुकुमार देखि नर नारी। करहिं हृदय भ्रम संशय भारी ॥
पंचदेव विनवहिं अति प्रेमा। होहि सदा रघुनायक छेमा ॥

इस प्रकार श्री राम जी महाराज की सुन्दरता व सुकुमारता देखकर सभी पुरुष–स्त्री अपने हृदय में महान सन्देह करने लगे। वे पंच देवताओं (श्रीविष्णुजी, श्रीशंकरजी, श्रीसूर्यदेव, शक्ति व श्रीगणेशजी) से अत्यन्त प्रेम पूर्वक विनय करने लगे कि श्रीरामजी महाराज का सदा मंगल हो।

सकल सुकृत फल सौंपि सुचाहैं। तोरहिं राम धनुष सुख माहैं ॥
कमल नाल इव धनु टुट जाई। चाहैं सकल स्वदेव सहाई ॥

वे सभी अपने पुण्य के फलों को श्री राम जी महाराज को अर्पित कर यही अभिलाषा कर रहे थे कि श्रीरामजी महाराज सुखपूर्वक श्री शिव–धनुष तोड़ डालें। वह धनुष कमल की नाल के समान टूट जाये इस हेतु वे सभी अपने–अपने इष्ट–देवताओं को प्रसन्न कर सहायता की कामना कर रहे थे।

जनक प्रणाम कीन्ह मुनिराजहिं। विनय करत अति प्रेम सुलाजहिं ॥
नाथ राम पुहुपहुँ सुकुमारा। चाप कठोर कराल अपारा ॥
बार बार विनवहुँ कर जोरी। मंगल मंगल राम को होरी ॥

तदनन्तर श्री जनक जी महाराज ने मुनिराज श्री विश्वामित्र जी को प्रणाम किया तथा अत्यन्त प्रेम पूर्वक लज्जित हृदय विनय करने लगे– हे नाथ! श्री राम जी महाराज तो फूलों से भी अधिक सुकुमार हैं तथा यह शिव–धनुष असीम विकराल व कठोर है इसलिए मैं आप से बारम्बार विनय कर

रहा हूँ कि श्रीरामजी महाराज का सदैव मंगल ही मंगल हो।

दो०—मंगल पेखहिं राम नित, मोर इहै अभिलाष ।
सब समर्थ मुनिवर करैं, सब विधि राम सुपास ॥२९८॥

हे सर्व समर्थ मुनि श्रेष्ठ! मेरी यही अभिलाषा है कि श्रीरामजी महाराज सदैव मंगल दर्शन करें अतः आप इनका सभी प्रकार से कल्याण करें।

सिय सो अधिक राम कर सोचा । सत्य कहहुँ तजि सकल संकोचा ॥
निज निज करमन के अनुहारा । भोगहिं फल नर विविध प्रकारा ॥

मैं सभी प्रकार के संकोच का त्याग कर सत्य कह रहा हूँ कि मुझे अपनी पुत्री श्री सीता जी से अधिक राजकुमार श्री राम जी महाराज की चिन्ता है, क्योंकि मनुष्य तो अपने–अपने कर्मों के अनुसार ही विभिन्न प्रकार के शुभ व अशुभ फल प्राप्त करते हैं———

जो पै कुटिल कर्म करि घाता । सिय विवाह नहिं लिखा विधाता ॥
तो सहिहौं जस देव सहाई । मरब जियब जग छन छन साई ॥

———अतः हे नाथ! यदि मेरे कुटिल कर्मों के फलस्वरूप श्री ब्रह्मा जी ने श्री सीता जी का विवाह होना लिखा ही नहीं तो मैं वह सब कुछ सहन कर लूँगा जो परमात्मा सहन करायेगा तथा इस संसार में प्रतिक्षण जीता व मरता रहूँगा।

राम अमंगल नहिं सहि जाई । शत शत खण्ड आत्म नशि आई ॥
अस कहि परेउ चरण धरि माथा । निज अशीष प्रभु करहिं सनाथा ॥

परन्तु श्री राम जी महाराज का अमंगल मुझसे सहन नहीं होगा चाहे मेरी आत्मा सैकड़ों टुकड़े होकर भले ही विनष्ट हो जाय। ऐसा कहकर श्री जनक जी महाराज श्री विश्वामित्र जी के चरणों में अपना मस्तक रख गिर पड़े तथा बोले– हे नाथ! आप अपने आशीर्वाद से मुझे सनाथ कर दीजिये।

नृप सिर कौशिक पानि स्वफेरो । मंगल करैं सदा शिव तेरो ॥
करि प्रबोध बहु धीरज दीना । इतै सुनैना बोल प्रवीना ॥

तब श्री विश्वामित्र जी ने श्री जनक जी महाराज के शिर में अपना कर–कमल फेरकर कहा– हे राजन! भगवान श्री शिव जी आपका सदा मंगल करें। इस प्रकार श्री विश्वामित्र जी उन्हें शान्त्वना देकर बहुत प्रकार से धीरज दिये। इधर परम प्रवीणा अम्बा श्री सुनैना जी अपनी सखी से बोलने लगीं–

दो०—लखहु सखी रघुवर सुखद, मधुर मधुर सुकुमार ।
श्याम वपुष मुनि मन हरण, कोटि काम मद गार ॥२९९॥

———हे सखी! सुख प्रदायक, मधुराति मधुर, परम सुकुमार, श्याम वपुष, मुनियों के मन तथा करोड़ों कामदेव के अभिमान को हरण करने वाले रघुकुल श्रेष्ठ श्रीरामजी महाराज को देखो तो———

कहँ सखि राम श्याम सुकुमारा । कहँ शिव धनुष बज्र कर सारा ॥
देखि देखि मन संशय होई । जाय न इन कर अनभल जोई ॥

———हे सखी! कहाँ ये परम सुकुमार श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज और कहाँ वह वज्र का भी सार श्री शिव जी का धनुष। यह सब देखकर मन में संदेह हो रहा है कि कहीं इन राजकुमार का अमंगल न हो जाय।

काह लिखा विधि जानि न जाया । कहेउ सखी सुनि रानि अमाया ॥
जो पै होवति संशय बाता । नाहिं पठौते मुनिवर ज्ञाता ॥

हे सखि! श्री ब्रह्मा जी के लेख को कोई नहीं जान सकता कि उसमें क्या लिख हुआ है। श्री महारानी सुनयना जी के वचनों को सुनकर सखी ने कहा– हे श्री महारानी जी! सुनें, यदि संदेह की कोई बात होती तो परम ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ श्री विश्वामित्र जी इन राजकुमार श्री राम जी को धनुष भंजन हेतु भेजते ही नहीं।

ये बल बुद्धि तेज के भवना । जानि पठायो मुनि धनु भँजना ॥
सुभट सुबाहु मारि मारीचा । तारि अहल्या पद रज सींचा ॥

ये बल, बुद्धि और तेज के भवन हैं, ऐसा जानकर ही मुनिवर श्री विश्वामित्रजी ने इन्हें धनुष तोड़ने के लिये भेजा है। इन्होंने तो महावीर सुबाहु को मार, मारीच को समुद्र पार फेंक व अपनी चरण–धूलि का स्पर्श कराकर,गौतम पत्नी श्री अहल्या जी का उद्धार किया है।

अवशि तोरिहै धनुष विशाला । सिय पहिरैहैं रामहि माला ॥
सखी वचन सुनि धीरज कीनी । देखत रामहिं नयन रसीनी ॥

ये राजकुमार श्री रामजी अवश्य ही श्री शिव जी के विशाल धनुष को भंग कर देंगे तथा श्रीसीताजी इन्हें विजय–माल धारण करायेंगी। सखी के वचनों को सुनकर अम्बा श्री सुनैना जी ने धीरज धारण किया और अश्रुपूरित नेत्रों से श्रीरामजी महाराज को निहारने लगीं।

दो०–कुँअरहुँ पगि माधुर्य रस, सखन सहित बतियात ।
नयन लुभावन राम लखि, कहुँ कहुँ संशय खात ॥३००॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी माधुर्य रस में डूबे हुए अपने सखाओं सहित बातें कर रहे थे तथा नेत्रों को लुब्ध कर लेने वाले श्री राम जी महाराज को देख–देखकर कभी–कभी संशय ग्रस्त हो जाते थे———

विधिहिं मनावत बारम्बारी । भंजहिं राम धनुष शिव भारी ॥
जो मोरे मन वच क्रम प्रीती । राम चरण महँ सघन प्रतीती ॥

———तथा वे बारम्बार श्री ब्रह्मा जी को मना रहे थे कि श्रीरामजी महाराज श्रीशिवजी के महान धनुष को तोड़ दें। यदि मुझमें मन, वचन और कर्म से श्रीरामजी महाराज के चरणों के प्रति अटूट प्रेम तथा अविरल विश्वास है———

गति अनन्य प्रभु प्रेम अमाया । प्रपति छोंड़ि नहिं आन उपाया ॥
तौ संकल्प सत्य प्रभु होई । तोरिहिं धनुष राम मुद मोई ॥

———यदि परम प्रभु श्रीरामजी महाराज के चरणों में मेरा निश्छल प्रेम है, वे ही मेरी अनन्य गति हैं तथा उनकी शरणागति को छोड़कर मुझमे अन्य कोई उपाय नहीं है तो प्रभु श्रीरामजी महाराज का संकल्प सत्य हो और वे आनन्द पूर्वक श्री शिवधनुष का भंजन कर दें।

छत्रक दण्ड बाल जिमि तोरै । परै न रामहिं श्रम तिमि थोरै ॥
सुभग नयन शुभ वाहु कुँअर की । फरकनि लगी प्रमोदनि उर की ॥

बालक जिस प्रकार कुकुरमुत्ते की डण्डी को तोड देते हैं उसी प्रकार श्रीरामजी महाराज को धनुष तोड़ने में किंचित भी परिश्रम न करना पड़े। ऐसा विचार करते ही कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाली सुन्दर दाहिनी आँख और भुजा फड़कने लगी।

जानि सगुन मन धीरज कीना । चितवत राम प्रेम रस पीना ॥
जनक लली लखि मोहन रामा । अमित मार मद मर्दन श्यामा ॥

तब उन्होंने शुभ शगुन जानकर मन में धैर्य धारण किया और प्रेम–रस पान करते हुए से श्रीरामजी महाराज को निहारने लगे। अनन्तर जनक लली श्री सीताजी असीमित कामदेवों के अभिमान का मर्दन करने वाले श्रीरामजी महाराज के जन–मन विमोहन–कारी श्याम–स्वरूप को देख–देखकर———

दो०–वशीकरण मनहर रमण, छवि समुद्र सुकुमार ।
शम्भु चाप गुनि बज्रवत, धीरज खोवति हार ॥३०१॥क॥

तथा सभी को वश में कर लेने वाले, मन को हरण कर उसमें रमण करने वाले सुन्दरता के सागर श्रीरामजी महाराज को अत्यन्त सुकुमार तथा श्रीशिवजी के धनुष को बज्र के समान समझ कर वे अपना धैर्य त्याग हृदय में हताश हुई जा रही थीं।

भहर भहर प्रभु तन चितै, कहर कहर हिय होय ।
छहरि छहरि छवि माधुरी, आपा देवति खोय ॥ख॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज के अत्यधिक सुशोभन व परम द्युतिमान शरीर को देख–देखकर श्री सीताजी का हृदय दुख से अत्यन्त व्याकुल हो रहा था तथा उनकी माधुर्य महोदधि छबि विखर–विखरकर श्री सिया जू को अस्तित्व विहीन किये दे रही थी।

लागति डर रघुपति कर कंजा । छुअत धनुहिं पाइय दुख पुंजा ॥
केहिं विधि हाय धरहुँ हिय धीरा । कमल तन्तु बाँधिय किमि वीरा ॥

उन्हें भय लग रहा था कि श्रीरामजी महाराज के कर–कमल शिव–धनुष का कठोर स्पर्श करते ही महान दुख प्राप्त करेंगे। हे विधाता! मैं अपने हृदय में कैसे धैर्य धारण करूँ? क्योंकि कमल के रेशे से किस प्रकार किसी वीर को बाँधा जा सकता है।

यहिं विधि सोचत गौरि मनाई। मनहिं माँहि शुचि शीष नवाई॥
देवि वचन तव वृथा न होवै। धनुष तोरि रघुपति सुख जोवैं॥

ऐसा विचार करते–करते श्रीसीताजी, शिवरानी श्री पार्वती जी को मन ही मन पवित्रता से शिर झुका प्रणाम कर प्रसन्न करती हैं तथा प्रार्थना करती हैं कि– हे देवि! आपके वचन व्यर्थ न हों, शिव–धनुष भंजन कर श्रीरामजी महाराज सुख का संदर्शन करें।

सुनहु शिवा शिव विनय हमारी। होय हरुअ धनु राम निहारी॥
मन क्रम वचन राम की दासी। कीन्ह हिये मैं प्रण गिरिजा सी॥

हे अर्द्धनारीश्वर श्री शिव जी! आप हमारी विनय को सुनिये, जिससे आपका धनुष श्रीरामजी महाराज को देखकर हल्का हो जाय क्योंकि अपने हृदय में गिरिराज कुमारी श्री पार्वतीजी के समान ही मैंने मन, वचन व कर्म से श्रीरामजी महाराज की दासी बनने की प्रतिज्ञा कर रखी है।

राम बिना नहिं तन महँ प्राना। जानहु सब शिव शिवा सुजाना॥
प्राण कण्ठगत हैं येहि काला। चहत उड़न तजि तनहिं विहाला॥

श्रीरामजी महाराज के बिना मेरे शरीर में प्राण नहीं रहेंगे यह बात परम ज्ञानवान आप दोनों श्रीशंकरजी व श्रीपार्वतीजी भली प्रकार से जानते हैं। इस समय मेरे प्राण गले तक आ चुके हैं तथा शरीर को छोड़कर उड़ने को विह्वल बने हुए हैं।

दो०–अस कहि प्रभु चितवन लगीं, मन महँ होति अधीर।
नयन द्वार जनु प्राण निज, प्रेषति राम शरीर॥३०२॥

ऐसा कहकर श्री सियाजू मन में अधीर हुई प्रभु श्रीरामजी महाराज को निहारने लगीं मानों वे अपने प्राणों को नेत्र मार्ग से श्रीरामजी महाराज के शरीर में भेज रही हों।

जानि सियहिं नव नेह विहाला। रघुपति ताकेव धनुष विशाला॥
मनहुँ बतायो धीरज धरहू। बिन श्रम चाप खण्ड द्वै करहूँ॥

श्री सीता जी को अपने प्रति नवीन प्रेम में विह्वल हुई जानकर श्रीरामजी महाराज ने उस विशाल धनुष की ओर इस प्रकार निहारा मानों उन्होंने बताया हो कि– हे सीते! आप धैर्य धारण करें, मैं बिना परिश्रम ही इस धनुष को दो भागों में विभाजित करता हूँ।

लखन लखे ताकेउ धनु रामा। अण्ड चापि पद बोल ललामा॥
कुंजर कच्छप कोल सुशेषा। भंजन धनुष चहत अवधेशा॥

तदनन्तर श्री लक्ष्मण कुमार जी ने देखा कि श्री राम जी महाराज धनुष को तोड़ने हेतु उसकी ओर देख रहे हैं तो वे अपने चरण से ब्रह्माण्ड को दबाकर सुन्दर वचन बोले– हे दिग्पाल गण, हे कच्छप जी, हे वाराह जी! तथा हे शेष जी! श्री राम जी महाराज शिव धनुष तोड़ना चाहते हैं–––

धरणि धरहु सब शक्ति लगाई। रहहु सजग जेहिं डोल न जाई॥
ताहि मध्य रघुपति धनु पासा। मन्द मन्द पहुँचे सुखरासा॥

———अतः आप सभी पृथ्वी को बलपूर्वक धारण किये रहें तथा सचेत रहें जिससे यह हिल न सके। उसी समय सुख की राशि श्री राम जी महाराज चलते हुये धीरे–धीरे श्री शिव–धनुष के समीप पहुँच गये।

पेखि प्रहर्षे सब नर नारी । देव मनावहिं विनती पारी ॥
जस जस समय निकट नियराई । तस तस सीतहिं अति विकलाई ॥

श्री राम जी महाराज को धनुष के समीप देख सभी स्त्री–पुरुष हर्षित हुए तथा विनती कर अपने अपने इष्टदेवताओं को मनाने (प्रसन्न करने) लगे। धनुष तोड़ने का समय जैसे जैसे समीप आता जा रहा था वैसे–वैसे श्री सीता जी के हृदय मे अत्यन्त व्याकुलता हो रही थी।

दो०— छन छन बीतत कल्प सम, धीर धरत नहिं प्रान ।
सीय दशा सीयहिं लखै, मन वाणी पर जान ॥३०३॥

जनक दुलारी श्री सीता जी का एक–एक क्षण कल्प के समान व्यतीत हो रहा था तथा प्राण धैर्य धारण नहीं कर रहे थे। श्री सीता जी की स्थिति तो श्रीसीताजी ही समझ सकती हैं उसे मन तथा वाणी के परे ही समझना चाहिए।

परम प्रीति सीता प्रभु देखी । कियो विचार मनहिं महँ लेखी ॥
निकसहिं प्राण सिया तन तेरे । छनक बिलम्ब करत यहि बेरे ॥

अपने प्रति श्रीसीताजी की अगाध प्रीति देखकर प्रभु श्रीरामजी महाराज ने मन ही मन में विचार कर निश्चित कर लिया कि इस समय एक क्षण का विलम्ब करने पर भी श्री सीता जी के शरीर से प्राण निकल जायेंगे।

जिय बिन देह औषधी दाना । समय चुके पुनि का पछिताना ॥
अस बिचार रघुवीर कृपाला । आश्रित रक्षण व्रत प्रतिपाला ॥

इस प्रकार प्राण से रहित देह (मृत शरीर) को औषधि का दान देना तथा समय व्यतीत हो जाने पर पश्चाताप करने से क्या लाभ? ऐसा विचार कर परम कृपालु श्रीरामजी महाराज नें अपने आश्रित जनों की रक्षा करने वाले व्रत को पालन करने का निश्चय कर लिया।

मुनिहिं प्रणाम कीन्ह मन माहीं । गुरु प्रभाव जनु सबहिं बताही ॥
पुष्प समान लिये कर चापा । दामिनि दमकी जनु दृग झाँपा ॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने मन ही मन गुरुदेव श्री विश्वामित्र जी को प्रणाम किया मानों वे सभी को श्री गुरुदेव जी का प्रताप बता रहे हों तथा श्री शिव जी के धनुष को फूल के समान हाथ में उठा लिया। उस समय सभी की आँखें अचानक मुद गयीं मानों बिजली सी चमक गयी हो।

धनुषहिं गोलाकार घुमाई । वेग प्रताप न दीन्ह दिखाई ॥
बाये करहिं लिये धनु सोहैं । यथा सुमन धनु काम विमोहै ॥

श्री राम जी महाराज नें शिव–धनुष को तीव्रता के साथ गोलाकार घुमाया जिससे वह वेग के कारण दिखाई नहीं पड़ा। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं

कि श्री राम जी महाराज उस महान शिव–धनुष को बाँये हाथ में लिये हुए उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे कामदेव फूलों का धनुष लिये हुए सभी को व्यामोहित करते हुये दिखाई देते हैं।

दो०– लेत चढ़ावत खैंचतहिं, लखे न देखन हार ।
संप्रवेग रघुनाथ के, निमिषि लगी नहि वार ॥३०४॥क॥

परम पराक्रमी श्री राम जी महाराज को श्री शिव–धनुष लेते, चढ़ाते तथा खींचते हुए, सभी देखने वालों में से कोई नहीं देख पाया क्योंकि श्रीरामजी महाराज का संप्रवेग इतना तीव्र था कि इन सब क्रियाओं में एक पलक गिरने का समय भी नहीं लगा।

तेहिं क्षन भंजेव राम धनु, भयो शब्द अति घोर ।
भरो त्रिलोकहिं पूर करि, दस दिशि महा कठोर ॥ख॥

उसी क्षण श्री राम जी महाराज ने श्री शिव जी के अत्यन्त कठोर धनुष का भंजन कर दिया जिससे अत्यधिक तीव्र ध्वनि हुई जो तीनों लोकों को पूर्ण रूप से व्याप्त कर दसों दिशाओं में गुंजरित हो गयी।

छं०– रह छाइ चारो ओर रव, त्रिभुवनहिं घोर भयावहा ।
शिव त्यागि औचक ध्यान तब, निज धनुष जान्यो नहिं रहा ॥
सुरराज बेधहुँ चौंक ध्वनि, सुनतहिं स्वकानन मुँदि लिये ।
चिक्कारि बोलत धारि भुँइ, प्रथमहिं लषण आयसु किये ॥

तीनों लोकों में श्री शिव–धनुष टूटने का वह कठोर तथा भयानक शब्द चारो दिशाओं में व्याप्त हो गया तब श्री शिव जी ने अचानक ध्यान त्यागकर समझ लिया कि अब हमारा धनुष संसार में नहीं रह गया अर्थात् टूट गया। देवराज इन्द्र भी उस देव–लोक को भेदन करने वाले शब्द से चौंक गये तथा सुनते ही अपने कानों को मूँद लिये एवं सभी दिग्पाल, श्री कच्छप जी, श्री वाराह जी तथा श्री शेष जी आदि श्री भूमि देवी को चीत्कार करते हुए सम्हाले रहे क्योंकि उन्हें श्रीलक्ष्मण कुमारजी ने पूर्व में ही आदेश दे दिया था।

रवि हाय चौंकत यान पर, सब अश्व तजि मारग चले ।
सिर शेष कूटत बार बहु, डगमगत धरती धरि भले ॥
अरु लोक तीनहुँ जीव यत, अति विकल सोचत कह भयो ।
प्रभु राम तोरेव शिव धनुष, हरषण जयति जय जय जयो ॥२॥

भगवान सूर्य–देव अपने रथ पर हाय! कहते हुए चौंक पड़े, उनके रथ के घोड़े अपने मार्ग को छोड़ कर चलने लगे। श्री शेष जी अपना शिर बारम्बार कूट–कूट कर डगमगाती हुई भूमि को भली प्रकार धारण किये रहे, तीनों लोकों में जो भी जीव थे वे अत्यन्त व्याकुल हो सोचने लगे कि यह क्या? हो गया तथा प्रभु श्री राम जी महाराज ने श्री शिवजी के प्रचण्ड धनुष का भंजन कर दिया ऐसा जानकर हमारे श्री सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्रीराम हर्षण दासजी महाराज ने जय हो, जय हो, जय

हो का सुन्दर नाद किया।

दो०– हरषि देव वरषहिं पुहुप, दुन्दुभि हनहिं सुभाय ।
जय जय बोलत सुख छये, रामहिं रमत अघाय ॥३०५॥

देवता हर्षित हो पुष्प–वर्षा करते हुए सुन्दर नगाड़े बजाने लगे तथा सुख में डूबकर जय–जयकार करते हुए संतुष्ट हो श्री राम जी महाराज में रम गये।

धनु दुइ खण्ड राम कर दीना । हरषे सकल पाइ जल मीना ॥
बिनु श्रम सहजहिं बिनु सुख फूले । ठाढ़े राम सबहिं अनुकूले ॥

राजकुमार श्री राम जी महाराज ने श्री शिव–धनुष को दो भागों में विभक्त कर दिया यह देखकर सम्पूर्ण जन–समुदाय उसी प्रकार हर्षित हुआ जैसे मछली को अगाध जल की प्राप्ति हो गयी हो। इस प्रकार श्री राम जी महाराज बिना परिश्रम किये, सहज स्वभावनुरूप बिना आनन्द प्रफुल्लित हुए सभी के अनुकूल बने शिव–धनुष को खण्डित कर खड़े हो गये।

तुरतहिं आतुर श्रीनिधि लाये । रत्न सिंहासन मुनि मन भाये ॥
रत्न जड़ी धनु बेदी बीचा । धरेव भाव भरि प्रेमहिं सींचा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तुरन्त ही आतुरता पूर्वक मुनियों के मन को भी मुग्ध करने वाला रत्न सिंहासन ले आये और भाव में भर प्रेम में समाये हुए उसे रत्नों से जड़ी हुई धनुष–वेदी के बीच रख दिये।

बैठे राम कृतज्ञ कृपाला । प्रणत पाल प्रण आपन पाला ॥
कुँअर सुगन्धित माल पिन्हाई । दै बीरी शुचि इत्र लगाई ॥

अनन्तर अपने प्रति किये उपकार को मानने वाले (कृतज्ञ) परम कृपालु श्री राम जी महाराज, आश्रित जनों का पालन करने वाला अपना प्रण पूर्ण कर उस सिंहासन में विराज गये। कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें सुगन्धित सुन्दर माला धारण कराई तथा ताम्बूल देकर पवित्र इत्र लगाया।

वारि चरण पुनि आपुहिं दीन्हा । छत्र चमर गहि सेवा कीन्हा ॥
मुनिन सहित कौशिक सुख छाये । लखन लखहिं प्रभु आनन्द पाये ॥

पुनः उन्होंने अपने आपको प्रभु चरणों में न्योछावर कर दिया तथा छत्र व चमर हाथ में लेकर कैंकर्य करने लगे। यह देखकर मुनिवर श्री विश्वामित्र जी सभी मुनियों सहित सुख से भर गये तथा श्री लखन लाल जी प्रभु श्रीरामजी महाराज को आनन्दपूर्वक देखने लगे।

दो०– जनक सुनयना मन मुदित, आनंद हिय न अमात ।
दम्पति निमिवर लाल की, सुख समृद्धि अधिकात ॥३०६॥

श्री जनक जी महाराज व श्री सुनैना जी का मन आनन्दित हो गया तथा उनके हृदय से आनन्द समा न सकने के कारण नेत्र व रोम मार्ग से उछल रहा था। दम्पति श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँवरि जी के सुख सम्पन्नता में तो बाढ़ ही आ गयी थी।

सिय सुख वरणि सकै नहिं कोऊ । शेष शारदा गणपति सोऊ ॥
आनन्द सिन्धु मगन नर नारी । पाय सुकृत फल भये सुखारी ॥

उस समय श्री सीता जी के हृदय में जो आनन्द हुआ उसका श्री शेष जी, श्री सरस्वती जी तथा श्री गणेश जी आदि कोई भी वर्णन नहीं कर सकते। मिथिलापुर के सभी पुरुष व स्त्री अपने पुण्यों के फल को पाकर सुखपूर्वक आनन्द के सागर में मग्न हो गये थे।

छन छन देव बजाय नगारा । गहगह गगन भरेव रव सारा ॥
शिव चतुरानन सिद्ध ऋषीशा । स्तुति करत विमानन दीशा ॥

देवता प्रत्येक क्षण उमंग में भर कर नगाड़े वाद्य बजाते हुए आकाश को शब्दायमान किये दे रहे थे। श्री शंकर जी, श्री ब्रह्मा जी, सभी सिद्ध–गण तथा ऋषि–मुनि आदि स्तुति करते हुए विमानों में दिखाई देने लगे,

जय जय कहि बहु वरषहिं फूला । स्रग सुगंध रंगहुँ मन भूला ॥
नाचहिं गावहिं सुर वर वामा । कहि जय जानकि जीवन श्यामा ॥

वे जय–जय उच्चारण करते हुए अपने मन को भूलकर फूल, माला, इत्र तथा रंग आदि मांगलिक वस्तुयें बहुतायत में वरषाने लगे। परम सुन्दरी देवांगनायें जानकी–जीवन श्याम सुन्दर श्री रामजी महाराज की जय कहती हुई नाचने लगीं।

गगन कोलाहल आनँद छाया । देव मगन मन मंगल गाया ॥
पुर महँ बाजे विपुल निसाना । झालर झाँझ शंख घड़ि नाना ॥
ढोल मृदंग भेरि सुखदाई । दुन्दुभि सुखद सरस शहनाई ॥

इस प्रकार आकाश में कोलाहल मच गया तथा देवता मन–मग्न हो श्री राम जी महाराज का मंगलानुशासन करने लगे। श्री मिथिला पुरी में बहुत से नगाड़े, झाँझ, झालर शंख, घड़ियाल, ढोल, मृदंग, भेरी, दुन्दुभी तथा शहनाई आदि कई प्रकार के सुखप्रद तथा सरस वाद्य बजने लगे।

दो०– वेद पढ़हिं पटु विप्र वर, जय जय धुनि चहुँ ओर ।
बन्दी मागध सूत शुचि, विरद कहहिं रस बोर ॥३०७॥

दक्ष–ब्राह्मण वेद पाठ करने लगे, चारों ओर जय–जयकार की ध्वनि छा गयी, बन्दी, मागध तथा सूत आदि, पवित्र विरद का प्रेमरस में डूब–डूब कर बखान करने लगे।

नारि करहिं मुद मंगल गाना । सुनि सुनि होवै मोद महाना ॥
नटहिं नर्तकी भाव बताई । प्रेम विवश तन दशा भुलाई ॥

पुरांगनायें आनन्द पूर्वक मांगलिक गीत गाने लगीं जिसे सुन–सुनकर महान आनन्द होने लगा। नर्तकियाँ भावों को प्रदर्शित कर नृत्य करने लगीं तथा प्रेम के वशी हो शारीरिक स्थिति भूल गयीं।

बरषहिं सुमन नगर नर नारी । बैठे रामहिं लखहिं सुखारी ॥
करि न्योछावरि मणि गण चीरा । सबहिं लुटावत प्रेम अधीरा ॥

श्री जनक नगर के स्त्री–पुरुष पुष्प वरषा रहे थे तथा सुख–पूर्वक विराजे हुए श्रीरामजी महाराज को निहार रहे थे। सभी लोग प्रेम में अधीर हो मणियाँ तथा वस्त्र आदि श्री राम जी महाराज की न्योछावर कर लुटा रहे थे।

जनक राय लक्ष्मीनिधि दोऊ। अमित दान दीन्हे रस मोऊ ॥
करहिं आरती सिया रमण की। पुरवासी सब भूलि तनन की ॥

उस समय पर श्री जनक जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी दोनों ने प्रेमरस में डूबकर असीमित दान दिया। अनन्तर सभी मिथिलापुर निवासी अपनी शारीरिक अवस्था को भूलकर श्री सीतारमण रामजी महाराज की आरती उतारने लगे।

नृप समाज हिय आनँद भारी। किये अरपि सरवस सुख कारी ॥
आनन्द सिन्धु मगन त्रैलोका। सुर नर मुनि सब संत अशोका ॥
कहि न जाय सुख सुनु हनुमाना। नयन देख मन अनुभव आना ॥

उपस्थित राज समाज के हृदय में उस समय महान आनन्द हुआ तथा उन सभी ने अपना सर्वस्व अर्पित कर स्वयं को सुखी कर लिया। उस समय त्रिलोक निवासी (देव, मनुष्य तथा नाग) आनन्द के सागर में मग्न थे, देवता, मनुष्य, मुनि तथा सन्त–जन सभी अत्यानन्दित हो गये थे। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! सुनिये, उस आनन्द का बखान नहीं किया जा सकता, उसे तो नेत्रों से देखकर मन में उसका मात्र अनुभव किया जा सकता है।

दो०–कार्मुक खण्डन राम को, भयो सबहिं सुख हेत।
सूखो लखि भव सिन्धु जिमि, नारकि मन सुख लेत ॥३०८॥

श्री राम जी महाराज के द्वारा श्री शिव–धनुष का तोड़ना सभी के लिए उसी प्रकार आनन्द का हेतु हुआ जिस प्रकार भवसागर को सूखा हुआ देखकर नरक गामी–जीव भी मन में सुखी होते हैं।

शतानन्द उपरोहित ज्ञानी। समय सुहावन हिय अनुमानी ॥
आयसु दीन्ह राम पहँ जाई। सीय देहिं जयमाल पिन्हाई ॥

परम ज्ञानवान उपरोहित श्री शतानन्द जी ने हृदय में सुन्दर समय का अनुमान कर श्री राम जी के समीप जा, आज्ञा दी कि श्री सीता जी अब विजय–माल श्री राम जी महाराज को पहना दें।

सुनत सखिन मन मोद अपारा। सीतहिं चलीं लिवाय सुखारा ॥
परत पाँवड़े मखमल शोभित। कनक खचित कोमल मन लोभित ॥

श्री शतानन्द जी की आज्ञा सुनते ही सखियाँ मन में असीम आनन्द को प्राप्त कर जनकदुलारी श्री सीताजी को सुखपूर्वक ले चलीं। उस समय वहाँ स्वर्ण सूत्र खचित कोमल तथा मन को लुभा लेने वाले मखमल के सुशोभित पाँवड़े पड़ने लगे।

मंद मंद पग धरत लजाती। सीता चली मनहिं हरषाती ॥
कर सरोज शोभित जयमाला। लसत सखिन बिच मूर्ति रसाला ॥

उन पाँवड़ों पर लज्जा के कारण मंद–मंद पदन्यास करती हुई श्री सीताजी मन में हर्षित हो

श्री राम जी महाराज को जयमाल पहनाने हेतु चल पड़ीं। वे हाथों में सुन्दर जयमाल लिये हुए सखियों के बीच रसमयी मूर्ति के समान सुशोभित हो रही थी।

नख शिख सुभग मनोहरताई । कहि न जाय मनही मन भाई ॥
राशि शत कोटि सुभग प्रिय आनन । अमित कोटि शत लक्ष्मी वारन ॥

विदेहराज नन्दिनी श्री सीता जी नख शिखान्त अवर्णनीय, मनोज्ञ व मन ही मन में अनुभव के योग्य सौन्दर्य सम्पन्ना थी। उनका प्रिय मुखमण्डल सौ करोड़ चन्द्रमा के समान सुन्दर था तथा उस पर असीमित सैकड़ों करोड़ (अनन्त) श्री लक्ष्मी जी न्योछावर हो रही थीं।

नख प्रकाश सब जगत प्रकाशा । तासु तेज किमि वरणै दासा ॥
अकथ अलौकिक सुन्दरताई । जासु अंश कण सृष्टि सुहाई ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि जिनके चरण नख के प्रकाश से ही सम्पूर्ण संसार प्रकाशित है उनके तेज का यह दास किस प्रकार वर्णन कर सकता है। उनमें तो अकथनीय तथा अलौकिक सुन्दरता है जिसके कणांश से सम्पूर्ण संसार की सुन्दरता प्रगट हुई है।

दो०—अमित अण्ड सौन्दर्य प्रिय, सिमिटि होंय इक रास ।
सिय शोभा इक अंश कन, तुलै न हर्षण दास ॥३०९॥

यदि असीमित ब्रह्माण्डों की प्रिय सुन्दरता भी एकत्रित होकर एक समूह बन जाय तो भी हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि वह सौन्दर्य राशि श्री सीता जी की सुन्दरता के एक अंश के कण के बराबर भी नहीं तौली जा सकती।

अंग अंग दिवि भूषण सोहे। लखत त्रिदेविहुँ मन तहँ मोहे ॥
कनक सूत्र वर साटि सुहाई । सुभग अंग अतिशय छवि छाई ॥

श्री सीता जी के सभी अंगों में दिव्य आभूषण सुशोभित हो रहे थे जिन्हें देखकर त्रिदेवियों का मन भी उनमें मोहित हो जाता था। उनके सुन्दर अंगों में स्वर्ण—सूत्र विनिर्मित सौन्दर्य की राशि विखेरती हुई सुन्दर साड़ी अत्यन्त सुशोभित हो रही थी।

कंकन किंकिनि नूपुर बाजत । रुनझुन रुनझुन सामहु लाजत ॥
सखिन बीच सिय सोह अपारी । नखत बीच जनु चन्दा सारी ॥

जनक राज तनया श्री सिया जू के कंकण, किंकिणी तथा नूपुर आदि आभूषण रुनझुन रुनझुन की ध्वनि करते हुए बज रहे थे जिस सुनकर सामवेद भी लज्जित हो रहे थे। सखियों के बीच में असीमित सौन्दर्य सम्पन्ना श्री सीता जी ऐसे सुशोभित हो रही थीं मानो नक्षत्रों के बीच में चन्द्रमा सुशोभित हो रहा हो।

मंगल गावहिं सखी सहेली । लाजहिं तिन लखि रती नवेली ॥
मधुर मधुर धुनि बाजत बाजा । भाँति अनेक सरस सुख साजा ॥

उनकी सखी सहेलियाँ मंगल गीत गा रही थीं जिन्हें देखकर परम नवला रती भी लज्जित हो रही थी। वहाँ अनेकों प्रकार के रसपूर्ण तथा सुखोत्पादक वाद्य मधुर–मधुर ध्वनि से बज रहे थे।

यहिं विधि लखि सब सभा जुड़ानी । कीन्ह प्रणाम सियहिं सुख सानी ॥
सबहिं हृदय अति होत उछाहा । माल पिन्हावन लखैं उमाहा ॥

इस प्रकार सखि–समाज सहित श्री सीता जी को देखकर सम्पूर्ण सभा का हृदय शीतल हो गया तथा सभी ने श्री सीता जी को सुख में डूबकर प्रणाम किया। उस समय सभी के हृदय में अत्यधिक उत्साह हो रहा था कि हम लोग जयमाल पहनाने की प्रक्रिया का आनन्दपूर्वक दर्शन करें।

दो०– रस रस चलति सुसीय तब, पहुँची रघुपति पास ।
देखि राम छवि ठठुकि करि, चित्र लिखी सी भास ॥३१०॥

इस प्रकार जनक दुलारी श्री सिया जी धीरे–धीरे चलती हुई जब श्रीरामजी महाराज के समीप पहुँच गयीं तब श्री राम जी महाराज की छवि देखकर स्तम्भित हो गयीं एवं चित्र लिखी हुई प्रतिमा सी प्रतीत होने लगी।

देखि देखि मन मोहनि मूरति । प्रेम विवश तन दशा विभूरति ॥
चतुर सखी बोली मृदु वानी । पहिरावहु जयमाल स्वपानी ॥

श्रीरामजी महाराज की मनमोहनी मूर्ति को देख–देखकर श्री सीता जी प्रेम के वशी हो शरीर की स्थिति का ज्ञान भूली जा रही थीं तब एक चतुरी सखी ने कोमल वचनों से कहा– हे श्री स्वामिनी जू! आप अपने हाथों से जयमाल पहना दीजिये।

सुनत सिया जय माल उठाई । प्रेम विवश कर रुके सुभाई ॥
देव मनुज किन्नर प्रिय वामा । प्रीति पगी लखि भाव ललामा ॥

सखी के वचन सुनते ही श्री सीता जी ने जयमाल उठा ली परन्तु प्रेम के वशी होने से उनके हाथ सहज ही रुक गये। उस समय देवता, मनुष्य तथा किन्नर आदि की प्रिय स्त्रियाँ श्री सीता जी के सुन्दर भाव को देखकर प्रेम में डूब गयीं।

माल उठाय सीय अस सोही । रामहिं जनु ललचावत जोही ॥
करि संकेत कहति जनु सीता । भंजन धनुष काल मोहि मीता ॥

विजयमाल उठाये हुए श्री सीता जी उस समय ऐसे सुशोभित हो रही थीं जैसे वे श्रीरामजी महाराज को माला दिखाकर ललचा रही हों तथा उनसे संकेत मे कह रही हों कि हे मेरे प्राण प्रिय सुहृद! शिव–धनुष तोड़ने के समय मुझे–––

तरसत तलफत इक छन कल्पा । बीत्यो करत मनहिं मन जल्पा ॥
सो फल चखहु नाथ येहि काला । धरहु धीर कस होत विहाला ॥

–––मन में अनेक प्रकार की कल्पनायें करते–करते, तरसते व तड़पते हुए प्रत्येक क्षण कल्प

के समान व्यतीत हो रहा था अतएव हे नाथ! इस समय आप उसका परिणाम लीजिये, आप विह्वल क्यों हो रहे हैं, धैर्य तो धारण कीजिये।

दो०—रघुवर लख तहँ सीय मुख, सलज सकोचहिं साथ।
मनहुँ कहत सिय लाड़िली, छमहु चूक तव नाथ ॥३११॥

तदनन्तर श्री राम जी महाराज ने लज्जा व संकोच के साथ श्री सीता जी के मुख की ओर देखा मानों वे कह रहे हों हे जनक लाड़िली श्री सिया जू! अपने स्वामी की भूल को क्षमा कर दीजिये।

देर भई धनु तोरन माहीं। निमिष कल्प सम बीत तहाँही॥
सो हिय समुझि लाज अति लागै। सन्मुख देखत नयनहुँ भागै॥

———मुझे धनुष तोड़ने में जो विलम्ब हुआ, उस समय आपको एक–एक पल का समय कल्प के समान व्यतीत हुआ है, उसे हृदय में समझ मुझे अत्यन्त लज्जा लग रही है तथा आपके समक्ष मेरी दृष्टि झुक जाती हैं अर्थात् आपसे मेरे नेत्र नहीं मिल पाते।———

अब मोहिं लगत निमिष बहु भारी। जनि तरसावहु जनक दुलारी॥
कछुक नीच सिर श्याम सलोना। किये क्षमा वत जनु सुख भौना॥

———परन्तु अब मुझे एक पल का समय भी बहुत भारी लग रहा है। अतः हे जनक दुलारी श्री सिया जू! आप मुझे लालायित मत करें। ऐसा कह श्याम सुन्दर श्रीरामजी महाराज ने अपना शिर कुछ नीचे कर दिया मानों सुख के सदन रघुनन्दन जी अपना अपराध क्षमा करा रहे हों।

भाव दूसरो सुखद बताई। देहु तुरत जयमाल पिन्हाई॥
देखि युगल छवि वरषहिं फूला। देव कहत जय मंगल मूला॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज दूसरा सुखप्रद भाव यह बता रहे हैं कि– श्री राम जी कह रहे हैं कि हमने शिर झुकाया है अब आप शीघ्र ही जयमाल पहना दें। दोनों (श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी) की सुन्दर छवि देखकर देवता पुष्प बरसाते हैं तथा सभी सुमंगलों की मूल जय–जयकार करते हैं।

तेहि छन जयमाला छवि वारी। सीय सुखद रघुवर गल डारी॥
वरषैं सुमन नगर नर नारी। छन छन देवहुँ होत सुखारी॥

उसी क्षण श्री सीता जी ने अत्यन्त सुन्दर शोभा सम्पन्न सुख प्रदायिनी "जयमाल" श्री राम जी महाराज के गले में पहना दी। उस समय मिथिलापुर के स्त्री, पुरुष व देवता सभी सुखपूर्वक प्रतिक्षण पुष्पों की वरषा कर रहे थे।

दो०—जय जय रव अति गूँज गो, परी निशानहिं चोट।
विविध भाँति बाजे बजे, दुन्दुभि बजत द्युओट ॥३१२॥

श्री राम जी महाराज के गले में जयमाल पहनाते समय सर्वत्र जय–जयकार का उच्च स्वर

गूँज गया, नगाड़ों पर चोटें पड़ने लगी, विभिन्न प्रकार के बाजे बजने लगे तथा आकाश में भी ओट से बड़े नगाड़े (दुन्दुभी) बजने लगे।

मंगल गान होन अति लागा । उमगि उमगि उमगत अनुरागा ॥
गौरी गणपति शिवहिं मनाई । राम संग सखि सियहिं बिठाई ॥

मांगलिक गीत गाये जाने लगे व सभी के हृदय का प्रेम उत्साहित होकर उमड़ाने लगा। तब श्री पार्वती जी, श्री गणेश जी व श्री शिव जी से मंगल कामना हेतु विनय कर सखियों ने श्री सीता जी को श्री राम जी महाराज के साथ बैठा दिया।

राम सिया लखि सुन्दर जोरी । नची शारदा प्रीति अथोरी ॥
उपमा खोजत कतहुँ न पाई । छवि समुद्र मन बुधिहिं डुबाई ॥

श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी की सुन्दर युगल छवि देखकर श्री सरस्वती जी अत्यन्त प्रेम पूर्वक नृत्य करने लगीं। श्री सीताराम जी की असमोर्ध्व जोड़ी की उपमा उन्हें खोजने पर भी कहीं प्राप्त नहीं हुई, उनके सौन्दर्य सागर ने श्री सरस्वतीजी के मन व बुद्धि को अपने में अस्त कर दिया था।

वरषहिं सुमन छनहिं छन देवा । जय जय कहत करत शुचि सेवा ॥
नाचहिं गावहिं पुर नर नारी । किन्नर देववधू सुख सारी ॥

देवता प्रति क्षण पुष्प वरसाते व जय–जयकार करते हुये श्री सीताराम जी की पवित्र सेवा करने लगे और श्री मिथिलापुर के स्त्री, पुरुष तथा गन्धर्व व देवताओं की स्त्रियाँ सुख में सनी हुई नाचने व गाने लगी।

करहिं आरती परम सुप्रीता । सकल नगर नर नारि पुनीता ॥
वित्त बिसारि करहिं निउछावर । मंगल पढ़ै सबहिं परमादर ॥

उस समय श्री मिथिलापुर के सभी स्त्री–पुरुष युगल सरकार श्री सीताराम जी की परम प्रीति पूर्वक पवित्र आरती उतार कर, अपनी स्थिति को भूल न्योछावर करने लगे तथा परम आदर पूर्वक श्री सीताराम जी का मंगलानुशासन करने लगे।

दो०–राम सिया शोभा निरखि, मगन सकल नर नारि ।
आत्म दरश योगी सुखहिं, शत गुण बढ़त पसारि ॥३१३॥

श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी की शोभा को देख–देखकर सभी मिथिलापुर वासी पुरुष–स्त्री सुख में मग्न हो रहे थे। उस समय का उनका आनन्द एक योगी को आत्मदर्शन से प्राप्त सुख से सौ गुना अधिक था।

जोरी सुभग निहारि निहारी । शान्ति पढ़हिं सब विप्र सुखारी ॥
मागध सूत बन्दि भल भाटा । युगल विरद वरणहिं बहु ठाटा ॥

श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी की अनुपमेय सुन्दर जोड़ी देख–देखकर सभी ब्राह्मण

वृन्द सुखपूर्वक शान्ति पाठ कर रहे थे। मागध, सूत, बन्दी तथा भाट आदि सभी युगल सरकार के उभय कुलों के सुन्दर विरद का विस्तृत वर्णन कर रहे थे।

देखि युगल छवि त्रिभुवन वासी। भये मगन मन आनन्द रासी॥
त्रिभुवन भयो महा जय शोरा। राम लहे सिय चापहिं तोरा॥

श्री सीताराम जी (दोनो) की सुन्दर छवि देखकर त्रिलोक निवासियों के मन आनन्द की राशि में मग्न हो गये। तीनों लोकों में महान जय नाद हुआ कि प्रभु श्री राम जी महाराज ने श्री शिव–धनुष का खण्डन कर श्री सीता जी को प्राप्त कर लिया।

दम्पति जनक सरस सुखदाई। कथा कुँअर की नहि कहि जाई॥
इन सम सुख इनहिन सब पाये। जानहिं सोइ मन अनुभव लाये॥

यह श्री सीताराम जी की युगल छवि दम्पति श्री जनक जी महाराज व श्री सुनैनाजी को अत्यन्त रसमयी तथा सुख प्रदायक हुई। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की तो कथा ही कहते नहीं बनती। इन सभी के समान सुख तो इन्हीं लोगों ने प्राप्त किया है तथा वे ही इस सुख को जानते व अपने मन में अनुभव करते हैं।

महा महोत्सव सादर कीने। राम सिया हित परम प्रवीने॥
भूसुर याचक प्रजा समाजा। पाये अमित द्रव्य सुख साजा॥

परम दक्ष इन सभी ने श्री सीताराम जी के मंगल हेतु आदर पूर्वक महान महोत्सव किया जिसमें ब्राह्मण, याचक तथा प्रजावर्ग ने असीमित द्रव्य एवं सुख की सामग्री प्राप्त की।

दो०–विस्मय दायक सबहिं सुख, भयो परत जयमाल।
धनि धनि मिथिलापुर कहहिं, ब्रह्महुँ भये निहाल॥३१४॥

"जयमाल" पड़ते समय सभी को अत्यन्त आश्चर्यजनक सुख प्राप्त हुआ तथा वे सभी (ब्राह्मण, याचक व प्रजावर्ग) कह रहे थे कि श्री मिथिला पुरी धन्याति–धन्य है जहाँ पूर्णतम परब्रह्म श्रीरामजी महाराज भी पूर्णकाम हो गये हैं।

ब्रह्मादिक दिवि देव मुनीशा। जय जय कहि सब देहिं अशीशा॥
सतानन्द शुभ आयसु पाई। सखी चलीं सुख सियहिं लिवाई॥

उस समय श्री ब्रह्मा जी आदि दिव्य देवता तथा मुनिगण जय–जयकार करते हुए श्री सीताराम जी को मंगलमय आशीर्वाद देने लगे। तदुपरान्त पुरोहित श्रीशतानन्दजी की शुभ–आज्ञा पाकर सखियाँ सुखपूर्वक श्री सीता जी को लिवा कर ले चलीं।

मंगल करहिं सकल सुखदाई। चिरंजीवि सिय कहैं सुभाई॥
जय जय जय सब जयति पुकारैं। वरषहिं सुमन सकल सुख सारैं॥

वे सखियाँ सुखदायी मंगलानुशासन करती हुई, श्री सिया जू चिरंजीवी हों कह रही थीं। उस समय सभी जय जय उच्चारण कर रहे थे तथा सुख में सने हुए पुष्प वरषा रहे थे।

यहि विधि सिय जहँ मातु सुनयना । गयी कछुक सकुचत हिय ऐना ॥
रामहुँ चले मुदित मुनि पाहीं । जय जय जय सब कहहिं सुभाहीं ॥

इस प्रकार श्री सीताजी हृदय में कुछ सकुचाती हुई अम्बा श्री सुनैनाजी के समीप भवन को चली गयीं। श्रीरामजी महाराज भी आनन्द पूर्वक मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के समीप चल दिये तब सभी लोग स्वाभाविक ही जय–जयकार करने लगे।

चलत लुभानी चाल रसाला । पहुँचे गुरु समीप प्रण पाला ॥
कीन्ह प्रणाम हृदय हरषाई । लीन्ह मुनीश हृदय छपकाई ॥
दीन्ह अशीश हृदय हरषाया । पूर्ण काम नयनन फल पाया ॥

अनन्तर श्री जनकजी महाराज की प्रतिज्ञा को पूर्ण कर मनोमुग्धकारी चाल से चलते हुए रस स्वरूप श्रीरामजी महाराज अपने श्री गुरुदेव जी के समीप पहुँच गये व हृदय में हर्षित हो उन्हें प्रणाम किये। तब मुनीश्वर श्री विश्वामित्र जी ने उन्हें हृदय से चिपका लिया और अपने नेत्रों के परम फल श्रीरामजी महाराज को पाकर पूर्ण–काम हो हर्षित हृदय आर्शीवाद प्रदान किया।

दो०–राम लखन दोउ बन्धु सह, कौशिक मुनि सुख पाय ।
हरषि चले निज वास गृह, जय जय शब्द सुहाय ॥३१५॥

तदुपरान्त श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार दोनों भाइयों सहित मुनिवर श्री विश्वामित्र जी सुख प्राप्त कर हर्षित हो अपने निवास गृह चल दिये, उस समय जय–जय की सुहावनी ध्वनि सर्वत्र सुनाई पड़ रही थी।

भई विसर्जन सभा सुखारी । वरणत राम सीय यश भारी ॥
सबके हृदय अमित अभिलाषा । विधिवत लखैं विवाह विलासा ॥

इस प्रकार श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी की महनीय कीर्ति का वर्णन करते हुए सुखपूर्वक सभा विसर्जित हुई। उस समय सभी लोगों के हृदय में यही प्रबल इच्छा हो रही थी कि हम विधिपूर्वक श्री सीताराम जी की वैवाहिक लीला का दर्शन करें।

समय पाइ पुनि तिरहुत राया । कीन्ह प्रणाम कौशिकहिं जाया ॥
पानि जोरि वर विनय सुनावा । नाथ कृपा शिव चाप नशावा ॥

पुनः समय प्राप्त कर तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज मुनिराज श्री विश्वामित्र जी के समीप जाकर उन्हें प्रणाम किये तथा हाथ जोड़कर सुन्दर विनय सुनाये– हे नाथ! आपकी कृपा से विशाल शिव–धनुष का खण्डन हो गया।–––

राम लखन मोहि किये कृतारथ । पायों आज परम परमारथ ॥
उचित होय अब कीजिय सोई । चहत सबहिं परिणय सुख जोई ॥

–––श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी ने मुझे कृतकृत्य कर दिया तथा मैंने तो आज परम परमार्थ ही प्राप्त कर लिया। अतः अब यथोचित निर्देशन दिया जाय, क्योंकि सभी जन श्री सीताराम जी के वैवाहिक सुख का दर्शन करना चाहते हैं।

गाधि तनय कह सुनु नृप ज्ञानी । भयो विवाह लेहु तुम जानी ॥
धनु आश्रित रह सिया विवाहा । राम तोरि तेहिं भे सिय नाहा ॥

श्री विदेहराज जी की विनय श्रवण कर गाधिनन्दन श्री विश्वामित्र जी ने कहा– हे परम विवेकी महाराज जनक जी! सुनिये, यह बात आप जान लें कि विवाह तो हो चुका क्योंकि श्री सीता जी का विवाह तो श्री शिव–धनुष पर ही आधारित था जिसे तोड़कर श्रीरामजी महाराज श्री सीतापति हो गये।

भयो विदित नृप तीनहुँ लोका । तदपि करहु श्रुति रीति अशोका ॥
करि कुल रीति यथावत राजा । करहु विवाह बुलाय समाजा ॥

यद्यपि यह बात तीनो लोकों में ज्ञात हो गयी है तथापि हे राजन! आप आनन्दपूर्वक वेद–रीति का अनुसरण करते हुए अपने कुल की प्रथा के अनुसार विधिवत समाज बुलाकर विवाह कार्य सम्पन्न करें।

दो०– चक्रवर्ति दशरथ नृपति, लै समाज उत्साह ।
आवहिं इत मिथिलापुरिहिं, लखैं सप्रेम विवाह ॥३१६॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज उत्साहपूर्वक अपने समाज सहित यहाँ श्री मिथिला पुरी आवें और प्रेमपूर्वक श्री सीताराम विवाह का दर्शन करें।

गाधि तनय कह गौतम पूता । अवधहिं जाय आप सह दूता ॥
मुनि वशिष्ठ ढिग जाइ मुनीशा । समाचार वरणे सब दीशा ॥

पुनः गाधिनन्दन श्री विश्वामित्रजी ने कहा– हे गौतम–सुवन श्री शतानन्द जी आप राजदूत के सहित श्री अयोध्या पुरी को जाइये व मुनिवर श्री बसिष्ठ महाराज के समीप जाकर यहाँ का आँखों–देखा सभी समाचार वर्णन कीजियेगा–––

करि प्रणाम वर विनय सुनायेहु । हेतु विवाह राम कर गायेहु ॥
दशरथ नृपति बरातहिं साथा । आवहिं जनकहिं करन सनाथा ॥

–––तथा उन्हें प्रणाम कर, विनय करियेगा कि श्री राम जी के विवाह हेतु चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज बारात को साथ लेकर श्री विदेहराज जी को सनाथ करने हेतु श्री मिथिलापुरी पधारें।–––

हम युत जनकहुँ विनय सुनाई । प्रीति रीति सब कहेव सुभाई ॥
सब विधि योग आप वर ज्ञानी । करि संकेत कहा कछु वानी ॥

आप हमारे सहित श्री जनक जी महाराज की विनय सुनाकर सम्पूर्ण स्वाभाविक प्रीति–रीति का वर्णन कीजियेगा। आप तो सभी प्रकार से योग्य, श्रेष्ठ व ज्ञानवान हैं इसलिए संकेत से हमने किंचित वाणी का विनियोग किया है।

अवध छोड़ि जबते रघुवीरा । आये चरित किये रणधीरा ॥
मातु उधार चाप शिव खण्डन । सबहिं सुनायेहु द्विजकुल मण्डन ॥

जब से श्री राम जी महाराज अयोध्यापुरी छोड़कर आये थे तब से अब तक जो अनेक प्रकार

के रण–कौशल के चरित्र उन्होने किये हैं उन्हे तथा अपनी माता श्री अहल्याजी के उद्धार व श्री शिव–धनुष खण्डन आदि सभी चरित्र, हे ब्राह्मण कुल के श्रृंगार श्री शतानन्द जी! आप श्री बशिष्ठ जी को सुना दीजियेगा।

दो०– नृप वशिष्ठ मंत्री द्विजन, संतन सह सुबरात ।
लै साथहिं द्रुत आवहीं, शत बातन इक बात ॥३१७॥

पुनः सौ बातों की एक बात यही है कि– चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज, अपने गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी, मंत्रियों, ब्राह्मणों तथा संतो के सहित बारात लेकर शीघ्र ही यहाँ मिथिलापुरी आ जायें।

आयसु पाइ भोर नृपराई । अति प्रवेग रथ दियो सजाई ॥
भेंट अमित देवन के काजा । औरे रथहिं धरायो राजा ॥

इस प्रकार श्री विश्वामित्र जी की आज्ञा प्राप्तकर प्रभात होते ही श्री जनक जी महाराज ने एक अत्यन्त वेगशाली रथ सजा दिया तथा भेंट में देने के लिए असीमित सामग्री अन्य रथों में रखवा दी–––

कछु सेवक कछ ब्राह्मण साथा । हृदय सुमिरि सियवर रघुनाथा ॥
रथ चढ़ि चले अवध सुख पाई । गौतम सुवन हृदय हरषाई ॥

–––तब हृदय में सीतापति श्रीरामजी महाराज का स्मरण कर कुछ सेवकों व ब्राह्मणों के साथ गौतम कुमार श्री शतानन्द जी रथ में चढ़कर सुखपूर्वक हर्षित हृदय हो श्री अयोध्या पुरी चल दिये।

इहाँ जनक शुभ समय बुलाये । नगर महाजन धनपति आये ॥
कार्य कुशल बहु गुनी विराजे । जिनहिं देखि विशुकर्मा लाजे ॥

यहाँ श्री जनक जी महाराज ने शुभ–अवसर में एक सभा बुलवायी जिसमें श्री जनक–नगर के महाजन, व्यापारी व धनीमानी लोग आये। उस सभा में बहुत से कार्य–कुशल तथा गुणी–जन भी आये जिन्हें देखकर देव शिल्पी श्री विश्वकर्मा जी भी लज्जित हो जाते थे।

याज्ञबल्क गुरु कौशिक आदी । बैठे मुनि परमारथ वादी ॥
गाधि तनय कह सबहिं सुनाई । मम सँग राम लखन दोउ भाई ॥

उस सभा में गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी व श्री विश्वामित्र जी आदि परमार्थवादी मुनिगण भी विराजे हुए थे, वहाँ गाधिनन्दन श्री विश्वामित्रजी ने सभी को सुनाकर कहा कि– दोनो भाई, श्री राम जी महाराज व श्री लखन लाल जी तो मेरे साथ ही हैं।

राम बिना कस अवध उछाहा । नेग चार कुल रीति विवाहा ॥
करिहैं मातु प्रेम सरसानी । यह संशय सब सुनहिं सुजानी ॥

अतः आप सभी ज्ञानीजन सुने! श्री रामजी महाराज के बिना श्री अयोध्यापुरी में किस प्रकार आनन्द–उत्साह होगा तथा नेगचार और कुल–रीति आदि वैवाहिक कृत्य मातायें प्रेम में सरसायी हुई कैसे करेंगी। मुझे यही संदेह हो रहा है।

दो०– ताते मिथिला बाहरहिं, शुचि सरि कमला तीर ।
अवधपुरी सम अवधपुर, रचना रस गम्भीर ॥३१८॥

इसलिए श्री मिथिलापुरी के बाहर पवित्र नदी श्री कमला जी के किनारे श्री अयोध्या पुरी के समान ही गंभीर तथा रसमयी नवीन श्री अयोध्या पुरी का निर्माण———

होवै तुरत सबहिं सुन लेहू । अहै अवनि पति आयसु एहू ॥
सब विधि रचना रचहु समाना । जाहि देखि सुरपुरी लजाना ॥

———शीघ्र ही हो, आप सभी यह बात सुन लें। हे राजन! यह हमारी आज्ञा है कि यह निर्माण आप सभी प्रकार से श्री अयोध्या पुरी के समान ही करवायें जिसे देखकर देवताओं की नगरी (इन्द्रपुरी) भी लज्जित हो जाय।

नारि सहित तहँ दशरथ आई । सब समाज जस अवध सुहाई ॥
वास करैं सुख सह सुख साजा । भाइन भृत्यन सहित समाजा ॥

जिससे श्री दशरथ जी महाराज अपनी महारानियों व समाज सहित जिस प्रकार श्री अयोध्या पुरी में सुशोभित होते हैं उसी प्रकार ससमाज यहाँ आकर सुखपूर्वक सुख सामग्रियों का उपभोग करते हुए भाइयों व सेवकों सहित इस श्री अवध में निवास करें———

राम मातु तहँ पुत्र विवाही । कुल श्रुति देश रीति निरवाही ॥
पुत्र राम सुख पाइहिं सोई । सुत परिणय जस आनन्द होई ॥

———श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशल्या जी वहाँ कुल, वेद तथा देश–रीति का निर्वाह करते हुए अपने पुत्र श्री राम जी महाराज का विवाह करेंगी तभी वे पुत्र के विवाह में होने वाला आनन्द अपने पुत्र श्री राम जी के विवाह में प्राप्त कर सकेंगी।

नाहित राम व्याह घर जैहैं । सो सुख केवल देखन पैहैं ॥
प्रथम लगन ते मातु उछाहा । जस जस प्रतिदिन बढ़े उमाहा ॥

अन्यथा जब श्रीरामजी महाराज विवाह कर अपने घर वापस जायेंगे केवल उसी सुख का दर्शन वे श्री राम माता प्राप्त करेंगी। लग्न के पूर्व से माताओं का आनन्दपूर्वक उत्साह जिस–जिस प्रकार प्रतिदिन बढ़ता जाता है,———

टीका नहछू परिछन प्रीती । जननि भवन जस करैं सुरीती ॥
दूलह वेश बनाय विभाता । यथा लखहिं हिय हरषित माता ॥
वर सह करत पयान बराती । देख मातु सुख सिन्धु समाती ॥

———टीका, नहछू तथा परिछन आदि कृत्य मातायें अपने भवन में प्रीति व रीति पूर्वक करती हैं तथा सुन्दर दूलह वेश बनाकर जिस प्रकार माताएँ हर्षित हृदय उसे निहारती हैं एवं दूलह के सहित बारात प्रस्थान करते देख मातायें जिस प्रकार सुख के सागर में मग्न हो जाती हैं।———

दो०–ये आनँद छुटि जाहिं सब, रानि कौशिला केर ।
ताते अवध बसाय इत, उनहिं देहिं सुख ढेर ॥३१९॥

———महारानी श्री कौशिल्या जी के ये सभी आनन्द छूट जायेंगे इसलिए यहीं श्री मिथिलापुरी में ही श्रीअयोध्यापुरी वसाकर उन्हें राशि–राशि सुख प्रदान करें।

बनै अलौकिक मण्डप व्याहा । देखि छकहिं विधि सह सुरनाहा ॥
रचहु नगर दिवि चारहु ओरी । बीथि हाट चौराह उजोरी ॥

पुनः एक अलौकिक विवाह–मण्डप का निर्माण हो जिसे देखकर श्री ब्रह्मा जी सहित देवराज इन्द्र भी आश्चर्य चकित हो जायें। उस नवीन अयोध्या के बाहर चारो ओर दिव्य प्रकाश युक्त मार्ग, बाजार तथा चौराहों का भी निर्माण कराया जाय।

गुनिन्ह करन यावत निपुनाई । देखी सुनी पुराणन गाई ॥
सो सब निमिपुर होय प्रकाशी । जाहि देखि मन आनन्द वासी ॥

देखी, सुनी व पुराणों में वर्णित जितनी भी निपुणता गुणीजन कर सकते हैं वे सभी कलायें श्री निमिपुरी में प्रकट हों जिन्हें देखकर मन में आनन्द का निवास हो जाय।

सुनि रजाय मुनिवर सह राजा । भई विसर्जन सकल समाजा ॥
कमला तट दिवि नगर बनावा । बहु विचित्र रचना सरसावा ॥

मुनिश्रेष्ठ श्री विश्वामित्र जी की आज्ञा व श्री जनक जी महाराज की सहमति के साथ लोगों की सभा विसर्जित हुयी तथा श्री कमला जी के किनारे दिव्य नगर का निर्माण हुआ जिसकी रचना अत्यन्त विचित्र तथा सुख सम्वर्धनकारी थी।

नाम अयोध्या ताकर दीन्हा । पुरी अवध सम मन हर लीन्हा ॥
वारहिं इन्द्रपुरी शत तापै । सीय कृपा सब विधि सुख जापै ॥

उसका नाम 'श्री अयोध्या पुरी' रखा गया वह पुरी श्री अवधपुरी के समान ही मन को हरण करने वाली थी। उस पर सैकड़ों इन्द्र पुरियाँ भी न्योछावर हो रही थीं तथा श्री सीता जी की कृपा से सभी प्रकार के सुखोपभोग की सामग्री वहाँ उपस्थित थी।

दो०–हाट वाट सुन्दर ठटेउ, राज सदन सुख ऐन ।
ध्वज पताक फहरन लगे, बाजत नौवति चैन ॥३२०॥

उस नवीन श्री अयोध्या पुरी में बाजार, मार्ग व सुखों के आगार राजभवन आदि भली प्रकार सुसज्जित हो गये, सर्वत्र ध्वजा व पताकाएँ फहराने लगी और आनन्दर्पूक नौवतें बजने लगीं।–––

रचि वर वास अनूप सुहावा । बरवश देखत मनहिं लुभावा ॥
मण्डप रचना कीन्ह सुहाई । श्री शोभा जनु मेलि बनाई ॥

–––जिसे देखते ही मन हठात् लुभा जाता था इस प्रकार सुन्दर और अनुपमेय निवास–स्थल (जनवास गृह) का निर्माण कर विवाह मण्डप की सुन्दर रचना की गयी मानो उसका निर्माण वैभव व सुन्दरता दोनों को मिलाकर किया गया हो।

वर दुलहिन जहँ श्याम सुश्यामा । ब्रह्म शक्ति वपु धरे ललामा ॥
रघु किशोर प्रिय जनक किशोरी । जासु अंश जग छटहिं लखोरी ॥

जहाँ दूलह–दुलहिन के रूप में स्वयं पूर्णतम परब्रह्म तथा परमाद्या शक्ति ही सुन्दर शरीर

धारण किये हुए हैं व जिनकी शोभा के कणांश से सम्पूर्ण संसार की सुन्दरता आधारित है वे श्री रघुकुल किशोर श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज तथा श्री जनक किशोरी सुन्दर श्यामा श्री सीता जी हैं।

तेहिं वितान की कहत सुशोभा। गणप शारदा अहिपति छोभा॥
सो मैं कहौं कवन विधि गाई। उदधि थाह चींटी नहिं पाई॥

हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– उस विवाह–मण्डप की सुन्दरता व शोभा का बखान करने में तोपरम बुद्धिमान श्री गणेश जी, श्री सरस्वती जी तथा श्री शेष जी को भी क्षोभ रह जाता है फिर मैं अल्पमति उसे किस प्रकार बखान कर सकता हूँ क्योंकि सागर की थाह एक छोटी चींटी नहीं पा सकती।

विविध भाँति निमि नगर सजाया। मनहुँ मदन निज हाथ बनाया॥
रिद्धि सिद्धि युत पुरी सुहाई। शिव सुरेश विधि लोक लजाई॥

श्री निमिनगर (मिथिलापुर) को विभिन्न प्रकार से सजाया गया था मानों स्वयं कामदेव ने ही उसे अपने हाथों से बनाया हो। श्री मिथिला पुरी सभी रिद्धियों व सिद्धियों से परिपूर्ण होकर सुशोभित हो रही थी जिसे देखकर श्री शिव जी, देवराज श्री इन्द्र जी तथा श्री ब्रह्मा जी के लोक भी लज्जित हो रहे थे।

दो०– नीच जाति नर नारि लखि, सम्पति सदन सुपास।
विधि सुरेश लाजत मनहिं, शची शारदा जास॥३२१॥

श्री मिथिलापुरी के निम्न जाति के पुरुषों की स्त्रियों, सम्पदाओं, भवनों तथा सुविधाओं को देखकर श्री ब्रह्मा जी व देवराज इन्द्र जी भी मन में लजा जाते थे जिन्हें श्री सरस्वती जी व श्री शची जी जैसी स्त्रियाँ तथा ब्रह्मलोक व इन्द्रलोक की सुविधाएँ सम्प्राप्त हैं।

आदि शक्ति जहँ करैं विहारा। भृकुटि विलास जासु जग सारा॥
तेहिं पुर शोभा कौन बखानैं। बड़े बड़े सब थाकहिं मानैं॥

जिनके भ्रू संकेत से सम्पूर्ण संसार की स्थिति है वही परमाद्या शक्ति जहाँ विहार करती हों उस श्री मिथिलापुरी की शोभा का कौन बखान कर सकता है क्योंकि सभी बड़े–बड़े बुद्धिमान जन भी उसका वर्णन करने में अन्त न पा सकने के कारण थकान का अनुभव करते हैं अर्थात् पूर्णतया वर्णन नही कर पाते।

पहुँचे शतानन्द सरसाई। कीन्हे सरयू दरश नहाई॥
मुनि बशिष्ठ आश्रम पगु धारे। देखत मुनिवर भये सुखारे॥

मुनिवर श्री शतानन्द जी सुख में सरसाये हुए श्री अयोध्यापुरी पहुँचकर श्री सरयू जी का दर्शन किये तथा स्नान कर मुनिश्रेष्ठ श्री बसिष्ठ जी के आश्रम गये। उन्हें देखते ही श्री बसिष्ठ जी अत्यन्त सुखी हुए।

मिले परस्पर प्रीति सुहाती। यथा योग पूछे कुशलाती॥
किये यथा विधि मुनि सतकारा। गौतम सुत मन मोद अपारा॥

श्री बशिष्ठ जी व श्री शतानन्द जी परस्पर में सुन्दर प्रीति–पूर्वक मिले व यथा–योग कुशल समाचार पूँछे। श्री बसिष्ठ जी ने विधि–पूर्वक श्री गौतम नन्दन शतानन्दजी का स्वागत सत्कार किया जिससे श्री शतानन्द जी के मन में असीम आनन्द छा गया।

अशन अराम कीन्ह सुख पैठे। बहुरि दोउ शुभ आसन बैठे ॥
जनक पुरोहित विनय सुनाई। यथा गाधि सुत कहेव बुझाई ॥

दोनों मुनियों श्री बशिष्ठ जी व श्री शतानन्द जी ने सुखपूर्वक भोजन व विश्राम किया पुनः वे दोनों शुभ आसनों में विराज गये तब श्री जनक जी महाराज के उपरोहित श्री शतानन्द जी ने अपनी विनय सुनाई जैसा कि, गाधिनन्दन श्री विश्वामित्रजी ने उन्हें समझाकर कहा था–

दो०–मुनि बसिष्ठ आनन्द सने, राम लखन सुधि पाय।
भये मगन प्रभु प्रेम महँ, नयन नीर पुलकाय ॥३२२॥

श्रीशतानन्द जी के मुख से श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार का समाचार पाकर मुनिवर श्री बसिष्ठजी आनन्द में सने हुए प्रभु प्रेम में मग्न हो गये। उनका शरीर पुलकित हो गया तथा नेत्रों में अश्रु आ गये।

भेजि शिष्य दशरथहिं बुलाये। सुनि निदेश तहँ नृप वर आये ॥
गुरु बसिष्ठ पद सादर बन्दे। लहिं अशीष अति भये अनन्दे ॥

अननतर श्री बशिष्ठ जी ने शिष्य भेजकर श्री दशरथ जी महाराज को बुलवाया तब उनकी आज्ञा सुनकर वहाँ श्री दशरथ जी महाराज आ गये। उन्होंने रघुकुल गुरुदेव श्री बसिष्ठजी के चरणों की आदरपूर्वक वन्दना की तथा आशीर्वाद पाकर अत्यन्त आनन्दित हुए।

शतानन्द पाँयन पुनि लागे। महि धरि मुकुट महिप अनुरागे ॥
हिय लगाय शुभ आशिष दीने। जनक पुरोहित प्रेम प्रवीने ॥

पुनः महाराज श्री दशरथ जी ने अपना मुकुट भूमि में रखकर श्री शतानन्द जी के चरणों में अनुराग पूर्वक प्रणाम किया तब श्री जनक जी महाराज के प्रेम प्रवीण उपरोहित श्री शतानन्द जी ने उन्हें हृदय से लगाकर शुभाषीष प्रदान की।

आयसु अकनि बैठि नृप आसन। तब बसिष्ठ बोले भल भाषन ॥
राम लषन सुधि मुनिवर लाये। कौशिक संग दोउ सुख छाये ॥

आज्ञा पाकर जब चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज आसन में विराज गये तब श्री बसिष्ठ जी सुन्दर वाणी से बोले–राजन्! ये मुनिश्रेष्ठ श्री शतानन्द जी हैं जो श्रीरामजी महाराज व श्री लखन लाल जी का समाचार लाये हैं। वे श्री विश्वामित्र जी के साथ सुखपूर्वक हैं।

सुनतहिं दशरथ भये विभोरा। आगिल चरित सुनेउ नहि थोरा ॥
प्रेम समाधि निमग्न नृपाला। परशि जगाये मुनि ततकाला ॥

अपने आत्मज श्री राम जी का समाचार सुनते ही श्री दशरथ जी महाराज प्रेम विभोर हो गये तथा आगे का चरित्र किंचित भी न सुन सके। श्री दशरथ जी महाराज को प्रेम समाधि में डूबे हुए

देखकर मुनिवर श्री वसिष्ठजी ने उनका स्पर्श कर उन्हें शीघ्र ही विस्मृति से जगा दिया।

दो०– नृपति कहेउ धनि धनि भयेउँ, राम लखन सुधि पाय।
जब सों मुनिवर लै गये, तब सो जिय अकुलाय ॥३२३॥

श्री दशरथ जी महाराज ने कहा– श्री राम जी व श्री लखन लाल जी का समाचार पाकर मैं धन्यातिधन्य हो गया क्योंकि जब से मुनिश्रेष्ठ श्री विश्वामित्र जी उन्हें ले गये थे तब से मेरा हृदय उनका समाचार जानने हेतु आकुल हो रहा था।

बार बार विनवौ मुनि तोही। सुखकर चरित सुनावहु मोहीं॥
कहाँ वसत रघुवर एहिं काला। पूरण यज्ञ भयो मुनि पाला॥

हे मुनिवर श्री शतानन्द जी! मैं बारम्बार आपसे प्रार्थना करता हूँ कि– हमारे राजकुमार श्री राम जी का परम सुखकारी चरित्र मुझे सुनाइये। श्री राम जी इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं, क्या मुनिवर श्री विश्वामित्र जी का यज्ञ पूर्ण हो गया?

कबहिं आय इत दरशन दैहैं। पुर नर नारि सुभाग मनैहैं॥
देखे आप मोर सुकुमारे। काक पक्ष शिर शर धनु धारे॥

वे कब आकर, मुझे दर्शन देंगे तथा उनके आगमन व दर्शन से श्री अयोध्या पुर वासी पुरुष–स्त्री कब अपना सौभाग्य मानेंगे। हे मुनिवर! क्या? आपने मेरे सुकुमार राजकुमारों को देखा है, वे शिर में काक–पक्ष तथा हाथों में बाण व धनुष धारण किये रहते हैं।

श्याम गौर मृदु वयस षोड़सी। परम पूत प्रिय प्राण प्राण सी॥
जब ते गये आज लौं बाला। कहहिं कुशल मुनिवर एहिं काला॥

वे श्याम और गौर वर्ण वाले, दोनो सुकुमार सोलह वर्ष की अवस्था वाले तथा परम पवित्र–प्राणों के समान प्रियकारी हैं। हे मुनिवर! वे कुमार जब से गये हैं तबसे आज तक का सभी कुशल समाचार आप इस समय मुझसे बखान करें।

अस कहिं चरण शीश धरि दीना। द्विज वर कहन लगे सुख भीना॥
जातहिं राम ताड़का मारी। सबहिं सुरन्ह जय जयति पुकारी॥

ऐसा कहकर महाराज श्री दशरथ जी ने श्री शतानन्द मुनि जी के चरणों में अपना शिर रख दिया तब ब्राह्मण श्रेष्ठ श्री शतानन्द जी सुख में समाये हुए कहने लगे– श्री राम जी महाराज ने यहाँ से जाते समय ही मार्ग में ताड़का नामक राक्षसी का संहार किया, जिसे देखकर सभी देवताओं ने उनकी जय कार की।

दो०– अस्त्र शस्त्र सब अर्पि पुनि, विद्या रहस बताय।
सुख सह आश्रम पहुँच के, कीन्हे यज्ञ बनाय ॥३२४॥

पुनः श्री विश्वामित्र जी ने अपने सभी प्रकार के अस्त्र–शस्त्र, उनके रहस्य व ज्ञान को बताकर श्री राम जी महाराज को अर्पित कर दिया एवं सुखपूर्वक आश्रम पहुँचकर उन्होंने यज्ञ करना प्रारम्भ किया।

निशिचर दल लै राक्षस आये । राम लखन लै धनु सर धाये ॥
बिनु फर सर रघपुति मारीचा । दीन्ह उड़ाय सिन्धु के बीचा ॥

तभी राक्षसों का समूह लेकर मारीच और सुबाहु नामक राक्षस आ गये, उन्हें देखते ही श्री राम जी महाराज व श्री लखन लाल जी धनुष बाण लेकर दौड़ पड़े और श्री राम जी महाराज ने बिना नोक का बाण मार कर मारीच को समुद्र के बीच में फेंक दिया।

अग्नि बाण पुनि हते सुबाहू । लखन दलेउ दल प्राण उमाहू ॥
पुनि विदेह आमंत्रण पाई । कौशिक चले सहित दोउ भाई ॥

पुनः उन्होंने अग्नि बाण से सुबाहु नामक राक्षस का संहार कर डाला तथा श्री लखन लाल जी ने आनन्द पूर्वक सम्पूर्ण राक्षस दल का संहार कर दिया। तदुपरान्त श्री विदेह राज जी महाराज के धनुष–यज्ञ का निमन्त्रण पाकर श्री विश्वामित्र जी दोनों भाइयों सहित श्री मिथिला पुरी चल दिये।

वर्ष सहस्रन पिता सुशापा । माता परी शिला तन थापा ॥
चरित सो जानहिं सकल नृपाला । गये तहाँ मुनिवर दोउ बाला ॥

रास्ते में हजारों वर्षो से मेरे पिता श्री गौतम ऋषि के सुन्दर श्राप के कारण मेरी माता श्री अहल्या जी पत्थर बनी हुई पड़ी थीं, वह सम्पूर्ण चरित्र तो महाराज आप जानते ही हैं वहाँ मुनिवर श्री विश्वामित्र जी सहित दोनों कुमार गये–––

राम चरण रज पाय प्रसंगा । दिव्य रूप धरि मातु अभंगा ॥
प्रेम सहित रघपुति पद लागी । स्तुति कीन्ह विनय अनुरागी ॥

–––और श्री राम जी महाराज के चरण की धूलि का स्पर्श पाकर मेरी माता श्री अहल्या जी ने दिव्य व अविनाशी शरीर धारण कर प्रेम पूर्वक श्रीरामजी महाराज के चरणों में प्रणाम किया और अनुराग पूर्वक स्तुति कर अपनी विनय सुनायी।––––

दो०–मम पितु गौतम आय तहँ, प्रभु की पूजा कीन ।
ग्रहण अहल्या प्रीति करि, चलेउ लिवाय प्रवीन ॥३२५॥

––––अनन्तर मेरे पिता श्री गौतम ऋषि जी वहाँ आकर प्रभु श्रीरामजी महाराज की पूजा किये तथा प्रेमपूर्वक वे परम दक्ष मुनिवर श्री गौतम जी मेरी माता श्री अहल्या जी का ग्रहण कर उन्हें लिवाकर चले गये।

सुनहु साँच दशरथ महाराजा । राम कियेव मम मातु सुकाजा ॥
सुखी भयों मैं पाइ स्वमाता । मातहुँ सुखी देखि सुत जाता ॥

हे चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज! सुनिये, मैं सत्य कह रहा हूँ कि श्री राम जी महाराज ने मेरी माता श्री का अत्यन्त उपकार (सुन्दर–कार्य) किया है। अपनी माता को प्राप्तकर मैं अति सुखी हुआ तथा अपने पुत्र मुझे देखकर माता भी अत्यन्त सुखी हुई।

गौतम पाये प्रिया सुहाई । लही अहल्या पति सेवकाई ॥
राम पूत पद पंकज धूरी । विदित महा महिमा भरि पूरी ॥

हमारे पिता जी श्री गौतम मुनि ने अपनी सुन्दर पत्नी तथा श्री अहल्याजी ने पति सेवा प्राप्त कर ली। इस प्रकार श्रीरामजी महाराज के चरण कमलों की पवित्र–धूलि की महान महिमा पूर्ण रूपेण परिव्याप्त हो गयी।

मिथिला जाइ जबहिं नियराने । जनक आइ बहु विधि सनमाने ॥
रामहिं पेखि विदेह विदेहा । भये मगन मन सिन्धु सनेहा ॥

वहाँ से चलकर श्री राम जी महाराज जैसे ही श्री मिथिलापुरी पहुँचे वैसे ही श्री जनक जी महाराज ने आकर उनका विविध प्रकार से आदर किया तथा श्री राम जी महाराज को देखकर श्री जनक जी महाराज तो विदेह ही हो गये और उनका मन उनके प्रेम के सागर में मग्न हो गया।

सुन्दर सदन दीन्ह वर वासा । जनक सुवन तहँ सेव सुपासा ॥
राम लखन दोउ बन्धु निहारी । भये सुखी मैथिल नर नारी ॥

पुनः श्री जनक जी महाराज ने श्री मिथिलापुरी के सर्वोत्तम व सुखावह 'सुन्दर सदन' में श्री विश्वामित्र जी सहित दोनो भाइयों को निवास दिया तथा वहाँ जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी उनकी सुखमयी सेवा में संलग्न हो गये। दोनों भाइयों श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार को देखकर श्री मिथिला पुरी के सभी पुरुष–स्त्री अत्यन्त सुखी हुए।

दो०–शम्भु चाप जग विदित जो, महा कराल कठोर ।
देखत रावण बाण बल, दुरेउ द्रुतहिं मुख मोर ॥३२६॥

श्री शिव जी का वह धनुष जो अपनी महानता, विकरालता तथा कठोरता के लिए संसार में प्रसिद्ध था और जिसे देखते ही रावण तथा बाणासुर जैसे वीरों के बल का गर्व भी दूर हो गया तथा वे मुख मोड़कर शीघ्र ही वापस चले गये।

तीन लोक महँ जे वर वीरा । सके उठाय न शिव धनु धीरा ॥
तहाँ राम रघुवर सुख धामा । बिन श्रम भंजेव चाप अकामा ॥

उस समय तीनों लोकों के जो भी श्रेष्ठ वीर थे, वे सभी श्री शिव जी के महान धनुष को न उठा सके। परन्तु सुख के धाम रघुकुल श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज ने वहाँ निष्काम भाव से भावित हो बिना परिश्रम ही उसका भंजन कर दिया।

यथा मत्त करि कमलन नाला । तथा राम शिव धनुष विशाला ॥
मुदित सिया रघुवरहिं सिधारी । पहिराई जयमाल सुखारी ॥

हे महाराज! जिस प्रकार मतवाला हाथी कमल की नाल तोड़ देता है उसी प्रकार श्री राम जी महाराज ने श्री शिवजी के विशाल धनुष का खण्डन कर दिया। तदुपरान्त आनन्द परिपूर्ण जनक दुलारी श्री सीता जी ने श्री राम जी महाराज के समीप जाकर उन्हें सुख पूर्वक विजय–माल पहनाया।

धन्य धन्य अवधेश भुआरा । राम लखन पायेव सुत सारा ॥
अकथ अलौकिक ललित ललामा । शोभा शील सकुच सुखधामा ॥

हे अयोध्यापति श्री दशरथ जी महाराज! आप धन्यातिधन्य है जो आपने श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जैसे सार–तत्व स्वरूप पुत्र प्राप्त किये हैं, वे अकथनीय, अलौकिक, सुन्दरतम छवि से सम्पन्न, शोभा, शील, संकोच तथा सुखों के धाम हैं।

रामहिं किये सकल गुण थाना । त्रिभुवन इन सम येइ महाना ॥
यथा राम पर प्रीति लखन की । नाहिन गम शिव शेष कथन की ॥
लखनहुँ अहैं सुलक्षण अयना । वरणि सकै नहिं वाणी वयना ॥

श्री राम जी महाराज में तो सभी सद्गुण अपना निवास बनाये हुए हैं तथा तीनों लोकों में इनके समान महान ये ही हैं। श्री राम जी महराज के प्रति श्री लक्ष्मण कुमार की जैसी प्रीति है उसे कहने की क्षमता श्री शिव जी व श्री शेष जी में भी नहीं है। श्री लक्ष्मण कुमार तो सम्पूर्ण सुन्दर लक्षणों के धाम ही हैं उनके गुणों का वर्णन श्री सरस्वती जी भी वाणी से नहीं कर सकतीं।

दो०–राम लखन सम सुनहु नृप, राम लखन जिय जान ।
शोक निवारेव नृपति कर, श्याम गौर मतिवान ॥३२७॥

हे श्री महाराज! आप श्रवण करें, हमारे हृदय में तो यही समझ आता है कि परम बुद्धिमान श्याम व गौर वर्ण वाले दोनो राजकुमार श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार के समान तो श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी ही हैं जिन्होनें श्री जनक जी महाराज के शोक को दूर कर दिया है।

कौशिक मोहिं तव निकट पठायो । लै बरात सुख साज बुलायो ॥
जनक पाँय परि विनती कीन्ही । आरति विनय दीनता लीन्ही ॥

हे राजन! मुनिवर श्री विश्वामित्र जी ने मुझे आपके समीप भेजा है और आपको सुखपूर्वक साजबाज सहित बारात लेकर बुलाया है। श्री जनक जी महाराज ने भी आपके चरणों में दण्डवत निवेदन कर अति विनय व दैन्यता पूर्वक प्रार्थना की है–––

दरशन हेतु अमित अनुरागेव । पुनि पुनि पद परि कृपा सो माँगेव ॥
गाधि सुवन शुभ सम्मति पाई । दिये नृपति नव नगर वसाई ॥

तथा आपके दर्शन के लिए असीम अनुराग में भर, चरणों में बारम्बार प्रणाम कर कृपा की याचना किये हैं। श्री महाराज जनक जी ने गाधिनन्दन श्री विश्वामित्रजी की शुभ आज्ञा पाकर श्री मिथिलापुरी में एक नवीन नगर (श्री अयोध्या) का निर्माण भी करा दिया है।–––

रानिन सहित वास तहँ होऊ । यथा अवध सुख रहैं समोऊ ॥
परिछन नहछू मंगल चारा । करिहैं मातु राम कर सारा ॥

–––वहाँ नवीन नगर (श्री अयोध्या) में आप श्री का रानियों सहित सुखपूर्वक उसी प्रकार निवास हो जिस प्रकार श्री अयोध्या पुरी में है, जिससे वहाँ मातायें श्री राम जी महाराज के नहछू,

परिछन आदि सम्पूर्ण मांगलिक कृत्य कर सकेंगी।

दूलह वेष निरखि निज सूना। लहिहैं मातु सु आनन्द दूना॥
कौशिक आयसु सकल सुनाई। नृप की प्रीति विनय पुनि गाई॥

अपने पुत्र श्रीरामजी महाराज का दूलह वेष देख–देखकर मातायें दोगुना आनन्द प्राप्त करेंगी। इस प्रकार हे महाराज! मैंने श्री विश्वामित्र जी की यह सम्पूर्ण आज्ञा तथा श्री जनक जी महाराज की प्रेमपूर्वक की हुई प्रार्थना वर्णन कर आपको सुना दी।

दो०– गुरु निदेश अब नृपति लहि, मिथिलहिं करैं पयान।
राउर सह मुद जाइहैं, हमहुँ सुनैं मतिमान॥३२८॥

हे परम बुद्धिमान राजन, सुने! अब आप अपने श्री गुरुदेव जी से आज्ञा प्राप्त कर श्रीमिथिलापुरी को प्रस्थान करें, हम भी आनन्दपूर्वक आप के ही साथ चलेंगे।

तब बसिष्ठ शुभ आयसु दीन्हा। कौशिक वचन चहिय नृप कीन्हा॥
अन्तः पुर सह चलै बराता। धूम धाम कौतुक मग जाता॥

अनन्तर श्री शतानन्द जी के वचनों को श्रवणकर श्री बसिष्ठ जी महाराज ने शुभ–आज्ञा प्रदान की कि, हे राजन श्री विश्वामित्र जी के वचनों का अवश्य पालन करना चाहिए अतः अन्तःपुर सहित बड़े धूमधाम के साथ रास्ते में खेल–तमासे होते हुए श्री राम बारात प्रस्थान करे।

देखि सबहिं रघुवीर विवाहा। पाइ नयन फल भरै उछाहा॥
यह विवाह तव पुण्य प्रमाना। होवै नृपति सुनहिं दै काना॥

इस प्रकार सभी जन श्रीरामजी महाराज के विवाह का दर्शन कर नेत्रों के परम फल को प्राप्त कर आनन्द में डूब जाँय। हे राजन! आप ध्यान पूर्वक सुनें, यह विवाह आपके पुण्यों का ही प्रमाणीकरण है।

कौशिक मिस नृप बिनहिं प्रयासा। पुण्य बेलि फल फली प्रकाशा॥
सुनि मुनि वचन माथ महि लाई। रावरि कृपा कहेव नर राई॥

हे राजन! श्री विश्वामित्र जी के ब्याज से बिना प्रयत्न किये, आपके पुण्यों की लता फैलकर फलवती हो गयी है। श्री बसिष्ठ जी के वचनों को सुन, श्री दशरथ जी महाराज ने भूमि में शिर रखकर उन्हें प्रणाम कर कहा– हे नाथ! यह सभी कुछ आपकी कृपा का प्रसाद है।

आज्ञा शिर पर रावरि नाथा। सब प्रकार मैं भयों सनाथा॥
बहुरि नृपति मन भाव जनाई। पानि जोरि बोले सुख छाई॥

हे नाथ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, मैं अब सभी प्रकार से सनाथ हो गया। पुनः चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज अपने मन के भावों को प्रगट करते हुए हाथ जोड़ सुख में डूब कर बोले–

भवन पधारि गौतमी पूता। पावन करि सुख देहिं बहूता॥
शतानन्द मुनिवर रुख जानी। चलन कहे अतिशय सुख सानी॥

हे अहल्या नन्दन श्री शतानन्दजी! आप महल में पधार, उसे पवित्र कर हमें अत्यन्त आनन्द प्रदान करें। तब श्री शतानन्द जी ने मुनिवर श्री बसिष्ठ जी की इच्छा जानकर अत्यन्त सुख में भर राज–भवन चलने की अनुमति प्रदान कर दी।

दो०–बार बार पद बन्दि नृप, कुल गुरु आयसु पाइ ।
जनक पुरोधहिं लै चले, रथ चढ़ाय हरषाइ ॥३२९॥

चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज अपने कुलगुरु श्री वसिष्ठ जी की बारम्बार चरण वन्दना कर, उनसे आज्ञा पाकर हर्षित हो श्री जनक जी महाराज के पुरोहित श्री शतानन्द जी को रथ में बैठाकर अपने राजमहल ले चले।

अति उत्साह गयो लै भवना । षोडस पूजे अति सुख छवना ॥
सब प्रकार सतकारहिं पाई । भवन वसिष्ठ गये द्विजराई ॥

श्री दशरथ जी महाराज उन्हें अत्यन्त उत्साह पूर्वक अपने राजमहल ले गये तथा अत्यधिक सुख में डूब कर उनका षोडसोपचार पूजन किये, इस प्रकार ब्राह्मण श्रेष्ठ श्री शतानन्द जी सभी प्रकार से स्वागत व सत्कार प्राप्तकर पुनः श्रीबसिष्ठजी के आश्रम चले गये।

अन्तःपुरहिं जाय तव भूपा । नारिन बोले वचन अनूपा ॥
शतानन्द जस बात बताई । शब्द शब्द सब गये बुझाई ॥

तदुपरान्त श्री दशरथ जी महाराज अपने अन्तःपुर जाकर महारानियों से अनुपमेय वचन बोले व श्री शतानन्द जी ने जिस प्रकार की बातें बताई थीं, उसी प्रकार अक्षरशः रानियों को समझा दिया।

कौशिल्यादि प्रमुख सब रानी । राम विवाह सुनत सुख सानी ॥
विप्रन पूजि दीन्ह बहु दाना । मंगल गान करहिं सुख साना ॥

श्री कौशिल्या जी आदि सभी प्रमुख रानियाँ श्री राम जी महाराज के विवाह का समाचार सुनकर सुख में सन गयी तथा ब्राह्मणों का पूजन कर उन्होंने बहुत सा दान दिया पुनः सुख में डूबकर वे मंगल गान करने लगीं।

लगेउ होन उत्सव बहु भाँती । छन छन जननि हियहिं हरषाती ॥
बहुरि नृपति भरतहिं बुलवाये । राम लखन प्रिय कीरति गाये ॥
कौशिक संग जनक पुर धामा । वसहिं राम लछिमन अभिरामा ॥

इस प्रकार श्री अयोध्या पुरी में विभिन्न प्रकार से उत्सव होने लगे तथा मातायें प्रत्येक क्षण हृदय में हर्षित हो रही थी। पुनः श्री दशरथजी महाराज ने श्री भरत लाल जी को बुलाया तथा उनसे श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार की प्रिय कीर्ति का गायन कर बताया कि सौन्दर्य सार श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार श्री विश्वामित्र जी के साथ श्री जनक पुरी में निवास कर रहे हैं।

दो०–सुनत भरत गद्‌गद भये, ढारत नयनन नीर ।
प्रेम विवश तन भान गो, पूरित पुलक शरीर ॥३३०॥

श्री राम जी महाराज का समाचार सुनते ही श्री भरत लाल जी गद्‌गद होकर आँखों से आँसू बहाने लगे, प्रेम के वशीभूत होने से उन्हे शरीर स्मृति भूल गयी तथा शरीर पुलकित हो गया।

भूपति भरत भरे भल अंका । कीन्हे विविध प्यार सुखदंका ॥
धन्य पुत्र प्रिय प्राण समाना । राम प्रेम रत सब जग जाना ॥

श्री भरत जी को सुन्दर गोद में लेकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज विभिन्न प्रकार से सुखदायी प्यार किये तथा बोले– हे वत्स! तुम धन्य व मुझे प्राण समान प्रिय हो क्योंकि तुम श्री राम जी महाराज के प्रेम में अनुरक्त हो, यह बात सम्पूर्ण संसार जानता है।

राम प्राण तोहि जानहुँ नीके । प्राण राम तव सुखद सहीके ॥
रघुकुल दीप तात तुम जाये । सब विधि सुखी भयेव मैं पाये ॥

श्री राम जी महाराज के तुम प्राण हो तथा परम सुखदायी श्री राम जी महाराज ही यथार्थतया तुम्हारे प्राण हैं यह बात मैं भली प्रकार जानता हूँ। हे तात! तुम इस श्री रघुवंश को प्रकाशित करने वाले दीपक के समान उत्पन्न हुये हो, तुमको प्राप्त कर मैं सभी प्रकार से सुखी हो गया हूँ।

श्याम श्याम दोउ भाइन देखी । सुफल जन्म निज गिनौं विशेषी ॥
युगल नेत्र तुम दूनहु भाई । तव सुख निज सुख गिनौं सदाई ॥

सुन्दर श्याम वर्ण वाले दोनों भाइयों श्रीराम जी व तुम्हे देखकर मैं अपना जन्म धारण करना विशेष रूप से सफल समझता हूँ, आप दोनों भाई ही मेरे दोनों नेत्र हो तथा मैं सदैव आपके सुख को ही अपना सुख समझता हूँ।

चलहु जनकपुर राम बराता । साजहु सकल साज अब ताता ॥
सहित शत्रुघन विविध प्रकारा । करहु चलन कर सबहिं सँभारा ॥
सुनि अरिदमन भरत दोउ भाई । कीन्हे सकल रजायसु पाई ॥

हे तात! अब सभी साज बाज–सजाकर श्री राम जी महाराज की बारात में श्री जनक पुरी चलिये। श्री शत्रुघ्न कुमार के सहित आप विभिन्न प्रकार से चलने की व्यवस्था कर लीजिये। महाराज श्री के वचनों को सुन तथा आज्ञा प्राप्तकर श्री भरत जी व श्री शत्रुघ्न कुमार दोनों भाइयों ने श्री राम बारात में चलने की सभी प्रकार की सार सम्हार कर ली।

सो०–सीता राम सुव्याह, फैली चरचा घर घरन ।
छन छन महा उछाह, मगन अवधपुर नारि नर ॥३३१॥

इस प्रकार श्री सीताराज जी के सुन्दर विवाह का समाचार प्रत्येक घर में व्याप्त हो गया जिसे सुनकर श्री अयोध्या पुरी के पुरुष–स्त्री सभी प्रतिक्षण महान आनन्द में मग्न हो गये।

घर घर मंगल गावहिं नारी । निज निज भवन विचित्र सम्हारी ॥
तोरन ध्वज पताक फहराई । घर घर चौके मणिन पुराई ॥

प्रत्येक घर में स्त्रियाँ मंगल गीत गाने लगीं तथा अपने अपने घर को विचित्र प्रकार से सजाने–सँवारने लगीं। वहाँ बन्दनवार ध्वजा तथा पताकाएँ फहराने लगीं, प्रत्येक घर में मणियों की

चौके पूरी जाने लगी।

राजभवन किमि जाय बखाना । शत सुरेश गृह लखत लजाना ॥
नगर नारि करि करि सिंगारा । राजभवन गवनहिं सुखसारा ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के राजमहल का किस प्रकार वर्णन किया जा सकता है उसे देखकर तो सैकड़ों इन्द्र के भवन भी विलज्जित हो जाते थे। श्री अयोध्या पुरी की स्त्रियाँ श्रृंगार कर सुख के सार राजमहल को जा रही थीं।

राम मातु सुख सकहिं न गाई । छन छन नव अनन्द अधिकाई ॥
व्याह गीत गावहिं दिन राती । होहिं सुखी पुलकित मन छाती ॥

श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी के सुख का तो गायन ही नहीं किया जा सकता, उनका आनन्द प्रतिक्षण नवीनता और वृद्धि को प्राप्त हो रहा था। वे दिन रात विवाह के गीत गाती रहती तथा सुख के कारण उनका मन व ह्रदय पुलकित हो जाता था।

सीय राम शुभ व्याह सुहावा । त्रिभुवन विदित सुमंगल गावा ॥
सुख समृद्धि रघुपति पुर केरी । अहिपति मौन सुवरणन बेरी ॥

श्री सीतारामजी के शुभ व सुन्दर विवाह का समाचार तीनों लोकों में व्याप्त हो गया तथा तीनों लोकों में मांगलिक गीत गाये जाने लगे। श्री राम जी महाराज की नगरी श्री अयोध्यापुरी के सुख और सम्पन्नता का वर्णन करते समय श्री शेष जी भी मौन हो जाते हैं।

दो०—अवधपुरी कर भाग्य सुख, नाहिं त्रिदेवहुँ जान ।
पर ब्रह्म सिय राम जहँ, विहरहिं मोद महान ॥३३२॥

जहाँ पर परम ब्रह्म श्रीसीतारामजी महान सुख पूर्वक विहार करते हैं उस श्रीअयोध्यापुरी के भाग्य व सुख को त्रिदेव श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी) भी नहीं जान सकते ।

मास पारायण छठवाँ विश्राम

रथ गज वाजि सुसाज अनेका । देखत भूलत विरति विवेका ॥
अमित यान साजे सुखकारी । नर यानहु बहु भये तयारी ॥

वहाँ अनेक रथ, हाथी तथा घोड़े आदि सुन्दर सजा दिये गये जिन्हें देखते ही ज्ञान व वैराज्ञ भी भूल जाते तथा असीमित सुखकारी विमान सजाये गये, बहुत सी पालकियाँ भी तैयार हुई।

शुभ मुहूर्त कुल गुरु तब देखे । आयसु किये मुदित मन लेखे ॥
राम बरात चलै अब भाई । सुनतहिं सुभग निसान बजाई ॥

कुल गुरु श्रीबसिष्ठजी ने तब शुभ मुहूर्त देखकर प्रसन्न मन हो आज्ञा प्रदान की कि अब श्रीरामजी महाराज की मनभावनी बारात प्रस्थान करे। गुरुदेव भगवान की आज्ञा सुनते ही सुन्दर नगाड़े बजने लगे।

वेद मंत्र मुनिवरन उचारे । पढ़हिं शान्ति सब होत सुखारे ॥
बन्दी विरद भाँट अरु सूता । कहहिं मोद भरि प्रेम प्रसूता ॥

मुनियों ने वेद मन्त्रों का उच्चारण किया तथा सभी लोग शान्ति पाठ करते हुए सुखी होने लगे। बन्दी भाँट तथा सूत आदि आनन्द में भर कर प्रेमोत्पादक विरद का बखान करने लगे।

मंगल गान दसहुँ दिशि छावा । जय जय गूँजेव शब्द सुहावा ॥
राज द्वार भई भीर अपारा । गगन भरेउ रव रज चहुँ द्वारा ॥

दसों दिशाओं में मांगलिक गीत गूँजने लगे, जय हो, जय हो का सुन्दर शब्द सुनाई पड़ने लगा। राज द्वार के चारो दरवाजों में असीमित जन समूह एकत्र हो गया उस भीड़ के शोर और धूल से आकाश आपूरित हो गया।

दो०– चढ़ि चढ़ि यानहिं लोग सब, सरि सरयू शुचि पार ।
वन प्रमोद लागे जुरन, अगनित अश्व सवार ॥३३३॥

इस प्रकार अपने अपने वाहनों में सवार होकर सभी जन तथा अनगिनत घुड़–सवार पवित्र नदी श्री सरयू जी के उस पार प्रमोद वन में एकत्रित होने लगे।

अमित भार भरि साज समाना । वृषभ शकट खच्चर उँट याना ॥
चले कहारहुँ को गनि पारा । भरि भरि कामर वस्तु अपारा ॥

असीमित बजन की साज सामग्री बैलगाड़ियों, खच्चरों तथा उँटयानों में भर कर भार–वाहक ले चले। काँवरियों में अपरिमित वस्तुएँ भर–भर कर इतने कहार चले जिनकी गिनती कर कोई भी पार नहीं पा सकता था।

सेनापति सह सेन सुजाना । चार भाँति धरि आयुध नाना ॥
चले वीर वर बिरदहिं बाँधे । सोहत चाप वाम कर काँधे ॥

सेनापति चतुरंगिणी (रथ,गज,अश्व व पदाति) सेना सहित विभिन्न प्रकार के अस्त्र–शस्त्र धारण कर चल दिये। श्रेष्ठ वीरगण अपने–अपने कीर्ति पदक धारण किये, अपने बांये हाथ के कन्धे में धनुष धारण किये सुशोभित हो कर श्री राम बारात में चल पड़े।

हय गय रथहिं चढ़े बहु सोहैं । सुरपति सेन जिनहिं लखि मोहै ॥
पीछे चले विप्रवर वृन्दा । सुभग यान सब चढ़े स्वच्छन्दा ॥

बहुत से वीर घोड़ों, हाथियों तथा रथों में चढ़े हुए सुशोभित हो रहे थे जिन्हें देखकर देवराज इन्द्र की सेना भी मुग्ध हो रही थी। उनके पीछे ब्राह्मणों के समूह सुन्दर वाहनों में स्वतन्त्र रूप से चढ़े हुए चल रहे थे।

श्याम करण हय अगणित साजी । मणियन भूषित जीन विराजी ॥
भरत सहित बहु राज कुमारा । तिन्ह चढ़ि चले धनुष कर धारा ॥

अनगिनत श्यामकर्ण घोड़ों को सुसज्जित कर जिनमें माणियों से जड़ी हुई जीनें रखी थी, उनमें

श्री भरत जी सहित बहुत से राजकुमार चढ़कर हाथों में धनुष धारण किये चले पड़े।

सब सुन्दर सब भूषण भूषे । जिनहिं लखत कामहु मन दूषे ॥
तिन पीछे सजि राम सुमाता । लै रविनास हृदय हरषाता ॥
रत्न पालकी दिव्य मनोहर । हरषि चली चढ़ि सुमिरि गंगधर ॥

वे सभी सुन्दर राजकुमार आभूषणों से सुसज्जित थे जिन्हें देखकर कामदेव का मन भी छुब्ध हो जाता था। उनके पीछे श्रीरामजी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्याजी सजकर रनिवास को साथ ले हर्षित हृदय हो, दिव्य मनोहारी रत्न पालकी में चढ़कर, श्री गंगा जी को धारण करने वाले श्री शंकर जी का स्मरण कर चल पड़ी।

दो०—दिव्य रथहिं मगवाय नृप, कुल गुरु हरषि चढ़ाय ।
शतानन्द वामादि मुनि, बैठारे सुख छाय ॥३३४॥

पुनः श्रीदशरथजी महाराज ने एक सुन्दर दिव्य रथ बुलवा कर अपने कुलगुरु श्री वसिष्ठ जी महाराज को हर्ष पूर्वक चढ़ाया तथा श्री शतानन्द जी व श्री वाम देव आदि मुनियों को सुख में भरकर अन्य रथों में बैठा दिया।

पृथक पृथक रथ सोह सुहाने । बैठे मुनि सब सुठि सुख माने ॥
अगिनि हव्य सब साजहिं सजिकै । मुनिवर चले हृदय रस रजिकै ॥

सुन्दर अलग अलग रथों में, सुख में सने हुए मुनिगण बैठे हुए सुशोभित हो रहे थे व अत्यन्त सुखानुभूति कर रहे थे। मुनिश्रेष्ठ श्रीवसिष्ठजी महाराज अग्नि, हवन की सामग्री तथा अन्य आवश्यकीय वस्तुएँ रथ में रखवाकर रससिक्त हृदय हो चल पड़े।

ता पीछे पुनि दशरथ राजा । गहि गुरु आयसु बनि कृत काजा ॥
गनि गणपति शिव सुमिरि सुहाई । चढ़े रथहिं रामहिं मन लाई ॥

उनके पीछे पुनः श्रीदशरथजी महाराज श्रीगुरुदेवजी की आज्ञा ग्रहण कर व कृतकृत्य हो सुन्दर श्रीगणेशजी व श्रीशंकरजी का स्मरण करते हुए अपने मन को श्रीरामजी महाराज में लगाकर रथ में सवार हो गये।

पृष्ठ भाग रक्षन के हेता । कछुक रथी चल सेन समेता ॥
बिच बिच गायक बन्दि बजनिया । चले करत निज कार्य निपुनिया ॥

उनके पीछे रक्षा करने हेतु कुछ रथी वीरगण सेना सहित चल रहे थे। बीच बीच में गायक बन्दी तथा वाद्य बजाने वाले अपनी–अपनी कला कुशलता दिखाते हुए चल दिये।

नट नर्तक अरु भाड़ विदूषक । चले करत शुभ स्वाँग अदूषक ॥
सब प्रकार सब साज सजाई । राजन योग न कह कोउ गाई ॥

नटट, नर्तक, भाड़ तथा विदूषक आदि शुभ तथा दूषण रहित स्वाँग करते हुए चल पड़े। इस प्रकार सम्पूर्ण समाज सभी प्रकार से साज सज्जा से युक्त थी जो चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज के

ही अनुरूप थी, उसका वर्णन कोई भी वाणी के द्वारा नहीं कर सकता।

दो०–चले हरषि दशरथ नृपति, लै बरात निमिधाम ।
जनु सुरेश सब सुरन लै, जात सोह सह काम ॥३३५॥

चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज हर्षित होकर श्री राम जी की सुन्दर बारात लेकर श्री निमिनगर मिथिलापुरी को ऐसे चल दिये जैसे देवराज इन्द्र, कामदेव सहित सभी देवताओं को लिये हुए जाते हुये सुशोभित हो रहे हों।

छं०– दशरथ जात बरात राम के, जनु सुरेश सजि सोहा ।
चढ़ी अटारिन देखहि नारी, शची रती मन मोहा ॥
मस्स मस्स गज चलत सुहाये, नख शिख भूषित भ्राजे ।
टप्प टप्प हय चलत सुनाचत, छन छन भूषण बाजै ॥१॥

श्री राम जी की बारात में जाते हुए चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे देवताओं के राजा इन्द्र सभी प्रकार से सुसज्जित हो चल रहे हों। श्री अयोध्यापुरी की पौरांगनायें अट्टालिकाओं में चढ़ी हुई श्री राम बारात को जाते हुए देख रही थी जिन्हें देखकर इन्द्राणी व रती का मन भी मोहित हो जाता था। नख से शिख तक सर्वाग आभूषणों से आभूषित गज मस्स–मस्स करते हुए सुन्दर चाल से चल रहे थे तथा टप्प टप्प की ध्वनि के साथ घोड़े सुन्दर नृत्य करते हुए चल रहे थे जिससे उनके आभूषण छनन–छनन बज रहे थे।

घर घर शब्द करत रथ जाते, श्याम करण हय जोते ।
फहरत जात पताका शोभित, मनहुँ भूप यश बोते ॥
कैयक राजा दशरथ पीछे, चलहिं मोद मन छाई ।
मनहुँ विष्णु के पीछे राजत, सकल सुरन समुदाई ॥२॥

श्यामकर्ण घोड़े जुते हुए सुन्दर रथ घरर–घरर शब्द करते जा रहे थे जिनमें फहराती हुई पताका सुशोभित हो रही है मानो वह श्रीदशरथजी महाराज की कीर्ति को विस्तारित कर रही हो। श्री दशरथ जी महाराज के पीछे पीछे मन में आनन्दित हुए कई राजा इस प्रकार चल रहे थे मानों श्री विष्णु जी के पीछे पीछे सम्पूर्ण देव समुदाय चल रहा हो।

जय जय शब्द गगन मधि गूँजे, बजत दुन्दुभी भारी ।
वरषहिं सुमन देव सब ऊपर, नचैं विमानन नारी ॥
मधि बरात बाजत बहु बाजे, शंख भेरि शहनाई ।
ढोल मृदंग झाँझ घड़ियाला, डफ बेनू सुर गाई ॥३॥

उस समय जय जय का शब्द आकाश में गूँज रहा था, तीव्र स्वर से दुन्दुभी नाद हो रहा था, देवता सभी के ऊपर फूल वरषा रहे थे तथा विमानों में देवांगनायें नृत्य कर रही थीं। बारात के बीच में विविध प्रकार के वाद्य, शंख, भेरी, शहनाई, ढोल, मृदंग, झाँझ, घड़ियाल, डफ, तथा बाँसुरी आदि

सुन्दर स्वर में बज रहे थे।

दै धुधकार बजत धुधकारी, वाद्य अनेकन सोहैं।
शान्ति पाठ सब भूसुर उचरत, साम रीति मन मोहैं॥
बन्दि सूत मागध अरु भाटा, विरदहि विविध उचारे।
कौतुक करहिं विदूषक हर्षित, लखि सब होत सुखारे॥४॥

धुधकारी वाद्य धू–धू की गंभीर ध्वनि करते हुए अनेक वाद्यों के साथ बजते हुये सुशोभित हो रहे थे, सभी ब्राह्मण सामवेद रीति से शान्ति पाठ करते हुए मन को मोहित कर रहे थे, बन्दी, सूत, मागध तथा भाँट आदि विभिन्न प्रकार से चक्रवर्ती जी महाराज के बिरद का बखान कर रहे थे और विदूषक (मसखरे) आनन्दपूर्वक कई प्रकार की क्रीड़ायें करते हुये चल रहे थे जिन्हें देखकर सभी सुखी हो रहे थे।

दो०–जात होहिं सिगरे सगुन, फरकत बहु शुभ अंग।
राम पूत जाके भये, सगुण ब्रह्म रस रंग॥३३६॥

बारात जाते समय सभी प्रकार के सगुन हो रहे थे तथा बहुत से शुभ अंग फड़क रहे थे। सगुण ब्रह्म श्री राम जी महाराज जिनके पुत्र हुए हैं उनके लिए ऐसा क्यों न हो?

सब दिन ताकहँ मंगल छेमा। सगुन दिखे प्रकृतिहिं के नेमा॥
करन कृतारथ आपुहिं आये। सकल बरातहिं परे दिखाये॥

परम सौभाग्य शाली चक्रवर्ती जी महाराज के लिये तो प्रत्येक दिन मंगलमय तथा कुशलता का ही है और प्रकृति के नियमानुसार उन्हें सदैव ही सगुन दिखायी पड़ते है। फिर यहाँ तो सभी शुभ सगुन स्वयं को कृतार्थ करने के लिए आये थे जो सभी बारातियों को दिखायी पड़ गये।

आवत जानि अवध अवधेशू। सकल सुधारे मग मिथिलेशू॥
राजमार्ग सम मग दरशावा। सकल सरित महँ सेतु बँधावा॥

श्री अयोध्या पुरी से चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज को आते हुए जानकर श्री मिथिलेश जी महाराज ने सभी मार्गों का सुधार करवा दिया व सभी नदियों में पुल बनवा दिये। अब वे रास्ते राजमार्ग के समान दिखाई दे रहे थे।

कृत्रिम वृक्ष शोभित फल फूले। दूनहु ओर मगहिं मग गूले॥
कहुँ कहुँ साँचे भूरुह रुचिला। फूलत फलत लगे मग मिथिला॥

मार्ग के किनारे दोनो ओर फूले तथा फले हुए कृत्रिम वृक्ष लगाये गये थे जो अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे व कहीं कहीं पर तो सुन्दर फूलते व फलते हुए सच्चे (प्राकृतिक) वृक्ष श्री मिथिला पुरी के मार्ग में लगे हुए थे।

इत्र सुगन्धित सिंचित राहा। पुष्प विछे लखि लगत उमाहा॥
सकल बरात सुखहिं के हेता। बिच बिच सोहहिं वास निकेता॥

सुगन्धित इत्र से सिंचित मार्गों में फूल बिछाये हुए थे जिसे देख कर मन में उत्साह लगने लगता था। सभी बारातियों के सुख के लिए बीच बीच में निवास गृह बने हुए सुशोभित हो रहे थे।

दो०—सकल बरातिन्ह रोक तहँ, दशरथ अति पुलकाय ।
करहिं अराम प्रमोद मन, अवधहुँ अधिक लखाय ॥३३७॥

उन निवास गृहों में सभी बारातियों को ठहरा कर चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज अत्यधिक पुलकित हो आनन्दित मन विश्राम करते थे। वह आनन्द तथा विश्राम उन्हें श्रीअयोध्यापुरी से भी अधिक सुखावह प्रतीत होता है।

अशन शयन मन भावित पूरे । वस्त्र विभूषण मिलहिं सुभूरे ॥
दासी दास सुभौंह विलोकी । करत सेव करि देहिं विशोकी ॥

वहाँ सभी को मनचाहा भोजन व शयन पूर्ण रूप से प्राप्त था तथा सभी को वस्त्र व आभूषण आदि भरपूर मात्रा में उपलब्ध थे। वहाँ के दासी–दास आदि उनकी इच्छानुसार सेवा कर, उन्हें शोक–मुक्त कर देते हैं।

यथा प्रेम लहि लहि सुख साजा । भूले भवन बराती राजा ॥
सुख सह करत बरात पयाना । कछुक होत श्रम नाहिं दिखाना ॥

इस प्रकार का प्रेम व सुख सुविधा प्राप्त कर सभी बरातियों सहित श्री दशरथ जी महाराज अपने अपने भवन भूल गये एवं सुख पूर्वक बारात प्रस्थान करती रही उसे किंचित भी परिश्रम होता नहीं दिखाई देता था।

गुरु बसिष्ठ अरु दशरथ भूपा । वरणहिं जनक प्रबन्ध अनूपा ॥
देखि बरात सकल मग वासी । होहिं सुखी लोचन फल पासी ॥

गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी और श्री दशरथ जी महाराज श्री जनक जी महाराज के अनुपमेय प्रबन्ध का वर्णन करते हुए जा रहे थे। बरातियों को देख–देखकर रास्ते के सभी निवासी अपने अपने नेत्रों के चरम फल को पाने के समान सुखी हो रहे थे।

नयन लोभ बहुतक सँग होहीं । जाहिं मुदित छन छन सुख जोहीं ॥
चलत बरात सुरीतिहिं तेरे । प्रजा कष्ट नहिं दिखेउ सुहेरे ॥

बहुत से लोग तो नेत्रों के लोभ के कारण बारात के साथ हो जाते तथा आनन्दपूर्वक प्रत्येक क्षण सुख में भरकर उसे देखते जाते थे। बारात भी सुन्दर विधि पूर्वक चल रही थी व प्रजा वर्ग को ढूढ़ने पर भी किंचित कष्ट नहीं दिख रहा था।

दो०—यहिं विधि राम बरात वर, जनक पुरी नियरान ।
समाचार सब दूत वर, जनकहिं दीन्हे आन ॥३३८॥

इस प्रकार श्रीरामजी महाराज की सुन्दर बारात श्रीजनकपुरी के समीप आ गयी। यह सभी समाचार एक श्रेष्ठदूत ने आकर श्री जनक जी महाराज को दिया।

सुनत जनक मन महा उछाहा । जिमि सुशाख लहि बेलि उमाहा ॥
बोलि पठाये तुरत कुँआरा । श्री निधि आइ चरण शिर धारा ॥

समाचार सुनते ही श्री जनक जी महाराज के मन में उसी प्रकार महान आनन्द छा गया जिस प्रकार सुन्दर शाखा पाकर लता उल्लसित हो जाती है। श्री जनक जी महाराज ने तुरन्त ही कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को बुलवा भेजा और आकर कुमार श्री लक्ष्मीनिधजी ने उनके चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया।

आई कहेव बरात महानी । चाहिय कीन्ह अनुप अगुवानी ॥
मंत्रि सखा नृप द्विज लै जाहू । यथा रीति मिलनेहि नर नाहू ॥

तब श्री जनक जी महाराज ने कहा– कि हे तात! श्री राम जी की विशाल बारात आ गयी है अतएव उसकी अनुपमेय अगुवानी करना चाहिए। आप मंत्रियों, सखाओं, राजाओं तथा ब्राह्मणों को साथ लेकर विधिपूर्वक चक्रवर्ती महाराज श्री दशरथ जी से मिलने के लिए प्रस्थान करें।

पितु आयसु सिर राखि कुँअर वर । चले मिलन सब सहित हरषि उर ॥
लक्ष्मीनिधि सह राजकुमारे । चढ़े तुरंगन वेष सम्हारे ॥

अपने श्रीमान् पिताजी की आज्ञा शिरोधार्य कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी सम्मान्य जनों सहित हृदय में हर्षित हो मिलने के लिए चल पड़े। श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ अन्य राजकुमार भी सुन्दर वेष–भूषा धारण किये घोड़ों पर चढ़कर चल दिये।

गज चढ़ि चले अनेक महीपा । बहुतक चढ़े रथन नरदीपा ॥
मंत्री द्विज वर रथन पधारे । चले मिलन मन हर्ष अपारे ॥

अनेक राजा हाथियों में चढ़कर तथा बहुत से राजा रथों में सवार होकर अगुआनी हेतु चले। सचिव तथा विप्र–वृन्द रथ में चढ़े हुए मन में असीमित हर्षपूर्वक बारात की अगुवानी करने चल दिये।

दो०– पणव निसान बजाइ वर, बहु विधि कीन्ह बनाव ।
पंच शब्द धुनि होत प्रिय, भरि भरि चले उराव ॥३३९॥

पणव तथा नगाड़े बजाते हुए बहुत प्रकार से साज सज्जा से युक्त प्रिय पंच–ध्वनि करते हुए सभी घराती उत्साह में भर कर बारात की अगुआनी हेतु चल दिये।

बहुतक चले पयादे जाहीं । दरश आश आतुर मन माहीं ॥
बिविध भाँति भेंटी लै साथा । चले कहत दशरथ गुन गाथा ॥

मन में दर्शन की कामना से आतुर हो बहुत से लोग तो पैदल ही चले जा रहे थे। वे सभी विभिन्न प्रकार की भेंट सामग्री साथ लिये हुए तथा चकवर्ती श्री दशरथ जी महाराज का गुणगान करते हुए चले जा रहे थे।

लखे बराती आव समाजा । हित अगुवानी प्रेषित राजा ॥
भये प्रसन्न बनाव विलोकी । कीन्ह निशानन्ह चोट विशोकी ॥

बरातियों ने श्री जनक जी महाराज के द्वारा अगुवानी के लिए भेजे हुए समाज को आते देखा, उनके साज–बाज व श्रृंगार आदि को देखकर वे प्रसन्न हुए तथा हर्षपूर्वक नगाड़े बजवाने लगे।

अगवानन्ह मन मोद अपारा । देखि बरात समाज प्रकारा ॥
गह गह बाजन लगे निशाना । आनन्द सिन्धु लगेव उमड़ाना ॥

अगुवानी करने आये लोगों के मन में विभिन्न प्रकार के समाज से युक्त बारात को देखकर असीम आनन्द हुआ। गह–गहाते हुए नगाड़े बजने लगे तथा आनन्द का समुद्र उमड़ने लगा।

मिलन हेतु थल प्रथम निरूपा । रहे सजाये निमिकुल भूपा ॥
पहुँचेव तहाँ दोउ दल आई । मनहु सिन्धु युग मिले सुहाई ॥

श्री जनक जी महाराज ने अगुवानी मिलन के लिए पूर्व में स्थान निश्चित कर सजवा रखा था, उस सुन्दर स्थल पर दोनों समाज आकर ऐसे पहुँच गये मानों दो सुन्दर समुद्र एक दूसरे से मिल गये हों।

दो०–निज निज वाहन ते उतरि, मिलन लगे सुख छाय ।
परम प्रेम दोउ दल भिंजे, छटा कही नहिं जाय ॥३४०॥

अपने अपने वाहनों से उतर कर सुख में भरे हुए लोग वहाँ एक दूसरे से मिलने लगे। उस समय घरात व बरात दोनों समाज अतिशय प्रेम मे निमग्न हो गया जिसकी शोभा का बखान नहीं किया जा सकता।

याज्ञबलिक बसिष्ठ मुनिराई । मिले परस्पर प्रेम बढ़ाई ॥
दशरथ यागबलिक पद बन्दी । आशिष लहि अति भये अनन्दी ॥

मुनिश्रेष्ठ श्री याज्ञवल्य जी व श्री बसिष्ठजी आपस में प्रेम विवर्धन करते हुये भेंट किये। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने निमिकुल आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी के चरणों की वन्दना की और आशीर्वाद पाकर अत्यन्त आनन्दित हुए।

बहुरि विराजे सुभग सुआसन । कुशल प्रश्न कीन्हें मृदु भाषन ॥
सह वसिष्ठ सब द्विजन कुमारा । कीन्ह प्रणाम आशिषहिं धारा ॥

पुनः वे सुन्दर आसन में विराज गये तथा कोमल वाणी से परस्पर कुशल प्रश्न किये। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने रघुकुल गुरु श्री वसिष्ठजी महाराज सहित सभी ब्राह्मणों को प्रणाम किया तथा उनसे प्राप्त आशीर्वचनों को हृदय में धारण किया।

भरे भाव पुनि नृप पद लागे । निमिगुरु कह ये कुँअर सुभागे ॥
सुनतहिं दशरथ हिये लगाई । कीन्ह प्यार निज गोद बिठाई ॥

पुनः वे भाव प्रपूरित हो चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के चरणों में प्रणाम किये तब निमिकुल गुरु श्री याज्ञवल्क्य जी ने कहा ये ही परम सौभाग्यशाली कुमार लक्ष्मीनिधि जी हैं। यह सुनते ही चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने कुमार को हृदय से लगा लिया और अपनी गोद में बैठा कर प्यार किया।

शीष सूधि लोचन जल ढारी। राम प्रेम दीन्हें जनु धारी॥
उतरि गोद पुनि कुँअर प्रवीना। बोले वचन मनहु अति दीना॥

चक्रवती श्री दशरथजी महाराज ने प्रेमाश्रु विमोचन करते हुए उनका शिरो–घ्राण किया मानों श्री राम जी महाराज के महान प्रेम की धारा में उनका अभिषेक कर रहे हों। पुनः परम दक्ष कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उनकी गोद से उतरकर कोमल वचनों से इस प्रकार बोले मानों वे अत्यन्त दीन हों।

दो०– नाथ कृतारथ भयों मैं, मिथिला पुर सह धन्य।
दरशन पाय सु रावरो, या सो अधिक न अन्य॥३४१॥

हे नाथ! मैं आप श्री के दर्शन पाकर श्री मिथिला पुरी सहित कृतार्थ और धन्य हो गया, मेरे लिये इसके अतिरिक्त सुख व सौभाग्य दायक अन्य कुछ भी नही है।

प्रेम भेंट दाऊ पठवाये। अर्पित चरण करौं सत भाये॥
नाथ योग वस्तू इत नाहीं। प्रणय पुष्प पूजहिं प्रभु काहीं॥

हे नाथ! हमारे श्रीमान् दाऊ जी ने यह प्रेम–भेंट भिजवायी है। जिसे मैं श्री चरणों में सद्भाव पूर्वक अर्पित कर रहा हूँ। यद्यपि यहाँ आप श्री के योग्य कोई भी वस्तु नहीं है फिर भी प्रेम–पुष्पों से हम नाथ की सेवा कर रहे हैं।

चाहत भाव साधु सुर सेवा। पूरण काम सदा तिन्ह धेवा॥
अस कहिं कुँअर नयन भरि नीरा। चरणन दीन्हेउ माथ अधीरा॥

क्योंकि साधुजन व देवता भाव की ही सेवा चाहते हैं, अन्यथा वे तो सदैव ही पूर्ण काम होते हैं। ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी आँखों में आँसू भरकर अधीर हो उनके चरणों में अपना मस्तक रख दिये।

देखि कुँअर की प्रीति अलोली। अंकहिं लिये नृपति प्रिय बोली॥
धन्य धन्य तुम निमिकुल भूषण। भयो तात जिमि जगत सुपूषण॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अचल प्रीति को देखकर अवध नरेश श्री दशरथजी महाराज उन्हें गोद में लिये हुए ही प्रिय वचन बोले– हे तात्! लक्ष्मीनिधि जी! आप धन्याति धन्य हैं, हे निमिकुल मण्डन कुमार! आप तो उसी प्रकार हैं जैसे संसार के लिये सूर्य देव।

हर्षण हृदय प्रीति अति तोही। यथा लखन लगि लागत मोही॥
यहि प्रकार कहि कुँअर दुलारी। कीन्ही स्वीकृत भेट सुखारी॥
दीन्हे सबहिं यथावत राजा। भाग विभव लखि सब सुख भ्राजा॥

हे हृदय को हर्षित करने वाले कुँवर! मेरी आप पर अत्यन्त प्रीति है तथा आप मुझे कुमार लक्ष्मण के समान प्रिय हो। इस प्रकार कहकर कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी का दुलार करते हुए उन्होंने सुखपूर्वक भेंट स्वीकार कर ली। पुनः कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने सभी को श्री दशरथजी महाराज के समान भेंट प्रदान की तथा उनके भाग्य व वैभव को देखकर सभी अत्यन्त सुखी हुए।

दो०—मधुर भोग जल पान दै, बीरी गन्ध सुमाल ।
कुँअर जोरि कर विनय किय, सुनहिं महा महिपाल ॥३४२॥

तदुपरान्त जनक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सभी को मधुर—भोग ब्व्जलपान) आदि करवा कर, ताम्बूल, इत्र व सुन्दर माला धारण करायी तथा हाथ जोड़कर नम्र निवेदन किया कि— हे श्री महाराजाधिराज, हमारी प्रार्थना को श्रवण करें।

अब पुर चलहिं नाथ मतिमाना । पावन करहिं बनाय महाना ॥
सुनतहिं नृपति सुआयसु दीन्हा । सबहिं चढ़े निज यानहिं चीन्हा ॥

हे परम बुद्धिमान व सबके स्वामी! अब पुरी में पधारने की कृपा करें एवं उसे महान बना कर पवित्र कर दें। यह सुनते ही चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने सभी को सुन्दर आज्ञा प्रदान की और सभी लोग अपने अपने वाहनों पहचान कर उनमें सवार हो गये।

यथा रीति सब साज सजाई । क्रम क्रम चली बरात बनाई ॥
बाजत वाजन विविध विधाना । वारमुखी नाचत करि गाना ॥

सम्पूर्ण साज सज्जा से सुसज्जित होकर क्रमानुसार, विधिपूर्वक बनी—ठनी हुई श्री राम बारात चल पड़ी। विभिन्न प्रकार के बाजे बजने लगे तथा नृत्यांगनायें गीत गाते हुए नृत्य करने लगीं।

जय जय शोर सुनाय सुहाये । विरद बदैं बन्दी मन भाये ॥
शान्ति पढ़हिं सब द्विज समुदाई । सुरहुँ सुमन वरषहिं झरि लाई ॥

जय जय का सुन्दर शोर सुनाई देने लगा, बन्दी—जन मनभावना बिरद बखान करने लगे, सम्पूर्ण विप्र—वर्ग शान्ति पाठ करने लगे तथा देवता भी झड़ी लगाकर फूलों की वर्षा करने लगे।

परत पाँवड़े बसन अमोले । चली बरात प्रेम रस घोले ॥
सकल नगर अति आनन्द छायो । देखि बरात सबहिं सुख पायो ॥
डगर डगर घर घरन उछाहा । रस प्रवाह सब बहे अथाहा ॥

अनमोल वस्त्रों के पाँवड़े बिछाये जाने लगे जिन पर से प्रेम रससिक्त बारात चल पड़ी। सम्पूर्ण जनक नगर में अत्यन्त आनन्द छा गया तथा श्री राम बारात को देखकर सभी ने असीम सुख प्राप्त किया। श्रीमिथिलापुरी में प्रत्येक मार्ग तथा प्रत्येक भवन में उत्साह छाया हुआ है, सभी लोग अथाह रस के प्रवाह में बहे जा रहे हैं।

दो०—रस रस जात बरात वर, पहुँचि गयी जनवास ।
नाम अयोध्या दीन्ह तेहिं, सब विधि सकल सुपास ॥३४३॥

इस प्रकार धीरे—धीरे चलते हुए सुन्दर बारात जनवासे पहुँच गयी जिसका नाम श्री अयोध्या पुरी रखा गया था तथा जो सभी प्रकार की सुविधाओं से परिपूर्ण था।

जनक सुवन सह सचिव प्रधाना । कीन्ह यथा विधि बहु सनमाना ॥
अन्तःपुर रानिन कर वासा । सब प्रकार जहँ सबहिं सुपासा ॥

श्री जनक कुमार लक्ष्मीनिधिजी अपने प्रमुख मन्त्रियों के साथ वहाँ सभी का यथा रीति अत्यधिक सन्मान किये। जनवास गृह के अन्त:पुर में, जहाँ सभी प्रकार की सम्पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध थीं, महारानियों को निवास दिया गया ।

दासी दास भरा सब भवना । मिथिला अवध एक सम फबना ॥
राउ सहित तहँ सकल बराती । पाये पृथक पृथक गृह भाती ॥

वहाँ के सभी भवन दास–दासियों से भरे हुए थे तथा श्री मिथिला पुरी की वह नवीन अयोध्या एवं श्री अयोध्या पुरी दोनों एक समान शोभायमान थी। उस नवीन अयोध्या में श्री दशरथ जी महाराज सहित सभी बारातियों ने निवास के लिए अलग–अलग सुन्दर भवन प्राप्त किये।

रिद्धि सिद्धि सब करहिं सुसेवा । जोगवैं मन दिन रातिहिं धेवा ॥
सुर पुर दुरलभ सम्पति धारी। सेव बरातिहिं सब सुख सारी ॥

वहाँ सम्पूर्ण रिद्धियाँ व सिद्धियाँ सेवा करती थीं तथा दिन–रात अपने स्वामी के मनोनुकूल कार्य करती रहती थी। वे देवपुर में भी दुर्लभ सम्पत्तियों को धारण किये हुये सभी बारातियों की सेवा सुखपूर्वक कर रही थीं।

महा भोग निज निज गृह पाई । सब प्रकार सब भाँति सुहाई ॥
सकल बरात सुआनन्द फूली । निज सम इन्द्रहुँ नेक न तूली ॥

अपने अपने निवास गृह में सभी प्रकार के सुन्दर व महान भोगों को प्राप्त कर सम्पूर्ण बारात आनन्द में फूली हुई थी तथा तुलना में अपने समान देवराज इन्द्र को भी किंचित नहीं समझ रही थी।

दो०–अशन शयन सेवन वसन, भूषण भोग विलास ।
लखि सुरेश लाजत अतिहिं, शची सहित मन ह्रास ॥३४४॥

वहाँ के भोजन, शयन, सेवा, वस्त्र, आभूषण तथा भोग–विलास को देखकर देवराज इन्द्र भी अपनी पत्नी श्री शची जी सहित अत्यन्त लज्जित तथा मन में निराश हो रहे थे।

काम सुरभि सुरतरु प्रति वासा । देव समान तहाँ बहु दासा ॥
किन्नर नारि नवल गंधर्वी । नृत्य गान रिझवैं अपसर्वी ॥

प्रत्येक आवास में सभी प्रकार की कामनाओं की पूर्ति हेतु कामधेनु व कल्पवृक्ष उपलब्ध थे तथा उनकी विविध सेवा के लिये देवताओं के समान बहुत से सेवक उपस्थित थे। किन्नरियाँ, नवीन गन्धर्वियाँ तथा अप्सरायें आदि नृत्यगान कर सभी को रिझाती रहती थी।

सोचहिं सकल कहाँ हम भाई । सुरपुर या वैकुण्ठ अमाई ॥
भूले सुधि सब घर परिवारा । मुक्त भये जस सबहिं विकारा ॥

सभी बाराती जन विचार कर रहे थे कि हे भाई! हम, कहाँ हैं? देवलोक या विमल वैकुण्ठ में तो नही हैं? वे सभी अपने घर व परिवार की सपूर्ण स्मृति उसी प्रकार भुलाए हुए थे जैसे सभी प्रकार के विकारों को त्यागकर मुक्त हो गये हों।

कहहिं एक एकन सुख पाई । वैभव जनक अमित है भाई ॥
शत शत इन्द्र जाहिं इत वारी । अमित कुबेर जाहिं बलिहारी ॥

वे अतिशय सुखी होकर एक दूसरे से कह रहे थे कि श्री विदेहराज जी महाराज का वैभव तो असीमित है। यहाँ तो सैकड़ों इन्द्र भी न्योछावर तथा असीमित कुबेर भी बलिहारी जाते हैं।

ब्रह्म सृष्टि बहु सुनी स्वदेखी । अस वैभव नहि सपनेउ पेखी ॥
योगेश्वर मिथिलाधिप केरी । महिमा महा न जाय निबेरी ॥

श्री ब्रह्मा जी की बनाई हुई, बहुत सी सुनी व स्वयं की देखी हुई सृष्टियों में इस प्रकार का वैभव हमने स्वप्न में भी दर्शन नहीं किया। योगेश्वर श्री मान् मिथिलाधिराज जनक जी की महान महिमा तो वर्णन ही नहीं की जा सकती।

दो०—धनि धनि नृप दशरथ अहैं, भ्रातन सह धनि श्याम ।
जनक लड़ैती संग भयो, राम व्याह सुख धाम ॥३४५॥क॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज धन्यातिधन्य हैं व अपने भ्राताओं सहित श्यामसुन्दर श्री राम जी महाराज भी धन्य हैं जो इनका शुभ–विवाह श्री जनक जी महाराज की लाड़िली पुत्री श्री सिया जू के साथ हुआ है।

अमित अण्ड की कारिणी, पुत्रि भई जेहिं केरि ।
महिमा वर्णव लघु लगै, लेहु सबै हिय हेरि ॥ख॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि आप सभी अपने हृदय में विचार कर लें कि–असीमित ब्रह्माण्डों की कारण स्वरूपा परमाद्या शक्ति श्री सीता जी जिनकी पुत्री बनकर प्रगट हुई हैं उनकी महिमा का जितना भी वर्णन किया जायेगा वह अल्प ही होगा।

दशरथ कुँअरहिं बोलि सप्रीती । राम लखन पूँछे प्रिय हीती ॥
सानँद कहि सब कुशल सुनाई । सुनत भूप हरषेउ सुख छाई ॥

पुनः चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने प्रेम पूर्वक कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बुला कर अपने प्रिय हृदय–धन श्री राम जी व श्री लक्ष्मण कुमार के सम्बन्ध में प्रश्न किया तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें 'आनन्द पूर्वक हैं' कहकर सम्पूर्ण कुशल समाचार सुनाया, जिसे सुनते ही श्रीदशरथजी महाराज हर्षित हो सुख में समा गये।

राम लखन सुनि पिता पधारे। करैं दरश लालसा अपारे ॥
मुनिवर जानि भाव तिन केरा । विनय सँकोच शील गुण घेरा ॥

श्री मान् पिताजी आये हुए हैं यह सुनकर श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार उनके दर्शन करने की अतीव अभिलाषा से युक्त हो गये तब मुनिवर श्री विश्वामित्र जी ने उनके हृदय के विनय, संकोच तथा शील आदि गुणों से आवृत्त भावों को जानकर–––

हृदय लगाइ बन्धु दोउ नेही । प्रीति रीति भल भाव निबेही ॥
चले मिलन नृपतिहिं मुनिराया । हरषि चढ़े रथ सह रघुराया ॥

–––दोनों भाइयों को प्रेम पूर्वक हृदय से लगा, उनकी प्रीति–रीति का भली प्रकार निर्वाह करते हुये हर्षित हो मुनिराज श्री विश्वामित्र जी, चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज से मिलने के लिए श्री राम जी महाराज तथा श्री लक्ष्मण कुमार सहित रथ में चढ़ कर चल दिये।

पंच शब्द धुनि होत सुहाई। पहुँचि गये वासहिं मुनिराई ॥
यान उतरि कौशिक मुनि संगा। चले बन्धु दोउ प्रीति अभंगा ॥

वहाँ सुन्दर पंच ध्वनि के साथ मुनिराज श्री विश्वामित्र जी जनवास गृह पहुँच गये। रथ से उतरकर दोनों भाई अटूट प्रेम पूर्वक श्री विश्वामित्र मुनि के साथ जनवास गृह में प्रवेश किये।

दो०– आवत कौशिक पुत्र युत, देखेउ दशरथ राज।
प्रेम मगन भेंटन चलेउ, मनहुँ क्षुधित लखि नाज ॥२४६॥

श्री विश्वामित्र जी को अपने पुत्रों श्री राम जी व श्री लक्ष्मण जी के साथ आते हुए देखकर श्री दशरथ जी महाराज प्रेम–मग्न हो उसी प्रकार भेंट करने चले मानो भूखा व्यक्ति अनाज देख लालायित हो आतुरता से चल पड़े।

दशरथ हरषि दण्डवत कीन्हा। तुरत उठाय गाधिसुत लीन्हा ॥
हिय लगाय पुनि दीन्ह अशीषा। पुनि पुनि पद रज धर नृप शीशा ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज ने हर्षित होकर उन्हें दण्डवत प्रणाम किया तब शीघ्र ही गाधिनन्दन श्री विश्वामित्र जी ने उन्हें उठा लिया व हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया परन्तु श्री दशरथ जी महाराज उनके चरणों की धूल को बार–बार मस्तक में धारण कर रहे थे।

करत दण्डवत लछिमन रामा। देखि नृपति हिय मेलि ललामा ॥
प्रेम वारि शिर सूँघत ढारी। अति सुख मनहुँ चुअत रस धारी ॥

परम सुन्दर श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार को दण्डवत प्रणाम करते देख श्री दशरथ जी महाराज उन्हें हृदय से लगा लेते हैं तथा प्रेमाश्रु बहाते हुए उनका शिर सूँघते हैं मानों अत्यधिक सुख के कारण रस की धारा सी प्रवाहित हो रही हो।

सुवन पाइ नृप सुखहिं समाये। गइ मणि मनहु फणिक पुनि पाये ॥
राम लखन पुनि गुरु पद लागे। हिय लगाय कुलगुरु अनुरागे ॥

अपने पुत्रों को प्राप्त कर श्री महाराज दशरथ जी सुख में समा गये मानों फणिधर सर्प ने गयी हुई मणि को पुनः प्राप्त कर लिया हो। पुनः श्रीरामजी महाराज व श्रीलक्ष्मण कुमार ने अपने गुरुदेव श्रीबसिष्ठजी के चरणों में प्रणाम किया तब कुलगुरु श्रीबसिष्ठजी ने उन्हें अनुरागपूर्वक हृदय से लगा लिया।

कीन्ह सकल महिसुरन प्रणामा। आशिष पाइ हरषि उर रामा ॥
भरत शत्रुहन रामहि बन्दे। हियहिं लाइ रघुवीर अनन्दे ॥

तत्पश्चात् श्रीरामजी महाराज ने सभी ब्राह्मणों को प्रणाम किया व आशीर्वाद प्राप्त कर हृदय में हर्षित हुए। श्रीभरतलालजी व श्रीशत्रुघ्न कुमारजी ने श्रीरामजी महाराज की चरण वन्दना की जिन्हें हृदय से लगा कर श्रीरामजी महाराज आनन्दित हुए।

दो०—बहुरि लखण भरतहिं मिले, सहित शत्रुहन भाइ ।
यथा योग प्रिय प्रेम पगि, लागति मिलनि सुहाइ ॥२४७॥

पुनः श्रीलक्ष्मण कुमार जी अपने भ्राता श्री शत्रुघ्न कुमार सहित प्रिय प्रेम में पग कर श्री भरत लाल जी से यथोचित भेट किये, उनकी पारस्परिक मिलनि अत्यन्त सुहावनी लग रही थी।

सुखद राम पुरजन परिवारा। परिजन याचक मीत उदारा ॥
मन्त्रिन मिलेउ हिये हरषाई। छन महँ सकल समाज सुहाई ॥

तदुपरान्त सुख प्रदायक श्रीरामजी महाराज हर्षित हृदय हो पुरजनों, परिजनों, परिवार के सदस्यों, याचकों, मित्रों तथा मन्त्रियों से उदारतापूर्वक भेंट किये। वे एक ही क्षण में सम्पूर्ण समाज से सुन्दर भेंट कर लिये।

यह महिमा रघुपति हनुमाना। जानहिं संत महा मतिवाना ॥
गाधि तनय दोउ बन्धु सुहाये। हिय लगाय नयनन जल छाये ॥

लक्ष्मण कुमार जी ने कहा हे श्री हनुमान जी! श्रीरामजी महाराज की इस महिमा को परम बुद्धिमान सन्तजन ही जानते हैं। पुनः गाधि—नन्दन श्री विश्वामित्र जी ने दोनों सुन्दर भ्राताओं श्रीरामजी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार को अपने हृदय से लगा लिया उस समय उनकी नेत्रों में अश्रु छा गये।

दीन्ह सौंपि दशरथहिं मुनीशा। निर्भर नेहहिं देत अशीषा ॥
सब दिन नाथ केर हैं रामा। कहेव वचन अवनिप अभिरामा ॥

मुनिराज श्री विश्वामित्र जी ने श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार को दशरथजी महाराज को सौंप दिया तथा उनके प्रेम में निर्भर हो कर आशीर्वाद देने लगे तब श्री दशरथ जी महाराज ने सुन्दर वचनों से कहा हे नाथ! श्री राम जी तो सदैव आपके ही हैं।

यहिं विधि होत प्रेम बतकहिया। बैठ सुआसन निज सुख लहिया ॥
करि सतकार यथा विधि नाना। आयसु अकनि गये अगवाना ॥

इस प्रकार सभी अपने सुन्दर आसनों में बैठकर प्रेम पूर्वक बातें कहते तथा सुनते हुये सुख प्राप्त करते रहे तदनन्तर सभी का अनेक प्रकार से विधिपूर्वक सुन्दर स्वागत सत्कार कर अगुवानी करने आये हुये लोग आज्ञा प्राप्त कर चले गये।

दो०—मातु आगवन श्रवण सुनि, रघुकुल भूषण राम ।
पितु निदेश लहि मिलन हित, गे परिपूरण काम ॥३४८॥

श्री अम्बा जी के आने का समाचार सुन रघुकुल भूषण, पूर्ण काम श्रीरामजी महाराज श्रीमान् पिताजी की आज्ञा प्राप्त कर उनसे मिलने के लिए चले गये।

आवत राम मातु हरषाई। करत आरती द्वारहिं आई ॥
राम लखन प्रिय पायन लागी। मातु उठाय प्रेम रस पागी ॥

श्री राम जी महाराज को आते हुए जानकर श्री अम्बा जी हर्ष में भर गयीं तथा आरती उतारती हुई दरवाजे पर आ गयीं। श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मण कुमार जी ने उनके प्रियकर चरणों में प्रणाम किया तब अम्बा श्री कौशिल्या जी उन्हें उठा कर प्रेम रस में पग गयीं।

चूमि बदन जल लोचन ढारी। अधिक सनेह मगन महतारी ॥
सबन्ह मातु बन्दे रघुराई। प्रीति प्यार शुभ आशिष पाई ॥

अम्बा श्री कौशिल्या जी श्रीरामजी महाराज का मुख चुम्बन कर प्रेमाधिक्य के कारण प्रेमाश्रु बहाने लगी तथा प्रेम मग्न हो गयीं। पुनः श्रीरामजी महाराज ने प्रेम पूर्वक अपनी अन्य सभी माताओं की वन्दना की तथा उनका प्यार और शुभाशीष प्राप्त किये।

मातु कौशिला लीन्हे गोदी। देखि राम होवति अति मोदी ॥
लालन योग लाल तोहि लाये। भयी सुखी लालन फल पाये ॥

अम्बा जी श्री कौशिल्या जी श्री राम जी महाराज को अपनी गोद में लेकर निहारती हुई अत्यन्त आनन्दित हो बोलीं–दुलार करने योग्य हे लाल रघनुनन्दन! तुम्हें हृदय से लगाकर मैं सुखी हो गयी तथा तुम्हें पुत्र रूप में प्राप्त करने के फल को पा गयी।

गये कठिन दिन तुम बिन देखे। मानहुँ वृथा तौन दुख रेखे ॥
सुठि सुकुमार लाल गभुआरे। बहु निशिचरी निशाचर मारे ॥

जो निर्दय दिन तुम्हें बिना देखे व्यतीत हुए हैं वे मानों बेकार तथा दुखपूर्ण ही थे। हे मेरे सुन्दर, कोमल तथा अवोध शिशु राम! तुमने बहुत सी राक्षसियों व राक्षसों का संहार किया है–––

सकल अमानुष लागति बाता। भई कृपा कौशिक तव त्राता ॥
माधुर भाव नेह भरि माई। भूली रघुपति पर प्रभुताई ॥

–––ये सभी बातें तो अमानुषिक लगती हैं, मुझे तो लगता है कि श्री विश्वामित्र जी की कृपा ही तुम्हारी रक्षक बनी है। उस समय अम्बा श्री कौशिल्या जी श्री राम जी महाराज के प्रेम के वशीभूत हो माधुर्य भाव में भर गयी थी तथा उनकी महान महिमा को भूली हुई थीं।

दो०–प्रेम भरे मृदु वचन सुनि, कौशिक कृपा बताय ।
मधुर मंजु प्रिय बैन प्रभु, दिये मातु समुझाय ॥३४९॥

श्री अम्बा कौशिल्या जी के प्रेम भरे कोमल वचनों को सुनकर प्रभु श्री राम जी महाराज ने उसे श्री विश्वामित्र जी की कृपा बताते हुए मीठे, कोमल व प्रिय वचनों से श्री अम्बाजी को समझा दिया।

अरी मातु मम भोरी भारी। घात टरो कह बारम्बारी ॥
खेल समान बाण इक फेंका। नशे निशाचर बचे न एका ॥

हे मेरी अत्यन्त भोली–भाली श्री अम्बा जी! आप बारम्बार कहती हैं कि मेरी घात (कुसमय) ही कट गयी है। परन्तु मैंने तो खेल के समान ही एक बाण फेंक दिया था जिससे सभी राक्षस मर गये, एक भी नहीं बच सके।

बिन श्रम बिन संग्राम सुअम्बा । दहे दैत्य गुरु कृपा कदम्बा ॥
तोरन धनुष प्रथम री मइया । किय गुरु चरण सरोज बलइया ॥

हे श्रीअम्बाजी! मैंने बिना परिश्रम व बिना युद्ध किये ही श्री गुरुदेव जी की कृपा के सहारे सभी राक्षसों का संहार कर दिया है तथा हे श्री मइया जी! धनुष तोड़ने के पूर्व मैंने श्री गुरुदेव जी के चरण कमलों का स्मरण कर उनकी बलायें ले ली थी।

जाय समीप छुअत धनु माई । आप टूट शिव मनहुँ पढ़ाई ॥
चाप छुओ नहिं रावण बाना । कहि कठोर बहु करसि बखाना ॥

अतः हे श्री अम्बा जी! शिव धनुष तो, समीप जाकर छूते ही, अपने आप ऐसे टूट गया मानों श्री शिव जी ने उसे पूर्व से ही यह शिक्षा दे रखी थी। रावण तथा बाणासुर जैसें महा बलशाली योद्धा भी उस धनुष का स्पर्श तक नहीं कर पाये थे तथा बहुत कठोर है ऐसा कहकर बखान कर रहे थे।

गुरु प्रणाम आयसु बिनु माता । सबहिं चले अभिमान जनाता ॥
बिनु गुरु कृपा महा भव चापा । तोरि सकै नहिं ब्रह्महुँ आपा ॥

हे श्री अम्बा जी! वे सभी राजा–गण श्री गुरुदेव जी की आज्ञा व प्रणाम किये बिना ही अभिमान पूर्वक उसे तोड़ने चले थे। जबकि बिना श्री अचार्य–कृपा तो महान भव–चाप का स्वयं ब्रह्म भी खण्डन नही कर सकता है।

दो०– गाधि सुवन सह मातु सुनु, दिन दिन बढ़त अनन्द ।
अब लौं दुख जान्यों नहीं, पग पग परमानन्द ॥३५०॥

हे श्री अम्बा जी! गाधि–नन्दन श्री विश्वामित्र जी के साथ तो प्रतिदिन आनन्द बढ़ता ही गया तथा अभी तक मैं दुख को जान भी नहीं पाया, मुझे तो प्रत्येक पग में परमानन्द ही प्राप्त होता रहा है।

सुनत मातु रघुवर मुख वानी । सोचहिं तजी हिये हरषानी ॥
प्रीति रीति मिथिलाधिप केरी । स्वागत सेवा कही निबेरी ॥

श्रीरामजी महाराज के मुख से विनिसृत वचनों को सुनकर श्रीअम्बाजी चिन्ता छोड़कर हृदय में हर्षित हो गयीं तब पुनः श्रीरामजी महाराज ने श्री मिथिलाधिराज जनक जी महाराज की प्रीति रीति, स्वागत–सत्कार तथा सेवा आदि का विस्तार सहित वर्णन किया।

लक्ष्मीनिधि प्रिय प्रीतिहुँ रामा । वरणे यथा गये तिन्ह धामा ॥
सुखद सुनैना नेह सुनायो । सुनत अम्ब अतिशय सुख पायो ॥

श्रीरामजी महाराज ने श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रिय प्रीति तथा जिस प्रकार वे उनके निवास भवन गये थे, वर्णन किया। पुनः श्री सुनैना अम्बा जी का सुख प्रदायक प्रेम वर्णन कर सुनाया जिसे सुनते ही अम्बा श्रीकौशिल्याजी ने अत्यधिक सुख प्राप्त किया।

बहुरि जननि कछु भोग पवाई । करत प्यार नैनन फल पाई ॥
यहि विधि राम मातु पितु पासा । कबहुँ सखन सह करत सुवासा ॥

तत्पश्चात् श्रीअम्बा कौशिल्याजी ने श्रीरामजी महाराज को प्यार करते हुए कुछ भोग पवाया तथा नेत्रों के साफल्य को प्राप्त किया। इस प्रकार श्रीरामजी महाराज अपनी अम्बाजी व श्रीमान पिताजी के पास तो कभी सखाओं के साथ सुन्दर निवास कर रहे थे।

सुनत सुनावत मैथिल प्रेमा। मनन करत भूलत भल नेमा॥
समय समय लक्ष्मीनिधि आवहिं। करन प्रबन्ध सुभाव समावहिं॥

वे श्री मिथिला पुर वासियों के प्रेम को सुनते तथा सुनाते रहते एवं उसका मनन करते हुए अपने सुन्दर नित्य नियम भी भूल जाते थे। समय समय पर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी सुन्दर भाव में भरे हुए प्रबन्ध करने के लिए आते रहते थे।

दो०—नृप गुरु मंत्री द्विज सखा, लखि लखि श्री निधि भाव।
रूप शील गुण प्रेम निधि, मानत अतिहिं उराव॥३५१॥

श्री दशरथ जी महाराज, गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी, मन्त्री, ब्राह्मण तथा सखा आदि श्री लक्ष्मीनिधि जी के भाव को देख—देखकर एवं उन्हें रूप, शील, गुण तथा प्रेम की निधान समझकर अत्यन्त आनन्द मानते थे।

चित्ताकर्षण सबहिन केरा। जनक सुवन पर भयो घनेरा॥
अति सप्रेम सबहीं कर प्यारा। गुरु नृप करहिं विशेष दुलारा॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी पर सभी बारातियों का चित्त पूर्णतया आकर्षित हो गया तथा वे सभी प्रेम में समाये हुए उन्हें अत्यधिक प्यार करते थे, फिर गुरुदेव श्री बसिष्ठजी व श्री दरशरथ जी महाराज का तो उन पर विशेष ही दुलार था।

कुँअरहिं पाइ राम रघुनन्दन। बोलेउ वचन सुखद उर चन्दन॥
राउर देखन मातु हमारी। लावन हमहिं कही सुखकारी॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्राप्तकर एक समय रघुनन्दन श्रीरामजी महाराज सुख प्रदायक एवं हृदय को शीतल करने वाले वचन बोले— हे कुमार! आपको देखने की अभिलाषा से हमारी श्री अम्बा जी ने आपको सुखपूर्वक अपने समीप लाने को कहा है।

सुनतहिं आपन भाग्य सराही। चलेव कुँअर रघुवर सँग माही॥
जाइ तुरत पहुँचेव रविनासा। मातु कौशिला जहाँ अवासा॥

श्रीरामजी महाराज के वचनों को सुनते ही कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधिजी अपने भाग्य की सराहना करते हुए श्रीरामजी महाराज के साथ चल दिये तथा शीघ्र ही रनिवास जा पहुँचे जहाँ पर श्री कौशिल्या अम्बा जी का आवास था।

कीन्ह प्रणाम माथ महि लाई। पद रज लीन्हेव शीष चढ़ाई॥
मातु परशि शिर सूँधि सुभाया। कीन्हेव अमित प्यार सुख छाया॥
श्याल भाम दोउ सुतन निहारी। भई मगन मन नरपति नारी॥

श्री अम्बा जी को देखकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपना शिर भूमि में रखकर प्रणाम किया तथा उनकी चरण धूलि माथे पर चढ़ा ली तब श्री अम्बा जी ने उनका शिर–स्पर्श कर सहज ही शिर–सूँघ लिया तथा सुख में भरकर असीमित प्यार किया। अपने दोनों पुत्रों श्याल–भाम (साले–बहनोई) श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज को देख–देखकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की महारानी श्री कौशिल्या जी मन मग्न हो गयीं।

दो०–करि प्रणाम मातन अवर, सब सन पाइ अशीष ।
प्रेम पगे राजत कुँअर, सहित राम जगदीश ॥३५२॥

पुनः अन्य सभी माताओं को प्रणाम कर, सभी से आशीर्वाद प्राप्त कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम में पगे हुए सम्पूर्ण संसार के स्वामी श्री राम जी महाराज सहित विराज गये।

मातन सुखद भेंटि बहु दीन्ही। परि परि पग मृदु विनय सुकीन्ही ॥
कीन्ह कौशिलहुँ प्यार अघाई। बीड़ा गंध माल पहिराई ॥

सभी माताओं को कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने विनय पूर्वक बहुत सी सुख प्रदायक भेंट अर्पित की। श्री कौशिल्या अम्बाजी ने भी तृप्त होकर उन्हें बहुत प्यार किया और ताम्बूल व इत्र देकर माला धारण कराई।

कही बहुरि श्रीजनक कुमारा । मातहिं कहेव प्रणाम हमारा ॥
करहिं प्रतीक्षा शुभ मुहूर्त की । मिलनि परस्पर सखि सुपूत की ॥

पुनः उन्होंने कहा– हे श्रीजनक कुमार लक्ष्मीनिधिजीजी! आप अपनी अम्बाजी से हमारा प्रणाम निवेदन कर कहियेगा कि हे सखी! हम सुन्दर–पवित्र–पारस्परिक मिलन के शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रही हैं।

समधिनि समधिनि समधी समधी ।प्रथम भेंट की होवत अवधी ॥
देश काल अरु कुल अनुसारा । मिलन समय गुरुजन निरधारा ॥

क्योंकि समधिन–समधिन तथा समधी–समधी के प्रथम मिलन की अवधि होती है जिसे देश, काल और कुल के अनुसार गुरुजन निर्धारित किया करते हैं।

सोइ समय मम आनन्द दाता । मातहिं कहेव सुनहु तुम ताता ॥
आयसु पाइ स्वशीष नवाई । गयउ कुँअर हिय धरि रघुराई ॥

अतः हे तात! अपनी अम्बा जी से कहियेगा वही समय मुझे आनन्दप्रद होगा! पुनः उनसे आज्ञा प्राप्त कर अपना शिर झुका प्रणाम कर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज को हृदय में धारण कर प्रस्थान कर गये।

दो०–आइ भवन मातहिं सुखद, दीन्ही बात सुनाय ।
सुनत सुनैनहिं हर्ष अति, आपन भाग मनाय ॥३५३॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अम्बा जी के महल में आकर श्री अम्बा जी को सुख प्रदायक सभी

बातें सुना दिये जिन्हें सुनकर श्री सुनैना जी अत्यन्त हर्षित हो गयीं तथा अपने भाग्य को सराहने लगीं।

मुदित बराती अहनिशि रहहीं । छन छन नव नव आनँद लहही ॥
आई लगनहिं प्रथम बराता । पुर प्रमोद नहिं वरणि सिराता ॥

इस प्रकार बराती–जन दिन–रात प्रमुदित रहते थे तथा प्रत्येक क्षण नवीन–नवीन आनन्द प्राप्त कर रहे थे। बारात लग्न के पूर्व ही आ गई थी जिससे श्री मिथिला पुरी में जो आनन्द हो रहा था उस का बखान नहीं किया जा सकता।

बैठे दशरथ सहित समाजा । ढ़िगहिं सुभग सुत चारहुँ भ्राजा ॥
नाम रूप लीला अरु धामा । प्रेमी हिय जनु सोह ललामा ॥

जनवास में ससमाज विराजे हुये चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के समीप उनके परम सुशोभन चारों पुत्र इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानों प्रेमी भक्त के हृदय में भगवान के सुन्दर नाम, रूप, लीला तथा धाम चारो तत्व सुशोभित होते हैं।

देखत मगन होहिं पुरवासी । मनहु रंक लहि सम्पति रासी ॥
जब तब देव बजाइ निसाना । वरषहिं सुमन मोद उर आना ॥

उनका दर्शन करते हुये कर मिथिला पुरवासी ऐसे मग्न हो रहे थे मानों कोई दरिद्र सम्पत्ति का अपार कोष पा गया हो। देवता जब–तब नगाड़े बजाकर फूल वरषाने लगते और हृदय में आनन्दित हो जाते थे।

श्याम गौर सुन्दर जुग जोरी । देखत सकल नारि नर भोरी ॥
बैठे राम भरत जब सोहैं । सहसा लखि न परैं मन मोहैं ॥

श्याम वर्ण (श्री राम जी व श्री भरत जी) व गौर वर्ण (श्री लक्ष्मण कुमार जी व श्री शत्रुघ्न जी) की दोनों जोड़ियों को सभी स्त्री–पुरुष प्रेम–विभोर होकर निहार रहे थे। श्री राम जी महाराज व श्री भरत जी जब एक साथ बैठे हुए सुशोभित होते हैं तो एकाएक देखने पर उनमें अभेदत्व लगता है (वे पहचाने नहीं जाते) तथा उन्हे देखकर सभी का मन मुग्ध हो जाता है।

दो०–तैसहिं लछिमन रिपुदमन, देखि नगर नर नारि ।
विवरण द्रुत नहिं कर सकैं, रूप रंग इक धारि ॥३५४॥

उसी प्रकार श्री लक्ष्मण कुमार व श्री शत्रुघ्न लाल जी को देखकर जनक–नगर के पुरुष–स्त्री एक समान रूप व वर्ण होने से उन्हें शीघ्रता में पहचान नहीं कर पाते थे।

पुर प्रमोद जानिय यहि भाँती । चातक लहेउ बूँद जनु स्वाती ॥
समय समय गवनहिं जनवासा । देख बन्धु चारहुँ उल्लासा ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि श्री मिथिला पुरी मे जो आनन्द हो रहा था उसे इस प्रकार से समझा जा सकता है जैसे चातक ने स्वाती नक्षत्र की जल बूँद प्राप्त कर ली हो। समय–समय पर सभी श्री मिथिलापुर वासी जनवासे जाते रहते थे तथा चारो भाइयों का दर्शन कर कर आनन्द परिपूर्ण हो जाते थे।

कहहिं परस्पर लोग लोगाई । अनुपमेय सुन्दर सब भाई ॥
राम सिया सौन्दर्य निधाना । इन सम येइ नहिं आन दिखाना ॥

नगर के पुरुष व स्त्री आपस में कहते थे कि ये चारो भ्राता अत्यन्त सुन्दर तथा अनुपमेय हैं परन्तु श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी सौन्दर्य के निधान ही हैं। इनके समान तो ये ही हैं, अन्य कोई भी इनकी समानता का दिखाई नहीं पड़ता।

दशरथ जनक अहैं तप रूपा । लहे राम सिय सुफल अनूपा ॥
भाग हमारहुँ लखि तिरदेवा । वरषत सुमन जानि सब भेवा ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज व श्री विदेह राज जी महाराज तो मूर्तिमान तपस्या ही है जिन्होंने तप के अनुपमेय सुन्दर फल–स्वरूप श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी को प्राप्त किया है। उनके सम्बन्ध से हमारी भाग्य को देख व सभी भावों को समझकर त्रिदेव (श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी) भी पुष्प वरषाते रहते हैं।

सखि सब सुर सब सुर वर नारी । देखि हमन्ह ललचत मन भारी ॥
राम सिया शुभ व्याह उछाहा । देखि देखि सब भरब उमाहा ॥

हे सखी! सभी देवता व सुन्दर देवांगनायें हमें देखकर मन में अत्यन्त लालायित हो रही हैं क्योंकि श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी के शुभ विवाह को आनन्द पूर्वक देख–देखकर हम सभी उल्लास में भर जायेंगी।

दो०– निज निज शुचि सम्बन्ध गुनि, पुलकत हृदय अपार ।
दरश परश बतियाब सब, करिहैं मन अनुहार ॥३५५॥

सभी मिथिलापुर वासी श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी के प्रति अपने–अपने पवित्र सम्बन्धों का स्मरण कर हृदय में अत्यधिक पुलकित होते हैं कि हम अपने मन की रुचि के अनुसार इनका दर्शन, स्पर्श व सभी प्रकार के वार्तालाप आदि करेंगे।

मिथिला वास इनहिं प्रिय लागी । बने सदा रहिहैं रस पागी ॥
राम सिया जब अवध मझारी । रहिहैं मिथिलहिं निज हिय धारी ॥

श्री सीताराम जी महाराज को श्री मिथिला पुरी का निवास अत्यधिक प्रियकर लगेगा अतः ये सदैव ही रस में पगे हुए यहाँ बने रहेंगे और श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी जब श्री अयोध्या पुरी में निवास करेंगे तब भी ये श्री मिथिला पुरी को अपने हृदय में धारण किये रहेंगे।

ताते कबहुँ वियोग न होई । देखहु सूक्ष्म दृष्टि जिय जोई ॥
मिथिला पादप तृण समुदाया । देखत लली प्राण के भाया ॥

इसलिए सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर हृदय में ऐसा लगता है कि इनसे हमारा वियोग कभी भी नहीं होगा। हमारी श्री लली सिया जू तो श्री मिथिला पुरी के पौधों तथा तृण आदि समुदाय को भी अपने प्राणों के समान देखती हैं।

सीय कृपा लखि राम सुजाना। मनिहैं मिथिला आत्म समाना ॥
मिथिला रँगी राम के रंगा। रामहुँ रँगे अवशि तेहि संगा ॥

अतएव श्री सीता जी की कृपा को देखकर सर्वग्य श्री राम जी महाराज भी श्री मिथिला पुरी को अपनी आत्मा के समान मानेंगे। यह सम्पूर्ण मिथिलापुरी ही श्रीरामजी महराज के प्रेम–रंग में रँग जायेगी एवं श्री राम जी महाराज भी अवश्य ही उसके साथ रमें रहेंगे।

भाग अनूपम अति जग जागा। नात बने रघुवर रस पागा ॥
मन भावति सब आस पुराउब। लखिलखि रामसिया सुख पाउब ॥

हम सभी का तो इस संसार में अत्यन्त अनुपमेय सौभाग्य उदित हुआ है जो रस में पगे हुए रघुकुल श्रेष्ठ श्रीरामजी महाराज हमारे सम्बन्धी बने हैं। अब तो हम अपनी मनचाही सभी इच्छायें पूरी करेंगे तथा श्रीरामजी महराज व श्री सीता जी का दर्शन कर सुख प्राप्त करेंगे।

दो०–अस अभिलाषा करहिं शुभ, बहु विधि मैथिल लोग।
छन छन होवहिं सुख मगन, लखिहहिं ब्याह सुजोग ॥३५६॥

इस प्रकार सभी मिथिलापुर वासी बिविध भाँति से शुभकामनाएँ करते तथा क्षण क्षण में सुखमग्न हो जाते हैं कि हम सभी श्री सीताराम जी के शुभ विवाह के सुखद संयोग का दर्शन करेंगे।

छं०– सियराम विवाहा होय उछाहा, गावहिं मंगल गीता।
देखहिं सब भामा दे वरदाना, माँगहिं हाथ विनीता ॥
हिय आस लगावैं नयनन लावैं, व्याह समय की जोरी।
कब होय मुहूरत देखहिं मूरत, मौर धरे अरु मौरी ॥१॥

सभी मिथिलापुर वासी ललनायें अभिलाषा करती हैं कि आनन्द पूर्वक श्री सीताराम जी का शुभ विवाह सम्पन्न हो और हम सभी मंगल गीत गाती हुई उसका दर्शन करें, यही वरदान हम हाथ जोड़करविधाता से विनय पूर्वक माँग रही हैं। वे सभी नारियाँ अपने हृदय में विवाह के समय की सुन्दर जोड़ी को नेत्रों से देखने की अभिलाषा करती थीं कि कब शुभमुहूर्त आये और हम सभी सुन्दर मौर व मौरी धारण किये हुए युगल मूर्ति दुलहा–दुलहिन श्री सीताराम जी का दर्शन करें।

लटकत शिर सिहरा, मणिगण लहरा, झुमझुम झूमत मोती।
मुख अलक किलोलैं कुण्डल डोलैं, छवि कपोल छहरैती ॥
कर कंकण राजै हार सुभ्राजै, लसत पियर पट जामा।
वर व्याह सुधोती दुपट समोती, फहरत मन अभिरामा ॥२॥

उस सुहावने समय में नव दूलह–दुलहिन श्री सीताराम जी के शिर में सुन्दर लहराता हुआ मणियों से सुशोभित सेहरा सजा होगा जिसमें झूमते हुए मोती लटकते रहेंगे, मुख पर घुघुराली काली अलकें विखर कर क्रीड़ा करेंगी तथा कपोलों पर कुण्डल झूलते हुये शोभा विखेरते रहेंगे। कर कमल में कंकण, हृदय में सुन्दर हार तथा सम्पूर्ण शरीर में पीले वस्त्र का सुन्दर जामा सुशोभित होगा। वे

सुन्दर वैवाहिक धोती धारण किये रहेंगे तथा मोती की लड़ियों युक्त किनारी वाला सुन्दर दुपट्टा फहराता हुआ मन को आनन्दित कर देगा।

नव दूलह दुलही, भाँवर फिरहीं, सुर प्रसून झरि लाई ।
लक्ष्मीनिधि भाई, लाजा लाई, परसहिं हिय हुलसाई ॥
द्विज वेद उचारैं, जय जयकारैं, व्याह नारि गन गावैं ।
अस करि अभिलाषा, हरषण दासा, नगर लोग हरषावैं ॥३॥

नव दूलह दुलहिन श्रीरामजी महाराज व श्री सीता जी भाँवरी देते हुए अग्नि के फेरे लगायेगें, देवता फूलों की झड़ी लगा देंगे, उस समय भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी लाजा (लावा) लाकर हृदय में उल्लसित हो लाजा (लावा) परोसेंगे, ब्राह्मण वेदोच्चारण करेंगे, जय–जयकार होगी तथा स्त्रियाँ वैवाहिक गीत गायेंगी। हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि इस प्रकार की अभिलाषा करते हुए सभी मिथिलापुर वासी हर्षित हो रहे थे।

दो०– महत मनोरथ हिय भरहिं, यहि विधि निशिदिन जात ।
उमगि उमगि आनन्द लहहिं, पुरवासी पुलकात ॥३५७॥

इस प्रकार उनके दिन व रात हृदय में महान कामनायें करते हुए व्यतीत हो रहे थे तथा सभी मिथिलापुर वासी पुलकित शरीर उच्छलित हृदय आनन्द प्राप्त कर रहे थे।

सीय स्वयम्वर रहे भुआरा । ते सब देखन व्याह सम्हारा ॥
वसे सकल गृह काज बिसारी । देखि राम नित रहहिं सुखारी ॥

श्री सीताजी के स्वयम्बर में जो भी राजागण उपस्थित थे वे सभी श्रीरामजी महाराज के विवाह की सार सम्हाल देखने के लिए अपने सभी गृह कार्यो को भुला कर श्रीमिथिलापुरी में ही वस गये थे और श्रीरामजी महाराज का दर्शन कर सुखी हो रहे थे।

जीवन लाहु इहै तिन्ह जाना । भजै आस तजि कृपा निधाना ॥
यहि विधि बिते दिवस अनुकूला । आयो अगहन मंगल मूला ॥

इन्होंने अपने जीवन धारण करने का परम लाभ यही समझा था कि सभी सांसारिक कामनाओं को छोड़कर कृपा–निधान श्रीरामजी महाराज का भजन (कैंकर्य) किया जाय। इस प्रकार अनुकूलता पूर्वक दिन बीतते गये व मंगल मूल अगहन मास आ गया।

लगन सोध ब्रह्मा शुभ कीन्हा । नारद करहिं पठाय सो दीन्हा ॥
इहाँ ज्योतिषी जनक भुआरा । शुभ ग्रह शोधि लगन निरधारा ॥

तदुपरान्त श्री ब्रह्मा जी ने शुभ–लग्न (मुहूर्त) का शोधन कर श्री नारद जी के हाथ से भिजवा दिया और यहाँ श्री जनक जी महाराज के ज्योतिषियों ने भी शुभ ग्रहों का शोधन कर लग्न का निर्धारण किया।

युगल शोध सब भाँति सुहाये । एकहिं मिले न कछु अलगाये ॥
विधि सम ज्ञान ज्योतिषन केरा । कहहिं लोग नहिं थोरेहु फेरा ॥

दोनों ही शोधित किये गये सुन्दर मुहूर्त सभी प्रकार से एक दूसरे से मिलते थे, उनमें कोई भी भिन्नता न थी जिसे देखकर सभी लोग कह रहे थे कि श्री जनकपुरी के ज्योतिषियों का ज्ञान तो श्रीब्रह्माजी के समान है क्योंकि दोनों लग्नों में किंचित भी फेर बदल नहीं हैं।

दो०—प्रथम व्याह की कृत्य जो, लौकिक वैदिक होय ।
सो सब शुभ दिन शुभ घरी, नृपहिं सुनाये सोय ॥३५८॥

विवाह के पूर्व से जो भी लौकिक तथा वैदिक प्रक्रियाएँ होती हैं, ज्योतिषियों ने उन सभी के शुभ दिन तथा शुभ समय श्रीजनक जी महाराज को सुना दिया।

प्रथम जनक फलदान पठावा । भूषण वसन मणी बहु गावा ॥
सब प्रकार धन लिये कुमारा । शतानन्द सह हर्ष अपारा ॥

पुनः श्री जनक जी महाराज ने सर्व प्रथम, आभूषणों, वस्त्रों तथा बहुत सी मणियों आदि से युक्त फलदान भिजवाया जिसमें सभी प्रकार से धन—धान्य लिये हुए, कुल पुरोहित श्री शतानन्द जी के साथ राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी असीम हर्ष में समाये हुए———

जाइ दीन्ह दशरथ नृप काहीं । महा मोद कीन्हे मन माहीं ॥
भो फलदान राम कर टीका । मचेउ महा उत्सव अति नीका ॥

———जाकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज को अर्पित कर दिये जिससे वे मन में महान आनन्दित हुए। श्री राम जी महाराज का फलदान और तिलक (टीका) कार्यक्रम हुआ जिसमें अत्यन्त सुन्दर महान महोत्सव सम्पन्न हुआ।

तिलक समय सुर वरषहिं फूला । बजत दुन्दुभी आनन्द मूला ॥
गावहिं गान अवधपुर नारी । प्रेम मगन सिगरी महतारी ॥

तिलकोत्सव के समय देवता फूल वरषाने लगे तथा वहाँ आनन्द की मूल दुन्दुभी बजने लगी। श्री अयोध्या पुरी की सभी नारियाँ वैवाहिक गीत गाने लगीं तथा सभी मातायें प्रेम मग्न हो गयीं।

बिविध वाद्य धुनि चहुँ दिशि गूँजी । जय जय शोर आस सब पूजी ॥
वेद मंत्र मुनि वर बहु पढ़हीं । गुरु बसिष्ठ मन मनहिं उमगहीं ॥

विभिन्न प्रकार के वाद्यों की ध्वनि चारों दिशाओं में गुंजरित हो गयी, जय हो, जय हो तथा हमारी सभी कामनायें पूर्ण हुई का शोर छा गया। उस समय मुनिजन बहुत प्रकार से वेद मन्त्र पढ़ रहे थे तथा रघुकुल—गुरु श्री बशिष्ठ जी मन ही मन में अत्यन्त हर्षित हो रहे थे।

दो०—विविध दान दशरथ दिये, भये प्रसन्न सुविप्र ।
सकल अशीषहिं प्रेम भर, जय जय कहि बहु छिप्र ॥३५९॥

श्री राम जी महाराज के तिलकोत्सव में चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज ने विभिन्न प्रकार से दान दिया जिससे ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुये तथा सभी प्रेम में भरकर शीघ्रता पूर्वक जय—जयकार करते हुए अनेक आशीर्वाद देने लगे।

शतानन्द निमि कुँअर सुहाये। लहि सतकार बहुरि पुनि आये॥
करहिं लोक विधि बहु विधि रानी। गावहिं मंगल हर्ष समानी॥

निमिवंश पुरोहित श्री शतानन्द जी व जनक कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी जनवासे में सुन्दर स्वागत– सत्कार प्रात कर वापस आ गये। तदुपरान्त अवधपुरी की महारानियाँ विभिन्न प्रकार से लोक–रीति करने लगीं और हृदय में हर्षित हो मांगलिक गीत गाने लगीं।

ब्याह उछाह दोउ दल भारी। आनन्द मगन बाप महतारी॥
आयो मायन दिवस सुहावा। गह गह उत्सव बजत बधावा॥

दोनों ही पक्षों (वर तथा कन्या) में महान वैवाहिक आनन्द छाया हुआ था और दोनो के माता–पिता (अम्बा श्री कौशल्या जी व श्री दशरथ जी महाराज तथा श्री सुनैना जी व श्री विदेह राज जी महाराज) आनन्द मग्न हो रहे थे। इस प्रकार सुन्दर मायन का दिन आ गया जिसमें आनन्द पूर्वक उत्सव हुआ तथा मांगलिक वाद्य (बधाव) बजने लगे।

लै लै नाम देव आवाहैं। गंध माल दै धूप सराहैं॥
सुर प्रतच्छ सब देहिं दिखाई। निज निज भाग लेहिं ललचाई॥

देवताओं का नाम ले लेकर आवाहन किया जा रहा था व इत्र, पुष्प तथा धूप आदि देकर उनकी स्तुति की जा रही थी जिससे सभी देवता प्रत्यक्ष प्रगट होकर दिखाई पडते और अपने–अपने हिस्से को लालायित हुए ग्रहण कर रहे थे।

होइ सदा रघुवर कल्याना। देखहिं मंगल मोद महाना॥
सुर अशीष आँचर भरि लेहीं। करहिं प्रणाम मातु पुनि तेहीं॥

देवगण आशीर्वाद दे रहे थे कि श्री रामजी महाराज का कल्याण हो, वे महान आनन्द व मंगल का दर्शन करें। माताएँ देवताओं के आशीर्वचनों को आँचल पसार कर ग्रहण करती तथा उन्हें प्रणाम करती थीं।

दो०–मातृ गण पुनि पूजि के, पितर भूत सब जीव।
सरि सर पर्वत उदधि वन, पूजहिं भाव सुसीव॥३६०॥क॥

श्री राम जी महाराज की मातायें सभी षोडष मातृकाओं का पूजन कर पितृगण, पंच महाभूतों, सभी जीवों का, यहाँ तक कि नदियों, तालाबों, पर्वतों, समुद्रों तथा वनों आदि सभी का ईश्वर की भावना से भावित हो पूजन करती हैं।

पंच भूत अरु गुण रचित, यावत यह संसार।
ईश भाव पूजे सबहिं, करि मन मोद अपार॥ख॥

हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि उस समय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश (पंच–महा भूतों) तथा तीनों गुणों (सत, रज व तम) के द्वारा निर्मित इस संसार में जड़ चेतनात्मक जो कुछ भी है उन सभी की ईश्वर की भावना से मन में असीम आनन्द पूरित हो पूजा की गयी।

छं०— आज अवधपुर मायन सब चित चायन, हरषहिं लोग लुगायन हो ।
बाजन बहु विधि बाजे जय धुनि गाजै, वरषहिं सुमन सुभायन हो ॥
गावत मंगल गीतन पुलकत सीतन, हरषि हरषि पुर नारी हो ।
भूसुर मंत्रन अवली कवि विरुदवली, मधुर मधुर उच्चारी हो ॥

आज श्री मिथिलापुरी के नव–निर्मित श्री अयोध्यापुरी(जनवास गृह) में सभी के मन को आनन्दित करने वाला 'मायन उत्सव'(विवाह से पूर्व मातृका पूजन व नहछू आदि मांगलिक कृत्य) सम्पन्न हो रहा है, सभी पुरुष–स्त्री हर्ष से भरे हुए हैं, अनेक वाद्य–यंत्र विविध प्रकार से बज रहे हैं, जय धुनि गुंजरित रही है तथा स्वाभाविक ही सभीजन सुन्दर पुष्पों की वरषा कर रहे हैं। श्री मिथिलापुरी की नारियाँ हर्षित हो कर पुलकित शरीर मांगलिक गीत गा रही हैं, ब्राह्मण मन्त्रोच्चारण कर रहे हैं तथा कविजन मधुर–मधुर स्वर में विरुदावली का बखान कर रहे हैं।

रतन सिंहासन भ्राजैं दशरथ राजैं, नृप गण चहु दिशि शोभिल हो ।
मिलि किन्नर गंधर्वा गान सुस्वरवा, नचत नारि युत मोहिल हो ॥
मणियन थार लुटावैं नृपति सुहावैं, याचक करत अयाचक हो ।
चक्रवर्ति महाराजा इन्द्रहुँ लाजा, देखत सुनत महानक हो ॥

रत्न सिंहासन में विराजे हुए चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज सुशोभित हो रहे हैं, उनके चारों दिशाओं में बहुत से राजा गण बैठे हुए हैं। अपनी स्त्रियों सहित किन्नर व गन्धर्व आदि मिलकर सुन्दर स्वर में गाते हुए मनमोहक नृत्य कर रहे हैं। महाराज थालों में मणियाँ भर कर लुटाते हुए शोभायमान हो रहे हैं तथा याचक (मंगनें) पूर्णकाम (अयाचक) बन रहे हैं। चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज द्वारा दिये गये महान–दान व वैभव को देख–सुनकर देवराज इन्द्र भी विलज्जित हो रहे हैं।

खंभ सुसुवरन ढारी रतन वँसारी, मणिगन झूलत झालर हो ।
माँड़व अनुपम राजित काम सुलाजित, जहँ वर शोभित साँवर हो ॥
कौशिल जेठी आयसु दै भलि भायसु, नहछू जाय करावहु हो ।
रतनन पीठ धराई कौशिल माई, बैठि सरस सुख छावहु हो ॥

सुन्दर स्वर्ण के ढले हुए खम्भों पर रत्नों से निर्मित बाँस छाये हुए हैं जिनमें मणियों की झालरें झूल रही हैं ऐसे अनुपमेय, परम सुशोभित विवाह मण्डप में कामदेव को विलज्जित करने वाले श्याम–वपु दिव्य दूलह श्री राम जी महाराज सुशोभित हो रहे हैं। इस मंगलमय अवसर में कुल–मान्य सयानी स्त्रियों ने महारानी श्री कौशिल्या जी को सुन्दर आज्ञा दी कि, अब आप जाकर श्री राम जी महाराज की नहछू करवायें जिसे सुनकर श्री कौशिल्या अम्बा जी रत्न विनिर्मित सुन्दर चौकी रखवा कर सुख व रस में डूबी हुई वहाँ विराज गयीं।

मातु लिये निज गोदा अतिहिं प्रमोदा, श्याम सुभग रघुनन्दन हो ।
आईं चतुर सुहागिन अंचल दीन्हिन, ऊपर शिर जगवन्दन हो ॥

नाउन मुख मुसकाती भौं चमकाती, देखत रतिहिं लजावइ हो ।
पदनख निरखि उतारति देहविसारति, प्रेम विवश सुधि खोवइ हो ॥

श्री कौशिल्या अम्बा जी श्याम सुन्दर रघुनन्दन श्रीरामजी महाराज को अत्यन्त आनन्दपूर्वक अपनी गोद में लिये हुए सुशोभित होने लगीं तदनन्तर चार सुहागिन स्त्रियाँ आई और उन्होंने जगत वन्द्य प्रभु श्रीरामजी महाराज के शिर के ऊपर चादर का अंचल फैला दिया। उसी समय मन्द–मन्द मुस्कुराती हुई तथा अपनी भवें मटकाती हुई (सौभाग्य पर इठलाती हुई) रति को भी विलज्जित करने वाली, नाउन प्रभु के चरण नखों को निहार–निहारकर उतारने लगी और प्रेम के वशीभूत हो शरीर की स्मृति भूलकर अपनी चैतन्यता खोने लगी।

पद प्रिय लाल महावर, देति सुखाकर, होवत धोख लगावन हो ।
विहँसत पेखन वारी, गुनि मतवारी, लाजति नाउन भावन हो ॥
अमित तीर्थ जल लीना, औषधि भीना, स्वर्ण कलश शत सोहैं हो ।
प्रिय लालहिं नहवावैं, मंगल गावैं, राम सबन मन मोहै हो ॥

वह नाउन सुख में समायी हुई लाल रघुनन्दन के प्रिय अरुण–अरुण–चरण कमलों में महावर लगाती है किन्तु महावर लगाते समय उसे लगा चुकने का भ्रम हो जाता है। जिसे देखकर सभी देखने वाली स्त्रियाँ, उसे मतवाली समझ हँसने लगती हैं तथा नाउन भी अपने भाव के ऊपर लज्जित हो जाती है। पुनः अतिशय सुशोभित सौ स्वर्ण–कलशों में असंख्य तीर्थो का औषधि मिश्रित जल लेकर प्रिय लालन रघुनन्दन श्री राम जी को स्नान कराती हैं, उस समय नारियाँ मंगल गीत गाती हैं तथा श्री राम जी महाराज अपने परम सुशोभन वपु से सभी के मन को मोहित किये ले रहे हैं।

कहहिं नारि प्रिय गारी, तव महतारी, पितहुँ गौर गुण राजै हो ।
लषन गौर शुचि शोभित, जनमन लोभित, सकल सखन सुख साजै हो ॥
तुम कस श्याम सुहाये, भल नहि भाये, लगत राम तुम आनक हो ।
लषन अहैं सुत घर के, हौ तुम पर के, सुनत राम सकुचायक हो ॥

सभी नारियाँ प्रिय गारी (व्यंगोक्ति) गाती हुई कहती हैं कि आपकी माताजी व पिताजी ता परम गुणवान तथा गौर वर्ण वाले हैं। सभी के मन को मोहित कर लेने वाले, परम पवित्र श्री लखन लाल जी भी गौर वर्ण वाले व सम्पूर्ण सखाओं के सुख साज हैं। परन्तु आप श्याम वर्ण वाले कैसे हो गये, यह तो अच्छा नही हुआ, हे लाल, आप तो अन्यत्र के प्रतीत होते हैं। घर के अनुकूल पुत्र श्री लखन लाल जी ही हैं और आप तो अन्य के पुत्र हैं। श्याम सुन्दर श्री राम जी इस प्रकार की बाते सुनकर संकुचित हो जाते हैं।

सुवरण सूत्र बनाये, वसन सुहाये, रामहिं लै पहिरायल हो ।
भूषण विविध सम्हारे, द्योति अपारे, देखत मन भल लागल हो ॥
नाउन अमित निछावर, रत्न जड़ावर, हीरक मोति सुपाई हो ।
गाड़िन भरि भरि नाऊ, कर अति चाऊ, भूषण वसन ढुबाई हो ॥

पुनः स्वर्ण–सूत्रों से विनिर्मित सुन्दर वस्त्र लेकर श्री राम जी महाराज को पहनाये गये और विभिन्न प्रकार के असीमित द्युतिमान आभूषण धारण कराये गये जिन्हें देखकर मन अत्यानन्दित हो जाता था। नाउन रत्नों से जड़े हुए अनेक वस्त्र, हीरे मोती आदि सुन्दर वस्तुएँ श्री राम जी की न्योछावर में प्राप्त करती है तथा नाऊ उन आभूषण व वस्त्रों को गाड़ियों में भर–भरकर अत्यन्त उत्साहपूर्वक अपने घर को लिवाये लिये जा रहा है।

मौरहिं लाय मलिनिया, स्वर्ण सुबनिया, मणिगन गुच्छन लटकन हो ।
अनुपम मोतिन सिहरा, भावन बनरा, दीन्ह करत भौं मटकन हो ॥
सुधर तमोलिन आई, बीरा लाई, बातन मनहिं रिझावति हो ।
स्वर्ण सूत्र शुभ जामा, दरजिन वामा, लाइ दीन्ह मन भावति हो॥

भौंह–संचालन द्वारा प्रसन्नता प्रगट करती हुई मालिन, स्वर्ण विनिर्मित सुन्दर मौर जिसमें मणियों के गुच्छों की झालरें लटक रही थी तथा दूलह के अनुरूप अनुपमेय मोतियों से बना हुआ सुन्दर सेहरा लाकर देती है। बातों द्वारा मन को रिझा लेने वाली सुन्दर तमोलिन (पनवाड़िन) पान का बीड़ा लाकर देती है तथा स्वर्ण सूत्रों से बना सुन्दर शुभ जामा (वैवाहिक वस्त्र) लाकर दरजी की स्त्री दे रही है।

कंकन लाय सुनारिन, परम सुभागिन, देत मगन मन बोरी हो ।
मोचिन मखमल पनही, सुवरन खचहीं, लाय सकुच रस घोरी हो ॥
अहिरिन लाय दहेड़ी, प्रेम उमेड़ी, सगुन हेतु दै फूलति हो ।
सोन कील रचि छाता, सुन्दर पाता, दै बारिन मन भूलति हो ॥

परम सौभाग्यशालिनी सोनारिन (स्वर्णकार पत्नी) प्रेम मग्न मन हो श्रीरामजी महाराज के लिए विवाह के समय दाहिने हाथ में बाँधने हेतु सुन्दर स्वर्ण–कंकण लाकर देती है, मखमल की बनी व स्वर्ण खचित (सोने के काम वाली) जूतियाँ लाकर संकोच व रस में पगी हुई मोचिन(चर्मकार पत्नी) श्री राम जी महाराज को धारण करने हेतु देती है, प्रेम प्रगट करती हुई अहीरिन (अहीर पत्नी) शगुन के लिए दही से भरी हुई मटकी देकर प्रसन्नता से फूली जा रही है तथा सुन्दर इमली के पत्तों में सोने की कीलें गूथ कर बनाया हुआ छाता (छत्र) देकर वारिन (वारी की पत्नी) अपने मन की स्मृति भूली जा रही थी।

यहि विधि सब निगहारी, कीन्ह तयारी, भावत पाय निछावरि हो ।
जय जय राम ललनवा, सब मन धनवा, कहत जाहिं नवनागरि हो ॥
शुभ रघुवंश बनाये, सगुन जनाये, उमगत मोद सुमातन हों ।
हरषित पूजन पूजी, आस न दूजी, निरखहिं राम सुगातन हो ॥

इस प्रकार सभी नेगहारियों ने दूलह वेष की तैयारी पूर्ण कर मन–भावती न्योछावर प्राप्त की तथा वे नव–वयसा ललनायें सभी के हृदय–धन श्री राम लला जू की जय–जय कहती हुई प्रस्थान कर गयीं। अनन्तर सुन्दर धन धान्य से भरा हुआ, वंश का प्रतीक रत्न जटित स्वर्ण कलश "श्री

रघुवंश" की रचना की गयी जिसे देखकर श्री राम जी महाराज की अम्बाओं को शगुन होने लगे तथा हृदय में आनन्द उमड़ा पड़ रहा था। उन सभी ने हर्षित होकर "श्री रघुवंश" का पूजन किया। सभी के हृदय में उस समय श्रीरामजी महाराज के सुन्दर दिव्य दूलह वपु का दर्शन करने के अतिरिक्त अन्य कामना नहीं थी।

राम लला प्रिय नहछू, मोद सुतनछू, गावहिं मुद सब नारी हो ।
नहछू राम जो गावैं, गाय सुनावैं, मिलहिं भक्ति भयकारी हो ॥
अवधपुरी नर नारी, मंगल कारी, वरषि सुमन सुर भूलन हो ।
बोलत जयजय भाषा, हरषण दासा, हनत निसानन फूलन हो ॥

इस प्रकार आनन्द परिपूर्ण शरीर से सभी सन्नारियाँ, आनन्द–विधायी सुन्दर नहछू गीत गायन कर रही थीं। हमारे श्री सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि श्री राम जी महाराज की इस नहछू गीत को जो कोई भी गायेगा और गा कर सुनायेगा उसे भयहारी भगवान श्री राम जी की भक्ति प्राप्त होगी। इस मंगलमयी नहछू का दर्शन कर व श्री अयोध यापुरी के स्त्री–पुरुषों को देखकर पुष्प–वृष्टि करते हुये देवता अपने आपा को भूलकर हृदय में फूले हुए जय जयकार करते हुये सुन्दर नगाड़े बजा रहे थे।

दो०–जनक भवन भूपति भवन, होवति व्याह सुकृत्य ।
श्रुति कुल लोक सुरीति महँ, गुरु निदेश जस नित्य ॥३६१॥

इस प्रकार नित्य प्रति श्री जनक जी महाराज व चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के महलों में वेद–रीति, कुल–रीति, तथा लोक–रीति के अनुसार श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से सुन्दर वैवाहिक कृत्य सम्पन्न हो रहे थे।

द्विजन बुलाये तिरहुत राजा । कहेव आज तिथि पंचमि भ्राजा ॥
योग लगन ग्राह नख अनुकूला । अगहन सित दिन मंगल मूला ॥

ब्राह्मणों ने तिरहुत नरेश श्रीजनकजी महाराज को बुलाकर कहा– कि हे महाराज! आज सुन्दर पंचमी तिथि है, योग, लग्न, ग्रह व नक्षत्र आदि पंचांग के सभी अंग अनुकूल हैं और सुन्दर अगहन (मार्गशीर्ष) मास का शुक्ल पक्ष व मंगल मूल शुभ दिन है।

गो धूरी शुचि सुन्दर बेला । पाणि ग्राहण वर दुलहिन मेला ॥
होवै सुख सह सुनहु नरेशा। करैं तयारी दूनहुँ देशा ॥

अतएव सुन्दर पवित्र गो धूलि बेला में नव दूलह–दुलहिन (श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी) के सुखदायी मिलन हेतु सुख पूर्वक पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हो। अस्तु, हे राजन! सुनिये, आप दोनों ही देशों के नरेश (श्री अयोध्या व श्री मिथिला) इस हेतु समस्त तैयारी कर लें।

सुनतहिं हरषे जनक भुआरा। खबरि पठाये भूप अगारा ॥
अति उत्साह होन तब लागा। रोके रहत न उर अनुरागा ॥

विप्र वृन्दों की सुन्दर वाणी सुनते ही श्री जनक जी महाराज अत्यन्त हर्षित हुए तथा चक्रवर्ती

श्री दशरथ जी महाराज के महल में समाचार भिजवाया। जिसे श्रवण कर सभी के हृदय में अत्यधिक उत्साह उत्पन्न होने लगा और हृदय का प्रेम रोकने पर भी नहीं रुक रहा था।

जनक कहा कुल गुरुहिं बुलाई । आयो समय सुहावन साँई ॥
सहित कुँअर करि विविध तयारी । लावहिं भूप बरात हँकारी ॥

अनन्तर श्री जनक जी महाराज ने अपने कुलगुरु श्री शतानन्द जी को बुलाकर कहा– हे नाथ! अब वह सुहावना समय आ गया अतः कुमार लक्ष्मीनिधि जी के साथ विभिन्न प्रकार की तैयारी कर आप चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज को बारात सहित लिवा लायें।

दो०–शतानन्द नृप वचन सुनि, सचिवहिं कहेव बुझाय ।
व्याह सुमंगल वस्तु शुभ, साजहु विधी बनाय ॥३६२॥

श्री जनक जी महाराज के वचनों को सुनकर कुल पुरोहित श्री शतानन्द जी ने सचिव का समझाकर कहा कि आप विवाह की सभी शुभ व मांगलिक सामग्रियाँ विधिपूर्वक सजा लें।

नवाह्न पारायण द्वितीय विश्राम

मंगल द्रव्य थार भरि नाना । कनक कलश चित्रित भरि आना ॥
कर सिर लिये सुआसिन गावहिं । पणव निसान शंख बहु बाजहिं ॥

तब वे अनेक प्रकार के मांगलिक द्रव्यों से भरे थाल तथा सोने के चित्रित कलश ले आये जिन्हें हाथों और शिर में लिये हुए सुहागिन स्त्रियाँ मांगनिक गीत गाने लगीं। पणव, नगाड़े तथा शंख आदि बहुत से बाजे बजने लगे।

करहिं वेद धुनि विप्र समाजा। बनेव बनाव शोभि सब साजा ॥
चले सुभावन सुभग घराती । पहुँच गये जहँ वास बराती ॥

ब्राह्मण समुदाय वेद ध्वनि करने लगे इस प्रकार सम्पूर्ण साज–सज्जा से सुशोभित हो सहज सुन्दर सभी घराती जन उत्तम भावों से भरे हुए चल पड़े तथा वहाँ पहुँच गये जहाँ पर बारातियों के निवास (जनवास गृह) थे।

शतानन्द मिलि दशरथ राजा। कुँअरहिं प्यार किये रस भ्राजा ॥
मुनिवर कहा समय अब भयऊ। बेगि पधारिय सब कहँ लयऊ ॥

जनवास गृह में निमिकुल पुरोहित श्री शतानन्द जी से भेंट करने के पश्चात् चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज प्रेम रस में भरे हुए कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्यार किये। तदुपरान्त मुनिवर श्री शतानन्द जी ने कहा– हे राजन! अब शुभ समय आ गया है अतः आप सभी को लेकर शीघ्र ही पधारिये।

सुनतहिं लोग निशान बजाये। मण्डप चलन प्रबन्ध लगाये ॥
गुरु निदेश कुल विधि सब कीन्ही । रानी बोलि सुआसा लीन्ही ॥

मुनिवर श्री शतानन्द जी के वचनों को सुनते ही बारातियों ने नगाड़े बजवाये ये तथा विवाह

मण्डप चलने की व्यवस्था करने लगे। तदनन्तर गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी महाराज की आज्ञानुसार महारानियों ने सम्पूर्ण कुल–रीति सम्पादित कर सुआसा (दूल्हा के बहनोई) को भीतर बुलवाया।

नख शिख दूलह वेश बनाई। मौर बाँधि स्वासा सुख पाई ॥
अनुपम दूलह वेश सुहायो। कोटि काम कमनीय लजायो ॥

सुआसा (दूल्हा के बहनोई) ने नख से शिखा पर्यन्त श्रीरामजी महाराज का दूलह वेश में शृंगार किया और उनके शिर में सुन्दर मौर बाँधकर सुख प्राप्त किया। श्री राम जी महाराज के अनुपमेय तथा अत्यन्त सुन्दर दूलह वेश को देखकर करोड़ों कामदेवों की सुन्दरता भी लज्जित हो रही थी।

दो०–देखि मातु प्रमुदित भयीं, नयनन फल गुनि लीन ।
राम रतन नरयान महँ, पधरायीं सुख भीन ॥३६३॥

श्री राम जी महाराज का दूलह वेश देख कर मातायें अत्यन्त प्रमुदित हुई तथा उसे उन्होंने अपने नेत्रों का परम फल समझा। पुनः सुख में सनी हुई माताओं ने श्री राम–रूपी रत्न को नरयान (पालकी) में विराज दिया।

पंच शब्द धुनि होवन लागी । परिछन मातु करहिं अनुरागी ॥
आरति कीन्ही करि विधि लोका । चूमि बदन पढ़ि मंगल ओका ॥

उस समय वहाँ पर पंच–ध्वनि होने लगी तथा मातायें अनुराग प्रपूरित हो श्रीरामजी महाराज का परिछन करने लगीं, उन्होंने लोकरीति कस अनुसरण कर आरती उतारी तथा मुख चूमकर मंगलानुशासन किया।

लहि अशीष रघुवर नरयाना । आयो जहाँ बराती नाना ॥
पेखत बनरा वेष बराती । प्रेम पगे हुलसत हिय माती ॥

तदुपरान्त अपनी अम्बाओं से शुभाशीष प्राप्त कर श्रीरामजी महाराज का नरयान द्धपालकी) वहाँ आ गया जहाँ विविध बरातीजन उपस्थित थे। श्रीरामजी महाराज का दूलह वेष देखकर, सभी बराती उल्लसित हृदय हो प्रेम में पगे हुए हर्षोन्मत्त हो गये।

कछुक काल सुधि रही न काहू । को हम कवन कहाँ शुभ व्याहू ॥
धरि धीरज नृप आयसु दीन्हा। बैठहिं राम रथहिं शुभ चीन्हा ॥

वहाँ दिव्य दूलह श्री राम जी महाराज को देख कर कुछ समय तक किसी को भी स्मृति न रही तथा यह भी भूल गया कि हम कौन हैं और यह शुभ विवाह कहाँ हो रहा है। तब चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज ने धैर्य धारण कर आज्ञा प्रदान की कि श्रीरामजी महाराज मांगलिक चिह्नों से सुशोभित रथ में विराज जायें।

दुलहा रघुवर रथहिं पधारे। देखि देखि सब भये सुखारे ॥
परम दिव्य रथ रसिक विराजे। अमित सूर्य जेहि लखतहिं लाजे ॥

इस प्रकार नवल दूलह श्री राम जी महाराज रथ में पधार गये जिन्हे देख–देखकर सभी जन आनन्दित हुए। रसिक राय श्री रामजी महाराज परम दिव्य रथ में विराजे हुए थे जिनके तेज को देख

कर असीमित सूर्य भी लज्जित हो रहे थे।

चम चम चमकत मेरु समाना । देखत लाजहिं देव विमाना ॥
बैठक उच्च सिंहासन सोहैं । छत्र चमर लहरत मन मोहैं ॥

सुमेरु पर्वत के समान अतिशय प्रकाशित व देदीप्यमान उस रथ को देखकर देवताओं के विमान भी लज्जित हो जाते थे उसमें ऊँचाई पर एक सिंहासन में श्रीरामजी महाराज सुशोभित हो रहे थे उनके ऊपर लहराते हुए छत्र तथा चमर मन को मोहित कर रहे थे।

दो०–सुभग सुचंचल अष्ट हय, नख शिख भूषण धारि ।
श्याम कर्ण यानहिं नहे, सिन्धु अश्व लखि हारि ॥३६४॥

नवल दूलह श्रीराम जी महाराज जिसमें विराजे हुये थे उस रथ में सुन्दर, चंचल व नख–शिखान्त आभूषणों से सज्जित आठ श्याम–कर्ण घोड़े जुते हुए थे जिन्हें देख देखकर समुद्र मन्थन से निकला दिव्य अश्व (उच्चैश्रवा) भी अपनी हार स्वीकार कर रहा था।

सारथि काम विमोहन हारा । अश्वन वाग गहे बुधिवारा ॥
काम बनेउ जनु अश्व अनूपा । सबहिं भाँति सब साज स्वरूपा ॥

कामदेव को भी मोहित करने वाला तथा परम बुद्धिमान सारथी उस रथ के घोड़ों की लगाम पकड़े हुए था। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उस रथ में जुते हुये अश्वों कों देखकर लगता था मानों स्वयं कामदेव ही अपनी सभी प्रकार की सुन्दरता व साज–बाज पूर्वक रथ के घोड़े बना हुआ हो।

चमकत देह हयन की सोही । भावत भूषण लखि मन मोही ॥
जल थल गगन चलन गति तिनहीं । मन समान धावत बिन श्रमहीं ॥

उन घोड़ों का शरीर चमकता हुआ श्वेत वर्ण का सुशोभित हो रहा था तथा उनके सुन्दर आभूषणों को देखकर सभी का मन विमोहित हो जाता था। वे जल, भूमि व आकाश सर्वत्र चलने की सामर्थ्य से युक्त तथा बिना परिश्रम ही मन के समान वेग से दौड़ने वाले थे।

रुन झुन छुम छुम खुन खुन बाजै । किंकिनि गलपट मुनिमन राजै ॥
धरनि धरहिं पग अति द्रुतकारी । मनहुँ मही बरछी भय भारी ॥

उन अश्वों के किंकिनी व गल–पट्टे आदि छुमछुम, खुन–खुन तथा रुनझुन–रुनझुन बजते हुए मुनियों के मन को भी रमाने वाले थे। वे अपने पैर भूमि में इतनी शीघ्रता से रखते थे मानों वहाँ बरछी चुभ जाने का महान भय हो।

इमि रथ बैठे श्याम सलोना । मंद हँसनि जनु डारहिं टोना ॥
वरषहिं सुमन निसान बजाई । जय जय कहत देव सरसाई ॥

इस प्रकार के रथ में नवल किशोर सलोने श्याम सुन्दर दिव्य दूलह श्री राम जी महाराज विराजे हुये अपनी मंदस्मिति से सभी पर जादू सा डाल रहे थे। देवता सुख में सरसाये हुए नगाड़े बजाकर पुष्प वरषाते हुए जय–जय घोष कर रहे थे।

दो०–दशरथ राजे वर गजहिं, ऐरावत जनु इन्द्र।
सुखकर सोहैं शुचि रथहिं, कुल गुरु सहित मुनीन्द्र ॥३६५॥

चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज अपने शत्रुन्जय नामक सुन्दर गज पर ऐसे विराजे हुये थे मानों स्वयं देवराज इन्द्र ऐरावत में सुशोभित हों। अन्य पवित्र रथों में कुलगुरु श्री वसिष्ठ जी के सहित मुनिराज श्री विश्वामित्र जी सुखपूर्वक बैठे हुए सुशोभित हो रहे थे।

भरत शत्रुहन लछिमन लाला। चढ़े अश्व मन मोहन बाला ॥
सकल बराती रुचि अनुसारी। चढ़ि चढ़ि यानहिं चले सुखारी ॥

श्री भरत लाल जी, श्री शत्रुघ्न कुमार जी व श्री लक्ष्मण कुमार जी आदि राजकुमार सुन्दर घोड़ों में चढ़े हुए मन को मोहित कर रहे थे। इस प्रकार सम्पूर्ण बराती अपनी इच्छानुसार वाहनों में सवार हो सुखपूर्वक श्रभ राम जी महाराज की बारात में चल पड़े।

पदचर अमित संग महँ सोहैं। बनी बरात मदन मन मोहैं ॥
गुरु अनुशासन पाइ महीपा। शंख बजाइ चले कुल दीपा ॥

उनके साथ असंख्य पैदल चलने वाले भी सुशोभित हो रहे थे। इस प्रकार पूर्ण रूपेण सुसज्जित बारात कामदेव के मन को भी मोहित कर रही थी। तदनन्तर गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी की आज्ञा प्राप्त कर स्वकुल को प्रकाशित करने वाले चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज शंखध्वनि करवाते हुये चल दिये।

विविध वाद्य बहु देंय सुनाई। वरषहिं सुमन देव समुदाई ॥
नाना कौतुक साथ बराता। जात चली रस रस हरषाता ॥

बारात प्रस्थान के समय विभिन्न प्रकार के वाद्य तीव्र ध्वनि के साथ सुनाई दे रहे थे, देव समुदाय पुष्प वृष्टि कर रहे थे तथा विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाओं (खेल–तमाशों) के साथ हर्षपूर्वक बारात धीरे–धीरे चली जा रही थी।

देवन लखे राउ मग माहीं। जात चले व्याहन सुत काहीं ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिदेवा। आये शक्तिन सह सुख सेवा ॥
शेष सुरेश गणेश षडानन। आये देव सबै शुभ ध्यानन ॥

अपने प्रियपुत्र श्री राम जी के विवाह हेतु जाते हुए चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज को मार्ग में देखकर अपनी शक्तियों सहित त्रिदेव (श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी) सुखपूर्वक सेवा करने के लिए आ गये व श्रीशेषजी, देवराज श्रीइन्द्रजी, श्रीगणेशजी व श्रीकार्तिकेयजी आदि सभी देवता उन्हें ध्यान में दिखाई देने लगे।

दो०–चढ़े विमानन गगन बिच, जहँ जहँ दशरथ जात ।
देवहुँ तकि तहँ तहँ चलत, लखि लखि हिय हरषात ॥३६६॥

चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज जहाँ–जहाँ से जाते थे देवता भी आकाश में अपने विमानों में

चढ़े हुए उनका अनुसरण करते हुए वहीं–वहीं चल रहे थे और उन्हें देख देखकर हृदय में हर्षित हो रहे थे।

भूपति भाग्य विभूतिहिं पेखी। सहित त्रिदेव शेष नहिं लेखी॥
सकल सराहहिं धनि धनि भूपा। अण्ड बीच इक अहैं अनूपा॥

चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज के भाग्य व वैभव को देखकर त्रिदेवों (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी) सहित श्री शेष जी भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। उनके सौभाग्य की प्रशंसा करते हुये सभी कह रहे थे कि श्री दशरथ जी महाराज धन्यातिधन्य, ब्रह्माण्ड में अद्वितीय व अनुपमेय हैं।

जनक पुरी नव निरखत भागा। लाजि त्रिदेवहुँ स्वपुर विरागा॥
निमिपुर नव नर नारि विलोकी। सहित नारि सब छकै सुरौकी॥

श्री जनकपुरी के नवनवायमान सौभाग्य को देख–देखकर त्रिदेव भी लज्जित हो रहे हैं तथा अपने लोकों से उन्हे वैराग्य हो रहा था। श्री मिथिला पुरी के पुरुष–स्त्रियों की नवीन शोभा को देखकर सभी देवता अपनी–अपनी नारियों सहित आश्चर्यान्वित हो रहे थे।

पूर्ण चन्द्र लखि नखत मलीना। देख पुरी तिमि सुर सब दीना॥
निम्न जाति नर नारिन शोभा। लखत देव सह वाम विछोभा॥

जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमा को देखकर नक्षत्र आदि मलीन पड़ जाते हैं उसी प्रकार अनन्त भाग्य वैभव सम्पन्ना श्रीजनकपुरी को देखकर सभी देवता क्षुब्ध हो रहे थे। वहाँ के निम्न जाति के स्त्री–पुरुषों की भी शोभा देखकर अपनी स्त्रियों सहित देवता अशान्त हो जाते थे।

शारद कहहि विरंचिहिं जाई। हमहुँ लजै लखि सुन्दरताई॥
अति अचरज मय सृष्टि बनायो। सहित त्रिदेविन देव लजायो॥

श्री सरस्वती जी अपने स्वामी श्री ब्रह्मा जी के समीप जाकर कहती हैं कि यहाँ की सुन्दरता देखकर तो हम भी लज्जित हो रही हैं। आपने अच्छी आश्चर्यजनक सृष्टि का निर्माण किया है जो कि त्रिदेवियों सहित सभी देवताओं को भी लज्जित कर रही है।

दो०– निज करनी नहिं निरखि कहुँ, विधिहुँ भये पुनि मौन।
अति अचरज आनत उरहि, उतर देत नहि गौन॥३६७॥

तब श्री ब्रह्माजी वहाँ पर कहीं भी अपनी रचना न देखकर पुनः मौन हो गये तथा हृदय में अत्यन्त आश्चर्य प्राप्तकर उनका उत्तर न दे सके।

शंकर देखे देव भुलाये। कहि प्रिय वचन सबहिं समुझाये॥
जगहर जगत वन्द्य भगवाना। राम तत्व जानहिं दृढ़ ज्ञाना॥

भगवान श्री शंकर जी ने देखा कि सभी देवता विस्मित हो रहे हैं तब उन्होंने प्रिय वचनों से सभी को समझाया। वे श्री शंकर जी सम्पूर्ण संसार का संहार करने वाले, विश्व–वन्दनीय, परम–ज्ञान से युक्त व श्रीराम तत्व को भली प्रकार जानने वाले ईश्वर हैं।

कहा सुनहु सब सुर समुदाई। अहैं विश्व व्यापक रघुराई॥
परब्रह्म परमार्थ अनूपा। राम अनादि त्रिसत्य निरुपा॥

उन्होंने कहा– हे समस्त देव समुदाय! सुनिये, श्रीरामजी महाराज संसार में व्यापक हैं, वे ही त्रिसत्य अनुपमेय परमार्थ पद व आदि रहित परब्रह्म हैं ऐसा भली प्रकार से निर्णीत सत्य है।

अहहिं अनन्त अण्ड कर नायक। सत चित आनँद सब सुखदायक॥
शक्ति अनन्त अण्ड की कारिणि। करुणामय नित स्ववश विहारिणि॥

श्री राम जी महाराज अनन्त ब्रह्माण्डों के नायक, सच्चिदानन्दमय व सर्व सुखदायी हैं तथा जो अनन्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि करने वाली क्रिया शक्ति, करुणामयी, नित्य स्ववशीभूत हो विहार करने वाली–––

आदि शक्ति अहलादिनि सीता। राम प्रिया जग जननि पुनीता॥
विधि हरि हम सब अमित सुदेवा। उपजहिं राम अंश गुनि लेवा॥

–––परमाद्या शक्ति, आहलाद् स्वरूपा, परम पवित्र व सम्पूर्ण संसार की माता हैं, वही श्री राम–प्रिया श्री सीता जी हैं। आप सभी यह जान लीजिये कि– श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व हम जैसे सभी असीमित देवता श्री राम जी महाराज के अंश से उनकी सेवा के लिए ही उत्पन्न होते रहते हैं।

दो०– सती विधात्री इन्दिरा, उपजहिं अगनित अंश।
जनक लड़ैती सो सिया, प्रगट भई निमि वंश॥३६८॥

जिनके अंश से अनगिनत श्री पार्वती जी, श्री सरस्वती जी व श्री लक्ष्मी जी उत्पन्न होती हैं वही श्री सीता जी श्री निमि वंश में श्री जनक जी महाराज की लाड़िली पुत्री के रूप में प्रगट हुई हैं।

जाकर नाम सुमिरि संसारा। पावहिं सहज पदारथ चारा॥
सीताराम सोइ सुखदाई। आरत हरण जनन ममताई॥

जिनके नाम "श्री सीताराम" का स्मरण कर संसार के समस्त जीव सहज ही चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष) प्राप्त कर लेते हैं, वही जीवों की आर्ति का हरण करने वाले, सुख प्रदाता व अपने जनों पर असीमित वात्सल्य रखने वाले श्री सीतारामजी हैं।

सत चित आनँद मिथिला धामा। तैसहिं जानहु अवध ललामा॥
सत चित आनँद सब नर नारी। राम सिया प्रतिविम्ब विचारी॥

यह श्री मिथिला पुरी सच्चिदानन्दमयी है, उसी प्रकार श्री अयोध्या पुरी को भी सच्चिदानन्दमय समझना चाहिए। यहाँ दिखने वाले सभी पुरुष–स्त्री सच्चिदानन्दमय और श्री रामजी महाराज व श्री सीता जी के प्रतिबिम्ब ही हैं ऐसा विचार कीजिए।

सकल अलौकिक शुचि सब भाँती। कारण लीला दिखै जमाती॥
अस विचार करि परम उछाहा। देखहु सिय रघुवीर विवाहा॥

ये सभी प्रकार से अलौकिक व परम पवित्र हैं तथा सम्पूर्ण समाज श्रीरामजी महाराज की लीला

का निमित्त ही दिखाई देता है। ऐसा विचार कर महान आनन्दपूर्वक आप सभी श्री सीता जी व श्री राम जी महाराज के शुभ विवाह का दर्शन लाभ संप्राप्त करें।

सुनतहिं देव सकल सुख साने । वरषहिं सुमन बजाय निसाने ॥
जय सिय जय जय रघुवर श्यामा । कहहिं प्रेमयुत सुर सह वामा ॥
श्याम सुभग शुचि सरस सलोने । मधि बरात भ्राजत छवि भौने ॥

भगवान श्री शंकर जी के वचनों को सुनते ही सभी देवता सुख में सनकर नगाड़े बजाते हुए पुष्प वरषाने लगे तथा प्रेम पूर्वक अपनी नारियों सहित श्री सीता जी की जै हो, श्री रघुनन्दन राम जी महाराज की जय हो, जय हो कहने लगे। परम सुन्दर, सरस, पवित्र, सलोने, सौन्दर्य सदन, श्याम सुन्दर राजकुमार श्री राम जी महाराज बारात के मध्य सुशोभित हो रहे थे।

दो०–मनहर बनरा वेश लखि, शिवा समेत पुरारि ।
मगन भये मन क्रम वचन, बहे नयन जल धारि ॥३६९॥

श्री राम जी महाराज का मनोहारी दूलह वेष देख कर श्री पार्वती जी सहित भगवान श्री शंकर जी मन, वचन व कर्म से मग्न हो गये तथा उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे।

देखत विधि ब्रह्माणी रामहिं । मगन होहिं पावहि विश्रामहिं ॥
चाहहिं हिय सो हियहिं लगाई । पै अस भाग कहाँ सुखदाई ॥

श्री ब्रह्माजी व श्री सरस्वती जी श्री रामजी महाराज के अत्सन्त कमनीय दूलह वेश को देख कर मग्न हो जाते हैं तथा हृदय में विश्राम प्राप्त करते हैं। वे ऐसी कामना करते हैं कि हृदय से हृदय को लगाकर उनसे भेंट कर लें परन्तु हमारे भाग्य में ऐसा सुख कहाँ है?

अमित मदन मद मर्दन श्यामा । सुन्दर सुखकर वेष ललामा ॥
अठ हय चालित रथ के ऊपर । सोहत ब्रह्म राम निमि भूपर ॥

असीमित कामदेवों के सौन्दर्याभिमान को चूर–चूर करने वाले श्याम सुन्दर, परम सुखकारी सुन्दर दूलह वेष में सजे हुए, पूर्ण ब्रह्म श्री राम जी महाराज अष्ट–अश्वों के द्वारा चलाये जाने वाले रथ के ऊपर विराजे हुए श्री मिथिला मही में सुशोभित हो रहे हैं।

देखि रमापति सहित रमा के । मोहे मनहर वेष बना के ॥
मन थिर करि निरखत भरि नैना । उमगेव प्रेम प्रवाह रसैना ॥

श्री लक्ष्मी जी सहित भगवान श्री विष्णु जी भी श्री राम जी महाराज के मनहरण दूलह वेश को देख कर मोहित हो गये तथा अपने मन को स्थिर कर भर–नेत्र उनका दर्शन करने लगे। उनके हृदय में प्रेम का रसमय प्रवाह उमड़ पड़ा।

इन्द्र शची सह पेखत रामहिं । पायो नयन हजार सुछावहिं ॥
सहस नयन निरखत अनुरागा । भरि प्रभु रूप पियन जनु लागा ॥

देवराज इन्द्र अपनी पत्नी श्री शची जी सहित नव–दूलह श्री राम जी महाराज को देखते ही

हजार नेत्र पाकर सुशोभित होने लगे तथा उन हजार नेत्रों से अनुराग प्रपूर्वक प्रभु श्रीरामजी महाराज का दर्शन करने लगे मानों श्रीरामजी महाराज का रूपामृत हजार नेत्रों में भर–भर कर पान कर रहे हों।

दो०–सुरपति भाग सराहहीं, सकल देव समुदाय ।
सहस नयन निरखत प्रभुहिं, धन्य धन्य अस गाय ॥३७०॥

सभी देव समुदाय देवराज इन्द्र के भाग्य की सराहना करते हुए कह रहे थे कि देवराज इन्द्र धन्यातिधन्य हैं जो प्रभु श्रीरामजी महाराज के अनुपमेय दूलह वेश का हजार नेत्रों से दर्शन कर रहे हैं।

सकल सुरहुँ नारिन सह देखी। भाग सराहि धन्य निज लेखी ॥
भये प्रेम वश सब सुर अपना। स्वर्ग सुखहिं जनि करि सपना ॥

श्री राम जी महाराज के दिव्य दूलह वेश का दर्शन कर अपनी नारियों सहित सभी देवता अपने सौभाग्य की सराहना करते थे तथा स्वयं को धन्य समझते हुये प्रेम के वशीभूत हो वे अपने स्वार्गिक सुखों को स्वप्न के समान समझ रहे थे ।

हरषि बजावहिं मुदित निसाना । वरषहिं सुमन उछाह महाना ॥
नचहिं विमानन देवन नारी । प्रेम प्रमोद कहै को पारी ॥

वे हर्षित होकर आनन्द पूर्वक नगाड़े बजाने लगे तथा अत्यन्त उत्साह पूर्वक पुष्पों की वर्षा करने लगे। उस समय देवांगनायें विमानों में नृत्य कर रही थीं उनके प्रेम और आनन्द का बखान कर कोई पार नहीं पा सकता।

गगन कोलाहल पुर महँ होई । कहि न जाय अति आनँद सोई ॥
सनी सरस सुख सब सुर नारी । मनहर बनरा वेष निहारी ॥

उस समय आकाश व पुरी में अतीव जन–नाद हो रहा था, वहाँ के अत्यानन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री राम जी महाराज के मनहरण दूलह वेष को देख देखकर सभी देवनारियाँ सरस सुख में डूब गयी थीं।

उमा रमा ब्रह्मानी बोली। निज निजपति सन हिरदय खोली ॥
होति हृदय अस अति अभिलाषा। जाय मिलैं सिय मातु निवासा ॥
दरश परश सिय रामहिं करिहैं। व्याह कृत्य लखि आनँद भरिहैं ॥

श्री राम जी महाराज के दिव्य दूलह वेश को देख–देखकर श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी व श्री सरस्वती जी ने अपने–अपने पतियों से अपने हृदय की बात प्रगट करते हुए कहा कि– हमारे हृदय में ऐसी बलवती इच्छा हो रही है कि हम जाकर श्री सीता जी की अम्बा श्री सुनयना जी के रनिवास में मिल जायें तथा श्री सीताराम जी का दर्शन व स्पर्श करती हुई वैवाहिक कृत्य देख–देखकर आनन्द प्राप्त करें।

दो०—सम्भव कहुँ बड़ भाग ते, मिलै सेव अनुकूल ।
आये को फल पाइहैं, राम सिया सुख मूल ॥३७१॥

सम्भवतः हमारे सौभाग्य से श्री सीताराम जी की सुखों की मूल अनुकूल सेवा प्राप्त हो जाय तब हम यहाँ आने के चरम फल को प्राप्त कर लेंगी।

सुनि सुर निज निज नारिन वानी । भये प्रसन्न राम हिय आनी ॥
बोले जाहु सुयतन विचारी । लखि विवाह हिय करहु सुखारी ॥

अपनी—अपनी नारियों के वचनों को सुन कर सभी देवतागण श्रीरामजी महाराज को हृदय में धारण कर प्रसन्न हुए तथा बोले— आप लोग अवश्य जायें तथा सुन्दर उपाय का निर्धारणकर सीताराम जी के विवाह का दर्शन कर अपने हृदय को सुखी करें।

हमहुँ दौरिहै दशरथ साथा । होइहैं निरखि विवाह सनाथा ॥
मानव रूप रहसि तहँ जाई । करहिं स्वार्थ सब निज निज भाई ॥

हम भी शीघ्रता पूर्वक चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराज के साथ रहते हुए श्री सीताराम जी के विवाह का दर्शन कर सनाथ होंगे। हे देवियो! हम सभी मनुष्य रूप धारण कर वहाँ जा अपने अपने स्वार्थ को भली प्रकार पूर्ण करेंगे।

स्वारथ साँच सुनहु सत देवी । दरश परश रघुनन्दन सेवी ॥
सुनि अस बैन सुरन प्रिय वामा । आनन्द पूरि पाय मन कामा ॥

क्योंकि हे देवियो! सुनो, हमारा सच्चा स्वार्थ तो रघुनन्दन श्री रामजी महाराज का दर्शन, स्पर्श व उनकी सेवा प्राप्त करना ही है। देवताओं के ऐसे वचन सुनकर सभी देवनांगनायें अपना मनोभिलषित प्राप्त कर आनन्द प्रपूरित हो गयीं।

मंगल गावहिं प्रेम समानी । सुनि सुनि धुनि कलकंठि लजानी ॥
हरषि देव दुन्दुभी बजाई । वरषि सुमन जय राम गोसाई ॥

वे सभी प्रेम परिप्लुत हुई मांगलिक गीत गाने लगीं जिसकी ध्वनि को सुन—सुनकर कोयल भी लज्जित हो रही थी। देवताओं ने हर्षित होकर दुन्दुभी नाद किया तथा पुष्पों की वरषा कर श्रीरामजी महाराज का जय घोष किया।

दो०—पुर प्रमोद आकाश कर, को कवि कहै सिराय ।
मनहर दुलहा घट घटहिं, कहर मचायो आय ॥३७२॥

हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि— श्री मिथिला पुरी और आकाश के आनन्द का वर्णन कर कौन कवि पार पा सकता है। क्योंकि मनहरण नव दूलह श्री राम जी महाराज ने आकर सर्वत्र कहर (आफत) मचा दी थी।

मिथिला मनहर पुरिहिं सिधाई । चित चोराय दिय धूम मचाई ॥
बनरा सुभग जात पथ माहीं । निज वश कियो काहि धौं नाहीं ॥

जन–जन के मन को हरण कर लेने वाले श्री राम जी महाराज ने आकर श्री मिथिला पुरी में सभी के चित्त को चुरा कर धूम मचा दी है। श्री मिथिला पुरी के मार्ग में चलते हुये परम सुन्दर नव दूलह श्री रघुनन्दन जू ने ऐसा कौन है जिसे अपने वश में नहीं कर लिया अर्थात् अपने सौन्दर्य से सभी को वशीभूत कर लिया था।

बड़रे छली अहेरी नयना । करत चोट हिय हूलत पैना ॥
मुख मुसकनि मनु फूल विखेरी । वितरि सुवासहिं मन मति फेरी ॥

उनके बड़े–बड़े छलपूर्वक शिकार करने वाले नेत्र प्रहार कर हृदय में तीखी चोट पहुँचाते हैं अर्थात् अपनी नेत्र चितवनि से सभी के हृदय को आहत कर देते थे। उनके मुख कमल की मंद हँसनि मानो पुष्प बिखेर, सुगन्धि का प्रसारण कर सभी के मन व बुद्धि को स्वयं की ओर अभिमुख कर लेती थी।

दुलहा स्ववश कियो चित चोरी । प्रगटि प्रथा पुर खोरिन खोरी ॥
सब सुर वाम सुभग पुर नारी । तजि सकोच निरखहिं हिय हारी ॥

अनुपमेय वर वेष से विभूषित श्रीरामजी महाराज ने अपने वशीभूत कर सभी के चित्त की चोरी करते हुये श्री मिथिला पुर की गली–गली में चित चुराने की एक नवीन प्रथा प्रगट की है तभी तो सभी देवताओं की स्त्रियाँ व मिथिलापुर की सुन्दर नारियाँ भी संकोच त्यागकर हृदय हरण दूल्हा जू को आसक्तमना निहार रही हैं।

पति सह सब जग प्रीति दुरानी । बना प्रीति सब हिये समानी ॥
इक एकन ते मिलि रस छाई । कहहिं चितै सुर पुरन लुगाई ॥

हम लोगों की अपने पतियों के सहित सभी सांसारिक प्रीति समाप्त हो गई है तथा हृदय में नव दूलह श्री राम जी महाराज की प्रीति ही हम सबके हृदय में समायी हुई है। इस प्रकार मनहरण दूलह श्रीरामजी महाराज को देख देखकर रस में समायी हुई देवपुर की स्त्रियाँ आपस में बातें कर रही थीं।

दो०–सखी लखहु श्यामल बना, सब कहँ कीन्ह बिहाल ।
रती रमोमा वाणि शचि, सबहीं बिना सम्हाल ॥३७३॥

हे सखी! श्याम वर्ण वाले दिव्य दूलह श्री राम जी महाराज को तो देखो, इन्होंने सभी को विह्वल कर रखा है, यहाँ तक कि श्री रती जी, श्री लक्ष्मी जी, श्री पार्वती जी, श्री सरस्वती जी व श्री शची जी आदि सभी देवियाँ भी स्मृतिहीन बनी हुई हैं।

मातु पिता बन्धुन पति काना । छोड़ि लखैं दुलहा मन माना ॥
प्रभु मुख देखत सब सुधि भूली । प्रेम विवश भई चित्र लिखूली ॥

वे सभी अपने–अपने माता, पिता, भाई व पति के संकोच को भी त्यागकर नव दूलह श्रीरामजी महाराज का स्वेच्छापूर्वक दर्शन कर रही है तथा प्रभु श्रीरामजी महाराज के मुख कमल को देखते ही वे सभी अपनी सम्पूर्ण स्मृति भूल कर प्रेम विवश हो चित्र लिखित मूर्ति के समान हो गयी हैं।

रसो वै सः ब्रह्म सुगीता । वेद प्रथित जानहिं जग जीता ॥
सोइ बनि बनरा रसमय रामा । मिथिला वीथिन विहर ललामा ॥

जिन्हें रस स्वरूप, पूर्णतम परब्रह्म के नाम से गायन किया गया है तथा जो वेदों में प्रतिपाद्य व विश्व विजयी हैं वही रसमय श्रीरामजी महाराज, दिव्य दूलह बन कर श्री मिथिलापुरी की गलियों में सुन्दर विचरण कर रहे हैं।

वशीकरनि चितवनि सखि डारी । मधु मुसकनि रसरूप किया री ॥
जड़ चेतन नर नारि जहाँ लौ । सुख के सिन्धु सने शिशु बृध लौं ॥

हे सखी! नवल दूलह श्री राम जी ने वश में कर लेने वाली अपनी दृष्टि निक्षेप तथा मधुर मुसुकनि के जादू से सभी को रस–रूप बना दिया है तभी तो जड़–चेतन, पुरुष–स्त्री आदि संसार के सभी जीव इन्हें देखकर, बृद्ध व बालकों सहित सुख के सागर में समा गये हैं।

बनहिं विलोकत तनि तेहिं मौरा । करत कसक हिय होवत बौरा ॥
सिहरा लट लटकनि लस आली । लखत लेत मन करत बिहाली ॥

हे सखी! दिव्य दूलह की सुन्दर मौर का रंच मात्र दर्शन करते ही हृदय व्याकुल हो जाता है तथा दर्शन करने वाला बावला हो जाता है। हे सखी! उनके शिर पर सेहरे की झूलती हुई लड़ियाँ सुशोभित हो रही हैं जो देखते ही मन को आकर्षित कर विह्वल बना देती है।

नख शिख व्याह विभूषण धारी । चोरेव चित्त चतुर नर नारी ॥
सुभग सुशोभित जरकसि जामा । त्रिभुवन तेज तनेउ जनु तामा ॥
पहिरे पियर बियहुती धोती । नीको लगत बना छबि सोती ॥

हे सखी! नव दूलह ने नख शिखान्त वैवाहिक आभूषणों को धारण कर श्री मिथिलापुरी के दक्ष स्त्री पुरुषों के चित्त को चुरा लिया है। इनके सुन्दर शरीर में परम सुहावना जरकसी जामा ऐसा सुशोभित हो रहा है मानों तीनों लोकों का तेज उसमें समाया हुआ हो। दिव्य दूलह श्री राम जी महाराज पीले रंग की वैवाहिक धोती पहने हुए सुन्दरता के स्रोत बने सुशोभित हो रहे हैं।

दो०–मनहर बनरा जन जनहिं, अनुपम आनँद दीन ।
जनक लली सौभाग्य सुठि, पायो प्रीतम भीन ॥३७४॥

सभी के मन का अपहरण कर लेने वाले दिव्य दूलह श्रीरामजी महाराज ने जन–जन को अनुपमेय आनन्द प्रदान किया है। हमारी जनक लली श्री जानकी जी का अत्यन्त ही सुन्दर सौभाग्य है जो ऐसे रसमय प्रियतम को उन्होंने प्राप्त किया है।

एक एकहिं सुनु सखी सुभीनी । अनुपम दूलह भाग बलीनी ॥
जनक लड़ैती सुन्दर श्यामा । पायो दुलही मन अभिरामा ॥

एक सखी ने कहा– हे सुन्दर सखी! सुनो, अनुपमेय व अत्यन्त बलवती भाग्य तो इन नव दूलह श्री राम जी महाराज की है जो इन्होने परम सुन्दर श्यामा सुकुमारी मनभावनी जनक लाड़िली श्री सियाजी को दुलहन के रूप में प्राप्त किया है।

तौलिय दूनहु धारि सुपलरी । श्याम अधिक श्यामा सखि भलरी ॥
एक कहहिं सखि दूनहु एका । तरकि न जावहिं किये विवेका ॥

क्योंकि हे सखि! यदि दोनों को तराजू के पलड़ों में रखकर तुलना की जाय तो इन श्याम सुन्दर से हमारी परम सुन्दरी श्यामा सियाजू सभी प्रकार से अधिक ही हैं। उनकी बातें सुनकर एक सखी कहती है कि हे सखी! ये दोनों तो एक ही हैं तथा विवेकतया बिचार करने पर भी अलग नहीं किये जा सकते।

यहि प्रकार मिथिला पुर नारी । गगन मध्य सब सुर तिय प्यारी ॥
लखि लखि बनरा वेष सुरंगा । कहहिं सुनहिं प्रिय प्रीति अभंगा ॥

इस प्रकार श्रीमिथिलापुरी की पौरांगनायें भूमि में तथा सभी प्रिय देवांगनायें आकाश में श्रीरामजी महाराज के सुन्दर दूलह वेष को देख–देखकर उनके अटूट प्रेम में पगी हुई प्रियकर बातें कह व सुन रही थीं।

राज रथहिं रस रीति लुभाई। जात चले दूलह रघुराई ॥
रथ आगे अप्सरा सुनाचहिं । भाव भरी रस रसी सुराचहिं ॥
लखन भरत रिपुदमन कुनारा । सम वयस्क औरहुँ नृप वारा ॥

नव दूलह श्री राम जी महाराज सभी को लुब्ध करते हुए सुन्दर रथ में विराजे हुए रसमयी पद्धति से चले जा रहे थे। उन के रथ के आगे भावों में भरी व रस में समाई हुई सुन्दर अप्सरायें नृत्य कर रही थीं। श्री लक्ष्मण कुमार जी, श्री भरत लाल जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी तथा अन्य समान अवस्था वाले राजकुमार–––

दो०–दहिन वाम रथ सो चलहिं, चढ़े अनूप तुरंग ।
नाचत हय हिहिनाहिं रँगि, यथा ताल वर ढंग ॥३७५॥

–––अनुपमेय अश्वों पर सवार हुये रथ के बाँये व दाँये चल रहे थे तथा उनके घोड़े प्रेम में पगे, हिनहिनाते हुए ताल की गति पर नृत्य कर रहे थे।

विरद वदहिं कवि मागध भाटा । प्रभु यश भनहि प्रेम ठठि ठाटा ॥
देखि देखि दूलह अनुरागे । वरषि सुमन सुर दुन्दुभि दागे ॥

कवि, मागध तथा भाँट–जन सजे–धजे प्रेम में डूबे हुए श्री रघुकुल के विरद का बखान कर प्रभु श्रीरामजी महाराज की कीर्ति का गायन कर रहे थे। देवता अनुराग प्रपूरित हो दिव्य दूलह श्रीरामजी महाराज को देख देखकर फूलों की विपुल वरषा कर दुन्दुभी बजा रहे थे।

सुभग बरात बनी अनुरूपा । यथा लसत दूलह सुत भूपा ॥
निमी नगर नव नारि नवेली । चढ़ी अटारिन सहित सहेली ॥

जिस प्रकार चक्रवर्ती कुमार दिव्य दूलह श्री रामजी सुशोभित हो रहे थे वैसे ही उनके अनुरूप सुन्दर बारात भी बनी हुई थी। श्री निमिनगर की नवयौवना स्त्रियाँ अपनी सखियों सहित अट्टालिकाओं में चढ़ी हुई––––

वरषहिं सुमन नवल अनुरागी। मनहर श्याम सुभग रस पागी ॥
सुखकर श्यामहिं सकल समाजा । लखत सुप्रेम विभोर विराजा ॥

------नवीन अनुराग में भरकर मनहरण दूलह श्याम सुन्दर के रस में पगी हुई पुष्प वरषा रही थीं। उपस्थित सम्पूर्ण समाज सुखकरण श्याम सुन्दर श्रीरामजी महाराज को सुन्दर प्रेम पूर्वक विभोर बन देख रहा था।

दूनहु ओर अधिक रस छायो । बाजत वाद्य बहुत सरसायो ॥
लूटत सुख रस सबहिं लुटावत । जात बरात सोह सुठि भावत ॥

बरात व घरात दोनों ही पक्षों में अत्यधिक रस छाया हुआ था तथा विविध प्रकार के आनन्द वर्धक बाजे बज रहे थे। इस प्रकार सुख प्राप्त करती व सभी को रस दान करती हुई श्री रामजी महाराज की सुन्दर सुहावनी बारात चल रही थी।

दो०—आवत जानि बरात गृह, आनँद मते महान ।
सकल घराती रस छके, हिये अमित पुलकान ॥३७६॥

आनन्द प्रपूरित उस महान बारात को अपने घर में आती हुई जानकर घरात के सभीजन (मैथिल नर—नारी) रस से ओत—प्रोत हो गये तथा उनके हृदय असीमित पुलक से भर उठे।

छं०— जन जानि आवत राम वर, सुख सह बरातिन्ह बनि भले ।
मन मानि आनँद भूल तन, उमगाय हिय सुख संकुले ॥
बजवाय बाजन शंख ध्वनि, बिच बीच होवति शुभकरी ।
जय शोर गूँजत वेद रव, हरषाय आशा अनु फरी ॥

नव दूलह श्रीरामजी महाराज को सुखपूर्वक बने ठने हुए बारातियों के साथ आते देख कर घराती जनों ने अत्यधिक आनन्द प्राप्त किया। वे अपने शरीर की स्मृति भूल गये एवं सुखों की राशि प्राप्त कर उनके हृदय हर्षोच्छलित हो गये। उन्होंने विविध प्रकार के बाजे बजवाये जिनके बीच—बीच में शुभकारी शंख ध्वनि हो रही थी, वहाँ जय—जय का स्वर गूँज रहा था, वेद ध्वनि छायी हुई थी तथा सभी ऐसे हर्षित हो रहे थे मानो सभी की आशा फलवती हो गयी हो।

सिय मातु घोलति प्रेम रस, अति चाव सरसत मन भली ।
लिय बोलि स्वासिन साज सजि, प्रिय हेतु परिछन मंगली ॥
बहु गान मंगल हर्षि हिय, पुर नारि गावहिं स्वर रसे ।
सुनि ध्यान त्यागत योग रत, हर्षण सुमिरि दूलह फँसे ॥

श्री सिया जू की अम्बा श्री सुनयना जी सर्वत्र प्रेमरस विखेरती हुई, अत्यधिक उत्साह में भर, भली प्रकार प्रसन्नमना, सभी शुभ व मांगलिक सामग्री को सजाय हुये, नव दूलह श्री राम जी महाराज का प्रिय मंगल विधायी "परिछन" करने के लिये सुआसिनों को बुलाया। उस समय श्री मिथिलापुर की नारियाँ हर्षित हृदय हो रसीले स्वर से बहुत से मांगलिक गीत गा रही थीं जिन्हें सुन—सुन कर योग

निरत योगीजन भी अपने ध्यान को त्यागे दे रहे थे और हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दासजी महाराज कहते हैं कि दूलह श्री राम जी का स्मरण कर वे उनके रूप जाल में फँस गये हैं।

दो०—मंगल साज सम्हारि शुभ, आरति सहस बनाय ।
चली मातु परिछन करन, राम वरहिं हरषाय ॥३७७॥

पुनः श्री सुनैना अम्बा जी सभी शुभ व मांगलिक वस्तुयें सजाकर, प्रदीप्त सहस्त्र वर्तिका आरती ले हर्षित हो नव दूलह श्री राम जी महाराज का परिछन करने हेतु चल पड़ीं।

गावत मंगल मंगल हेता । सोह रानि सब सखिन समेता ॥
पहिरे अनुपम भूषण चीरा । मोहहिं रतिहिं सुशोह शरीरा ॥

श्री राम जी महाराज की मंगल कामना हेतु महारानी श्री सुनैना जी सखियों सहित मांगलिक गीत गाती हुई अतिशय सुशोभित हो रही थी। वे अनुपमेय आभूषण व वस्त्र धारण किये हुए अपने परम सुशोभित शरीर सम्पत्ति से कामदेव पत्नी रती के मन को भी मोहित कर रही थीं।

कंकण किंकिणि नूपुर बाजै । मनहु साम श्रुति सरस सुभ्राजै ॥
सुखद गीत कल कण्ठि लजावै । बरवश मुनियन ध्यान छुड़ावै ॥

उनके कंकण, किंकिणी व नूपुर आदि आभूषण ऐसे बज रहे थे मानो रसमय सामवेद ही सुशोभित ही हो रहे हों। सखियों के द्वारा गाये जारहे परम सुखदायी मंगल गीत की ध्वनि कोयल की मधुर आवाज को भी लज्जित कर रही थी तथा हठपूर्वक मुनियों के ध्यान को भी छुड़ाने वाले सिद्ध हो रही थे।

रघुवर भाव भरी वर नारी । जात चली परिछन हित सारी ॥
शची शारदा देवि रमोमा । चली लेन सादर सुख भौमा ॥

इस प्रकार श्री राम जी महाराज के प्रेम—भाव में समायी हुई सभी सुन्दर स्त्रियाँ परिछन करने के लिए चली जा रही थीं। उन्ही के साथ श्री शची जी, श्रीसरस्वतीजी, श्रीलक्ष्मीजी व श्रीपार्वतीजी आदि देवियाँ आदरपूर्वक भूमा सुख संप्राप्त करने हेतु चल पड़ी।

औरहु सुर तिय छद्म सुवेषी । बनी नारि सब सुभग विशेषी ॥
जाइ मिली रनिवासहिं सोही । बिनु पहिचानि सुनैना मोही ॥

अन्य देवांगनायें भी छद्म वेष धारण कर विशेष सुन्दर नारियाँ बन गयीं और रनिवास में जा मिलकर सुशोभित होने लगीं जिनको पहचाने बिना ही श्री सुनैना महारानी जी मोहित हो गयी थीं।

दो०—रमा रूप गुन सबहिं प्रिय, दीन्ह सुखद सन्मान ।
सोउ गावहिं मंगल हरषि, वरहिं लखन ललचान ॥३७८॥

उन सभी देवांगनाओं को श्री लक्ष्मी जी के समान रूप, गुण व प्रिय समझकर श्री अम्बाजी ने सुखप्रद आदर दिया तथा वे भी हर्षित हो मंगल गीत गाती हुई दिव्य दूलह श्रीरामजी महाराज को दर्शन करने के लिए लालायित होने लगीं।

बैठे दूलह रथहिं निहारी । मेरु श्रंङ्ग मनु मेघ सुखारी ॥
रवि हय निन्दक हय हिहिनाते । तरफरात चंचल गति ताते ॥

उन सबने नव दूलह श्रीरामजी महाराज को दिव्य रथ में विराजे हुए देखा वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों सुमेरु पर्वत के शिखर में सुखप्रद श्याम वर्ण के बादल छाये हुए हों। भगवान सूर्य देव के अश्वों को भी लजाने वाले श्री राम जी महाराज के रथ के अश्व हिनहिनाते हुए चंचल गति के कारण दौड़ने को व्यग्र हुए जा रहे थे।

काम धरेउ वपु जनु हय अष्टा । सेवा हेतु परम प्रभु द्रष्टा ॥
नखशिख स्वर्ण सुमौक्तिक भूषण । सजे लगत जनु चम चम पूषण ॥

उन्हे देखकर ऐसी प्रतीति हो रही थी मानों सौन्दर्य अधिदेवता कामदेव ही सर्व–दृष्टा परम प्रभु श्री राम जी महाराज की सेवा के लिए आठ घोड़ों का शरीर धारण किये हों। उन अश्वों की देह में नख शिखान्त स्वर्ण तथा सुन्दर मोतियों के आभूषण सजे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों चमचमाते हुए सूर्य ही हों।

देखत भगन भई सब नारी । पाइ नयन फल देह बिसारी ॥
अनुपम वपुष मनोहर पेखी । गति चकोर भइ चन्दहिं देखी ॥

नव दूलह श्री राम जी महाराज का दर्शन करते ही सभी नारियाँ सुख मग्न हो गयीं व अपने नेत्रों का चरम फल पाकर शरीर स्मृति भूल गयीं। पुनः श्री राम जी महाराज के अनुपमेय मनहरण वपु को देखकर उनकी स्थिति वैसी ही हो गयी जैसे चन्द्रमा को देखकर चकोर की हो जाती है।

नख शिख देखि बना की शोभा । मन मति नयन सबन्ह कर लोभा ॥
भइ सुख सिन्धु मगन सब बाला । प्रेम वारि बरवश दृग ढाला ॥
मंगल समुझि सम्हारहिं आपे । रोकहिं वारि नयन प्रभु थापें ॥

दुलहा श्रीरामजी महाराज की नख शिखान्त शोभा देखकर सभी के मन, बुद्धि व नेत्र लुब्ध हो गये तथा सभी स्त्रियाँ सुख के सागर में मग्न हो गयीं उनके नेत्र हठात ही प्रेमाश्रु बहाने लगे थे परन्तु वे मंगल अवसर, समझकर अपने आप को सम्हाल, आँखों से बहते आँसुओं को रोककर उनमें प्रभु श्रीरामजी महाराज को वसा लीं।

दो०– मातु सुनैनहिं सुख भयो, मन वाणी बुधि पार ।
दूलह मनहर भेष लखि, भरी हिये रस धार ॥३७९॥

अम्बा श्री सुनैना जी को श्री राम जी महाराज का मनोहारी दूलह वेश देखकर मन, वचन व बुद्धि से परे अर्थात् अवर्णनीय सुख प्राप्त हुआ तथा उनका ह्रदय दिव्य प्रेम रस धार से आपूरित हो गया।

कुँवर अम्ब कहँ जो सुख भयऊ । विधि हरि हर मति तहँ नहि गयऊँ ॥
जनक कुँवर तब आसु सिधारी । मन मोहन मोहन कर धारी ॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अम्बा श्री सुनैना जी को दिव्य दूलह श्री राम जी महाराज का

दर्शनकर जो आनन्द प्राप्त हुआ उसमें श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी की बुद्धि भी नहीं जा पाती। तदनन्तर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी शीघ्र ही आ गये और मन–मोहन दूलह श्रीरामजी महाराज के मोहक कर कमल को अपने हाथ में रख–––

रसहिं गोद गहि भूमि उतारे। मिले सरस बहनोई सारे॥
देखि मिलन सुर हने निशाना। जय कहि वरषहिं सुमन सुजाना॥

–––पकड़ कर उन्हें गोद में ले धीरे से भूमि में उतार लिया। उस समय श्याल–भाम दोनो एक दूसरे से प्रेमरस में भरे हुए भेंट करने लगे, उनके प्रिय मिलन को देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाये तथा जय–जय उच्चारण कर पुष्प वृष्टि की।

युगल प्रीति लखिलखि सब हरषे। श्याल भाम सबके मन करषे॥
कुँअर बिठाये पुनि नरयाना। परम सुभग दमदम द्युतिमाना॥

उन युगल राजकुमारों की पारस्परिक प्रीति देख–देखकर सभी हर्ष से भर गए तथा उन श्याल व भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज ने सभी के मन को आकर्षित कर लिया। पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने मन–मोहन दूलह श्री राम जी महाराज को परम सुन्दर देदीप्यमान नरयान (पालकी) में बिठा दिया।

ऊपर खुल्यो सिंहासन भारी। बैठे सोह राम रस वारी॥
छत्र चमर छहरत सिर रस झर। हस्त गुच्छ रतनन फूलन भर॥

वह नरयान ऊपर से खुला था जिसमें परम दिव्य सिंहासन में रसस्वरूप नव दूलह श्रीरामजी महाराज विराजे हुए सुशोभित हो रहे थे। उनके शिर में छत्र व चमर चल रहे थे तथा वे हाथों में रत्न विनिर्मित फूलों से भरे गुच्छे लिये हुए थे।

दो०– मुदित मातु सरसत मनहिं, प्रेम न हृदय समाय।
परिछन कर लखि लखि वरहिं, भाव सुभग हिय लाय॥३८०॥

दिव्य दूलह रघुनन्दन श्री राम जी महाराज का रस प्लावित व आनन्द प्रपूरित मन से अम्बा श्री सुनैना जी ने हृदय में सुन्दर प्रेमभाव धारण कर परिछन किया, उस समय नवल दूलह श्री राम जी का दर्शन कर उनके हृदय में प्रभु प्रेम समा नहीं रहा था।

परिछन समय नगर अरु व्योमा। बाजत वाद्य महा सुख भौमा॥
मंगल गान नारि गन केरा। सुख उपजाव सुरस चहुँ फेरा॥

परिछन के समय श्रीजनक नगर व आकाश में अनेक प्रकार के वाद्य भूमा सुख प्रदान करते हुए बज रहे थे। स्त्रियों का मंगलगान तो चतुर्दिक सुन्दर रस व सुख ही उत्पन्न कर रहा था।

वेद मंत्र मुनिवर तहँ पढ़हीं। राम सुयश बहु कविवर मढ़ही॥
अग्नि क्रीडनक बिविध विधाना। होवहि कौतुक करै को गाना॥

मुनिजन वेदों के मंत्रों का उच्चारण कर रहे थे, कवि लोग श्रीरामजी महाराज की सुन्दर कीर्ति का बखान कर रहे थे, विभिन्न प्रकार की आतिशबाजी का प्रदर्शन हो रहा था तथा ऐसे ऐसे

खेल–तमाशे आदि हो रहे थे कि जिनका कोई वर्णन नहीं कर सकता है।

छिन छिन देव सुमन झरि लावैं । जय जय कहि रघुपति गुण गावैं ॥
करि कुल रीति वेद विधि रानी । आरति कीन्ह हिये हरषानी ॥

देवता क्षण–क्षण में फूलों की वृष्टि कर रहे थे तथा जय–जयकार करते हुये श्रीरामजी महाराज का गुणगान कर रहे थे। ऐसे समय में महारानी श्रीसुनैनाजी ने अपनी कुल रीति व वेद रीति पूरी कर हृदय में हर्षित हो दूलह श्रीरामजी महाराज की आरती उतारी।

बार बार मृदु मूरति जोही । चलन कहेव मण्डप मन मोही ॥
पूजन द्वार मनहिं हरषाया । गुरु निदेश सब भयो सुहाया ॥
बहुरि कुँअर रघुवर गहि हाथा । चले लिवाय वितानहिं साथा ॥

मनमोहन दूलह की सुकुमार मूर्ति का बार बार दर्शन कर मन–मुग्ध हुई श्री अम्बा जी ने श्रीरामजी महाराज को मण्डप में पधारने हेतु निवेदन किया। श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से मन को हर्षित करने वाला द्वार–पूजन कृत्य भली प्रकार सम्पन्न हुआ। पुनः श्री राम जी महाराज का कर–कमल पकड़ कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उन्हें अपने साथ विवाह मण्डप ले चले।

दो०– कामदार मखमल पड़े, पाँवड अधिक सुहाँहिं ।
अरघ देत रघुवर वरहिं, श्री निधि लीन्हे जाहिं ॥३८१॥

मखमल पर स्वर्ण के काम से युक्त पाँवड़े पड़े हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं जिनसे अर्घ्य देते हुए, नव दूलह श्रीरामजी महाराज को कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी विवाह–मण्डप लिये जा रहे हैं।

शान्ति पाठ बोलहिं द्विजराई । चलत मन्द मनहर सुखछाई ॥
छत्र चमर शिर चलत सुहाया । पंच शब्द धुनि उर उमगाया ॥

विप्रगण शान्ति पाठ कर रहे हैं व श्री राम जी महाराज सुख पूर्वक सबके मन को हरण करते हुए धीरे–धीरे विवाह मण्डप के लिये प्रस्थान कर रहे हैं। उनके शिर पर छत्र व चमर चल रहा है तथा पंच–ध्वनि सभी के हृदय को उमंग से आपूरित कर रही है।

छहरत छटा चुअत जनु भूमी । भरि प्रकाश मण्डप रस झूमी ॥
यहि प्रकार रघुवर रस पागे । आये मण्डप लखहिं सुभागे ॥

नवल दूलह रघुनन्दन जू का असीम सौन्दर्य छिटक–छिटककर भूमि में निर्झरित हो रहा है जिससे विवाह–मण्डप दिव्य प्रकाश से भर गया तथा प्रेम रस से झूमने लगा। इस प्रकार रस में पगे हुए दिव्य दूलह श्री राम जी महाराज विवाह मण्डप में आये जिनका दर्शन परम सौभाग्यशाली जन कर रहे है।

सुभग सुआसन बनेउ विवाहा । कहि न जाय लखि भरैं उमाहा ॥
जनक सुवन वर वरहिं बिठाये । देखत सुरन निसान बजाये ॥

विवाह के हेतु निर्मित सुन्दर शुभ आसन अवर्णनीय था जिसे देखकर हृदय में परम उत्साह

भर जाता था, उस आसन में जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी नें परम सुशोभन नवल दूलह श्रीरामजी महाराज को बिठा दिया जिनका दर्शन कर देवता नगाड़े बजाने लगे।

वरषहिं सुमन कहत जय वानी । हरषि पुलक मन मोद महानी ॥
दूलह रघुवर रसद आरती । भई अमित आनँद सुढ़ारती ॥

सभी देवता मन में हर्ष पुलक व महान आनन्द प्रपूरित हो जय–जयकार करते हुए पुष्प वरषाने लगे। पुनः नव दुलहा श्री रामजी महाराज की असीमित आनँद वरषाती हुई रस प्रदायिनी आरती सम्पन्न हुई।

दो०–आरति करि रघुलाल की, अमित निछावर कीन्ह ।
नाऊ बारी भाँट नट, महा मुदित मन लीन्ह ॥३८२॥क॥

रघुनन्दन श्री राम जी महाराज की आरती उतार कर असीमित न्योछावर की गई जिसे नाऊ बारी भाट तथा नट आदि ने महान आनन्द प्रपूरित मन से ग्रहण किया।

ब्रह्मा विष्णु महेश सह, औरहु सब सुर जान ।
विप्र वेष पेखत परम, ब्रह्म बना रस खान ॥ख॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– उस समय ब्राह्मण वेष में श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी आदि सभी सर्वज्ञ देवता पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज को रस की खानि नवल दूलह बने हुये देख रहे थे।

छं०– वर ब्रह्म व्यापक विरज विभु, बनि वेष बनरा सोहहीं ।
मन बुद्धि जा कहँ पार नहिं, तिरदेवहूँ मन मोहहीं ॥
सरसाय सुमनन वृष्टि करि, जय राम रघुवर गावहीं ।
दिवि दूल्ह ऊपर राम हर्षण, दास चमर चलावहीं ॥

परम श्रेष्ठ, व्यापक, निर्मल, षडैश्वर्य, पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज ही दिव्य दूलह वेष धारण किये हुए शोभायमान हैं, जिनका मन, और बुद्धि पार नहीं पा सकते हैं, जिन्हे देखकर त्रिदेव (श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी) भी मन–मुग्ध हो जाते हैं तथा सुख पूर्वक सरसाये हुए पुष्पों की वर्षा कर श्री राम जी महाराज की जय हो, ऐसा गायन करते हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्रीराम हर्षण दासजी महाराज अपने हृदय में कामना कर रहे हैं कि उन्हीं दिव्य–भव्य दूलह श्री राम जी महाराज के शीश पर हम चँवर चलायें।

समय समुझि शुभ तिरहुत भूपा । मिले दशरथहिं प्रेम अनूपा ॥
लौकिक वैदिक रीति सुकीनी । आनँद भरे दोउ रस भीनी ॥

अनन्तर शुभ समय जानकर तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज ने चक्रवर्ती श्री दशरथ जी से अनुपमेय प्रेम पूर्वक भेंट कर लौकिक व वैदिक दोनों प्रकार की वैवाहिक विधियों का आनन्द पूर्वक सुन्दर सम्पादन किया और दोनों रस से ओत–प्रोत हो गये।

मिलन विलोकि जनक दशरथ की । सबहिं कहहिं धनि गति यहि पथ की ॥
शारद शेष गणेश विचारैं । खोजत उपमा कतहुँ न पारैं ॥

श्रीजनकजी महाराज व श्रीदशरथजी महाराज की अनुपमेय प्रेम मिलनि को देखकर सभी यही कह रहे थे, कि यही स्थिति धन्य व अनुसरण के योग्य है। इन्हें देखकर श्री सरस्वती जी, श्री शेष जी व श्री गणेश जी बहुत विचार करते हैं परन्त बहुत खोजने पर भी कहीं अन्यत्र इनकी उपमा प्राप्त नहीं करते।

इन सम येइ सत तीनहुँ काला । पुनि पुनि कहै सुबुद्धि विशाला ॥
सह त्रिदेव सुर कहहिं परस्पर । व्याह त्रिलोक लखे बहु घर घर ॥

इसलिए सुन्दर व महान बुद्धिमान वे सभी बार बार यही कहते थे कि तीनों कालों में श्री जनक जी महाराज व चक्रवर्ती दशरथ जी के समान ये स्वयं ही हैं। त्रिदेवों सहित सभी देवता आपस में इन्हें देखकर कह रहे थे कि हमने तीनों लोकों के प्रत्येक घर में विवाह तो बहुत देखे हैं–––

सुर नर असुर नाग मुनि केरा । देखे नहिं अस मिलन सुखेरा ॥
सबहिं भाँति सम दूनहु भूपा । सुत वित नारि गुणन अनुरूपा ॥

––––परन्तु देवता, मनुष्य, राक्षस, नाग व मुनि आदि किसी में भी इस प्रकार का सुख पूर्वक मिलन नहीं देखा। ये दोनो महाराज श्री जनक जी व चक्रवर्ती दशरथ जी सभी प्रकार से पुत्र, धन, स्त्री और सद्गुणों में एक दूसरे के समान तथा अनुरूप हैं।

दो०–आजहिं सम समधी लखे, भयो न आगे होन ।
रंचक घट इक एक नहिं, सब प्रकार सुख भौन ॥३८३॥

हमने एक समान समधी के दर्शन आज ही किये हैं। इनके समान न तो कोई हुआ है तथा न भविष्य में होगा ही। ये एक दूसरे से किंचित भी कम नहीं है अपितु सभी प्रकार से एक दूसरे के अनुरूप व सुखों के भवन ही हैं।

नृप प्रशंसि बरसहिं सुर फूला । सामध देखि मगन मन भूला ॥
जय जय कहहिं बजाय निसाना । सुनि सुनि शब्द सबहिं सुखमाना ॥

देवतागण दोनों भूपालों की सराहना कर पुष्प वरषाते हैं तथा समधियों के पारस्परिक प्रथम मिलन को देख–देखकर सुख मग्न हो स्वयं के मन को भूल गये हैं। वे नगाड़े बजाकर जय–जयकार कर रहे हैं, जिसकी ध्वनि सुन–सुनकर सभी सुखी हो रहे हैं।

प्रीति प्रशंसा सह सुर वानी । दुहुँ समाज सुनि मोद महानी ॥
गुरु बसिष्ठ कौशिक पद माथा । नायो नृपति द्विजन्ह दृग पाथा ॥

दोनों नरेशों के प्रेम की प्रशंसा से परिपूर्ण देवताओं की वाणी को सुन कर दोनों प्रकार मैथिल व अवध समाज ने महान आनन्द प्राप्त किया। पुनः श्री जनक जी महाराज ने गुरुदेव श्री वसिष्ठ जी, श्री विश्वामित्र जी तथा सभी विप्रगणों के चरणों में प्रेमाश्रु–पूरित हो शिर झुका प्रणाम किया।

वस्त्र अनूपम पाँवड़ डारी। भूप मुनिहिं लै चलेव सुखारी ॥
मण्डप देखि भूप अनुरागे। अकथ अलौकिक रस महँ पागे ॥

पुनः श्री विदेहराज जी महाराज अनुपमेय वस्त्रों के पाँवड़े बिछवा कर सुख पूर्वक चक्रवर्ती श्री दशरथ जी तथा मुनिराज श्री बशिष्ठ जी व श्री विश्वामित्र जी को विवाह मण्डप में ले चले। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज "विवाह मण्डप" को देख अनुराग प्रपूरित हो–कर अकथनीय व अलौकिक रस में डूब गये।

जनक सप्रेम सुआसन दीन्हा। तेज पुंज पेखत मन लीन्हा ॥
सोह भूप सब ऋषिन समेते । द्विज समाज नृप मंत्री जेते ॥

श्री जनक जी महाराज ने उन्हें प्रेम पूर्वक परम प्रकाशित दिव्य आसन प्रदान किये जो देखते ही मन को हरण कर लेने वाले थे। उन आसनों में चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज सभी ऋषियों, ब्राह्मणों, राजाओं तथा मंत्रियों आदि बरातियो सहित सुशोभित होने लगे।

दो०– जनक कुँअर शुभ आसनहिं, मिलि सप्रेम हुलसान ।
भरत लषण रिपुशालहीं, बैठारे करि मान ॥३८४॥

तदनन्तर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सप्रेम भेंट कर उल्लसित हृदय से श्री भरतलाल जी, श्री लक्ष्मण कुमार तथा श्रीशत्रुघ्न कुमार आदि राज कुमारों को शुभ व सुन्दर आसनों में आदर पूर्वक बिठा दिया।

राम सखा सब लहि सतकारा। सोहै आसन हर्ष अपारा ॥
मुनि बसिष्ठ कौशिक ऋषिराऊ। पूजि यथा विधि तिरहुत राऊ ॥

श्री राम जी महाराज के सभी सखागण स्वागत सत्कार प्राप्त कर असीमित हर्ष में भरे हुए आसनों में सुशोभित होने लगे। तब मुनिराज श्री बसिष्ठ जी व ऋषिराज श्री विश्वामित्र जी का विधिपूर्वक पूजन कर तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज ने–––

चक्रवर्ति पद पूजा कीनी । कहत आपनी भाग बलीनी ॥
राम अनुज सह सखन समाजा । पूजित कुँअर प्रसन्न विराजा ॥

–––अपने प्रबल सौभाग्य की प्रशंसा करते हुए, चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के चरणों का पूजन किया। श्री राम जी महाराज के अनुज, अपने सखाओं के समाज सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से पूजित हो प्रसन्नता पूर्वक विराज गये।

सकल बरात पाय सतकारा। दान मान विनती बहु बारा ॥
हरषित देखहिं जनक विभूती। अकथ नित्य नहिं विधि करतूती ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण बारात दान–सम्मान व विनय पूर्वक बहुत सा स्वागत सत्कार प्राप्त कर हर्षित हो श्री जनक जी महाराज के अकथनीय व शाश्वत वैभव को देख रही थी जो श्री ब्रह्मा जी की क्रिया–शक्ति से रहित था ।

विधि हरि हर द्विज वेषहिं धारे । सहित सुरन लखि होत सुखारे ॥
बिन पहिचान ईश के भाया । पूजित भयो देव समुदाया ॥

देवताओं के सहित श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी ब्राह्मण वेष धारण किये हुए यह सब देख–देखकर सुखी हो रहे थे। सम्पूर्ण देव समुदाय बिना पहचान के ही ईश्वर के भाव से वहाँ पर पूजित हुआ था।

दो०– पूजि सविधि प्रमुदित जनक, दशरथ सहित समाज ।
शीष नाय कर जोरि कह, भाग अमित लखि आज ॥३८५॥

श्री जनक जी महाराज ने ससमाज चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज की आनन्दपूर्वक विधिवत पूजा की तथा शिर–झुका, हाथ–जोड़कर बोले कि आज मैं अपना असीम सौभाग्य देख रहा हूँ।

छं०– जागी मम भागा कह अनुरागा, जनक मुदित वर वानी ।
मम जन्म कृतारथ लहि परमारथ, दरश दिये सब आनी ॥
राउर सब लायक योगिन नायक, बोलत सकल बराती ।
भरि भाग विभूती अकथ अतीती, कहत गिरा सकुचाती ॥

श्री जनक जी महाराज ने प्रमुदित हो, अनुराग प्रपूरित सुन्दर वाणी से कहा– आज मेरा सौभाग्य उदित हो गया, मेरा जन्म परमार्थ पद प्राप्त कर कृतार्थ हो गया जो सभी बन्धु–बान्धवों सहित यहाँ आकर आपने मुझे दर्शन दिया है। उनकी विनय युक्त वाणी सुनकर सभी बरातियों ने कहा कि– आप तो सभी प्रकार से योग्य व योगियों के भी नायक, अकथनीय व महान भाग्य वैभव के धनी हैं जिसका बखान करने में इयत्ता को न प्राप्त कर श्री सरस्वती जी भी संकोच का समनुभव करती हैं।

कर बहु विधि बाता लखि जामाता, जनक हृदय हरषाई ।
सब देव बराती पुलकित छाती, मण्डप लखत सुहाई ॥
कह कवन बनायो विस्मय पायो, सहित त्रिदेव समाजा ।
जहँ जनक किशोरी विधि मति बौरी, अचरज कौन सुसाजा ॥

इस प्रकार विविध वार्ता करते हुए श्री जनक जी महाराज अपने जँवाई श्री राम जी महाराज को देख देखकर हृदय में हर्षित हो रहे थे। सभी देवता व बराती–जन पुलकित हृदय हो "विवाह मण्डप" की सुन्दरता का दर्शन करते हुये आपस में कह रहे थे कि इस "विवाह मण्डप" को किसने बनाया है क्योंकि ससमाज त्रिदेव भी इसे देखकर विस्मित हो रहे हैं। जहाँ की अधिष्ठात्री श्री जनक जी महाराज की महिमामयी पुत्री परमाद्या शक्ति श्री सीता जी हैं, वहाँ के साज समाज को देखकर श्री ब्रह्मा जी की बुद्धि का चकित हो जाना कौन सा आश्चर्य है?

पुनि निरखहिं दूला मंगल मूला, सबहिन नयन लगाया ।
ह्यि भरहिं अनन्दा लखि जग बन्दा, दुलहा कहर मचाया ॥
अपलक दृग देखहिं प्रीति विशेषहिं, करि नयना सब गीले ।
धुनि मधुर सुहोती पंच गिनौती, सुनि लखि हर्षण फूले ॥

पुनः वे सभी सर्व मंगलों के मूल मन मोहन दूलह के सौन्दर्य को अपलक देखने लगे, जगत वन्द्य प्रभु श्री राम जी महाराज को देखकर उनका हृदय आनन्द से सराबोर हो गया। उनके हृदय में नव दूलह श्री रामजी महराज ने व्याकुलता मचा दी है अतः वे विशेष प्रेम पूर्वक प्रेमाश्रु प्रपूरित नेत्रों से निर्निमेष उन्हें देख रहे थे। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी जी श्री राम हर्षण दासजी महाराज कहते हें कि वहाँ मधुर–मधुर पंचध्वनि हो रही थी जिसे सुन और दुलहा छवि को देख–देखकर वे आनन्द से फूले जा रहे हैं।

दो०–सोहत सकल बरात मधि, नखत बीच जनु चन्द ।
रामहिं लखि सुर सुमन झर, दुन्दुभि धुनि स्वच्छन्द ॥३८६॥

दिव्य दूलह श्री राम जी महाराज सम्पूर्ण बारात के मध्य उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा। श्री राम जी महाराज को देखकर देवता पुष्प वरषाते हुए स्वतन्त्रता पूर्वक दुन्दुभी बजा रहे थे।

मास पारायण सातवाँ विश्राम

समय सुहावन लागत भारी। राम लखे सुर सभा मँझारी ॥
पूजि मानसिक आसन दीन्हे । प्रभु स्वभाव सबहिन लखि लीन्हे ॥

यह समय अत्यन्त ही सुहावना प्रतीत हो रहा है, जिसमें नव दूलह श्री राम जी महाराज बारात के साथ विवाह मण्डप के मध्य सुशोभित हो रहे हैं। श्री राम जी महाराज ने अवध समाज के बीच देवताओं को देखा तो उनका मानसिक पूजन कर आसन प्रदान किया तब सभी देवताओं ने श्रीरामजी महाराज के विनम्र स्वभाव का मन में अनुभव किया–––

देत जनहिं प्रभु सब दिन माना। निज बिसरि प्रभुता भगवाना ॥
जय जय कहि सुर राम निहारैं। होहिं मगन मन सुरति बिसारैं ॥

–––कि प्रभु श्रीरामजी महाराज अपनी महानता व भगवत्ता को भुलाकर सदैव अपने सेवकों को सम्मान प्रदान करते हैं। सभी देवता जय–जयकार करते हुए श्रीरामजी महाराज को निहार रहे थे तथा मन में मग्न हो स्मृति शून्य हुए जा रहे थे।

जनक मुदित मुनि आयसु पाई। षोडस पूजि वरहिं सुख छाई ॥
कहेउ बसिष्ठ सुनहु नर नाहा । आनहिं कुँअरि समेत उछाहा ॥

श्री जनक जी महाराज ने मुनियों की आज्ञा पाकर सुख पूर्वक दूल्हा श्री राम जी महाराज का षोडसोपचार पूजन किया। तदुपरान्त रघुकुल आचार्य श्री बसिष्ठ जी ने कहा– हे राजन! सुनिये, अब आनन्दपूर्वक अपनी पुत्री श्री सीता जी को ले आइये।

सतानन्द नरपति रुख जानी। आयसु दीन्ह जाय जहँ रानी ॥
गुरु निदेश सुनि सुमुखि सुनैना । हर्षित भई अमित सुख ऐना ॥

श्री जनक जी महाराज की इच्छा जानकर निमिकुल पुरोहित श्री शतानन्द जी ने अम्बा श्री सुनैनाजी के समीप जा कर विवाह मण्डप में जनक दुलारी श्री सीता को ले आने की आज्ञा दी। तब श्री गुरुदेव जी की आज्ञा सुनकर सुखों की सदन सुन्दर मुख व नेत्रों वाली श्री सुनैना जी असीमित हर्ष से भर गयीं।

गुरु पतनिहि वर वृद्ध कुलीनी । कुल सयानि जे नारि प्रवीनी ॥
सबहिं बुलाय कही सुनि लेहीं । देवि लली कहँ आशिष देहीं ॥

पुनः महारानी श्री सुनैना जी ने गुरु पत्नी, कुलीन वृद्धा स्त्रियों व कुल की सयानी निपुण नारियों को बुलाकर कहा– हे देवियो! आप सभी सुनिये! लाड़िली सिया जू को अपना शुभ आशीर्वाद प्रदान कीजिये।

छं०– सुनि देहिं आशिष सीय कहँ, जय जय सदा जय जय लली ।
अहिवात पूरन हो अचल, जग सुरसरी जब तक चली ॥
प्रिय होहु पति कहँ प्राण सम, गिरिजा महेशहिं जस प्रिया ।
लक्ष्मी यथा प्रिय विष्णु तस, पति देव राखहिं नित हिया ॥

अम्बा श्री सुनैनाजी की बाते सुनकर वे सभी जनक दुलारी श्री सीता जी को शुभाशीष देती हैं कि हे लली जू! आपकी जय हो, जय हो, सदा जय हो, आपका अहिवात तब तक पूर्ण व अचल रहे जब तक संसार में श्री गंगा जी प्रवाहित होती हैं, आप अपने पति को प्राणों के समान उसी प्रकार प्रिय हों जैसे श्री पार्वती जी श्री शंकर भगवान को प्रिय हैं व जिस प्रकार श्री लक्ष्मी जी श्री विष्णु भगवान को प्रिय हैं उसी प्रकार आपके पतिदेव श्री राम जी आपको अपने हृदय में नित्य वसाये रखें।

वर ब्रह्म शक्ती शब्द जस, सिय राम जोरी रसि रहै ।
शुभ सुमन वरषहिं सीय पर, मंगल सदा मंगल कहैं ॥
पुनि दीन्ह आयसु साजि सिय, मण्डप चलहिं लै शुभ घरी ।
सब लोक पेखहिं व्याह विधि, हरषण छकैं भामर परी ॥

जिस प्रकार श्री ब्रह्मा जी की सुन्दर शक्ति श्री सरस्वती जी हैं उसी प्रकार श्री सीताराम जी की जोड़ी आनन्द मे समायी रहे। ऐसा कहती हुई वे सभी श्री सीता जी पर पुष्प वरषाती हुई मंगलानुशासन करती हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि, उन सभी ने श्री सुनैना जी को आज्ञा दी कि– लाड़िली श्री सीता जी का श्रृंगार कर शुभ समय में "विवाह मण्डप" ले चलिये जिससे सम्पूर्ण संसार वैवाहिक क्रियायों का दर्शन करें तथा हर्ष में भरकर भाँवरी देते हुए दूल्हा–दुलहिन को देखकर आनन्द से छक जाँय।

दो०–उमा रमा शारद शची, कपट नारि शुभ रूप ।
सियहिं सँवारन सब लगीं, करि श्रृङ्गार अनूप ॥३८७॥

श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी, श्री सरस्वती जी व श्री शची जी आदि देवियाँ जो सुन्दर शुभ स्त्रियों का कृत्रिम वेष बनाये थीं वे सभी अम्बा श्री सुनैना जी की रुचि समझकर श्री सीता जी का

अनुपमेय श्रृंगार कर उन्हे सजाने लगीं।

नख शिख सीतहिं सुभग सिंगारी । चली लिवाय मनोहर नारी ॥
कोमल कलित पाँवड़े परहीं । अरघ दीन्ह द्विज शान्तिहिं पढ़हीं ॥

श्री सीता जी का नख–शिखान्त सुन्दर श्रृंगार कर मन को हरण करने वाली वे नारियाँ उन्हें विवाह मण्डप में लिवाकर ले चलीं। उस समय परम सुन्दर कोमल पाँवड़े बिछाये जाने लगे, अर्घ्य दिया जाने लगा व ब्राह्मण शान्ति पाठ करने लगे।

मन्द मन्द पग धरति जानकी । छवि–सिंगार रस रूप खान की ॥
भूषित भूषण भल अँग देशा । चमचमात साड़ी वर वेषा ॥

इस प्रकार सुन्दरता, श्रृंगार, रस व रूप की राशि जनक दुलारी श्री जानकी जू मन्द–मन्द पदन्यास कर रही थी। उनके सुन्दर श्री अंगों में सुहावने आभूषण सजे हुए थे तथा चमचमाती हुई पीत वर्ण की वैवाहिक साड़ी सुशोभित थी।

मौरी सुभग शीष महँ राजे । स्वर्ण तन्तु मणि खचित सुभ्राजे ॥
मौरि जटित मोतिन के गुच्छा । झूलत कुण्डल ढिगहिं अतुच्छा ॥

उनके सिर में सुन्दर मौरी सुशोभित हो रही थी जो सोने की लड़ियों से बनी तथा मणियों से जड़ी हुई थी। मौरी में जड़े हुए श्रेष्ठ मोतियों के गुच्छे कुण्डल के समीप अत्यधिक लहरा रहे थे।

सिय शोभा को कहै बखानी । अमित त्रिदेवी अंश समानी ॥
बनितन बीच सोह अस सीता । नखत बीच जनु चन्द्र पुनीता ॥

दुलहन बनी हुई श्री सीता जी की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है क्योंकि उनके एक–एक अंश में असीमित त्रिदेवियाँ समाई हुई हैं। श्री सीता जी नारियों के मध्य इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जैसे नक्षत्रों के बीच पवित्र चन्द्रमा सुशोभित होता है।

दो०– छवि सुख सुषमा अवधि सिय, नख द्युति उपजत भान ।
सुन्दरतहिं सुन्दर करै, अमित अण्ड की प्रान ॥३८८॥

सुन्दरता, सुख व सुषमा की पराकाष्ठा श्री सीताजी के नख प्रकाश से भगवान सूर्य देव का प्राकट्य होता है। वे सौन्दर्य को भी सौन्दर्य प्रदान करने वाली व असीमित ब्रह्माण्डों की प्राण स्वरूपा हैं।

मैथिल नारि सहित सुर देवी । करहिं गान मंगल सिय सेवी ॥
छत्र चमर शिर चलत सुहाया । छहरत गंग लहर सम भाया ॥

देवांगनाओं सहित मिथिलापुर की समस्त नारियाँ जनक लली श्री सीता जी की सेवा करने के ब्याज से मंगल गीत गा रही थीं। श्री सीताजी के शिर के ऊपर छत्र व चमर श्रीगंगाजी की लहरों के समान लहरा कर चलता हुआ सुशोभित हो रहा था।

बजत किंकिनी नूपुर कंकन । मधुर मधुर धुनि छाई छन छन ॥
यहिं विधि जनक लड़ैती सीता। आई मण्डप प्रीति पुनीता ॥

श्री सीता जी के चलने उनके किंकिणी, नूपुर व कंकण आदि आभूषण बज रहे थे जिनकी मधुराति मधुर ध्वनि वहाँ प्रतिक्षण गूँज रही थी। इस प्रकार पवित्रता व प्रेम की प्रतिमूर्ति जनक लाड़िली श्री सिया जू विवाह मण्डप में आ गयीं।

देखत सीतहिं युगल समाजा । भई विदेह यथा निमिराजा ॥
ज्ञान प्रकाश सूर्य छवि छायो । हृदय पटल उगि आत्म लखायो ॥

श्री सीता जी को देखते ही मैथिल व अवध दोनों समाज, निमिराज श्री जनक जी के समान विदेह हो गया। उनके हृदय पटल में सौन्दर्य का सूर्य उदित होकर ज्ञान का प्रकाश फैला दिया जिससे आत्मा का दर्शन होने लगा।

दिव्य दृष्टि अति भई सुहाई । भीतर बाहर एक लखाई ॥
वर विज्ञानमयी थिति छाये । रत समाधि निर्बीजहिं पाये ॥

तब उन सभी की दृष्टि अत्यन्त दिव्य व सुन्दर हो गयी जिससे उन्हें भीतर व बाहर एक ही वस्तु आत्मा दिखाई पड़ने लगी। उनकी श्रेष्ठ विज्ञानमयी स्थिति हो जाने से वे निर्बीज समाधि को प्राप्त कर लिये।

दो०—जहँ तहँ चितवहिं नारि नर, तहँ तहँ सिय युत राम ।
बनी बना वेषहिं बने, लाजत बहु रति काम ॥३८९॥

अतएव वे समस्त स्त्री—पुरुष जहाँ—जहाँ भी देखते, वहाँ—वहाँ उन्हें दूल्हा—दुल्हन का वेष बनाये हुए श्री सीताराम जी ही दिखलाई दे रहे थे जो सौन्दर्य के अधिदेवता अनेक रति व कामदेव को विलज्जित कर रहे थे।

देखहिं नारि युगल छवि प्यारी । नर नारिन के देह मँझारी ॥
नरहुँ लखहिं नर नारिन माहीं । सीयराम छवि सुखद सोहाहीं ॥

स्त्रियाँ अन्य पुरुष व स्त्रियों के शरीर में युगल छवि श्रीसीतारामजी को ही देख रही थीं तथा पुरुष भी अन्य स्त्री—पुरुषों में श्रीसीतारामजी की सुखदायी सुन्दर छवि का दर्शन कर रहे थे।

जड़ चेतन सब रामहि रामा । देखे सुर नर मुनि सह वामा ॥
चित्र लिखे सम सब सिय देखी । निज प्रभाव प्रभुता लिय लेखी ॥

अपनी नारियों सहित देवता, मनुष्य व मुनि आदि सभी ने, उस समय सर्वत्र जड़ तथा चेतन सब में, श्री राम जी महाराज का ही दर्शन किया। श्री सीता जी ने जब सभी को चित्र—लिखित मूर्ति के समान देखा तब उन्होंने सभी में अपने प्रभाव व प्रभुता को समझ लिया।

सबहिं देन सुख प्रभुता रोकी । हरषे सकल नारि नर ओकी ॥
नख शिख देखि लली की शोभा । प्रेम मगन मन पद महँ लोभा ॥

अतएव सभी की आश्रय स्थल श्री जानकी जू ने सभी को सुख प्रदान करने हेतु अपने ऐश्वर्य को रोक लिया जिससे सभी स्त्री—पुरुष हर्षित हो गये तथा जनक लली श्री सिया जू की नख शिखान्त शोभा देख कर सभी के मन प्रेम मग्न हो उनके चरण कमलों में लुब्ध हो गये।

कीन्ह प्रणाम सबहिं मन माहीं । सियहिं पेखि प्रभु हिय पुलकाहीं ॥
पूरण काम पूर्ण मन कामा । वरणै को कवि सुखहिं ललामा ॥

जनक नन्दिनी श्री सिया जू को सभी ने मानसिक प्रणाम किया। श्री सीता जी को देखकर प्रभु श्री राम जी महाराज हृदय में अत्यन्त पुलकित हो रहे थे। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि सभी को पूर्ण–काम कर देने वाले प्रभु श्रीरामजी महाराज भी श्री सीता जी को देखकर स्वयं पूर्ण–काम हो गये। उस समय के उनके सुख का कौन कवि वर्णन कर सकता है अर्थात वह वर्णनातीत था।

दो०– दिन मणि दशरथ सुवन युत, रघुवंशी सब लोग ।
देखि देखि सिय लाड़िली, मोद मगन सुख योग ॥३९०॥

सूर्य वंश के अलंकार चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज अपने पुत्रों व सभी रघुवंशी परिजनों सहित जनक लाड़िली श्री सिया जू को देख–देखकर आनन्द और सुख के संयोग से रस मग्न हो रहे थे।

मुनि त्रिदेव सब सुर दिगपाला । सहित समाज फँसे सुख जाला ॥
सुख विभोर सुर वरषहिं फूला । गान निसान शब्द अनुकूला ॥

ससमाज ऋषि मुनि, देवता, त्रिदेव (श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशंकरजी) तथा दिक्पाल आदि सभी वहाँ सुख के जाल में फँस गये थे अर्थात् सुख में सराबोर हो गये थे। सुख में सने हुए देवता पुष्प वरषाते तथा विवाह के अनुकूल गीत व नगाड़ों के शब्द कर रहे थे।

जय जय धुनि सब करहिं सुहाई । जहँ तहँ नारिन मंगल गाई ॥
वेद पढ़हिं कुल गुरु हिय हरषी । कवित कहहिं कविजन चित करषी ॥

वहाँ सभी जय–जय की सुन्दर ध्वनि कर रहे हैं, जहाँ–तहाँ स्त्रियाँ मंगल गीत गा रही हैं, युग–कुलों के आचार्य हृदय में हर्षित हो वेद पाठ कर रहे हैं तथा कवि–जन चित्ताकर्षक कवित्तों का गान कर रहे हैं।

आँगन गगन बहिर पुर माहीं । होत कोलाहल सब थल पाहीं ॥
पँच शब्द धुनि जहँ तहँ छाई । कहि न जाय सुनतहिं मन भाई ॥

मिथिलापुरी में आँगन, आकाश, बाहर तथा नगर आदि सभी स्थलों में कोलाहल हो रहा है, जहाँ तहाँ श्रवण मन–भावनी व वर्णनातीत पंच–शब्द (जय, बन्दी, वेद, मंगल गान व निसान) की ध्वनि छाई हुई है।

पुनि कुल गुरु शुभ आयसु मानी । सियहिं सुआसन दिय सुख सानी ॥
विधि कराय पढ़ि मंत्र अचारा । गिरिजा गणप पुजावहिं वारा ॥

पुनः कुलगुरु श्रीशतानन्दजी की आज्ञा मानकर श्री सीता जी को सुखप्रद शुभासन दिया गया। आचार्य गण मंत्रोच्चारण करते हुए वेद विधि करा कर श्री पार्वती जी व श्री गणेश जी का पूजन कराने लगे।

दो०—निज कुल केरी रीति वर, कहत सूर्य सुख मान ।
सुनि कुल गुरु दोऊ करहिं, व्याह सुवेद विधान ॥३९१॥

श्री सूर्य भगवान अपने श्री सूर्य–कुल की सुन्दर व्याह–पद्धति का बखान स्वयं सुखपूर्वक कर रहे थे जिसे सुनकर दोनों कुलों के कुलगुरु सुन्दर वेद विधान से विवाह कार्यक्रम सम्पन्न करा रहे थे।

सब सुर लेहिं प्रगटि प्रिय पूजा । आपन भाग गिनै नहिं दूजा ॥
सन्मुख रामहिं जनक सकासी । शोभित सीय बैठि सुखरासी ॥

उस समय सभी देवता प्रत्यक्ष होकर अपनी प्रियकर पूजा ग्रहण कर रहे थे तथा अपने आपको सबसे अधिक सौभाग्यवान समझ रहे थे। श्रीरामजी महाराज के सामने श्री जनक जी महाराज के समीप विराजी हुई श्रीसीताजी सुख की राशि के समान अतिशय सुशोभित हो रही थीं।

अधोनेत्र निरखनि सिय रामा। प्रेम पगी इक आत्म अकामा ॥
तरकि न जाय सुखद रस रीती । मन बुधि वाणी पार अतीती ॥

श्री सीता जी की प्रेम पगी, निष्काम–मना व आत्म समान श्री राम जी महाराज को निम्न–नयन निहारने की रसमयी रीति का वर्णन नहीं किया जा सकता वह तो मन, बुद्धि व वाणी के परे तथा सभी से पृथक अर्थात् अद्वितीय है।

वेद रूप धरि कह विधि व्याहा । उपरोहित तस करैं उछाहा ॥
लगेव होम होवन हरषाई । आहुति लेहिं अगिनि प्रगटाई ॥

वेद स्वयं शरीर धारण कर विवाह विधि का बखान कर रहे थे जिसके अनुसार उपरोहित गण आनन्दपूर्वक कृत्य सम्पादित करते थे। हर्ष पूर्वक हवन कार्यक्रम होने लगा जिसमें अग्नि देव प्रगट होकर स्वयं आहुति ग्रहण कर रहे थे।

कन्या दान समय शुभ जानी। आवन कहे मुनिन पटरानी ॥
जनक पाट महिषी सिय माता । जेहिं समान नहिं रचा विधाता ॥

कन्यादान का शुभ समय जानकर मुनियों ने महारानी श्री सुनैना जी को विवाह मण्डप में आने के लिए आज्ञा प्रदान की। श्री सुनैना जी श्री जनक जी महाराज की पट्टरानी व श्री सीता जी की अम्बा हैं जिनके समान श्री ब्रह्मा जी ने किसी की रचना ही नहीं की।

दो०—रूप शील गुण यश सुकृत, भगति सरस पुनि ज्ञान ।
सीय जननि जानिय सबै, इनते भइ निरमान ॥३९२॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि श्री सीता जी की अम्बा श्री सुनैना जी रूप, शील, गुण, कीर्ति, पुण्य, भक्ति, सरसता तथा ज्ञान से ही निर्मित हैं ऐसा सभी लोग जान लीजिये।

छं०— सिय मातु शोभित एक जग, सुख सुजस सुन्दरता सनी ।
गुण रूप शीलहुँ धाम धनि, पाहुन मिले जिन जग मनी ॥

सिय अंक खेली अम्ब कहि, लखि लाभ ललचहिं सुर तिया ।
मुनिराज आयसु कहि कुँअर, मण्डप चलन हर्षण हिया ॥

विदेहराज नन्दिनी श्री सीता जी की अम्बा श्री सुनैना जी सुख, कीर्ति व सुन्दरता से सनी हुई संसार में अद्वितीय व परम शोभा सम्पन्न है। वे गुण, रूप व शील की धाम तथा परम धन्य हैं जिन्हें संसार के मणि स्वरूप श्री राम जी महाराज जँवाई रूप में प्राप्त हुए हैं। श्री सीता जी जिनकी गोद में अम्बा अम्बा कहती हुई विभिन्न प्रकार की बाल–क्रीड़ायें किया करती थी व जिनके सौभाग्य संल्लाभ को देखकर देवताओं की स्त्रियाँ लालायित बनी रहती हैं उन श्री सुनैना जी से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने मुनिराज श्री शतानन्द जी की आज्ञा सुनाकर हर्षित हृदय हो विवाह मण्डप में चलने हेतु प्रार्थना की।

मन मोद मोदित अम्ब सुनि, मड़वहिं सुआसिन सह चली ।
शुभ शब्द नूपुर गान प्रिय, श्रुति शान्ति धुनि होवति भली ॥
नृप वाम राजी निरखि वर, मन हरष जातो नहिं कही ।
लखि मातु भागहिं पुष्प झरि, सब सुरन बोले जय सही ॥

मुनिवर की आज्ञा सुनकर अम्बा श्री सुनैनाजी मन में अतिशयानन्द से आनन्दित हो गयीं तथा सुआसिन (सुहागिन स्त्रियों) के साथ विवाह मण्डप को चल दीं। उस समय नूपुरों, प्रियकर गीतों, वेदों व शान्ति पाठ की परम शुभकारी सुन्दर ध्वनि छायी हुई थी। वे श्री जनक जी महाराज के बायें भाग में जाकर विराज गयीं तथा नव दूलह श्री राम जी महाराज को देखकर हर्षित हुईं। उनके मन का हर्ष बखान नहीं किया जा सकता। अम्बा श्री सुनैना जी के भाग्य को देखकर सभी देवताओं ने पुष्प वरषा कर जय जयकार की।

सो०–जनक सुनैना सोह, हिमकर मैना संग जस ।
वर–दुलहिन लखि मोह, बढ़यो महा वात्सल्य रस ॥३९३॥

विदेहराज श्री जनक जी महाराज व अम्बा श्री सुनैना जी विवाह–मण्डप में उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे श्री हिमांचल व श्री मैना जी शिव विवाह में सुशोभित हो रहे थे। नव दूलह–दुलहिन श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी को देखकर वे मोहित हुये जा रहे थे तथा उनमें महान वात्सल्य रस वृद्धिंगत हो रहा था।

कुल गुरु दोउ समय शुभ जानी । शाखोच्चार कीन्ह सुखदानी ॥
दम्पति नृपति बैठि सुख छाई । कृत्य करहिं जस मुनिन बताई ॥

पुनः दोनों कुलों के आचार्यो श्री शतानन्द जी महाराज व श्री वसिष्ठ जी महाराज ने शुभ समय जानकर सुख प्रदायक शाखोच्चार (वंश परम्परा का वर्णन) किया। दम्पति श्री जनक जी महाराज सुख में सराबोर हो विराजे हुए, मुनियों के निर्देशानुसार वैवाहिक कृत्य सम्पादित कर रहे थे।

सोहति सीय दुहुन के आगे । दम्पति लहहिं परम सुख पागे ॥
कुलगुरु तबहिं सुआयसु दीन्हा । कुश अक्षत नृप कर गहि लीन्हा ॥

श्री सीता जी उन दोनों श्री जनक जी महाराज व अम्बा श्री सुनैना जी के आगे विराजी हुई अत्यन्त सुशोभित हो रही थी तथा वे दम्पति प्रेम में पगे हुए महान सुख प्राप्त कर रहे थे। उसी समय कुलगुरु श्री शतानन्द जी ने सुन्दर आज्ञा प्रदान की तब श्री जनक जी महाराज ने अपने हाथ में कुश व अक्षत रख लिया।

प्राणन प्राण लाड़िली सीता । करहिं धरेउ नृप स्वकर सप्रीता ॥
मातु सुनयना जल की धारी । दीन्ही लखि लखि प्राण अधारी ॥

पुनः अपनी प्राणों की भी प्राण लाड़िली श्री सिया जू का कर–कमल प्रेम पूर्वक श्री जनकजी महाराज ने अपने हाथ में रख लिया। अम्बा श्री सुनैना जी अपनी प्राणाधार श्री सिया जू को निहारते हुए, श्रभ विदेहराज जी के हाथ में जल की धार डालने लगीं।

वेद मंत्र मुनिवरन उचारे । देखि देखि सब होहिं सुखारे ॥
बोले जनक सुनहु रघुनाथा । पूरण काम सदा सुख साथा ॥

उस समय मुनियों ने वेद मंत्रों का उच्चारण किया, सभी यह दृश्य देखकर सुखी हो रहे थे। तब श्रीजनकजी महाराज बोले– हे पूर्ण काम तथा सदैव सुखी रहने वाले रघुनन्दन श्री राम भद्र जी! आप सुनें,

गुण आगरि प्राणन प्रिय बाला। रूप उजागरि धर्म विशाला ॥
शील विनय संकोच स्वरूपा । सब प्रकार तुम्हरे अनुरूपा ॥
अब विधि अहै अलंकृत कीन्ही । ग्रहण करहु मैं आयसु दीन्ही ॥

यह गुणों की धाम, प्राण समान प्रिय, परम रूपवान, महान धर्म–धुरीना, शील, विनय व संकोच स्वरूपा मेरी पुत्री श्री सीता सभी प्रकार से आपके योग्य व सर्वाभूषणों से भूषित है, मैं यह अनुमति दे रहा हूँ कि आप इसका पाणि–ग्रहण करें ।

दो०– अस कहि दम्पति हरषि उर, सीतहिं हाथ बढ़ाय ।
रामहिं सौंपेउ मंत्र पढ़ि, तन मन गयो भुलाय ॥३९४॥

ऐसा कहकर उन महान दम्पति ने हर्षित हृदय हो श्री सीता जी का हाथ बढ़ाकर, वेद मन्त्र पढ़ते हुए उन्हें श्री राम जी महाराज को सौंप दिया, उस समय उनके शरीर व मन की भी स्मृति भूल गयी थी।

देखत सुख वरषहिं सुर फूला । बजहिं दुन्दुभी आनन्द मूला ॥
मंगल गान करहिं सब वामा। द्वारे बाजत वाद्य ललामा ॥

श्री विदेहराज जी व श्री सुनैना अम्बा जी के आनन्द को देखकर देवता पुष्प वरषाने लगे, आनन्द की मूल दुन्दुभी बजने लगीं। उसमंगल अवसर पर सभी स्त्रियाँ मंगल गीत गा रही थीं तथा श्री महाराज के दरवाजे पर सुन्दर–सुन्दर बाजे बज रहे थे।

रघुवर श्वसुर सुभाव निहारी। सने प्रेम रस मंगलकारी ॥
सीय ग्रहण करि स्वस्ति सुबोले । सुनतहिं देव मगन मन भोले ॥

मंगलमय श्रीरामजी महाराज अपने श्वसुर श्री जनक जी महाराज के सुन्दर स्वभाव को देखकर प्रेम व रस में सन गये तथा श्री सीता जी को ग्रहण कर स्वस्ति बोले जिसे सुनकर सभी देवता व श्री शंकर जी मन में आनन्द मग्न हो गये।

आनँद अमित भयो सब काहू । पाणि ग्रहण लखि उरहिं उछाहू ॥
दशरथ सुतन समेत सुहरषे । देखि युगल सुख मंगल घर से ॥

उस समय जनक दुलारी श्री सीताजी का पाणि–ग्रहण देखकर सभी के हृदय में असीम आनन्द व उल्लास भर गया। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज अपने पुत्रों सहित आनन्द व मंगल के धाम दम्पति श्री सीता–राम जी को देखकर अत्यन्त हर्ष प्रपूरित हो गये।

जनक सुवन कर मोद अपारा । को कहि सकै को जानिनि हारा ॥
दम्पति आनन्द सिन्धु हिलोरे । भये मगन मन तन सुधि छोरे ॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के असीम आनन्द का बखान कौन कर सकता है? तथा कौन जान सकता है? अर्थात् वह मन, वुद्धि व वाणी से परे है। वे दिव्य दम्पति श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँवरि जी आनन्द के सागर में हिलोरे लेते हुए उसी में डूब गये तथा उन्हें शरीर व मन की स्मृति न रही।

छं०– सुख सिन्धु गाहत मोद भरि, श्री कुँअर लक्ष्मीनिधि महा ।
युत नारि फूलत देखि प्रभु, सुख सुभग परमारथ लहा ॥
धनि भाग बोलत आप मुख, सिय राम जोरी मैं लखी ।
मम भाम राजत वेश वर, हर्षण भगिनि सिय हिय रखी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उस समय महान सुख के सागर में सानन्द समवगाहन कर रहे थे तथा सपत्नीक वे प्रभु श्री राम जी महाराज को देखकर सुख व सुन्दर परमार्थ पद प्राप्त कर प्रफुल्लित हो रहे थे। वे स्वयं अपने मुख से अपने सौभाग्य की सराहना करते हुये कह रहे थे कि मैं धन्य हो गया जो श्री सीता–राम जी की अनुपमेय जोड़ी का दर्शन प्राप्त किया। मेरे बहनोई श्री राम जी महाराज सुन्दर दूलह वेश में सजे हुये, मेरी बहन श्री सीता जी को हर्ष पूर्वक अपने हृदय में धारण किये सुशोभित हो रहे हैं।

दो०–पुनि बसिष्ठ आयसु भई, राम दहिन दिशि सीय ।
बैठहिं आसन सुभग शुचि, सुनतहिं तस सखि कीय ॥३९५॥

पुनः रघुकुल आचार्य श्री बसिष्ठजी महाराज की आज्ञा हुई कि जनक नन्दिनी श्री सीता जी, श्री राम जी के दाहिने भाग में सुन्दर व पवित्र आसन में विराज जायें, उनके इस प्रकार के वचन सुनते ही सखियों ने श्री सीता जी को उसी प्रकार (श्री राम जी महाराज के दाहिने भाग में) बैठा दिया।

राम दहिन दिशि राजति सीया । छवि श्रृङ्गार सुषमा कमनीया ॥
देखत राम जानकी जोरी । नयनवंत सुख सिन्धु हिलोरी ॥

श्री राम जी महाराज के दाहिने भाग में सुन्दरता, श्रृंगार, सुषमा तथा परम कमनीयता से युक्त

श्री सीता जी विराज गयीं तब श्री सीताराम जी अनाख्येय जोड़ी को देख–देखकर सभी नेत्र–वान सुख के सागर में हिलोरे लेने लगे।

जनक तबहिं मुनि आयसु पाई । कनक थार अति शुभ्र मँगाई ॥
शुचि सुगन्ध मिश्रित जल पूरा । स्वर्ण कलश जटि रतनन भूरा ॥

तदनन्तर श्री जनक जी महाराज ने मुनियों की आज्ञा प्राप्तकर अत्यन्त सुन्दर स्वर्ण थाल तथा पवित्र व सुगन्धित जल से भरा हुआ रत्न जड़ित स्वर्ण कलश मँगवाया–––

धरे राम के सम्मुख लाये । भूप मुदित मन सुख न समाये ॥
आनन्द सिन्धु मगन निमिराऊ । लगे पखारन पाँय प्रभाऊ ॥

–––और उन्हें श्री राम जी महाराज के सामने रखवा दिया। श्री जनक जी महाराज उस समय अतिशय आनन्दित थे, उनके मन में सुख समा नहीं रहा था। इस प्रकार आनन्द के सागर में निमग्न हुये निमिराज श्री जनक जी महाराज श्री राम जी महाराज के महा महिमामय चरण प्रच्छालित करने लगे।

परश करत पद कमल राम के । साने सुख श्यामल सुधाम के ॥
राम सिया पद कंज पखारत । जिनहिं शम्भु हृदि कमल सम्हारत ॥

श्री राम जी महाराज के चरण कमलों का स्पर्श करते ही श्री विदेह राज जी महाराज श्री राम जी महाराज के दिव्य "साकेत धाम" के सुख में डूब गये। वे श्री सीताराम जी के उन महिमामय चरण कमलों का प्रच्छालन कर रहे थे जिन्हें भगवान श्री शंकर जी अपने हृदय कमल में सम्हाल कर रखते हैं।

दो०– पद धोवत सुर जय जयति, बोलत झरत प्रसून ।
मुदित निसान बजाव नभ, छन छन नव सुख दून ॥३९६॥

श्री राम जी महाराज के चरणों का प्रच्छालन करते समय देवता जय–जयकार करते हुए पुष्प वरषा रहे थे तथा मन में आनन्दित हो प्रत्येक क्षण नवीन व दुगुने सुख में सराबोर होकर आकाश में नगाड़े बजा रहे थे।

छं०– सुख मग्न देव समाज सब, लखि लखि हृदय पुलकावहीं ।
धनि नृप पखारत पाद पंकज, भाव भावित भावहीं ॥
शिव ध्यान ध्यावत जाहि निशिदिन, रमत योगी मन जहाँ ।
रज धारि पावन मुनि तिया, मन मुदित गवनी पति पहाँ ॥

उस समय सम्पूर्ण देव समाज सुख मग्न होकर श्री जनक जी महाराज को श्री राम जी के चरण कमल प्रच्छालित करते हुये देख–देख हृदय में पुलकित हो कह रहा था कि– श्री जनक जी महाराज धन्य हैं जो श्री राम जी महाराज के चरण कमलों का सुन्दर भाव पूर्वक प्रच्छालन करते हुए सुशोभित हो रहे हैं। जिन चरणों का ध्यान भगवान श्री शिव जी भी करते हैं, दिन–रात योगियों के मन जहाँ पर लगे रहते हैं तथा जिन चरणों की पवित्र धूल को धारण कर श्री गौतम मुनि की पत्नी

श्री अहिल्याजी परम पवित्र हो गयीं व आनन्दित मन से अपने पति के समीप चली गयीं।

जेहिं चरण सुरसरिवारि शुचि कर, पूत त्रिभुवन प्रति घरी ।
प्रक्षालि ते पद भूप निमिवर, गति लही पावन करी ॥
जय जय जयति जय जय जनक, सब बोलि कहहीं बलि बली ।
धनि राम जाकर पाहुने, हरषण सिया पुत्री भली ॥

जिन चरणों का पवित्र प्रच्छालित जल ही श्री गंगाजी के रूप में तीनों लोकों को प्रतिक्षण पवित्र कर रहा है उन्हीं श्री चरणों को प्रच्छालित कर निमिराज श्री जनकजी महाराज परम पवित्रकारी गति को प्राप्त कर लिये। श्री जनक जी महाराज की जय हो, जय हो, जय हो कहते हुए सभी देवगण बलिहार जाते हैं। हमारे सद्गुरुदेव भगवान अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि श्री जनक जी महाराज धन्य हैं जिनके श्री राम जी महाराज पहुना (जँवाई) व श्री सीता जी पुत्री हैं।

सो०—मुदित पखारत पाद, रघुकुल मणि वर वेष के ।
जनक हृदय अहलाद, देखत युगल किशोर कहँ ॥३९७॥

श्री जनक जी महाराज आनन्द पूर्वक रघुकुल में मणि स्वरूप दूलह वेषधारी श्री राम जी महाराज के चरण कमलों को प्रच्छालित कर रहे थे तथा युगल किशोर श्री सीताराम जी को देख–देखकर उनका हृदय अत्यन्ताह्लादित हो रहा था।

धोवतहिं पाद जनक जिय आई । स्मृति शुभ साकेत सुहाई ॥
निरखत नृप मृदु युगल किशोरा । सांतानिक सम विभव विभोरा ॥

चरण प्रच्छालित करते समय श्री जनक जी महाराज के हृदय में शुभ "साकेत धाम" की सुन्दर स्मृति आ गयी तब वे परम मृदुल युगल किशोर श्री सीताराम जी को परम धाम सांतानिक (साकेत) लोक के समान ऐश्वर्य समन्वित विभोर हुए देखने लगे।

सत चित आनँद सकल समाजा । अपराजित पुरि मनहुँ विराजा ॥
सो रस सो सुख भाव अनूपा । परा अयोध्या रह जस रूपा ।।

मानों वे अपराजिता पुरी दिव्य "श्री साकेत लोक" में अपने सम्पूर्ण सच्चिदानन्दमय समाज सहित विराजे हुए हों और वही रस, सुख, सुन्दर भाव तथा स्वरूप है जैसे उनका परम धाम श्री साकेत में रहता है।

तिय सह निज कहँ देखहि तैसे । सुभग पुत्र पुरवासी वैसे ॥
राम सीय लखि अक्षर धामा । प्रेम प्रवाह बढ़यो सह वामा ॥

वे स्वयं को, अपनी महारानी, सुन्दर पुत्र तथा पुरवासियों आदि सहित उसी प्रकार देख रह थे। श्री सीताराम जी को नित्य दिव्य साकेत धाम में देखकर अपनी महारानी श्री सुनयना जी सहित श्री विदेहराज जी महाराज के हृदय में प्रेम का प्रवाह बृद्धिगत हो गया।

भूली सुधि सब तन मन केरी । शिथिल शरीर राम पद हेरी ॥
देखि राम श्वसुरहिं सुख पाई । दीन्हे तुरतहिं दृश्य दुराई ॥

श्री जनक जी महाराज को शरीर व मन की सम्पूर्ण स्मृति भूल गयी, उनका शरीर शिथिल हो गया और वे श्री राम जी महाराज के चरणों को अपलक निहारते रह गये। जब श्री राम जी महाराज ने देखा कि हमारे श्वसुर श्री जनक जी महाराज आनन्द विभोर हो गये हैं तब उन्होंने तत्क्षण साकेत धाम के दृश्य को तिरोहित कर दिया।

दो०–यथा प्रथम धोवत पदहिं, लखि रघुवर सुख पाय ।
तथा लखत उर मोद भरि, दशा वरणि नहिं जाय ॥३९८॥

तब वे पूर्व में जिस प्रकार श्री राम जी महाराज को देख–देखकर सुख प्राप्त करते हुए उनके चरणों का प्रच्छालन कर रहे थे हृदय में आनन्दित हो उसी प्रकार श्री राम जी महाराज को निहारने लगे, श्री विदेहराज जी की उस अवस्था का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

दम्पति जनक पखारि सुपादा । पायो हृदय अमित अहलादा ॥
बहुरि लोक कुल रीतिहिं धारी । पाद पखारत निमि नर नारी ॥

श्रीजनकजी महाराज अपनी महारानी श्री सुनैना जी सहित श्रीसीतारामजी के चरणों का प्रच्छालन कर हृदय में असीम आनन्द प्राप्त किये पुनः लोक रीति व कुल रीति के अनुसार सभी निमिकुल के पुरुष व स्त्री श्री सीताराम जी के पाद प्रच्छालन करने लगे।

जनक भ्रात सह नारि ललामा । धोये पद सनि सुख सियरामा ॥
जनक सुवन लक्ष्मीनिधि आये । सिद्धि कुँअरि सह अतिहिं सुहाये ॥

श्री जनक जी महाराज के भ्राताओं ने अपनी सुन्दर महारानियों के सहित सुख में सनकर श्री सीताराम जी महाराज के चरणों का प्रच्छालन किया। पुनः अत्यन्त सुशोभन जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी प्राण वल्लभा श्री सिद्धि कुँवरि जी सहित श्री सीताराम जी के चरण कमलों के प्रच्छालन हेतु आये।

दम्पति बैठि हरषि हिय छाई । भगिनि भाम पद धोव सुहाई ॥
सहित सुरन्ह दुहुँ ओर समाजा । कुँअरहिं लखि तिय सहित विराजा ॥

वे दम्पति श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँवरि जी हर्षित हृदय हो बैठ कर अपने बहन–बहनोई श्री सीताराम जी के सुन्दर चरण कमलों का प्रच्छालन करने लगे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपनी वल्लभा श्री सिद्धि कुँवरि जी सहित विराजे हुए देखकर देवताओं सहित मिथिला व अवध दोनों समाज–––

कहि न जाय जस हर्षित गाता । कहहिं परस्पर सब मृदु बाता ॥
रूप शील गुण ज्ञान विभोरी । प्रीति पगी कस अनुपम जोरी ॥

ऐसा हर्षित हुआ जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे सभी आपस में मधुर बातें कर रहे थे कि– रूप, शील, गुण व ज्ञान से परिपूर्ण, आनन्द में विभोर तथा प्रेम में पगी हुई इनकी यह कैसी

अनुपमेय जोड़ी है।

दो०—रघुकुल मण्डन राम सिय, शेषी गुण अनुरूप ।
निमिकुल मण्डन कुँअर सिधि, धारे शेष स्वरूप ।।३९९।।

श्री रघुकुल को अलंकृत करने वाले श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी शेषी द्धस्वामी) गुणों के अनुरूप तथा श्री निमिकुल के श्रृंगार जनक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी शेष (सेवक) स्वरूप धारण किये हुए हैं।

राम सिया जस सुन्दर जोरी । मिले न त्रिभुवन किये ढँढोरी ॥
तैसेहिं श्रीनिधि सह सिधि भाये । रूप सिन्धु गुण अयन अमाये ॥

श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी की सुन्दर अनुपमेय जोड़ी जिस प्रकार तीनों लोकों में अन्वेषण करने पर भी अप्राप्त है उसी प्रकार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी भी परम सुन्दर रूप के सागर, गुणों के भवन व पृकृति से परे हैं।

भगत और उनके भगवाना । जीव ब्रह्म जस तत्व महाना ॥
राम योग तस सरहज श्याला । रूप रासि रस रसिक रसाला ॥

भक्त व उनके भगवान तथा जीव व ब्रह्म जैसे परस्पर में महान तत्व हैं उसी प्रकार ये श्री राम जी महाराज के अनुरूप ही रूप की रासि, रस के रसिक व रस स्वरूप सरहज व श्याल हैं।

सियहिं सुलायक भाभी भैया । ब्रह्म शक्ति विरचे सुख छैया ॥
रामहुँ तिन लखि निज अनुकूला । मनहिं प्रहर्षे मंगल मूला ॥

ये दोनो कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी, श्री सीता जी के अनुरूप भाभी व भैया हैं। पूर्णतम परब्रह्म व परमाद्या शक्ति श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी ने अपने सुख के लिए ही इनका सृजन किया है। श्री राम जी महाराज भी उन्हें मंगलों के मूल व अपने अनुकूल समझ कर मन में हर्षित हो रहे थे।

भाभी भैया गौरव पेखी । सियहुँ हरषि हिय मोद विशेषी ॥
जन्म धन्य सो सुनु हनुमाना । देखि जाहि रघुवर सुख माना ॥

अपने भाभी व भैया के महत्ता को देख देखकर श्री सीता जी भी हर्षित हो रही थीं और उनके हृदय में विशेष आनन्द हो रहा था। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी सुनिये! जन्म धारण करना उसी का धन्य है जिसे देखकर श्रीराम जी महाराज सुख का अनुभव करते हैं।

दो०—राम सीय कहँ प्राण प्रिय, लगत कुँअर सुख दानि ।
धोवत पदहिं स्वभाव मय, देखत कंकन पानि ॥४००॥

परम सुखदायी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीताराम जी को प्राण प्रिय लग रहे थे तथा वे स्वभाविक ही अपने भगिनी भाम के श्री सीताराम जी के चरण कमल पखारते हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के अपने हाथों के कंकणों में उनका दर्शन कर रहे थे।

राम प्रेम कुँअरहिं पर पेखी । भोक्ता भोग्य भाव भल लेखी ॥
पुलकि सुरन्ह दुन्दुभी बजाई । वरषहिं पुहुप प्रेम उर छाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रति श्री राम जी महाराज का प्रेम देख व भोक्ता–भोग्य (श्री राम जी व श्री लक्ष्मीनिधि जी) के सुन्दर भाव को समझकर देवताओं ने पुलकित शरीर हो दुन्दुभी बजाई तथा प्रेम प्रपूरित ह्रदय से पुष्प वरषाने लगे।

जय जय कहि शुभ देत अशीषा । सुनत कुँअर धारे निज शीषा ॥
राम कृपा सह सुरन्ह विलोकी । हरषहिं हिय जल नयनन रोकी ॥

श्री राम जी महाराज के प्रेम पात्र कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की जय हो, जय हो कहते हुए देवगण शुभ आशीर्वाद दे रहे थे जिसे सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने शिर में धारण किया। देवताओं सहित श्री राम जी महाराज की अपने प्रति कृपा देखकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधिजी नेत्रों के प्रेमाश्रुओं को रोक ह्रदय में हर्षित हो रहे थे।

सकल समाज मनहिं मन हरषी । दम्पति कुँअर सबन्ह चित करषी ॥
पद पखारि करि विधिवत पूजा । आरति कीन्ह मुदित मन हूजा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के ऐसे अनुपमेय भावों को देखकर सम्पूर्ण समाज मन ही मन हर्षित हो रहा था तथा पति–पत्नी कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी ने उस समय सभी के चित्त को आकर्षित कर लिया था। इसप्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सीताराम जी के चरणों का प्रच्छालन कर उनकी विधिवत पूजा की तथा मुदित मन आरती उतारी।

करि प्रणाम मुनि आयसु पाई । अक्षत कुश लिय पानि सुहाई ॥
वरहिं देन हित अवशि विधाना । मुनि कह इत वेदन परमाना ॥

पुनः प्रणाम कर वे मुनिराज श्री बसिष्ठ जी व शतानन्द जी की आज्ञा प्राप्तकर अपने हाथों में सुन्दर अक्षत व कुश धारण किये। तब मुनिराज श्री शतानन्द जी ने कहा कि– हे कुमार! यहाँ पर दूलह को, कुछ दान करने का आवश्यकीय विधान है, इसका प्रमाण वेदों में सन्निहित है।

सुनत कुँअर अतिशय सुख फूले । बोले बचन सप्रेम अतूले ॥
जो मैं अहौं मोर जो होई । राम चरण अरपौं सुख मोई ॥

मुनिवर श्री शतानन्द जी के वचन सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुख से प्रफुल्लित हो प्रेम पूर्वकअनमोल वचन बोले– मैं व मेरा जो कुछ भी है, उसे मैं सुख पूर्वक श्री राम जी महाराज के चरणों में समर्पित कर रहा हूँ।

सिद्धि कुँअरि छाँड़ति जल पानी । कुँअर कीन्ह संकल्प अमानी ॥
बहुरि अमोलक वस्त्र सुहाये । मणि माणिक शुभ रत्न जो गाये ॥
धेनु बाजि गज वाहन याना । भूमि भवन सेवक शुचि नाना ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी उस समय उनके हाथों में जल डाल रही थी और अमानी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी संकल्प कर रहे थे। पुनः उन्होने सुन्दर शुभ व वर्णित बहुमूल्य वस्त्र, मणि, माणिक,

रत्न, गायें, घोड़े, हाथी, वाहन, विमान, भूमि, महल तथा बहुत से पवित्र सेवक आदि समर्पित किये।

दो०– स्वत्व जागतिक कुँअर कर, जहँ लगि रहा सुभाय ।
सिय सुख हेतहिं प्रेम युत, अरपेउ रुचिर बनाय ॥४०१॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी का जहाँ तक इस संसार में जो कुछ भी अपना था उसे उन्होने स्वाभाविक ही अपनी अनुजा श्री सीता जी की सेवा के लिए प्रेम पूर्वक सुसज्जित कर अर्पित कर दिया था।

छं०– प्रभु प्रेम पूरण चाह हिय, अतिशय सुखद सिय के कुँअर ।
वर वस्तु मोदित भाँति बहु, अरपे अमित भरि भाव उर ॥
पुनि हाथ लै जल शुभ कुशन, बोलेउ बचन हरषाय के ।
मम भावि राजहुँ सीय हित, अरपित अहै सुख छाय के ॥

श्री सीता जी के अत्यन्त सुखदायी अग्रज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में अपने स्वामी श्री रामजी महाराज का पूर्ण प्रेम प्राप्त करने की ही मात्र कामना थी अतः उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न हो, हृदय में असीमित भाव भरकर, बहुत सी श्रेष्ठ वस्तुयें श्री रामजी महाराज को अर्पित कीं। पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने हाथ में शुभ कुश व जल लेकर, हर्षित हो बोले कि– श्री मिथिलापुरी का मेरा भावी राज्य भी श्री सीता जी के लिये सुखपूर्वक समर्पित है।

धरि राम पानिहिं तोय कुश, निज जन्म सुफलहि लख लयो ।
सुर देखि भावहिं मोद भरि, प्रमुदित प्रसूनन झरि दयो ॥
धनि धन्य बोलहिं जय जयति, बहु कुँअर कीन्हेउ त्याग तुम ।
सिय राम प्रेम सुमूर्ति जग, हर्षण प्रगट लखि लीन्ह हम ॥

ऐसा कह कर श्री राम जी महाराज के कर कमल में कुश व जल रखकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपना जन्म धारण करना सफल समझ लिया। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के ऐसे भाव को देखकर देवता आनन्द में सने हुए फूलों की वर्षा करने लगे तथा बोले– हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप धन्यातिधन्य हैं, आपकी जय हो, जय हो, आपने तो यह महान त्याग किया है। आज हमने देख लिया कि– श्री सीताराम जी को हर्षित करने के लिये संसार में आप, उनके प्रेम के साक्षात विग्रह के स्वरूप, ही प्रगट हुये हैं।

दो०– सुनत कुँअर सुर बैन, प्रमुदित हिय संकोच बहु ।
प्रेम वारि भरि नैन, दीन अमानी निजहिं गिन ॥४०२॥

देवताओं के वचनों को सुनकर, आनन्दित हृदय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मन में अत्यधिक संकोच हो गया और वे अपने आपको दीन व अमानी समझ आँखों से प्रेमाश्रु प्रवाहित करने लगे।

सोचहिं कुँअर कहा मैं दयऊ । मैं अरु मोर राम कर हयऊ ॥
स्वयं नित्य सब सिय पति केरा । जीव अकिंचन बिनु मैं मेरा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी विचार कर रहे थे कि श्री राम जी महाराज को मैंने क्या दिया है? क्योंकि मैं व मेरा जो भी है वह तो श्री राम जी महाराज का ही है। जीव का सभी कुछ तो स्वयमेव नित्य ही सीतापति श्रीराम जी महाराज का है क्योंकि अहंकार व ममकार से रहित 'जीव' सहज ही अकिंचन होता है।

अहं भाव भरि बनै प्रदाता । बाँधत तिनहिं कर्म दुखदाता ॥
रामहि वस्तु राम की देई । आपन गिनै अहं मति भेई ॥

यदि कोई अहंकार भाव में भावित होकर उन्हें देने वाला बनता है तो दुखदायी कर्म उसे ही बन्धन में बाँधते हैं। यदि श्री राम जी महाराज द्वारा प्रदत्त उन्हीकी वस्तु को, अहंकार बुद्धि के कारण कोई अपनी समझता है–––

चोर कृतघ्न अमित अपराधी । काल कर्म स्वभाव गुण धाँधी ॥
याते राम सियहिं जो देवै । मानि उनहिं की हिय मन धेवै ॥

–––तो वह चोर, कृतघ्नी व असीम अपराधी है तथा काल, कर्म व स्वभावजन्य गुणों से घिरा रहता है इसलिए श्री सीताराम जी को जो कुछ भी समर्पित करे उसे उन्ही की वस्तु मान कर हृदय व मन में उनकी सेवा करने का भाव बनाये रखना चाहिए।

अहं छोड़ि ममता बिसराई । भजहिं सिया युत श्रीरघुराई ॥
आनन्द सिन्धु करै सो वासा । नाहिंत भटकै मरत पियासा ॥

हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री रामहर्षण दासजी महाराज कहते हैं कि जो जीव अहंकार रहित हो व ममत्व को भूल कर श्री सीता जी सहित श्री राम जी महाराज का भजन करता है वही आनन्द के सागर में निवास करता है नहीं तो मृगतृष्णा में भटकते हुये मृग की भाँति प्यासा ही मर जाता है।

दो०– यहि विधि निमिकुल कुँअर वर, सीय राम पद धोय ।
हर्षित आयसु मुनिन लै, भो निवृत्त सुख मोय ॥४०३॥

इस प्रकार निमिकुल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीताराम जी के चरणों का हर्षपूर्वक प्रच्छालन कर मुनियों से आज्ञा प्राप्त कर सुखपूर्वक उपरत हुए।

पितु गुरु मुनिहिं कुँअर मन भाये । हरषित दशरथ गोद बिठाये ॥
सिगरे पाँव पखारन वारे । अमित द्रव्य दीन्हे सुख सारे ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मन के भाव उनके पिता श्री मान् जनकजी महाराज, गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी तथा सभी मुनियों को अच्छे लगे। चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज ने तो उन्हें हर्षपूर्वक गोद में बिठा लिया। अनन्तर श्री सीताराम जी के चरणों का प्रच्छालन करने वाले सभी जनों ने सुखपूर्वक अपार द्रव्य समर्पित किया।

विविध भाँति को कहै जो दीन्हा । दूसर कृत्य बहुरि मुनि कीन्हा ॥
वर दुलहिन करतल कर जोरी । कीन्ह क्रिया कुल गुरुन विभोरी ॥

उन सभी ने विभिन्न प्रकार से इतना धन दिया जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पुनः मुनियों ने दूसरी वैवाहिक क्रिया करायी। युगल कुल–गुरुओं ने दूलह व दुलहिन दोनों के करतल मिलाने की श्क्रिया प्रेम विभोर होकर करायी।

करि श्रुति रीति होम पुनि दीन्हा । वर दुलहिन गठ बन्धन कीन्हा ॥
भाँवरि होन लगी हरषाई । प्रमुदित सुरन निसान बजाई ॥

इस प्रकार वेद रीति का सम्पादन कर मुनियों ने हवन करवाया तत्पश्चात दूल्हा–दुलहिन का गँठ–बन्धन किया गया। अब हर्ष पूर्वक भाँवरी होने लगीं जिसे देखकर देवता आनन्दित हो नगाड़े बजाने लगे।

वरषि प्रसून देव सरसाई । मण्डप मंगल गीतहिं गाई ॥
विप्र वेद बहु विरद सुबन्दी । कहहिं जय सबहिं जयति अनन्दी ॥

देवता सुख पूर्वक पुष्पों की वर्षा करने लगे, विवाह मण्डप में मांगलिक गीत गाये जाने लगे, ब्राह्मण वेद, बन्दीजन विरद (कीर्तिगान) तथा अन्य सभी लोग आनन्दपूर्वक जय–जयकार करने लगे।

दो०– मुनि आयसु श्रीनिधि कुँअर, सीय भ्रात मति वानि ।
लाजा परसत हरषि हिय, भाम भगिनि के पानि ॥४०४॥

मुनियों की आज्ञा से श्री सीता जी के परम प्रवीण भैया, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हर्षित हृदय हो अपने बहनोई व बहन के कर–कमलों में लाजा परोसने लगे।

छं०– सियराम भाँवरि अग्नि की, दोउ देत प्रमुदित मोहहीं ।
सिय पानि नीचे राम कर, आगे चलति सिय सोहहीं ॥
श्रीनिधिहुँ सीता राम लखि, अनुपम छटा आनन्दमयी ।
परसत सुलाजा प्रेम युत, तन मन दशा सब ख्वै गयी ॥

जनक दुलारी श्री सीताजी व दशरथ नन्दन श्री रामजी महाराज दोनों प्रमुदित हो अग्नि की भाँवरी देते हुए सभी को मोहित कर रहे थे। उस समय श्री सीता जी के कराम्बुजो के नीचे श्री राम जी महाराज का कर–कमल सुशोभित हो रहा था तथा श्री सीता जी आगे चलती हुई सुशोभित हो रही थीं। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी नव दूलह दुलहिन श्री सीताराम जी की अनुपमेय व आनन्दमयी छटा को निहारते हुए प्रेमपूर्वक सुन्दर लाजा परोस रहे थे, उनकी शरीर व मन की सम्पूर्ण स्मृति भूल गयी थी।

बहु देव वरषहिं सुमन सुख, मन मुदित वाद्य बजावहीं ।
मन मोह त्रिभुवन राम सिय, सिहरा सिरन झमकावहीं ॥
घन बीच दामिनि दिव्य जनु, बनरा बनी बनि लखि परै ।
शिर मौर मौरी सोह सुठि, युग चमक बिद्युत लजि मरै ॥

देवता सुख में सराबोर होकर बहुतायत में फूल वरषाते तथा मन में आनन्दित हो बाद्य बजा रहे थे। उस समय श्री सीताराम जी अपने शिर में सेहरा झमकाते हुए त्रिलोक वासियों के मन को मोहित कर रहे थे तथा दुलहा दुलहिन बने हुए वे उसी प्रकार दिखाई पड़ रहे थे जैसे बादलों के बीच बिजली चमक रही हो। उनके शीष पर सुन्दर मौर व मौरी सुशोभित थी जिनकी चमक से विद्युत की आभा भी विलज्जित हो जाती थी।

सिय भूषणन प्रतिविम्ब यों तन, महँ लसत अति राम के ।
जनु नखत आदित चन्द्र छाया, मधि खसैं जल श्याम के ॥
प्रभु पाणि शोभित सीय सह, मरकत मनहुँ कंचन कसे ।
तन गौर लागत राम सिय, साँवर लसे प्रतिविम्ब से ॥

श्री सीता जी के आभूषणों की प्रतिछाया श्री राम जी महाराज के शरीर में इस प्रकार अत्यधिक सुशोभित होती थी जैसे नक्षत्र, सूर्य व चन्द्रमा आदि के प्रतिविम्ब नीले जल में पड़ रहे हों। श्री सीता जी के पाणि पंकजों सहित श्रीरामजी महाराज के हस्त कमल ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानों स्वर्ण में मरकत (नीले) मणि जड़े हुए हों। एक दूसरे के प्रतिबिम्ब पड़ने से श्री राम जी महाराज का श्री अंग कुछ गोरा व श्री सीता जी का कुछ साँवला प्रतीत हो रहा था।

सब देव देवी मौन ह्वै, देखहिं चकित बुधि गति गयी ।
मुनि साधु नेही नैन भरि, लखि चन्द सी चक गति लयी ॥
सुर नाग नर मुनि देखि दोउ कहँ, सह तियन हिय हर्षही ।
बहु पुष्प वरषहिं वाद्य बजि, हर्षण स्वसुख हिय कर्षहीं ॥

सभी देव व देवांगनायें मौन हो आश्चर्य संयुत होकर भाँवरी का दर्शन कर रहे थे, उनकी बुद्धि उस समय विस्मृत हो गयी थी। मुनिगण, साधुजन तथा प्रेमीजन भर नेत्र श्री सीताराम जी का दर्शन करते हुए चन्द्रमा को देखकर चकोर के समान स्थिति प्राप्त कर रहे थे तथा देवता, नाग, मनुष्य तथा मुनिगण आदि दिव्य दूलह–दुलहिन श्री सीताराम जी को देखकर अपनी–अपनी स्त्रियों सहित हृदय में हर्षित हो रहे थे। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि वे सभी फूलों की बिपुल वरषा करते हुए वाद्य बजा–बजा कर अपने सुख से जन–जन के हृदय को आकर्षित कर रहे थे।

दो०–भाँवरि मण्डप अग्नि की, देते अधिक सुहाहिं ।
राम सिया छवि कहन की, शेष गिरा गम नाहि ॥४०५॥

विवाह मण्डप में अग्नि की भाँवरी देते हुए श्री सीताराम जी इतने अधिक सुशोभित हो रहे थे कि उनकी उस सुन्दरता का वर्णन करने की सामर्थ्य श्री शेष जी व श्री सरस्वती जी में भी नहीं है।

भाँवरि देवहिं युगल किशोरा । लोक विलोकत चन्द्र चकोरा ॥
भरत भाँवरी खम्भन माहीं । सीताराम परत परिछाहीं ॥

युगल किशोर श्री सीताराम जी भाँवरी दे रहे हैं जिसे सम्पूर्ण संसार उसी प्रकार देख रहा था

जैसे चन्द्रमा को चकोर देख रहा हो। भाँवरी देते समय विवाह–मण्डप के मणि–खम्भों में श्री सीताराम जी का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था।

लगत मनहुँ सिय राम स्वरूपा । खम्भन प्रगटे अमित अनूपा ॥
व्याह विलोकत बहु सुख होई । सो सुख लेन कीन्ह मन दोई ॥

जिसे देखकर ऐसी प्रतीति हो रही थी मानों मणि खम्भों में श्री सीताराम जी के अनुपमेय असीमित स्वरूप प्रगट हो गये हों। लोक में विवाह देखने में अत्यधिक सुख प्राप्त होता है अतः दोनों (श्री सीता जी व श्री राम जी) ने अपने मन में उस सुख को प्राप्त करने का विचार किया–––

आपन व्याह चषन चित चाये । मनहुँ युगल बहु रूप बनाये ॥
देखत खम्भन बिच सचु पाये । कहुँ प्रगटत कहुँ बदन दुराये ॥

–––और आनन्दित चित्त से अपना विवाह देखने के लिए ही मानो दोनों ने अपने बहुत से रूप बना लिये हैं जो खम्भों के बीच शान्तिपूर्वक कभी प्रगट तो कभी छिप कर विवाह दर्शन कर रहे हैं।

भाँवरि भयो अनन्द अपारा । भाग विदेह कहै को पारा ॥
गुरु बसिष्ठ तब कही सुबानी । कुँअर नेग पावैं सुख दानी ॥

इस प्रकार असीम आनन्द पूर्वक भाँवरी कृत्य सम्पन्न हुआ। हे श्री हनुमान जी! श्री विदेहराज जी महाराज के भाग्य–वैभव का वर्णन कर कौन पार पा सकता है। तदुपरान्त रघुकुल गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी ने सुन्दर वाणी से कहा कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अब सुखदायी नेंग प्राप्त करें।

दशरथ सहित प्यार बहु दीना । वस्त्र विभूषण प्रेम प्रवीना ॥
कुँअर हृदय चाहैं कछु आना । चित सिय रघुवर रूप लुभाना ॥

तब चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने प्यार के साथ, प्रेम प्रवीण कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बहुत से वस्त्र व आभूषण नेंग में प्रदान किये। परन्तु जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी तो अपने हृदय में कुछ अन्य अभिलाषा किये थे, उनका चित्त श्री सीताराम जी के सुशोभन स्वरूप में लुभाया हुआ था।

दो०–राम लखेउ हिय चाह तिन, सकुचि न बोलत बात ।
गगन गिरा तुरतहिं भयी, सुनहु कुँअर सुखदात ॥४०६॥

श्री राम जी महाराज ने उनके हृदय की इच्छा जान ली परन्तु संकोच के कारण कुछ बोल नही सके, तत्क्षण ही परम सुखदायी आकाशवाणी हुई कि हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये,

राम गये सब तुम पर वारी । आत्म दान करि भये सुखारी ॥
अमित कृपा के पात्र बनाये । राउर मुख लखि सो सुख पाये ॥

श्री राम जी महाराज ने तो आप पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया है तथा अपनी आत्मा का भी दान आपको देकर सुखी हो रहे हैं। उन्होंने आपको असीमित कृपा का भाजन बनाया है व आपका मुख देखकर ही सुख प्राप्त करते हैं।

प्रेम लक्षणा भक्तिहुँ दीनी । महा भाव रस सन्तत लीनी ॥
सेव इकान्तिक भजन सुजाना । दीन्ह प्यार बहु विधि सनमाना ॥

उन्होंने आपको अपनी प्रेम–लक्षणा भक्ति भी प्रदान की है तथा वे आपके महाभाव रस (प्रेम पराकाष्ठा) में सदैव निमग्न रहते हैं। हे सुजान श्री लक्ष्मीनिधि जी! श्री राम जी महाराज ने आपको अपनी एकान्तिक सेवा, भजन, प्यार तथा विविध प्रकार से आदर भी प्रदान कर दिया है।

मज्जन अशन शयन सँग रामा । दिन चर्या तव होइ ललामा ॥
सुनि कुमार अतिशय सुख मानी । प्रेम पगे आनन्द अघानी ॥

अतएव आपकी स्नान, भोजन व शयन आदि सुन्दर दैनिक क्रियायें श्री राम जी महाराज के साथ ही सम्पन्न होंगी। इस प्रकार की आकाशवाणी सुनकर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अत्यधिक सुख माना तथा वे प्रेम में पगे हुए आनन्द से छक गये।

राम कृपा लक्ष्मीनिधि पाई । सुनत समाज सरस सुख छाई ॥
वरषि सुमन जय कहत सुजाना । देव बजावहिं मुदित निसाना ॥

श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री राम जी महाराज की अभूत पूर्व कृपा को प्राप्त किया है यह सुनकर सम्पूर्ण समाज रस से परिपूर्ण हो सुख में समा गया। यह देखकर देवगण फूलों की विपुल वर्षा कर, परम सुजान लक्ष्मीनिधि जी की जय कहते हुये मुदित–मन नगाड़े बज रहे थे।

दो०–यहि प्रकार भाँवरि फिरी, करि विधि सबहिं सुरीति ।
कुलगुरु पुनि करि वेद विधि, बोले वचन सप्रीति ॥४०७॥

हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि इस प्रकार सुन्दर विधि पूर्वक समस्त वैवाहिक क्रियाओं का सम्पादन करते हुए भाँवरी कृत्य पूर्ण हुआ तब कुल गुरुओं ने वेद–रीति का निर्वाह कर प्रेम पूर्वक वाणी से कहा–––

राम वाम दिशि आसन एका । बैठहिं सीय विलम्ब न नेका ॥
सखिन सुनत शुचि सीय उठाई । राम बाम दीन्हे पधराई ॥

–––अब श्री राम जी महाराज के बायें भाग में एक सुन्दर आसन में श्री सीता जी अविलम्ब बैठ जाँय। कुलगुरुओं की वाणी सुनते ही श्री सियाजू की सखियों ने परम पवित्र श्री सीता जी को उठाकर श्री रामजी महाराज के बाँयें भाग में बिराज दिया।

लखि लखि देव सुमन बहु वरषहिं । बजत निसान मनहिं मन हरषहिं ॥
गुरु निदेश लै पानि सिन्दूरा । सिय शिर दीन्हें रघुवर पूरा ॥

युगल नवल श्री सीताराम जी को देख–देखकर देवता मन ही मन में हर्षित हो बहुतायत में फूलों की वर्षा करते हुये सुन्दर नगाड़े बजाने लगे। पुनः श्री गुरुदेव जी श्री बशिष्ठ जी की आज्ञा से श्री राम जी महाराज ने अपने हस्त कमल में सिन्दूर लेकर श्री सीता जी के शिर (माँग) में भर दिया।

बहुरि सुआसिन सेन्दुर दीन्हा । चिर अहिवात मनहुँ करि चीन्हा ॥
सह त्रिदेव सब सुर की वामा । मंगल आशिष देहिं अकामा ॥

पुनः सुआसिन (सुहागवती) स्त्रियों ने जनक नन्दिनी श्री सिया जू को सिन्दूर दान किया मानों वे उन्हे अखण्ड सौभाग्यशालिनी होने की निशानी प्रदान कर दी हों। उस समय त्रिदेवों (श्री ब्रह्माजी, श्री विष्णुजी व श्री शंकरजी) सहित सभी देवगण व देव–नारियाँ निष्काम भाव से नवल युगल श्री सीताराम जी को मंगल आशीष दे रहे थे।

भलि प्रकार सब कृत्य निबाहा । सीय राम कर भयो विवाहा ॥
अक्षत पुष्प हाथ निज लीना । सुर नर मुनि समाज सुख भीना ॥

इस प्रकार सभी (लौकिक व वैदिक) कृत्यों का भली प्रकार सम्पादन कर श्री सीताराम जी का मंगलमय विवाह सम्पन्न हुआ। तदुपरान्त देवता, मनुष्य, मुनि तथा सम्पूर्ण समाज नें सुखपूर्वक अपने हाथ में अक्षत व फूल ले लिया–––

मंगल पढ़हि सनेह सँभारी । जयति राम जय सिय सुकुमारी ॥
पुष्प वरषि सब भरे उमाहा । कह त्रिवाच भो राम विवाहा ॥

–––तथा प्रेमपूर्वक सभी नव दूलह–दुलहिन श्री राम जी व श्री सीता जी का मंगलानुशासन करते हुए श्री राम जी महाराज की जय हो, सुकुमारी श्री सिया जू की जय हो, जय हो उच्चारण करने लगे। सभी जनों ने उस समय उत्साहपूर्वक पुष्प वरषाते हुए त्रिवाचा (तीन बार) श्री सीताराम जी का विवाह सम्पन्न हुआ कहा।

दो०– यहि विधि सीताराम को, श्रुति विधि भयो विवाह ।
देखि देखि सब सुख मगन, साने महा उछाह ॥४०८॥

इस प्रकार वेद विधि के अनुसार श्री सीताराम जी का विवाह सम्पन्न हुआ जिसे देख–देखकर सभी जन सुख में मग्न हो गये तथा महान आनन्द में सन गये।

मुनि बसिष्ठ कौशिक रुचि जानी । तापर आयसु पाय सुहानी ॥
जनक विवाह समाज सँभारी । कन्या तीनहु लाय पधारी ॥

तदुपरान्त मुनिवर श्री बसिष्ठ जी व श्री विश्वामित्र जी की इच्छा जानकर तथा उनकी सुन्दर आज्ञा प्राप्त कर श्री जनक जी महाराज ने पुनः ससमाज विवाह की तैयारी कर तीनों कन्याओं (श्री माण्डवी जी, श्री उर्मिला जी व श्री श्रुतिकीर्ति जी) को बुला लिया।

कुशध्वज पुत्रि माण्डवी बाला । रूप शील गुण बुद्धि विशाला ॥
भरतहिं दीन्ही सुखद विवाही । जोरी सुभग वरणि नहिं जाही ॥

श्री विदेहराज जी महाराज ने अपने अनुज श्री कुशध्वज जी की परम रूप, शील, गुण तथा महान बुद्धि सम्पन्ना कन्या श्री माण्डवी जी का श्री रामानुज भरत लाल जी से सुख प्रदायक विवाह कर दिया, उनकी सर्वथा अनुरूप व सुन्दर जोड़ी ऐसी थी जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

छोटि भगिनि सीता कर जोई । नाम उर्मिला शुभ गुण मोई ॥
लषनहिं दीन्ह जनक हरषाई । रूप शील सागरि सुखदाई ॥

पुनः जनक दुलारी श्री सीता जी की छोटी बहन जो समस्त शुभ गुणों से संयुक्त, रूप व शील की सागरी तथा परम सुख प्रदान करने वाली थीं उन श्री उर्मिला नामक कन्या का विवाह श्री जनक जी महाराज ने हर्ष पूर्वक श्री रामानुज लक्ष्मण कुमार से किया।

कुशध्वज की पुनि इक लघु कन्या । श्रुतिकीरति जेहिं नाम सुधन्या ॥
रिपुहन सँग नृप कीन्ह विवाहा । कहि न जाय जस भयो उछाहा ॥

पुनः श्री कुशध्वज जी महाराज की एक छोटी कन्या, जिनका श्रेष्ठ व सुन्दर नाम श्री श्रुतिकीर्ति जी था, का श्री जनक जी महाराज ने श्री रामानुज शत्रुघ्न कुमार जी के साथ विवाह किया। उस समय वहाँ जैसा आनन्द हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो०– जेहिं विधि सिय रघुवीर कर, सुखद भयो शुभ व्याह ।
सकल कुमारन व्याह तिमि, कीन्हे अति उत्साह ॥४०९॥

हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री सीताराम जी का सुख प्रदायक शुभ विवाह जिस प्रकार सम्पन्न हुआ था उसी प्रकार से सभी राज कुमारों का विवाह भी अत्यन्त उत्साहपूर्वक किया गया।

छं०– निज दिव्य दूलह संग शुचि, दुलहिन सुमण्डप राजहीं ।
जनु ब्रह्म चार स्वरूप बन बनि, शक्ति सह सुख भ्राजहीं ॥
लखि देव चौगुन रंग रस, भरि प्रेम दुन्दुभि बहु हनी ।
सुरवृक्ष फूलन वृष्टि करि, हरषण कहत जय बन बनी ॥

अपने दिव्य दूलहों के साथ पवित्र चारों दुलहनें सुन्दर 'विवाह मण्डप' में इस प्रकार सुशोभित हो रही थीं जैसे पूर्णतम परब्रह्म चार स्वरूप धारणकर अपनी शक्तियों सहित दूल्हा–दुलहिन बना हुआ सुख पूर्वक विराजमान हो। देवता यह दृश्य देख–देखकर चौगुने आनन्द व उत्साह में रंगे हुए, प्रेम मग्न हो, तीव्र–ध्वनि के साथ दुन्दुभी बजा रहे थे तथा कल्प–वृक्ष के फूलों की वरषा करते हुए हर्षित हृदय नवल दूलह दुलहिनों की जय–जयकार कर रहे थे।

चारहु दूलह दुलहिन देखी । सब समाज सुख लहेउ विशेषी ॥
दशरथ सुख को बरणि सिराई । नहिं माछी आकाश थहाई ॥

चारों दूलहों व दुलहिनों को देख देख सम्पूर्ण समाज विशेष सुख प्राप्त कर रही थी। चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज के सुख का वर्णन कर उसी प्रकार कोई पार नहीं पा सकता, जिस प्रकार मक्खी आकाश की सीमा नहीं माप सकती।

सुत सुतवधू निहारि निहारी । तुच्छ गिने सब सुख फल चारी ॥
प्रेम मगन सुख भौमा झूलैं । जानै सो जेहिं प्रभु अनुकूलैं ॥

वे अपने पुत्रों व पुत्रवधुओं को देख देखकर सभी सुखों व चारों फलों (अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष) को अत्यधिक लघु समझ रहे थे तथा प्रेम परिप्लुत हो भौमा सुख के झूले में झूल रहे थे। उनके सुख को तो वही जान सकता है जिनके ऊपर परमात्मा सभी प्रकार से अनुकूल हो गये हों।

दाइज दीन्हो जनक बहूता । को कवि कहै लिखै करि कूता ॥
वस्त्र विभूषण विविध प्रकारा । मणि सुवरण नव रत्न अपारा ॥

श्री विदेहराज जी महाराज ने बहुत सा दहेज दिया जिसका बखान व अनुमान कोई कवि कहकर तथा लिखकर नहीं कर सकता। विभिन्न प्रकार के वस्त्र, आभूषण, मणियाँ, स्वर्ण व असीमित नवरत्न,

हय गय स्यन्दन दास सुदासी । धेनु अलंकृत वस्तु सुपासी ॥
देखि सुरेशहिं लागति लाजा । पायो दाइज दशरथ राजा ॥

घोड़े, हाथी, रथ, सेवक, सेविकाएँ, आभूषणों से सजी गायें तथा अन्य सुविधा की वस्तुयें आदि, जिन्हें देखकर देवराज इन्द्र भी लज्जित हो जाते थे, चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने श्री विदेहराज जी द्वारा दहेज में प्राप्त की थीं।

दो०—दीन्ह जाचकनि हरषि हिय, नृप दशरथ बहु दान ।
उबरो जनवासहिं गयो, देवहुँ हनैं निसान ॥४१०॥

जिससे चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने याचकों को हर्षित हृदय बहुत सा दान दिया व अवशिष्ट सामग्री जनवासे गयी। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की यह उदारता देखकर देवता नगाड़े बजाने लगे।

जनक मुदित मन मुनि गन केरी । कीन्ही पूजा विविध सुखेरी ॥
दान मान विनती सुख सानी । किये सरसि हिय होय अमानी ॥

पुनः श्री जनक जी महाराज ने प्रसन्नमना सभी मुनियों का विभिन्न प्रकार से सुखपूर्वक पूजन किया तथा हर्षित हृदय अमानी बनकर सुख से सने हुए विनम्र निवेदन पूर्वक सम्मान करते हुये विविध दान दिया।

सकल बरातहिं नृप सतकारयो । भलि प्रकार तन भूति विसार्‌यो ॥
पुष्पांजलि करि सुरन्ह प्रणामा । किये जनक वर विनय ललामा ॥

तदुपरान्त श्री विदेहराज जी महाराज ने अपना शरीर व वैभव भूलकर सभी बारातियों का भली प्रकार सत्कार किया। पुनः वे अंजलि में पुष्प लेकर देवताओं को प्रणाम किये तथा सुन्दर प्रार्थना करने लगे।

होत सदा सुर भाव के ग्राही । रविहिं प्रकाशै दीपक नाहीं ॥
जय जय कहि सुर देहिं अशीषा । वरषैं सुमन धरैं नृप शीषा ॥

आप सभी देवता, सदैव भावों को ही ग्रहण करते होते हैं, जैसे सूर्य को दीपक दिखाने से वह सूर्य को प्रकाशित नहीं कर सकता परन्तु सूर्य भव को ग्रहण कर प्रसन्न होते हैं अतः आप मेरी

भावमयी भेंट को स्वीकार करें। श्री महाराज की विनय सुनकर देवता जयकार करते हुये आशीर्वाद देते हैं तथा पुष्प वरषाते हैं जिन्हें श्री जनक जी महाराज अपने शिर में धारण कर लेते हैं।

जनक वन्धु सह दशरथ काहीं । विनय प्रणाम न करत अघाहीं ॥
तव सम्बन्ध जो भयो नृपाला । मोर भाग बढ़ गयी विशाला ॥
भयौं महान आपके नाते । सब विधि गनिय मोहिं निज ताते ॥

श्री जनक जी महाराज अपने अनुज श्री कुशध्वज जी सहित चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज को प्रणाम व प्रार्थना करते संतुष्ट नहीं हो रहे थे, तथा पुनः पुनः चक्रवर्ती जी से कह रहे थे– हे राजन! हमसे आपका यह जो सम्बन्ध हुआ है उससे मेरी सौभाग्य अत्यधिक विवर्धित हो गयी है, मैं आपके सम्बन्ध से महान हो गया हूँ अतः आप मुझे सभी प्रकार से अपना मानते रहियेगा।

दो०–राज भूति परिवार गृह, सेवक सुत तव नाथ ।
मोहिं मानि आपन सदा, करहु छोह पद माथ ॥४११॥

हे नाथ! मेरा राज्य, वैभव, परिवार, भवन, सेवक तथा पुत्र आदि सभी कुछ आपका है अतएव मुझे अपना समझकर सदैव कृपा करते रहियेगा, मेरा शिर आपके चरणों मे झुका हुआ है।

चारिहु कुँअरि परम सुकुमारी । मातु पितहिं प्रिय प्राण अधारी ॥
सदा करब इन पर अति छोहू । पालब पुत्रि प्यार करि मोहू ॥

ये चारो ही कुमारियाँ (श्री सीता, श्री माण्डवी, श्री उर्मिला व श्री श्रुतिकीर्ति) अत्यन्त सुकुमार तथा अपने माता–पिता की प्रिय व प्राणाधार हैं अतः इन पर अत्यन्त कृपा कर सदैव इनका प्यार व वात्सल्य पूर्वक पालन करते रहियेगा।

चारहु कुँअर यथा तव प्राना । मानहिं लरकिन्ह तथा समाना ॥
करुना करन योग ये बाला । नयन पुतरि सम पली भुवाला ॥

हे महाराज! जिस प्रकार आपके चारो राजकुमार (श्री राम जी, श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी) आपको प्राण के समान प्रिय हैं उसी प्रकार इन पुत्रियों को भी, आप उनके समान ही मानियेगा। हे महाराज! ये सभी नेत्रों की पुतली के समान पली हुई बालिकायें करुणा करने योग्य हैं।

भयो कष्ट आवन यहि देशा । बोलि पठायेउँ सुनहु नरेशा ॥
सो अपराध छमहिं हिय हेरा । जानहिं सदा मोहिं निज चेरा ॥

श्री विदेहराज जी महाराज ने कहा– हे राजन! सुनिये, मैंने आपको जो बुला भेजा था इस कारण,इस देश (श्री मिथिला पुरी) में आने से आपको बड़ा कष्ट हुआ है, अतः मेरे उस अपराध को हृदय में विचार कर क्षमा कर दीजियेगा तथा मुझे सदैव ही अपना सेवक समझते रहियेगा।

देखि जनक वर विनय सुप्रीती । बोले दशरथ बचन प्रतीती ॥
आत्म सखा मोरे नर नाहा । रहे सदा रहिहैं चष चाहा ॥

श्री विदेह राज जी महाराज की सुन्दर विनय व प्रीति को देखकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज विश्वास प्रद वचन बोले– हे मिथिला नरेश! आप तो मेरे आत्म सखा हैं, सदैव मुझे नेत्रों के समान प्रिय रहेंगे।

दो०–यह शुभ तव सम्बन्ध ते, भये हमहुँ धनि रूप ।
पुत्रि कीर्ति जय भूति भलि, लाधे ललित अनूप ॥४१२॥

आपके यहाँ मंगलमय सम्बन्ध हो जाने से हम भी धन्य हो गये तथा अनुपमेय व सुन्दर पुत्रियाँ, अक्षय कीर्ति, त्रिलोक विजय एवं असीम वैभव प्राप्त किये हैं।

भाव विनय रस दोउ नृप छाके । कहैं परस्पर सुख मनसा के ॥
पुनि नृप चले मुदित जनवासा । बरनत जनक प्रीति सहुलासा ॥

इस प्रकार दोनों नरेश (श्री विदेह राज जी व चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज) भाव, विनय व रस में छके हुए अपने मन की सुखानुभूतियों को परस्पर में कह–सुन रहे थे। पुनः चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज मन मुदित हो श्री जनक जी महाराज के प्रेमभाव का उल्लास पूर्वक वर्णन करते हुए जनवास गृह प्रस्थान कर गये।

विविध वाद्य धुनि होत सुहाई । वरषहिं सुमन देव झरि लाई ॥
इहाँ राम कहँ मैथिल नारी । सहित त्रिदेवी सब सुर प्यारी ॥

वहाँ पर विभिन्न प्रकार के वाद्यों की सुन्दर ध्वनि हो रही थी, देवता झड़ी लगाकर फूलों की वर्षा कर रहे थे। इधर मिथिलापुर की नारियाँ, त्रिदेवियों (श्री लक्ष्मी जी, श्री पार्वती जी व श्री सरस्वती जी) व सभी देवांगनाओं सहित नवल दूलह श्री राम जी महाराज को––

सिय सह कोहबर चली लिवाई । तैसहिं अलग अलग सब भाई ॥
कोहवर भवन न जाय बखाना । देखि जाहि रामहुँ सुख साना ॥

––––श्री सीता जी के साथ कोहवर गृह ले चलीं। उसी प्रकार सभी भ्राताओं को भी अलग–अलग कोहवर कक्ष में ले जाया गया। उस कोहवर गृह का वर्णन जिसे देखकर श्रीरामजी महाराज भी सुख में सन गये थे, नहीं किया जा सकता है।

वर दुलहिन आसन बैठारी । कोहवर गान करहिं वर नारी ॥
पूजा कीन्ही सविधि बहोरी । राम सिया राजत वर जोरी ॥

हाँ कोहवर कक्ष में दूलह–दुलहिनों को आसन में बिठा कर सुन्दर स्त्रियाँ कोहवर गीत गान लगी। पुनः विधि पूर्वक कोहवर गृह में सुशोभित श्री सीताराम जी की सुन्दर जोड़ी का उन्होंने पूजन किया।

दो०–शोभा अमित न जाय कहि, सुघर राम वर वेष ।
नेति नेति कहि सब लखहिं, हारे शारद शेष ॥४१३॥

श्री राम जी महाराज के सुन्दर दूलह वेष की असीमित शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसका सभी नेति–नेति (इसका अंत नही है) कहकर दर्शन कर रहे थे यहाँ तक कि श्री सरस्वती जी

व श्री शेष जी भी उसका वर्णन करने में भी हार मान रहे थे।

छं०– दूलह वेष अतूला राजत, कोटि काम छवि छाई ।
श्याम राम सहजहिं सुठि सुन्दर, तापै वर बनि आई ॥
कहहु कौन हिय धीरज राखै, जग चह बनन लोगाई ।
शची शारदा रमा भवानी, पेखत गयी बिकाई ॥

श्री राम जी महाराज का दूलह वेष अतुलनीय तथा करोड़ों कामदेव की शोभा से सम्पन्न सुशोभित हो रहा था। श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज तो सहज ही सुन्दर हैं फिर उस पर वे दूल्हा वेष बनाये हुए हैं। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहाकि हे श्री हनुमान जी! आप ही कहिये कि– ऐसा कौन है? जो उन्हें देखकर अपने हृदय में धैर्य रख सके, सारा संसार ही उन्हें देखकर स्त्री बनने की इच्छा कर रहा था। उनके अनन्त सौन्दर्य पर तो श्री शची जी, श्री सरस्वती जी, श्री लक्ष्मी जी व श्री पार्वती जी भी, देखते ही बिक गयी थी।

सोहत मौर स्वर्ण सटि मोतिन, कोटि सूर्य द्युति लाजै ।
चित्त हरत सिहरा मुख झूलत, अनुपम छबि मय भ्राजै ॥
श्रवण सुभग कल कुण्डल हलकैं, लहरैं बीच कपोला ।
वशीकरन नैना कजरारे, लेत सबहिं बिनु मोला ॥

उनके शिर पर स्वर्ण विनिर्मित, मोतियों से जड़ा हुआ, करोड़ों सूर्य की ज्योति को विलज्जित करता हुआ सुन्दर मौर सुशोभित है, मुख के ऊपर सभी के चित्त को हरण करता हुआ, अनुपमेय सौन्दर्य सम्पन्न, झूलता हुआ सेहरा शोभायमान है, सुशोभन कर्णो में हिलते हुए, सुन्दरतम कुण्डल, कपोलों पर लहरा रहे हैं तथा जन–जन को स्ववश कर लेने काजल युक्त नेत्र, सभी को बिना मोल ही खरीदे ले रहे हैं।

तिलक रेख युत खौर सुहाई, नक मणि अधरहि हलकैं ।
राम भजन फल मनहुँ बतावत, पियत अधर रस झलकैं ॥
पहिरे पीत केशरिया जामा, वागो परम सुहाता ।
कण्ठा गले हृदय बहु भूषण, पुष्प हार छवि छाता ॥

मनमोहन दूलह श्री राम जी महाराज के भव्य भाल पर खौर सहित सुन्दर तिलक की रेखायें सुशोभित हैं, अधरों पर नासामणि अतिशय प्रसन्नता पूर्वक लहरा रही है मानो वह अधरों का अमृत रस पान करते हुए श्रीराम भजन करने के फल को प्रगट कर रही है। वे सुन्दर केशरिया पीले रंग का जामा (वैवाहिक वस्त्र) धारण किये हुए है, उनका वह अनुपमेय वागा (अँगरखा) अत्यधिक सुन्दर प्रतीत हो रहा है। गले में स्वर्ण कण्ठा व हृदय में बहुत से आभूषण सुशोभित हो रहे है तथा फूलों का हार सुन्दरता की परिवृद्धि कर रहा है।

व्याह विभूषण अँग अँग सोहै, मुदरी अंगुलि सोही ।
पल्लव आम्र स्वर्ण शुभ कंकन, किंकिनि कटि मन मोही ॥
चमचम छहर विअहुती धोती, विद्युत छटा दिखाती ।
नूपुर युत पद कमल सुशोभित, अतिहिं महावर भाती ॥

दिव्य दूलह श्री राम जी महाराज के प्रत्येक अंग में वैवाहिक आभूषण सुसज्जित हैं, उँगली में अँगूठी सुशोभित हो रही है, दाहिने हाथ में आम के पत्तों व स्वर्ण से विनिर्मित शुभ कंकण है तथा कमर में मनमोहक किंकिणी धारण किये हुए हैं। अतिशय आभा सम्पन्न चमकती हुई उनकी सुन्दर वैवाहिक धोती विद्युत की छटा सी दिखा रही है एवं नूपुरों से युक्त सुशोभित चरण–कमलों में लगा हुआ महावर अत्यधिक सुन्दर प्रतीत हो रहा है।

देखि देखि वर दुलहिन शोभा, जनक पुरी की वामा ।
लहति अमित सुख जगते ऊपर, भूलि गयी सुधि धामा ॥
होन लग्यो लहकौर सुखद सुठि, रमा लखत हुलसानी ।
भूलि गयी तन मन सुधि सिगरी, सिय महँ मनहुँ समानी ॥

नव दूल्हा–दुलहिन श्री सीताराम जी की अनाख्येय शोभा देख–देखकर श्री जनक पुरी की नारियाँ लौकिक सुख से परे असीमित आनन्द प्राप्त कर रही थी तथा वे कहाँ हैं? अपने धाम की स्मृति भी भूल गयी थीं। पुनः परम सुखप्रद व सुन्दर लहकौर (कोहवर कृत्य) होने लगा जिसे देखती हुई श्री लक्ष्मी जी अत्यन्त उल्लास पूर्वक, अपने शरीर व मन की स्मृति भूल गयीं मानों वे श्री सीता जी में ही समाविष्ट हो गयी हों।

रामहिं लगी सिखावन गौरी, देवहिं सियहिं पवाई ।
सियहिं सिखावत शारद देवी, राम अरपि तुम खाई ॥
राम पवाय सीय मुख कौरहिं, पीछे आपहुँ पाई ।
लाड़िलि तनिक दिखाय सकोचहिं, लीन्ही निज मुख नाई ॥

उस समय श्री पार्वती जी दूल्हा श्री राम जी महाराज को सिखाने लगीं कि– आप, प्रथम श्री सियाजू को पवा दें तथा श्री सरस्वती जी ने श्री सीता जी को सिखाया कि आप श्री राम जी को अर्पण (दिखा) कर पा लीजियेगा। तब श्री राम जी महाराज ने श्री सीता जी के मुख में कवल पवाकर बाद में स्वयं पाया एवं लाड़िली श्री सिया जू ने संकोच के साथ श्री राम जी महाराज को कवल दिखाकर उसे अपने मुख में डाल लिया।

देखत दशा हँसी दै तारी, रघुवर सरहज सारी ।
अति सँकोच दिवि दूलह लाजे, दिये बोर बुधिवारी ॥
हास विलास विविध विधि छायो, को बरणै सुख साजा ।
सुख सुमुद्र जहँ रघुवर सीता, बना बनी बनि भ्राजा ॥

उनकी यह अवस्था देखकर श्री राम जी महाराज की सरहजे (श्याल–बधुयें) व सालियाँ ताली बजाकर हँसने लगीं जिसे देखकर दिव्य दूलह श्रीरामजी महाराज अत्यन्त संकुचित व लज्जित हो गये मानों वे अपनी सम्पूर्ण बुद्धिमत्ता कोहबर कक्ष में आकर खो दिये हों। इस प्रकार वहाँ विभिन्न प्रकार से हास्य–परिहास हो रहा था। कोहबर भवन के सुख व सामग्री का कौन वर्णन कर सकता है जहाँ श्रीरामजी महाराज व श्रीसीताजी दूल्हा दुलहिन बनकर विराजे हुए हैं।

सिद्धिकुँअरि अलवेली सरहज, लक्ष्मीनिधि प्रिय वामा ।
पकड़ि राम कर हँसि प्रिय बोली, सुनहु प्राण अभिरामा ॥
ननँद हमार व्याह ननदोई, भये तुमहुँ बड़ भागी ।
नेंग हमार देहु प्रिय लालन, कहहु वचन अनुरागी ॥

अनन्तर श्री राम जी महाराज की अलबेली श्याल वधू श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रिय वल्लभा श्री प्रसिद्धि कुँअरि जी ने श्री राम जी महाराज का कर कमल पकड़ कर हँसते हुए कहा– हे प्राणाभिराम! आप हमारी ननँद श्री सिया जी से विवाह कर हमारे ननदोई व अत्यन्त बड़भागी बन गये हैं अतः हे प्रिय लाल साहब! आप प्रेम पूर्वक वाणी का विनियोग कर हमारा नेग प्रदान कर दीजिये।

राम कहा माँगहुप्रिय प्यारी, जो मन होय तुम्हारो ।
पतिसह माँग लियो सिधि अपनो, अविरल प्रेम प्रसारो ॥
राम मनहिंमन सिधि अति भाई, लक्ष्मीनिधि अनुकूला ।
आपन सरवस दियो हृदय महँ, कर दिय मंगल मूला ॥

श्री राम जी महाराज ने कहा– हे प्यारी कुँअर वल्लभे! आप अपने मन की प्रिय वस्तु माँग लीजिये तब श्री सिद्धि कुँअरि जी ने अपने प्राण वल्लभ श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित श्री राम जी महाराज के चरणों का सघन प्रेम विस्तार माँग लिया। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सदैव अनुकूल रहने वाली श्री सिद्धि कुँवरि जी श्री राम जी महाराज के मन को अत्यधिक प्रिय लगीं। प्रभु श्री राम जी महाराज ने अपने हृदय में अपनी सरहज श्री सिद्धि कुँअरि जी को अपना सर्वस्व प्रदान कर दिया एवं मंगल स्वरूप बना दिया।

दो०–कोहवर आनन्द जय भयो, बुधि वानी गम नाहिं ।
उमा रमा शारद शची, खोई अपने काहिं ॥४१४॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हें कि श्री राम जी महाराज के कोहवर–भवन में जिस प्रकार का आनन्द हुआ उसे वर्णन करने की सामर्थ्य मेरी बुद्धि व वाणी में नहीं है क्योंकि वहाँ पर तो श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी, श्री सरस्वती जी और श्री शची जी भी स्वयं को भूल गयी थीं।

यहि प्रकार सियराम विवाहा । वासर बीत्यो सहित उछाहा ॥
गुरु श्रुति सम्मत के अनुसारी । कोहवर वसे राम दिन चारी ॥

इस प्रकार श्री सीताराम जी के विवाह का दिन आनन्दपूर्वक व्यतीत हो गया तब श्रुतियों की सम्मति व श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से श्री राम जी महाराज चार दिन के लिए कोहबर भवन में निवास किये।

सहित सिया व्रत संयम लीन्हे । वसहिं किशोर सबहिं सुखदीन्हे ॥
सिद्धि कुँअरि सरहज युत सखियाँ । राम सिया सेवैं हिय रखियाँ ॥

अवध राज किशोर श्री राम जी महाराज अपनी प्रियतमा श्री सीता जी सहित संयम पूर्वक व्रत धारण किये हुए सभी को सुख प्रदान कर वहाँ निवास कर रहे थे व उनकी श्यालवधू श्री सिद्धि कुँवरि जी अपनी सखियों सहित श्री सीतारामजी को हृदय में वसाये हुए सेवा कर रही थीं।

मातु सुनयना सरहज सारी । जोगवहिं राम नयन अनुहारी ॥
पुनि बहु विधि नित कुँअर सुजाना । करहिं राव सह प्रिय सनमाना ॥

अम्बा श्री सुनयना जी, उनकी सरहजें व सालियाँ श्री राम जी महाराज की नेत्रों के समान सम्हाल करती थीं पुनः परम सुजान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री जनक जी महाराज सहित उनका नित्य बहुत प्रकार से प्रियकर सन्मान किया करते थे।

रामहुँ प्रीति रीति रस पागे । रहहिं क्रिया हित अति अनुरागे ॥
रात गयी सब बीति विवाहा । भयो बिहान भरो उत्साहा ॥

श्री राम जी महाराज भी प्रीति, रीति व रस में डूबे हुए वैवाहिक क्रिया का सम्पादन करने हेतु अत्यन्त अनुराग पूर्वक कोहबर भवन में निवास कर रहे थे। उस दिन सम्पूर्ण रात्रि वैवाहिक कार्यक्रम में ही व्यतीत हो गयी और उत्साह परिपूर्ण प्रातःकाल आया।

दो०—दुहुँ समाज होवति सदा, पंच शब्द धुनि सोह ।
युग समुद्र कल्लोल जनु, लेवै मुनि मन मोह ॥४१५॥

दोनों ही समाज (मैथिल व अवध) में सदैव आनन्द परिपूर्ण पंच ध्वनियों (जय ध्वनि, बन्दी ध्वनि, वेद ध्वनि, मंगल गान व नगाड़ों की ध्वनि) का शोर होता रहता था जैसे अवध व मिथिला पक्ष रूपी दो समुद्र आनन्द पूर्वक किलोल करते हुये मुनियों के मन को भी मोहित किये ले रहे हों।

पुनि बहु विधि श्री जनक भुआरा । करवायी जेवनार तयारा ॥
कुँअरहिं भेजि बरात बोलाई । आये दशरथ सबहिं लिवाई ॥

पुनः श्री जनक जी महाराज ने विविध प्रकार से रसोई (भोज सामग्री) तैयार करवा कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को भेज बारात को बुलाया तब सभी बारातियों को लिये हुए चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज आ गये।

परम प्रेम छाके निमिराजा । मिले सबन कहँ सुठि सुख साजा ॥
निज कर कमल मुनिन पग धोये । दशरथ पाँव कुँअर सुख मोये ॥

श्री विदेह राज जी महाराज सभी से प्रेम रस में छके हुए सुन्दर सुखपूर्वक भेंट किये तथा अपने हाथों से उन्होने सभी मुनियों के चरण कमलों को धोया। पुनः सुख में समाये हुए कुँवर श्री

लक्ष्मीनिधि जी ने चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के चरणों को प्रच्छालित किया।

पिता पुत्र लखि भाव सुहावा । सकल बराती बहु सुख पावा ॥
सबके सादर पाँव धुवायी । बैठाये बरात सुख छायी ॥

पिता व पुत्र (श्री विदेहराज जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी) दोनों के सुन्दर भावों को देखकर सभी बरातियों ने अत्यधिक सुख प्राप्त किया। इस प्रकार आदरपूर्वक सभी के चरण धुलाकर उन्होंने सुखपूर्वक बारात को बिठा दिया।

मखमल बिछे सुपीढ़न ऊपर। बैठी सब बरात सुख चूपर ॥
स्वर्ण पात्र जल भरे सुहाये। सबके दहिने ओर धराये ॥

मखमल बिछे हुए सुन्दर पीढ़ों पर सुख में सनी हुई सम्पूर्ण बरात बैठ गयी तब जल से भरे हुए सुन्दर स्वर्ण के जल पात्र सभी के दाहिनी ओर रखवा दिये गये।

दो०–तब सुआर मणिथार लै, परसहिं अति हरषाय ।
सूपोदन प्रथमहिं दिये, छोड़ि सुघृत सुख छाय ॥४१६॥

तदनन्तर रसोइये अपने हाथ मे मणियों के थाल लेकर अत्यन्त हर्षित हो व्यंजन परोसने लगे, सर्व प्रथम उन्होंने सुखपूर्वक चावल व दाल सुन्दर घी सहित परोसा।

षटरस भोजन चार प्रकारा । इकइक पुनि बहुँ भाँति अकारा ॥
मधुर सरस शुचि सुखद सुवासे । परुसे मुदित सुआर सुधा से ॥

छः प्रकार के (मीठे, चरपरे, खट्टे, कटु, नमकीन व कषाय) रसों से परिपूर्ण चारों प्रकार (चर्व्य (चबाकर पाने वाले), चोस्य (चूसने वाले), लेह्य (चाटने वाले) व पेय (पीने वाले) तथा एक–एक प्रकार में, कई आकार व प्रकार के सुस्वादु, रस पूर्ण, पवित्र, सुखप्रद तथा सुवासित अमृत के समान व्यंजनों को रसोइयों ने परोसा।

विविध भाँति पकवान सुहाये। दूध दही अचार मन भाये ॥
परसि हुलास हाथ पुनि जोरे। जनकहुँ पावन हेतु निहोरे ॥

इस प्रकार विभिन्न प्रकार के सुन्दर पकवान तथा दूध, दही व अचार आदि मन को रुचिकर लगने वाले पदार्थ उल्लास पूर्वक परोस कर रसोइयों ने हाथ जोड़ पाने की प्रार्थना की, श्री जनक जी महाराज ने भी भोजन आरोगने हेतु निवेदन किया।

पंच कवल करि सकल बराता । जेवन लगी मुदित मन गाता ॥
जेवत जानि सुमैथिल नारी । गारी देन लगीं सुखकारी ॥

तब पंच कवल अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान व समान नामक पंच प्राणों के लिये पंच आहुतियाँ देकर सम्पूर्ण बारात मन व शरीर से आनन्दित हो भोजन करने लगी। बारात को भोजन करती हुई जानकर मिथिलापुरी की स्त्रियाँ सुख प्रदायिनी गालियाँ (ज्योनार गीत) गाने लगीं।

नारि पुरुष लै नाम सुगावैं। पावन हार प्रमोदहिं पावैं ॥
दशरथ राउ मुदित मन होहीं। हँसहिं समाज सहित सुख जोहीं ॥

वे स्त्रियाँ भोजन करने वाले पुरुषों के नाम ले लेकर सुन्दर गारियाँ गा रही थीं जिसे सुन सुनकर वे आनन्द प्राप्त कर रहे थे। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज तो मन में अत्यन्त ही प्रसन्न हो रहे थे तथा ससमाज सुख प्राप्त कर हँस रहे थे।

दो०—वीणा वेणु मृदंग डफ, वाद्य बजावहिं नारि ।
मधुर मधुर प्रिय गारि दै, बढ़ई आनन्द धारि ॥४१७॥

श्री जनक पुरी की नारियाँ वीणा, बाँसुरी,मृदंग तथा डफ आदि वाद्य बजाती हुई मधुर–मधुर प्रिय जेवनार गीत (गारी) गाकर आनन्द के प्रवाह को विवर्धित कर रहीं थी।

रस रस पावत विहँसि बराती । सुनत गारि नहिं होहि अघाती ॥
भोजन बीच महा रस छायो। पुनि पुनि परस सुआर सुहायो ॥

बरातीजन धीरे–धीरे हँस–हँस कर भोजन कर रहे थे तथा गारी–गीत सुन सुनकर तृप्ति नहीं पा रहे थे। इस प्रकार भोज के मध्य महान आनन्द छाया हुआ था तथा रसोइये बार–बार सुन्दर व्यंजन परोस रहे थे।

लेहिं और पुनि औरहुँ लेई। शब्द सुनात प्रेम रस देई ॥
सो सुख वरणि लहौं नहिं पारा। दीन हीन मति मंद गँवारा ॥

हमारे सद्‌गुरु देव भगवान स्वाती श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–लीजिये, और भी लीजिये, इस प्रकार का प्रेम भरा हुआ रस प्रदायक शब्द भोजन के बीच सुनाई पड़ रहा था, मैं दीन, हीन, मंद–बुद्धि तथा गँवार जीव उस सुख का वर्णन कर पार नहीं पा सकता हूँ।

भोजन भयो याहि विधि भाता। देखत सुनत कहत सुखदाता ॥
अँचवन करि पुनि पान सुपारी । पाई सकल बरात सुखारी ॥

इस प्रकार देखने, सुनने व कहने में सुख प्रदायक सुन्दर भोज सम्पन्न हुआ तथा सम्पूर्ण बारात ने आचमन कर सुखपूर्वक पान व सुपाड़ी प्राप्त की।

चले हरषि दशरथ जनवासे। बजत वाद्य बहु कौतुक भासे ॥
जनकहुँ बोलि घराती लीने। भोजन किये सबहिं सुख भीने ॥

तदुपरान्त चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज हर्षित हो जनवास गृह चल दिये, उनके जनवास जाते समय साथ में बहुत से बाद्य बज रहे थे तथा खेल–तमासे हो रहे थे। पुनः श्री जनक जी महाराज ने सभी घरातियों को बुलाया व सभी सुख में समाये हुए भोजन प्राप्त किये।

दो०—साँझ समय सानन्द नृप, निमिकुल मणि अवतंस ।
निज समाज लै हर्ष युक्त, गे जनवास प्रशंस ॥४१८॥

सायंकाल निमिकुल मुकुट–मणि श्री जनक जी महाराज आनन्द पूर्वक अपनी समाज को

लेकरहर्ष में भरे हुए बारात की प्रशंसा (शिष्टाचार) करने के लिए जनवास गृह गये।

देखत दशरथ हृदय जुड़ायो । मिले जनक कहँ उर लपटायो ॥
दुहुँ समाज हिय आनँद भारी । शिष्टाचार भयो सुखकारी ॥

उन्हें देखते ही श्रीदशरथजी महाराज का हृदय शीतल हो गया और वे श्रीजनकजी महाराजको हृदय लगा कर भेंट किये। दोनों समाज (मैथिल व अवध) के हृदय में उस समय महान आनन्द छा गया इस प्रकार अत्यन्त सुखकारी शिष्टाचार प्रारम्भ हुआ।

इक एकन की करत प्रशंसा । वरणत भाव विभव दुख ध्वंसा ॥
दुहुँ समाज बैठी जनवासा। वरषहिं सुमन सुदेव सुवासा ॥

वे परस्पर में बड़ाई करते तथा सुखकारी भाव व वैभव आदि का वर्णन करते थे। दोनों समाज (बरात व घरात) को जनवास गृह में विराजी हुई देखकर देवता सुगन्धित फूलों की वर्षा करने लगे।

हनत दुन्दुभी लखि लखि भेवा । जय जय कहहिं करहिं जनु सेवा ॥
दान मान विनती बहु कीनी । जनक सप्रेम भाव भर भीनी ॥

देवता श्री दशरथ जी महाराज व श्री जनकजी महाराज के पारस्परिक भावों को देख देखकर दुन्दुभी बजाते हुए जय जयकार कररहे थे मानों उनकी भाव पूर्वक सेवा कर रहे हों। पुनः श्री जनक जी महाराज ने प्रेम पूर्वक भाव में भरकर विविध प्रकार से दान व मान प्रदान कर उनकी मनुहार की।

दशरथ कृपा पाइ सनमाना । लहि आयसु पुनि भूप सुजाना ॥
आयउ भवन समेत समाजा । वर कन्यहिं लखि सुख सों भ्राजा ॥

आदरपूर्वक अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज की कृपा व आज्ञा प्राप्त कर परम सुजान श्री जनकजी महाराज ससमाज अपने महल आ गये तथा दूलह–दुलहिनों को देख–देखकर सुखपूर्वक सुशोभित होने लगे।

दो०–सुख समेत यहि भाँति दोउ, मिथिला अवध समाज ।
छन छन नव आनँद मगन, भये सकल कृत काज ॥४१९॥

इस प्रकार मिथिला व अवध युगल समाज सुखपूर्वक प्रत्येक क्षण नवीन आनन्द में मग्न था तथा वहाँ के सभी लोग पूर्ण काम हो गये थे।

राम रमे कोहवर घर माहीं। भाइन सहित भूलि सब काहीं ॥
अष्टयाम नित सेवा करई । सिद्धि सखिन सह आनँद भरई ॥

श्री राम जी महाराज सभी कुछ भूलकर अपने भ्राताओं सहित कोहवर भवन में रमें हुए थे वहाँ उनकी श्याल वधू श्री सिद्धि कुँअरि जी आनन्दपूर्वक अपनी सखियों सहित आठोयाम उनकी नित्य सेवा करती थीं।

शुचि संगीत चरित चिद चौपर । हास विलास होत सुख दौकर ॥
राम लहहिं सुख विविध उपाया । करै सोइ लक्ष्मीनिधि जाया ॥

कोहवर भवन में पवित्र संगीत, चिदलीला (भगवद्–भागवत लीलाभिनय), चौपड़ तथा सुख प्रदायक हास्य–विनोद होता रहता था। श्री राम जी महाराज सुख प्राप्त करें इस हेतु श्री लक्ष्मीनिधि वल्लभा श्रीमती सिद्धि कुँवरिजी वहाँ अनेकों प्रकार के उपाय करती रहती थीं।

रामहिं हरषि स्वयं हरषाती । जाहिं पलक सम दिन अरुराती ॥
यहिं विधि वसत चौथ दिन आवा । चौथी कृत्य जाहि श्रुति गावा ॥

श्री सिद्धिकुँअरि जी श्री राम जी महाराज को हर्षित कर स्वयं हर्षित होतीं थी। इसप्रकार पलक झपकने के समान वहाँ दिन व रात व्यतीत हो रहे थे। श्री राम जी महाराज को कोहवर भवन में निवास करते हुए चौथा दिन आ गया जिसे श्रुतियों ने चौथी–कृत्य का दिवस कर गायन किया है।

बहु विधि उत्सव महिप मनाई । दुहुँ समाज सुख साज सजाई ॥
निशा प्रवेश समय जब भयऊ। वर दुलहिन मंगल गुरु ठयऊ ॥
चौथी हवन कीन्ह हरषायी। वर कन्या जस गुरुन बतायी ॥

उस दिन श्री विदेहराज जी महाराज ने सुख–संवर्धक वस्तुयें सजाकर दोनों समाज में विविध प्रकार से उत्सव मनाया और जब रात्रि आने का समय (संध्याकाल) हुआ तब श्री गुरुदेव जी ने दूलह–दुलहिनों का मंगलानुशासन किया एवं श्री गुरुदेव जी की आज्ञानुसार नव दूलह–दुलहिन श्री सीताराम जी ने हर्षित होकर चौथी हवन किया।

दौ०–चौथी कृत्य कराय गुरु, हरषित आयसु दीन ।
कल प्रभात पितु पद ढिगहिं, दूलह जाँय सुखीन ॥४२०॥

श्री गुरुदेव जी ने चौथी कृत्य (वर–दुलहिन के कंकण आदि खोलने के कृत्य) पूर्ण कराकर हर्षपूर्वक आज्ञा प्रदान की कि– कल सबेरे दूलह सुखपूर्वक अपने पिताजी के चरणों के समीप जा सकते हैं।

भो प्रभात प्रभु नित्य निबाहे । बहुरि हृदय पितु दरशन चाहे ॥
हरदी उत्सव नेम निबाही। प्रभु पयान तिय भाव समाहीं ॥

सबेरा होने पर प्रभु श्रीरामजी महाराज ने नित्य क्रियाओं का निर्वाह किया पुनः वे हृदय मे श्रीमान् पिताजी के दर्शन की कामना किये तब कोहबर कृत्य की विधि के अनुसार हरिद्रोत्सव मनाया गया। अनन्तर प्रभु श्रीरामजी महाराज का प्रस्थान समझकर सभी मैथिल नारियाँ भाव विभोर हो गयीं।

सविधि पवाय सुभूषण भूषी। मातु सुनैना प्रेम अदूषी ॥
विविध प्यार करि हृदय हुलासा। होत मगन मन सब रनिवासा ॥

विशुद्ध प्रेम की प्रतिमूर्ति अम्बा श्री सुनैना जी ने प्रेम व सुखपूर्वक विधिवत श्रभी राम जी महाराज को भोजन पवा कर सुन्दर आभूषणों से आभूषित किया तथा उल्लसित हृदय हो उनका विभिन्न प्रकार से उनका प्यार किया। उस समय सम्पूर्ण रनिवास उन्हें देख–देखकर मन मग्न हो रहा था।

भेंट विविध विधि नेंग अमीती। लहे राम लखि प्रेम प्रतीती ॥
जनक सजाये तब हय पाँचा । श्याम कर्ण देखत मन राँचा ॥

अम्बा श्री सुनैना जी सहित सम्पूर्ण रनिवास के सुन्दर प्रेम व प्रसन्नता को समझकर श्री राम जी महाराज ने नेंग में विभिन्न प्रकार की असीमित उपहार सामग्री ग्रहण की। तदुपरान्त श्री जनक जी महाराज ने पाँच श्याम कर्ण अश्व, जिन्हें देखते ही मन प्रसन्न हो जाता था, सजवा दिये।

कुँअरहिं कह हय राम चढ़ायी । देहु तुरत पितु पहँ पहुँचायी ॥
सुनत कुँअर अति भये सुखारी । हयन चढ़ाये दूलह चारी ॥
आपहुँ चढ़े सखन सँग लीने । जे गुण शील प्रेम परवीने ॥

तदनन्तर श्री जनक जी महाराज ने कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी से कहा कि– श्रीरामजी महाराज को अश्व में बिठाकर शीघ्र ही उनके पिता श्री मान् दशरथ जी महाराज के समीप पहुँचा दें, जिसे सुनते ही कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यधिक सुखी हुए और चारो दूलहों को अश्वों में चढ़ाकर स्वयं गुण निधि, शील निधि व प्रेम निधि आदि प्रवीण सखाओं सहित अश्वों में सवार हो गये।

दो०– सबन बीच दूलह लसत, नाचत जात तुरंग ।
सम वयस्क सबही फबत, देखत बनत सुढंग ॥४२१॥

चारों दूलह श्री रामजी, श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण जी व श्री शत्रुघ्न जी, सभी राजकुमारों के मध्य सुशोभित हो रहे थे तथा उनके घोड़े नाचते हुए चल रहे थे। वे सभी समान अवस्था वाले होने से अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे, उस समय उनके रंग–ढंग देखते ही बनते थे।

छं०– सोहत वर हय श्याम राम को, शारद वरणि न ताहीं ।
जीन जराव मोति लड़ि झूलत, ललित लगाम सुहाहीं ॥
गल मुख पद शुभ भूषण भूषित, चम चम चमक सुभाया ।
मनहुँ मदन हय रूप विराजित, परसन प्रभु ललचाया ॥

श्याम वर्ण वाले नव दूलह श्रीरामजी महाराज का अश्व इतना सुशोभित हो रहा था किउसका वर्णन श्रीसरस्वतीजी भी नहीं कर सकती हैं। उसके जड़ाऊ जीन में मोतियों की लड़ियाँ झूल रही थी तथा सुन्दर लगाम सुशोभित हो रही थी। उसकी गर्दन, मुख व पैर शुभ आभूषणों से सज्जित व सहज ही चम–चम चमक रहे थे मानों स्वयं कामदेव ही अश्व बन कर प्रभु श्रीरामजी महाराज का स्पर्श पाने को लालायित हो रहा हो।

हयहिं नचावत अति थिरकावत, दूलह राम सुवेषा ।
अमित काम वारत तिन ऊपर, सिहरा मौर धरेशा ॥
चारहु दूलह जात सुसोहैं, सह लक्ष्मीनिधि सारा ।
हास विलास होत मग मातहिं, रसहिं सबै निमिवारा ॥

श्रीरामजी महाराज सुन्दर दूलह वेष धारण किये, शिर में मनोहारी मौर तथा सुन्दर सेहरा लगाये हुए अश्व को अत्यधिक थिरका कर नचाते हुए चल रहे थे, उनकी शोभा पर असीमित कामदेव न्योछावर हो रहे थे। चारों दूलह अपने प्रिय श्याल कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ प्रस्थान करते

हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे, मार्ग में हास्य विनोद हो रहा था जिसे सुन–सुनकर सभी निमिवंशी कुमार प्रेम रस में सराबोर हो जाते थे।

देखि देखि सुर होहिं सुखारी, वरषहिं बहु विधि फूला ।
जय जय कहत प्रेम रस पागे, दुन्दुभि हनि अनुकूला ॥
देखहिं चढ़ी अटारिन्ह नारी, भरी प्रेम रस बाँकी ।
रामहिं कहहिं सुनाय सुदूलह, जात बहिन रक्षा की ॥

यह सब देख देखकर देवता सुखी होकर, बहुत प्रकार से पुष्प वरषाते थे एवं प्रेम रस में पगे हुए जै जैकार कहते हुए समयानुकूल दुन्दुभी बजा रहे थे। मैथिल पौरांगनायें अट्टालिकाओं में चढ़ी हुई प्रेम रस में सनी श्री रामजी महाराज को प्रस्थान करते देख, उन्हें सुना कर कह रही थीं कि ये दूल्हा सरकार अपनी बहन की रक्षा करने के लिए जा रहे हैं।

सुनत राम सकुचत हिय हर्षत, मैथिल हँसत सुभाया ।
यहिं विधि करत विनोद सबन सुख, पहुँचे वास सुहाया ॥
राम आगवन जानि सुवासहिं, पंच शब्द धुनि छायी ।
उतरि कुँअर सब कुँअर उतारे, हरषण हिय हरषायी ॥

मैथिल ललनाओं की प्रेमोक्ति सुनकर श्री राम जी महाराज संकुचित हो हृदय में हर्षित होते थे तब उन्हें देख सभी मैथिल कुमार स्वाभाविक ही हँसने लगते थे। इस प्रकार सुखपूर्वक हास्यविनोद करते हुए सभी राजकुमार सुन्दर जनवास गृह पहुँच गये। जनवास गृह में श्रीरामजी महाराज का आगमन जानकर पंच शब्दों की ध्वनि छा गयी तदुपरान्त कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी हर्षित–हृदय अश्व से उतर, हर्ष प्रपूरित हो सभी राजकुमारों को अश्वों से उतार लिये।

दो०–नयन विलोके चार सुत, दशरथ अति सुख पाय ।
करत प्रणामहिं हर्षि हिय, लीन्ह ललकि लपटाय ॥४२२॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज अपनी आँखों से अपने चारों पुत्रों को देखकर अत्यधिक सुख प्राप्त किये तथा प्रणाम करते हुए अपने पुत्रों को हर्षित हो ललक कर हृदय से लिपटा लिये।

रामहिं लखि सब सभा समाजा । मन प्रमोद तन पुलकि विराजा ॥
गये मातु पहँ चारहु दूला । भई मगन सोऊ सुख मूला ॥

श्री राम जी महाराज को देखकर सभा में उपस्थित सम्पूर्ण समाज मन में आनन्दित तथा पुलकित शरीर हो गया। पुनः चारो दूलह सरकार राजमाताओं के समीप गये जिन्हें देखकर वे भी प्रेममग्ना व सुखस्वरूपा हो गयीं।

उत्सव भयो महा रनिवासा । नृत्य गान वर वाद्य सुभासा ॥
सहित समाज मातु पितु चयना । रामहिं निरखत भरि भरि नयना ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज के रनिवास में महान उत्सव हुआ तथा सुन्दर नृत्य, गान व

बाद्य बजाये गये। उस समय सम्पूर्ण समाज सहित मातायें व श्रीमान् पिताजी श्रीरामजी महाराज का आनन्दपूर्वक भर नेत्र दर्शन कर रहे थे।

ता दिन गहि गुरु आयसु राजा । बैठे मुनिन समेत समाजा ॥
चार लाख सुरभी शुभ आयी । चारु सवत्सा सुठि सुखदायी ॥

उस शुभ दिवस में गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी की आज्ञा प्राप्त कर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज मुनियों सहित समाज में विराज गये तब बछड़ों सहित सुन्दर, शुभ व सुख प्रदायिनी चार लाख गायें वहाँ लायी गयीं।

हृष्ट पुष्ट सब बहु दुधवारी । अति नवीन शुचि सूध तयारी ॥
स्वर्ण श्रृंग अरु खुर मढ़वाई । रत्न खचित सुवरण पट भाई ॥

जो स्वस्थ सुन्दर, अति दुग्धा, अत्यन्त नवीन, पवित्र शान्त स्वभाव वाली व दूध देने के लिये तैयार थीं। उन सभी के सींग व खुर स्वर्ण से मढ़वाये हुये थे तथा वे सुन्दर रत्न जड़ित सोने के वस्त्र धारण किये सुशोभित हो रही थीं।

दो०–दशरथ नृप हिय हर्षयुत, सब मुनि विप्रन पूज ।
वस्त्राभूषण सुठि सुभग, पहिरायो मन कूज ॥४२३॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने हर्षित हृदय, प्रसन्न मना सभी मुनियों व ब्राह्मणों की पूजा कर, सुन्दरतम वस्त्राभूषण धारण कराया–––

स्वर्ण दोहनी सहित भुआरा । किय गोदान सुतन हितकारा ॥
औरहु मणि गण वसन सुवरणा । यथा योग अरपे मुनि चरणा ॥

–––तथा अपने पुत्रों के कल्याण के लिए स्वर्ण की दोहनी (दुग्ध–पात्र) सहित गो दान किया तथा और भी मणि, वस्त्र तथा स्वर्ण आदि सामग्री उन्होने यथा योग्य मुनियों के चरणों में अर्पित की।

सबहिं कहहिं रघुवर कल्याना । सुनत नृपति मन मोद महाना ॥
सब प्रकार मुनिवर हरषाने । भाव प्रेम औदार्य अघाने ॥

उस समय सभी मुनि व विप्रगण कह रहे थे कि रघुनन्दन श्री रामजी महाराज का सर्वदा मंगल हो जिसे सुनकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के मन में महान आनन्द हो रहा था। इस प्रकार सभी मुनिगण भली प्रकार से हर्षित हुए तथा चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के भाव, प्रेम व उदारता को`खकर संतृप्त हो गये।

मागध सूत बन्दि नट भाटा । मन भावत पाये धन ठाटा ॥
नेगी नेग पाइ हुलसाने । ढोवत धनहिं अधिक अलसाने ॥

उस समय श्री चक्रवर्ती जी महाराज से मागध, सूत, बन्दी, नट तथा भाट जनों ने मनचाही बहुत सी धन राशि प्राप्त की। इस प्रकार सभी नेंगहारी अपने–अपने नेग पाकर उल्लसित हुए तथा धन की प्रचुरता से उसे ढोने में अत्यधिक आलस्य कर रहे थे।

याचक कीन्ह अयाचक राई । अति उदार नृप यहै सुनाई ॥
सब कर सब विधि आस पुजाया । दशरथ वासहिं वसैं सुभाया ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने याचकों (मँगनों) को अयाचक (पूर्णकाम) बना दिया था। उस समय सर्वत्र यही सुनाई पड़ रहा था कि अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज अत्यन्त ही उदार हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जनों की सभी प्रकार से इच्छा पूरी करते हुए चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज जनवास गृह में सहजतया निवास कर रहे थे।

दो०—यथा अवध नित नृप वसत, सुत वित नारि समेत ।
मिथिला तथा विराजहीं, सुख सह शान्ति निकेत ॥४२४॥

चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज जिस प्रकार श्री अयोध्या पुरी में पुत्रों व रानियों सहित वैभव सम्पन्न हो निवास किया करते थे उसी प्रकार श्री मिथिला पुरी में सुख व शान्ति पूर्वक जनवास गृह में विराज रहे थे।

सुदिन सुअवसर मंगल आवा । होय राम सिय मातु मिलावा ॥
भेजे कुँवर गये जनवासे । बैठे शीष नाइ नृप भाषे ॥

आचार्यो ने विचार किया कि— अब वह मंगलमय शुभ दिन व शुभ समय आ गया है, जब श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी व श्री सीता जी की अम्बा श्री सुनैना जी का मधुर मिलाप हो जाये। इस हेतु श्री विदेहराज जी द्वारा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी जनवास गृह भेजे गये और वे चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज को सिर झुका प्रणाम किये व आज्ञा पाकर बैठ गये।

भूप प्यार शुचि सादर कीना । पितु सँदेश कह कुँअर प्रवीना ॥
राम मातु दर्शन मम माता । आजु प्रतीक्षा कर हरषाता ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का आदरपूर्वक पवित्र प्यार किया तब परम दक्ष कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने पूज्य पिता श्रीमान् जनक जी महाराज का संदेश निवेदन करते हुये कहा— हे श्री महाराज! आज हमारी अम्बा जी श्री राम जी महाराज की अम्बाओं के दर्शन की हर्षित होकर प्रतीक्षा कर रही हैं।

आयसु होय तो जाउँ लिवाई । सुनत नृपति अन्तःपुर आई ॥
सबहिं जान कहि कीन्ह तयारी । सह रनिवास मातु पगु धारी ॥

यदि आप श्री की आज्ञा हो तो मैं इन्हे लिवा कर ले जाऊँ। कुमार की बातें सुनते ही चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज अपने अन्तःपुर में जाकर सभी महारानियों को आज्ञा दे, श्री सुनैना सदन जाने का प्रबन्ध करवा दिये और रनिवास सहित अम्बा श्री कौशिल्या जी ने प्रस्थान किया।

रतन पालकी सबहिं विराजी । कुँअर लिवाय चले सुख साजी ॥
रक्षक सेवक दासी दासा । बाजत विविध वाद्य सुख वासा ॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी अम्बाओं को रत्ननिर्मित शिविकाओं में बिठा कर सुखपूर्वक ले चले। उनके साथ रक्षक, सेवक, दासी व दास आदि सभी चल रहे थे तथा विविध प्रकार के सुखकर

वाद्य बज रहे थे।

दो०—सुख सह विविध बनाव युत, अन्तःपुर के पास ।
लक्ष्मीनिधि सह पहुँचिगो, श्री दशरथ रनिवास ॥४२५॥

इस प्रकार विभिन्न प्रकार की साज सामग्री से युक्त सुखपूर्वक चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराज का रनिवास कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ श्री जनक जी महाराज के अन्तःपुर के समीप पहुँच गया।

सुनत सुनैना हिय हर्षानी । आरति करति मिली सनमानी ॥
राम मातु सिय मातु मिलापा । वरणि न जाय सो प्रेम प्रतापा ॥

यह समाचार सुनते ही अम्बा श्री सुनैना जी हृदय में हर्षित हो गयीं तथा आदरपूर्वक उनकी आरती उतार भेंट की। हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि—श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी की अम्बाओं के मिलन, प्रेम व बड़प्पन का वर्णन नहीं किया जा सकता।

युग रनिवास परस्पर मीला । प्रीति रीति सुठि सुन्दर शीला ॥
पुनि अनुपम आसन बैठारी । षोडस पूजेव रानि सुखारी ॥

दोनों रनिवासों का सुन्दर प्रेमपूर्ण विधि से पारस्परिक मिलन हुआ पुनः सभी को अनुपमेय आसनों में बिठाकर महारानी श्री सुनैना जी ने सुखपूर्वक षोडसोपचार पूजन किया।

राम सिया के विविध चरित्रा । कहहिं सुनहिं मन करन पवित्रा ॥
सीय मातु सबहिन कर जोरी । व्यंजन विविध पवाय बहोरी ॥

वे सभी अपने मन को पवित्र करने के लिए श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी के विभिन्न प्रकार के चरित्रों को कह व सुन रही थीं। पुनः श्रीसीताजी की अम्बा श्रीसुनैनाजी ने सभी को हाथ जोड़ प्रार्थना कर विभिन्न प्रकार के व्यंजन पवाये।

बीड़ा दै शुचि गंध लगाई । विविध भेंट अरपी सुख छाई ॥
वस्त्र अमोलक मनि गन नाना । भूषण साज अनेक विधाना ॥

उनहेने ताम्बूल देकर पवित्र इत्र लगाया व सुखपूर्वक विभिन्न प्रकार की भेंट अर्पित की। बहुमूल्य वस्त्र, विभिन्न प्रकार के मणि—माणिक आभूषण तथा अनेक प्रकार की वस्तुयें सजाकर———

दो०—अलग अलग सब कहँ दिये, सीय मातु सुखदान ।
दशरथ तिय भइँ नेह वश, भाव प्रेम लखि मान ॥४२६॥

श्री सीताजी की अम्बा श्री सुनैना जी ने श्री राम जी महाराज की सभी अम्बाओं को सुखपूर्वक अलग—अलग भेंट प्रदान की। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की महारानियाँ अम्बा श्री सुनैना जी के भाव, प्रेम व आदर को देखकर उनके प्रेम के वशीभूत हो गयीं।

बोली राम मातु सुख छाई । आज भेंट भइ भाग सुहाई ॥
सुनी प्रशंसा राउरि केरी । अधिक लखी निज नयनन हेरी ॥

पुनः श्री राम जी महाराज की अम्बा कौशिल्या जी ने सुखपूर्वक कहा– आज बड़े सौभाग्य से हमारी भेंट हुई है। हमने आपकी जितनी भी प्रशंसा सुनी थी, अपनी आँखों से देखने पर, आज आपको उससे अधिक ही पाया है।

रूप शील गुण धाम सरलता। भगति ज्ञान वैराग निपुनता ॥
राजहिं सम हौ सत सुख सागरि । कुँअरि कुँअर की मातु उजागरि ॥

हे राजकुमारी श्री सीता जी व कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी की परम यशस्विनी अम्बा श्री सुनैना जी! आप रूप, शील व गुणों की धाम, अत्यन्त सरल, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य व निपुणता से युक्त, सुखों की सागरी तथा सत्य ही श्री विदेहराज जी महाराज के समान हैं।

सीय मातु सुनि अतिहिं लजाई। बोलीं तेहिं पद शीष झुकाई ॥
देवि बड़ेन की इहै सुरीती । नीचहुँ नमहिं मान करि प्रीती ॥

श्री राम माता कौशिल्या जी द्वारा की गयी बड़ाई सुनकर श्री सीता जी की अम्बा श्री सुनैना जी अत्यन्त लज्जित हुईं तथा उनके चरणों में शीश झुकाकर बोलीं– हे देवि! बड़ों की यही सुन्दर रीति होती है कि वे अपने से छोटों को भी आदर व प्रेम पूर्वक नमन करते हैं।

जासु कोख भे राम गोसाईं । कस न होय तस शील सुहाई ॥
चिर अभिलाष आज मम पूजी । मो सम भाग्यवन्त नहिं दूजी ॥

पुनः जिनकी कोख से श्रीरामजी महाराज का जन्म हुआ है उनका शील स्वभाव इतना सुन्दर कैसे नहीं होगा। मेरी तो बहुत दिनों की कामना ही आज पूर्ण हुई है अतः मेरे समान भाग्यवान कोई दूसरी नहीं है।

दो०–सब प्रकार पावन भयी, लही बड़ाई देवि ।
राउर गृह सम्बन्ध भो, पूर्ण सुखी पद सेवि ॥४२७॥

हे देवि! मैं सभी प्रकार से पवित्र हो गयी हूँ व मैने महद्‌यश प्राप्त कर लिया है जो आपके घर से हमारा सम्बन्ध हो गया, मैं अब आपके चरणों की सेवा कर पूर्ण सुखी रहूँगी।

दूनहु रानि परस्पर नवहीं । सीय राम मातहिं अस फबहीं ॥
सुदिन सुमंगल बिनु गुरु वानी । सीय दरश नहिं निज मन आनी ॥

वे दोनों महारानियाँ (श्री सुनैना जी व श्री कौशिल्या जी) आपस में एक दूसरे को आदर दे रही थीं, ऐसा स्वभाव श्री सीता जी की अम्बा व श्री राम जी महाराज की अम्बाजी को ही शोभा देता है। श्री कौशिल्या अम्बा जी ने सुदिन, सुमंगल व श्री गुरुदेव जी की आज्ञा बिना अपने मन में श्री सीता जी को देखने का विचार नहीं आने दिया।

यदपि मातु नयना अकुलाते । बिना दरश सुख शान्ति न पाते ॥
तदपि कौशिला धीरज धारी । मनहिं चलन जनवास विचारी ॥

यद्यपि अम्बा श्री कौशिल्या जी के नेत्र अपनी प्रिय पुत्रवधू श्री सीता जी को देखने के लिए आकुल थे और उनके दर्शन बिना वे सुख व शान्ति नहीं प्राप्त कर रही थीं तथापि श्री कौशिल्या जी ने धीरज धारण कर मन में जनवास गृह जाने का विचार किया।

सीय मातु रुचि समुझि सुहाई । कहेव जान निज कुँअर बुलाई ॥
हिलि मिलि सुभग दोउ रनिवासा । भयो प्रेम वश दरशन आशा ॥

तब श्री सीता जी की अम्बा जी ने उनकी इच्छा जानकर अपने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को बुला उन्हें जनवास गृह ले जाने के लिए कहा और सुन्दर दोनों रनिवास (श्री मिथिला व श्री अवध) परस्पर हिल मिल कर पुनः दर्शन की कामना से प्रेम के वशीभूत हो गया।

यथा रीति गृह आवन भयऊ। तथा कुँअर पहुँचावन गयऊ ॥
पहुँचि वास अन्तःपुर माहीं । हिये लगाई रघुवर काहीं ॥

अम्बा श्री कौशिल्या जी का जिस विधि से श्री अम्बा सुनैना जी के भवन में आगमन हुआ था उसी प्रकार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी उन्हें पहुँचाने गये। जनवास गृह के अन्तःपुर में पहुँचकर अम्बा श्री कौशिल्या जी ने श्री राम जी महाराज को गले से लगा लिया।

दो०—सीय मातु को प्रेम शुचि, स्वागत अतिहिं उदार ।
राम मातु भूपहिं कहेउ, भयो यथा व्यवहार ॥४२८॥

पुनः श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी ने श्री सीता जी की अम्बा श्री सुनैना जी के पवित्र प्रेम, अत्यधिक उदारता व स्वागत आदि जिस प्रकार का व्यवहार वहाँ हुआ था उसे चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज से कह सुनाया।

प्रिया वचन सुनि प्रीतिहिं पागे । दशरथ राव अधिक अनुरागे ॥
यहि विधि नित नव उत्सव होई । कहत न बनै समय सुख सोई ॥

अपनी प्रिया, महारानी श्री कौशिल्याजी के वचनों को सुनकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज अत्यधिक अनुराग में भर कर प्रीति में पग गये। हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– इस प्रकार वहाँ नित्य प्रति नवीन उत्सव होते रहते थे जिनके सुख व समय का वर्णन करते नही किया जा सकता।

प्रमुदित मिथिला नगर निवासी । रहहिं सदा देखत सुखरासी ॥
जो सुख मिथिला नगर मँझारा । सो सुख नहिं वैकुण्ठ निहारा ॥

श्री मिथिला पुरी के निवासी आनन्दपूर्वक, सभी सुखों की राशि श्रीरामजी महाराज का सदैव दर्शन करते रहते थे। श्री मिथिला पुरी में उस समय जो सुख प्राप्त हो रहा था वह सुख वैकुण्ठ लोक में भी नहीं देखा गया है।

दशरथ कहुँ कहुँ देखन मिथिला । कबहुँ जाँय जहँ कमला विमला ॥
रथ चढ़ि चारहु ओर सुहाये । देखे शिव मंदिर मन भाये ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज कभी कभी श्री मिथिला पुरी के दर्शन करने जाते तो कभी वे वहाँ पर जाते जहाँ पर श्री कमला जी व श्री विमला जी आदि नदियाँ प्रवाहित हो रही थीं। रथ में सवार हो कर उन्होंने श्री मिथिलापुरी के चारों ओर स्थित सुन्दर मन–भावन शिव मन्दिरों के दर्शन किये।

इष्ट देव लक्ष्मी नारायण । निमिकुल केरे सहज सुभायन ॥
तिन मंदिर देखे रघुराजा । भये मगन मन सहित समाजा ॥

सहज ही सुन्दर श्री लक्ष्मी नारायण जी जो श्री निमिकुल के इष्टदेव हैं उनके मन्दिर का भी चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने दर्शन किया तथा समाज सहित मन–मग्न हो गये।

दो०– मिथिला बसि नृप मुकुट मणि, सह समाज रस बोर ।
जाय जाय बहु तीर्थ वर, देखे चारहु ओर ॥४२९॥

श्री मिथिलापुरी में निवास करते हुए, राजाओं के मुकुटमणि (श्रेष्ठ) चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ससमाज रस में पगे हुए, चारों ओर के बहुत से सुन्दर तीर्थो का जा–जाकर दर्शन किये।

दिन प्रति श्री महिपति महराजा । चाहहिं अवध गवन कृत काजा ॥
जनक बन्धु सह चलब न चाहैं । राखहिं अधिक सनेह उछाहैं ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज पूर्ण काम हो प्रत्येक दिन श्री अयोध्या पुरी जाने की इच्छा करते थे परन्तु अपने भ्राता–सहित श्री जनक जी महाराज उनका प्रस्थान नहीं चाहते थे अतएव उन्हें अत्यधिक स्नेह व आनन्द पूर्वक रोक लेते थे।

नित नवीन सतकार महाना । होवै सुखद न जाय बखाना ॥
कबहुँ भूप कहुँ भ्रातन आँगन । सह बरात बैठहिं नृप पावन ॥

उनका नित्य प्रति नवीन, सुखप्रद तथा महान सत्कार होता था जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कभी चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज श्री जनक जी महाराज के यहाँ तो कभी उनके भ्राताओं के आँगन में बरात सहित भोजन करने के लिए विराजते थे।

नृत्य गान नाटक नित होई । जो हरि संत सुजस से मोई ॥
भगति विराग ज्ञान अरु योगा । कहहिं सुनहिं नित दोउ पुर लोगा ॥

वहाँ भगवद्–भागवतों की कीर्ति से समन्वित नृत्य, गीत तथा नाटक आदि नित्य ही होते थे। दोनों ही पुरियों (श्री मिथिला व श्री अवध) के लोग नित्य प्रति भक्ति, ज्ञान, वैराग्य तथा योग की बातें कहते व सुनते रहते थे।

यहि विधि वासर बीतत जाहीं । जानि न परै सुखद सब काहीं ॥
श्याल भाम कर प्रेम प्रसारा । नित नव सुखहिं बढ़ावन वारा ॥
प्रेम पास फँसि गयी बराता । जान अवध कहि जाय न बाता ॥

इस प्रकार सभी के सुखप्रद दिन ब्यतीत होते जा रहे थे किन्तु किसी को इसका ज्ञान नहीं हो रहा था। श्याल भाम (साले–बहनोई) श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज का प्रेम विस्तार तो नित्य नवीन तथा सुख की परिवृद्धि करने वाला था। वहाँ सम्पूर्ण बारात प्रेम बन्धन में ऐसी फँसी हुई थी कि उनसे श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान की वार्ता कहते तक नहीं बनती थी।

दो०– जानि अधिक अवसेर मन, आवन दशरथ केर ।
सकल प्रजन सन मंत्र लै, मंत्री अवध सुहेर ॥४३०॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के अयोध्यापुरी आगमन में, अधिक विलम्ब जानकर, सभी प्रजावर्ग से सम्मति ले व अपने मन में विचार कर एक मंत्री श्री अयोध्या पुरी से आया।

आय नृपति पद नायो माथा । कही कुशल गवनहिं अब नाथा ॥
तब बसिष्ठ कौशिक सँग लीना । गौतम सुवनहुँ रहे प्रवीना ॥

उस मंत्री ने आकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के चरणों में अपना मस्तक झुका प्रणाम कर कुशल समाचार सुनाया व प्रार्थना की कि हे– नाथ! अब श्री अयोध्या पुरी प्रस्थान किया जाय। तब श्री वसिष्ठ जी महाराज ने श्री विश्वामित्र जी को साथ लेकर जिनके साथ परम दक्ष श्री गौतम नन्दन शतानन्दजी भी थे–––

जाइ जनक कहँ बहु समझायो । भई मकर संक्रान्तिहुँ गायो ॥
भूप अवध अब जाँय नरेशा । हिय हर्षित अस देहु निदेशा ॥

–––श्री जनक जी महाराज के समीप पहुँच, उन्हें बहुत प्रकार से समझा बुझाकर कहा कि– अब तो मकर संक्रान्ति भी हो गयी है अतएव हे राजन! आप हर्षित हृदय हो अनुमति प्रदान करें कि चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज श्री अयोध्या पुरी प्रस्थान करें।

दिन दिन प्रीति पगे यहि भाँती । रहिहैं दशरथ आवत जाती ॥
अवध जानि सुनि जनक विभोरा । मुनि निदेश धरि धीरज थोरा ॥

चक्रवती श्री दशरथ जी महाराज दिनों दिन आप सभी की प्रीति में पगे हुए इसी प्रकार श्री मिथिलापुरी आते जाते रहेंगे। श्री अयोध्या पुरी के प्रस्थान की बात सुनकर श्री जनक जी महाराज विह्वल हो गये परन्तु मुनियों की आज्ञा से किंचित धैर्य धारण किये रहे।

आयसु नाथ शीष कहि मेरे । तुरत बुलायो पुत्रहिं नेरे ॥
भीतर जाय जनावहु एहा । अवध नाथ चह गवनन गेहा ॥

हे नाथ! आप सभी गुरुजनों की आज्ञा शिरोधार्य है, कह कर श्री विदेहराज जी महाराज शीघ्र ही अपने पुत्र श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपने पास बुलाकर बोले कि–अयोध्या पति श्री दशरथ जी महाराज अपने भवन जाना चाहते हैं, यह समाचार अन्तःपुर में दे दीजिये।

दो०– सुनतहिं कुँअर अवाक भे, तन मन सुधि सब भूलि ।
नयनन प्रेम प्रवाह पय, विरह व्यथा हिय हूलि ॥४३१॥

श्री अवध प्रस्थान सुनते ही कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी स्तम्भित हो गये, उन्हे शरीर व मन की सम्पूर्ण स्मृति भूल गई, आँखों से प्रेमाश्रुओं की धारा बहने लगी तथा प्रभु वियोग की पीड़ा उनके हृदय को बेध गयी।

धरणि खसेव प्रिय विरह दबावा। पेखि प्रेम मुनि विस्मय पावा ॥
तब बसिष्ठ कौशिक शिर परसे। कहि प्रिय वचन राम रस सरसे ॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी भूमि में गिर पड़े उन्हें अपने प्रिय श्री राम जी महाराज के विरह ने दबा लिया। उनके प्रेम को देखकर मुनियों ने भी आश्चर्य को प्राप्त किया। तब श्री बसिष्ठ जी व श्री विश्वामित्र जी ने उनका शिर स्पर्शकर श्रीराम रस से सने हुए प्रिय वचन कह कर---

चेत कराय बँधाय सुधीरा। मुनिवर कहेउ जाहु घर वीरा ॥
गये कुँअर माता पग लागी। बोले बचन विरह रस पागी ॥

उन्हें चैतन्य करा, सुन्दर धैर्य देकर मुनिश्रेष्ठ ने कहा– हे निमिकुल प्रवीर! आप भवन को जायें। तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी महल में जाकर अपनी अम्बा श्री सुनैना जी के चरणों में लिपट गये व प्रभु–विरह रस से पगे हुए वचन बोले–

जान चहत अवधेश अगारा। परसौं लगन भली अरु वारा ॥
दाऊ मोहिं तव निकट पठायों। कहन संदेश मातु मैं आयो ॥

हे श्री अम्बा जी! अयोध्या पति श्री दशरथ जी महाराज परसों सुन्दर लग्न व शुभ दिन में अपने भवन जाना चाहते हैं अतः श्री मान् दाऊ जी ने मुझे आपके समीप भेजा है, हे अम्बाजी! मैं यही संदेश कहने के लिए आया हूँ।

सब बिधि अति अभाग अब आई। राम सिया बिनु रहेव न जाई ॥
अस कहि कछु पुनि बोल न आवा। गिरे मातु निज अंकहिं लावा ॥

अब हमारी सभी प्रकार से प्रबल अभाग आ गई है, क्योंकि श्री राम जी महाराज व श्री सिया जू के बिना हमसे रहा नहीं जायेगा। ऐसा कहकर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी आगे कुछ भी न बोल सके तथा समृतिहीन होकर भूमि में गिर पड़े तब श्री अम्बा जी ने उन्हें अपनी गोद में ले लिया।

दो०–करतहिं सुरति वियोग की, गवनत सिगरो ज्ञान।
श्याम सुन्दर लाड़िलि कहत, तलफत विरहा प्रान ॥४३२॥

प्रभु वियोग का स्मरण करते ही उनका सम्पूर्ण ज्ञान जाता रहा तथा हे श्याम सुन्दर, हे श्री लाड़िली सिया जू कहते हुए उनके वियोगी प्राण तडपने लगे।

सुनत मातु जल नयन बहाई। विरह सनी मन धीर बँधाई ॥
सुतहिं बुझावति सुनहु कुमारा। कहति अधीर होय बहु बारा ॥

उनकी बातें सुनते ही अम्बा श्री सुनैना जी नेत्रों से अश्रु बहाने लगीं तथा विरह मग्ना होते हुए भी अपने मन में धैर्य धारण कर अपने पुत्र कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को समझाते हुये बार–बार अधीर हो कहती हैं कि– हे कुमार! सुनिये,---

नारि विरचि जग दया न आई । करै विधी यह रीति सदाई ॥
पुत्रि शोभ गृह श्वसुरहिं जाई । पिता भवन नहिं तथा सुहाई ॥

–––संसार में स्त्रियों की रचना करते समय श्री ब्रह्मा जी को दया नहीं आई और उन्होंने सदैव के लिए ऐसी रीति बना दी कि पुत्री अपने श्वसुरालय में जाकर जिस प्रकार की शोभा प्राप्त करती है पिता के घर में वह उस प्रकार सुशोभित नहीं हो सकती।

अस विचारि सुत धीरज धरहू। देखु हमहिं पवि छाती करहू ॥
मातु वचन सुनि धीरज कीना । गयो स्वगृह मन तन अति खीना ॥

हे लाल! ऐसा विचार कर धैर्य धारण करिये तथा हमें देख कर अपने हृदय को वज्रवत बना लीजिये। श्री अम्बा जी के वचनों को सुनकर वे कुछ धैर्य धारण किये तथा मन व शरीर से अत्यन्त दुखी हो अपने भवन प्रस्थान कर गये।

देखत सिद्धि आइ पद लागी । कुँअरहिं निरखि विरह रस पागी ॥
कर गहि शुभ आसन पधराई । पूँछी दशा काह दुख दाई ॥
कुँअर कहेव रघुवर सिय गवना । सुनतहिं सिद्धि भरे दृग भवना ॥

उन्हें देखते ही उनकी प्राण वल्लभा श्री सिद्धि कुँअरि जी ने आकर चरणों में प्रणाम किया तथा अपने प्राण वल्लभ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को विरह रस में पगे हुए देखकर वे उनका हाथ पकड़ शुभ आसन में बैठा कर दुखदायी स्थिति का कारण पूँछती हैं। तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी के अवध प्रस्थान की बात बतायी जिसे सुनते ही श्री सिद्धि कुँअरि जी के नेत्रों में आँसू भर गये।

दो०– सिय स्वभाव शुभ चरित कहँ, बारहिं बार कुमार ।
कहत सुनत निज नारि ते, देवहिं सुरति विसार ॥४३३॥

कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधि जी बारम्बार श्री सीता जी के स्वभाव व उनके शुभ चरित्रों को अपनी धर्मपत्नी श्री सिद्धि कुँवरि जी से कहते व सुनते हुए स्मृति भुला देते हैं।

तेहिं अवसर लक्ष्मीनिधि भ्राता । आये कइव चचेर सुगाता ॥
सबहिं कुँअर पद नायो माथा। बैठे सबहिं नयन भरि पाथा ॥

उसी समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के कई सुन्दर चचेरे भाई आ गये तथा सभी अपने अग्रज कुमार के चरणों में मस्तक झुका प्रणाम कर नेत्रों में अश्रु भरे हुए बैठ गये।

राम विदा सुनि सब दुख भीने । विरह नाग डसि गये प्रवीने ॥
प्रेम दशा लक्ष्मीनिधि छाके । कहत रहब कस बनी इहाँ के ॥

श्री राम जी महाराज के विदाई की बात सुनकर सभी दुख में पग गये तथा वे सभी परम प्रवीण कुमार भाम विरह रूपी नाग के द्वारा डस लिये गये अर्थात् प्रभु श्रीराम जी महाराज के विरह में अत्यन्त दुखी हुए। कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम की विरह अवस्था में छके हुए कह रहे थे कि– अब यहाँ कैसे रह पायेंगे?

करत सखन सन बात विभोरा । मनहुँ धनिक निधि गयी अथोरा ॥
कहत राम सिय शील स्वभाऊ । अधिक विरह हिय आय दबाऊ ॥

वे विरह में व्याकुल हुए अपने सखाओं से इस प्रकार बातें कर रहे थे मानों किसी धनवान की महान सम्पति खो गयी हो। श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी के शील व स्वभाव का वर्णन करते ही और भी अधिक विरह आकर उनके हृदय को दबा लेता था।

यहिं प्रकार प्रिय कुँअर सुप्रेमा । भूलो खाब पियब अरु नेमा ॥
बिन वियोग अस अधिक वियोगा । कुँअर विरह की पीर प्रभोगा ॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपने प्रिय बहनोई श्री राम जी महाराज के सुन्दर प्रेम में भोजन, जल पान व नियम के निर्वाह आदि कृत्य भूल गये थे। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु वियोग हुये बिना ही अत्यधिक वियोग का अनुभव हो रहा था और वे विरह की अतीव दुखदायी व्यथा को सहन कर रहे थे।

दो०– जनक लाड़िली भ्रात प्रिय, अकनि दशा अकुलान ।
भैया गृह सखि सह गयी, प्रेम न जाइ बखान ॥४३४॥

इधर जनक दुलारी श्री सिया जी अपने प्रिय भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी की विरह जन्य स्थिति को श्रवण कर सखियों सहित अपने भइया जी के भवन गयीं। उनका पारस्परिक प्रेम ऐसा है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

देखेव भइया विरह तपाया । सिय सिय रटत विकल दुख छाया ॥
सिय हिय भरी नयन जल धारी । भैया शब्द सप्रेम उचारी ॥

श्री सिया जू ने देखा कि उनके भइया श्री लक्ष्मीनिधि जी विरह ताप में जल रहे हैं तथा हे श्री सिया जू, हे श्री सिया जू रटते हुए, दुख में डूबे व्याकुल हैं तब श्री सीता जी ने भरे हृदय से नेत्रों से अश्रु विमोचन करते हुए प्रेम पूर्वक "श्री भैया जी" शब्द का उच्चारण किया।

सियहिं देखि उठि कुँअर उदारा । लिय उठाय निज गोद मँझारा ॥
बैठेव आसन विरहहिं छाये । रह रह पूर्व चरित हिय आये ॥

अपनी अनुजा श्री सीता जी को देखते ही परम उदार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उठकर उन्हें अपने गोद में उठा लिया और विरह में समाये हुए आसन में बैठ गये। उनके हृदय में श्री सिया जू के पूर्व के सभी चरित्र क्रमशः याद आ रहे थे।

चहुँ दिशि औरहुँ भगिनि विराजी । करुण कटकई मनहुँ विराजी ॥
सिया बैठि निज भैया गोदी । करहिं मेलि गल नयनन रोदी ॥

उनके चारों ओर बैठी हुई अन्य बहने ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानों वे करुणा की सुसज्जित सेना हों। श्री सीता जी अपने भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी की गोद में विराजी हुई उनके गले में बाहें डालकर भेंट करती हुई रुदन कर रही थीं।

सिय अभिषेक नयन जल ढारी । करत कुमार विरह रस भारी ॥
कुँअरहुँ वस्त्र बहिन जल नयना । भीगे दशा मनहुँ दुख अयना ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यधिक वियोग रस में समाये हुए, अपने नेत्रों का जल बरषाते हुए अपनी अनुजा श्री सीता जी का अभिषेक सा कर रहे थे। उनकी बहन श्री सीता जी के आँसुओं से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वस्त्र भीग गये थे। उन दोनो की स्थिति ऐसी थी मानों वे दुख के भवन ही बने हुये हों।

सिद्धिकुँअरि सह सब सखि दैनी । विरह सनी ढारत जल नयनी ॥
भ्रात भगिनि हिय विरह जरावत । सुधि बुधि गई न चेत चलावत ॥

श्री सिद्धिकुँवरि जी सभी सखियों सहित दैन्य भाव व विरह रस में समाई हुई आँखों से आँसू बहा रही थीं। भाई–बहन (श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सीता जी) दोनों के हृदय को भावी वियोग दग्ध किये जा रहा था, उनकी सुधि व बुधि भूल गयी थी तथा उनमें चैतन्यता की प्रतीत नहीं हो रही थी।

दो०–लुढ़कि खसे दोउ आसनहिं, सिधि सब कीन्ह सम्हार ।
करि उपचार अनेक विधि, लाई चेत प्रसार ॥४३५॥

इस प्रकार वे दोनों भाई–बहन (श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सीता जी) आसन से लुढ़क कर गिर पड़े तब श्री सिद्धि कुँवरि जी ने उनकी सार सम्हाल की तथा अनेक प्रकार से उपचार कर वे उनमें चैतन्यता का प्रसार कीं।

समुझि सिया खाये नहिं भैया । आजहिं ते सह दुख उपसैया ॥
उतरि सिया निज भाभी गोदी । बैठि कहति धरि धीर प्रमोदी ॥

तदनन्तर श्री सीता जी ने यह समझकर कि– हमारे श्री भइयाजी ने भोजन नहीं ग्रहण किया और वे आज से ही उपवास का दुख सहन कर रहे हैं, वे उनकी गोद से उतर कर श्रीभाभीजी की गोद में विराज धीरज धारण कर आनन्दपूर्वक बोलीं–

भाभी भूख लगी मोहिं भारी । पैहौं भैया संग सुखारी ॥
नहि जानैं यह समय सुहावा । देवैं विधि कब मम मन भावा ॥

हे श्रीभाभीजी! मुझे बहुत भूख लगी है और मैं अपने श्री भइया जी के साथ सुखपूर्वक भोजन करूँगी क्योंकि मैं नहीं जानती कि ऐसा सुन्दर व मनचाहा समय पुनः कब विधाता प्रदान करेंगे–––

जब भैया मोहिं गोद बिठाई । करि दुलार निज करन पवाई ॥
इतना कहत भरा दृग वारी । लिपटि गयीं भाभी उर प्यारी ॥

–––जब श्री भइया जी मुझे अपनी गोद में बिठाकर मेरा दुलार करते हुए अपने हाथों से मुझे भोजन करायेंगे। इतना कहते ही उनकी आँखों में आँसू भर आये और वे सभी की प्रिय श्री सीता जी अपनी भाभी जी के हृदय से लिपट गयीं।

सिद्धि कुँअरि सनि विरही पीरा । करति प्यार ढारति दृग नीरा ॥
सुनहिं सीय सुखदा तव भैया । तुम बिन कस धौं जिवन वितैया ॥

उस समय श्री सीता जी के भावी वियोग जन्य दुख में सनी हुई श्री सिद्धि कुँवरिजी उनका प्यार कर अश्रु बहाते हुए बोलीं– हे सुख प्रदायिनी श्री सिया जू! सुनिये, आपके श्री भैया जी, भला आपके बिना किस प्रकार जीवन व्यतीत कर पायेंगे?

दो०–बहुरि सियहिं समुझाय कै, पोछि नयन करि प्यार ।
हाथ जोरि पति सन कहति, सुनिये प्राण अधार ॥४३६॥

पुनः श्री सिर्द्धि कुँअरि जी श्री सीता जी को समझाकर, उनके नेत्रों के अश्रुओं को पोंछ प्यार कर, अपने प्राणपति कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से हाथ जोड़ कर बोलीं कि हे प्राणाधार! सुनिये,

ललिहिं लगी अब अतिशय भूखा । तव सह खाइय अन्न पियूषा ॥
अस कहि कुँअरहिं स्वस्थ कराई । हाथ पाँव मुख तुरत धुवाई ॥

हमारी लाड़िली श्री सिया जू को अब अत्यधिक भूँख लगी है तथा वे आपके साथ ही अमृतान्न पाना चाहती हैं ऐसा कह श्री सिद्धिकुँअरि जी नें कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को स्वस्थ करा कर शीघ्र ही उनके हाथ, पाँव व मुख धुलवा दिये।

कुँअरहु सिया क्षुधा के हेतू । मुख प्रसन्न गुनि सेव सचेतू ॥
बैठ सुभग शुचि कोमल आसन । सियहिं गोद लै करि मृदु भाषन ॥

तब कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीता जी की क्षुधा निवृत्ति के लिए प्रसन्न मुख हो गये तथा उनकी सेवा समझ सचेत होकर सुन्दर पवित्र व कोमल आसन में श्री सीता जी को गोद में लेकर मधुर बातें करते हुए विराज गये।

कुँअर पवावहिं सियहि रसाई । विरह पीर हिये रहे दबाई ॥
परसति सिद्धि सप्रेम उचारी । लली योग यह भोग सुखारी ॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी उनके भावी वियोग की पीड़ा को हृदय में दबाये हुए धीरे–धीरे आनन्दपूर्वक श्री सीता जी को पवा रहे थे तथा श्री सिद्धि कुँवरि जी प्रेम पूर्वक यह कह कहकर कि– यह सुखकारी भोग तो हमारी श्री सिया जू के ही योग्य है, परोस रही थीं।

कह सिय भ्रात आपु अब पावहिं । हमहिं होय सुख सत मन आवहिं ॥
पावहिं कुँवर सहित सिय प्यारी । देखि कुँअरि सह सखिन सुखारी ॥

पुनः श्री सीता जी ने कहा– हे श्री भइया जी! अब आप पाइये, क्योंकि आपके पाने से हमे मन में सच्चा सुख प्राप्त होगा तब कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी प्रिय बहन श्रीसिया जू के साथ पाने लगे उन्हें देखकर सखियों सहित श्रीसिद्धि कुँवरिजी सुखी हो गयीं।

औरहु भगिन सखी शुभ थारा । पावहिं भोजन ललित प्रकारा ॥
भ्रात भगिन इक इक सुख हेता । रोकहिं नीर नयन करि चेता ॥

अन्य बहने व सखियाँ भी शुभ थालों में विभिन्न प्रकार के सुन्दर भोग पा रही थी। भाई व बहन दोनों एक दूसरे के सुख के लिए अपने आपको चैतन्य किये हुए आँखों के आँसुओं को रोक रहे थे।

दो०— यहि विधि सिय प्रिय भ्रात सह, अन्न सुधा रस प्रोत ।
पाय आचमन कीन पुनि, बैठी बह रस श्रोत ॥४३७॥

इस प्रकार श्रीसीताजी ने अपने प्रिय भइया श्रीलक्ष्मीनिधिजी के साथ रस से परिपूर्ण अमृतान्न पा कर आचमन किया। पुनः वे रस निर्झर प्रवाहित करती हुई आसन में विराज गयीं।

गंध पान दै कुँअरि नवेली । सेव कीन सुख सहित सहेली ॥
ननदहिं पेखि बैठि पति गोदा । सुभग सिंहासन प्रेम प्रमोदा ॥

नवीन प्रेम परिप्लुता श्री सिद्धि कुँवरि जी ने इत्र व पान देकर सखियों सहित उनकी सुखपूर्वक सेवा की। पुनः अपनी ननद श्री सिया जी को सुन्दर सिंहासन में, अपने पति श्री लक्ष्मीनिधि जी की गोद में प्रेम व आनन्दपूर्वक बैठी देखकर———

होइ प्रसन्न प्रिय आरति कीनी । सखिगन छत्र चमर शुभ लीनी ॥
भ्रात भगिन मुद मंगल कीती । मंगल पाठ पढ़ी करि प्रीती ॥

———उन्होंने प्रसन्न हो उनकी प्रिय आरती उतारी, सखियों ने शुभ छत्र व चँवर धारणकर लिया। पुनः भ्रातृ—भगिन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिया जू दोनों के आनन्द मंगल हेतु श्री सिद्धि कुँअरि जी ने प्रेमपूर्वक मंगलानुशासन किया।

रक्षा मंत्र अनेक सुहावन । अंग न्यास करि किय मुद भावन ॥
वेष कीमती भूषण वस्त्रा । अति प्रिय नैहर केर पवित्रा ॥

श्री सिद्धिकुँअरि जी ने अनेक प्रकार के सुन्दर रक्षा—मन्त्रों का पाठ, आनन्द व भावपूर्वक अंगो का स्पर्श करते हुए किया तथा अपने मातृ गृह से प्राप्त अत्यन्त बहुमूल्य व प्रिय पवित्र वस्त्राभूषण———

औरहु रहे जो मणि गण माला । सास श्वसुर सन पाई बाला ॥
अमित द्रव्य सिय सेवा हेतू । अरपित करी सुप्रीति समेतू ॥

———एवं अन्य मणि माणिक्य आदि के जो हार आदि आभूषण थे जिन्हें श्री सिद्धि कुँवरि जी ने अपने सास—श्वसुर से प्राप्त किया था, उन्हें असीमित द्रव्य सहित श्री सीता जी की सेवा के लिए सुन्दर प्रीति पूर्वक अर्पित कर दिया।

भाँति अनेक निछावर कीनी । अन्य जनन कहँ बाँट प्रवीनी ॥
पूरण कामा सिय सुकुमारी । भाभी प्रीति पेखि निज वारी ॥

पुनः परम दक्ष श्री सिद्धि कुँवरि जी ने श्री सीता जी की अनेक प्रकार से न्योछावर कर अन्य जनों को बाँट दिया तब पूर्णकामा सुकुमारी श्री सिया जी ने अपनी भाभी जी की प्रीति को देखकर उन पर अपने आपको न्योछावर कर दिया।

दो०—औरहुँ ननँदन कहँ दई, भूषण वस्त्र अपार ।
पगी प्रेम अहमिति रहित, लक्ष्मीनिधि प्रिय नार ॥४३८॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रिय पत्नी श्रीमती सिद्धिकुँअरि जी ने अन्य ननँदो को भी, प्रेम पूर्वक अहंकार रहित होकर असीमित भूषण व वस्त्र प्रदान किये।

पतनिहिं कहा कुँअर समुझाई । लली मोरि पहुँचावहु जाई ॥
सुनत सिद्धि पति के मृदु वचना । चली मातु पहँ गज गति रचना ॥

तदुपरान्त कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपनी प्राणवल्लभा श्री सिद्धिकुँअरि जी से समझाकर कहा कि– आप हमारी लली जू को पहुँचा दीजिये। अपने प्राणपति के कोमल वचनों को सुनते ही श्री सिद्धि कुँवरि जी गजगति से अम्बा श्री सुनैना जी के समीप चल दी।

चलत कुँअर अति सियहिं दुलारी । कहेव वचन दीनन अनुहारी ॥
जब ते लली जन्म लिय आई । खेली मोर गोद सुख पाई ॥

प्रस्थान करती हुई अपनी अनुजा श्री सिया जू का कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अत्यधिक दुलार किया तथा दीनों के समान वचन बोले– हे मेरी लली जू! आपने जब से जन्म धारण किया है तबसे मेरी ही गोद में खेली और सुख प्राप्त की हैं।

भैया भैया मोहि पुकारति । मम बिन भोजन नाहि निहारति ॥
मैं हौं भइया तुम्हरो लाला । प्राणन प्राण भगिनि तुम बाला ॥

मुझे भैया–भैया पुकारती रहती हैं तथा मेरे बिना भोजन की ओर निहारती भी नहीं। हे श्री लाड़िली जू! मैं तो आपका ही पाला हुआ, आपका भइया हूँ तथा आप मेरे प्राणों की प्राण प्रिय बहन हैं।

सब विधि हीन दीन मतिहीना । तुमहिं न सेयेउँ प्रेम प्रवीना ॥
भलो पोच जो लली तुम्हारो । अन्य न जानहुँ सत्य उचारो ॥

मैं सभी प्रकार से हीन, दीन तथा बुद्धि रहित हूँ। यद्यपि मैंने आपकी सेवा प्रेम व दक्षतापूर्वक नहीं की तथापि हे श्रीलाड़िली जू! भला या बुरा मैं जैसा भी हूँ आपका हूँ तथा सत्य कह रहा हूँ कि आपके अतिरिक्त किसी अन्य को जानता तक नहीं।

दो०—अस जिय जानि सुहेरि जिय, भैया कहे कि लाज ।
आपन विरद विचारि बड़, राखेउ हिय सुख साज ॥४३९॥

अतएव आप अपने हृदय में ऐसा समझकर, मुझे अपना भैया कहने की लज्जा की रक्षा करते हुए तथा अपने महान विरद का विचार कर, अपने सुख की सामग्री समझ, मुझे अपने हृदय में बनाये रखियेगा।

अस कहि कुँअर सियहिं हिय लाई । प्रेम वारि तेहिं शीश सिंचाई ॥
सीय सकुच वश उतर न दीन्हा । लिपटि हिये बहु रोदन कीन्हा ॥

ऐसा कहकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपनी अनुजा श्री सीता जी को हृदय से लगा लिया तथा प्रेमाश्रुओं से उनके शिर को सिंचित कर दिया। श्री सीता जी ने संकोचवश उत्तर नहीं दिया परन्तु वे उनके हृदय से लिपट कर अत्यन्त रुदन करने लगीं।

मनहुँ कहति सुनु भ्रात सनेही । रखिहहुँ तुमहिं हिये करि गेही ॥
प्रेम वारि मैं तुमहिं डुबाई । रखिहौं सदा प्राण की नाईं ॥

मानो वे कह रहीं हो कि– हे मेरे प्रिय श्रीभइया जी! मैं आपको अपने हृदय में निवास दिये रहूँगी तथा अपने स्नेह–जल में डुबाये हुए सदैव प्राणों के समान रखूँगी।

करि बहु प्यार सियहिं भेजवावा । आपु रह्यो हिय विरह सतावा ॥
यहि प्रकार सो वासर गयऊ । आई निशा नींद नहिं लयऊ ॥

अनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपनी अनुजा श्री सीता जी को बहुत प्रकार से प्यार दुलार कर भिजवा दिया तथा उनके वियोग में दुखी बने वे स्वयं वहीं रह गये। इस प्रकार वह दिन व्यतीत हुआ और रात्रि आ गई परन्तु कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने किंचित भी नींद नहीं ली।

सीय राम यश वरणत पाँती । दम्पति दिये बिताय सो राती ॥
भोर कुँवर सब नित्य निबाही । गे जनवास दरश चित चाही ॥

उन दम्पति श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धिकुँअरि जी ने श्री सीताराम जी के सुन्दर यश का वर्णन करते हुए वह रात्रि व्यतीत की तथा प्रातःकाल होते ही कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी नित्यकर्मो का निर्वाह कर मन में, प्रभु श्री राम जी महाराज के दर्शन की कामना लेकर जनवास गृह चले गये।

दो०–गुरु महिपति मुनि मातु जन, सब कहँ कियो प्रणाम ।
आशिष प्यारहुँ पाइ तिन्ह, गयो कक्ष जहँ राम ॥४४०॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने गुरुजनों श्री बशिष्ठ जी व श्री विश्वामित्र जी, चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज, अन्य मुनि–गणों व राजमाताओं आदि सभी को प्रणाम किया तथा सभी से शुभाशीष व प्यार प्राप्त कर, उस कक्ष में गये जहाँ श्री राम जी महाराज थे।

देखत कुँअरहिं राम सुजाना । हरष हृदय मन नयन जुड़ाना ॥
उठि सुधि भूलि कुँअर कहँ मीला । कुँअरहुँ अह मम बुधि बिनु ढीला ॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखते ही परम सुजान श्री राम जी महाराज का हृदय हर्षित हो गया तथा मन व नेत्र शीतल हो गये। वे सभी प्रकार की स्मृति भूल उठकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी से भेंट किये, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी अहंकार, मन व बुद्धि की स्मृति से रहित हो शिथिल हो गये।

पगे प्रेम दोउ सुभग कुमारा। लगे हृदय नयनन बह धारा ॥
बड़ी बार मिलि आसन बैठे। बूड़े प्रेम सिन्धु मन पैठे ॥

वे दोनों सुन्दर राज कुमार श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम में पगे, हृदय से हृदय लगाये हुये थे उनके नेत्रों से आंसुओं की धारा प्रवाहित हो रही थी इस प्रकार बहुत देर तक

वे दोनो मिले रहे, अनन्तर आसन में बैठ गये, उन दोनों के मन उस समय प्रेम के समुद्र में अस्त हो गये थे।

कछुक काल महँ राम रसाला। बोले वचन विरह सर घाला॥
काल अवधपुर दाउ सिधैहैं। नयन लाभ तब दरश न पइहैं॥

कुछ समय पश्चात भावी वियोग के बाण से व्यथित हुए रसस्वरूप श्री राम जी महाराज बोले– कल हमारे श्री मान् दाऊ जी श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान कर जायेंगे तब हमारे नेत्र अपने परम लाभ आपके दर्शन को न प्राप्त कर सकेंगे।

इतना कहत सुनत दोउ वारे। विरह विभोर न वचन निकारे॥
बेसुध परे श्याल अरु भामा। प्रेम विचित्र कियो तन धामा॥

इतना कहते व सुनते ही दोनों राजकुमार श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मीनिधि जी विरह में विह्वल हो कुछ भी न बोल सके तथा वे (श्याल–भाम) स्मृतिहीन हो गिर पड़े। प्रेम वैचित्र्य ने दोनों के शरीर को अपना निवास बना लिया अर्थात् परस्पर सामने होते हुये भी भावी वियोग में वे डूब गये।

दो०–तेहिं अवसर आये भरत, लछिमन रिपुहन लाल।
जनक सुवन अरु राम की, देखी दशा बिहाल॥४४१॥

उसी समय राजकुमार श्री भरत लाल जी, श्री लखन लाल जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी आ गये और उन्होंने जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज की विह्वल अवस्था का दर्शन किया।

जनक सुवन अरु राम कुमारा। श्याम सखे कहि स्वाँस उचारा॥
हाय कहत कहुँ नयन बहाई। दीन दशा देखत बनि आई॥

वे दोनों जनकनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी व दशरथनन्दन श्री रामजी महाराज प्रत्येक साँस के साथ हे श्याम सुन्दर! हे सखे! उच्चारण कर रहे थे। कभी वे हाय! हाय! कहते हुए नेत्रों से आँसू बहाने लगते थे। उनकी उस समया की दैन्य स्थिति देखते ही बनती थी।

तीनहु कीन्ह सुखद उपचारा। जागि परे दोउ रघु निमि वारा॥
भ्रातन देखि राम सुख सरसे। करत प्रणाम करहिं शिर परसे॥

तीनों भ्राताओं श्री भरत लाल जी, श्री लखन लाल जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी ने उन दोनों का सुख प्रद उपचार किया तब दोनों रघुनन्दन श्री राम जी महाराज व निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी जागृत हुये। अपने भ्रातृगणों को देखकर श्री राम जी महाराज सुख में सन गये और प्रणाम करते हुए भ्राताओं का उन्होंने अपने हाथ से शिर–स्पर्श किया।

कुँअर मिले सबहिन हिय लाई। चारहु भाम लखत सुख छाई॥
उर धरि धीर कुँअर निमि केरा। कहेव अहौं मैं राउर चेरा॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सभी से हृदय लगाकर भेंट की तथा अपने चारों बहनोइयों को सुख में भर कर निहारने लगे। पुनः निमिकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने धैर्य धारण कर कहा कि–हे हमारे

प्राण प्रिय बहनोइयो! मैं तो आप सभी का सेवक हूँ।

पूरण काम राम सुख सागर। मैं मति मन्द मलिन विषयागर॥
कहा देउँ का स्तुति कहहूँ। नाथ अकिंचन सब विधि अहहूँ॥
नेति नेति जेहिं वेदहुँ गावा। ताकर जानहिं केहिं विधि भावा॥

हे पूर्ण काम, सुख के सागर, श्री राम जी महाराज! मैं तो मन्द बुद्धि मलीन तथा विषयों का आगार हूँ। मैं आपको क्या दूँ? तथा कैसी स्तुति करूँ? क्योंकि हे नाथ! मैं सभी प्रकार से अकिंचन हूँ। पुनः जिन श्री राम जी महाराज का वेदों ने नेति–नेति कहकर गायन किया है उन पूर्णतम परब्रह्म की महिमा को मैं किस प्रकार जान सकता हूँ।

दो०– निज जन जानि कृपालु मोहिं, सब विधि लिय अपनाय।
धनि धनि प्रभु औदार्य तव, दया रूप दरशाय॥४४२॥

हे कृपालु श्री रामजी महाराज! आपने मुझे अपना सेवक समझ कर सभी प्रकार से अपना लिया है। हे नाथ! आपकी उदारता धन्याति–धन्य है, आपका स्वरूप दया से ही निर्मित हुआ दिखाई पड़ता है।

छं०– भजामि भानु वंशजं, सुवेद तत्व बोधजम्।
मराल शम्भु मानसं, नमामि काम ध्येयशम्॥

हे सूर्यकुल में उत्पन्न होने वाले, सुन्दर वेदों के तत्व स्वरूप, तथा बोध प्रदान करने वाले श्री राम जी महाराज मैं आपका भजन करता हूँ। आप श्री शंकर भगवान के मन–मानस विहारी राजहंस तथा श्री कागभुसुण्डि जी के आराध्य देव हैं, आपको मेरा नमन है।

अनंग अंग मोहनं, सुभक्त काम दोहनम्।
नमामि राम व्यापकं, सुसन्त मोक्ष दायकम्॥

अपने अंगों की कान्ति से कामदेव को भी मोहित कर लेने वाले, सुन्दर भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले, सर्व व्यापक तथा सन्त–जनों को मोक्ष प्रदान करने वाले श्री राम जी महाराज मैं आपको नमन करता हूँ।

रमन्ति यत्र योगिनो, तदेव राम जोहिनो।
चिदामय सुमंगलं, अनन्त बोध सम्बलम्॥

हे नाथ! जहाँ पर योगियों का चित्त रमण करता है वहाँ मात्र आप ही दिखाई पड़ते हैं अर्थात् योगियों का चित्त आप में ही रमण करता है, आप तो ज्ञानस्वरूप, मंगलमय, अनन्त, बोध–स्वरूप तथा सभी के दृढ़ आश्रय हैं।

रसोमयं सुखाकरं, भजामि नाथ शंकरम्।
विशुद्ध बुद्धि पारकं, नमामि जीव तारकम्॥

हे रसमय, सुखों के समूह तथा कल्याण करने वाले स्वामिन्! मैं आपका भजन करता हूँ। हे विशुद्ध बुद्धि की निपुणता से परिपूर्ण तथा जीवों का उद्धार करने वाले प्रभु! आपको मेरा नमन हैं।

गुणाकरं गुणात्परं, भजामि काल भी करम् ।
अनन्त ज्योति भास्वरं, परात्परम् यशोधरम् ॥

हे समस्त गुणों के समूह, तीनों गुणों से परे, काल को भी भयभीत करने वाले, अनन्त तेज से युक्त, परम श्रेष्ठातिश्रेष्ठ, अक्षुण्ण कीर्ति धारण करने वाले स्वामी मैं आपका भजन करता हूँ।

भजामि राम सानुजं, सियापतिं अद्योक्षजम् ।
समस्त विश्वमोहनं, यतीन्द्र संत रज्जनम् ॥

हे अधोक्षज (इन्द्रियातीत) सीताकान्त श्री राम जी महाराज मैं भ्राताओं सहित आपका भजन करता हूँ। आप ही सम्पूर्ण संसार को मोहित कर लेने वाले तथा ऋषियों–मुनियों एवं सन्तों का पालन करने वाले हैं।

जगन्मयं जगद्धुरं, नमामि राम बन्धुरम् ।
अखण्ड ज्ञान रूपिणं, भजामि देव सार्ङ्गिणम् ॥

हे विश्वरूप व जगदाधार श्री रामजी महाराज बन्धुओं सहित आपको मेरा नमन है। हे अखण्ड ज्ञानस्वरूप एवं सारंग–धनुष को धारण करने वाले देव मैं आपका भजन करता हूँ।

सुदेव दृश्य लोचनं, भवामि धन्य रोचनम् ।
सुभाम श्याल रक्षणं, सदा करोषि तच्क्षणम् ॥

हे नाथ! आप हमारे नेत्रों को अपना सुन्दर दर्शन देते रहिये, आप धन्याति धन्य हैं तथा आपका मंगल हो। हे मेरे सुन्दर भाम (बहनोई)! आप अपने इस श्याल की सदैव शीघ्र रक्षा करते रहियेगा।

दो०–करि विनती वर जनक सुत, परेउ चरण धरि माथ ।
तुरतहिं ताहि उठाय कै, हिय लायेव रघुनाथ ॥४४३॥

जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी इस प्रकार प्रार्थना कर उनके चरणों में अपना मस्तक रख कर गिर पड़े तब रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज ने तुरन्त ही उठाकर उन्हें हृदय से लगा लिया।

कहेउ कुँअर सुनु नाथ कृपाला। पूर्ण ब्रह्म भक्तन प्रतिपाला ॥
पाँवरि सेव प्रभो मैं पाऊँ । सेइहौं सदा हिये करि चाऊँ ॥

तब कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे परम कृपालु, पूर्णतम परब्रह्म तथा भक्तों का प्रतिपालन करने वाले स्वामी! सुनिये, मुझे आपके जूतियों की सेवा प्राप्त हो जाये, मैं सदैव आनन्दित हृदय उनकी सेवा करता रहूँगा।

पातल झारि प्रसादी पाई । रहिहौं अमित अनन्द अमाई ॥
वस्त्र उतारे निज तन धारी। रखिहौं देह सेव हितकारी ॥

आपकी पत्तल झाड़कर बचे हुए प्रसादान्न को पाकर मैं असीम आनन्द में समाया रहूँगा तथा आपके उतारे हुए पुराने जीर्ण–शीर्ण वस्त्रों को अपने शरीर में पहन कर आपकी सेवा के लिए अपने

शरीर की रक्षा करता रहूँगा।

पशुहिं सुरक्षै जिमि पशुपाला। तिमि रक्षहिं प्रभु दीन दयाला॥
पाहि पाहि प्रभु चरणन माहीं। लोटत कुँअर परेउ सुधि नाहीं॥

हे नाथ! जिस प्रकार पशुपालक अपने पशुओं की सुरक्षा करता है, उसी प्रकार हे दीनों पर दया करने वाले स्वामी आप मेरी रक्षा करें। हे प्रभु मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये कहते हुए कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में लोटते हुए स्मृतिहीन हो गये।

प्रभु उठाय पुनि हृदय लगाये। बोले वचन सरल सुख छाये॥
मैं अरु आप विलग नहि जानेहु। सदा त्रिकाल एक सँग मानेहु॥

उस समय प्रभु श्री राम जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को उठाकर हृदय से लगा लिया तथा सरल व सुखपूरित बचन बोले–हे कुमार! आप मुझे व अपने आपको अलग नहीं समझिये तथा तीनों कालों में हमें सदैव एक साथ ही मानियेगा।

दो०–तदपि लोक लीला करन, पृथक पृथक सम भास।
हमहिं तुमहिं सोई उचित, लीला मढ़े सुवास॥४४४॥

फिर भी संसार में लीला करने के लिए हम अलग–अलग दिखाई पड़ते हैं तथा हमें व तुम्हें भी वही करना उचित है जिससे हमारी लीला सुचारुतया सम्पादित होती रहे।

जो राउर मिथिला नहि रहिहैं। मम ससुरारि शोभ नहि पैहैं॥
मिथिला अवध एक मैं मानौ। आपहुँ देखि हृदय महँ जानौ॥

क्योंकि यदि आप श्री मिथिलापुरी में नहीं रहेंगे तो मेरी ससुराल शोभा नहीं प्रात करेगी फिर मैं तो श्री मिथिला व श्री अयोध्यापुरी दोनो को एक समान ही मानता हूँ, इस बात को आपने देख ही लिया व अपने हृदय में इसे जानते भी हैं।

मोर रहब दूनहु पुर माहीं। होई सदा अन्यथा नाहीं॥
आपहुँ अवध रहेव कहुँ मिथिला। लीला कार्य न हौवै शिथिला॥

दोनों ही पुरियों में सदैव मेरा निवास होगा यह बात अन्यथा नहीं है। आप भी कभी श्री अयोध्यापुरी तो कभी श्रीमिथिलापुरी में रहियेगा जिससे हमारा यह लीला कार्य शिथिल न पड़े।

रूप नाम लीला अरु धामा। मोरे बोध तुमहिं सह वामा॥
रमत रमावत परिकर साथा। मिथिलहिं कीजै सदा सनाथा॥

आपको अपनी वल्लभा श्री सिद्धि कुँवरि जी सहित मेरे नाम, रूप, लीला व धाम का सम्यक प्रकार बोध है अतः अपने परिकरों सहित आप इनमें रमते व सभी को रमाते हुए इस श्री मिथिलापुरी को सदैव सनाथ बनाये रहिये।

मम सुख लागि मोर यह सेवा। जानि रमैं इत मो सुधि लेवा॥
प्राणन प्राण नयन के नयना। मोरे कुँअर अहो सुख दयना॥

आप मेरे सुख के लिए इसे मेरी सेवा समझकर मेरा स्मरण करते हुए यहीं (श्री मिथिलापुरी में) निवास करें। हे कुमार आप तो मेरे प्राणों के प्राण व नेत्रों के नेत्र तथा परम सुख प्रदाता हैं।

दो०–तव मुख देखत रहौं नित, यह मन लागत मोय ।
लीला हित विछुरन मिलन, सत्य कहहुँ मैं तोय ॥४४५॥

मुझे तो मन में यही लगता है कि– मैं नित्य ही आपका मुख दर्शन करता रहूँ। मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि यह वियोग (बिछुड़ना) व संयोग (मिलना) तो मात्र लीला के लिए है।

आप स्वभाव रहनि सुखदाई । प्रेम प्रतीति सुरीति सुहाई ॥
वेद सिन्धु मथि सुनहु कुमारा । निजहिं पियायो अमृत सारा ॥

आपका स्वभाव तथा रहनी सुख प्रदायक, प्रेम, विश्वास व सुरीति से संयुक्त अत्यन्त सुन्दर है। हे राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, आपने तो वेद रूपी सागर का मन्थन कर उससे प्राप्त अमृत को पूर्णतया स्वयं को पिला दिया है।

मम मन भावित हौ सब लायक । तुमहिं बनायो आपन नायक ॥
अस कहि प्रभु नयनन जल ढारी । कुँअरहिं लीन्हेव हृदय मझारी ॥

आप मेरे मन के अनुकूल व सभी प्रकार से योग्य हैं अस्तु मैंने आपको अपना नायक (अगुआ) बनाया है। ऐसा कहकर प्रभु श्री राम जी महाराज नेत्रों से अश्रु बहाते हुए कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगा लिये।

प्रीति पगी अस रीति सुहाई । भई इकान्तिक बात अमाई ॥
बहुरि कुँअर प्रभु आयसु लहिकै । हिलि मिलि चारहु भामन गहिकै ॥

इस प्रकार दोनों राजकुमारों श्री राम जी महाराज व कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रेमरस मे डूबी हुई सुन्दर, छलहीन व एकान्तिक वार्ता हुई। पुनः कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने चारो बहनोइयों को प्रेमपूर्वक हृदय से लगाकर भेंट किये और प्रभु श्री राम जी महाराज की आज्ञा पाकर–––

कछुक कार्य वस आयहु भवना । सिद्धि कुँअरि ते कहेव सुहवना ॥
यथा राम की बात प्रमानी । भई वास महँ प्रेम प्रदानी ॥

–––कुछ कार्यवश अपने महल आ गये एवं अपनी प्राणवल्लभा श्री सिद्धि कुँवरि जी से श्रीरामजी महाराज की वह सुहावनी निर्णीत व प्रेम प्रदायिनी वार्ता कह सुनाये जो जनवास गृह में हुई थी।

दो०–सिद्धि कुँअरि लखि राम की, कृपा प्रीति बहुतान ।
मानी मन महँ मोद अति, विरह व्यथा बढ़ियान ॥४४६॥

श्री सिद्धि कुँवरिजी ने श्री रामजी महाराज की अत्यधिक कृपा व प्रीति को समझ अपने मन में अत्यन्त आनन्द की अनुभूति की तथा उनके हृदय में भावी–वियोग की पीड़ा और भी वृद्धिंगत हो गयी।

पुर परिजन अरु प्रिय परिवारा। भयो शोर कल जाहिं भुआरा ॥
विरह आँच सबहिन तन लागी। भये प्रेम वश विकल सुभागी ॥

श्री मिथिलापुरी, सभी परिजनों, प्रियजनों तथा परिवार में सर्वत्र यह शोर छा गया कि चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज कल श्री अयोध्या पुरी प्रस्थान कर जायेंगे। यह समाचार सुनते ही सभी का शरीर प्रभु वियोगाग्नि की तपन जलने लगा तथा परम सौभाग्यशाली वे सभी श्री मिथिलापुर वासी प्रेम के वशीभूत हो व्याकुल हो गये।

सुत वित नारि मित्र परिवारा। आत्म सुकीर्ति प्रतिष्ठा प्यारा ॥
सब ते अति प्रिय श्री सिय रामा। सुधि वियोग सब भये निकामा ॥

श्री मिथिलापुरी के समस्त निवासियो को अपने पुत्र धन, स्त्री, मित्र, परिवार, आत्मा, सुयश व प्रतिष्ठा आदि के प्रेम से श्री सीताराम जी अत्यधिक प्रिय थे और उनके भावी वियोग का स्मरण कर वे सभी चेष्टा–हीन हो गये थे।

जहँ तहँ करहिं परस्पर बाती। बिन सिय राम इहाँ दुख थाती ॥
काह करब रहि सब पुर मिथिला। बिना राम सिय ज्ञानहु शिथिला ॥

वे सभी जहाँ तहाँ आपस में यही बाते कर रहे थे कि श्री सीताराम जी के बिना तो यहाँ दुख ही धरोहर रूप में रह जायेगा है। हम सभी श्री मिथिला पुरी में रह कर क्या करेंगे? क्योंकि श्री सीताराम जी के बिना तो ज्ञान–योग भी शिथिल पड़ जायेगा।

गद्–गद् कंठ नीर बह नयना। बोलत कढ़ै मुखहिं नहिं बयना ॥
प्रेम पीर जानै कोउ वीरा। दुखद चोट भाला भल तीरा ॥

प्रेम के कारण उन सभी के कण्ठ गद्गद हो गये थे, आँखों से अश्रु बह रहे थे तथा बोलने पर मुख से आवाज नहीं निकलती थी। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– प्रेम की तड़प को तो कोई सच्चा शूरवीर ही जान सकता है क्योंकि उसकी दुखदायी मार से तो भाला व तीर की मार अच्छी होती है।

दो०–विरह पगे पुर लोग सब, नृप गृह कहुँ जनवास।
आवत जात अचेत सम, मन नहिं लहत सुपास ॥४४७॥

इस प्रकार प्रभु वियोग में डूबे हुए समस्त मिथिलापुरवासी कभी महाराज श्री जनकजी के महल में तो कभी जनवास गृह में स्मृतिहीन से हुए आते जाते थे, परन्तु उनके मन सुख–चैन नहीं पा रहे थे।

पथ प्रबन्ध मिथिलेश्वर कीना। आई यथा बरात सुखीना ॥
अशन शयन सुख प्रति प्रति वासा। लै मिथिला सरयू तट भासा ॥

जिस प्रकार सुख पूर्वक बारात का आगमन हुआ था उसी प्रकार प्रस्थान हेतु भी की मार्ग व्यवस्था श्री मिथिलेश जी महाराज ने कर दी थी। श्री मिथिलापुर से लेकर श्री सरयू किनारे तक प्रत्येक निवास गृह में भोजन व शयन का इच्छित सुख उपलब्ध था।

प्रति प्रति वासहिं पठै सुआरा । भोजन साज अनेक प्रकारा ॥
अमित भार भरि दाइज सीधा । पठये जनक सुप्रेमहिं बीधा ॥

प्रत्येक आवास गृहों में रसोइये भेज कर अनेक प्रकार की भोजन सामग्री तथा असीमित भार वाहकों में भरवा कर, दहेज व अनाज सुन्दर प्रेम में बँधे हुए श्री जनक जी महाराज ने भिजवा दिया।

नख शिख भूषण साज सजाई । लाख अश्व दीन्हे नृपराई ॥
सहस पचीस दिये रथ साजी । इन्द्र रथहुँ लखि तिन्ह कहँ लाजी ॥

श्री विदेहराज जी महाराज ने हर्ष पूर्वक नख शिखान्त आभूषणों से सुसज्जित कर एक लाख घोड़े एवं पचीस हजार रथ दिये जिन्हें देखकर देवराज इन्द्र का रथ भी विलज्जित हो जाता था।

दस हजार गज मत्त सजाई । दिये देख दिग्गजहुँ लजाई ॥
मणिगन रतन सुवर्ण महाना । वसन अमोल भरे बहु याना ॥

उन्होंने सुसज्जित कराकर दस हजार मद–मस्त हाथी दिये जिन्हें देखकर दसों–दिगपाल भी लज्जित हो रहे थे। मणियाँ, रत्न, स्वर्ण तथा अनमोल वस्त्र आदि भरवा कर बहुत से वाहन श्री अयोध्यापुरी को भिजवाये गये।

दिये धेनु महिषी बहुताई । औरहु बहु सुख साज सजाई ॥
दासी दास बहुत नृप दीन्हे । सीय राम सेवा हित चीन्हे ॥

श्री जनक जी महाराज ने दहेज में बहुत सी गायें, भैसें तथा अन्य सुखोपयोगी साज सामग्रियाँ बहुतायत में दीं। उन्होने बहुत सी दक्ष दासियों व दासों को श्री सीतारामज जी की सेवा के लिए अर्पित किया।

दो०–जनक दिये दाइज अमित, और और सुख छाय ।
सुरपति धनपति सम्पदा, छुद्र अंश दिखराय ॥४४८॥

श्री जनक जी महाराज ने श्री चक्रवर्ती दशरथ जी महाराज को श्री राम जी महाराज के दहेज में अधिकाधिक सुख में भर कर असीमित दहेज प्रदान किया जिसके सामने देवराज इन्द्र व धनराज कुबेर की सम्पति भी अत्यन्त लघु भाग के समान दिख रही थी।

मास पारायण आठवाँ विश्राम

यहि विधि जनक हर्ष हिय छावा । दाइज अमित अवध पठवावा ॥
चलन समय जस जस नियराई । पुर परिवार बढ़त अकुलाई ॥

इस प्रकार मिथिला नरेश श्री जनक जी महाराज ने हर्षित हृदय असीमित दहेज श्री अयोध्या पुरी भिजवा दिया। इधर जैसे जैसे विदाई का समय समीप आता जा रहा था वैसे–वैसे श्री मिथिला पुरी व श्री जनक परिवार में व्याकुलता बढ़ती जा रही थी।

आई रात कहहिं सब रानी । नयन पुतरि मम जाय बिहानी ॥
गोद बिठाय करहिं बहु प्यारा । सिखवहिं नारिन धर्म अपारा ॥

इस प्रकार रात आ गयी व सभी रानियाँ कहने लगीं कि– हमारी नेत्र पुतलियाँ श्री सिया जी,माण्डवी, उर्मिला व श्रुतिकीर्ति कल प्रातः अपने श्वसुरालय प्रस्थान कर जायेंगी। वे सभी पुत्रियों को गोद में बिठाकर बहुत प्यार करतीं हैं तथा श्रेष्ठ स्त्री–धर्म की शिक्षा देती हैं।

सास श्वसुर गुरु सेव बताई । पति रुख चलन सुभाव दृढ़ाई ॥
ब्रह्म राम सेयहु सति भाया । निज सुख चाह सुदूरि बहाया ॥

वे सास, श्वसुर तथा श्री गुरुदेव जी की सेवा करने की शिक्षा देकर पति की रुचि से चलने का सुन्दर भाव दृढ़ कर रही थीं। पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज की सेवा, अपने सुख की कामना को त्याग कर सद्भाव पूर्वक, पतिव्रत धर्म धुरीणा नारियों के समान करने की शिक्षा दे रही थी।

प्राण प्राण प्रिय मानहिं रामा । यह अशीष वर पूरण कामा ॥
सखि सयान सिय प्रेम कातरी । मिलि सप्रेम सिखवहिं सुभाँतिरी ॥

हे पूर्ण कामा श्री सिया जू! श्री राम जी महाराज आपको प्राणों की भी प्राण व अत्यन्त प्रिय मानें यही हमारी सुन्दर अशीष है। इस प्रकार से सखियाँ व सयानी स्त्रियाँ श्री सीता जी के प्रेम वियोग में दुखी हुई प्रेम–पूर्वक मिलकर उन्हें विविध प्रकार से शिक्षा दे रही थीं।

दो०– मातु सुनैना लाड़िलिहिं, पुनि पुनि हिय लपटाय ।
चूमि चूमि सरसिज वदन, प्यारति नैन बहाय ॥४४९॥

अम्बा श्री सुनैना जी अपनी लाड़िली सिया जी को बार–बार हृदय से लिपटा लेती थीं तथा उनके मुख कमल को बार–बार चुम्बन कर आँसू बहाती हुई प्यार कर रही थीं।

सियहिं साथ लै माता सोई । मनहुँ चहत हिय राखन गोई ॥
सोई सियहिं मल्हावति माता । बढ़त विरह लखि लखि मृदु गाता ॥

अम्बा श्री सुनैना जी ने श्री सीता जी को साथ लेकर शयन किया मानों वे उन्हें हृदय में छिपा रखना चाहती हों। श्री अम्बा जी शयन करती हुई श्रीसीताजी को दुलरा रही हैं और उनके कोमल अंगों को देख देखकर उनकी वियोग जनित पीड़ा और भी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है।

सोचत कंठ फूटि जब आवै । जागि जानकी तब विलखावै ॥
छपटि छपटि हिय लागति प्यारी । पोंछहिं मातु सुनयनन वारी ॥

अपनी पुत्री श्री सिया जी के स्वभाव के विषय में सोचते–सोचते जब श्री अम्बा जी का गला फूट पड़ता तब श्री सीताजी जागकर बिलखने लगतीं और वे लिपट–लिपट कर अम्बाजी के हृदय से लग जाती थी तब श्री अम्बाजी उनके सुन्दर नेत्रों से बहती हुई अश्रुधार को पोंछने लगती थीं।

उतै कुँअर सह सिद्धि भवन में । उदित चरित सिय के छन छन में ॥
कहत सुनत दोउ होहिं विभोरी । विरही पीर बढ़त बरजोरी ॥

उधर श्री सिद्धिसदन में कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँवरि जी के हृदयाकाश में प्रत्येक क्षण श्री सीता जी के चरित्र उदय हो रहे थे जिन्हें कह व सुनकर दोनों विभोर हो जाते थे तथा

उनके हृदय में भावी वियोग की पीड़ा बलपूर्वक बढ़ती जाती थी।

कुँअर विरह वश भये अचेता । चित्त रँगेव सिय बुद्धि समेता ॥
स्वप्न समानहिं लखेउ किशोरा । राम धरे अंकहि सिर मोरा ॥

इस प्रकार कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधि जी अपनी अनुजा के भावी वियोग के वशीभूत हो स्मृतिहीन हो गये तथा उनका चित्त, बुद्धि के सहित श्री सीता जी में लीन हो गया तब जनक किशोर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वप्न के समान एक दृश्य का दर्शन किया कि– श्री राम जी महाराज मेरे सिर को अपनी गोद में रखे हुए हैं–––

पोंछत अश्रु प्यार प्रिय करहीं । सन्मुख सिया नयन जल भरहीं ॥
मम कटि ओढ़कि कहति मुख भैया । पोंछति दृग निज पानि सुहैया ॥

–––तथा मेरे आँसुओं का प्रोच्छण करते हुए, परम प्रियतम रघुनन्दन जू मेरा प्यार कर रहे हैं। सामने ही श्री सियाजू नेत्रों में अश्रु भरे हुए मेरी कमर में टिक कर मुख से भैया–भैया कहती हुई अपने सुन्दर कर–कमल से मेरे नेत्रों के अश्रुओं को पोंछ रही हैं।

दो०–वदति सिया सुनु बन्धुवर, धीर धरो मन माहिं ।
मोर वियोग न जानियहिं, वसौं सदा तोहि पाहिं ॥४५०॥

श्री सीता जी कहती हैं कि– हे मेरे श्रेष्ठ भइया जी! सुनिये, आप अपने मन में धैर्य धारण करें तथा मेरे वियोग का किंचित भी अनुभव न करें क्योंकि मैं तो सदैव आपके पास ही रहती हूँ।

कहत राम सुनियहु सुख सागर । मोर वास तव हृदय उजागर ॥
कबहुँ विलग नहिं मानहु मोहीं । अवधहुँ रहहुँ सदा सँग तोही ॥

श्री राम जी महाराज कहते हैं कि– हे सुख के सागर श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, मेरा निवास तो सदैव आपके उज्जवल हृदय में ही है अतः आप मुझे कभी भी स्वयं से अलग नहीं समझिये, क्योंकि श्री अयोध्या पुरी में रहते हुए भी मैं सदैव आपके साथ ही निवास करूँगा।

अस कहि प्रभु दिवि अवध दिखावा । लखत कुँअर मन मोद बढ़ावा ॥
विहरत अवध संग सुख भवना । मज्जन अशन शयन सँग गवना ॥

ऐसा कहकर प्रभु श्री राम जी महाराज ने दिव्य "साकेत–धाम" का दर्शन कराया जिसे देखकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मन में आनन्द की बाढ़ आ गयी। वे देखते हैं कि– दिव्य श्री अयोध्या पुरी में सुख के सदन श्री राम जी महाराज के साथ वे विहार कर रहे हैं तथा श्री राम जी महाराज के साथ ही उनकी स्नान, भोजन व शयन आदि दिनचर्या सम्पादित हो रही हैं।

भ्रात भगिनि सिय सुख व्यवहारा । देखे कुँअर अनेक प्रकारा ॥
सीय कृपा वस जोगवहिं भाई । कबहुँ न क्लेश सरस सुख छाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने एक दूसरे के सुख के लिए किये हुये भाई–बहन (श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिया जू) के अनेक प्रकार के व्यवहारों का भी दर्शन किया। श्री सीता जी अपनी कृपा के वशीभूत हो अपने भैया जी की सार सम्हाल कर रही हैं जिससे उन्हें कभी भी दुख का दर्शन नहीं होता,

उनमें सदैव रस व सुख की श्रृष्टि होती रहती है।

यहि प्रकार लक्ष्मीनिधि देखा । दुरेउ दृश्य भो विकल विशेषा ॥
प्रियहिं सुनायो सब विधि सोई । यथा कृपा निज नयनन जोई ॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने इस प्रकार के दृश्य का दर्शन किया और जब वह दृश्य ओझल हो गया तब वे विशेष व्याकुल हो गये। पुनः उन्होंने अपनी प्रियतमा श्री सिद्धिकुँवरि जी को विधिवत दृश्य दर्शन की बात उसी प्रकार सुनायी जिस प्रकार की कृपा का उन्होंने अपने नेत्रों से दर्शन किया था।

दो०–कृपा समुझि धीरज धरत, प्रगट विरह दुख देय ।
कुँअर दशा कोउ रसिक वर, राम कृपा लखि लेय ॥४५१॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्री राम जी महाराज की अपने ऊपर अपरिमित कृपा को समझ कर धैर्य धारण तो करते थे परन्तु प्रगट में उनका दर्शन वियोग जनित पीड़ा प्रदान कर रहा था। कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी की स्थिति तो श्री राम जी महाराज की कृपा से कोई भगवद् रस–रसिक ही समझ सकता है।

यहि विधि बीत गयी सब राती । उठे सबहिं जन भये प्रभाती ॥
सबहिन सुसमय नित्य निबाहे । आज बरात जाहि गुनि दाहे ॥

इस प्रकार वह सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत हो गयी और प्रातःकाल आने पर सभी लोग उठ पड़े। सभी ने सुन्दर समय से नित्य कर्मो का निर्वाह किया तथा आज बारात वापस जायेगी यह समझ विरह–व्यथा से दग्ध होने लगे।

जनक हृदय शोकित अविकारी । जाहिं लली मम प्राण पियारी ॥
विरह ताप अति ही हिय दाहै । शेष लहै नहिं कहत निवाहैं ॥

श्री जनक जी महाराज का अविकारी हृदय भी यह सोच–सोचकर अत्यन्त शोकाकुल है कि– हमारी प्राण प्यारी दुलारी पुत्री श्री सिया जी प्रस्थान कर जायेंगी। उनके भावी वियोग की अग्नि उनके हृदय को अत्यधिक दग्ध कर रही थी। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– उनकी वियोगावस्था का सहस्त्र मुख श्री शेष जी भी वर्णन कर पार नहीं पा सकते हैं।

गुरु मुनि सचिव समागम तेरे । धीरज धरत विवेक बड़ेरे ॥
तदपि बतात सुधारत काजहिं । नीर भरे दृग गद्गद् राजहिं ॥

श्री गुरुदेव जी, मुनियों, मन्त्रियों आदि के समझाने–बुझाने से वे अत्यन्त ज्ञानवान श्री जनक जी महाराज धैर्य तो धारण कर लेते थे किन्तु बोलते तथा कार्यो को सँवारते समय वे गद्गद कण्ठ और नेत्र अश्रु पूरित हो जाते थे।

जानि विदा कर समय सुहावा । जनक बरातहिं सविधि बुलावा ॥
दशरथ राउ समेत समाजा । आये द्रुत बजबावत बाजा ॥

विदाई का सुन्दर समय जानकर श्री जनक जी महाराज ने विधि–पूर्वक बारात को बुलवाया

तब ससमाज चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज शीघ्र ही बाजे बजवाते हुए आ गये।

दो०–चारहु दूलह साथ सजि, पुरवासिन सुख देत ।
आये नरपति नृपति गृह, सबहिं नयन फल लेत ॥४५२॥

चारो सुसज्जित दूलहों सहित अयोध्याधिपति श्री दशरथ जी महाराज पुरवासियों को सुख प्रदान करते हुए श्री जनक जी महाराज के भवन में आ गये, उनका दर्शन कर सभी अपने नेत्रों के परम फल को प्राप्त कर रहे थे।

जनक आइ आगे ह्वै लीना । यथा योग मिलि सबहिं प्रवीना ॥
सबहिं यथोचित आसन दीने । पूजे सविधि सबहिं सुख भीने ॥

श्री विदेहराज जी महाराज ने आगे आकर सभी का स्वागत किया, सभी से दक्षता पूर्वक यथा योग्य भेंट की तथा सुख पूर्वक यथोचित आसन प्रदान कर वे सभी का विधि–पूर्वक सुन्दर पूजन किये।

दान मान विनती करि राजा । तोषेउ सब विधि समधी साजा ॥
लहि ऋषि सबविधि प्रिय सेवकाई । दिये अशीष सबहिं सुखदाई ॥

श्री जनक जी महाराज ने आदर, दान व विनय पूर्वक अपने समधी श्री दशरथ जी महाराज को सभी प्रकार से संतुष्ट किया। अनन्तर ऋषियों व मुनियों ने सभी प्रकार की प्रियकर सेवा प्राप्त कर श्री विदेहराज जी को सुखप्रद आशीर्वाद दिया।

जनक बुलाये कुँअर बहोरी । कहे बचन मृदु प्रेमहिं घोरी ॥
भीतर जाहु कुँअर लै चारी । होय विदा की तुरत तयारी ॥

श्री जनक जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपने समीप बुलाकर प्रेम से सराबोर कोमल वाणी से कहा– आप चारो राजकुमारों को लेकर भीतर जायें और शीघ्र ही विदा की तैयारी करवायें।

सुनत कुँअर सँग चारहु भामा । गे लिवाय अन्तःपुर धामा ॥
देखि सुनयना हिय हरषानी । सह रनिवास प्रेम रस सानी ॥
आरति करि मुद मय वर चारी । चार सिंहासन लाय पधारी ॥

अपने श्रीमान् पिता जी के वचनों को सुनते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी चारो भामों (बहनोइयोंद्ध को लिवाकर अपने साथ अन्तःपुर चले गये। उन्हें देखकर श्री सुनैना जी हृदय में हर्षित हो गयीं तथा रनिवास सहित प्रेमरस में डूब गयीं। उन्होंने चारों दूलहों की आरती उतारी तथा उन्हे लाकर चार सुन्दर सिंहासनों बिठा दिया।

दो०–श्याम सुभग सुख कन्द लखि, मातु मनहिं बलिहार ।
विरह व्याधि कातर भई, गई लाज सब वार ॥४५३॥

परम सुशोभन, सुख के मूल श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज को देखकर अम्बा श्री सुनैना

जी बलिहारी हो गयीं तथा भावी वियोग व्यथा से दुखी हो अपने सम्पूर्ण संकोच को उन पर न्योछावर कर दीं अर्थात् लज्जा का परित्याग कर वे बिलख बिलख कर रुदन करने लगीं।

बहुरि धीर धरि मातु सुहाई । चारहु भाइ सविधि नहवाई ॥
भूषण वसन अनेक प्रकारा । चारहु वरन कीन्ह श्रृंगारा ॥

पुनः अम्बा श्री सुनैना जी ने धैर्य धारण कर चारो सुन्दर भ्राताओं श्री राम जी, श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण जी व श्री शत्रुघ्न जी को विधि पूर्वक स्नान कराया तथा अनेक प्रकार के आभूषण व वस्त्रों से उन चारों दूलहों का श्रृंगार किया।

भाँति अनेक रुचिर षट व्यंजन । मातु पवाई जन मन रंजन ॥
पुनि अँचवाय गंध गुनि दीनी । बीड़ा मधुर सुसिद्धि प्रवीनी ॥

पुनः श्री अम्बा जी ने छः रस वाले अनेक प्रकार के व्यंजन जन–जन के मन का प्रतिपालन करने वाले चारो दूलहों को पवाया। परम प्रवीणा श्री सिद्धि कुँवरि जी ने आचमन करा कर अपने चारो ननदोइयों को सुगन्धित इत्र लगा, मीठा ताम्बूल पवाया।

भेंट नेग बहु द्रव्य अपारा । पाये प्रिय चारिहुँ सुकुमारा ॥
विरह मगन तन थर थर काँपी । मातु सुनैना प्रीति न मापी ॥

चारो प्रियकर राजकुमारों ने भेंट के नेंग में असीमित द्रव्य प्राप्त किया। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– उस समय अम्बा श्री सुनैना जी विरह रस में डूबी हुई थर–थर काँप रही थी, उनकी प्रीति का अनुमाप नहीं किया जा सकता।

चारहु कुँअरि सिद्धि लै आयी । अम्ब लियेव निज गोद बिठायी ॥
प्रेम मगन दृग ढारत आँसू । सियहिं समर्पी रामहिं सासू ॥
यहि विधि सकल कुँअरि पति सौंपी । बोली वचन विरह रस चौंपी ॥

तदनन्तर चारो राजकुमारियों श्री सीता जी, श्री माण्डवी जी, श्री उर्मिला जी व श्री श्रुतिकीर्ति जी को श्री सिद्धि कुँअरि जी ले आयीं तब अम्बा श्री सुनैना जी ने श्री सीता जी गोद में बिठा लिया व प्रेम मग्न हो नेत्रों से अश्रु बहाती हुई श्री रामजी महाराज की सासू श्री सुनैना जी ने अपनी प्राण प्रिय पुत्री श्री सिया जी को श्री रामजी महाराज को समर्पित कर दिया। इसी प्रकार सभी राजकुमारियों को उनके पतियों को सौंपकर विरह रस से डूबी हुई श्री सुनैना जी बोलीं–

दो०– सुनहु प्राण प्रिय राम, रघुकुल भूषण जन सुखद ।
तुम परिपूरण काम, तदपि भाव वस नित रहहु ॥४५४॥

हे मेरे प्राण प्रिय, रघुकुल भूषण, जन सुखदायी श्री राम जी महाराज! यद्यपि आप तो सदैव पूर्ण–काम हैं तथापि नित्य ही अपने जनों की भावना के वशीभूत रहते हैं।

छं०– प्राण पियारी जन हितकारी, जीवन ज्योति सुसीता ।
प्राणन प्राण पिता की जानहु, धर्म शील सुविनीता ॥

सिद्धि कुँअरि सह कुँअरहुँ केरी, सरवस प्राण अतीवा ।
सिया बिना कस रहिहैं लालन, कुँअर सोच मम जीवा ॥

हे श्री राम जी! आप, मेरी प्राणों के समान प्रियतरा, जन–जन के हित में सदैव तत्पर रहने वाली, सभी के जीवन की ज्योति, धर्म, शील व सुन्दर विनय संयुक्ता परम सुन्दरी पुत्री श्री सीता जी को अपने पिता श्री जनक जी महाराज के प्राणों की प्राण ही समझिये। ये श्री सिया जू, श्री सिद्धि कुँवरि जी सहित राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की सर्वस्व व प्राणाधिका हैं। मुझे तो कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की ही हृदय में चिन्ता है कि वे अपनी अनुजा श्री सीता जी के बिना यहाँ किस प्रकार रह पायेंगे।

पुर परिजन परिवार सबहिं की, लाड़िलि प्राण प्रमाना ।
बहुतक कहौं कहाँ लौं प्यारे, जीवन भूरि महाना ॥
छमहु चूक सिगरी सिय केरी, अहै लली मम भोरी ।
देत सिखावन रहहि सदा शुचि, पालिय प्यार अथोरी ॥

हमारी लाड़िली श्री सिया जू निश्चित ही श्री मिथिलापुर–वासियों, परिजनों तथा अपने परिवार आदि सभी की प्राण हैं, हे प्यारे! मैं बहुत कहाँ तक कहूँ ? ये तो सभी जीवों के लिये महान संजीवनी बूटी सदृशा हैं। आप श्री सिया जू की सभी भूलों को क्षमा कर दीजियेगा क्योंकि मेरी लली जू! अत्यन्त ही भोली हैं पुनः आप सदैव ही पवित्र शिक्षा देते हुए अत्यन्त प्यार पूर्वक इनका पालन करते रहियेगा।

लली कष्ट नेकहुँ जो होई, प्राण तलफि मम जइहैं ।
रक्ष्य आपनी जान सुलालन, पलक पुतरि सम रखिहैं ॥
समय समय पाती पठवैहैं, होवहिं मम मन धीरा ।
सुनत मातु की विनय विकलता, हरषण मन नहिं थीरा ॥

हे लाल जी! यदि हमारी लली जू को किंचित भी दुख होगा तो मेरे प्राण छटपटा जायेंगे अतएव इन्हें अपनी रक्ष्य (रक्षा करने योग्य) समझ कर, उसी प्रकार रखियेगा जिस प्रकार पलकें नेत्रों की पुतलियों की रक्षा करती हैं। समय–समय पर आप पत्रिका भिजवाते रहियेगा जिससे मेरे मन को धैर्य होता रहे। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–अम्बा श्री सुनैनाजी की व्याकुलता–पूर्ण विनय को सुनकर सभी को हर्षित करने वाले प्रभु श्री राम जी महाराज के मन को भी विश्रान्ति नहीं प्राप्त हो रही थी।

दो०–और एक विनती करहुँ, सुनहुँ शरण सुख पाल ।
मिथिला कबहुँ न भूलियो, आवहिं सदा सुकाल ॥४५५॥

हे शरणागत जीवों का सुखपूर्वक पालने वाले रघुनन्दन श्री रामजी! सुनिये, मैं एक विनती और कर रही हूँ कि– आप इस मिथिलापुरी को कभी भी नहीं भूलियेगा तथा सदैव समय–समय पर यहाँ पधारते रहियेगा।

कुँअर सुधी नित रहै पियारे। राउर तेहिं के प्राण अधारे॥
वारेहिं ते तब बनेउ कुमारा। चरण शरण गहि प्रेम प्रसारा॥

हे परम प्रिय श्री राम जी! कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी की स्मृति आपको सदैव बनी रहे क्योंकि आप ही उनके प्राणों के आधार हैं, बाल्यावस्था से ही वे आपके बन गये हैं। अतः उन्हें चरणों की शरण में लेकर प्रेम प्रदान करते रहियेगा।

लोग कहहिं सो बाहर विलपत। राउर पिता गोद लै सिखवत॥
कहति कहति हिय भरेउ महाना। रुकेउ कंठ नहिं शब्द कढ़ाना॥

लोग कहते हैं कि वे बाहर विलाप कर रहे हैं तथा आप श्री के पिता श्री चक्रवर्ती जी उन्हें गोद में लेकर समझा रहे हैं। इतना कहते–कहते श्री अम्बा जी का हृदय अत्यधिक भर गया तथा गला अवरुद्ध हो जाने से शब्द नहीं निकल सके।

सात्विक भाव उदय सब भयऊ। मुरछि मातु प्रभु चरणन लयऊ॥
कछुक काल सुधि पाय सुमाता। ढारत नीर नयन विलपाता॥

उनके शरीर में सभी सात्विक भाव उदय हो गये तब अम्बा श्री सुनैना जी मूर्छित होकर श्री राम जी महाराज के चरणों में गिर पड़ीं, पुनः कुछ समय में चैतन्यता प्राप्तकर वे आँखों से अश्रु बहाते हुए विलाप करने लगीं।

राम कहा सुनु सासु प्रवीना। शोच त्यागि सुख सबहिं स्वधीना॥
दिनदिन आनँद अति अधिकाई। मोर मातु बच सत्य सदाई॥

श्री राम जी महाराज ने कहा हे हमारी परम विवेकवान सभी अम्बा जी (सासू जी)! सुनिये, आप सभी प्रकार की चिन्ता त्याग दीजिये क्योंकि सभी सुख तो स्वयं आपके आधीन है। हे अम्बा जी! मेरे वचन सर्वथा सत्य हैं कि आपका आनन्द प्रतिदिन अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त होता रहेगा।

दो०–सब प्रकार मम प्राण प्रिय, सिगरी तव सन्तान।
नहिं असत्य कछु भाषहूँ, मानहु वचन प्रमान॥४५६॥

आपकी सभी सन्तान मुझे सभी प्रकार से प्राण प्रिय हैं, मैं आपसे असत्य नहीं कह रहा, आप मेरे वचनों को सर्वथा सत्य ही समझिये।

बहु विधि राम सासु समुझाई। माँगी विदा चरण शिर नाई॥
अम्ब हमहिं अब आयसु दीजै। नेह छोह राखब हिय भींजै॥

अनन्तर श्री राम जी महाराज ने अपनी सासू श्री सुनैना जी को बहुत प्रकार से समझा–बुझाकर, उनके चरणों में शिर झुका प्रणाम कर विदा माँगते हुये कहा कि– हे श्री अम्बा जी! अब हमें आज्ञा दीजिये तथा अपने प्रेम व वात्सल्य से हमारे हृदय को आर्द्र बनाये रखियेगा।

चलत राम पद पकड़ि सुनैना। भै अधीर कछु कहत बनैना॥
ताही समय नगर नव नारी। जानि विदा की तुरत तयारी॥

श्री राम जी महाराज के चलते ही श्री सुनैना अम्बा जी ने उनके चरण पकड़ लिये तथा प्रेमातिशयता के कारण अधीर हो गयीं, उस समय उनसे कुछ भी कहते नहीं बन रहा था। उसी समय श्री मिथिला नगर की नव वधूटियाँ विदाई की शीघ्र तयारी जानकर–––

आई सदन सुनैना रानी । देखि सियहिं विलपहिं विरहानी ॥
सियहिं देहिं सब भेंट महानी । करै को लेख द्रव्य बहुतानी ॥

श्री सुनैना महारानी जी के भवन "सुनैना सदन"आ गयीं तथा श्री सीता जी को देख–देखकर विरह में डूबी हुई विलाप करने लगीं। वे सभी श्री सीता जी को इतनी अधिक भेंट देती हैं कि उस अपार द्रव्य की गणना कोई नहीं कर सकता।

विपुल नारि सिय सेवा माहीं । बाला–बाल अरपि सरसाहीं ॥
भूली सुधि रस रंग डुबाया । पुत्र पुत्रिका आनँद पाया ॥

बहुत सी स्त्रियों ने श्री सीता जी की सेवा में आनन्दपूर्वक अपने पुत्र व पुत्रियों को अर्पित कर दिया एवं सुधि बुधि भूल वे प्रेम रस के रंग में डूब गयीं कि– आज हमने पुत्र व पुत्रियों को जन्म देने का आनन्द प्राप्त कर लिया।

दो०–मनहु क्षुधातुर जीव कहँ, मिलो सुअमृत सिन्धु ।
सीय कृपा द्रुत ही मिली, पेखति गुनि निज बन्धु ॥४५७॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–जैसे किसी भूख से व्याकुल व्यक्ति को सुन्दर अमृत का सागर मिल गया हो उसी प्रकार कृपा पूर्वक श्री सीताजी उन बालकों को अपना बन्धु समझकर देखती हुई शीघ्र ही उनसे भेंट करने लगीं।

औरहुँ भूपन की वर नारी । आई रहीं धनुष मख भारी ॥
प्रेम विभोर बाल कोउ बाला । सियहिं दीन्ह करि भाव विशाला ॥

अन्य राजाओं की नारियों ने, जो विशाल धनुष यज्ञ में आयी हुई थीं, प्रेम विभोर होकर, अत्यधिक भाव–पूर्वक श्री सीता जी की सेवा हेत किसी ने पुत्र तो किसी ने पुत्री को अर्पित कर दिया।

रहा न कोउ अस मिथिला माहीं । सर्वस दियो न सीता काहीं ॥
जानि समय सिय जननि सुनैना । ललिहिं गोद लै ढारति नैना ॥

श्री मिथिलापुरी में ऐसा कोई शेष नहीं था जिसने श्री सीता जी को अपना सर्वस्व न दे दिया हो। विदाई का समय जानकर अम्बा श्री सुनैना जी अपनी लली श्री सिया जू को गोद में लेकर आँखों से अश्रु बहाने लगीं।

दै अशीष आतुरि लपटाई । शीष सूँघि मुख चूमि सुहाई ॥
जाहु लली अवधहिं धरि धीरा । बढ़वहु सुकृत सुयश सुख वीरा ॥

पुनः उन्हे आशीष देकर आतुरता पूर्वक हृदय से लिपटा लेती हैं तथा उनका शिरोघ्राण कर, सुन्दर मुख–कमल का चुम्बन करती हुई अम्बा श्री सुनैना जी बोलीं– हे लली जू! आप धैर्य धारण कर श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान कीजिये तथा हे लाड़िली पुत्रि! अपने श्री मान् दाऊ जी के सुकृत, सुकीर्ति

व सुख को वृद्धिंगत कीजिये।

मिथिला भवनहिं भयो अँधेरा। जीवन वृथा तुमहिं बिनु हेरा ॥
सुनतहिं सिया अम्ब उर लिपटी। रोवति हिचकति विरह की दपटी ॥

श्री मिथिलापुरी के राजमहल में तो आपके न रहने से अँधेरा ही हो जायेगा, यह जीवन भी आपके बिना व्यर्थ दिखाई पड़ रहा है। अम्बाजी की ऐसी बातें सुनते ही श्री सीता जी उनके हृदय से लिपट गयीं तथा स्वजनों के भावी वियोग से भयभीत हुई वे हिचकियाँ लेकर रुदन करने लगीं।

भाभी कहुँ माता उर माहीं। लिपटि लली तन तजब न चाहीं ॥
भनति कबहुँ हे भाभी भैया। कबहुँ कहति हे दाऊ मैया ॥

लाड़िली श्री सिया जू कभी अपनी भाभी जी तथा कभी अपनी अम्बाजी के हृदय से लिपट जाती थीं तथा उनके शरीरों को छोड़ना ही नहीं चाहती थीं। वे कभी तो हे भाभी जी, हे भइया जी, तथा कभी हे दाऊजी, हे अम्बा जी कह कहकर विलाप कर रही थी।

दो०–पहुँचावन सिय सब चली, सहित सुनैना नारि।
देखि देखि सिय चन्द्र मुख, विलपहिं सुरति विसारि ॥४५८॥

श्री सीता जी को पहुँचाने के लिए श्री सुनैना जी सहित सभी नारियाँ चलती हैं परन्तु श्री सिया जू के चन्द्रमा के समान मुख को देख–देखकर वे सभी स्मृति हीन हो विलाप करने लगीं।

फिरि फिरि सीय मातु पहँ जाई। भेंटति बदति नयन जल लाई ॥
कबहुँ सखिन सिय मिलि विलगाई। पुनि पुनि कबहुँ सिद्धि उर लाई ॥

श्री सीता जी लौट–लौटकर अपनी अम्बा जी के पास जा–जाकर भेंट कर रही थीं तथा आँखों में आँसू भरे हुए प्रलाप कर रही थीं। कभी श्री सीता जी अलग होकर सखियों से मिलतीं थीं तो कभी बार–बार उन्हें उनकी भाभी श्री सिद्धि कुँवरिजी हृदय से लगा लेती थीं।

करुणा विरह रहेउ तहँ छावा। कहि न जाय सो दशा दुखावा ॥
सिय पाले शुक सारिक मैना। फरफराहिं पिंजरे अति दैना ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री मिथिलापुरी में उस समय करुणा व विरह ही छाया हुआ था, उस अत्यन्त दुखदायी स्थिति का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता है। श्री सीता जी के द्वारा पाले हुये तोता, सारिका व मैना आदि पक्षी अत्यन्त दीन हो अपने पिजड़ों में फड़फड़ा रहे थे–––

रोवहिं वदहिं सुनहु वैदेही। जात प्राण तुम बिन सत नेही ॥
सीय परस लहि जो घर बेली। फूलहि सदा सुगन्ध सकेली ॥

–––तथा वे सभी रोते हुए कह रहे थे कि– हे विदेह राज नन्दिनी जू! सुनिये, यथार्थ रूप से आप ही हमें सच्चा प्रेम करने वाली हैं अतः हमारे प्राण आपके बिना पयान ही कर जायेंगे। भवन की वह लता जो श्री सीता जी का स्पर्श पाकर सदैव सुगन्धि को समेटे हुए पुष्पित बनी रहती थी।

मुरझि लटकि भुइ गिरी दुखारी। श्रवहिं डाल रस अश्रुहिं झारी॥
द्रुमन दशा जहँ पै अस लागी। चेतन कथा कहैं को पागी॥

वह मुरझा कर लटक गयी थी तथा दुखी होकर भूमि में गिर गयी थी। उसकी डालियों से रस चू रहा था जिसे देखकर ऐसा लग रहा था मानो वह अश्रु बहा रही हो। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते है कि– हे श्री हनुमान जी! जहाँ पेड़ व लताओं की ऐसी स्थिति हो गयी थी वहाँ के चैतन्य जीवों की अवस्था का वर्णन कौन कर सकता है।

दो०–हा सिय हा सिय शोर बहु, भीतर बहिर अकाश।
छाय रहेव हिय फटत सुनि, आँख ज्योति भई नाश॥४५९॥

वहाँ, हा सीते, हा श्री सिया जू, हा लाड़िली जू, हा प्यारी लली जू! इस प्रकार का महा आर्त–नाद राजमहल के अन्दर, बाहर तथा आकाश सर्वत्र छाया हुआ था जिसे सुन–सुनकर हृदय फटने लगता था तथा रुदन के कारण सभी की नेत्र ज्योति नष्ट–प्राय हो रही थी।

खग मृग रुदन देख अति भारी। धीरज सिन्धु फुटेव लय कारी॥
विरह विकल लक्ष्मीनिधि नारी। मुरछि मही सिय सिया पुकारी॥

वहाँ पशु–पक्षियों के अति भीषण रुदन देखकर सभी के धैर्य का प्रलयकारी समुद्र फूट गया था। उस समय श्री लक्ष्मीनिधि वल्लभा श्री सिद्धि कुँवरि जी, हे श्री सिया जू, हे सीते! कह–कह कर प्रलाप करती हुई अपनी ननँद श्री सिया जू के विरह में व्याकुल–मूर्छित हो कर भूमि में गिर पड़ी।

मातु पेखि मुख करुण सिया को। रुदत गिरी सुधि भूलि हिया को॥
क्रम क्रम भई अचेत सुनारी। मैथिलि विरह न सकी सम्हारी॥

अम्बा श्री सुनैना जी भी अपनी लाड़िली पुत्री श्री सीता जी के करुणा पूरित मुख–कमल को देखकर रुदन करती हुई हृदय की स्मृति भूल भूमि में गिर गयीं। इस प्रकार क्रम–क्रम से सभी मैथिल नारियाँ अपनी प्राण–प्रियतरा श्रीमन्मैथिली सिया जू के विरह को न सम्हाल कर स्मृति हीन हो गयीं।

नृप रनिवास करुण रस बोरा। को हम कहाँ सुधिहुँ नहिं थोरा॥
धरा देखि तब सियहिं अकेली। आयी पुत्रि सनेह सकेली॥

उस समय श्री विदेहराज जी महाराज का रनिवास करुण–रस से ओत–प्रोत हो गया था, हम कौन हैं, कहाँ हैं? ऐसी किंचित भी स्मृति उन्हें नहीं रह गयी थी। तब श्री भू देवी अपनी पुत्री श्री सीता जी को अकेली देख अपने पुत्रि–प्रेम को सँभाले हुये वहाँ आ गयी–––

औरहु जे सुर की वर वामा। सहित त्रिदेवी नारि ललामा॥
विरह व्यथा रस करुण समाहीं। धरत धीर पहुँचावन जाहीं॥

–––तथा अन्य भी जो देवांगनाओं सहित त्रिदेवियाँ (श्रीलक्ष्मीजी, श्रीसरस्वतीजी, व श्रीपार्वतीजी) आदि सभी सुन्दर नारियाँ थी वे सभी श्री सिया जू की विरह व्यथा से पीड़ित करुण रस में समायी हुई धैर्य धारण कर श्री सीता जी को पहुँचाने चलीं।

दो०– विरह उदधि पुनि बूड़ि सब, सकीं न सुरति सम्हार ।
महा करुण कटकइ छयी, लीन्हेसि सब कहँ मार ॥४६०॥

परन्तु वे सभी पुनः विरह के सागर में डूब गयीं और अपनी–अपनी स्मृति को नहीं सम्हाल सकीं, उन सभी को करुणा की महान विनाशकारी सेना ने आहत कर दिया था।

धरा विकल तिय रूप बनाई । प्रलपत परी जनक अँगनाई ॥
लषन कहा सुनु तैं हनुमाना । आँख देखि सब कहौं बखाना ॥

श्री सिया जू की विदाई के समय श्री भूमि देवी स्वयं स्त्री का रूप बनाये हुए व्याकुल होकर, श्री जनक जी महाराज के आँगन में प्रलाप करती हुई गिरी पड़ी थी। श्री लक्ष्मण कुमार ने कहा– हे हनुमान जी! सुनिये, यह मैं अपनी आँखों से देखा हुआ चरित्र वर्णन कर रहा हूँ।

रोवत धरणि भूमि सब अण्डा । भीग समान दिखात अखण्डा ॥
जिमि जल वरषि गये दिखरायी । मनहुँ महीपति सिंचेउ सुहाई ॥

श्री भूमि देवी के रुदन करने से सभी ब्रह्माण्डों की भूमि उसी प्रकार भीगी हुई दिखलायी पड़ रही थी जैसे जल की वर्षा होने के बाद दिखायी पड़ती है। वहाँ ऐसा लग रहा था मानों श्री जनक जी महाराज ने भूमि का सुन्दर सिंचन करवा दिया हो।

जनक सुवन भ्रातन सह आये । देखि सिया गइ लिपटि दुखाये ॥
भ्रात गोद लै हृदय लगाई । हा सिय कहत विरह बहु छाई ॥

तब जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने भ्राताओं सहित वहाँ आ गये जिन्हें देखकर विरह दुख से दुखी श्रीसीताजी उनसे लिपट गयीं, उनके भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें गोद में लेकर हृदय से लगा लिया तथा हा सीते! कहते हुए अत्यधिक विरह में समा गये।

आँसुन धार सिंयहि नहवाई । चीखत चित चंचल चिल्लाई ॥
अन्तिम दशा विरह की प्रगटी । मरण समान गिरेव भुइँ लपटी ॥
तबहिं भ्रात युत जनक भुआरा । सियहिं देखि नयनन जल ढारा ॥

श्री सीताजी के अग्रज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने आँसुओं की धारा से श्री सीता जी को स्नान करा दिया, उनका चित्त चंचल होकर चीत्कार कर रहा था तथा उनके शरीर में विरह की अन्तिम अवस्था प्रगट हो गयी थी जिससे वे मृतक–वत गिर कर भू लुण्ठित हो गये थे। उसी समय वहाँ श्री जनक जी महाराज अपने भ्राताओं सहित आ गये तथा अपनी पुत्री श्री सीता जी को देख–देखकर नेत्रों से अश्रु बहाने लगे।

दो०– ज्ञान विराग बहाय नृप, ललिहिं लिये उर लाइ ।
सिय सिय कहत वियोग वस, नयनन नीर नहाइ ॥४६१॥

श्री जनक जी महाराज ने अपने ज्ञान व वैराज्ञ को प्रेम के प्रवाह में प्रवाहित कर अपनी लाड़िली श्री सियाजू को हृदय से लगा लिया तथा हे सीते, हे सिया जू! कहते हुए वियोग के वशीभूत हो अपने नेत्रों के जल से नहा गये।

आनत हिय अब जात जानकी । प्रगटत थिति तन तनहिं हान की ॥
याज्ञबल्क देखत उठि धाये । कौशिक सहित बसिष्ठहुँ आये ॥

अब हमारी प्राण प्रिय तनया श्री जानकी जू विदा हो रही हैं यह बात हृदय में लाते ही उनके शरीर में मृत्यु के समान स्थिति उत्पन्न हो रही थी। उनकी यह अवस्था देखते ही वहाँ निमिकुल गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी दौड़कर आ गये तथा श्री विश्वामित्र जी के सहित श्री बशिष्ठ जी भी आ गये।

विविध भाँति सब लोग बुझाये । जानि अनवसर धीर बँधाये ॥
कुँअरहुँ की तब मुरछा जागी । लिये उठाय बसिष्ठ सुभागी ॥

उन सभी आचार्यो ने श्री विदेहराज जी महाराज को विभिन्न प्रकार से समझाया तथा अनुपयुक्त (पुत्री की विदाई का) समय जानकर धैर्य धारण कराया। उसी समय कुँवर श्री लक्ष्मीनिधी जी भी मूर्छा से जग गये और उन सौभाग्यशाली कुमार को श्री बसिष्ठ जी ने उठा लिया।

आँसु पोंछि बहु विधि समुझाये । पकड़ि हाथ आसन ढिग लाये ॥
गहि कर निज समीप बैठारी । समुझावत नयनन भरि वारी ॥

गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी ने कुँवर श्री लक्ष्मीनिधी जी के आँसुओं को पोछकर बहुत प्रकार से समझाया, तथा हाथ पकड़कर उन्हें अपने आसन के समीप ले आये। पुनः उनका हाथ पकड़ अपने समीप बिठा कर आँखों में आँसू भरे हुए उन्हें समझाने लगे।

लखि लखि सुन सुन दशा महाना । दशरथ सहित बरात सुजाना ॥
कसक कसे कड़के हिय माहीं । नयन नीर तन काँपत जाहीं ॥
गद्‌गद गिरा स्वेद तन आवा । कहुँ स्तब्ध विवर्ण लखावा ॥

वहाँ की महान करुण अवस्था को देख तथा सुन कर परम सुजान श्री दशरथ जी महाराज बरात सहित, ससमाज श्री विदेहराज जी महाराज के वियोग की पीड़ा को बलपूर्वक हृदय में दबाये हुए थे। परन्तु उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे तथा शरीर में कम्पन भी हो रहा था, वाणी गद्‌गद हो गयी थी, शरीर स्वेद युक्त हो रहा था और वे कभी चकित तो कभी विवर्ण (कान्तिहीन) से दिखायी पड़ रहे थे।

दो०—जो मुनि परमारथ पगे, सोउ विरह रस भीन ।
मारुत सुत विस्मय नहीं, प्रेम दशा द्रव कीन ॥४६२॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि हे मारुत नन्दन श्री हनुमान जी! उस समय परमार्थ पद में सतत पगे रहने वाले मुनि भी विरह रस में भीग गये थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि प्रेम की उच्चतम अवस्था ने ही उन्हें द्रवीभूत कर दिया था।

अधिक कहौं का कथा बढ़ाई । रामहु रहे नयन जल छाई ॥
हम सब बन्धु विरह रस भीने । कसक हृदय मारति मन छीने ॥

हे हनुमान जी! मैं कथा को विस्तार कर और अधिक क्या कहूँ? उस समय श्री राम जी

महाराज भी अपने नेत्रों में अश्रु भरे हुए थे। हम सभी भ्रातृगण भी विरह रस में ओत प्रोत हो गये थे। उस समय की विरही पीड़ा हमारे मन को अपहृत कर हृदय को दुखी कर रही थी।

भूले तनहिं चित्र से चितवैं । शून्य भये नहि देख करतवैं ॥
लाज करति कछु सबन सहाया । तापर भयो विमोह अमाया ॥

हम सभी अपने शरीर की स्मृति भूल चित्र लिखी मूर्ति के समान उन्हे निहार रहे थे तथा शून्य से हो जाने के कारण वहाँ की गतिविधि को नहीं देख पा रहे थे। लज्जा हम सभी की कुछ सहायता अवश्य करती थी परन्तु हमें वहाँ निर्मल मोह ने अच्छादित कर लिया था अर्थात् लज्जा के कारण हम चैतन्य होने का प्रयास तो करते थे परन्तु ससमाज श्री विदेहराज जी महाराज के निर्मल प्रेम के कारण हमारा प्रयास विफल हो जाता था।

बचे न कोउ विरह रस चाखे । यथा योग सबहिन उर भाषे ॥
शतानन्द गुरु आयसु कीन्हा । अब शुभ लग्न चहिय चल दीन्हा ॥

उस समय वहाँ ऐसा कोई भी शेष नही था जिसने विरह रस का पान न किया हो तथा अपने भाव की स्थिति के अनुसार सभी के हृदय ने उसे प्रगट भी कर दिया था। तदनन्तर रघुकुल आचार्य श्री बशिष्ठ जी व निमिकुल पुरोहित श्री शतानन्द जी ने आज्ञा दी कि अब शुभ लग्न आ गया है अतः प्रस्थान कर देना चाहिए।

आयसु अकनि जनक मँगवाई । रतन पालकी सुभग सजाई ॥
पुनि पुनि सीतहिं हृदय लगावैं । करत प्यार बहु विधि समुझावैं ॥

गुरुजनों की आज्ञा स्वीकार कर मिथिला नरेश श्री जनकजी महाराज ने सुन्दर सजायी हुई रत्न पालकी मँगवाई। वे बार–बार अपनी प्रिय पुत्री श्री सीता जी को हृदय से लगा–लगाकर प्यार करते तथा विविध प्रकार से समझा रहे थे।

लली लपटि दाऊ कहि रोती । कहि न जाय गति तहँ विरहौती ॥
सीय दशा लखि निज परिवारा । सहति विरह भव क्लेश अपारा ॥

जनक लली श्री सिया जू अपने पिता श्री मान् जनक जी महाराज से लिपट–लिपट दाऊ–दाऊ कहती हुई रुदन कर रही थीं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उस समय की विरहावस्था का बखान नहीं किया जा सकता है। श्री सीता जी अपने परिवार की अवस्था को देख–देखकर विरह से उत्पन्न असीमित दुख सहन कर रही थी।

दो०– करुण विरह परवश लखे, जनक सकल परिवार ।
सियहिं चढ़ायो पालकिहिं, जानि लगन सुख सार ॥४६३॥

तब अपने सम्पूर्ण परिवार को विरह के वशीभूत करुणा से पूरित देखकर श्री विदेहराज जी महाराज ने, सुखों की सारभूता लग्न समझकर अपनी प्राण समान प्रिय पुत्री श्री सीता जी को पालकी में चढ़ा दिया।

सुमिरि शिवा शिव सुखद गणेशा। सकल कुँअरि पधराय नरेशा॥
सियहिं बुझाय कहेव तव भइया। अइहैं अवधहिं बने लिवइया॥

पुनः श्री पार्वती जी, श्री शिव जी व सुख प्रदायक श्री गणेश जी का स्मरण कर श्री जनक जी महाराज ने अपनी सभी पुत्रियों (श्री माण्डवी, श्री उर्मिला व श्री श्रुतिकीर्ति आदि राजकुमारियों) को पालकियों में बिठाया और श्री सीता जी से समझाते हुये कहा कि– आपके भइया श्री लक्ष्मीनिधि जी 'लिवैया' बन कर श्री अयोध्या पुरी आपको लिवाने आयेंगे।

धर्म कर्म शुभ रीति बताई। बाँधत ललिहिं सुधीर सहाई॥
बाल बालिका जो सिय पाये। मातु निदेश सबहिं सो आये॥

श्री विदेहराज जी महाराज धर्म, कर्म तथा शुभ रीति बतलाकर धीरे–धीरे श्री सीता जी को सुन्दर धैर्य बँधा रहे थे। श्री सीता जी ने जिन बालक व बालिकाओं को सेवा के लिए प्राप्त किया था वे सभी अपनी माताओं की आज्ञा से वहाँ आ गये।

तिरहुत राव सबहिं कर प्यारा। दीन्हे भूषण वसन अपारा॥
सबहिं पालकी अमित मँगाई। भेजे सिय सँग हरषि चढ़ाई॥

न सभी को तिरहुत नरेश श्री जनकजी महाराज ने प्यार कर असीमित आभूषण व वस्त्र प्रदान किये तथा असीमित पालकियाँ मँगवाकर उन सभी को उनमें चढ़ा, हर्ष पूर्वक श्री सीता जी के साथ भिजवा दिया।

पुत्रि न ऊबै अवध मझारी। दीन्ही दासी सखी अपारी॥
सीतहिं सब विधि सेवन हारी। लखि रुख कार्य सम्हारन वारी॥

श्री अयोध्यापुरी में पुत्री श्री सिया जू उदास न हो, इस हेतु श्री विदेहराज जी ने श्री सीता जी को असीमित दासियाँ व सखियाँ प्रदान कीं, जो सभी प्रकार से अपनी स्वामिनी श्री सिया जी की सेवा करने वाली तथा उनकी रुचि को देखकर कार्यो को सँवारने वाली थीं।

दो०–सिय सुख सेवा हित नृपति, करि करि सूक्ष्म विचार।
सबहिं पठाये अवध कहँ, वस्तु अनेक सँभार॥४६४॥

मिथिला नरेश श्री जनक जी महाराज ने श्री सीता जी के सुख का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार कर उनकी सेवा के लिए अनेक वस्तुओं को सभी प्रकार से सम्हाल कर श्री अयोध्यापुरी भिजवा दिया।

सीय चलत अस को जग जाया। जेहिं न करुण रस आय दबाया॥
मिथिला कै को करै बखाना। व्याकुल विरह करुण रस साना॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– श्री सीता जी की विदाई के समय संसार में जन्म धारण करने वाला ऐसा कौन सा व्यक्ति है, जिसे करुण रस ने आकर ग्रस्त न कर लिया हो फिर श्री मिथिलापुरी की अवस्था का बखान कौन कर सकता है? वह तो श्री सिया जू वियोग के कारण व्याकुल तथा करुण रस में पूर्णतया डूबी हुई थी।

चलत जानकी सगुन सुहाये। होन लगे बहु भाँति सुभाये ॥
विप्र सचिव परिजन परिवारा। सहित बन्धु मिथिलेश भुआरा ॥

श्री जानकी जी के श्वसुरालय प्रस्थान के समय विभिन्न प्रकार के बहुत से शुभ सगुन सहज ही दिखाई देने लगे थे। श्री मिथिलेश जी महाराज ब्राह्मण, मंत्री, परिजन, परिवार तथा अपने भ्राताओं सहित–––

चले संग पहुँचावन हेता । विरह करुण हिय किये निकेता ॥
जानि समय बहु वाद्य सुबाजे । सकल बराती वाहन साजे ॥

–––अपने हृदय में विरह व करुणा का निवास बनाये हुए श्री सीता जी को पहुँचाने के लिए साथ साथ चल दिये। इस प्रकार सुन्दर समय जानकर बहुत से वाद्य बजने लगे तथा सभी बरातियों ने अपने अपने वाहन सजा लिये।

दशरथ राउ द्विजन्ह शिर नाई । दान मान करि किये बड़ाई ॥
चरण रेणु निज शीष चढ़ाया । आशिष पाय हिये हरषाया ॥

अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज ने विप्रगणों को शिर झुका प्रणाम कर दान व सम्मान दे उनकी स्तुति की तथा उनकी चरण धूल अपने शिर में लगा आशीर्वाद प्राप्त कर हृदय में हर्षित हुये।

दो०–पुनि पुनि सबहिं प्रणाम करि, सुमिरि गणेश महेश ।
मुदित निशान बजावते, यानहिं चढ चढ़े नरेश ॥४६५॥क॥

तदनन्तर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज बारम्बार सभी को प्रणाम कर श्री गणेश जी व भगवान श्री शिव जी का स्मरण करते हुए आनन्द पूर्वक नगाड़े बजवाते हुए रथ में सवार हो गये।

चलत महीपहिं जानि सुर, वरषहिं सुमन अपार ।
मुदित हनहिं वर दुन्दुभी, जय जय करत पुकार ॥ख॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज को प्रस्थान करते हुए जानकर देवताओं ने फूलों की असीमित वर्षा की तथा वे आनन्द पूर्वक दुन्दुभी बजाते हुए जय घोष करने लगे।

दशरथ राव सहित रनिवासा । सहित समाज चले सुखवासा ॥
प्रेम विवश निमि नगर समाजा । पीछे चली भूलि सब काजा ॥

अपने रनिवास व समाज सहित श्री दशरथ जी महाराज सुखपूर्वक अपने निवास स्थल श्री अयोध्यापुरी चल दिये। उनके पीछे–पीछे श्री जनकपुरी की सम्पूर्ण समाज सभी कार्यो को भूल कर प्रेम के वशीभूत हो चलने लगी।

दशरथ करि वर विनय सुहायी । शील सनेह बचन निपुनाई ॥
फेरे सबहिं कृतज्ञ कृपाला । बोलि याचकन किये निहाला ॥

कृपालु श्री दशरथ जी महाराज ने शील, प्रेम व वाक्य चातुर्य पूर्वक सुन्दर विनय कर कृतज्ञ

बने हुए सभी को वापस लौटा दिया और याचकों को बुलाकर आप्त काम कर दिया।

मागध सूत बन्दि बहु गायक । दिये अमित धन कौशल नायक ॥
दै आशीष रघुवर उर राखी । फिरे सकल मुख जय जय भाषी ॥

कौशल नरेश श्री दशरथजी महाराज ने मागध (भाँट), सूत, बन्दी तथा गायक जनों को असीमित धन प्रदान किया। वे सभी अपने ह्रदय में रघुनन्दन श्री राम जी महाराज को बसाये हुए, उन्हें आशीर्वाद देकर जयनाद करते हुए वापस हो गये।

जनक चले नृप सँग सँग जाहीं । फिरन तिनहिं मन भावत नाही ॥
कछुक दूर चलि यानहिं रोकी । उतरि अवध नृप कहे विलोकी ॥

श्री जनक जी महाराज श्री दशरथ जी महाराज के साथ–साथ चले जा रहे थे उन्हें वापस होना मन में भी अच्छा नहीं लग रहा था। तब कुछ दूर चलने के उपरान्त रथ को रोककर अयोध्यापति श्री दशरथ जी महाराज उन्हें देखकर बोले–

दो०– फिरहिं महीपति कुँअर सह, आये इत बड़ि दूर ।
कहत भुकारे सो भरे, नयन रहे जल पूर ॥४६६॥

हे राजन! आप यहाँ बहुत दूर तक आ गये हैं अतएव अब कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित लौट जाइये, ऐसा कहते हुए उनकी आवाज भर गयी तथा नेत्र अश्रुपूरित हो गये।

सुनत जनक अति भये अधीरा । गद्गद् शब्द सुलोचन नीरा ॥
चरण शीष धरि कह कर जोरी । केहिं विधि करौं बड़ाई तोरी ॥

उनके प्रेम परिपूर्ण वचन सुनते ही श्री जनक जी महाराज अत्यन्त अधीर हो गये, उनकी वाणी गद्गद् हो गई तथा नेत्रों में अश्रु भर आये तब वे उनके चरणों में अपना शिर रख प्रणाम कर, हाथ जोड़ बोले– हे नाथ! मैं आपकी किस प्रकार से प्रशंसा करूँ।

सकल छमेव अपराध हमारे । सेवा बनी न योग तुम्हारे ॥
सबहिं भाँति मैं लहेउँ बड़ाई । कृपा तुम्हारि सुनहु नृपराई ॥

हे अवधेश! आप हमारे सभी अपराधों को क्षमा कर दीजियेगा क्योंकि हमसे आपके अनुकूल कोई सेवा नहीं बन पड़ी। हे राजन! सुनिये, आपकी कृपा से मैंने सभी प्रकार से महान यश प्राप्त कर लिया है।

अस कहि पुनि मुख बोल न आवा । दशरथ राउ लिये उर लावा ॥
करि सम्मान प्रशंसा भूरी। दिये भाव प्रेमहिं भरि पूरी ।।

ऐसा कहकर कण्ठ अवरुद्ध हो जाने के कारण उनके मुख से आवाज न निकल सकी। तब चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने उन्हें ह्रदय से लगा लिया और आदरपूर्वक बार–बार प्रशंसा कर उन्हें भाव व प्रेम से परिपूर्ण कर दिये।

हिलि मिलि दोऊ नृपति महाना । चलन चहे भरि विरह सुजाना ॥
कुँअरहिं करत प्रणाम उठाई। दशरथ लीन्हे ह्रदय लगाई ॥

इस प्रकार दोनों श्रेष्ठ व परम विज्ञ महाराज श्री विदेहराज जी व श्री दशरथ जी परस्पर मिल–भेंट कर विरह में भरे हुए चलने की इच्छा प्रकट किये। जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रणाम करते हुए देखकर श्री दशरथ जी महाराज ने उठाकर हृदय से लगा लिया।

दो०– ललन मोहिं रघुचन्द सम, प्यारे लगत सुजान ।
रामहुँ मानत प्राम सम, सहित भ्रात सुख दान ॥४६७॥

पुनः उन्होने कहा– हे परम बुद्धिमान लाल श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप मुझे रघुकुल के चन्द्रमा श्री राम जी के समान ही प्रिय लगते हैं, तथा भ्राताओं सहित श्री राम जी भी आपको प्राणों के सदृश प्रिय तथा परम सुख प्रदायक समझते हैं।

आयहु अवध सुखद सुकुमारे । पितु निदेश लहि प्राण अधारे ॥
अस कहि बार बार उर लाई । चूमि वदन बहु विधि समुझाई ॥

हे सुख प्रदायक तथा प्राणाधार कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप अपने पिता श्रीमान् जनक जी महाराज से आज्ञा प्राप्तकर श्री अयोध्या पुरी आइयेगा, ऐसा कहकर उन्होंने बार–बार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगाया तथा उनका मुख चुम्बन कर बहुत प्रकार से समझाया।

फफकत कुँअर दण्डवत करिकै । चलेउ विकल विरहहिं उर भरिकै ॥
गुरु बसिष्ठ कौशिक कहँ जाई । बन्दे नृपति हृदय अकुलाई ॥

तब चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज को दण्डवत कर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी फफक कर रोते हुए हृदय में विरह भरकर व्याकुल हो वहाँ से चल दिये। श्री जनक जी महाराज ने जाकर श्री गुरुदेव श्री वसिष्ठ जी व श्री विश्वामित्र जी के चरणों की व्याकुल हृदय वन्दना की–––

सुभग अशीष कृपा लहि राजा । बन्दी सिगरी मुनिन समाजा ॥
कुँअरहिं करत प्रणामहिं देखी । दोउ मुनि हरषे प्रेम विशेषी ॥

–––तथा उनकी सुन्दर आशीष व कृपा प्राप्त कर श्री जनक जी महाराज ने सम्पूर्ण मुनि–समाज की वन्दना की। कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रणाम करते हुए देखकर दोनों मुनि श्रेष्ठ श्री बसिष्ठ जी व श्री विश्वामित्र जी प्रेमपूर्वक विशेष हर्ष में भर गये।

हिय लगाय बहु भाँति दुलारे । आशिष दीन्हें अधिक सुखारे ॥
सीय राम कहँ प्राणन प्यारे । होहु लाल सब गुणन अगारे ॥
सुनि अशीष नयनन जल लाई । बन्दे सकल मुनिन रस छाई ॥

युगल मुनिराज कुमार को हृदय से लगा बहुत प्रकार से दुलार, अत्यधिक सुख मे भरकर आशीर्वाद दिये कि– हे कुमार! आप श्री सीताराम जी को प्राण प्रिय व समस्त गुणों के धाम बने रहें। उनके आशिर्वचनों को सुनकर कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अश्रुपूरित हो गये तथा प्रेम–रस में समाये हुए सभी मुनियों की वन्दना किये।

दो०– सहित सुवन मिथिला महिप, आये रघुपति पासु ।
हिय लगाइ जामात सब, भेटे ढारत आँसु ॥४६८॥

पुनः श्री मिथिलेश जी महाराज अपने पुत्र कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित श्री राम जी महाराज के समीप आये तथा सभी जामाताओं को हृदय लगाकर नेत्रों से अश्रु बहाते हुए भेंट किये।

कुँअरहुँ मिले यथा विधि रामा । अनुभव बिन को कहै अकामा ॥
जनक कहे रघुवीर कृपाला । अहो सदा प्रणतन प्रतिपाला ॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी विधिपूर्वक अपने प्रिय बहनोई श्री राम जी महाराज से भेंट किये। श्रभ लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे हनुमान जी! श्याल भाम के उस निष्काम मिलन को अनुभव के बिना कौन बखान कर सकता है। अनन्तर श्री जनक जी महाराज ने कहा– हे परम कृपालु, रघुकुल प्रवीर श्री रामजी महाराज! आप तो सदैव ही प्रणत–जनों का प्रतिपालन करने वाले हैं।

परब्रह्म परमारथ अहहू । स्वयं स्वयं–विद अन्य न गमहू ॥
शिव भुसुण्डि सनकादिक धेया । अहहु नाथ योगिन गति झेया ॥

आप तो पूर्णतम परब्रह्म व परमार्थ पद स्वरूप, स्वयमेव ही स्वयं को जानने वाले, तथा किसी अन्य के द्वारा न जाने जा सकने वाले हैं। हे नाथ! आप तो भगवान श्री शिव जी, भक्तवर श्री काग भुसुण्डिजी व ऋषि–प्रवर श्री सनकादिकों के ध्येय, योगियों की गति तथा एक मात्र जानने योग्य हैं।

नित्य एक–रस रसमय नाथा । गुणागुणहिं लखि भयों सनाथा ॥
परम ज्योति निर्मल गुण पारा । मोक्ष हेतु जन सुख दातारा ॥

हे नाथ! आप नित्य, एक समान, रसस्वरूप तथा गुणों व अवगुणों से परे हैं आपको देखकर मैं सनाथ हो गया। आप परम प्रकाश स्वरूप, निर्मल, तीनों (सत, रज व तम) गुणों से परे, मोक्ष के हेतु, निज जनों को सुख प्रदान करने वाले तथा–––

परम तत्व जेहिं नेति बखाना । मन वाणी जहँ लौट सुजाना ॥
सोइ प्रभु पेखेव मैं भरि चयना । भयो विषय नेत्रहिं सुख दयना ॥

–––वह परम तत्व हैं, जिनका वेदों ने नेति नेति कहकर बखान किया है। जहाँ मन व वाणी न पहुँचकर वापस आ जाते हैं अर्थात् मन व वाणी की भी गति जहाँ नही है, ऐसे परम सुजान प्रभु आप का मैंने आनन्द में भर कर दर्शन किया और आप मेरे नेत्रों के सुखदायक विषय बने हुए हैं।

दो०–कृपा रूप तन प्रगटि प्रभु, लीला ललित अहेत ।
सुख स्वरूप जग हित निरत, जीवन फल सब लेत ॥४६९॥

हे परम कृपामय प्रभु! आप तो मनुष्य शरीर में प्रगट होकर निर्हेतुकी सुन्दर लीला सम्पादित कर रहे हैं। हे सुख स्वरूप तथा संसार के हित में तत्पर प्रभु श्री राम जी! आपका दर्शन कर सभी जीव जीवन धारण करने के चरम फल को प्राप्त कर रहे हैं।

आपन भाग कहौं किमि गाई । शेष शारदा अन्त न पाई ॥
निज जन जानि मोहिं अपनायो । सबहिं भाँति यश पात्र बनायो ॥

मैं अपने सौभाग्य का किस प्रकार बखान करूँ, उसका पार तो वर्णन कर श्री शेष जी व श्री सरस्वती जी भी नहीं पा सकते हैं क्योंकि आपने मुझे अपना सेवक समझ कर अपना लिया है तथा

सभी प्रकार से यश का पात्र बनाया है।

कृपा करहु पूजै मन कामा। नव नव भाव बढ़ै अविरामा॥
परमैकान्तिक सेव अमाना। दरश परश प्रिय प्रेम महाना॥

आप मुझ पर ऐसी कृपा करें कि– मेरी मनोकामना पूर्ण हो तथा आपके प्रति मेरे मन में सुन्दर नवीन नवीन भाव अविरल गति से वृद्धि को प्राप्त करते रहें। मैं अमानी बना हुआ आपकी परमैकान्तिक सेवा करता रहूँ तथा आपके प्रियकर दर्शन, सुखदायी स्पर्श व प्रिय महान प्रेम को प्राप्त करूँ।

तव पद पाइ परम सुखदायक। रहौं मुदित मन रघुकुल नायक॥
अस कहि राव मगन मन भयऊ। राम अकनि आश्वासन दयऊ॥

हे रघुकुल के नायक श्री राम जी महाराज! आपके महान सुखदायी चरणों को प्राप्त कर मैं सदैव मन मुदित बना रहूँ। ऐसा कहकर श्री जनक जी महाराज मन मग्न हो गये तब उनके दैन्य युक्त वचनों को श्रवण कर श्री राम जी महाराज ने उन्हें सान्त्वना प्रदान की।

मिथिला विलग एक छन नाहीं। रहौं सदा मानहु मन माहीं॥
राउर ओझल कबहुँ न ह्वैहों। दिव्य दृष्टि पथ माहिं भ्रमैहौं॥
यहिं प्रकार श्वसुरहिं समुझाई। कहे श्याम सुनियहिं नृपराई॥

हे महाराज! आप अपने मन में यह समझ लें कि मैं श्री मिथिला पुरी से एक क्षण को भी अलग नहीं हूँ तथा मेरा नित्य ही यहाँ निवास है। मैं कभी भी आपसे अदृश्य नहीं होऊँगा तथा सदैव ही आपके दिव्य दृष्टिपथ में विचरण करता रहूँगा। अपने ॖवसुर को इस प्रकार समझाकर श्याम सुन्दर श्रीरामजी महाराज ने पुनः कहा– हे श्री महाराज! सुनिये,

दो०– गुरु वसिष्ठ कौशिक सरिस, पितु सम मोरे आप।
कृपा छोह रखिबो सदा, प्रीति अनूप अनाप॥४७०॥

आप मेरे लिए गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी, श्री विश्वामित्र जी तथा श्रीमान् पिता जी के समान ही हैं अतः मुझ पर सदैव अपनी अनुपमेय, अपरिमित कृपा, वात्सल्य व प्रीति बनाये रखियेगा।

अस कहि कीन्ह प्रणाम कृपाला। लीन्हे हृदय लगाय भुआला॥
मधुर मधुर मंगल पढ़ राई। आशिष दीन्ह हृदय हरषाई॥

ऐसा कहकर कृपालु श्री राम जी महाराज ने अपने श्वसुर श्री विदेहराज जी महाराज को प्रणाम किया तब श्री जनक जी महाराज ने उन्हें हृदय से लगा लिया और मधुर स्वर से मंगलानुशाषन कर हर्षित हृदय श्री राम जी महाराज को आशीर्वाद प्रदान किया।

भरत लखन रिपुहन पुनि भेटे। दीन्हेव आशिष प्रेम लपेटे॥
बहुरि कुँअर रघुनाथहिं भेंटे। हिय लगाय फफकत दुख मेटे॥

पुनः श्री जनक जी महाराज अपने अन्य जामाताओं श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी व श्री

शत्रुघ्न कुमार जी से भेंट किये तथा प्रेम प्रपूरित हो उन्हें आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् फूट–फूट कर रुदन करते हुए कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज को हृदय से लगाकर भेंट किये तथा अपनी विरह पीड़ा का किंचित शमन किये ।

यथा राम सब भ्रातन मीले । चिपटि चिपटि हिय प्रेम रंगीले ॥
रामहिं निरखि नयन जल ढारी । कहेउ जाहु प्रभु अवध सिधारी ॥

श्री राम जी महाराज के समान ही कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रेम भाव में रँगे हुए सभी श्री राम भ्राताओं के हृदय से लिपट–लिपट कर भेंट की तथा श्री राम जी महाराज को देख नेत्रों से अश्रु बहाते हुए बोले– हे प्रभु! आप श्री अयोध्यापुरी को प्रस्थान करें।

अलग होइ अब जीवन बीती । कहत भयो बुधि चित्त अतीती ॥
धरणि गिरेउ नेकहुँ सुधि नाहीं । देखे विकल राम तेहिं काहीं ॥

अब आपसे अलग होकर जीवन व्यतीत करना पड़ेगा, ऐसा कहते ही उनकी बुद्धि व मन निष्क्रिय हो गये तथा वे भूमि में गिर पड़े, उन्हें किंचित भी स्मृति न रही। श्री राम जी महाराज ने देखा कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त व्याकुल हो गये हैं–––

कछुक काल महँ विकसत वानी। सखे श्याम हा प्राण प्रमानी ॥
राम उठाय ताहि उर धारे। कछुक चेत लखि नृपति उचारे ॥

–––उनकी वाणी कुछ समय में रुक–रुककर निकल रही है और वे हाय सखे! हा श्याम सुन्दर, हा प्राणाधार कहने लगे तब श्री राम जी महाराज उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिये तब कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की देह में कुछ चैतन्यता देखकर श्री जनक जी महाराज ने कहा–

दो०–आप पधारहिं रथहिं अब, अवधहिं करैं पयान ।
कुँअरहिं रथ बैठाय के, भेजहिं पुर चित मान ॥४७१॥

हे रघुनन्दन! आप अब रथारूढ़ हो श्री अयोध्या पुरी प्रस्थान करें। मन में ऐसा निश्चय है कि कुमार को चैतन्यता प्राप्त होते ही हम इन्हे रथ में बिठाकर श्री मिथिला पुरी भिजवा देंगे।

पुनि पुनि कुँअरहिं धीर धराई । हिय लै नयनन नीर बहाई ॥
जनकहिं बन्दि सुखद सरसाया । हरषि चढ़े रथ रघुकुल राया ॥

बार–बार कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को धैर्य धारण करा, हृदय से लगा कर आँखों से अश्रु बहाते हुए परम सुख प्रदायक रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज प्रसन्न मना श्री जनक जी महाराज की वन्दना कर हर्षित हृदय रथ में विराज गये।

चलत राम सब चली बाराता। बजत निसान सुखद बह वाता ॥
वरषहिं फूल छनहिं छन देवा । वाद्य बजावहिं करि शुभ सेवा ॥

श्री रामजी महाराज के श्री अयोया पुरी प्रस्थान करते ही सम्पूर्ण बारात चल पड़ी, नगाड़े बजने लगे तथा सुखदायी पवन प्रवाहित होने लगा। देवतागण प्रत्येक क्षण पुष्प वृष्टि व शुभ सेवा करते हुए विविध प्रकार के वाद्य बजाने लगे।

प्रीति रीति वर्णत सब कोऊ। जाहिं मुदित मन नेह संजोऊ॥
कछुक दूर मिथिलापुर तेरे। पाकर ग्राम रहा पथ हेरे॥

सभी बाराती जन श्री जनक जी महाराज के परिवार की प्रीति–रीति का वर्णन करते हुए आनन्दित मन प्रेम को हृदय में बसाये हुए प्रस्थान कर रहे थे। श्री मिथिलापुरी से कुछ दूरी पर मार्ग में एक पाकर नामक ग्राम था।

प्रथम वास तहँ जनक बनावा। मिथिला सम सब भाँति सुहावा॥
ता दिन जानि समय अनुकूला। बसे बराती सुख मन भूला॥

वहाँ श्री जनक जी महाराज ने बारातियों के लिए श्री मिथिलापुरी के समान ही सभी प्रकार से सुन्दर प्रथम आवास बनवाया था। अतएव उस दिन रुकने योग्य समय समझकर सभी बाराती सुखपूर्वक अपने–अपने मन को भुलाये हुये वहाँ निवास किये।

दो०– सुख सह सुखद बरात वर, बसी अमित सुख पाय।
मज्जन भोजन शयन शुभ, सुभग शान्ति हिय छाय॥४७२॥क॥

श्री राम जी महाराज की सुखदायी व सुन्दर बारात सुखपूर्वक असीमित सुख प्राप्त करते हुए उस निवास गृह मे बस गयी और स्नान, भोजन तथा शुभ शयन से सभी के हृदय में सुन्दर शान्ति का निवास हो गया।

मिथिलहिं सोये मनहुँ सब, गिने मनहिं मन लोग।
सुखद शान्ति विश्राम हिय, जस समाधि सुख योग॥ख॥

वे बाराती जन अपने मन ही मन में यही समझ रहे थे कि सभी लोग मानों श्री मिथिलापुरी में ही शयन किये हो। विश्राम करते समय उनके हृदय में उसी प्रकार की सुखदायी शान्ति की अनुभूति हो रही थी जैसे योगी को योग–समाधि में होती है।

इहाँ जनक रघुवीर पयाना। देखत रहे समय अधिकाना॥
मग रज उड़त न जबहिं दिखाई। विलपत कुँअरहिं रथहिं चढ़ाई॥

इधर श्री जनक जी महाराज श्री राम जी महाराज के प्रस्थान को देख रहे थे, देखते–देखते जब अधिक समय हो गया और मार्ग की उड़ती हुई धूल न दिखाई पड़ी तब वे विलाप करते हुए कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को रथ में बैठा कर–––

आये भवन विरह रस छाये। मिथिला मनहिं न नेकहुँ भाये॥
देखी विकल सबहिं रनिवासा। रोवत कहि सिय राम अवासा॥

–––विरह में सने हुए अपने भवन आ गये, उस समय श्री मिथिलपुरी उनके मन को किंचित भी नहीं सुहा रही थी। राजभवन में श्री जनक जी महाराज ने सम्पूर्ण रनिवास को, हे श्री सीता जी, हे श्री राम जी कहकर व्याकुल हो रुदन करते हुए देखा।

याज्ञबल्क गुरु गौतम सुवना । दीन्हे सिखवन शोकहिं धुवना ॥
सिद्धि सदन कुँअरहिं भेजवायो । विरह व्यथा सब सुधिहिं भुलायो ॥

अनन्तर गुरुदेव श्री याज्ञबल्क जी व पुरोहित गौतम नन्दन श्री शतानन्द जी ने दुख–निवारण हेतु श्री जनक जी महाराज को सुन्दर उपदेश दिया। पुनः उन्होंने कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी को सिद्धिसदन भिजवाया तथा प्रभु श्री राम जी महाराज के वियोग जन्य पीड़ा से अपनी सम्पूर्ण स्मृति भूल गये।

मिथिलापुर की विरह विषादा । अकथनीय प्रभु प्रेम प्रसादा ॥
कुँअरहिं चेत चौथ दिन भयऊ । सुनत राम यश मन बुधि लयऊ ॥
मात पिता गुरु आयसु मानी । फल रस लियो कछुक रसखानी ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! श्री मिथिलापुरी की, प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेम की प्रसाद स्वरूपा वियोग जनित पीड़ा तो अवर्णनीय ही थी। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को चौथे दिन चैतन्यता आई तब वे श्री राम जी महाराज की सुन्दर कीर्ति को श्रवण करते हुये अपने शरीर में मन व बुद्धि को धारण किये। तब उन रसस्वरूप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपनी अम्बा जी, श्रीमान् पिता जी व श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से फलों का किंचित रस ग्रहण किये।

दो०–सीय राम के विरह मधि, मिथिलापुर नर नारि ।
तीन दिवस भोजन भुले, नयन बहै जल धारि ॥४७३॥

श्री सीताराम जी के वियोग में डूबे हुये श्री मिथिलापुर के पुरुष–स्त्री तीन दिनों तक भोजन करना भी भूले रहे तथा उनके नेत्रों से अविरल आँसुओं की धारा बहती रही।

चौथे दिवस सकल पुर वासी । सीय राम दर्शन अति आसी ॥
लिये अन्न जल शोक वियोगी । वसत पुरहिं करि प्रेम सुलोगी ॥

इस प्रकार श्री सीताराम जी के वियोग में दुखी सभी मिथिलापुर वासियों ने उनके दर्शनों की अत्यधिक अभिलाषा से चतुर्थ दिन अन्न–जल ग्रहण किया तथा श्री सीताराम जी से प्रेम करते हुए श्री मिथिलापुरी में निवास करने लगे।

सिय विवाह आये मेहमाना । भूपति विप्र मुनीश सुजाना ॥
विविध भाँति लहि नृप सतकारा । भये विदा बहु होत सुखारा ॥

अनन्तर जनक नन्दिनी श्री सीता जी के विवाह में आये हुए अतिथि, राजागण, ब्राह्मण तथा सर्वग्य मुनिजन आदि ने श्री जनक जी महाराज से विभिन्न प्रकार का सत्कार प्राप्त किया तथा सभी अत्यन्त सुख पूर्वक विदा हुए।

मागध सूत बन्दि गुण गायक। नेंगी भाट विदूषक धायक ॥
सब कोउ पाय अमित धनरासी । भे प्रसन्न सब भाँति सुपासी ॥

मागध, सूत, बन्दी, गुणगान करने वाले, गवैये, भाँट, विदूषक, धावक व सभी नेगहारी असीमित धनराशि तथा सुविधायें प्राप्त कर सभी प्रकार से प्रसन्न हो गये।

जनक सुनैना पूत पतोहू । वसहिं सदन सियराम सुमोहू ॥
राम प्रेम की चोटहुँ मीठी । जाहि पाय जग लागत सीठी ॥

श्री जनक जी महाराज, श्री सुनैना अम्बा जी तथा उनके पुत्र व पुत्रवधू श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धिकुँवरि जी अपने प्राण–प्रिय श्री सीताराम जी में अत्यधिक सुन्दर दृढ़ प्रेम करते हुए अपने भवन में निवास करने लगे। श्री लक्ष्मणकुमार जी ने कहा कि– हे श्री हनुमान जी! श्री राम जी महाराज के प्रेम की तो पीड़ा भी अत्यधिक मधुर होती है जिसे पाकर सम्पूर्ण संसार रसहीन प्रतीत होने लगता है।

दो०– जा कहँ लहि सत सुख मगन, होवय सिद्ध पुमान ।
अमृत बनि नित तृप्त रह, चाह सोच नहिं भान ॥४७४॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्रीराम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री राम जी महाराज का प्रेम तो ऐसा है जिसे (प्रभु प्रेम को) प्राप्त कर सिद्ध–जन भी वास्तविक सुख में मग्न हो जाते हैं तथा स्वयं अमृत स्वरूप होकर सदैव संतृप्त रहते हैं, उन्हें किसी प्रकार की कामनाओं व चिन्ताओं का भान तक नहीं रहता।

छं०– नश चाह शोकहुँ राग रँग, दुख द्वेष की वाधा गयी ।
नहिं रमत नेकहुँ लोक मन, उत्साह त्यागे भवमयी ॥
वर प्रेम ब्रह्महिं मत्त बनि, सुख शान्ति हिय धारे रहैं ।
निज आत्म नित्यहिं करि रमण, सिय राम हर्षण हिय कहैं ॥

ऐसे प्रभु प्रेमियों की कामनायें, भगवद्वियोग का क्लेश व सांसारिक आसक्ति नष्ट हो जाती है, उनके जागतिक दुख व द्वेष की वाधायें मिट जाती हैं, उनका मन संसार में रंचमात्र भी नहीं लगता तथा वे सभी सांसारिक उत्साह का त्याग किये रहते हैं। वे तो पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज के प्रेम में मतवाले बने हृदय में सुख व शान्ति को धारण किये रहते हैं तथा अपनी आत्मा में नित्य रमण करते हुए श्री सीताराम–सीताराम उच्चारण करते रहते हैं।

जाकहँ ढूँढे निशि दिन योगी । करत कष्ट जग जान कुरोगी ॥
जासु ध्यान शिव करत भुसुण्डी । तुरत लहैं नहिं पटकत मुण्डी ॥

इस संसार को असाध्य व्याधि के समान समझ योगीजन रात दिन जिन्हे कष्ट सहते हुये खोजते रहते हैं, जिनका ध्यान भगवान श्री शिव जी तथा परम भक्त श्री काग भुसुण्डि जी करते हैं परन्तु उन्हें शीघ्र ध्यान में न पाकर अपना शिर पीटते रहते हैं अर्थात् ग्लानि करते रहते हैं–––

वेद वेद्य अनुभव कर विषया। मन वुधि वाक गमन नहि गमया ॥
ब्रह्म अनंत अखण्ड अमाई। वेदान्ती जहँ चित्त रमाई ॥

–––जो वेदों में प्रतिपादित व अनुभव करने के योग्य हैं, जहाँ तक पहुँचने में मन, बुद्धि व वाणी की सामर्थ्य नहीं है, जो अनन्त, अखण्ड और निर्मल ब्रह्म है तथा वेदान्तीजन जहाँ अपने चित्त को अनुरक्त किये रहते हैं।

विश्व वास परमारथ रूपा । नेति वदैं श्रुति एक अनूपा ॥
सोई बनेव विहारी मिथिला । रमैं अत्र करि प्रभुता शिथिला ॥

जो सम्पूर्ण संसार मे बसा हुआ है अर्थात् सम्पूर्ण संसार में जो विराज रहा है, जो परम परमार्थ स्वरूप, एक तथा अनुपमेय है एवं जिसका श्रुतियों ने नेति नेति कह बखान किया है वही सभी के स्वामी श्री राम जी महाराज अपने ऐश्वर्य को शिथिल कर श्री मिथिला विहारी बने हुए यहाँ निवास कर रहे हैं।

दूलह बनि मौरहिं शिर धारी । मैथिल गन सो कीन्हेव प्यारी ॥
नयन विषय मिथिलहिं करि लेखेव । रहै छको नित प्रेम विशेषेव ॥

वे ही दिव्य दूलह बन, अपने शिर में मौर धारण कर श्री मिथिलापुर वासियों से प्यार किये हैं, श्री मिथिलापुरी को अपने नेत्रों का विषय बनाये हैं और उनके विशेष प्रेम से नित्य छके रहते हैं।

मिथिला भाग अमित जग भाई । सब समर्थ प्रभु नात बनाई ॥
दरश परश करि भाव महाना । निशि दिन आनन्द सिन्धु समाना ॥

हे भाइयो! इस संसार में श्री मिथिलापुरी का सौभाग्य असीमित है जिसने सर्व सामर्थ्यवान प्रभु श्री राम जी महाराज से अपना सम्बन्ध स्थापित किया है तथा महान भावपूर्वक उनका दर्शन व स्पर्श प्राप्तकर रात दिन आनन्द के सागर में समायी रहती है।

कोउ जामात कोउ बहनोई । कोउ कहैं ये प्रिय ननदोई ॥
राम सीय के माने आपहिं । आपन राम सीय कहि थापहिं ॥

श्री मिथिलापुर वासी कोई इन्हें दामाद, तो कोई बहनाई कहते हैं तथा कोई कहते हैं कि ये हमारे प्रिय ननदोई हैं। वे सभी अपने आपको श्री सीताराम जी के मानते हैं तथा श्री सीताराम जी को अपना मान कर उनसे सम्बन्ध स्थापित कर लिये हैं।

दो०—धनि धनि वर मिथिलापुरी, ब्रह्म राम करि प्रेम ।
प्रेम सुखहिं साने रहैं, ज्ञान योग तजि नेम ॥४७५॥क॥

परम श्रेष्ठ श्री मिथिलापुरी धन्याति धन्य हैं जहाँ के निवासी पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी महाराज से प्रेम किये हुए हैं तथा अपने ज्ञान, योग व नियम आदि सभी साधनों के अभिमान को त्याग उनके प्रेमानन्द में समाये रहते हैं।

कुँअर चरित सह राम को, व्याह उछाह अनन्द ।
कहेउँ यथा मति पवनसुत, कहत सुनत नश द्वन्द ॥ख॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा कि—हे पवननन्दन श्री हनुमान जी! मैंने कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के चरित्र सहित श्री राम जी महाराज के वैवाहिक उत्साह व आनन्द का अपनी बुद्धि के अनुसार बखान किया, जिसके कहने व सुनने से राग—द्वेष आदि मनो विकारों का विनाश हो जाता है।

सो०—सीता राम विवाह, चरित कुँअर करि नेम नित ।
कहत सुनत युतसाह, शान्ति विरति प्रभु प्रेम लह ॥

श्री सीताराम जी के मंगलमय विवाह व कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी के पावन चरित्र को नित्य नियम पूर्वक उत्साह में भर कर कहने व सुनने से लोग शान्ति, वैराग्य तथा प्रभु प्रेम प्राप्त करेंगे।

श्लोक– राम कीर्ति च रामाय, रामेण रचितामहम् ।
समर्पयामि नाथाय, कृपां कुरु दयानिधे ॥
श्रीसीताराम प्रीत्यर्थं, रामस्य प्रणतोस्म्यहम् ।
अन्यथाहि गतिर्नास्ति, पाहि पालय हर्षणम् ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं श्री राम जी महाराज की कीर्ति से संयुक्त, श्री राम जी महाराज के विनियोग के लिये, श्री राम जी महाराज के द्वारा ही रचा हुआ यह चरित्र, हे नाथ! मैं आप श्री राम जी महाराज को समर्पित कर रहा हूँ। हे दया निधान! आप कृपा करें, मैंने श्री सीताराम जी (युगल सरकार) की प्रीति प्राप्त करने की कामना से श्री राम जी महाराज की शरण ग्रहण की है, मेरी अन्य कोई भी गति नहीं है, अतएव हे नाथ! आप मेरी रक्षा तथा पालन पोषण करें।

इति श्रीमद् प्रेम रामायणे, प्रेम रस वर्षणे, जनमानस हर्षणे, सकल कलि कलुष विध्वंसने मिथिलाख्य प्रथम काण्ड : मिथिला काण्ड समाप्त

इस प्रकार प्रेम रस वर्षायिनी, सर्व जन हिय हर्षायिनी, सकल कलि कलुष दुरायिनी श्रीमद् प्रेमरामायण जी का मिथिला नामक प्रथम काण्ड समाप्त हुआ।

—::::::—

ॐ नमः श्री सीतारामाभ्यां

॥अथ श्री प्रेम रामायण॥

卐 साकेत काण्ड 卐

श्लोक– वर वेष धरं रामं, भ्रातृभिः सह सीतया ।
तं जगन्मोहनं श्यामं, वन्दे प्रेम प्रदायकम् ॥१॥

अपने भ्रातृगणों व श्री सीता जी सहित जो दिव्य दूलह वेष धारण किये हुए हैं ऐसे संसार को मोहित करने वाले, प्रेम प्रदाता श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज की मैं वन्दना करता हूँ।

नव्योद्वाह विभूषणाढयं, पीत वस्त्रं मनोहरम् ।
मिथिलायाः ब्रजन्तं च, रथारूढं भजेवरम् ॥२॥

नवीन वैवाहिक आभूषणों से अलंकृत, पीले वस्त्र धारण किये हुए, सभी के मन को हरण करने वाले, सुन्दर रथ में विराज श्री मिथिला पुरी में विहार करते हुए नव दूलह श्री राम जी महाराज का मैं भजन करता हूँ।

लक्ष्मीनिधिं लक्ष्मणं च, वायु पुत्रं हनूमतम् ।
राम प्रेमाप्लुतान सर्वान, बन्देऽहं राम किङ्करान् ॥३॥

जनक नंदन श्री लक्ष्मीनिधि जी, सुमित्रा नंदन श्री लक्ष्मण कुमार जी तथा पवन नन्दन श्री हनुमान जी आदि सभी श्री राम जी महाराज के प्रेम से परिपूर्ण श्री राम सेवकों की मैं वन्दना करता हूँ।

बन्दे सद्गुरु देवांस्तु, ब्रह्म विज्ञान रूपिणः ।
येषां कृपा कटाक्षेण, प्रेम गाथां करोम्यहम् ॥४॥

पूर्णतम परब्रह्म स्वरूप तथा विज्ञानमय श्री सद्गुरुदेव भगवान की वन्दना करता हूँ जिनकी कृपा दृष्टि से मैं प्रभु प्रेम चरित्र श्री प्रेम रामायण का प्रणयन कर रहा हूँ।

सो०–गुरु पद रज रखि शीश, कहौं रसद रघुपति चरित ।
पाऊँ सुभग अशीष, प्रेम प्रदायक होय हित ॥

मैं अपने श्री सद्गुरुदेव भगवान के चरण कमलों के परम पावन पराग ('धूल') को शिर में धारण कर रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज के रस प्रदायक चरित्रों का बखान कर रहा हूँ। जिनकी कृपा से मैं प्रेम प्रदायी सुन्दर आशीष प्राप्त करूँ तथा मेरा हित हो सके।

मिथिला प्रीति रीति मैं गाई । सीय विदा जस भई सुहाई ॥
यथा राम सिय सहित सुभ्राता । दशरथ राउ समेत बराता ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! इस प्रकार श्री मिथिलापुरी की प्रीति–रीति का मैने वर्णन किया तथा जिस प्रकार श्री सीता जी की विदाई हुई, अपने भ्राताओं व श्री सीता जी सहित श्रीरामजी महाराज एवं सभी बरातियों सहित श्री दशरथ जी महाराज–––

पाकर ग्राम वसे सुख दायी । सुख समाधि सोये सरसायी ॥
आगिल चरित सुनहु हनुमाना । उपजै मति मन मोद महाना ॥

–––"पाकर" नामक सुखदायी ग्राम में निवास किये तथा सुखपूर्वक सुन्दर समाधि के समान शयन किये वह सभी चरित्र मैंने वर्णन कर सुनाया है। हे श्री हनुमान जी! अब आप उससे आगे का चरित्र श्रवण करें जिससे बुद्धि व मन में महान आनन्द की उत्पत्ति होगी।

जागि बरात भयो जब भोरा । नित्य कर्म किय प्रेम अधोरा ॥
दशरथ भेजे अवधहिं धावन । विविध भाँति साकेत सजावन ॥

जब प्रातःकाल हुआ तब सम्पूर्ण बारात ने जग कर अत्यधिक प्रेमपूर्वक नित्य कर्म किया। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने विभिन्न प्रकार से श्रीअयोध्यापुरी को सजाने के लिए एक दूत श्री अयोध्यापुरी भेज दिया।

बहुरि भूप सब साज सँभारी । लै बरात चल दिये सुखारी ॥
वरणत मिथिला विविध प्रसंगा । चले जाहिं हरषित सब अंगा ॥

पुनः श्रीदशरथजी महाराज सम्पूर्ण सार सम्हाल कर बारात को लेकर सुखपूर्वक चल दिये। वे श्रीमिथिलापुरी के विभिन्न प्रसंगों का वर्णन करते हुए हर्षपूरित अंगों से युक्त चले जा रहे थे।

दो०–लखत लखावत देश वर, इक एकहिं मग लोग ।
वन पर्वत आश्रम सरित, कहत महातम योग ॥१॥

सभी लोग मार्ग में मिलने वाले सुन्दर देश, वन, पर्वत, आश्रम तथा नदियों को देखते दिखाते हुए एक दूसरे से उनके संयोग का माहात्म्य कहते सुनते चले जा रहे थे–––

पहुँचे मिथिला योजन तीना । कहत सुनत रघुपति मन लीना ॥
आई तबहिं महान उपाधी । लागी बहन प्रचण्ड कुआँधी ॥

श्री राम जी महाराज में अपने मन को लगाये हुए विभिन्न प्रकार के महात्म्य कहते तथा सुनते हुए श्री मिथिलापुरी से तीन योजन दूर ही लोग पहुँच पाये थे कि तभी वहाँ एक महान विपत्ति उपस्थित हो गयी और बड़ी तीव्रता से अंधड़ प्रवाहित होने लगा।

उड़त धूरि रस छाइ अकाशा । हाथ पसारे नेक न भासा ॥
वृक्ष पथहिं बहु छन छन ढाही । तब बरात बड़ भय अवगाही ॥

उड़ती हुई धूल आकाश में भर गयी जिससे ऐसा अंधकार हुआ कि अपना हाथ फैलाने पर किंचित भी दिखाई नहीं पड़ता था, मार्ग में प्रत्येक क्षण बहुत से पेड़ उखड़ उखड़ कर गिरने लगे तब बारात अत्यधिक भयाक्रान्त हो गयी।

भरि रज नयनन चलन न देती । हय गय वाहन भयो अचेती ॥
दशरथ राव गुरुहिं सिर नाई । पूछे कारण कहौ गोसाँई ॥

नेत्रों में धूल भर जाने से चलने में अवरोध हो रहा था। घोड़े, हाथी आदि वाहन बेचैन हो रहे

थे तब श्री दशरथ जी महाराज ने गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी के चरणों में शिर झुका कर पूछा कि– हे नाथ! इस उपाधि का कारण क्या है?

होवै असगुन अति उत्पाता । जानि न जाय काह प्रभु बाता ॥
कह वसिष्ठ जनि डरहु भुआला । होहिं सगुन दाहिन मृग माला ॥
प्रथम आय भय बहुरि विनासी । मिलिहिं शान्ति सुख परम सुपासी ॥

इस समय अत्यधिक उपद्रव तथा असगुन हो रहे हैं भगवान की लीला समझ नहीं आ रही। श्रीबसिष्ठजी महाराज ने कहा– हे राजन् आप डरें नहीं, देखिये, सगुन हो रहे हैं दाहिनी ओर मृगों के समूह दीख रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि– पूर्व में भय तो आयेगा परन्तु बाद में वह विनष्ट होकर शान्ति, सुख व आनन्द प्रदान करेगा।

दो०– करत बात इमि नृपति वर, तनिक चले मुनि संग ।
पुनि आगे पेखत भये, तेज राशि रवि रंग ॥२॥

इस प्रकार की बातें करते हुए श्री दशरथ जी महाराज श्री बसिष्ठ मुनि जी के साथ कुछ दूर चले ही थे कि उन्होंने अपने आगे एक सूर्य समान तेज राशि को देखा।

अमित सूर्य जनु भये इकत्रा। विद्युत पुञ्ज प्रभाव धनित्रा ॥
नील मेघ सिर जटा सुहाये । जामदग्न्य दशरथहिं दिखाये ॥

ऐसा लग रहा था जैसे असीमित सूर्य एकत्रित हो गये हों तथा वहाँ अत्यन्त घना विद्युत समूह का प्रभाव हो। इस प्रकार श्रीदशरथजी महाराज को श्याम बादलों के समान वर्ण वाले शिर में जटायें धारण किये हुए जामदग्न्य श्री परशुराम जी दिखाई पड़े।

धनु सर परशु धरे रिस माते । तन विभूति मृग चर्म सुहाते ॥
कार्तवीर्य घातक लखि आगे । अपर काल इव खड़े अदागे ॥

वे धनुष बाण व परशु धारण किये, अत्यन्त क्रोध से तमतमाते, शरीर में राख लपेटे तथा मृग चर्म धारण किये हुए सुशोभित हो रहे थे। दूसरे काल (यमराज) के समान प्रत्यक्ष खड़े हुए कार्तवीर्य (सहस्त्र वाहु) के संहारक को देखकर–––

अति भय त्रसित परम अकुलाई । दशरथ गिरे चरण महँ जाई ॥
राम प्रभाव विसारि नृपाला । मधुर भाव चित रँगा रसाला ॥

–––अत्यन्त भयभीत होकर महान आकुलता पूर्वक श्रीदशरथजी महाराज उनके चरणों में जाकर गिर पड़े। श्रीदशरथजी महाराज ने उस समय रसस्वरूप श्रीरामजी महाराज के प्रभाव को भुला दिया था तथा उनका चित्त उनके रसमय माधुर्य भाव में रँगा हुआ था।

त्राहि त्राहि मम बालक त्राता । होहु नाथ कह नृप विलपाता ॥
शरण पाल द्विज देव हमारे । रक्षहु बालक प्राण पियारे ॥

श्री दशरथ जी महाराज ने विलाप करते हुए कहा– हे नाथ! आप मेरे बालकों की रक्षा कीजिये,

रक्षा कीजिये। अब आप ही मेरे बालकों के त्राता हैं। हे शरणागत पालक, हमारे ब्राह्मण देव! मेरे प्राण प्रिय बालकों की रक्षा कीजिये।

परशुराम बोले रिसिहाई । रे जड़ नृपति हटसि समुहाई ॥
मम गुरु चाप तोराय कुमारा । हृदय कपट मुख त्राहि पुकारा ॥

श्री परशुराम जी महाराज उनकी बातें सुन क्रोधित होकर बोले– अरे अल्प बुद्धि राजन्! सामने से हट जाओ, अपने कुमार से मेरे गुरुदेव का धनुष तोड़वाकर, हृदय में कपटपूर्ण हो, मुख से त्राहि–त्राहि कर रहे हो।

दो०–रे नृप सुवन समेत तेहि, काटि परशु की धार ।
शिव अपचार न जाय सहि, होव मुक्त गुरु भार ॥३॥

अरे राजा दशरथ! मैं तुझे पुत्रों के सहित परशु की धार से काट कर गुरु भार से मुक्त हो जाऊँगा क्योंकि मुझ से भगवान श्री शिव जी का अपचार सहन नहीं हो रहा है।

अस कहि दपटि क्रोध उर छावा । मनहु काल रण वेष बनावा ॥
निदरि निबुकि रघुपति के आगे । परशु उठाय खड़े भय भागे ॥

ऐसा कहकर वे हृदय में क्रोधित हो डाँटने लगे मानों योद्धा का वेष बनाकर स्वयं काल (यमराज) ही आ गये हों। वे श्री दशरथ जी महाराज को अलग कर उछलते हुए श्री राम जी महाराज के सामने अपना परशु उठाकर खड़े हो गये, उन्हें देखकर भय भी भयभीत हो रहा था।

दशरथ मुर्छि परे भुइँ माहीं । अति अचेत तन सुधि कछु नाहीं ॥
भृगुवर बोले वचन कठोरा । कटकट दन्त कँपत रिस बोरा ॥

उन्हें देखकर श्री दशरथ जी महाराज मूर्छित हो भूमि में गिर पड़े तथा अत्यन्त अचेत (संज्ञा शून्य) से हो गये, उन्हें शरीर की बिल्कुल भी स्मृति न रही। श्री परशुराम जी क्रोध के मारे दाँत कटकटाते व काँपते हुए अत्यन्त कठोर शब्दों में बोले–

छत्र बन्धु गुरु चापहिं तोरी । रे बालक किय पाप अथोरी ॥
मोर नाम रखि राम कुमारा । चरसि जगत भय हीन अपारा ॥

हे क्षत्रियाधम बालक! तूने मेरे गुरुदेव भगवान श्री शिव जी के धनुष को तोड़ कर महान पाप किया है तथा हे कुमार! तू मेरे नाम 'राम' को अपनाकर इस संसार में निर्भय हो विचरण कर रहा है।

राम नाम रखि गुरु अपराधा । कीन्हे फल अब प्राणन बाधा ॥
छत्री चेत करसि संग्रामा । नाहिंत त्यागै नाम ललामा ॥

अरे बालक! राम नाम रखने व श्री गुरुदेवजी के अपराध करने का फल तो अब प्राणों की बाधा ही है। हे क्षत्रिय कुमार! तुम सम्हल कर मुझसे युद्ध करो नहीं तो मेरा यह सुन्दर 'राम' नाम त्याग दो।

दो०–परशु राम के वचन सुनि, अकुतो भय रघुराय ।
हाथ जोरि सिर नाय शुभ, बोले सरल स्वभाय ॥४॥

श्री परशुराम जी के वचनों को सुनकर परम निर्भीक रघुकुल नन्दन श्री राम जी महाराज हाथ जोड, शिर झुका प्रणाम कर सहज ही सरलता पूर्वक शुभ वाणी बोले–

भृगुवर सुनहु सुसेव्य उदारा । मैं नहिं आपन नाम सुधारा ॥
ब्रह्म पुत्र गुरुदेव हमारे । जिनहिं बसिष्ठ कहत जग सारे ॥

हे उदार, सुन्दर सेवनीय, भृगुनन्दन श्री परशुराम जी! सुनिये, मैंने अपना नाम 'राम' नहीं रखा है। श्री ब्रह्मा जी के पुत्र हमारे श्री गुरुदेवजी जिन्हें सम्पूर्ण संसार श्री बसिष्ठ जी कहता है।

औरहुँ मुनि परमारथ वादी । दीन्हें नाम राम अहलादी ॥
योगी जन मोहिं नित करि प्यारा । चित्त रमावहिं करत सँभारा ॥

तथा अन्य परमार्थदर्शी मुनियों ने आहलाद पूर्वक मुझे 'राम' नाम दिया है। योगीजन नित्य ही मुझे प्रेम प्रपूरित हो सम्हाल करते हुए अपने चित्त को मुझमे रमाते हैं।

रमत जान मन आपन योगी । लागे कहत राम सब लोगी ॥
जहँ लगि जगत प्राणि समुदाया । प्राण प्राण मानहिं द्विज राया ॥

अपने मन को मुझमें रमता हुआ समझकर सभी योगीजन मुझे 'राम' कहने लगे। हे ब्राह्मण देव! संसार में जहाँ तक प्राणी समुदाय है वे सभी मुझे अपने प्राणों का भी प्राण मानते हैं।

सुर गण कृपा करत अति भारी । आत्महुँ अधिक करैं पुनि प्यारी ॥
जड़ चेतन सब आत्म समाना । चित्त रमावैं मोहिं महँ आना ॥

सभी देवतागण मुझ पर अत्यधिक कृपा करते हुए आत्माधिक प्यार करते हैं। संसार के चैतन्य व जड़ सभी जीव अपनी आत्मा के समान मुझ में अपना चित्त रमाते हैं।

दो०–कहन लगे सब राम मोहिं, काह कहौं भृगुराम ।
मोरहु मन सबमें रमैं, बरवश दीन्हें नाम ॥५॥

हे श्री परशुराम जी महाराज! इस प्रकार से सभी लोग मुझे राम कहने लगे तथा मैं कहाँ तक कहूँ? मेरा मन भी सभी में रमा करता है अतः हठात् ही सभी ने मुझे 'श्रीराम' नाम दे दिया।

तनि अपराध न मोर सुजाना । पूँछहिं कौशिक सन मतिवाना ॥
शिव अपराधी मोहिं बताये । गुरु ऋण चाहत मारि छुड़ाये ॥

अतएव हे परम सुजान! इसमें मेरा किंचित भी अपराध नहीं है, आप चाहें तो परम बुद्धिमान श्री विश्वामित्र जी से पूँछ लीजिये। पुनः आपने मुझे श्री शिवजी का अपराधी बताया है तथा मुझे मार कर अपने गुरु ;ण से मुक्त होना चाहते हैं।

शिवहिं सदा निज हिय महँ धारूँ । शिवमय रह सत शिवहि उचारूँ ॥
शिवहिं लखौं अरु शिव कहँ परसूँ । शिव शिव शिव नित बुधि मन सरसूँ ॥

परन्तु मैं तो सदैव श्री शिवजी को अपने हृदय में धारण किये रहता हूँ, सत्य ही शिव स्वरूप होकर श्री शिव ही उच्चारण करता हूँ, श्री शिव को ही देखता हूँ, श्री शिव का ही स्पर्श करता हूँ तथा

अपने बुद्धि व मन में केवल श्री शिव–शिव ही पाकर आनन्द से सरसाया रहता हूँ।

मैं अपराध न शिव कर करऊँ। भ्रम वश आप कहे नहिं गरऊँ ॥
शिव शासित गुरु कौशिक ज्ञानी। खण्डन मोहिं कहेउ धनु जानी ॥

अतः मैं श्री शिवजी का अपराध नहीं कर सकता तथा भ्रम के वशीभूत आपके कहने पर मैं ग्लानि से नहीं गलूँगा क्योंकि श्री शिव जी की आज्ञा प्राप्त ज्ञानी मुनि गुरुदेव श्रीविश्वामित्रजी ने उनका आदेश समझकर ही मुझे धनुष तोड़ने की आज्ञा प्रदान की थी।

गुरु शासन लहि शिव संतोषा। बादहिं आप करहिं मन रोषा ॥
जोरे निज गृह जनक समाजा। देश देश आये महाराजा ॥
गुरु निदेश छत्री छबि छाते। तोरे धनुष वृथा रिसिहाते ॥

हमने श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से श्री शिवजी की संतुष्टि के लिये शिव–धनुष का खण्डन किया है, आप अपने मन में व्यर्थ ही क्रोध करते हैं। पुनः श्री जनक जी महाराज ने श्री शिव जी की आज्ञा से ही धनुष तोड़ने हेतु राजाओं के समाज को एकत्रित किया था और देश–देशान्तरों से राजा–महाराजा वहाँ आये थे तब वहाँ हमने श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से क्षात्र धर्म के निर्वाह करने हेतु उस श्री शिव धनुष का खण्डन किया था, आप व्यर्थ ही क्रोधित हो रहे हैं।

दो०– जो हम निदरहिं शम्भु कहँ, कौन अहे जग साध ।
शिव सेवक अभिमान कर, श्रुति सेतुहिं जो बाँध ॥६॥

यदि हम श्री शिव जी का निरादर करते हैं तो संसार में ऐसा कौन साधु पुरुष है जो भगवान श्री शंकर जी के सेवक होने का अभिमान कर सकता है और उस हेतु वेदों में मर्यादा रूपी सेतु का निर्माण कर सकता है।

क्षत्रिय चेत कहैं जो नाथा। रघुकुल मर्म भेद हित भाथा ॥
कालहुँ मुख सुनि अस द्विजराया। करैं समर अति चैनहिं छावा ॥

हे नाथ! यदि आप हमें क्षत्रिय समझ कर ऐसा कह रहे हैं कि– यह बाणों से भरा तरकश श्री रघुवंशियों के मर्म–भेद (हृदय बेधन) के लिये है, तो हे विप्रवर! स्वयं काल के मुख से भी ऐसे वचन सुनकर हम अत्यधिक सुखपूर्वक उससे युद्ध करेंगे।

दानव दैत्य देव देव केहिं लेखे। नरहिं होत सम्मुख नहिं पेखे ॥
छत्री अहहिं त्रिसत्य उचारैं। ताते करन न समर विचारैं ॥

दानव, दैत्य व अन्य देवता किस गिनती में है और मनुष्यों की क्या कहे वे तो हमें देखकर सामने ही नहीं आते। हम क्षत्री हैं, क्षत्री हैं, क्षत्री हैं ऐसा त्रिवाचा सत्य कह रहे हैं इसीलिए युद्ध करने में जय–पराजय का विचार नहीं करते।

चाहे ब्रह्म वन्धु किन होई। सदा अवध्य कहे श्रुति सोई ॥
मारत हूँ नित विप्रन पूजें। भाव भक्ति सम ईश न दूजे ॥

परन्तु श्रुतियों में अवध्य कहे गये ब्राह्मण देव चाहे वे ब्राह्मणाअधम ही क्यों न हों उनके द्वारा मारे जाने पर भी हम उनकी भाव व भक्ति पूर्वक नित्य ईश्वर के समान पूजा करते हैं।

भृगुवर मोहि निज किंकर जानी । रोष त्यागि कर कृपा महानी ॥
लहहिं शान्ति मन मोद बढ़ावा । हमहुँ जाय अवधहिं सिर नावा ॥
बोले भृगुपति सुनहु कुमारा । शिव धनु रहा पुरान अपारा ॥

अतः हे भृगु नन्दन श्री परशुराम जी! आप मुझे अपना सेवक समझ क्रोध त्याग कर महान कृपा करें तथा मन में आनन्द बढ़ाकर शान्ति प्राप्त करें, जिससे हम भी आपको शिर झुका प्रणाम कर श्री अयोध्या पुरी को प्रस्थान करें। श्री राम जी महाराज के वचन सुनकर श्री परशुराम जी बोले– हे राज कुमार! सुनो, श्री शिवजी का धनुष तो अत्यन्त पुराना था।

दो०–जीर्ण शीर्ण तेहिं तोरि करि, व्यर्थहिं करत गुमान ।
मनहुँ जीति जग ठाढ़ भो, पढ़य प्रशंसा ज्ञान ॥७॥

उस जीर्ण शीर्ण (पुराने व कमजोर) धनुष को तोड़कर तुम व्यर्थ ही इस प्रकार गर्व करते हो मानों संसार को जीत कर खड़े हो तथा अपनी प्रशंसा का पाठ कर मुझे ज्ञान सिखा रहे हो।

वैष्णव धनु मम राम चढ़ावौ । क्षत्री बल मोहिं द्रुतहिं दिखावौ ॥
जो तुम चापहिं देहु चढ़ाई । करिहौं साथ समर रघुराई ॥

हे राम! तुम मेरे इस वैष्णव धनुष में प्रत्यंचा चढ़ा कर मुझे शीघ्र ही अपने क्षत्रित्व का बल दिखाओ। यदि तुम इस धनुष को चढ़ा लिये तो हे रघुकुल प्रवीर! मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा।

नाहित मारि अबहिं सब काहू। मेटिहौं हिय कर दारुन दाहू ॥
बोलसि बात चुपरि मम आगे। बढ़त क्रोध तव कपटहिं लागे ॥

नहीं तो मैं शीघ्र ही तुम सभी को मारकर अपने हृदय के महान संताप को मिटा लूँगा। तू मेरे सामने चिकनी चुपड़ी बातें तो कर रहा है परन्तु तेरे हृदय के कपट के कारण मेरा क्रोध बढ़ता ही जाता है।

इकैस बार क्षत्रि कर अन्ता। कियो राम जानहिं लघुवन्ता ॥
कहौं प्रमाण सुनसि शिव द्रोही। क्षत्रिन अन्तक जानसि मोही ॥

हे राम! मैंने इक्कीस बार तक पृथ्वी से क्षत्रियों की समाप्ति कर दी थी और तुम मुझे छोटा समझ रहे हो। मैं तुम्हारे प्रमाण के लिए यह सब कह रहा हूँ। हे श्री शिव जी के द्रोही! तुम मुझे क्षत्रियों का अन्त करने वाला ही समझो।

क्रोधवन्त भृगु राम दिखाये। मनहु भयंकर काल कँपाये ॥
धरा तबहिं डगि डोलन लागी। दिश विदिशा सब भीतहिं पागी ॥

उस समय क्रोधित हुए श्री परशुराम जी ऐसे दिख रहे थे मानो वे भयंकर काल को भी भयवश कम्पित कर देंगे। तभी उनके क्रोध के कारण पृथ्वी भी भय से डगमगाने लगी, दिशायें व विदिशायें भी भयभीत हो गयीं।

दो०—होन लगे उत्पात बहु, भृगुवर देखि सक्रोध ।
बुझन समय जनु दीप लौ, अधिक बरै अस बोध ॥८॥

श्री परशुराम जी महाराज को क्रोधित देखकर बहुत से उपद्रव होने लगे। जिस प्रकार बुझते (अन्तिम) समय दीपक की लौ अत्यन्त तीव्रता से जलती है, उसी प्रकार की प्रतीति उस समय उन्हें देखकर हो रही थी।

रघुपति भृगुपति शीष नवाई । मागे वैष्णव धनु हरषाई ॥
भृगुवर चाप देत छुटि हाथा । आपुहिं पहुँचेव कर रघुनाथा ॥

श्री रामजी महाराज ने श्रीपरशुरामजी को शिर झुका प्रणाम कर हर्षित हो श्रीविष्णु भगवान का वैष्णव धनुष माँगा और श्रीपरशुरामजी के द्वारा धनुष देते ही उनके हाथ से छूट कर वह वैष्णव धनुष स्वयं ही श्रीरामजी महाराज के हाथ में पहुँच गया।

गुण चढ़ाय प्रभु बाण अरोपी । भृगुपति तेज भयो सब लोपी ॥
परशुराम सब तेज सुहावा । वैष्णव साथहिं राम समावा ॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज ने वैष्णव धनुष में प्रत्यंचा चढ़ाकर बाण आरोतिप किया उसी समय श्रीपरशुरामजी महाराज का सम्पूर्ण तेज लुप्त हो गया। श्रीपरशुरामजी महाराज का सम्पूर्ण सुन्दर तेज वैष्णव धनुष के साथ ही श्री राम जी महाराज में समाहित हो गया।

देखे सुर नर मुनि सब कोई । भृगुवर भये तुरत जनु छोई ॥
देखे परशुराम रघुनन्दन । पूर्ण ब्रह्म सतचित सुखकन्दन ॥

उस समय देवता, मनुष्य तथा मुनिगण सभी ने देखा कि श्रीपरशुरामजी तुरन्त ही निस्तेज हो गये। श्री परशुराम जी ने श्री राम जी महाराज को पूर्णतम परब्रह्म सच्चिदानन्दमय तथा सुख प्रदायक रूप में देखा।

विभु वैभव वर विशद् विराटा । बहु मुख कर पद लोचन ठाटा ॥
भृगुवर अमित स्वास के साथा । प्रविशहिं छन छन मुख रघुनाथा ॥

श्री परशुरामजी ने देखा कि श्रीरामजी महाराज महान वैभव से युक्त, विभु एवं विराट हैं, उनके बहुत से मुख, हाथ, पैर व नेत्रों के समूह हैं और उनके स्वास के साथ असीमित परशुरामजी प्रत्येक क्षण श्रीरामजी के मुख में समाये जा रहे हैं।

हरि अवतार अनंत लखाने । प्रविश राम मुख जाहिं समाने ॥
नायक जे वैकुण्ठ अनन्ता । प्रविशहिं मुख रघुवर सियकन्ता ॥

उन्होंने देखा कि भगवान के अनन्त अवतार श्रीरामजी महाराज के मुख में प्रविष्ट हो कर उनमें विलीन हुये जा रहे हैं तथा जो अनन्त वैकुण्ठों के नायक हैं वे भी सीतापति श्री राम जी महाराज के मुख में समाये जा रहे हैं।

दो०–रघुवर वैभव अमित लखि, निज अपराध विचारि ।
त्राहि त्राहि मद मथन कहि, पड़े चरण शिर धारि ॥९॥

श्री राम जी महाराज के असीमित वैभव को देख तथा अपने अपराध को विचार कर श्री परशु रामजी बोले– हे गर्वनाशक प्रभु! मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये, ऐसा कहते हुये वे भूमि में गिर कर श्री राम जी महाराज के चरणों में अपना शिर रख दिये।

तबहिं राम निज प्रभुता रोकी। उठे परशु धर होय विशोकी ॥
हाथ जोरि विकृत करि आनन । बोले बचन दीन रस सानन ॥

तभी प्रभु श्री राम जी महाराज ने अपने ऐश्वर्य को तिरोहित कर लिया तब श्री परशुराम जी शोक मुक्त हो उठ पड़े व हाथ जोड़, विवर्ण मुख हो, दीन भाव में पगे हुए वचन बोले–

राम राम तुम पुरुष पुराना। थिति लय सिरजन करन महाना ॥
आपन तेज आप प्रभु लीन्हेव। दीन बनाय कृपा अति कीन्हेव ॥

हे श्री राम जी महाराज! आप तो सभी में रमण करने वाले, पुराण पुरुष, सृष्टि के पालन, संहार व उत्पत्ति का महान कार्य करने वाले हैं। हे प्रभु! आपने अच्छा ही किया जो अपना तेज मुझसे ले लिया तथा अत्यन्त कृपा कर मुझे दैन्यता प्रदान कर दी।

सब प्रकार नाथहिं पहिचाना । जन्म सुफल मम आज लखाना ॥
भेद न जानहिं तब तिरेदवा । जानन हार जिते गुनि लेवा ॥

अब मैंने, अपने स्वामी आपको सभी प्रकार से पहचान लिया है, आज मेरा जन्म धारण करना सफल दिख रहा है। आपके रहस्य को तो जितने भी ज्ञानीजन हैं वे सभी तथा त्रिदेव (श्रीब्रह्माजी, श्रीविष्णुजी व श्रीशिवजी) भी नहीं जान पाते हैं।

गुणातीत प्रभु अज अविकारी । अचल एक रस जन सुखकारी ॥
तव सकाश माया गुण खानी । रचत अनेकन अण्ड महानी ॥

आप गुणों से परे, अजन्मा, निर्विकार, अचल, एक–रस तथा सेवकों के सुखदायक हैं, आपकी सकाशता से ही गुणों की खानि माया अनेक विराट ब्रह्माण्डों की रचना करती हैं।

दो०–यथा कार्य सब जगत के, भानु सकाशहिं होय ।
रवि अलिप्त निशि दिन रहत, तिमि प्रपंच जग जोय ॥१०॥

जिस प्रकार संसार के सभी कार्य श्री सूर्य भगवान की सकाशता से होते हैं परन्तु सूर्य उनसे दिन–रात सदैव अछूता ही रहता है उसी प्रकार संसार के क्रिया कलाप आपकी सकाशता से होते दिखायी पड़ते है परन्तु आप उनसे सर्वथा अलग रहते हैं।

तावत माया जीवहिं तावै । यावत तव प्रभु ज्ञान न आवै ॥
जब लौं हिय नहिं होय विचारा । तब लौं बहै अविद्या धारा ॥

हे प्रभु! आपकी माया जीवों को तभी तक दुःख पहुँचाती है जब तब संसार में आपका ज्ञान उसे

नहीं होता और जब तक हृदय में संसार के रूप में आपका चिन्तन नहीं होता तब तक वह जीव अविद्या (विपरीत ज्ञान) के प्रवाह में बहता रहता है।

करत विचार अविद्या ह्रासै । रजु महँ अहि भ्रम जिमि छुटि नाशै ॥
जब प्रतिबिम्ब शक्ति चिद केरा। बुद्धि माहि भाषय श्रुति टेरा ॥

इस संसार को आपका समझ, विचार पूर्वक चिन्तन करने से अविद्या द्ध विपरीत ज्ञान) का विनाश उसी प्रकार हो जाता है जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम रस्सी को छूते ही नष्ट हो जाता है। श्रुतियों ने बखान किया है कि जब चिद् शक्ति (चेतन तत्व) का प्रतिबिम्ब बुद्धि में आभासित होने लगता है।———

तबहिं बुद्धि चिद मिश्रण तेरे। सत चिद आनँद मिलत न हेरे ॥
जीव नाम अल्पज्ञ सो भयऊ । हर्ष विषादहिं लहि सत गयऊ ॥

———तभी बुद्धि व चिद् शक्ति (चेतन तत्व) के मिश्रण से यह संसार सच्चिदानन्दमय परमात्मा का स्वरूप दिखायी नहीं पड़ता इसीलिए चिद् शक्ति (चेतन तत्व) का नाम अल्प ज्ञान वाला "जीव" हो गया, क्योंकि उसने हर्ष व विषाद को ग्रहण कर अपने सत्य स्वरूप का त्याग कर दिया है।

इन्द्रिय देह बुद्धि मन प्राना। जीव अहं करि रूप स्वमाना ॥
कर्ता भोक्ता आपुहिं लेखै । सुख दुख सहत विपति अति पेखै ॥

जीव ने इन्द्रिय, देह, बुद्धि, मन व प्राण को ही अहंकार के कारण अपना स्वरूप समझ लिया है तथा अपने आपको कर्त्ता व भोक्ता समझकर सुख व दुख सहता हुआ महान विपत्ति को प्राप्त करता है।

मिटै न जब लौं जिव अभिमाना । मुक्त होय नहिं वेद बखाना ॥
जन्म मरण नहि आत्मा केरो । जग सो भिन्न सदा सत हेरो ॥

अतएव जब तक जीव का अभिमान (अहंकार) नहीं समाप्त होता तब तक वह मुक्त नहीं होता, ऐसा वेदों ने बखान किया है। आत्मा का जन्म व मरण नहीं होता तथा वह सदैव संसार से अलग सत्य स्वरूप वाली होती है।

दो०—बुद्धि माहिं नहि ज्ञान कछु, सदा अचित अह रूप ।
चेतन बुधि दोउ ज्ञान बिनु, मिले परै भव कूप ॥११॥

बुद्धि में किंचित भी ज्ञान नहीं होता तथा वह सदैव ही अज्ञानी व अहंकार स्वरूपा होती है इस प्रकार जीव तथा बुद्धि दोनों ही ज्ञान के अभाव से आपस में मिल जाने से संसार कूप में पड़ जाते हैं।

जल पावक जिमि देय मिलाई । अग्नि शीत जल उष्ण लखाई ॥
तिमि चेतन बनि बुधि संयोगा । जड़ गुन थापिसि कर्त्ता भोगा ॥

जिस प्रकार जल व अग्नि मिलाने से अग्नि शीतल तथा जल कुछ गर्म हो जाता है उसी प्रकार जीव, बुद्धि के संयोग से जड़ता प्रात कर अपने आप में कर्त्तापन व भोक्तापन को आरोपित कर लिया

है।

चिद सकाश बुधि ज्ञान प्रकाशी । अस भ्रम परा अनादि महासी ॥
नाथ भगत जे प्रेम विभोरा । भजहिं अहर्निशि जन मन चोरा ॥

चेतन तत्व की सकाशता से बुद्धि में ज्ञान का प्रकाश तो अवश्य होता है, किन्तु अहंकार के कारण स्वयं को कर्ता व भोक्ता स्वीकार करने से संसार का महान भ्रम अनादि काल से चला आ रहा है। हे निज जन के मन को चुराने वाले मेरे स्वामिन्! आपके भक्तजन, जो आपके प्रेम में विभोर हुए अहिर्निशि आपका भजन करते रहते हैं।

तिन कर संग सदा सुखदाई । देय जगत भ्रम तुरत मिटाई ॥
सेवत साधु करत तब भजना । माया रस रस लागति लजना ॥

उनका साथ सदैव सुख प्रदान करने वाला होता है तथा संसार के भ्रम को वे शीघ्र ही मिटा देते हैं। क्योंकि साधुओं की सेवा करते हुए आपका भजन करते करते 'माया' (अविद्या) धीरे–धीरे लज्जित (समाप्त) होने लगती है।

राम कृपा ते साधक पाई । सद्‌गुरु प्रेम भक्ति रस छाई ॥
तव स्वरूप जेहिं बोध महाना । लखा परावर दृश्य विलाना ॥

हे श्रीरामजी महाराज! आपकी कृपा से साधक को श्रीसद्‌गुरु देव भगवान की रसमयी प्रेमाभक्ति प्राप्ति होती है। जिन्हें आप के स्वरूप का महान बोध होता है तथा जो आपके पर व अवर स्वरूप को समझकर सांसारिक दृष्टि समाप्त कर लेते हैं अर्थात् संसार को भगवत्स्वरूप समझते हैं।

दो०–हृदय ग्रन्थि जाकी खुली, संशय भे निर्भूल ।
कर्म शुभा शुभ छीन पुनि, पायो तुमहिं अतूल ॥१२॥

जिनके हृदय की जड़ चेतनात्मक गाँठ खुल गयी होती है, सभी संदेह निराधार हो जाते हैं, शुभ व अशुभ सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं तथा जो अनुपमेय स्वामी, आपको प्राप्त कर लेते हैं।

अस गुरु तेहिं मिलि जब रघुराई । देवहिं बोध यथार्थ कराई ॥
नाथ कृपा तब यह जग नासै । मिटै अविद्या आप सुभासै ॥

हे श्रीरामजी महाराज! जब जीव को इस प्रकार के श्रीगुरुदेवजी प्राप्त हो जाते हैं और उसे आपके स्वरूप का वास्तविक बोध करा देते हैं तभी आपकी कृपा से उसका संसार नष्ट हो जाता है एवं उसकी अविद्या (माया) मिट जाती है तथा उसे सर्वत्र आप ही आप दिखाई देने लगते हैं।

बिना कृपा तव काल अमीती । करत यत्न जावै बहु बीती ॥
राउर ज्ञान भक्ति नहिं होई । प्रेम पदारथ दुर्लभ जोई ॥

परन्तु आपकी कृपा बिना बहुत से साधन करते हुए अनन्त समय बीत जाने पर भी आपका ज्ञान व भक्ति नहीं प्राप्त होती व उसे आपका प्रेम तत्व दुर्लभ ही रहता है।

आसहुँ नाहिं करोड़न कल्पा । कृपा निरादर किये जे अल्पा ॥
सद् सुख मिलहिं न तिनहिं त्रिकाला । जे न भजहिं प्रभु दीन दयाला ॥

जिसने आपकी कृपा का किंचित भी निरादर किया उसे तो यह सब प्राप्त होने की, करोड़ों कल्पों में भी आशा नहीं है। हे नाथ! सच्चा सुख उन्हें तीनों कालों में भी नहीं मिल सकता जो दोनों पर दया करने वाले स्वामी आपका भजन नहीं करते।

ताते नाथ सदा सतसंगा । दीजै निज पद प्रेम अभंगा ॥
सहजहिं भागि अविद्या जाई । होइहि तव पद प्रेम सुहाई ॥

इसलिए हे नाथ! आप मुझ दीन को सदैव सत्संग व अपने चरणों का अटूट प्रेम प्रदान करें जिससे सहज ही अविद्या पलायन कर जायेगी और आपके चरणों में सुन्दर प्रेम हो जायेगा।

दो०– नाथ भक्ति रस रसिक जन, त्रिभुवन करहिं सुपूत ।
धरा धाम कुल जन्म तिन, उधरत धनि अवधूत ॥१३॥

हे नाथ! भक्ति रस के रसिक जन आपके भक्त तीनों लोकों को पवित्र करने वाले होते हैं तथा उनके जन्म धारण करने से पृथ्वी, देश व कुल आदि का भी उद्धार हो जाता है, आपके प्रेम में सर्वस्व भुलाये हुए आपके सन्तजन धन्याति धन्य हैं।

जय जय जय प्रभु भक्तन भावन । नाम रूप लीला अति पावन ॥
जासु नाम यश विदित महाना । विवशहुँ जपे मुक्ति पद दाना ॥

हे भक्तों की भावनाओं का पालन करने वाले प्रभु श्री राम जी महाराज! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। आपके नाम, रूप, लीला व धाम चारो तत्व अत्यन्त ही पवित्र हैं। जिनके नाम की ऐसी सुन्दर व महान कीर्ति सर्वत्र विदित है कि– अनिच्छा पूर्वक उसका जप करने से भी मोक्ष की प्राप्ति होती है।

ताकर केहिं विधि करौं बड़ाई । जय अनन्त व्यापक रघुराई ॥
अमित बार प्रभु करहुँ प्रणामा । जय सच्चिदानन्द निष्कामा ॥

मैं उन प्रभु (आप) की किस प्रकार प्रशंसा करूँ। हे अनन्त व सर्व व्यापक श्रीरामजी महाराज! आपकी जय हो, हे नाथ! मैं आपको अनेक बार प्रणाम कर रहा हूँ। हे सच्चिदानन्दमय निष्काम प्रभु आपकी जय हो।

जय मनमोहन अवध विहारी । काम कोटि छवि जय मद हारी ॥
जय सर्वात्मक जगदाधारा । विश्व रूप जय नमन हमारा ॥

हे मन को मोहित करने वाले, श्री अयोध्या विहारी प्रभु! करोड़ों कामदेव की छबि के समान सुशोभन, हे मेरे अभिमान को दूर करने वाले प्रभु आपकी जय हो। हे समस्त जीवों के आत्म स्वरूप, संसार के आधार तथा विश्वरूप स्वामी श्री राम जी महाराज! आपकी जय हो, आपको हमारा नमन है।

हृदय विदारक वचन कठोरा । कहे नाथ करु क्षमा अथोरा ॥
देखि रूप तव मन आकरषा । तदपि क्रोध वश बुधि नहि परशा ॥

हे नाथ! मैने आपके हृदय को दुखित करने वाले कठोर वचनों का प्रयोग किया है अतः आप मेरे महान अपराध को कृपाकर क्षमा कर दीजिये। हे नाथ! आपके सुन्दर स्वरूप को देखकर प्रथम ही मेरा मन आकर्षित हो गया था किन्तु क्रोध के कारण बुद्धि ने उस ज्ञान का स्पर्श नहीं किया।

दो०—माया दारुण नाथ तव, डारेसि मोहिं नचाय ।
करहु कृपा अपराध छमि, रहौं चरण चित लाय ॥१४॥

हे नाथ! आपकी प्रचण्ड माया ने मुझे भ्रमित कर दिया था अतः अब आप मेरे अपराधों को क्षमा कर मुझ पर कृपा करें जिससे मैं आपके चरण कमलों में अपना चित्त लगाये रहूँ।

एवमस्तु कहि राम उदारा । पूजै सब मन काम तुम्हारा ॥
भृगुवर कहेव पुनः हरषाई । आप बाण कहुँ व्यर्थ न जाई ॥

श्री परशुराम जी की विनय को श्रवणकर परम उदार श्रीरामजी महाराज ने कहा– ऐसा ही होगा, आपकी सभी मनोकामनायें पूर्ण होंगी। श्री परशु रामजी ने हर्षित होकर पुनः कहा– हे नाथ! आपका संधान किया हुआ बाण कभी भी ब्यर्थ नहीं जाता,

जानहुँ सब विधि कृपा तुम्हारी । ताते रघुपति विनय हमारी ॥
मम कर्मार्जित लोक बहूता । हनि शर लक्ष्य सुपुण्य अकूता ॥

यह बात मैं भली प्रकारआपकी कृपा से जानता हूँ इसलिए हे रघुकुल के स्वामी! मेरी प्रार्थना है कि मेरे कर्मो के द्वारा प्राप्त किये हुए संसार में असीमित महान पुण्य लोकों को, बाण का लक्ष्य बना कर आप विनष्ट कर दें।

करि मन शान्त अवधपुर जाइय । सब विधि आपन मोहि बनाइय ॥
सुनत श्याम शर तुरतहिं छोरा । भृगुवर पुण्य जरे तेहिं ठौरा ॥

इस प्रकार मुझे सभी प्रकार से अपना बना कर आप शान्त चित्त हो श्री अयोध्या पुरी प्रस्थान करें। उनकी विनय सुनते ही श्यामसुन्दर श्री रामजी महाराज ने तुरन्त बाण छोड़ दिया जिससे उसी समय श्री परशुरामजी के पुण्य लोक भस्म गये।

भक्त प्रेम प्रभु प्रेमहिं पाई । गिरे चरण मुनि प्रिय अकुलाई ॥
जय जय जय कहि कृपा निधाना । करि प्रणाम पुनि विप्र महाना ॥

इस प्रकार श्री परशुराम जी के प्रेम ने प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेम को प्राप्त कर लिया तब वे मुनि श्री परशुराम जी भगवान श्री राम जी महाराज जी के प्रिय चरणों में पुलकित हो गिर पड़े तथा हे कृपा निधान! आपकी जय हो, जय हो कहते हुए उन्हें प्रणाम कर वे द्विज–श्रेष्ठ श्री परशुरामजी–––

दो०—गये महेन्द्रा चलहिं द्रुत, राम चरण चितलाय ।
रामहुँ गे पितु पास पुनि, वचन कहे सुखदाय ॥१५॥

---शीघ्र ही अपने चित्त को श्री राम जी महाराज के चरणों में लगाकर महेन्द्राचल पर्वत चले गये, तदुपरान्त श्रीरामजी महाराज भी अपने श्रीमान् पिताजी के समीप जाकर सुख प्रदायक वचन कहे–

परशुराम भग गये स्वभाऊ । होंहि प्रसन्न सुनहिं मम दाऊ ॥
राम परश लहि सुनि मृदु वचना । उठे द्रुतहिं दशरथ मन मचना ॥

हे मेरे श्रीमान् दाऊजी! आप मेरे वचनों को प्रसन्न होकर सुनें, श्री परशुराम जी स्वाभाविक ही चले गये हैं। तब श्री राम जी महाराज के स्पर्श को प्राप्तकर तथा उनके कोमल वचनों को सुनकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज शीघ्र ही चैतन्य मना हो उठ पड़े।

रामहिं लीन्हे हृदय लगाई । भयो जन्म नव मानत राई ॥
विविध भाँति करि प्यार सुहाना । दीन्हे दान द्विजन विधि नाना ॥

अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज ने श्री रामजी महाराज को हृदय से लगा लिया तथा यही समझा कि नवीन जन्म हुआ है। उन्होंने श्री राम जी महाराज का विभिन्न प्रकार से सुन्दर प्यार दुलार कर ब्राह्मणों को कई प्रकार का दान दिया।

मंगल रक्षा मंत्र पढ़ाई । चले बरात साजि नृपराई ॥
पणव निसान बाजने बाजहिं । मुदित बराती जात बिभ्राजहिं ॥

पुनः चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज श्रीरामजी महाराज का मंगलानुशासन व रक्षा मंत्र का पाठ करवा, बरात को साज कर चल पड़े। उस समय पणव (लकड़ी से बजाया जाने वाला ढोल), नगाड़े तथा अन्य प्रकार के बाजे बज रहे थे तथा सभी बराती प्रसन्न मन प्रस्थान करते हुए सुशोभित हो रहे थे।

बीच बीच गुनि समय बराती । वसहिं वास वर सुख सब भाँती ॥
हरषहिं गुनहिं जनक पहुनाई । करत परस्पर विविध बड़ाई ॥

मार्ग के बीच–बीच में विश्राम का समय समझ कर बाराती जन विभिन्न प्रकार के सुविधायुक्त निवासों में सभी प्रकार के सुख प्राप्त करते हुए निवास करते जाते हैं। वे सभी श्री जनक जी महाराज की पहुनाई (स्वागत–सत्कार) की विधि समझ–समझ कर हर्षित होते हैं तथा आपस में उनकी विभिन्न प्रकार से बड़ाई करते हैं।

दो०–यहि विधि सुख सह भूप वर, करत वास अभिराम ।
अन्तिम वास प्रमोद वन, पहुँचे सरयू धाम ॥१६॥

इस प्रकार अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज सुखपूर्वक मार्ग में निर्मित निवास गृहों में सुन्दर निवास करते हुए, श्री सरयू नदी के किनारे अपने धाम श्री अयोध्या पुरी के प्रमोदवन में बने अन्तिम निवास गृह पहुँच गये।

तहाँ वास करि दशरथ राया । रनिवासहिं निज नगर पठाया ॥
रानि पहुँचि अन्तःपुर माहीं । मन प्रमोद सुख कहि न सिराहीं ॥

वहाँ निवास कर श्री दशरथ जी महाराज ने अपने रनिवास को अपने नगर श्री अयोध्यापुरी भिजवा दिया। अनन्तर अपने अन्तःपुर में पहुँचकर रानियों के मन में जो आनन्द व सुख हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

मंगल साज सजहिं हरषानी। गावहिं गीत विवाह सयानी॥
घर घर सोही मंगल रचना। कहहिं राम यश सुन्दर बचना॥

चक्रवर्ती जी के रनिवास की परम चतुरी नारियाँ विवाह गीत गाती हुई, हर्षित हो मांगलिक वस्तुएँ सजाने लगीं। श्री अयोध्या पुरी के प्रत्येक घर में मांगलिक रचनायें सुशोभित होने लगी तथा वे सभी सुन्दर वाणी से श्रीरामजी महाराज की महान कीर्ति का गायन करने लगे।

मणिन चौक बहु गृह–गृह पूरी। सिंचे सुगंधन मारग भूरी॥
अवधपुरी बहु भाँति सजाई। इन्द्र पुरी जेहिं देखि लजाई॥

प्रत्येक घर में मणियों की बहुत सी चौके (रंगोलियाँ) सजाई गई है व मार्गो में सुन्दर इत्र बहुतायत में सिंचित किया गया है। इस प्रकार श्री अयोध्यापुरी उस समय विविध प्रकार से सजाई गयी थी जिसे देखकर श्रीइन्द्रपुरी भी लज्जित हो रही थी।

बाजहिं बाजन विविध प्रकारा। घर घर उत्सव गान अपारा॥
वेद विरद वरणहि द्विज बन्दी। जय जय कहि सब होहिं अनन्दी॥

विभिन्न प्रकार के बाद्य बज रहे हैं, प्रत्येक घर में असीम उत्सव व मांगलिक गायन छाया हुआ है, ब्राह्मण वेद व बन्दी विरद का बखान कर रहे हैं तथा सभी लोग जय जयकार कर आनन्दित हो रहे हैं।

दो०–सुदिन सुमंगल सोधि गुरु, वधू प्रवेशहिं केर।
आयसु दीन्हे हरषि हिय, बजेउ निसान सुफेर॥१७॥

अनन्तर गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी ने वधू–प्रवेश का मांगलिक सुदिन शोध कर हर्षित हृदय अपनी आज्ञा प्रदान की और सुन्दर नगाड़े पुनः बज उठे।

सुभग बरात चली हरषाई। बाजत वाद्य विपुल सरसाई॥
पुरवासी सुनि आव बराता। भये मुदित मन पुलकित गाता॥

सुन्दर बारात हर्षित होकर चल पड़ी उस समय विभिन्न प्रकार के वाद्य आनन्द पूर्वक बजने लगे। अयोध्या पुरवासियों ने बारात के आगमन का समाचार सुना तो वे आनन्दित मन तथा पुलकित शरीर हो गये।

देखन दूलह राम कुमारा। सहित भ्रात मुद मंगल सारा॥
मंगल भेंट हाथ निज लीने। चले सकल मन भाव नवीने॥

भ्राताओं सहित आनन्द व मंगल के सार दिव्य दूलह श्री रामजी महाराज को देखने के लिए हाथों में मांगलिक भेंट सामग्री ले लेकर, सभी पुरवासी अपने अपने मन में नवीन भावों से भावित हुये चल पड़े।

पुर बिच जात बरात अनूपा । दूलह लखे सबहिं सुख रूपा ॥
चारहु कुँअर निहारि निहारी । प्रेम मगन सब पुर नर नारी ॥

उन सभी ने श्री अयोध्या पुरी में अनुपमेय बारात के मध्य सुख स्वरूप नव दूलह श्रीरामजी महाराज को राज महल की ओर जाते हुए दर्शन किया। सभी अयोध्या पुरी के नर–नारी चारों राजकुमारों को देख–देखकर प्रेम मग्न हो गये।

वरषहिं पुष्प बजाय निसाना । कहत देव जय जय भगवाना ॥
सीय दरश लालच वश नारी । राज सदन सब चलीं सुखारी ॥

देवता उस समय नगाड़े बजाकर पुष्प वरषा रहे थे तथा हमारे प्रभु श्री रामजी महाराज की जय हो जय हो का उच्च स्वर से घोष कर रहे थे। श्री अयोध्या पुरी की पौरांगनायें श्री सीता जी के दर्शन की लालसा से सुखपूर्वक राजमहल को चल पड़ीं।

दो०– होत पंच ध्वनि मगहिं शुभ, केलि स्वाँग बहु भाँति ।
राज द्वार पहुँची सविधि, अनुपम राम बराति ॥१८॥

राजमार्ग में शुभ पंच ध्वनि छायी हुई थी तथा बहुत प्रकार के स्वाँग और कौतुक हो रहे थे इस प्रकार विधि पूर्वक श्रीरामजी महाराज की अनुपमेय बारात राजमहल के दरवाजे पर पहुँच गयी।

मंगल थार रानि सब लीनी । गावत मंगल राग रसीनी ॥
शारद शची लजावनि हारी । रती रमोमा तन मन वारी ॥

सभी महारानियाँ हाथ में मांगलिक थाल धारण किये हुये प्रेम रस में समायी हुई मांगलिक गीत गा रहीं थी। वे सभी अपने सौन्दर्य से श्री सरस्वती जी व श्री शची जी को विलज्जित करने वाली थीं तथा श्री लक्ष्मी जी, श्री पार्वती जी व श्री रती जी उन पर स्वयं के शरीर व मन को न्योछावर कर रही थीं।

सुभग चीर भूषण तन राजै । कंकन किंकिनि पायल बाजै ॥
चली करन परिछन वर वामा । संग अमित पुर नारि ललामा ॥

अपने अंगों में सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये हुए, कंकण किंकिणी व नूपुरों की ध्वनि करती हुई सुन्दर महारानियाँ असीमित पुरपौरांगनाओं सहित परिछन करने के लिए चलीं।

गुरु निदेश निज कुल अनुहारी । परिछन कीन्ह मगन महतारी ॥
आरति करि पाँवड़ बिछवायी । दूलह दुलहिन चली लवाई ॥

राजमाताओं ने गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी की आज्ञा से अपने कुल के अनुसार मन मग्न हो परिछन किया तथा आरती उतार पावड़े बिछवाकर दूलह–दुलहिनों को लेकर चल पड़ीं।

सकुचत राम मनहिं मन माहीं । चलत मन्द शिर नवे सुहाहीं ॥
मातु सिंहासन चार सुहाई । बैठारे वर चारहु भाई ॥
सहित वधुन चारहु सुकुमारे । सोहत काम रती बहु वारे ॥

श्रीरामजी महाराज अपने मन में लजाये हुये, शिर नत धीरे–धीरे चलते हुए सुशोभित हो रहे थे। श्री अम्बा जी ने चार सुन्दर सिंहासन मँगवाकर, चारो परम सुशोभन भ्राताओं को उन पर बिठा दिया। उस समय बधुओं सहित चारो राजकुमार ऐसे सुशोभित हो रहे थे, कि उन पर अनेक कामदेव व रती न्योछावर हो रहे थे।

दो०– वह समाज सुख मातु कर, को कवि करै बखान ।
ब्रह्म शक्ति बनि वर वधू, जहँ छवि आनन्द खान ॥१९॥

हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हें कि– उस समाज और उन माताओं के सुख का कौन वर्णन कर सकता है जहाँ पर स्वयं सुन्दरता व आनन्द की खानि पूर्ण ब्रह्म व परमाद्या शक्ति दूलह–दुलहिन बने हुए हों।

पुनि वर दुलहिन मंगल पूजी । पंच शब्द धुनि गगनहिं गूँजी ॥
आरति कीन्ह मुदित मन रानी । पूत पतोहू लखि सुख सानी ॥

पुनः सभी दूलह व दुलहिनों द्वारा मांगलिक पूजन किया गया, उस समय पंच शब्द ध्वनि (जयकार, बन्दी–ध्वनि, वेद–ध्वनि, मंगल–गान व निशान) आकाश में गूँज गयी। महारानी श्री कौशिल्या जी ने आनन्दित मन उनकी आरती उतारी तथा अपने पुत्र व पुत्रवधू को देख देखकर सुख में समाहित हो गयीं।

दान विविध विधि विप्रन दीन्हे । सब विधि पूजि अलंकृत कीन्हें ॥
चिरंजीव भल चारहुँ जोरी । आशिष देहिं विप्र सुख भोरी ॥

विप्रगणों का सभी प्रकार से पूजन कर उन्हे आभूषणों से सुसज्जित किया तथा विभिन्न प्रकार से दान दिया गया। तब विप्रगण प्रेम विभोर हुए, दूलह–दुलहिन की सुन्दर चारों जोड़ियाँ चिरजीवी हों, ऐसी आशीष दे रहे थे।

देवि अरुन्धति आयसु पाई । देखन सिय मुख सुन्दरताई ॥
समय सुहावन जानि सुमाता । खोली सिय मुख पट झुलकाता ॥

पुनः नव वधू श्री सीताजी के मुख की सुन्दरता देखने की आज्ञा गुरुमाता श्री अरुन्धती जी से पाकर तथा सुहावना समय जानकर अम्बा श्री कौशिल्या जी ने श्री सीता जी के मुख कमल पर पड़ा हुआ झीना आवरण हटा दिया।

फैली शशि मुख सरस जुन्हाई । पूरि प्रकाश भरेव अँगनाई ॥
लखि मुख सरसत सासु सुहाई । प्रेम विवश तन दशा भुलाई ॥
अनुपम सिय मुख सुन्दर टीका । अमित चन्द्र लाजहि लगि फीका ॥

जिससे श्री सियाजू के चन्द्र मुख की रसमयी ज्योत्सना विखर गयी तथा आँगन में पूर्ण प्रकाश छा गया। श्रीसीताजी का सुन्दर मुख देखकर आनन्द में भरी हुई उनकी सासू श्री कौशिल्या जी प्रेम के वशीभूत हो शरीर स्मृति भूल गयीं। श्री सीता जी के अनुपमेय मुख मण्डल में सौभाग्य सूचक सुन्दर टीका सुशोभित हो रहा था जिसे देखकर असीमित चन्द्रमा अपने आपको फीका समझ लज्जित हो रहे थे।

दो०—सिय सुखमा श्रृंगार छवि, सिन्धु देखि प्रिय मात ।
सरस सुखद मन बुद्धि पर, सुथिति भईं पुलकात ॥२०॥

सुषमा, श्रृंगार व सौन्दर्य की सागरी, रस से परिपूर्ण, सुख प्रदायिनी और मन, बुद्धि से परे अपनी प्रिय पुत्र वधू श्री सीता जी को देखकर अम्बा श्री कौशिल्या जी स्वस्थ हुई परन्तु उनका शरीर पुलकित हो रहा था।

सुनी लखी नहिं सुन्दरताई । जनक लली जस अहैं सुहाई ॥
उमा राम शारद शचि देवी । रती अनन्त लगैं पद सेवी ॥

श्री जनक लाड़िली सिया जी जैसी सुन्दर हैं ऐसी सुन्दरता तो आज तक देखी और सुनी भी नहीं गयी। श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी, श्री सरस्वती जी, श्री शची जी तथा श्री रती जी आदि अनन्त देवियाँ इनकी पद सेविका प्रतीत हो रही हैं।

अस मन गुनत कौशिला सासू । प्रेम उमगि चलि आयो आँसू ॥
मोकहँ रहा महा अभिमाना । मोर लाल सौन्दर्य निधाना ॥

मन में ऐसा विचार करते ही, हृदय में प्रेम उमड़ पड़ने के कारण श्री सियाजू की सासू श्री कौशिल्या जी के नेत्रों में अश्रु आ गये। वे अपने मन में विचार करती हैं कि– मुझे इस बात का अत्यधिक अभिमान था कि मेरे लाल श्री राम जी सौन्दर्य के कोष हैं।

मिली न दुलहिन सुत अनुरूपा । त्रिभुवन मोहन श्याम अनूपा ॥
सो अभिमान चूर होय गयऊ । सुत सो वधू अधिक भल भयऊ ॥

अतएव, त्रिलोकी को मोहित करने वाले अपने अनुपमेय पुत्र श्याम सुन्दर श्रीराम जी के अनुरूप दूल्हन न प्राप्त हो सकेगी। परन्तु मेरा वह अभिमान चूर्ण हो गया क्योंकि पुत्र से अधिक सुन्दर ही पुत्रवधू मुझे प्राप्त हुई है।

सब विधि सियाराम शुभ जोरी । देति सुआनन्द सिन्धु हिलोरी ॥
सिय मुख सुन्दर अधिक लखाई । देखि लाल रहिहैं रस छाई ॥

मेरे पुत्र व पुत्रवधू श्री सीताराम जी की सुन्दर जोड़ी सभी प्रकार से शुभ व आनन्द के सागर में अवगाहन कराने वाली है। पुत्रवधू श्री सीता जी के मुख का सौन्दर्य श्री राम जी से अधिक प्रतीत हो रहा है अतः हमारे लाल जी उसका दर्शन कर सदैव सुख में समाये रहेंगे।

दो०—यहि प्रकार मन मोद भरि, माता करति विचार ।
मुख दिखराई नेंग महँ, काह देउँ सुख सार ॥२१॥

अम्बा श्रीकौशिल्याजी अपने मन में आनन्दित हो इस प्रकार विचार करती हैं कि मैं समस्त सुखों की सारभूता श्रीसीताजी को उनकी मुख दिखाई नेग में क्या दूँ?

छं०— लखि सासु शोभा सीय मुख, तन पुलक हिय हरषित भयी ।
निज लाल छवि कहँ वारि कह, धनि धनि जननि जिन सिय जयी ॥

मुख देखि चाहति नेंग दिय, कहुँ खोज नहिं पावत भयणी ।
सत इन्द्र भूतिहुँ भूप की, कन छुद्र सम मन गिन लयी ॥

श्री सीता जी के मुख की असीम शोभा देखकर उनकी सासू श्री कौशिल्या जी का शरीर पुलक परिपूर्ण तथा हृदय हर्ष पूरित हो गया। उन्होंने श्री सीता जी की सुन्दरता पर अपने राजकुमार श्री राम जी के सौन्दर्य को न्योछावर कर कहा कि– वह माता धन्यातिधन्य है जिन्होंने श्री सीता जी को जन्म दिया है। अपनी पुत्रवधू श्री सियाजू का मुख देखकर, श्री कौशिल्या जी उन्हें मुख दिखाई नेंग देना चाहती हैं परन्तु उनके अनुरूप कहीं भी कुछ नहीं पा रहीं, उस समय सैकड़ों इन्द्र के समान वैभव वाले चक्रवर्ती महाराज श्री दशरथ जी के वैभव को श्री कौशिल्या जी, श्री सिया जू की समता में एक कण के समान नगण्य पा रही थीं।

गुरु नारि सो कह मोद भरि, निज वधुहिं देऊँ अब कहा ।
मन सोच चाहति देन जेहिं, सोइ लगति मोकहुँ लघु महा ॥
कह देवि सीतहिं राम दे, मन महँ परम सुख छाय के ।
सुनु मातु कौशिल राम कर, हरषति सियहिं पकड़ाय के ॥

तब वे गुरुमाता श्री अरुन्धती जी से आनन्द पूर्वक कहती हैं कि– हे गुरुमाता जी! मैं अब अपनी पुत्रवधू सीता को मुख दिखाई नेंग में क्या दूँ? क्योंकि अपने मन में विचार कर मैं उन्हें जिस वस्तु को देने की इच्छा करती हूँ वही मुझे अत्यन्त लघु प्रतीत होती है। उनकी बातें सुनकर गुरुमाता श्री अरुन्धती देवी जी ने कहा–हे महारानी जी! आप अत्यधिक आनन्दित होकर श्री सीता जी को श्री राम जी ही प्रदान कर दीजिये। तब उनकी बातें सुनते ही श्री कौशिल्या अम्बा जी, श्री राम जी महाराज का कर कमल श्री सीता जी को पकड़ाकर अत्यन्त हर्षित होती हैं।

दो०– रघुवर कर सिय हाथ धरि, भई प्रसन्न महान ।
चिरञ्जीव जोरी जयति, हरषण कहत बखान ॥२२॥

हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्रीराम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– अम्बा श्री कौशिल्या जी श्रीराम जी महाराज का कर कमल श्री सीता जी के कराम्बुज में रखकर अत्यधिक प्रसन्न हो गयीं। नव दूलह–दुलहिन श्री सीताराम जी की युगल जोड़ी चिरजीवी हो तथा उनकी सदैव जय हो, सदा विजय हो।

देखि सुमन वरषहिं बहु देवी । जय जय कहत राम सिय सेवी ॥
नृत्यहिं गावहिं बाद्य बजाई । अनुपम वस्तु सीय जब पाई ॥

यह दृश्य देख देखकर देवांगनायें विविध प्रकार के पुष्प वरषाती हैं तथा जय–जयकार करती हुई श्री सीताराम जी की सेवा कर रही हैं। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! जब श्री सीता जी ने नेंग में अनुपमेय वस्तु श्री राम जी को प्राप्त किया उस समय वे देवनारियाँ बाजे बजा–बजाकर नाच–गा रही थीं।

जानि मातु प्राणन प्रिय रामा । सौंपी सब विधि सियहिं ललामा ॥
बहुरि विभूषण वस्त्र अपारा । कहि न जाय धन विविध प्रकारा ॥

अम्बा श्री कौशिल्या जी ने श्रीरामजी महाराज को प्राण–प्रिय समझकर, परम सौन्दर्य सम्पन्ना श्री सीता जी को मुख दिखाई नेंग में सभी प्रकार से सौंप दिया। पुनः विभिन्न प्रकार के असीमित आभूषण, वस्त्र व अकथनीय धन–––

दीन्ही सासु सियहिं हरषाई । सुखकर नेंग सुमुख दिखराई ॥
देवि अरुन्धति सिय मुख देखी। सुखमय बनी प्रमोद विशेषी ॥

–––श्री सीता जी को उनके सुन्दर मुख दिखरायी सुखकारी नेंग में उनकी सासू श्री कौशिल्याजी ने हर्षित होकर दिया। गुरुमाता श्री अरुन्धती जी विशेष आनन्दपूर्वक श्री सीता जी का मुख देखकर सुख स्वरूपा हो गयीं।

दै अशीष दीन्ही दिवि भूषण । शीष परसि कह जय निरदूषण ॥
सिय मुख देखि सुभग सब सासू। होहिं मगन मन प्रेम प्रकाशू ॥

उन्होने आशीर्वाद देकर अपने दिव्य आभूषण श्री सीता जी को दिये व उनका शिर स्पर्श कर उन्होंने कहा– सभी दोषों से रहित हे श्री सिया जू! आपकी सदैव जय हो। श्री सीता जी का मुख कमल देख–देखकर उनकी अन्य सभी सासुएँ प्रेम प्रकाश से परिपूर्ण हो मग्न मना हो गयीं।

निज निज वस्तु अमित मनभावत। दीन्हीं नेंग नेह सरसावत ॥
लोक रीति कुल रीति कराई। देखि मातु सकुचहिं रघुराई ॥
सबन्ह मातु मन मोद अपारा। जनु योगी परमारथ धारा ॥

उन सभी ने अपनी अपनी मनचाही असीमित वस्तुएँ मुख दिखराई नेग में प्रेम परिपूर्ण हो श्री सीता जी को दिया। पुनः लोक विधि तथा कुल विधि कराई गयी जिनके करने में श्री राम जी महाराज अपनी अम्बाओं को देखकर संकुचित हो रहे थे। उस समय सभी श्री राम माताओं के मन में उसी प्रकार का असीम आनन्द छाया हुआ था जैसे योगी ने परमार्थ स्वरूप को प्रगट कर धारण कर लिया हो।

दो०–जो सुख जग देखे सुने, अमृत पान समेत ।
सतगुन सुख सम मातु सुख, कहब तुच्छ गनि लेत ॥२३॥

हमारे सद्‌गुरु देव भगवान स्वामी श्रीराम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–संसार में अमृत पीने सहित जो भी सुख देखे व सुने गये हैं उन सभी सुखों से सौगुने अधिक सुख को भी श्री अम्बा जी के सुख के समान कहना अत्यधिक तुच्छ ही समझ आता है।

करि कुल रीति राम रघुराया। बन्धु समेत गये जहँ राया ॥
मातु वधुन कहँ हरषि सिखाई। करन प्रणाम सयानिन्ह माई ॥

श्री राम जी महाराज कुल–विधि का सम्पादन कर भ्राताओं सहित अपने पिता श्री मान् दशरथ जी महाराज के समीप गये। यहाँ अन्त:पुर में माताओं ने पुत्र–वधुओं को हर्षपूर्वक शिक्षा दी कि ज्येष्ठ

माताओं को प्रणाम करिये।

करत प्रणाम सियहिं गुरु नारी। दीन्ह अशीष सुमंगलकारी॥
सिगरी सासु समेत कुलीनी। जो द्विज कुल वर नारि प्रवीनी॥

प्रणाम करती हुई श्री सीता जी को गुरुमाता श्री अरुन्धती जी ने सुन्दर कल्याणप्रद आशीर्वाद दिया। सभी सासुओं सहित स्वकुल की स्त्रियों तथा ब्राह्मण कुल की जो भी सुन्दर व चतुर स्त्रियाँ थीं–––

कीन्ह प्रणाम सबहिं शुचि सीता। आशिष लही सुमंगल धीता॥
मंगल गान अनन्द बधावा। नृप रनिवास सुरस भरि छावा॥

–––उन सभी को पवित्र श्री सीता जी ने प्रणाम किया तथा सुन्दर मंगलकारी आशीषे प्राप्त कीं। श्री दशरथ जी महाराज के रनिवास में सुन्दर रसपूर्ण मांगलिक गीत गाये जारहे थे तथा आनन्द बधावा छाया हुआ था।

दशरथ सब बरात सतकारी। अशन शयन वर रीति सम्हारी॥
भीतर जाय हृदय सरसाये। पूत पतोहुन लखि सुख पाये॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने सम्पूर्ण बारात का सम्हाल पूर्वक सुन्दर विधि से भोजन व शयन आदि सत्कार किया पुनः अन्तःपुर जाकर हृदय में हर्षित हुए तथा अपने पुत्रों व पुत्रवधुओं को देखकर सुख प्राप्त किये।

दो०–कुँवरन सोवन कहि नृपति, आपहुँ गे पुनि सोय।
मातु मुदित मणिवर पलँग, सुतन सुवाई जोय॥२४॥

पुनः सभी राजकुमारों को शयन हेतु निर्देश देकर श्री दशरथ जी महाराज शयन कर गये तब माताओं ने प्रमुदित होकर सुन्दर मणिजड़ित पलँगों में अपने पुत्रों को प्रेम पूर्ण दृष्टि से निहारते हुए शयन कराया।

वधुन साथ लै पौढ़ी माता। महा मोद मन पुलकित गाता॥
सो सुख मोपै वरणि न जाई। जानहिं जननि न सकैं बताई॥

अपनी पुत्र–वधुओं को साथ लेकर माताएँ मन में महान आनन्दित व पुलकित शरीर हो लेट गयीं। हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्रीराम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–वह सुख मुझसे वर्णन नहीं किया जा सकता क्योंकि उस सुख को मातायें जानती तो हैं किन्तु वे भी उसे वर्णन नहीं कर सकती।

शुभ प्रभात बाजन वर बाजे। जागे सबहिं मोद मन छाजे॥
नित्य नेम करि सुठि सुख फूले। आनन्द लहहिं सुउत्सव भूले॥

शुभ प्रातः काल होते ही सुन्दर वाद्य बजने लगे तथा सभी लोग आनन्द मना जाग गये पुनः नित्य कर्मो का अनुष्ठान कर सुन्दर सुख से फूले हुए सभी कुछ भुलाये हुये उत्सवीय आनन्द प्राप्त करने लगे।

महा भोज नृप कियो अगारा । पुर नर नारि प्रजा परिवारा ॥
आये जन पद मनुज अनेका । आश्रम वर्ण चार बहुतेका ॥

चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराज ने अपने राजमहल में महा भोज का आयोजन श्री अयोध्यापुरी के नर–नारी, प्रजा व परिवार के लिए किया, उसमें चारो आश्रमों, चारों वर्णों आदि के सभी जनपद निवासी अनेक नरनारी आये।

अन्त्यज पशु पक्षी सब काऊ। पाये भोजन प्रेम समाऊ ॥
बिविध भाँति भोजन सब कीन्हे । तृप्त होय बहु आशिष दीन्हे ॥

पशु–पक्षी व चाण्डाल आदि सभी ने प्रेमपूर्वक भोजन प्राप्त किया। सभी जन विविध प्रकार के व्यंजन पाकर संतुष्ट हो राजकुमारों को अत्यधिक आशीर्वाद दिये।

दो०– गुरु बसिष्ठ कौशिक ऋषय, वामदेव जाबालि ।
औरहु मुनिगण हुलसि हिय, पूजे नृप सुख सालि ॥२५॥

गुरुदेव श्रीबसिष्ठजी, ऋषिवर श्रीविश्वामित्रजी, श्रीवामदेवजी, श्रीजाबालिजी तथा अन्य दूसरे मुनियों की भी उल्लसित हृदय से सुखपूर्वक अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज ने पूजा की।

धेनु वसन मणिगण उपहारा। दीन्हें नृपति अनेक प्रकारा ॥
विप्रन पूजि गुरुहिं शिर नाई । भोजन करन गये नृपराई ॥

श्री दशरथ जी महाराज ने भेंट में उन्हे अनेक प्रकार से गायें, वस्त्र व मणियाँ आदि प्रदान कीं। पुनः सभी ब्राह्मणों की पूजा कर, श्री गुरुदेव जी को शिर झुका प्रणाम कर श्री दशरथ जी महाराज भोजन करने हेतु गये।

सह परिवार बन्धु सब लीने । अन्तःपुर बैठे सुख भीने ॥
करि कुलरीति कौशिला रानी । सिय कर कछु परसायो आनी ॥

वे अपने परिवार व भ्राताओं आदि सभी को लेकर सुख में समाये हुए अन्तःपुर में विराज गये तब श्री कौशिल्या महारानी जी ने कुल–विधि पूरी कर, श्री सीता जी के हाथों से कुछ व्यंजन परसवाये।

परसब नेंग सीय कर होई । करत विचार नृपति सुख मोई ॥
सिय अनुकूल न पावत राजा । यदपि इन्द्र सत संपति भ्राजा ॥

सुख में समाये हुए श्री दशरथ जी महाराज ऐसा विचार करते हैं कि– श्री सीताजी का परोसने का नेंग होता है, यद्यपि उनके पास सैकड़ों इन्द्र की सम्पत्ति विराजमान थी तथापि वे श्री सीता जी को देने के योग्य कुछ भी नहीं पा रहे थे।

प्रेम अश्रु नृप नयनन आये । मनहुँ दिये सोइ सियहिं सुहाये ॥
बहुरि नृपति निज मनहिं बिचारा । प्रवर मणी दिवि जनक भुआरा ॥

उस समय उनके नेत्रों में प्रेम के आँसू आ गये मानों वे उन सुन्दर प्रेमाश्रुओं को ही श्री सीता

जी को दे दिये। पुनः श्री दशरथ जी महाराज ने मन में विचार किया कि श्री जनक जी ने दिव्य 'प्रवर मणि'————

जल सम्भूत इन्द्र सन पाई। मोहिं दहेज दीन्हे हरषाई॥
सोइ शिर भूषण सिय कर होई। मनहर दिव्य सुभग छवि सोई॥

————जो जल से उत्पन्न और देवराज इन्द्र से प्राप्त हुई थी, दहेज में मुझे हर्षित होकर प्रदान की थी। वही मनोहारिणी, दिव्य, सुन्दर छवि वाली 'प्रवर–मणि' ही श्री सीताजी के शिर का आभूषण बनने योग्य है।

दो०– अस उर आनि सो कौशिलहिं, दीन्हेउ तुरत बताय।
सुनतहिं सिय मन मुसुकि प्रिय, नेंग लीन्ह हर्षाय॥२६॥

ऐसा हृदय में विचार कर अयोध्यानरेश श्री दशरथ जी ने उस बात को श्री कौशिल्या जी से तुरन्त बता दिया तब उनकी बात सुनते ही श्री सीता जी ने मन में मुस्कराते हुए अपना प्रिय नेंग हर्षित हो ग्रहण कर लिया।

तेहिं अवसर सुर आनन्द पैठे। नृपति दशा लखि जेवन बैठे॥
कहहिं परस्पर बात मनोहर। हँसहिं जानि नृप भाव उरोदर॥

उस समय भोजन करने बैठे हुए देवता आनन्द में पगे हुए चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की अवस्था देखकर आपस में मनोहारी बाते करते थे तथा श्री दशरथ जी के हृदय के भावों को जानकर विनोद कर रहे थे कि———

अवध मिली नहिं वस्तु सुहायन। जनक लली के योग सुभायन॥
सिय पितु वस्तु सियहिं दै राजा। हरषहिं सकुचहिं सहित समाजा॥

———श्री अयोध्या पुरी में जनक दुलारी श्री सियाजी के योग्य कोई भी सुन्दर वस्तु नहीं प्राप्त हुई इसलिए श्री सीता जी के पिता श्री जनक जी महाराज की दी हुई 'प्रवर–मणि' को श्री दशरथ जी महाराज श्री सीता जी को देकर ससमाज संकोच पूर्वक हर्षित हो रहे हैं।

जानि सिया सोइ भाव सुहावा। आप्त काम मन मोद बढ़ावा॥
औरहु भूषण वसन सुहाना। दीन्हे मनिगन नृप विधि नाना॥

श्री सीता जी ने उनके उसी सुन्दर भाव को समझकर पूर्णकाम होते हुए भी मन में आनन्दित हो उसे ग्रहणकर लिया। अनन्तर अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज ने कई प्रकार के अन्य–अन्य सुन्दर आभूषण, वस्त्र तथा मणियाँ आदि अपनी पुत्र वधू श्री सियाजू को प्रदान की।

पाइ नृपति पुनि अचमन कीन्हा। मगन मोद छन छनहिं नवीना॥
जे नृप आहुत उत्सव आये। भेंट प्रेम सत कारहिं पाये॥

इस प्रकार अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज भोजन कर आचमन किये तथा प्रतिक्षण नवीन आनन्द में मग्न हो गये। श्री अयोध्या पुरी में जो आमन्त्रित राजागण श्रीरामजी महाराज के विवाहोत्सव में आये हुए थे, उन सभी ने श्री महाराज से प्रेमपूर्वक भेंट तथा स्वागत सत्कार प्राप्त किया।

सकल बरातिन दशरथ दीने। मणिगन वसन अमोल नवीने॥
भेंट दान बहु मानहिं पाई। हरषे करि करि भूप बड़ाई॥

चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज ने सभी बरातियों को बहुमूल्य नवीन वस्त्र तथा मणि माणिक्यादि प्रदान किया और वे विविध प्रकार की भेंट, दान तथा सम्मान पाकर श्रीदशरथजी महाराज की प्रशंसा करते हुए हर्षित हो गये।

पुर नर नारि सुभूषण पाये। वसन मनोहर सुखद सुहाये॥
नख शिख भूषण सुभग सुआसिन। वसन लही बहु द्रव्य सुभाषिन॥

श्री अयोध्यापुरी के पुरुष व स्त्रियों ने श्री महाराज दशरथ जी से बहुमूल्य आभूषण, सुखप्रद सुन्दर व मनोहारी वस्त्र आदि प्राप्त किये। मृदु भाषिणी सुआसिनों ने नख से शिख तक के आभूषण, वस्त्र तथा असीमित द्रव्य प्राप्त किया।

दो०—नेंगी पाये नेग बहु, नाऊ बारी भाँट।
मागध सूत सुबन्दि कवि, भये रंक ते राट॥२७॥

नाऊ, बारी, भाँट, मागध, सूत, बन्दी तथा कवि आदि सभी नेगहारियों ने बहुत सा नेग प्राप्त किया तथा वे रंक से राजा हो गये अर्थात् धनहीन से धनवान बन गये।

सब कर सब विधि कर सनमाना। किये सुखी सबहिन मतिवाना॥
गुरु बसिष्ठ कर नेंग अपारा। आश्रम पठये मुदित भुआरा॥

परम बुद्धिमान श्री दशरथ जी महाराज ने सभी का सभी प्रकार से सम्मान कर सभी को सुखी कर दिया। गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी का अपरिमित नेग श्री दशरथ जी महाराज ने सानन्द उनके आश्रम भिजवा दिया।

बार बार गुरु पद रज नयना। नृपति लगावहिं करि उर चयना॥
कहत कृपा रावरि मैं पाई। भयों यथा जग भयो न भाई॥

हृदय में आनन्दित होकर श्री दशरथ जी महाराज अपने गुरुदेव श्री बसिष्ठजी की पावन चरण धूलि को बारम्बार नेत्रों में लगाते हुए कहते हैं कि– आपकी कृपा को प्राप्तकर मैं ऐसा सौभाग्य शाली हो गया जैसा संसार में कोई भी नहीं हुआ।

भाव जानि सब सहित मुनीशा। मंगल कहि शुभ दीन्ह अशीषा॥
सबहिं भाँति भल भाव बढ़ाई। कौशिक भीतर वास दिवाई॥

अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज के सुन्दर भाव को समझकर गुरुदेव श्री वसिष्ठ जी सहित सभी मुनियों ने उनकी मंगल कामना कर शुभाशिष दीं। पुनः सभी प्रकार से सुन्दर भाव वृद्धिंगत कर श्री विश्वामित्र जी को अन्तःपुर में निवास देकर———

सेये नृपति इष्ट गुनि देवा। करत कौशिला सब विधि सेवा॥
जोगवत रहहिं रानि रुख देखी। कौशिक हिय मन मोद विशेषी॥

–––श्री दशरथ जी महाराज ने इष्ट देव समझ कर उनका पूजन किया। महारानी श्री कौशिल्या जी उनकी सभी प्रकार की सेवायें कर रही थीं। अन्य महारानियाँ भी उनकी इच्छा को जानकर उनकी सेवा किया करती थीं जिससे श्री विश्वामित्र जी के हृदय व मन में विशेष आनन्द छाया रहता था।

सो०–माचेव महा उछाह, नृप दशरथ शुचि सदन महँ ।
देव भरे उत्साह, सुमन वरषि दुन्दुभि हनत ॥२८॥

चकवर्ती श्री दशरथजी महाराज के पवित्र राजमहल में महान आनन्द छाया हुआ था जिसे देख–देख देवता उत्साह में भरकर पुष्प वरषाते हुए दुन्दुभी बजाते रहते थे।

मास पारायण नवमाँ विश्राम

अवधपुरी कर सुठि सुख सुषमा । कहत बनै नहि कौनहु उपमा ॥
घर घर जन जन परमानन्दा । देखि सिहात ब्रह्म सुख मन्दा ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री अयोध्या पुरी के सौन्दर्य, सुषमा व सुख का वर्णन करते नहीं बनता, उसकी कोई भी उपमा नहीं है। वहाँ प्रत्येक घर तथा प्रत्येक जन में परमानन्द छाया हुआ था जिसे देखकर स्वयं ब्रह्मानन्द भी स्पृहा कर रहा था तथा फीका लग रहा था।

पंच शब्द धुनि छन छन होई । पुर अरु व्योम मगन सब कोई ॥
गया दिवस आयी शुभ राती । मंगल गान सरस तिय गाती ॥

वहाँ प्रत्येक क्षण पंच शब्दों की ध्वनि हो रही थी तथा पुरी व आकाश सर्वत्र के सम्पूर्ण निवासी सुख मग्न हो रहे थे। इस प्रकार दिन व्यतीत हुआ तथा शुभ रात्रि आ गई और नारियाँ रस से परिपूर्ण मांगलिक गीत गाने लगीं।

दशरथ राउ भवन मधि जाई। सबहिं आपनी नारि बुलाई ॥
कहेव सियहिं गुनि प्राणन प्राणा। सुखी करेहु सब बहुत विधाना ॥

तदनन्तर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज अपने महल में जाकर अपनी सम्पूर्ण रानियों को बुलाकर बोले– आप सभी हमारी प्रिय पुत्रवधू श्री सीता जी को प्राणों की प्राण समझ कर विविध प्रकार से सुखी करियेगा।

पितु घर छोड़ि श्वसुर गृह आई। बाल भोरि सुकुमारि सुहाई ॥
प्रिय पितु मातु बन्धु जिव जीवा। पालन करेहु सनेह अतीवा ॥

क्योंकि यह भोली, सुकुमारी तथा सुन्दर बालिका श्री सीता जी अपने पिता जी का भवन छोड़ कर ्वसुरालय आयी हुई है। आप सभी अपने पिता व माता की प्रिय तथा भैया के प्राणों की प्राण श्री सीताजी का पालन अत्यन्त स्नेहपूर्वक करियेगा।

दो०–पलक पुतरि सम राखि नित, रामहुँ ते बड़ प्यार ।
जोगवत छन छन प्रेम युत, करिबी सकल सँभार ॥२९॥

पलकें जिस प्रकार पुतलियों की रक्षा करती हैं वैसे ही, अपने पुत्र श्री राम जी महाराज से भी अधिक प्यार देकर प्रत्येक क्षण प्रेमपूर्वक इनकी रक्षा करते हुए सम्पूर्ण सार सम्हाल कीजियेगा।

अस कहि नृप रामहिं बुलवायी । आये बन्धु सहित सुख छायी ॥
करत प्रणाम राउ रखि गोदी । बैठारे हिय पगत प्रमोदी ॥

ऐसा कहकर अयोध्या नरेश श्री दशरथजी महाराज ने अपने कुमार श्री रामजी महाराज को बुलवाया और सुख में सने हुए श्री राम जी महाराज भ्राताओं सहित आ गये। श्री दशरथ जी ने महाराज प्रणाम करते हुए श्री राम जी को गोद में बिठा लिया तथा उनका हृदय आनन्द से ओत–प्रोत हो गया।

सबहिं दुलार राम उर लाई । सोवन कहेव जाहु सब भाई ॥
निज हिय राखि राम नर राया । सोये शुचि सुख शान्ति अमाया ॥

सभी राजकुमारों को दुलार श्री राम जी महाराज को हृदय से लगाकर वे बोले– आप सभी भाई शयन करने जाइये। पुनः वे श्री दशरथ जी महाराज अपने हृदय में श्री राम जी महाराज को धारण कर पवित्र, सुख, शान्ति तथा निराशक्त हो शयन कर गये।

यहि विधि उत्सव भयो महाना । अति आनँद नहि जाय बखाना ॥
सुर नर मुनि सब समय सुपाई । गये यथा रुचि गृह हर्षाई ॥

इस प्रकार अत्यानन्द पूर्वक महान उत्सव पूर्ण हुआ जिसके आनन्द का बखान नहीं किया जा सकता। देवता, मनुष्य व मुनि सभी समय पाकर अपनी इच्छानुसार अपने अपने धाम चले गये।

जनक नगर सुख सुन्दरताई । प्रायः रही अवधपुर छाई ॥
नित नव उत्सव आनँद मूला । होहिं सरस सब सुर अनुकूला ॥

जिस प्रकार श्री जनक पुरी में सुखमयी सुन्दरता सदैव ही छायी रहती थी उसी प्रकार श्री अयोध्या पुरी में सुख व सौन्दर्य समाया हुआ था। वहाँ आनन्द के मूल नित्य नवीन उत्सव रसपूर्ण रीति से होते रहते थे, जो सभी निवासियों और देवताओं के अनुकूल होते थे।

दो०– ऋषियन सँग सतसंग नित, होत सबन्ह अनुकूल ।
भगति ज्ञान वैराग कर, रहस सुनत मन भूल ॥३०॥

श्री अयोध्या पुरी में सभी के अनुकूल नित्य सत्संग होता रहता था जिसमें भक्ति, ज्ञान व वैराग्य के रहस्य को सुन–सुनकर सभी के मन विस्मृत बने रहते थे।

शुभ दिन शुभ मुनि आयसु पाई । दशरथ सहित रानि रस छाई ॥
कर कंकन कुँअरन छुरवाये । उत्सव आनन्द बजत बधाये ॥

पुनः शुभ दिन आने पर मुनिवर श्री वसिष्ठ जी की शुभ आज्ञा पाकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने रानियों सहित रससिक्त हो कर अपने राजकुमारों के कर कमलों के कंकण खुलवाये जिसमें आनन्द पूर्वक महान उत्सव सम्पन्न हुआ व बधावा बजाया गया।

सुख सह अहनिशि जात न जाने । प्रेम मगन सब सबहिं भुलाने ॥
नित्य चलन कौशिक मुनि चहहीं । राम प्रेम वश राखे रहहीं ॥

इस प्रकार सुखपूर्वक दिन व रात्रि समझ नहीं पड़ रहे थे और सभी लोग प्रेम मग्न होने के कारण अपना सर्वस्व भूले हुए थे। मुनिराज श्री विश्वामित्र जी नित्य ही अपने आश्रम प्रस्थान करना चाहते परन्तु श्रीराम प्रेम के वशीभूत होने से रोकने पर रुक जाते थे।

इक दिन गाधि सुवन कह राजहिं । जान देहु आश्रम शुभ काजहिं ॥
समय पाइ फिरि अइहौं राया । देखन रघुकुल राम सुभाया ॥

एक दिन गाधिनन्दन श्री विश्वामित्र जी ने अयोध्या नरेश श्री दशरथजी महाराज से कहा– हे राजन्! अब मुझे यज्ञादि शुभ कार्यो हेतु आश्रम जाने की अनुमति दें, पुनः समय पाकर मैं रघुकुल नन्दन श्री रामजी महाराज को देखने सहज ही वापस आ जाऊँगा।

तबहिं राउ बोलेउ सुत वामा । कहेव जान चह मुनि निज धामा ॥
भये विरह वश नृप युत दारा । सहित भ्रात रामहुँ सुख सारा ॥

तदनन्तर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने अपने पुत्रों व महारानियों को बुलाकर कहा कि मुनिवर श्री विश्वामित्रजी अपने आश्रम जाना चाहते हैं, इतना कहते हुये रानियों सहित वे स्वयं तथा भ्राताओं सहित सुखों के सार श्रीरामजी महाराज भी मुनिराज के विरह में समा गये।

दो०–मुनि सन कहेउ सुभूप सत, सुत शरीर धन धाम ।
आपन जानहिं वाम सह, हौं सेवक बिन दाम ॥३१॥

पुनः चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने मुनिवर श्री विश्वामित्रजी से कहा कि– हे महाराज! पुत्र, शरीर, धन, धाम तथा रानियों सहित आप मुझे यथार्थतः अपना ही समझिये क्योंकि मैं आपका बिना मूल्य का सेवक हूँ।

राउर कृपा राम कल्याणा । भयो नाथ सब विधि मनमाना ॥
ऐसेइ कृपा राखि द्विजनाथा । दै दै दरशन करेव सनाथा ॥

हे नाथ! आपकी कृपा से मेरे पुत्र श्री राम जी महाराज का सभी प्रकार से यथेच्छ कल्याण हुआ है अतः हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! आप इसी प्रकार की कृपा बनाये हुए हमें दर्शन दे देकर सनाथ करते रहियेगा।

कहि अस वचन राउ मद माहीं । परे नयन जल ढारत जाहीं ॥
मुनि कौशिक लीन्हे उर लाई । प्रेम विवश दृग वारि बहाई ॥

ऐसे वचन कहकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज उनके चरणों में अश्रु बहाते हुए गिर पड़े, तब मुनिवर श्री विश्वामित्र जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया और प्रेम के वशीभूत हो नेत्रों से अश्रु बहाने लगे।

बार बार हिय लावत रामहिं । शीष सूँघि जल नयन अन्हावहिं ॥
भरत लखन रिपुहन प्रिय प्यारा । कीन्हे कौशिक कृपा अगारा ॥

वे श्री राम जी महाराज को बार–बार हृदय से लगा लेते हैं तथा उनका सिर सूँघ कर प्रेमाश्रुओं से अभिषेक करते हैं। कृपा के आगार श्री विश्वामित्र जी ने सभी प्रिय राजकुमारों श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण कुमार व श्री शत्रुघ्न कुमार को भी अत्यन्त प्यार किया।

चले हृदय मन भरे वियोगू। राम प्रेम हिय कसक सुरोगू ॥
सहित सुतन वर दशरथ राऊ। चले पठावन प्रेम समाऊ ॥

वे हृदय तथा मन में प्रभु वियोग से भरे हुए व श्री राम जी महाराज के सुन्दर प्रेम–रोग की असहनीय पीड़ा को हृदय में लिये हुए चल पड़े। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज पुत्रों सहित प्रेम में समाये हुए उन्हें पहुँचाने हेतु चले।

दो०–आये नृपति सुदूर लखि, कौशिक मुनि अतुराय ।
कहेव ठाढ़ ह्वै वचन प्रिय, फिरिय महीप सुभाय ॥३२॥

इस प्रकार अयोध्या नरेश श्री दशरथजी महाराज को बहुत दूर आये हुए जानकर मुनिराज श्री विश्वामित्र जी ने शीघ्रतापूर्वक खड़े होकर सहज ही प्रिय वाणी से कहा– हे राजन! अब आप लौट जायें।

बार बार करि दण्ड प्रणामा । आशिष लहे नृपति सुखधामा ॥
भाइन सहित राम हर्षाई । परे चरण अति प्रेमहिं छाई ॥

तब सुखों के धाम श्री विश्वामित्र जी को बार–बार दण्डवत प्रणाम कर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने शुभाशीष प्राप्त की। भ्राताओं सहित श्रीरामजी महाराज हर्ष पूरित हो अतिशय प्रेम पूर्वक उनके चरणों में गिर कर प्रणाम किये।

शीष सूँघि मुनिवर हिय लाये । आशिष देत प्रेम तन छाये ॥
राखि राम हिय मुनि सुत गाधी । चले सुमन भरि प्रेम अगाधी ॥

मुनिवर श्री विश्वामित्र जी ने श्री राम जी महाराज का शिर सूँघकर उन्हें हृदय से लगा लिया तथा प्रेम पूरित शरीर से आशीर्वाद दिया और गाधिनन्दन श्री विश्वामित्रजी श्री राम जी महाराज को हृदय में धारण कर अपने सुन्दर मन में अगाध प्रेम भरे हुए चल पड़े।

फिरे नृपति सब पुत्रन साथा । मन कृतज्ञ वरणत मुनि गाथा ॥
आय विराजे नरवर गेहा। कहत सुनत मुनि कृपा सनेहा ॥

तदुपरान्त श्री दशरथ जी महाराज अपने सभी पुत्रों सहित, मन में कृतज्ञता परिपूरित हो, मुनिवर श्री विश्वामित्र जी के चरित्रों का बखान करते हुए लौट पड़े और अपने राज महल आकर विराजमान हो मुनिवर श्री विश्वामित्र जी की कृपा व प्रेम को कहते–सुनते हुये कालक्षेप करने लगे।

वामदेव गुरु सहित बसिष्ठा। कहहिं गाधि सुत कीर्ति वरिष्ठा ॥
गुरु वियोग रघुनन्दन रामा । हृदय दुखित प्रभु पूरण कामा ॥

वे गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी सहित श्री वामदेव जी से गाधिनन्दन श्री विश्वामित्र जी की सुन्दर श्रेष्ठ कीर्ति का गायन करते रहते थे। रघुनन्दन श्री राम जी महाराज पूर्णकाम होते हुए भी अपने

गुरुदेव श्रीविश्वामित्रजी के वियोग में हृदय से दुखी रहते थे।

दो०–राम स्वभाव सुशीलता, अवधपुरी नर नारि ।
देखि देखि आनन्द मगन, बनै न कहत सँभारि ॥३३॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्र॰ राम हर्षण दास जी महाराज कहते हें कि– श्री राम जी महाराज के स्वभाव तथा सुन्दर शील आदि गुणों को देख देखकर श्री अयोध्यापुर वासी सभी स्त्री–पुरुष ऐसे आनन्दमग्न थे कि उनके आनन्द का समुचित रूप से वर्णन करते नहीं बनता।

सियहिं व्याहि घर रघुवर आये । नित नव बाजत अनन्द बधाये ॥
आनँद आनँद आनँद पूरा । कौशल पुरी बनी रसभूरा ॥

श्री राम जी महाराज जब से श्री सीता जी को विवाह कर अपने भवन आये हैं तबसे वहाँ नित्य प्रति नवीन आनन्द बधाई बजती रहती है, श्री अयोध्यापुरी में सर्वत्र आनन्द, आनन्द और मात्र आनन्द ही छाया हुआ है और वह रस स्वरूपा बनी हुई है।

आनन्द सिन्धु छलकि चहुँ ओरी । नितहिं डुबावत अण्ड करोरी ॥
रिधि सिधि वैभव विपुल जमाती । छाइ अवध सिय सेव सुभाती ॥

उस समय आनन्द का सागर लहराता हुआ चारो तरफ उछल– उछल कर करोड़ों ब्रह्माण्डों को नित्य ही आप्लावित किये रहता था। अपने विभिन्न प्रकार के महान वैभव सहित सभी रिद्धियाँ व सिद्धियाँ श्री अयोध्यापुरी में छायी हुई थी तथा राम वल्ल्भा श्री सीता जी की विविध प्रकार से सुन्दर सेवा करती रहती थीं।

सिय पग धरत अयोध्या केरा । भाग विभव नित बढ़त घनेरा ॥
अनुभव करत सकल पुरवासी । सहित त्रिलोक सबहिं मन भासी ॥

श्री सीता जी के श्री अयोध्या पुरी में चरण रखते ही वहाँ का सौभाग्य व वैभव नित्य प्रति अधिकता के साथ वृद्धिंगत हो रहा था जिसका अनुभव तीनों लोकों के निवासियों सहित सभी श्रीअयोध्यापुर वासी मन में कर रहे थे।

सास श्वसुर कहँ प्राण प्यारी । सीता लगति अमित सुखकारी ॥
नयन पलक सम जोगवहिं तेहीं । छन छन बढ़े सुखद शुचि नेहीं ॥

श्री सीता जी अपनी सासुओं व अपने श्री श्वसुरजी को प्राणों के समान प्रिय तथा अत्यधिक सुखकारी लगती थीं। वे उनकी नेत्रों की पुतलियों के समान देखभाल करते रहते थे तथा श्री सीता जी के प्रति उनका प्रतिक्षण सुखावह और पवित्र प्रेम बढ़ता ही जा रहा था।

दो०–राम सीय दोउ एक सम, सेवहिं दम्पति राव ।
रंच भेद नहिं मन किये, त्रिकरण बढ़ नित भाव ॥३४॥

दम्पति श्री दशरथ जी महाराज अपने पुत्र श्री राम जी व पुत्रवधू श्री सीता जी दोनों को एक समान समझते हुए दैनिक व्यवहार करते थे तथा अपने मन में दोनों में किंचित अन्तर नहीं समझते थे। उनके हृदय में मन–वचन व कर्म से नित्य ही दोनों के प्रति सुन्दर भाव वृद्धिंगत होते रहते थे।

छं०— जिमि राम सेवहिं भाव भरि, तिमि राव रानी जानकी।
नहिं भेद रंचहुँ राम सिय, मानत स्वप्राणहुँ प्राणकी॥
भरि प्रेम मानस पुत्र वधु, लखि लखि सुहरषत नित हियो।
धनि भूप कौशिल मातु सब, सिय राम हर्षण मन दियो॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज व श्री कौशिल्यादि रानियाँ जिस प्रकार भाव में भरकर श्री राम जी महाराज के साथ व्यवहार करते थे उसी प्रकार ही श्री सीता जी से भी किया करते थे। वे श्री रामजी व श्री सीता जी में किंचित अन्तर नहीं मानते थे तथा उन दोनों को अपने प्राणों के प्राण समझते थे। वे अपने मन में प्रेम परिपूर्ण हो कर प्रिय पुत्र व पुत्रवधू को देख–देखकर नित्य ही हृदय में हर्षित होते थे। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज व श्री कौशिल्या जी आदि सभी मातायें, धन्य हैं जिन्होंने श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी की प्रसन्नता में अपने मन को लगा दिया है।

लखन राम सम भक्ति बढ़ाई। सिय सुख हेतु सरहिं सेवकाई॥
तैसेहिं भरत शत्रुहन लाला। सिय पद प्रेम बढ़ाव सुपाला॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी भक्ति–भाव को बढ़ाकर श्री राम जी महाराज के समान ही श्री सीता जी की उनके सुख के लिए सेवा करते थे, उसी प्रकार श्री भरत लाल जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी भी श्री सीताजी के चरणों में प्रेम बढ़ाकर उनकी सेवा करते थे।

सियहिं पाइ सुखकर घन श्यामा। छन छन नव सुख लहत ललामा॥
बने परस्पर इक इक प्राना। एक आत्म नहिं भेद भुलाना॥

मेघ के समान श्याम वर्ण वाले परम सुखकारी श्री राम जी महाराज श्री सीता जी को पाकर प्रति क्षण नवीन व सुन्दर सुख प्राप्त कर रहे थे। वे दोनों श्री सीता राम जी एक दूसरे के प्राण तथा एक आत्मा बने हुए थे। उनमें परस्पर में किंचित भेद–भाव नही था तथा वे पारस्परिक प्रेम में सभी कुछ भुलाये हुये थे।

सिय सुख रुचि रघुवर निज माने। तैसहिं सिया भाव हिय आने॥
लखि रुख राम सुचेष्टित सीता। महा भाव रस प्रेम पुनीता॥

श्री राम जी महाराज श्री सीताजी के सुख व इच्छा को अपना सुख व इच्छा समझते थे तथा ठीक उसी प्रकार के भाव श्री सीता जी भी अपने हृदय में श्री राम जी महाराज के प्रति रखती थीं। श्री सीता जी श्री राम जी महाराज की इच्छा को समझकर अपनी सारी चेष्टायें करतीं थीं तथा पवित्र प्रेम और महाभाव रस में डूबी रहती थीं।

सेवति रामहिं सदा अमानी। मन वच कर्म प्रीति सरसानी॥
शील सकुच शुचि विनय सुलाजा। उदधि बनी सिय प्रेमहिं छाजा॥

नित्य अमानी श्री सीता जी मन, वचन व कर्म से प्रेम में सरसायी हुई अपने प्राण वल्लभ श्री राम जी महाराज की सेवा करती थीं। श्री सीता जी शील, संकोच, पवित्रता, विनय, सौन्दर्य व लज्जा

की सागरी बनी हुई प्रभु प्रेम में सदा छकी रहती थीं।

दो०– जन्म करम शुचि रहनि शम, शील दया दिवि भाव।
क्षमा कृपा सिय केर लखि, मगन होत रघुराव ॥३५॥

जनक दुलारी श्री सीता जी के जन्म, कर्म, पवित्र रहनी, शम, शील, दया, दिव्य भाव, क्षमा व कृपा आदि गुणों को देख देखकर श्री राम जी महाराज आनन्द मग्न होते रहते थे।

सुन्दर सदन सहज सुख रासी। मधुर अनन्त सुगन्ध सुभाषी ॥
सुठि सुकुमार शरीर कोमला। शौष्ठव लावण सिन्धु शोभला ॥

श्री सीता जी सुन्दरता की सदन, सहज ही सुखों की राशि, अनंत माधुर्य सम्पन्ना, सुन्दर सुगन्ध (कमल गन्धा) से परिपूर्ण, मृदु भाषिणी, सुन्दर, सुकुमार व कोमल शरीर वाली, शौष्ठवता, लावण्यता व शोभा की सागरी थीं।

ललित अनंत सिया सरसाई। वरणि न जाय मनोहरताई ॥
ज्ञान विराग योग की रूपा। सब प्रकार सिय सुभग अनूपा ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–श्री सीता जी में अनन्त लालित्य तथा सरसता थी, उनकी मनोहरता का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। वे ज्ञान, वैराग्य व योग की स्वरूपा तथा सभी प्रकार से सुन्दर व अनुपमेय थीं।

दिवि अनन्त गुण आकर सीता। किये स्ववश प्रिय पियहिं पुनीता ॥
राम सिया शुचि सुन्दर प्रीती। कहै न शारद शेष अमीती ॥

अनन्त दिव्य गुणों की समूह, पवित्र श्री सीता जी ने अपने प्राण प्रियतम श्री राम जी महाराज को अपने वशीभूत कर लिया था तथा श्रीरामजी महाराज व श्रीसीताजी की पवित्र, सुन्दर व अपार प्रीति का वर्णन श्री सरस्वती व शेषजी भी नहीं कर सकते।

इक एकहिं मनहर दोउ भीने। आनन्द सिन्धु मगन परवीने ॥
छन सम समय जात दिन रैना। प्रीति रीति रस सहज सुखैना ॥
शक्ति ब्रह्म सिय राम सुजाना। आनन्द रूप स्वयं रस साना ॥

परम दक्ष वे दोनों श्री सीता व श्री राम जी परस्पर मन को हरण करते हुए, प्रेम में पगे व आनन्द के सागर में निमग्न रहते थे। उनके दिन व रात्रि का समय एक क्षण के समान बीत रहा था। उनकी प्रीति, रीति पूर्ण, रस से युक्त, सहज व सुख विवर्धनकारी थी। वे श्री सीताराम जी परम गुणवान, आनन्द–स्वरूप और रस में समाये हुए स्वयं परमाद्याशक्ति तथा पूर्ण ब्रह्म ही थे।

दो०– ताकी महिमा महत मह, सुख समृद्धि रस रूप।
कौन बिना अनुभव बके, अमित अनादि अनूप ॥३६॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उनकी महानतम महिमा, सुख, समृद्धि, रस तथा स्वरूप को बिना अनुभव कौन बखान कर सकता है क्योंकि वे असीम

अनादि और अनुपमेय हैं।

छं०– सिय राम सुन्दर प्रेम मधुमय, अकथ वानी गम नहीं ।
तेहिं करि सुअनुभव राम सिय, पी पी रसैं हिय हर्षहीं ॥
कहि पार पावहिं सोउ नहिं, रस रूप रस किमि कहि सकैं ।
जिमि सिन्धु आनन्द आपनो, हरषण न नेकहुँ गिन बकैं ॥

श्री सीताराम जी का सुन्दर व मधुमय प्रेम अकथनीय है जिसे वर्णन करने की सामर्थ्य श्री सरस्वती जी में भी नहीं है। उसी प्रेम का अनुभव व पान करते हुए श्री राम जी महाराज व श्री सीता जी रस में समाये हुऐ हृदय में हर्षित होते रहते हैं परन्तु उसका वर्णन वे भी नहीं कर पाते क्योंकि स्वयं रस स्वरूप वे, रस का वर्णन कैसे कर सकते हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्रीराम हर्षण दासजी महाराज कहते हैं कि– वे उसी प्रकार उसका बखान नहीं कर सकते जिस प्रकार समुद्र अपने आनन्द को न तो समझ सकता है और न किंचित बखान ही कर सकता।

सीय चरित लखि नृप युत रानी । आनँद मगन रहैं रस सानी ॥
सीय सुकृत यश सुनि पुर लोगा । हरषित वरणहिं सुख संयोगा ॥

श्रीसीताजी के चरित्र को देख देख कर अपनी महारानियों सहित चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराज आनन्द मग्न व रस में सने रहते थे। श्री सीता जी के सत्कर्मों व कीर्ति को सुन सुनकर श्री अयोध्यापुर निवासी हर्षित बने श्री सीताराम जी के संयोग व सुख का वर्णन करते रहते थे।

एक दिवस नृप दशरथ बोली । सियहिं दुलार भाव निज खोली ॥
कहेउ पुत्रि एक रुचि मन माहीं । देन चहौं कछु तब प्रिय काहीं ॥

एक दिन अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज ने अपनी पुत्रवधू श्री सीता जी को दुलारकर अपने भावों को प्रगट करते हुए प्रिय वाणी से कहा– हे पुत्री! मेरे मन में एक इच्छा है, मैं तुम्हे तुम्हारी कुछ प्रिय वस्तु देना चाहता हूँ।

यदपि सुता है पूरण कामा । जनक लाड़िली ललित ललामा ॥
सिद्धि ननँद लक्ष्मीनिधि अनुजा । अहहु धरा की सुता सुखदजा ॥

हे पुत्रि! यद्यपि तुम तो पूर्णकामा हो क्योंकि श्री जनक जी महाराज की सौन्दर्य सम्पूर्णा सुशोभना लाड़ली बेटी, श्री सिद्धि कुँअरिजी की ननँद, श्री लक्ष्मीनिधि जी की छोटी बहन, सम्पूर्ण सुखों की उत्पादिका व श्री भू देवी की पुत्री हो।

रहहु सदा मन माहिं अचाहा । तदपि मोर मन महा उछाहा ॥
ताते पुत्रि सुनहिं सत वानी । मम वच गौरव करहिं प्रमानी ॥

यद्यपि तुम तो सदैव ही निष्काम मना हो तथापि मेरे मन में अत्यधिक उत्साह है इसलिए हे पुत्री! मेरे वचनों के गौरव को प्रमाणित करने के लिए मेरी सत्य वाणी सुनो–?

दो०– बढ़त हृदय रुचि जानि जिय, माँगहु वस्तु सुहात।
सुनतहिं सीता सकुचि शुचि, कही सासु सन बात ॥३७॥

मेरे हृदय की बढ़ती हुई इच्छा को तुम अपने हृदय में समझकर मुझसे कोई प्रिय वस्तु माँग लो। अपने श्वसुर जी के वचनों को सुनकर पवित्र श्री सीता जी ने संकोच पूर्वक अपनी सासू श्री कौशिल्या जी से कहा–

करि प्रिय प्यार देन चह दाऊ । निज रुचि कहौं सुनहिं सत भाऊ ॥
यावत मैथिल दासी दासा । आये जननि जनक तजि वासा ॥

हे श्री अम्बा जी! श्री मान् दाऊ जी ने मुझे प्रिय प्यार कर, मेरी प्रिय वस्तु देने की बात कही है अतः मैं अपने हृदय की इच्छा कह रही हूँ– आप मेरे सत्य भाव को श्रवण करें। मेरी इच्छा है कि– श्री मिथिलापुरी से जितने भी दासी–दास अपने माता–पिता व घर–द्वार को छोड़कर यहाँ आये हुए हैं–––

भोगहिं भोग अवध सरसाया । जासु देखि इन्द्रहुँ ललचाया ॥
पशु पक्षी सब मिथिला केरे । मोहिं परम प्रिय जानहु तेरे ॥

–––वे सभी श्री अयोध्यापुरी में इस प्रकार के भोगों का उपभोग करें जिन्हें देखकर देवराज इन्द्र भी ललचा जायें। क्योंकि श्री मिथिलापुरी के पशु–पक्षी आदि सभी जीव मुझे अत्यधिक प्रिय हैं, आप लोग यह जान लीजिये।

सुनि नृप हृदय हरषि सरसाने । कृपामयी भलि सीतहिं जाने ॥
आश्रित जन कहँ प्राण समाना । राखति सीय देति सुख नाना ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज उनकी बातें सुनकर हर्षित हृदय आनन्दित हो गये तथा 'श्री सीता जी कृपामयी हैं' भली प्रकार समझ गये। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्रीराम हर्षण दासजी महाराज कहते हैं कि–श्री सीता जी अपने आश्रित जनों को प्राण के समान रखती हें तथा अनेक प्रकार के सुख देती रहती हैं–––

जानतहूँ अस मृदुल सुभाऊ । जो न भजहिं सिय खेहर खाऊ ॥
धनि धनि सीता आपु समाना । भक्तन साज सजैं विधि नाना ॥

–––उनके ऐसे कोमल स्वभाव को समझ कर जो लोग श्रीसीताजी का भजन नहीं करते वे मानो धूल ही फाँक रहे हैं। श्री सीता जी धन्याति धन्य हैं जो अपने भक्तों की अपने समान ही अनेक प्रकार से साज–बाज सजाती रहती हैं।

दो०– चक्रवर्ति हिय आनि सुख, परम प्रवन्धहिं कीन्ह ।
वशुकर्महिं दिवि भवन हित, हर्षित आयसु दीन्ह ॥३८॥

चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज ने हृदय में सुखी होकर वह महान प्रबन्ध कर दिया तथा उन्होंने हर्षित होकर दिव्य भवनों के निर्माण हेतु देव–शिल्पी श्री विश्वकर्मा जी को आज्ञा दी।

अमित भवन हित दासी दासा । बने सुभग लखि इन्द्र हरासा ॥
विविध भोग सम्पति कल्याना । प्रति प्रति भवन अनेक विधाना ॥

इस प्रकार मैथिल दासी–दासों के लिए असीमित, सुन्दर भवनों का निर्माण हुआ जिन्हें देखकर देवराज इन्द्र भी मन में हीनता का अनुभव करते थे। प्रत्येक भवन विभिन्न प्रकार के कल्याणकारी भोगों व सम्पत्तियों से भरे हुए थे।

मैथिल सखी सखा शुचि दासी । दास राम सिय प्रेम पियासी ॥
पृथक पृथक सब सदनन राजैं । पेखत भाग लोकपति लाजैं ॥

श्री मिथिलापुरी से आये श्री सीताराम जी के प्रेम पिपासित पवित्र सखी, सखा, दासी व दास आदि सभी उन भवनों में अलग–अलग निवास करने लगे जिनके भाग्य वैभव को देख लोकपति भी लज्जित हो रहे थे।

प्रति मैथिल बहु दासी दासा । करैं सेव भरि हृदय हुलासा ॥
मैथिल मनहिं रहहिं रस छाके । वसैं अवध प्रिय जनक सुता के ॥

प्रत्येक मैथिल की सेवा बहुत से दासी व दास अपने हृदय में उत्साह भर कर किया करते थे। इस प्रकार श्रीजनक दुलारी सीताजी के प्रिय सभी मैथिलजन अपने मन में रस में छके हुए श्री अयोध्यापुरी में निवास कर रहे थे।

भले भाव भरि नितहिं विभोरा । सेवहिं हरषित युगल किशोरा ॥
मातु पिता गृह सुधि बिसराई । युगल कृपा लखि मोद महाई ॥

वे सभी सुन्दर भावों में भरे हुए, विभोर बने हर्षित हो कर नित्य युगल किशोर श्रीसीतारामजी की सेवा करते तथा अपने माता–पिता व भवनों की स्मृति भूले हुए युगल सरकार श्रीसीतारामजी की कृपा को देख देखकर महान आनन्द प्राप्त कर रहे थे।

दो०–अहनिशि बीतत जान नहि, छन छन आनन्द प्रेम ।
युगल प्यार शुचि सुखद लहि, तजे योग अरु क्षेम ॥३९॥

अयोध्या आये हुये सभी मैथिल प्रत्येक क्षण आनन्द व प्रेम परिप्लुत हुये हुए दिन व रात का समय व्यतीत होना नहीं समझ पाते थे। वे युगल सरकार श्री सीताराम जी के पवित्र सुखदायी प्रेम को पाकर अपने सांसारिक कल्याण व परमार्थ (योग व क्षेम) की चिन्ता भी त्यागे हुये थे।

सिय रुचि जानि तबहिं महराजा । औरहु कीन्ह प्रबन्ध सुसाजा ॥
हय गय गाय कीर जे आये । मैथिल श्वानहुँ गये कहाये ॥

तदनन्तर चक्रवर्ती श्री महाराज दशरथजी ने श्री सीता जी की इच्छा जानकर और भी अनेक प्रकार की सुन्दर व्यवस्था कर दी। घोड़े, हाथी, गाय व तोता आदि जो भी जीव श्री मिथिलापुरी से आये थे यहाँ तक कि जो मिथिलापुरी के श्वान भी कहाते थे।

भोगहिं भोग राज सुख जैसा। राम परश लहि मोद धनैसा ॥
ते सब भये परम पद रूपा। सीयराम की कृपा अनूपा ॥

वे सभी राज सुख के समान भोगों का उपभोग कर रहे थे तथा श्रीरामजी महाराज का स्पर्श प्राप्त कर धनराज कुबेर के समान आनन्द प्राप्त कर रहे थे। वे सभी श्री सीतारामजी की अनुपमेय कृपा को पाकर परम पद स्वरूप हो गये थे।

जेहिं विधि सीय श्याम सुख पावैं। सोइ करैं मैथिल मन भावैं ॥
दासी सखी सीय के वासा। रहहिं राम ढिंग सखा सुदासा ॥

श्री सीता जी व श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज जिस प्रकार से सुख प्राप्त करें, वही करना श्री मैथिल जनों को मन में अच्छा लगता तथा वे वही कार्य किया करते थे। मैथिल दासी व सखियाँ सेवा के लिए श्री सीता जी के निवास में तथा सुन्दर सखा व दास श्री रामजी महाराज के समीप रहा करते थे।

कबहुँ कबहुँ बिन बन्धन मैथिल। समय जानि प्रिय प्रेम अशैथिल ॥
सेवहिं भाव भरे सिय श्यामा। जानि सुरुचि अरु कार्य ललामा ॥

कभी-कभी समय को समझकर मैथिल बिना बन्धन के (मुक्त भाव से) प्रभु के प्रिय प्रेम में सजगतया, भावों में भरकर श्री सीता जी व श्रीरामजी महाराज की इच्छा व कार्य को समझते हुए उनकी सुन्दर सेवा करते रहते थे।

दो०- यहिं विधि मैथिल लोग सब, भाव भरे मन भूल।
लखि लखि सीता राम सुख, सुखी रहहिं अनुकूल ॥४०॥

इस प्रकार अयोध्यापुर आये हुये सभी मैथिलजन भावों में भरे व मन को भुलाये हुए श्री सीतारामजी को सुखी देख-देखकर उनके अनुकूल बने सुखी रहते थे।

शील स्वभाव सहज सुख सीता। सास श्वसुर गुरु भाव पुनीता ॥
निज भलि रहनि सबहिं वश कीनी। पति सुप्यार लहि सरस सुखीनी ॥

श्री सीता जी ने अपने शील-स्वभाव, पवित्र भावना व अपनी सुन्दर रहनी से अपने सास, श्वसुर व श्री गुरुदेव जी आदि सभी को सहज ही सुखपूर्वक अपने वश में कर लिया था तथा अपने प्राण-वल्लभ श्रीरामजी महाराज के सुन्दर प्रेम को प्राप्त कर प्रफुल्ल व सुखी बनी रहती थीं।

राम चरण चित प्रेम बढ़ाई। सेवति सुखद शान्ति सरसायी ॥
राम सिया कर नित नव प्यारा। को कहि सकै को जानन हारा ॥

वे श्री राम जी महाराज के चरणों में अपने चित्त को लगाये हुए प्रेम बढ़ाकर सेवा करती हुई सुखप्रद शान्ति में सरसायी रहती थीं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्रीराम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि-श्री सीता जी व श्री राम जी महाराज के नित्य व नवीन प्रेम को कौन समझने और वर्णन करने वाला है।

सिय सुख सिन्धु मगन मन रहई । तदपि जनक गृह सुधि नित गहई ॥
नैहर सुधि आवत मन माहीं । ढारति नयन प्रेम अवगाही ॥

श्री सीता जी यद्यपि सुख के सागर में मन मग्न रहती थीं फिर भी वे अपने पितु–गृह श्री मिथिलापुरी का स्मरण नित्य प्रति करती रहती थीं तथा अपने मायके की स्मृति मन में आते ही वे प्रेम विभोर हो नेत्रों से अश्रु बहाने लगती थीं।

जननि जनक प्रिय प्यार विचारी । होत मगन विरहोदधि भारी ॥
भाभी भैया सुरति सुहाती । हृदय विरह बहु पीर जगाती ॥

श्री अम्बा जी व श्री मान् दाऊजी के प्रिय प्यार का विचार कर वे विरह के महासागर में मग्न हो जातीं तथा अपनी भाभी व भैया जी की सुन्दर स्मृति उनके हृदय में अत्यधिक विरही पीड़ा जागृत कर देती थी।

छं०– हिय पीर बाढ़ति नित्य नित, विरहाग्नि बड़ि तन मन लगी ।
कहुँ मातु दाऊ बन्धु कहुँ, भाभी वियोगहिं कहुँ पगी ॥
परिवार खेलब खाब सुधि, निज तन्त्र सखि सँग करि हिये ।
पुनि कीर सारिक बोल प्रिय, बढ़वत विरह हरषण जिये ॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्रीराम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–इस प्रकार जनक नन्दिनी श्री जानकी जू के हृदय में नित्य प्रति अपने स्वजनों के वियोग की पीड़ा बढ़ती जाती तथा महान विरह की अग्नि उनके शरीर व मन को संतप्त करती रहती थी। वे कभी अपनी श्री अम्बा जी, कभी श्रीमान् दाऊ जी व कभी अपने भैयाजी तो कभी अपनी भाभी जी के वियोग में पगी रहती थी। अपने घर–परिवार, खेलने व खाने, स्वतन्त्र रूप से सखियों के साथ किये हार्दिक विहार पुनः तोता व मैना के बोलियों की प्रिय स्मृति उनके हर्षित हृदय में विरह वृद्धिंगत कर देती थी।

दो०–तृण वीरुध तिरहुत सबै, आवत सिय मन माहिं ।
विरह बढ़ावत नित्य हिय, नयनन अश्रु बहाहिं ॥४१॥

तिरहुत प्रदेश श्री मिथिलापुरी के तृण–पादप आदि सभी की स्मृति श्री सीता जी के मन में आती रहती थी तथा वह नित्य ही उनके हृदय के विरह को बढ़ाती रहती थी जिससे उनके नेत्र अश्रु बहाते रहते थे।

भैया शब्द सुरति सिय काहीं । बेधि विरह कसकावति आहीं ॥
श्री लक्ष्मी शुभ आदिक बैना । सुनत सिया भैयहिं उर अयना ॥

भैया शब्द की स्मृति ही श्री सीता जी को विरह में प्रविष्ट कराकर, तड़पाने लगती और श्री, लक्ष्मी आदि शुभ शब्द सुनते ही श्री सीता जी के हृदय भवन में अपने भैया जी की याद आ जाया करती थीं।

करि करि सुरतिहिं ढारति आँसू । अति दुलार समुझावहिं सासू ॥
कबहुँ शयन बिच सपनहिं देखै । भैया भनति अधीर विशेषै ॥

जिससे वे उनका स्मरण कर आँसू बहाती रहती थीं तब उनकी सासू श्री कौशिल्या जी अत्यन्त दुलार कर उन्हें समझाती थीं। कभी श्री सीता जी सोते समय अपने भैयाा जी को स्वप्न में देखकर भैया–भैया कहती हुई अत्यन्त अधीर हो जाया करती थीं।

लेहिं कौशिला हृदय लगाई । पुनि पुचकारि देहि सुतवाई ॥
प्रिय पितु मातु बन्धु अरु भाभी । प्यार सुरति सुइ हिय कहँ डाभी ॥

तब श्री कौशिल्या जी उन्हें हृदय से लगा लेतीं व पुचकारते हुए पुनः सुला देती थीं। इस प्रकार उनके प्रिय–स्वजन श्रीमान् दाऊ जी, श्री अम्बा जी, श्री भैया जी व श्री भाभी जी के प्यार की स्मृति रूपी सुई उनके हृदय को चुभती रहती थी।

वसन विभूषण पितु गृह केरे। विरह बढ़ावत हियहिं घनेरे ॥
जल भरि नयन सुरति करि सीता । पितु गृह नेह विवश अति प्रीता ॥

श्री सीता जी के पितु–गृह के वस्त्र व आभूषण उनके हृदय में अत्यधिक विरह बढ़ाते थे जिससे अपने स्वजनों के प्रेम में वशीभूत हुई श्री सीता जी अत्यन्त प्रीति पूर्वक नेत्रों में अश्रु भरकर उनका स्मरण किया करती थीं।

दो०–सखियन मधि महँ बैठि नित, वरणति नैहर प्यार ।
धनि धनि सीता लाड़िली, जनन हिये निज धार ॥४२॥

वे सखियों के बीच में बैठकर नित्य ही उनसे अपनी प्रिय मातृपुरी की प्रीति का वर्णन करती थीं। श्री लाड़िली सिया जू धन्याति धन्य हैं जो अपने जनों को नित्य हृदय में बसाये रखती हैं।

सखिगण बीच सीय विरहानी । बोली झरत नयन प्रिय वानी ॥
सुनहु सखी भैया भल भावा । मन बुधि अगम न बनत बुझावा ॥

एक दिन सखियों के बीच विरह में समायी हुई श्री सीता जी आँखों से आँसू बहाते हुए प्रिय वाणी से बोलीं– हे सखी! सुनो, मेरे श्री भैया जी का सुन्दर भाव तो मन व बुद्धि से न समझा जा सकने वाला है, वह मुझसे समझाते नहीं बन रहा।

प्राण प्राण मानत जिव जीवा। करहिं दुलार सुभाव अतीवा ॥
मम सुख लागिहिं चेष्टा सिगरी । करत अहिर्निशि प्रेमहिं पगरी ॥

वे मुझे प्राणों की प्राण तथा जीवों की जीवनी शक्ति मानते हैं तथा स्वाभाविक ही मेरा अत्यन्त दुलार करते हैं। वे दिन–रात प्रेम में पग कर, मेरे सुख के लिए ही अपनी सभी चेष्टायें किया करते हैं।

मो बिन भोजन कबहुँ न करहीं। देखि देखि मोहिं आनँद भरहीं ॥
कहत कहत सिय प्रेम विभोरी। श्रवति नयन जल सुधिहुँ न थोरी ॥

वे मेरे बिना कभी भी भोजन नहीं करते तथा मुझे देख–देख कर आनन्द से भरे रहते थे। ऐसा कहते कहते श्री सीता जी प्रेम विभोर हो नेत्रों से अश्रु बहाने लगती तथा उन्हें किंचित भी स्मृति नहीं रह जाती थी।

मातु पिता प्रिय प्यार बखानी । होत शिथिल तन दशा भुलानी ॥
समुझावहिं सब सखी सहेली । धीर धरहिं कछु ललित नवेली ॥
श्री निधि चित्र देखि कहुँ परसी । लहहिं शान्ति सुख सिया सुसरसी ॥

श्री सीता जी अपनी श्री अम्बा जी व श्रीमान् दाऊजी के प्रिय प्यार का वर्णन करते समय शिथिल हो जातीं तथा शारीरिक स्मृति भूल जाती थीं। तब सभी सखियों व सहेलियों के समझाने पर परम सुशोभना नव–वधू श्री सीता जी कुछ धीरज धारण करती थीं। श्री सीता जी कभी अपने भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी के चित्रपट को देखकर व कभी स्पर्श कर शान्ति व सुख में सरसायी रहती थीं।

दो०– दरश परश रघुनाथ के, सिय सुख रूप लखाय ।
तदपि विरह मिथिलान के, डूबत नित्य दिखाय ॥४३॥

श्री सीता जी यद्यपि अपने प्राण–वल्लभ श्री राम जी महाराज के दर्शन व स्पर्श से सुख स्वरूपा समझ आती थीं तथापि वे श्री मिथिलावासियों के वियोग दुख में नित्य ही डूबती हुई दिखाई पड़ती थीं।

एक दिवश मिथिलेश किशोरी । भोजन करत सुधा रस बोरी ॥
करि दुलार सिय सासु पवाती । आई भैया सुधि कसकाती ॥

एक दिन मिथिलेश राज किशोरी श्री सीता जी अमृत रससिक्त भोजन कर रही थीं। उनकी सासू श्री कौशिल्या जी दुलार करते हुए उन्हें पवा रही थीं तभी अतिशय दुखदायी, अपने श्री भैयाजी की स्मृति उन्हें आ गयी।

जेवँन थाल गिरत विरहाँसू । प्रेम दशा देखी प्रिय सासू ॥
पूँछति पुत्रि काह तोहि भयऊ । देखि देखि मम मन दुख छयऊ ॥

तब भोजन करने की थाल में उनके वियोग जनित अश्रु गिरने लगे। श्री सीता जी की ऐसी प्रेमावस्था को देखकर उनकी प्रिय सासू श्री कौशिल्या जी ने पूछा कि– हे पुत्री! तुम्हें क्या हुआ है? तुम्हारी यह अवस्था देखकर मेरे मन में अत्यन्त दुख हो रहा है।

कहति सीय मोहि गोद बिठाई । भ्रात पवावत रहे सदाई ॥
सुधा सरिस भैया कर दीनो । लागत कौर सुखद रस भीनो ॥

श्री कौशिल्या जी के पूछने पर श्री सीताजी कहतीं कि– मेरे श्री भैया जी सदैव गोद में बिठाकर मुझे भोजन कराया करते थे, उनके हाथों से अमृत के समान दिया हुआ कवल मुझे अत्यन्त सुखप्रद व रस से ओत–प्रोत लगता था।

जननि जनक तिमि दिव्य दुलारी । नित्य पवावत अंक बिठारी ॥
सो सुधि सालति हृदय हमारा । कब मिलिहैं मोहि नैहर प्यारा ॥

हे श्री माता जी! उसी प्रकार हमारी श्री अम्बा जी व श्रीमान् दाऊ जी भी हमारा दिव्य दुलार करते हुए गोद में बिठाकर नित्य भोजन पवाया करते थे, वही स्मृति हमारे हृदय को दुखी कर रही है कि हमें अपने नैहर (मायके) का प्यार कब प्राप्त होगा?

दो०—अस कहि सिय हिय भाव भरि, नयन बहावति नीर ।
तुरत कौशिला गोद लै, दुलरावति धरि धीर ॥४४॥

ऐसा कह श्री सीता जी हृदय में भावों को भरकर आँखों से आँसू बहाने लगीं तब तुरन्त ही श्री कौशिल्या अम्बा जी उन्हें गोद में लेकर दुलार कर कहने लगी कि –हे पुत्रि! धैर्य धारण करो।

बहु पुचकारि धीर दै सीतहिं । निज कर दियो पवाय सुप्रीतहिं ॥
सियहिं देखि सब भगिनि अधीरी । होहिं सुरति करि प्रेम प्रवीरी ॥

पुनः उन्होंने श्री सीता जी को विविध प्रकार से पुचकार कर अपने हाथों से प्रेम पूर्वक भोजन पवाया। श्री सीता जी को देख–देख उनकी सभी प्रेम प्रवीणा बहनें अपने नैहर की याद करती हुई अधीर हो जाया करती थीं।

तैसेहिं सखी सहेली दासी । भरहिं विरह रस सरि वर्षा सी ॥
सीय चित्त निज चित्त विलीनी । सीय दशा सम दशा स्वकीनी ॥

उसी प्रकार उनकी सभी सखियाँ, सहेलियाँ व सेविकायें भी अपने पितु–पुर के विरह रस में वर्षा काल की नदी के समान भर जाती थी। उन सभी ने श्री सीता जी के चित्त में अपने चित्त को विलीन कर श्री सीता जी के समान ही अपनी अवस्था कर ली थीं।

जिमि तन अनुसरि छन छन छाया । तिमि सब सखी सीय शुचि भाया ॥
सकल चरित प्रिय मिथिला केरे । भ्रात मातु पितु प्यार घनेरे ॥

जिस प्रकार शरीर का अनुसरण प्रति क्षण उसकी छाया करती है उसी प्रकार सभी सखियाँ अपनी स्वामिनी श्री सीता जी के पवित्र भावों का अनुसरण किया करती थीं। परम प्रिय मिथिलापुरी के सभी चरित्र यथा अपने भैयाजी, अम्बाजी व श्रीमान् दाऊजी आदि का असीम प्यार–––

सीय हृदय नित उदित सो होहीं । कहति सुनति सखियन संग मोही ॥
भूप जानि जिय कहत कौशलहिं । बहू प्यार बहु करेव मोद लहि ॥

–––श्री सीता जी के हृदय में नित्य ही उदित होता रहता था जिसे वे मोहित हुई, सखियों के साथ कहती सुनती रहती थीं। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज अपने हृदय में श्री सीता जी की ऐसी अवस्था समझकर श्री कौशिल्या जी से कहते थे कि– आप अपनी पुत्रबधू श्री सीता जी का अत्यधिक लाड़–दुलार करिये जिससे वे आनन्द प्राप्त करती रहें।

दो०—पितु पुर विरह विलाय जेहिं, करहु यत्न अनुसारि ।
सिय सुख मो सुख जानि जिय, सेयहु पुतरि सम्हारि ॥४५॥

श्री सीताजी के हृदय से उनके पितुपुरी (मायके) का विरह जिस प्रकार समाप्त हो आप उसी के अनुसार उपाय करें तथा श्री सीता जी के सुख को ही, अपने हृदय में मेरा सुख समझकर उन्हें नेत्र पुतली के समान सम्हाले रखियेगा।

एक दिवस सिय कनक भवन महँ । सहित राम राजति चयनन जहँ ॥
चहुँ दिशि अलिगन अनुपम भ्राजे । सकल सजे सेवा शुभ साजै ॥

श्री कनक भवन में, जहाँ श्री सीता जी श्री राम जी महाराज के साथ सुखपूर्वक निवास करती थी, एक दिन श्री सीता जी विराजी हुई थीं उनके चारों ओर अनुपमेय सखियाँ सुशोभित हो रही थी जो सभी शुभ सेवा साजों से सज्जित थीं।

नृत्यहिं गावहिं प्रेम विभोरी । वाद्य बजावहिं लखि प्रभु ओरी ॥
रिझवहिं युगल किशोर किशोरी । प्रेम पगी सुख सिन्धु हिलोरी ॥

वे सभी प्रभु श्रीरामजी की ओर देखती हुई प्रेम विभोर बनी वाद्य बजाती हुई नृत्य व गान कर रही थी। इस प्रकार प्रेम पगी व सुख के सागर में हिलोरे लेती हुई वे, युगल किशोरी–किशोर श्री सीताराम जी को प्रसन्न कर रही थीं।

मैथिल प्रेम परम प्रिय चरिता । गावहिं सखी महा मुद भरिता ॥
सुनतहिं सिया भरी जल नयना । सिसकति सनी सुरति पितु अयना ॥

वे सखियाँ महान आनन्द में भरी हुई श्री मिथिलापुरी के परम प्रिय प्रेममय चरित्रों का गायन कर रही थी जिसे सुनते ही श्री सीता जी अश्रुपूरित हो गयीं तथा अपने पितुगृह का स्मरण कर सिसकियाँ भरने लगीं।

कछुक काल महँ प्रेम अधीरी । बनी विरह वश भाव गँभीरी ॥
बेसुध खँसी सु आसन बीचा । आतुर फँसी विरह दुखी कीचा ॥

पुनः कुछ समय में वे विरह के वशीभूत प्रेम विह्वल हो, गम्भीर भाव से युक्त आसन के बीच स्मृतिहीन हो गिर पड़ी तथा आतुरता पूर्वक विरह दुख के पंक में फँस गयीं।

दो०– सुखद श्याम सिय शीश शुभ, लिये अंक द्रुत धारि ।
पोंछि दृगानन प्रेम युत, करत विजन मन वारि ॥४६॥

तभी श्री सिया जू के प्राण वल्लभ परम सुख प्रदायक श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज ने शीघ्र ही उनके शिर को अपनी गोद में रख लिया और प्रेम पूर्वक उनके नेत्र व मुख पोंछ स्वयं के मन को उन पर न्योछावर करते हुए ब्यजन करने लगे।

करि उपचार सचेत कराई । पूँछे पुनि दृग वारि बहाई ॥
कहहु प्रिया निज दशा बखानी । कारण कवन करुण रस सानी ॥

पुनः उन्हें उपचार के द्वारा सचेत कर, नेत्रों से अश्रु प्रवाहित करते हुये श्री राम जी महाराज ने पूछा– हे प्रिया जू! आप अपनी स्थिति कहिये कि– आप किस कारण करुण रस में सनी हुई हैं।

पितु पुर सुरति कहेव वैदेही । बढ़ति व्यथा सुनु प्राण सनेही ॥
मातु पिता भैया सुधि नाथा । विरह पीर मोहिं दई अकाथा ॥

तब श्री सीता जी ने कहा– हे मेरे प्राण स्नेही प्रियतम सुनिये, मेरी पितु पुरी श्री मिथिलापुर की

स्मृति ही मेरे हृदय में पीड़ा बढ़ा रही है तथा हे नाथ! मेरी अम्बाजी, श्रीमान् दाऊजी व श्रीभइयाजी की स्मृति ने मुझे अकथनीय विरही पीड़ा प्रदान की है।

जननि जनक मोहिं प्राण की नाईं । जोगवहिं सदा कृपालु गोसाईं ॥
तापर भैया अधिक दुलारी । कर बहु प्यार सदा सुखकारी ॥

हे कृपालु, स्वामिन! मेरे माता–पिता मुझे सदैव ही प्राणों के समान रखते थे, उस पर श्री भैया जी तो मुझे अधिक दुलार करते हुए सदैव अत्यधिक सुखदायी प्यार किया करते थे।

मम सुख चाह हमारे भैया । गिने निजानँद नित्य अमैया ॥
भाभी सेवहिं मोहि सम दासी । भरी प्रमोदहिं प्रेम प्रकाशी ॥
व्याह समय प्रिय भइया भावा । जाने राउर भले सुहावा ॥

हमारे भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी ने मेरे सुख व इच्छा को नित्य अपना सच्चा आनन्द समझ लिया है तथा हमारी भाभी श्री सिद्धि कुँअरि जी प्रेम प्रकाश से परिपूर्ण हो आनन्द में भरी हुई, दासी के समान मेरी सेवा नित्य करती थीं। हमारे विवाह के समय प्रिय भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुन्दर भाव को तो आप श्री भली प्रकार जान ही गये हैं।

दो०–सर्व समर्पण प्रेम युत, भ्रात भरे उत्साह ।
तव चरणन करि आत्म सह, बने दीन मन माँह ॥४७॥

मेरे श्री भैया जी ने उत्साह में भर, प्रेम पूर्वक अपनी आत्मा सहित, अपना सर्वस्व मन में दीनता धारण किये हुये आपके चरणों में समर्पित कर दिया था।

बिछुरत सके न निजहिं सम्हारी । तलफत रहे मीन बिनु वारी ॥
बेसुध पगे विरह क्षिति माहीं । आयों छोड़ बन्धु निज काहीं ॥

हमसे बिछुड़ते ही वे अपने आपको सम्हाल नहीं सके तथा जल से निकाली हुई मछली के समान तड़प रहे थे। मैं अपने श्री भैयाजी को स्मृति हीन, विरह में पगे व भूमि में गिरे हुए छोड़कर यहाँ आयी थी।

अस कहि सिया विरह रस पागी । भैया कहि कहि रोवन लागी ॥
अश्रु बहावत रघुवर रामा । परशि सियहिं समुझाव स्वधामा ॥

ऐसा कहकर श्री सीता जी विरह रस में पग गयी और भैया–भैया कहकर रुदन करने लगी। उस समय रघुनन्दन श्री राम जी महाराज अश्रु बहाते हुए अपनी प्राण–प्रिया श्री सीताजी का स्पर्श कर उन्हें समझाने लगे।

दै धीरज पुनि प्रियतम बोले । प्रीति पगे मृदु वचन अमोले ॥
प्रिया सुनहु मिथिला जिमि प्यारी । आपुहिं अहै मोहिं तिमि सारी ॥

पुनः श्री सियाजू के प्राण–प्रियतम श्री राम जी महाराज उन्हें धैर्य धारण करा, प्रेम में पगे हुए कोमल व अनमोल वचन बोले– हे प्रिया जू! सुनिये, श्री मिथिलापुरी जिस प्रकार आपको प्रिय है, उसी प्रकार वह मुझे भी प्यारी है।

सासु श्वसुर शुचि भाव सुप्यारा । सुरति करत नहिं होय सम्हारा ॥
अस लागत जनु जाय उड़ाऊँ । जनक सुनैना प्यारहिं पाऊँ ॥

मुझे अपनी सासू श्री सुनैना जी व श्वसुर श्रीमान! जनक जी महाराज के पवित्र भाव व सुन्दर प्यार का स्मरण करते ही अपनी स्मृति नहीं सम्हाली रहती तब मुझे ऐसा लगता है कि मैं उड़कर उनके समीप चला जाऊँ तथा श्री जनक जी महाराज व श्री सुनैना जी के प्रिय प्यार को प्राप्त कर लूँ।

दो०—सिद्धि कुँअरि शुचि प्रेम सुधि, कसक करै हिय माहिं ।
कबहुँक सो दिन आइहैं, देखिहौं नयनन ताहि ॥४८॥

पुनः श्री सिद्धि कुँअरि जी के पवित्र प्रेम की स्मृति तो मेरे हृदय में विरह पीड़ा ही उत्पन्न किए रहती है। हाय! क्या? कभी वह दिन आयेगा जब मैं अपने नेत्रों से उनका दर्शन कर सकूँगा।

लक्ष्मीनिधि प्रिय सुनतहि नामा । भूलि जात मोहिं तन मन धामा ॥
सुरति करोवै हृदयहुँ मोरा । विरह व्यथा नित बढ़ै अथोरा ॥

श्री लक्ष्मीनिधि यह प्रिय नाम सुनते ही मुझे शरीर, मन व धाम की स्मृति भूल जाती है तथा उनका स्मरण मेरे हृदय को करोये देता है जिससे मेरी वियोगजन्य पीड़ा नित्य प्रति अधिक बढ़ती जाती है।

प्रेम भाव भल चरित उदारा । हृदय प्रगटि बनवहिं मतवारा ॥
तदाकार करि कथा अनूपी । मोहि बनावैं श्रीनिधि रूपी ॥

उनका प्रेम, भाव और उदार चरित्र मेरे हृदय में उदित हो कर मुझे मतवाला बना देते हैं तथा उनकी अनुपमेय कथा मुझे उसमें तदाकार कर श्री लक्ष्मीनिधि जी के रूप वाला ही बना देती है।

लागत लाय ललन हिय राखूँ । छनक छोड़ि नहिं रहहुँ सुभाषूँ ॥
बोलनि मिलनि चलनि चतुराई । हँसनि मधुर मन मोह कताई ॥

मुझे तो ऐसा लगता है कि लालन लक्ष्मीनिधि जी को लेकर हृदय में रख लूँ तथा सत्य कहता हूँ कि एक क्षण को भी उन्हें न छोड़ूँ। उनकी बोलनि, मिलनि, चलनि, हँसनि व चतुरता तो अत्यन्त मधुर व मन को मोहित ही लेने वाली हैं।

सुख सौन्दर्य सिन्धु सुकुमारे । सौष्ठव माधुर उदधि अपारे ॥
ललित कलित कोमन मन गोरा । वश कर लिय मोरहु मन चोरा ॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी सुख, सौन्दर्य, सौष्ठवता व माधुर्य आदि गुणों के असीमित सागर हैं तथा उनके परम सुशोभन कोमल व गौर शरीर ने तो मेरे मन को भी मुझसे चुराकर अपने वशीभूत कर लिया है।

दो०—सुठि सुगन्ध द्युतिमान तन, अमित सुखद रस रूप ।
कुँअर लियो मोहिं मोह प्रिय, भूलेव सकल स्वरूप ॥४९॥

हे प्रिया जी! कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने सुन्दर, सुगन्धित, तेजवान असीमित सुखदायक व रस स्वरूप शरीर से मुझे मोहित कर लिया है जिससे सहज ही मेरा सम्पूर्ण स्वरूप मुझे भूल गया है।

छं०– कुँअर सुभग मनहरण छबीले, चितवनि सुखद सुहाई ।
वशी कियो मोहि कह्हुँ प्रिया सत, निरखत रह्यों लुभाई ॥
कर्ण कान्ति कुण्डल छवि छाजत, भरत सुधा रस सोहैं ।
गयों देखि बलिहारि मनहि मन, धनि धनि मो मन मोहैं ॥१॥

सुन्दर मनोहारी परम सुशोभन कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने अपनी सुख प्रदायी सुन्दर चितवनि से मुझे वशीभूत कर लिया है और हे प्रिया जू! मैं सत्य कहता हूँ कि मैं तो उन्हें लुब्ध हुआ निहारता ही रह गया। कान्तियुक्त कुण्डलों से सुशोभित उनके कर्ण सदैव मेरे चरित्र रूपी अमृत रस को भरते हुए शोभायमान होते हैं। उन्हे देखते ही मैं मन से उन पर बलिहार हो गया हूँ वे धन्याति धन्य हैं जो मेरे मन को मोहित किये हुए हैं।

अनुपमेय त्वक सुखद सुकोमल, महकत मधुर रसीला ।
परश करन हित हिय तेहिं तरसत, रहौं सदा मन मीला ॥
रसना रसिक रसद रस भाषै, रसमय सबहिं बनावै ।
करत विचार जानि गुण अनुपम, रसहिं लेन मन भावै ॥२॥

उनकी अनुपमेय, सुखदायी व सुकोमल त्वचा सुगन्ध संयुक्ता व अत्यन्त रसीली है जिसका स्पर्श करने के लिए मेरा ह्रदय लालायित रहता है, यद्यपि मैं सदैव मानसिक रूप से उनसे मिला रहता हूँ। उनकी रस प्रदायिनी, भगवद्रस–रसिका तथा रस भाषिणी रसना सभी को रसमयी बनाने वाली है और उसके ऐसे अनुपमेय गुण का विचार कर मेरा मन उस रस को प्राप्त करने के लिए ललचा उठता है।

अमल मनोहर सुख मय नासा, तापर मणि दिवि भ्राजी ।
हलकि अधर रस देत नासिकहिं, देखि भयो मन राजी ॥
कर पद सिर अनुकूल सुभग उर, मो मन नित आकर्षे ।
मुख छबि देखि अमित शशि लाजैं, तृप्त करैं मोहि हर्षे ॥३॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की नासिका, निर्मल, मनोहारी व सुख स्वरूपिणी है, उस पर दिव्य मणि सुशोभित होती है जो हिलते हुए अधरों का रस नासिका को प्रदान करती है। उनके हाथ, पैर, सिर व वक्ष अत्यन्त ही सुन्दर व अनुकूल हैं जो नित्य मेरे मन को आकर्षित करते रहते हैं तथा उनके मुख चन्द्र की शोभा देखकर तो असीमित चन्द्रमा भी लज्जित हो जाते हैं जिसके हर्षित होने पर मुझे अत्यन्त सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

भूषण अँग अँग भव्य विराजैं, शोभा सकहिं न गाई ।
कोटि काम वारौं उन ऊपर, देखत गयौं बिकाई ॥

मन चित बुद्धि अहं अति सुन्दर, मो पर कुँअर रमायो ।
खोय सकल विधि आपुहिं प्यारो, एक हमहिं लखि पायो ॥४॥

उनके प्रत्येक अंग में सुन्दर आभूषण सुशोभित होते हैं जिनकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता। मैं अपने प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधिजी पर करोड़ों कामदेव न्योछावर करता हूँ तथा उन्हें देखते ही उन पर बिक गया हूँ। उनके अन्तःकरण चतुष्टय (मन, चित्त, बुद्धि व अहंकार) अत्यन्त सुन्दर हैं जिन्हें कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने मुझमें अनुरक्त कर दिया है तथा सभी प्रकार से अपने आपको समाप्त कर वे संसार में सर्वत्र केवल मुझे ही देखते हैं।

मम सुख लागि रहैं नित चेष्टित, मोर चाह तिन चाहा ।
मोरे शेष भोग अरु अंशहुँ, आपुहिं गिनैं उछाहा ॥
भगति विराग ज्ञान तन धारे, प्रपति प्रेम सुख रूपा ।
रामहिं हरष देत बनि दासा, हरषण हृदय अनूपा ॥५॥

वे मेरे सुख के लिए ही नित्य चेष्टित रहते हें तथा मेरी इच्छा ही उनकी इच्छा है। वे अपने आपको आनन्द पूर्वक मेरा शेष, भोग्य और अंश समझते हैं तथा भक्ति, वैराग्य व ज्ञान से युक्त शरीर धारण किये हुए शरणागति, प्रेम व सुख के स्वरूप बने हुए हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्रीराम हर्षण दासजी महाराज कहते हैं कि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु सेवक बने हुए श्री राम जी महाराज के हृदय को अनुपमेय हर्ष प्रदान करते रहते हैं।

दो०—सुनहु प्रिया सत सत कहौं, जनक सुवन मम हीय ।
रोम रोम महँ रमि रहे, यथा दुग्ध नित घीय ॥५०॥

हे प्रिया जू! सुनिये, मैं सत्य—सत्य कह रहा हूँ कि— जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी मेरे हृदय ही हैं तथा वे उसी प्रकार मेरे रोम रोम में नित्य रमे हुए हैं जैसे दूध में घी।

मधुर प्रेम रस रूप कुमारा । चित सो अलग न छनहुँ पियारा ॥
विलग होत तिन दशा निहारी । सकल भूमि भइ विरह विदारी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का मधुर, प्रेममय, प्रिय व रसमय स्वरूप मेरे चित्त से एक क्षण के लिये भी अलग नहीं होता। मुझसे अलग होते समय उनकी अवस्था को देखकर सम्पूर्ण पृथ्वी ही मुझे विरह से दरार खाई हुई दिख रही थी।

तिन पर सदा निछावर प्यारी । आत्मा मोर त्रिसत्य उचारी ॥
तापै ऋणिया श्री निधि केरा । रहौं सदा अभिलाष घनेरा ॥

हे प्रिया जू! मैं त्रिसत्य कह रहा हूँ कि— उनके ऊपर मेरी आत्मा भी न्योछावर है। उस पर भी मेरी यही बलवती इच्छा रहती है कि मैं सदैव कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का ;णी बना रहूँ।

इतना कहत कण्ठ अवरोधा । बहत अश्रु नयनन रस सोधा ॥
रसिया रघुवर राम रसाला । गिरे गोद सिय विरह बिहाला ॥

इतना कहते ही श्री रामजी महाराज का गला अवरुद्ध हो गया तथा विरह रस से मग्न उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। इस प्रकार रघुकुल श्रेष्ठ, रस स्वरूप व रसिया श्री राम जी महाराज विरह विह्वल हो अपनी प्रियतमा श्री सीताजी की गोद में गिर पड़े।

सियहुँ पेखि पिय दशा भुलानी । प्रेम प्रवाह बही रस सानी ॥
महा भाव रस रूप स्वधामा । विरह उदधि बूड़े सिय रामा ॥

तब विरह रस मग्ना श्री सीता जी भी अपने स्वामी की स्मृति शून्य अवस्था देखकर प्रेम के प्रवाह में बह गयीं। इस प्रकार महाभाव(प्रेम की उच्चतम अवस्था) में पगे हुए दोनों रस स्वरूप श्री सीताराम जी अयोध्या धाम में रहते हुये मैथिल विरह के सागर में डूब गये।

दो०—कछुक काल चित चेत लहि, युगल विमोहन हार ।
लीला मय लीला करत, प्रेमिन तोष अधार ॥५१॥

पुनः प्रेमियों की संतुष्टि के लिए लीला करने वाले व सभी को मोहित कर लेने वाले, लीलामय युगल सरकार श्री सीताराम जी कुछ समय में अपने चित्त में चैतन्यता प्राप्त किये।

यहि विधि सिय सह राम सुजाना । श्री निधि प्रेम पगे मतिमाना ॥
पवन तनय सुनु राम कहानी । कुँअर विरह जस रहत भुलानी ॥

इस प्रकार श्री सीता जी सहित सर्वज्ञ श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रेम में पगे रहते थे। हे पवन नन्दन श्री हनुमान जी! अब श्री राम जी महाराज की वह कथा सुनिये, जिस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के विरह में श्री राम जी महाराज अपना सभी कुछ भुलाये रहते थे।

तुमहिं कहौं सो दशा समासा । निरखी नयन हीय भलि भासा ॥
कबहुँ विविक्त देश रघुराई । ध्यावहिं जनक सुवन सुखदाई ॥

मैं आपसे अपनी आँखों देखी व हृदय से भली प्रकार अनुभव की हुई स्थितियों का वर्णन कर रहा हूँ। कभी—कभी श्री राम जी महाराज एकान्त स्थल में सुखप्रदाता जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का ध्यान किया करते थे।

तदाकार बनि तैसहिं भावा । बढ़े मनहिं प्रिय प्रेमहिं छावा ॥
बोलहिं बैन कुँअर के भाया । मनहुँ अहैं मिथिला रघुराया ॥

तब तदाकार बन जाने के कारण उसी प्रकार के भाव श्रीरामजी महाराज के मन में प्रविष्ट हो जाते और वे अपने प्रिय श्याल के प्रेम में समाहित हो जाते थे। उस समय श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के भाव से ऐसे वचन बोलते मानों श्री राम जी महाराज श्री मिथिलापुरी में ही विराज रहे हों———

दरश परश लक्ष्मीनिधि केरा । जनु पावत सुख सुरस घनेरा ॥
मगन रहैं भरि भाव महाना । को हम कहाँ विसरि सब भाना ॥

———और अपने प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी का सुन्दर रस से परिपूर्ण दर्शन व स्पर्श जनित आनन्द प्राप्त कर रहे हों। प्रभु श्री राम जी महाराज इस प्रकार महाभाव में भरे हुए, हम कौन हैं, कहाँ

हैं? सभी प्रकार की स्मृति भूलकर मग्न रहते थे।

दो०—जनक लाड़िली जाय कहुँ, कबहूँ मैं हनुमान ।
प्रभुहिं सचेत करावते, कहि मृदु बात सुहान ॥५२॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा— हे श्री हनुमान जी! उस समय, कभी जनक दुलारी श्री सिया जी तो कभी मैं (लक्ष्मण कुमार) उनके समीप जाकर कोमल व सुन्दर वचन कह—कहकर प्रभु श्री राम जी को चैतन्य करते थे।

कबहुँ बुलाय मोहि युत भ्रातन । वरणत कुँअर प्रीति प्रिय बातन ॥
सात्विक भाव हृदय महँ जागैं । कहत सुनत रस विरहहिं पागैं ॥

कभी श्री राम जी महाराज भ्राताओं सहित मुझे बुलाकर प्रिय वचनों से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी की प्रीति का वर्णन करते। उस समय उनके हृदय में प्रेम के सात्विक भाव जागृत हो जाते और वे उनके चरित्रों को कहते—सुनते विरह रस में डूब जाया करते थे।

कहत स्वप्न मधि सखे सुप्यारे । कबहुँ कुँअर हे नयनन तारे ॥
जागि परैं जब दरश न पावैं । स्वप्न जानि जिय शोक बढ़ावै ॥

कभी—कभी वे स्वप्न के बीच हे सखे, हे प्यारे, हे कुँअर व हे आँखों के तारे कहते तथा जग जाने पर जब उनका दर्शन न पाते तब स्वप्न समझ हृदय में दुखी हो जाते थे।

कहाँ गये दै दरश कुमारा । करहिं प्रलाप नरन अनुहारा ॥
कस यह करत कोउ कह बैना । जात सकुचि सुनि कह कछु हैना ॥

हे कुमार! आप दर्शन देकर कहाँ चले गये, कह कहकर मनुष्यों के समान प्रलाप करने लगते थे। श्री राम जी महाराज की यह दशा देखकर जब कोई कहता— यह आप क्या कर रहे हैं? तब वे सुनकर संकुचित हो जाते व कहते कि कुछ भी तो नहीं।

एक दिवस बड़ि अम्ब बुलाई । गोद बिठाय प्यार बहुताई ॥
पूछति लाल सुनहिं प्रिय प्यारे । जनक सुवन तव प्राण अधारे ॥

एक दिन बड़ी अम्बा श्री कौशिल्या जी ने उन्हें बुलाया तथा गोद में बिठा बहुत प्यार करते हुए श्री राम जी महाराज से पूछा कि— हे प्रिय, प्यारे लाल जी! सुनिये, आपके प्रिय श्याल जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी तो आपके प्राणों के आधार हैं।

दो०—प्रीति रीति पहिचानि भलि, जानत धनि तुम लाल ।
भजे यथा नित तुमहि जन, तथा भजहु प्रतिपाल ॥५३॥

हे सर्व पालक, लाल रघुनन्दन! तुम तो प्रीति—रीति की पहचान भली प्रकार जानते हो, तुम धन्य हो क्योंकि तुम्हारे भक्त तुम्हें जिस प्रकार नित्य भजते है तुम भी उनका उसी प्रकार से भजन करते हो।

करत ध्यान जन ध्यावहु तेही । अति अनन्य कहँ प्राण सनेही ॥
विरह व्यथा जस जन हिय होई । सहहु विरह दुख तस तुम रोई ॥

भक्तों के ध्यान करने से तुम उनका ध्यान करते हो तथा अपने अनन्य भक्तों को प्राणों के समान प्रेम से रखते हो। भक्तों के हृदय में जिस प्रकार की विरह वेदना होती है, तुम भी रुदन कर उसी प्रकार विरह दुख सहते रहते हो।

हँसत बदत रोवत जन जैसा। नृत्यत गावत विलपत तैसा॥
भाव मगन जस तुम्हरो दासा। रहहु सदा तस तुमहु प्रकाशा॥

तुम्हारे भक्त जिस प्रकार तुम्हारे प्रति हँसते, बोलते, नाचते, गाते व विलाप करते हैं तुम भी उसी प्रकार उनके प्रति क्रिया कलाप करते हो। जिस प्रकार तुम्हारे सेवक भावों में डूबे रहते हैं उसी प्रकार तुम भी भाव मग्न दिखलायी पड़ते हो।

लक्ष्मीनिधि तव प्रेम विभोरा। रहत सदा प्रेमिन शिर मौरा॥
तिन पर प्रीति विलक्षण लाला। नहिं अचरज तुम पहँ जन पाला॥

प्रेमियों में सिरमौर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तो तुम्हारे प्रेम में सदा विभोर ही रहते हैं अतः हे जन पालक, लाल जी! उनके प्रति यदि तुम्हारी इतनी असाधारण प्रीति है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

कहहु बुलावहुँ जनक कुमारा। मिथिला पठवहुँ दूत पुकारा॥
खिलो कमल सम वदन तुम्हारा। चिन्ता विरह सकुचिगो प्यारा॥

हे रघुनन्दन! तुम कहो तो, दूत को बुलाकर श्री मिथिलापुरी भेज जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को यहाँ बुलवा लूँ। क्योंकि तुम्हारा खिले हुए कमल के समान प्रिय मुख उनकी चिन्ता व विरह के कारण संकुचित हो गया है।

दो०–देख देख तब दशहिं कहँ, होवहिं हमहुँ अधीर।
सियहुँ सनी शुचि विरह रस, भैया प्रेम गँभीर॥५४॥

तुम्हारी ऐसी अवस्था को देख देखकर हम भी अधीर हुई जाती हैं तथा अपने भैया जी के प्रबल प्रेम के कारण जनक दुलारी श्री सीता जी भी पवित्र विरह रस में डूबी रहती हैं।

सकुच छोड़ि मोहिं देहु बताई। धावन पठै कुँअर बुलवाई॥
धनि धनि धन्य विदेह कुमारे। सीय राम के प्राण पियारे॥

हे वत्स राघव! तुम संकोच को त्याग मुझे बता दो ताकि मैं शीघ्र गामी दूत को भेजकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बुलवा लूँ। विदेह कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी धन्याति धन्य हैं जो आप दोनो श्री सीताराम जी को प्राण प्रिय बने हुए हैं।

सकुचि राम कछु शिर करि नीचा। बोले कुँअर प्रेम रस सींचा॥
भैया कुँअर भजे मोहिं जैसे। भजि न सकेउँ मैं तिनकहँ तैसे॥

अपनी अम्बा जी के वचन सुनकर श्री राम जी महाराज संकुचित हो, शिर को किंचित झुकाकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रेम रस से भीगे हुए बोले– हे श्री अम्बा जी! कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने जिस प्रकार मेरा भजन किया है उनका भजन मैं उस प्रकार नहीं कर सका।

मोसन अलग होत निमि प्यारा । बेसुध गिरेव न देह सम्हारा ॥
श्री विदेह तेहिं रथ पधराये । नहिं चित चेत विलखि भरि घाये ॥

निमिकुल के प्रिय युवराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी मुझसे अलग होते ही स्मृतिहीन हो अपना शरीर न सम्हाल कर गिर पड़े थे तब श्री विदेहराज जी महाराज ने उन्हें रथ में बिठा लिया। उस समय उनके चित्त में चैतन्यता नहीं थी और वे विरह व्याधि से विलख रहे थे।

गुरु जन लाज विवश सुनु माई । श्वसुर निदेश मनहि सकुचाई ॥
विलपत छोड़ि राखि मन तहँवा । आयों पितु सह भरो विरहवा ॥

हे श्री अम्बा जी! सुनिये, गुरुजनों की लज्जा से विवश और अपने श्वसुर श्री विदेहराज जी महाराज की आज्ञा से मन में संकुचित हो उन्हें विलाप करता छोड़ अपने मन को वहाँ रख उनके विरह में भरा हुआ मैं अपने श्रीमान् पिताजी के साथ यहाँ आ गया था।

दो०—ताते मोरी मातु सुनु, सुमिरि सुमिरि तिन प्रेम ।
सकुचि रहत मन मोर नित, भूलत सिगरो नेम ॥५५॥

हे मेरी अम्बा जी! सुनिये, इसीलिए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रेम का स्मरण कर मेरा मन नित्य संकुचित बना रहता है तथा सभी प्रकार के नित्य—नियम मुझे भूले रहते हैं।

सुनहिं अम्ब आई तिन खबरी । मोहि सन दाऊ कहे सो सिगरी ॥
मम वियोग मूर्छित मतिवारे । चौथे दिवस सुधिहिं तन धारे ॥

श्री राम जी महाराज ने कहा— हे श्री अम्बा जी! सुनिये, उनका समाचार आया है, श्री मान् दाऊजी ने मुझसे वह सम्पूर्ण समाचार कहा कि— मेरे वियोग में मूर्छित हुए वे परम बुद्धिमान कुँअर चौथे दिन शरीर—स्मृति धारण किये थे।

तीन दिवस विलपत तिन बीते । पड़े रहे मम विरह दुखी ते ॥
धनि धनि कुँअर कहत रघुराया । थके विरह तन स्वेद सुहाया ॥

उनके तीन दिन विलाप करते व्यतीत हुए हैं, वे मेरे वियोग में दुखी वैसे ही चेतनाहीन पड़े रहे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी धन्याति धन्य हैं, ऐसा कहते हुए श्री राम जी महाराज विरह के कारण शिथिल से हो गये और उनका दिव्य शरीर स्वेद कणों से सुशोभित हो गया।

सात्विक भाव सकल दरशाये । प्रेम पगे सब सुरति भुलाये ॥
मुरछि परे महि मातुहिं गोदे । हिक्का चलत हाय कह रो दे ॥

श्री राम जी महाराज के शरीर में प्रेम के सभी सात्विक भाव दीखने लगे, वे प्रेम में डूबे हुए सम्पूर्ण स्मृति भुला दिये थे। इस प्रकार वे मूर्छित हो भूमि में लुढ़क कर श्री अम्बाजी की गोद में गिर पड़े, उनके हिचकियाँ चलने लगीं तथा हाय! हाय! कहते हुये रुदन करने लगे।

मातु कियो उपचारा अथोरा । जागे तलफत अवध किशोरा ॥
कछुक काल पुनि भये सचेता । लहि निदेश गे निजहिं निकेता ॥

उस समय श्री अम्बाजी ने उन्हे स्वस्थ करने हेतु अत्यधिक उपचार किया जिससे अवध राज किशोर श्री राम जी महाराज छटपटाते हुए जाग पड़े। पुनः कुछ समयोपरान्त वे चेतना युक्त हो श्री अम्बाजी की आज्ञा प्राप्त कर अपने भवन चले गये।

दो०– यहि प्रकार हिय भाव भरि, भगतन सुमिरहिं राम ।
अस स्वभाव सुनि समुझि जिय, भजन करहु निष्काम ॥५६॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–इस प्रकार हृदय में भावों से परिपूर्ण होकर अपने भक्तों का श्री राम जी महाराज स्मरण करते हैं। उनके ऐसे स्वभाव को सुन व हृदय में समझकर ऐ मेरे मन! तू निष्प्रयोजन होकर उनका भजन कर।

प्रभु स्वभाव मृदु जानि सुभाया । जो न भजै नित गत मद माया ॥
ते नर मंद अशुभ दुख रासी । नरक भोग भटकत चौरासी ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के ऐसे कोमल व सहज स्वभाव को जानकर अभिमान व माया का त्यागकर जो कोई उनका नित्य भजन नहीं करते वे मनुष्य मंदबुद्धि, अशुभ व दुखों की राशि बनकर चौरासी लाख योनियों में नरक भोगते हुए भटकते फिरते हैं।

प्रेम मत्त नित सेव सुजाने । रामहिं भाव भरे सरसाने ॥
प्रभु सह प्रभु समान सुख पागैं । बसैं धाम हिय अति अनुरागैं ॥

परन्तु बुद्धिमान जन प्रभु–प्रेम में मतवाले हो सदैव आनन्दित हृदय, भाव में भर कर श्री राम जी महाराज की सेवा करते रहते हैं तथा प्रभु श्री रामजी महाराज के साथ उनके समान ही सुख में पगे हुये, अत्यन्त अनुराग पूर्ण हृदय से प्रभु के धाम में निवास करते हैं।

सुनु हनुमान कुँअर सुधि आये । हमहुँ अधीर होत रस छाये ॥
भरत शत्रुहन बन्धु हमारे । अतिशय प्रीति कुँअर की धारे ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे हनुमान जी! सुनिये, कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी की याद आने पर हम भी अधीर हो उनके विरह–रस में समा जाते हैं। हमारे भैया श्री भरत जी व श्री शत्रुघ्न कुमारजी भी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रति अपने हृदय में अत्यन्त प्रीति धारण किये हुए हैं।

सखा सुसेवक प्रीति कुँवर की । रहहिं रसे तजि सुरति अपर की ॥
दाऊ मैया नितहिं सम्हारी । प्रीति परम प्रिय पगत हिया री ॥
ललचत नयन दरश हित प्यासे । मातु पिता मम भाव विकासे ॥

हमारे सखा तथा सेवक गण भी अन्य का स्मरण त्याग, कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रीति में रसे रहते हैं। श्री मान् दाऊजी व श्री अम्बा जी नित्य ही उनकी परम प्रिय प्रीति को हृदय में सम्हाले हुए उनके विरह में डूबे रहते हैं। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के दर्शन के लिये जिस प्रकार हमारे प्यासे नेत्र सदा ललचते रहते हैं उसी प्रकार के भाव हमारे श्रीमान् दाऊ जी व श्री अम्बा जी में भी विकास को प्राप्त होते रहते हैं।

दो०—गुरु वसिष्ठ हिय कुँअर की, परम प्रीति सुखदानि ।
रहनि करनि सुख रूप नित, वसी भाव वश आनि ॥५७॥

रघुकुल गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी के हृदय में भी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की परम सुखदायी प्रीति निवास करती है, उनकी सुख स्वरूपा रहनी, करनी एवं उनके भाव नित्य ही उन्हें वश में किये रहते हैं।

धनि धनि कुँअर महा बड़ भागी । ब्रह्म विदन हिय कीन सुरागी ॥
अवध पुरी यावत जिव योगू । चाहत कुँअर दरश नित लोगू ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी धन्याति धन्य और अत्यन्त ही महान भाग्यशाली हैं जो कि ब्रह्म वेत्ता, मुनियों के हृदय में भी सुन्दर राग (आसक्ति) उत्पन्न किये हुए हैं। श्रीअयोध्यापुरी के जितने भी जीव समुदाय हैं वे सभी नित्य ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के दर्शन की कामना किया करते हैं।

सबहिं हिये किय ठाँव कुमारा । बनेव सबहिं कर आँखिन तारा ॥
अग जग जीव सृष्टि जित सारी । कुँअर बनेव विश्वात्म पियारी ॥

कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी सभी के हृदय में अपना स्थान बना लिये हैं और वे सभी के नयनों के तारे बने हुए हैं। चराचर जीवों से युक्त जितनी भी सम्पूर्ण सृष्टि है उन सभी के कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी आत्मा व प्रिय बने हुए हैं।

सब कर चित आकर्षण कीन्हो । सबके हिय निज प्रेमहुँ दीन्हो ॥
पवन तनय जानहु शुभ रीती । जो कोउ करै राम सन प्रीती ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी के चित्त को आकर्षित कर लिये थे और अपने हृदय के "श्री राम प्रेम" को सभी के हृदय में प्रदान कर दिये थे। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि—हे पवन नन्दन श्री हनुमान जी! आप तो प्रभु की शुभ—रीति को जानते ही हैं कि— यदि कोई भी श्री राम जी महाराज से प्रेम करता है———

होहिं प्रेम वश प्रभुहुँ अधीना । करहि नेह तापर अति पीना ॥
घट घट वास राम कर नित्ता । प्रेमहिं सुमिरैं छन छन चित्ता ॥

———तो प्रभु भी उसके प्रेम विवश हो प्रेम करने वाले के अधीन हो जाते हैं तथा उस पर अत्यन्त दृढ़ प्रेम करते हैं। प्रत्येक घट—घट में प्रभु श्री राम जी महाराज का नित्य निवास है तथा वे प्रत्येक क्षण अपने चित्त में प्रेमियों का स्मरण करते रहते हैं।

दो०—ताते सुमिरत राम के, करत छनहि छन प्रेम ।
सब जग सुमिरै प्रेम युत, यह आध्यात्मिक नेम ॥५८॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि—इसलिए श्री राम जी महाराज के स्मरण व प्रति क्षण प्रेम करने से ही सम्पूर्ण संसार उन्हें प्रेम पूर्वक स्मरण करता है। यही आध्यात्मिक नियम है।

अग जग राम रूप गुनि प्रेमी । बनै जगत आतम यह नेमी ॥
जगत आत्मा राम सुजाना । प्रेमिहिं मानैं आत्म समाना ॥

भगवान के प्रेमीजन चराचर सम्पूर्ण संसार को श्री राम जी महाराज का रूप समझकर ही संसार की आत्मा बन जाते हैं, ऐसी रीति है। परम सुजान प्रभु श्री राम जी महाराज ही सम्पूर्ण संसार की आत्मा हैं, वे अपने प्रेमियों को आत्मा के समान मानते हैं।

प्रेमिहुँ तेहिं ते हैं विश्वात्मा । नहिं कोउ मानै अचरज यामा ॥
दर्शिहुँ एक आत्म नित जानैं । आत्म छोड़ि नहिं भाव लखानैं ॥

इसीलिए भगवान के प्रेमी भी संसार की आत्मा होते हैं, इस बात में किसी को भी आश्चर्य नहीं मानना चाहिए। आत्मदर्शी जन केवल आत्मा को ही नित्य समझते हैं तथा आत्मा के अतिरिक्त उनमें अन्य भाव नहीं समझ आते।

आत्मा होय विश्व की प्यारी । वसै सबहिं घट नित्य सुखारी ॥
तैसहिं प्रभु प्रिय जनक दुलारा । बनेउ राम कर आत्म अधारा ॥

इस प्रकार भगवान के प्रेमी सम्पूर्ण संसार की प्रिय आत्मा बन कर सर्वत्र सुखपूर्वक निवास करते हैं तद्वत प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रिय जनक दुलारे श्री लक्ष्मीनिधिजी भी श्री राम जी महाराज के आत्माधार बने हुए थे।

पगे प्रीति तेहिं विरह समाये । सुमिरहिं राम भाव भरि भाये ॥
कबहुँ कबहुँ सुनु प्रिय हनुमाना । मिथिला पथिक करैं सनमाना ॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी के प्रेम में पगे, विरह में समाये हुये, भाव में भर कर उनका स्मरण किया करते थे। हे प्रिय श्री हनुमान जी! कभी–कभी तो श्री राम जी महाराज श्री मिथिला पुरी आने–जाने वाले यात्रियों का आदर करते तथा–––

कछु सँदेश ढिग श्याल पठावें । दरश चाह की बात जनावें ॥
दूत संत ब्राह्मण व्यौपारी । मिथिला होत अवध पगु धारी ॥
जानि राम निज निकट बुलाई । पूँछहिं श्वसुर पुरी कुशलाई ॥

––––अपने श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के समीप दर्शन करने की इच्छा प्रगट करने वाले कुछ संदेश भिजवा देते थे। श्री रामजी महाराज उन राजदूतों, संतो, ब्राह्मणों व व्यापारियों को, जो श्री मिथिलापुरी होकर श्री अयोध्यापुरी आते थे, जानकर समीप बुलवाते तथा उनसे अपने श्वसुर पुरी (श्री मिथिलापुरी) की कुशलता पूछा करते थे।

दो०–कुँअर दरश चष चाह बहु, छिन छिन छावत जाय ।
भरे विरह दशरथ कुँअर, मनही मन अकुलाय ॥५९॥

दशरथ नन्दन श्री राम जी महाराज के नेत्रों में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के दर्शन की त्वरा प्रतिक्षण अत्यधिक बढ़ती जा रही थी तथा वे उनके वियोग में डूबे हुये मन ही मन व्याकुल हो रहे थे।

रसिक राम हिय जानि विहाला । गुरु निदेश दशरथ महिपाला ॥
चतुर दूत दै पत्र अनूपा । भाव भरा रस रीति स्वरूपा ॥

परम रसिक श्री राम जी महाराज के हृदय को विह्वल समझकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से एक भाव प्रपूरित, रस व रीति का स्वरूप अनुपमेय पत्र चतुर दूत को देकर–––

पठयो तिरहुत जनक ठिकाना । कुँअर बुलावन हेतु सुजाना ॥
अवध राम कर प्रेम चरित्रा । कहेउँ यथा मति परम पवित्रा ॥

–––श्री जनक जी महाराज के धाम श्री मिथिलापुरी, सुजान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बुलाने हेतु भेज दिया। हे हनुमान जी! अब तक मैंने श्री अयोध्यापुरी व श्री राम जी महाराज के परम पवित्र प्रेम–चरित्रों का अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया।

मिथिला चरित सुनहु अब आगे । मैथिल यथा प्रेम रस पागे ॥
विरह सनी श्री मिथिला धरती । नित्य नित्य नयनन जल ढरती ॥

अब आगे श्री मिथिलापुरी के चरित्र सुनिये, जिस प्रकार सभी श्री मिथिलापुर वासी प्रेम–रस में पगे हुए थे। प्रभु श्री राम जी महाराज के विरह में सनी हुई श्री मिथिलापुरी की भूमि नित्य प्रति नेत्रों से अश्रु बहाती रहती थी।

कोमल कलित सुखद रस भीगी । अब लौं दिखत प्रेम जल पीगी ॥
सुरति करति सिय समय विदाई । अबहुँ दरार होत जनु भाई ॥

वह भूमि अभी भी कोमल, सुन्दर, सुखप्रद, रस से भीगी तथा प्रेम जल से पगी हुई दिखाई पड़ती है। जनक दुलारी श्री सीता जी की विदाई के समय का स्मरण करते रहने से मानों उसमें अभी भी दरारे पड़ती रहती हैं।

दो०– लता वृक्ष बड़ भागि जे, लहे परश सियराम ।
मुरझि मुरझि महि सूखहीं, ग्रसे विरह रुज धाम ॥६०॥

श्री मिथिलापुरी के सौभाग्यशाली लता व वृक्ष आदि जिन्होंने श्री सीताराम जी के स्पर्श को प्राप्त किया था वे सभी प्रभु विरह रूपी व्याधि के ताप से मुरझाकर भूमि पर गिर–गिर कर सूखे जा रहे थे।

छं०– भरि प्रेम मैथिल वृक्ष वर, लतिकादि बनि विरहातुरे ।
महि मोरि शाखहिं दुख मगन, जनु कहत धरतिहिं राखुरे ॥
लिय थाम गोदिहिं भाव भुवि, मुरझित मनहुँ परिवारहीं ।
लिपटाय बोलति दुःख मम, लखि धरहु धीर सुझावही ॥

श्री मिथिला पुरी के वृक्ष व लतायें आदि प्रभु विरह में आतुर हो प्रेम में भर, भूमि की ओर अपनी शाखाओं को मोड़कर दुख में मग्न हो रहे थे, जैसे वे श्री भूमि देवी से कह रहे हों कि– आप हमारी

रक्षा करिये। तब श्री भू देवी ने मानों भाव में भर कर अपने परिवार को मुरझाया हुआ देख, अपनी गोदी में सम्हाल लिया हो और उन्हें लिपटा कर बोलती हुई यही सुझाव दे रही है कि मेरे दुख को देखकर तुम सभी धैर्य धारण करो।

पशु योनि देखे सीय जिन, शुक मोर मैन खगावली ।
बह नैन नित्यहिं अश्रु अति, बहु विरह बोल बचावली ॥
सिय राम उचरहिं शोक भरि, नहिं बनत वरणत सो दशा ।
सुनि देखि मैथिल आतुरन, हरषण पगे विरहहिं रसा ॥

पशु योनि के जीव तथा तोता, मोर व मैना आदि पक्षीगण, जिन्होंने जनक दुलारी श्री सीता जी के दर्शन किये थे, उन सभी के नेत्रों से नित्य अत्यधिक अश्रु प्रवाहित हो रहे थे तथा वे श्री सीताराम जी के अत्यधिक वियोग में सने हुये, शोक प्रपूरित बोली से सीताराम उच्चारण कर रहे थे, उनकी उस स्थिति का वर्णन नहीं किया जा सकता। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्रीराम हर्षण दासजी महाराज कहते हैं कि–श्री मिथिलापुरी के पशु–पक्षियों की प्रेमातुरता को सुन व देखकर मेरा हृदय भी विरह रस में पग गया।

दो०– धनि धनि खग मृग विरह रस, पगे रहत दिन रात ।
राम राम सिय सिय रटत, कहत देव पुलकात ॥६१॥

श्री मिथिलापुरी की वियोगावस्था को देखकर पुलकित हो देवता कह रहे थे कि यहाँ के पशु–पक्षी आदि जीव धन्याति धन्य हैं जो प्रभु विरह में दिन रात पगे रहते हैं तथा राम–राम व सीता–सीता रटते रहते हैं।

पवन तनय लखि दशा खगन की । कवन विरह गति कह नर गन की ॥
मन वच अगम भाव तिन केरा । करि संकेत तथापि निबेरा ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि–हे श्री पवन नन्दन जी!श्री मिथिलापुरी के पशु–पक्षियों की ऐसी अवस्था को देखकर मनुष्यों के प्रभु वियोग की स्थिति को कौन बखान कर सकता है। उनके भाव तो मन व वाणी से भी नही जाने जा सकते हैं फिर भी मैं संकेत रूप से वर्णन कर रहा हूँ।

जनकपुरी सब नर अरु नारी । रहहिं वियोग सने हिय भारी ॥
अहनिशि पगे प्रेम के भावा । चित्त भयो लय रामहिं पावा ॥

श्री जनकपुरी के सभी पुरुष व स्त्री हृदय से प्रभु के महान वियोग में डूबे रहते थे तथा दिन–रात प्रेम के भाव में पगे रहते थे। उनका चित्त श्री रामजी महाराज को प्राप्त कर उन्ही में विलीन हो गया था।

बैठत उठत सुसोवत जागत । खात पियत रघुपति रस पागत ॥
बोलत मिलत चलत अरु सूँघत । सुनत लखत प्रभु भावहिं बींधत ॥

वे सभी बैठते, उठते, सोते, जागते, खाते व पीते समय रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज के रस में पगे रहते थे तथा परस्पर में बोलते, मिलते, चलते, सूँघते, सुनते व देखते समय प्रभु श्री

राम जी महाराज के भाव उन्हें दुखी करते रहते थे।

सीय राम मय चलति सुश्वासा । हृदय बनेव सिय रघुवर वासा ॥
सुमिरन चिन्तन मनन महाई । निदिध्यासन दूलह रघुराई ॥
सीय राम महँ लीन सुप्रज्ञा । अहं गयो नसि प्रीति सुतज्ञा ॥

श्री मिथिला वासियों की साँसे श्री सीताराम मयी होकर चल रही थी उनके हृदय श्री सीताराम जी के निवास बने हुए थे, उनके स्मरण, चिन्तन, मनन व निदिध्यासन में दिव्य दूलह श्रीरामजी महाराज ही छाये हुए थे। उनकी बुद्धि श्री सीताराम जी में लीन हो गयी थी एवं प्रभु प्रेम की उच्च्तम अवस्था के कारण उनके अहंकार नष्ट हो गये थे।

दो०—प्रकृति सरिस नित कर्म करि, सुमिरत सीता राम ।
भाव भरे गुण गान करि, दरश आश अठ याम ॥६२॥

वे स्वाभाविक ही नित्य—प्रति कार्य करते हुए श्री सीताराम जी का स्मरण करते रहते तथा भावों में भरे हुए उनके गुणों का गायन कर आठो—याम प्रभु दर्शन की लालसा में लीन रहते थे।

चेष्टित रहहिं समुझि शुचि सेवा । गति अनन्य रघुवीर सुदेवा ॥
परम प्रेम पगि वदन विमोहा। जनु परागमय पंकज सोहा ॥

वे सभी मिथिलापुर वासी प्रभु की पवित्र सेवा समझते हुए सभी चेष्टाएँ करते रहते तथा उनकी एक मात्र गति परम सुशोभन इष्टदेव श्री राम जी महाराज ही थे। उनका मुख प्रभु के परम प्रेम में पगा हुआ सभी को ऐसे मुग्ध कर लेता था मानो पराग परिपूर्ण पंकज सुशोभित हो।

विरह सने इक एकहिं भेंटी । वरणत राम चरित दुख मेटी ॥
घर घर छन छन इक इक प्रानी । कहहिं सुनहिं सिय मधुर कहानी ॥

प्रभु वियोग में सने हुए वे एक दूसरे से मिलकर वियोग जनित दुख भुलाकर श्रीरामजी महाराज के चरित्रों का वर्णन करते रहते थे। वहाँ प्रत्येक घर में, प्रतिक्षण, प्रत्येक प्राणी मिथिला प्राणाधार श्री सीता जी के मधुर चरित्रों को कहता व सुनता रहता था।

नारि परस्पर सिय पिय दूला । वरणहिं छहरत छविहिं अतूला ॥
एक सखी कह सुनु सखि मोरी । श्याम बनाय गयो मोहिं बौरी ॥

मिथिलापुरी की पौरांगनायें आपस में सीताकान्त श्री राम जी महाराज के अतुलनीय दूलह वेश की सुन्दरता का वर्णन करती रहती थी। एक सखी कहती है कि— हे मेरी सखि! सुनो, श्याम सुन्दर श्रीरामजी महाराज मुझे बावली बनाकर चले गये हैं।

जालिम जुलुफ नागिनी पाली । निठुर कटाय निबुक गो आली ॥
चढ़ेव विषम विष बनि मतवारी । राग रंग सब सुरति बिसारी ॥

हे सखि! वे निष्ठुर अपनी पाली हुई नागिनों के समान जुल्मी जुल्फों से मुझे डसा कर अयोध्यापुरी चले गये हैं और अब उसका तीव्र विष चढ़ कर मुझे मतवाली बना दिया है जिससे मेरी

सांसारिक आसक्ति व आनन्द की सम्पूर्ण स्मृति भूल गयी है।

दो०–यदपि अहै बहु औषधी, श्रुति पुराण किय गान ।
तदपि तजै नहिं विषम विष, बिना श्याम अँखियान ॥६३॥

यद्यपि उस हलाहल विष को उतारने की बहुत सी औषधियों का श्रुतियों व पुराणों ने गायन किया है फिर भी वह महा विष, नेत्रों से श्याम सुन्दर का दर्शग्न किये बिना मुझे नहीं त्याग रहा।

कहै एक सखि सत तव बयना । मोहन मधुर रसिक रस दयना ॥
केश पाश दृढ़ फाँसि किशोरा । गयो अवध लै सखि मन मोरा ॥

उसकी बाते सुन एक सखी कहती है, हे सखी! तुम्हारी वाणी सत्य है, मनमोहन, मधुर, रसिक तथा रस प्रदाता रघुकुल किशोर श्री राम जी महाराज अपने केशों के बन्धन में दृढ़ता से फँसा कर मेरे मन को ले श्री अयोध्या पुरी चले गये हैं।

कही एक मुसक्यान रसीली । वशीकरण की कोमल कीली ॥
लखि मम मुखहिं मधुर मुसकाई । वशी कियो अब अनत न जाई ॥

तदनन्तर एक सखी ने कहा– हे सखी! उन श्याम सुन्दर की रसीली मुसुकान तो वश में करने वाला कोमल यन्त्र ही है। उन्होंने मेरे मुख की ओर देख, मधुर–मधुर मुस्कुरा कर मेरे मन को वशीभूत कर लिया है जिससे वह अन्यत्र कहीं नहीं जाना चाहता।

चीखि हृदय रस रसी सुबतियाँ । नयन श्रवत जल छलकत छतियाँ ॥
दूसरि कही हँसनि रस घोली । श्याम पियाय लेय बिन मोली ॥

मनमोहन दूलह की रस से भरी सुन्दर बातों के आस्वाद का स्मरण करने से मेरा हृदय उछल रहा है तथा नेत्रों से अश्रु झरने लगते हैं। दूसरी सखी ने कहा– श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज ने अपनी रसमयी विहँसनि का पान करा कर, बिना मोल ही हमें खरीद लिया है।

दूल्हा रसिक रसहिं लै आली । गयो अवध हँसि मोहनि डाली ॥
एक कही सखि चितवनि मीठी । तिरछी मधुर मनोहर दीठी ॥
तनिक तकनि मोहिं श्याम सलोना । दियो बनाय मधुर रस भौना ॥

हे सखी! वे रसिक शिरोमणि दिव्य दूलह श्री राम जी महाराज हमारे आनन्द को लेकर तथा अपनी विहँसनि की मोहनी डाल, श्री अयोध्यापुरी चले गये हैं। पुनः एक सखी ने कहा– हे सखि! मीठी, तिरछी, मधुर व मनोहारी दृष्टि वाली चितवनि से तनिक सा निहार कर सलोने, श्याम सुन्दर श्रीरामजी महाराज ने मुझे मधुर रस की धाम बना दिया है।

दो०–बोली अपर सुप्रेम भरि, विह्वल सी अकुलाय ।
रसिक राम अँखियान की, बात कही नहिं जाय ॥६४॥

दूसरी सखी सुन्दर प्रेम में भर, विह्वल सी बनी आकुल होकर बोली कि– हे सखी! परम रसिक श्री राम जी महाराज के नेत्रों की तो मुझसे बात ही नहीं कही जाती।

चितवनि तीर करेजे मारी । करैं चोट रसमयी शिकारी ॥
बाणन बींध बरुक बच जाई । नयन चोट नहिं बचव विहाई ॥

वे अप्रतिम शिकारी अपनी चितवनि के वाणों को हमारे कलेजे में मार कर रसमय घाव कर दिये हैं। बाणों के बिंध जाने से भले ही कोई बच जाय परन्तु उन नेत्रों की मार से अलग होकर नहीं बच सकता।

मधुर तकनि डारेव सखि टोना । कीन्हे स्ववश सबहिं भइँ मौना ॥
सोहन श्याम सलोने नैना । बड़रे विशद मदीले पैना ॥

हे सखी! मधुर चितवनि का टोना डालकर उन्होंने हमें अपने वश में कर लिया है जिससे हम सभी मौन (किंकर्तव्य विमूढ़) हो गयी हैं। परम सुशोभन श्यामसुन्दर श्री राम जी महाराज के सलोने, बड़े, विशाल, मद से भरे, नुकीले नेत्रों ने–––

मिथिलापुर अति धूम मचाया । मोहि लियो सुर नर मुनि जाया ॥
तनिक विलोकि तकनि तेहिं केरी । मन उचाट जग सोह न हेरी ॥

–––श्री मिथिलापुरी में अत्यन्त धूम(ऊधम) मचा दी है तथा देवता, मनुष्य व मुनियों की पुत्रियों को भी मोहित कर लिया है। उनकी बाँकी चितवनि को रंचमात्र भी देखकर मन उचाट हो जाता है तब संसार की ओर देखना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता।

अमिय हलाहल मद ते पूरे । जीवन मरण दियो झकझूरे ॥
काह कहौं तेहिं केर कुचाली । मोंहि चितय करि गयो विहाली ॥

अमृत व हलाहल से परिपूर्ण वे मद भरे नेत्र पलकों के उठने– गिरने से जीवन व मरण के झूले में झकझोरते रहते हैं। हे सखि! मैं उनकी शरारत को क्या? कहूँ, वे तो अपनी चित्तापहारी चितवनि से मुझे देखकर ही, विह्वल बना, चले गये हैं।

दो०–एक कहै सखि सुनहु सत, रघुवर रसिक ललाम ।
अधर दिखाय सु माधुरी, गयो अवध निज धाम ॥६५॥

एक सखी ने कहा– हे सखी! सुनो, मैं सत्य कहती हूँ कि– परम रसिक रघुकुल श्रेष्ठ, सुशोभन श्री रामजी महाराज अपने सुन्दर माधुर्य युक्त अधरों का दर्शन दे मुझे लालायित कर अपने धाम श्री अयोध्यापुरी चले गये हैं।

अधर सुधा पीवत जे आली । धनि धनि ते रस रसिक रसाली ॥
कही एक सखि सुनु बड़ भागी । लहहिं प्रसाद राम मुख पागी ॥

हे सखी! जो कोई उनके अधरों का अमृत पान करता है वही धन्याति धन्य, रस का रसिक और रस का आलय है। एक सखी ने कहा– हे सखी! सुनो, वही परम सौभाग्यशाली है जो श्री राम जी महाराज के मुख की जूठन प्रसादी प्राप्त करता है।

राम अधर रस शीथ प्रसादी । अमृत देय बनाय अनादी ॥
अपर कहै हलकति मणि नासा । पियै अधर रस नित्य सुवासा ॥

श्री राम जी महाराज के अधर रस से सनी हुई जूँठन प्रसादी तो पाने वाले को अमृत व शाश्वत बना देती है। दूसरी कहती है कि– मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उनकी नासिका में लटकती हुई 'नासा मणि' नित्य ही उनके सुरभित अधर रस का पान करती रहती है।

ईश कृपा सखि नक मणि होई। कबहुँ अधर रस पीहैं सोई ॥
एक कहै सखि सुनहु अलोला। कुण्डल हलनि सुसोह कपोला ॥

हे सखी! क्या? कभी ईश्वर की अनुकम्पा से "नासामणि" बनकर उन अधरों के रस का पान हम कर पायेंगी। एक सखी ने कहा– हे सखी! स्थिर चित्त होकर सुनो, हिलते हुए कुण्डलों प्रतिछाया मनमोहन रघुनन्दन जू के सुन्दर कपोलों पर अत्यन्त सुशोभित हो रही हैं।

चिक्कन सुखद सुकोमल ऐना। गो दिखाय रसिया रस दैना ॥
धनि धनि कुण्डल भाग अनूपी। अमल कपोल छुए रस रूपी ॥

अपने उन चिकने, सुखप्रद, सुन्दर कोमल तथा दर्पण के समान कपोलों को दिखाकर रस प्रदायक, रसिया श्री राम जी महाराज अयोध्यापुरी चले गये हैं। उनके कुण्डल धन्यातिधन्य तथा अनुपमेय सौभाग्यशाली है जो श्री राम जी के रसस्वरूप निर्मल कपोलों का स्पर्श करते रहते हैं।

दो०– कबहुँ भाग खुलिहैं अरी, बनि कुण्डल वर राम।
परसि चूमि सुख पाइहैं, मिथिला पुर की बाम ॥६६॥

ऐ री सखी! क्या? कभी हम लोगों का भाग्य भी उदित होगा कि– श्रीरामजी महाराज के सुन्दर कुण्डल बन कर हम श्रीमिथिलापुर की नारियाँ उनका स्पर्श व चुम्बन सुख प्राप्त करेंगी।

एक कही सखि मौर ललामा। रघुवर धरे माथ अभिरामा ॥
मोहि लियो सबहिन बनि बनरा। मंत्र कियो धरि मणिमय सिहरा ॥

एक सखी ने कहा– हे सखी! रघुकुल श्रेष्ठ श्री रामजी महाराज अपने मनोहारी शीश में सुन्दर मणि–मौर धारण कर व अनुपमेय दूलह वेश बनाकर हम सभी को मोहित कर लिये हैं और मणियों का सेहरा धारण कर तो जैसे वशीकरण मंत्र ही चला दिये हैं।

मन लै मोर कीन्ह सखि बौरी। गयो अवध शिर धारे मौरी ॥
दूजी कह सखि सिहरा मोती। अमित पुण्यमय जो कहुँ होती ॥

हे सखी! इस प्रकार मेरे मन को लेकर तथा मुझे बावली बना, शिर में मणियों की मौर धारण किये हुए रघुनन्दन दुलहा स्वधाम श्री अयोध्यापुरी चले गये हैं। दूसरी सखी कहती है कि हे सखी! यदि मैं कहीं असीम पुण्यों वाली सेहरे की मोती हो जाती–––

मुख सरोज नित परशि सहेली। झूमि झूमि करतेउँ प्रिय केली ॥
एक कही सुनु नागरि बाता। भूषण सजे राम गल भाता ॥

–––तो हे सखी! उनके मुख कमल का नित्य स्पर्श कर मैं झूम–झूम कर आनन्द मे पगी हुई प्रिय क्रीड़ा करती रहती। एक सखी ने कहा– हे चतुर सहेली! सुनो, श्री राम जी महाराज अपने सुशोभन कण्ठ में सुन्दर आभूषण धारण किये सुशोभित हुआ करते हैं।

निज भुज मेलि कण्ठ लग जोई । ताकर भाग अमित सुख मोई ॥
कहा एक जब जागहिं भागा । भूषण होय कण्ठ नित लागा ॥

अपनी भुजाओं में भरकर जो कोई उनके गले से लगता है उसी की भाग्य असीमित व सुख में सनी हुई है। एक सखी ने कहा– जब हमारी भाग्य उदित होगी तभी उनके आभूषण बनकर हम नित्य उनके गले से लगी रहेंगी।

दो०–अपर कही सखि राम उर, भूषण हार सुशोह ।
लखतहिं सखि साँची कहौं, गयो मोर मन मोह ॥६७॥

दूसरी सखी ने कहा– श्री राम जी महाराज के हृदय में आभूषण व हार सुशोभित होते हैं, हे सखि, मैं सत्य कह रही हूँ कि उन्हें देखकर मेरा मन मोहित हो गया है।

एक कहै बड़ भागी हारा । लपट राम उर पावत प्यारा ॥
हिय हुलास सखि होय महानी । बनि सुहार रहतेउँ लपटानी ॥

एक सखी कहती है कि– वह कण्ठ–हार बड़ा ही सौभाग्यशाली है जो श्रीरामजी महाराज के हृदय से लिपट कर उनका प्यार प्राप्त करता है। हे सखी! मेरे हृदय में ऐसी अतीव इच्छा हो रही है कि सुन्दर हार बनकर मैं उनके हृदय से लिपटी रहूँ।

अपर कहै कटि केहरि रामा । शोभनीय शुभ करन ललामा ॥
देखत गयी बिकाय बिहाली । मन हर गयो अवध अब आली ॥

दूसरी सखी ने कहा– हे सखी! श्रीरामजी महाराज की सिंह के समान सुन्दर कमर, परम शोभा–शालिनी, सुख प्रदान करने वाली तथा अत्यन्त दर्शनीय है जिसे देखते ही मैं उन पर बिक कर बेहाल हो गयी हूँ और अब मेरे मन का हरण कर वे रघुनन्दन श्री अयोध्यापुरी चले गये हैं।

कही एक कटि मेखल केरी । कवन सकै बड़ भाग निबेरी ॥
बड़े भाग विधि देय बनाई । करधनि बनि नित कटि लपटाई ॥

एक सखी ने कहा कि– श्री रामजी महाराज के कमर के करधनी की महान सौभाग्य का वर्णन कौन कर सकता है यदि सौभाग्य से विधाता मुझे उनकी करधनी बना देते तो मैं उनके कमर से नित्य लिपटी रहती।

बोली अपर श्याम शुभ चरणा । अमल कमल नख दुति तम हरणा ॥
देखत मन पायो विश्रामा । रसिया छोड़ गयो निज धामा ॥
कहा एक सखि धनि धनि नूपुर । पायन लगी रहै कर मृदु सुर ॥

एक अन्य सखी बोलती है कि– श्याम सुन्दर के शुभ चरण तो निर्मल, कमल के समान है जिनकी नख ज्योति हृदय के अंधकार का हरण करने वाली है। उन्हे देखते ही मेरा मन चिर विश्रान्ति पा गया है परन्तु वे रसिया रघुनन्दन हम लोगों को छोड़कर अपने धाम श्री अयोध्यापुरी चले गये हैं। एक सखी ने कहा हे सखि! वे नूपुर धन्याति धन्य है जो उनके चरण कमलों से लिपटी हुई मधुर स्वर करती रहती है।

दो०–जो कहुँ होती नूपुरहुँ, की जूती वर पाद ।
परसि परसि रघुनाथ पद, पाती अति अहलाद ॥६८॥

यदि कहीं मैं नूपुर हो जाती या उन चरण–कमलों की जूती ही बन जाती तो श्री रघुनाथ जी के चरणों का स्पर्श करती हुई अत्यन्त आह्लाद प्राप्त करती रहती।

अस कहि भयी विभोर सो नारी । कहै एक सुनु प्राण पियारी ॥
श्री कर कमल राम को प्यारो । सोह सुभग दिवि भूषण वारो ॥

ऐसा कहकर वह नागरी प्रेम–विभोर हो गयी तब एक सखी ने कहा, हे प्राण प्यारी! सुनो, श्री राम जी महाराज के प्रिय हस्त कमल सुन्दर दिव्य आभूषणों से नित्य सुशोभित होते हैं।

देखत गयो चित्त मम चोरा । तेहिं पै तजि गे अवध किशोरा ॥
भरि दृग नीर कही सखि एका । प्रेम पगी रस रीति विवेका ॥

श्री रामजी महाराज के आभूषण मण्डित कर कमलों को देखते ही मेरा चित्त चोरी चला गया है परन्तु सुन्दर राजकिशोर श्रीरामजी महाराज मुझे छोड़कर श्री अवधपुरी चले गये हैं। तब नेत्रों में अश्रु भर, प्रेम में पगी हुई प्रेम रस मर्मज्ञा एक सखी ने कहा–––

धनि धनि परस पाइ प्रभु हाथा । होंय सकल सखि अभय सनाथा ॥
अस मन होत मुदरि बनि प्यारी । पानि परस लहि रहौं सुखारी ॥

–––हे सखी! हम सभी धन्याति धन्य हैं जो प्रभु श्री राम जी महाराज के कर–कमलों का स्पर्श प्राप्त कर अभय और सुरक्षित बनी रहती हैं। मेरे मन में तो ऐसा लग रहा है कि मैं उनकी प्रिय मुद्रिका बनकर उनके कर कमल का स्पर्श प्राप्त करती हुई सुखी बनी रहूँ।

कोउ कह सखि सत श्याम सुहावन । धरि पीताम्बर मनहिं लुभावन ॥
मोहि लियो मन राज किशोरा। त्रिभुवन सहित काम भो भोरा ॥

कोई कहती, हे सखी! श्याम सुन्दर राज कुमार श्री रामजी ने सत्य ही मन को लुभाने वाला पीताम्बर धारण कर मेरा मन लुभा लिया है तथा उन्हें देखकर तीनों लोकों सहित स्वयं कामदेव भी बावला हो गया है।

दो०–सुनत अपर बोलत भई, हृदय होत अति चाह ।
बनि पीताम्बर लिपटि तन, लेवहिं सुख सिय नाह ॥६९॥

उस सखी की बात सुनते ही दूसरी सखी बोलने लगी कि– मेरे हृदय में अत्यधिक उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो रही है कि मैं पीताम्बर बनकर उनके श्री अंग से लिपट सीताकान्त श्री रामजी महाराज का सुख प्राप्त करूँ।

अस कहि प्रेम मती सो पगली । चित्त गयो फँसि राम सुभगली ॥
प्रेम भरी कोउ चतुर सहेली । बोली वचन सुनहु अलबेली ॥

ऐसा कहकर वह पगली सखी प्रभु प्रेम में मतवाली हो गयी उसका चित्त श्री रामजी महाराज

के सुन्दर रूप जाल में फँस गया। तब प्रेम में भरी हुई कोई चतुरी सखी बोली– हे अलबेली सखी! सुनो,–––

सब विधि भाग पुञ्ज रस बोरी । अहै नित्य मिथिलेश किशोरी ॥
रसमय रस की खानि सुहाई । रस भोगी रस दानि सुभाई ॥

–––मिथिलेश राज किशोरी श्री सिया जू नित्य ही सभी प्रकार से सौभाग्य की राशि व रस–निमग्ना हैं। वे रस–स्वरूपा, रस की खानि, सुन्दर प्रेम–रस का उपभोग करने वाली तथा सहज ही रस प्रदायिनी हैं।

दरश परश रस नायक केरा । नित नित लहि सुख लहति घनेरा ॥
तेहिं प्रसाद सब सखी सहचरी । दासी अमित सेव गुणकरी ॥

वे रसराज श्री राम जी महाराज का नित्य प्रति दर्शन व स्पर्श कर असीम सुख प्राप्त करती रहती हैं तथा उन्हीं के कृपा प्रसाद से सभी सखियाँ, सहचारियाँ व सेवा में संलग्न असीमित निपुण दासियाँ–––

दास सखा वात्सल्य सुभाविक । जे रस रसिक राम के लाभिक ॥
पावहिं सुख नित रघुवर साथा । दरश परश लहि रसहिं सनाथा ॥

–––दास, सखा और वात्सल्य रस के भाव में भावित जो भी श्रीरामजी महाराज के प्रेम–रस–संल्लाभ के रसिक जन हैं वे सभी नित्य श्री राम जी महाराज के साथ सुख प्राप्त करते रहते हैं तथा उनका दर्शन, स्पर्श व रस प्राप्त कर सनाथ बने रहते हैं।

दो०–सेवहिं भाव बढ़ाय उर, सुख भौमा नित मोय ।
रसमय बनि नित रस चखैं, रसिया रामहिं जोय ॥७०॥

वे सभी अपने हृदय में भावों को बढ़ाकर नित्य भौमा सुख में सने रहते हैं तथा रस स्वरूप बनकर रसिया श्रीरामजी महाराज का दर्शन करते हुए नित्य प्रेम–रस पान करते रहते हैं।

छं०– सुख रूप पाँचहुँ नित्य रस, भरि भाव पुर जन तेहिं रसे ।
धनि भूप कौशिल रानि धनि, जिन अंक ब्रह्महु नित लसे ॥
बड़ भाग बालक औध नित, विहरहिं सखा रस राम के ।
जय जोग सेवक भाग्य निधि, सेवा रसे छक श्याम के ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–सभी श्री अयोध्यापुर निवासी जो पाँचो रसों (शान्त, दास्य, श्रृंगार, वात्सल्य व सख्य) के अनुसार भावों से भरे हुए व उनमें अनुरक्त हैं, के सहित महाराज श्री दशरथ जी व महारानी श्री कौशिल्या जी धन्याति धन्य हैं जिनके गोद में 'पूर्णतम परब्रह्म' श्रीरामजी महाराज नित्य क्रीड़ायें करते रहते हैं। श्री अयोध्या पुरी के बालकों की महान सौभाग्य है जो नित्य श्रीरामजी महाराज के सखा बने उनके रस में निमग्न हुये विहार करते रहते हैं। उनके सेवक गण तो भाग्य वैभव से परिपूर्ण व नित्य जय के योग्य ही हैं जो श्याम सुन्दर श्रीरामजी महाराज की सेवा में तत्पर बने आनन्द से छके रहते हैं।

सखि भाव भावित प्रेम भरि, सहचरि सुसुख सरसावहीं ।
पगि प्रेम रामहिं सेव धनि, दासी परसि हरषावहीं ॥
धनि धन्य वाहन राम कहँ, निज पृष्ठ राखि बगावते ।
शुक सारि मैना धन्य हरषण, राम जिनहिं पढ़ावते ॥

सखी भाव में भावित हुई प्रेम में अनुरक्त जो सहचरियाँ श्री राम जी महाराज के सुन्दर सुख का विवर्धन करती रहती हैं तथा सेविकायें जो प्रेम में पगी श्री राम जी महाराज की सेवा कर उनका स्पर्श करती हुई हर्षित होती हैं, वे सभी धन्य हैं। श्री राम जी महाराज के वाहन (पशु) धन्यातिधन्य हैं जो श्री रामजी महाराज को अपनी पीठ में बिठाकर विहार कराते हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दासजी महाराज कहते हैं कि तोता, सारिका व मैना आदि वे पक्षी भी धन्य हैं जिन्हें श्रीरामजी महाराज पढ़ाया करते हैं।

दो०–सखी अवध वासी सकल, पशु खग भूरुह कीट ।
राम परायण परम पद, जानहु रूप अमीट ॥७१॥

हे सखी! श्री अयोध्यापुर निवासी पशु, पक्षी, पेड़–पौधे, कीड़े–मकोड़े आदि सभी जीव नित्य परम पद स्वरूप तथा श्री राम जी महाराज के अनुरक्त हैं, ऐसा तुम निश्चय जान लो।

बोली प्रेम पगी सखि कोई । धनि साकेत सुभग सब लोई ॥
साँच कही सखि जहँ सिय रामा । विहरहिं विपिन प्रमोद ललामा ॥

तब प्रेम में पगी हुई कोई सखी बोली– हे सखी! सभी सुन्दर पुर वासियों सहित श्री अयोध्या पुरी भी परम धन्य हैं। उसकी बात सुनकर एक सखी ने कहा– हे सखी! तुमने सत्य कहा है क्योंकि जहाँ प्रमोदवन में सुन्दर आनन्द पगे हुए श्री सीताराम जी विहार करते हैं।

दरश परश सब काहू पाये । छके प्रेम रस बने अमाये ॥
तिनकी भाग अमित सखि जानी । वक्ता सकल रहे चुप ठानी ॥

वहाँ उन सभी ने श्रीसीताराम जी के दर्शन व स्पर्श को प्राप्त किया है तथा उनके प्रेम रस में छके हुए वे सभी विकारों से रहित हो गये हैं। हे सखी! उनके भाग्याधिक्य को जानकर ही सभी बखान करने वाले वक्ता मौन साध लिये हैं।

वाही भाँति सखी धनि मिथिला । प्रेम प्रवाहिनि भव रस शिथिला ॥
सीय केलि जहँ विविध प्रकारी । भई अनूपम सुखमय सारी ॥

हे सखी! उसी प्रकार यह प्रेम प्रवाहिनी व भवरस को शिथिल (आसक्ति रहित) करने वाली श्री मिथिलापुरी भी धन्य है जहाँ जनक दुलारी श्री सीताजी की विभिन्न प्रकार की सभी अनुपमेय क्रीड़ाये सम्पन्न हुई हैं।–––

जहाँ राम वर वेश बनाये । ब्रह्मा विष्णु महेश लुभाये ॥
उमा रमा जहँ शची शारदा । दूलह रूप रसी स्ववारदा ॥

मिथिलहिं अवध सहित तिहुँ लोका । दूलह राम प्रथम अवलोका ॥

———जहाँ श्री राम जी महाराज ने दूलह वेश धारण कर, श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी को भी लुब्ध कर लिया था, जहाँ श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी, श्री शची जी व श्री सरस्वती जी उनके दूलह रूप में अपने आपको न्योछावर कर अनुरक्त हो गयी थीं तथा हे सखि! श्री अयोध्यापुरी सहित तीनों लोकों ने 'दूलह वेश धारी श्रीरामजी महाराज' का दर्शन सर्वप्रथम श्रीमिथिलापुरी में ही किया था।

दो०—प्रथम युगल झाँकी सखी, रसमय रसहिं हिलोर ।
मिथिलहिं देखे लोग सब, आनँद अतिहिं विभोर ॥७२॥

हे सखी! श्री सीताराम जी की रसमयी व प्रेम रस में अवगाहन करती हुई 'युगल झाँकी' का सभी लोगों ने अत्यानन्द में सनकर, विभोर हो सर्वप्रथम दर्शन श्री मिथिला पुरी में ही किया था।

प्रेम पुरी यह मिथिला नगरी । लोटे मुक्ति जहाँ प्रति डगरी ॥
घट बढ़ बात पुरी दोउ केरी । कहत बनै नहिं एकहिं हेरी ॥

यह श्री मिथिलापुरी तो प्रेम की नगरी है जहाँ प्रत्येक गलीं में मुक्ति लोटती रहती है। हे सखि! यद्यपि दोनों पुरियों श्री अयोध्या व श्री मिथिलाजी में कौन कम व कौन अधिक है यह बात कहते नहीं बनती, इन दोनों को एक समान ही समझना चाहिए।

तदपि सखी रघुवर घन श्यामा । मिथिलहिं पगे भूलि तन धामा ॥
सियहुँ केर ममता अधिकानी । पुर तृण मानहिं प्राण समानी ॥

तथापि हे सखी! मेघ के समान श्याम वपु श्री राम जी महाराज अपने शरीर व धाम की स्मृति भुलाकर श्री मिथिलापुरी में ही पगे हुए हैं तथा श्री सीता जी की ममता भी श्री मिथिलापुरी के प्रति अधिक है, वे तो यहाँ के तिनके तक को प्राण के समान प्रिय मानती हैं।

निमिकुल पूषण भूप सुनैना । यश वरणहिं सुर मुनि दिन रैना ॥
तिनके भाग कहौं किमि गाई । राम सिया निज अंक बिठाई ॥

श्री निमिकुल के सूर्य श्री विदेहराज जी महाराज व महारानी श्री सुनैना अम्बा जी के सुन्दर यश का वर्णन देवता व मुनि दिन–रात करते रहते हैं। मैं उनके सौभाग्य का बखान किस प्रकार कर सकता हूँ जिन्होंने श्रीरामजी महाराज तथा श्रीसीताजी को गोद में बिठाकर———

कीन्हे प्यार विविध विधि तेरे । प्रेम भाव भरि सरस सुखेरे ॥
प्रीति पगे तिन श्यामहुँ श्यामा । रहहिं नित्य मिथिला अठयामा ॥

———उनके रसमय प्रेम भाव में भरकर विभिन्न प्रकार से सुखपूर्वक प्यार किया है तथा उनकी प्रीति में पगे हुए श्याम सुन्दर श्रीरामजी महाराज व श्यामा सुन्दरी श्री सीताजी भी नित्य श्री मिथिलापुरी में आठो याम निवास किये रहते हैं।

दो०—चिदाकाश चिद शक्ति युत, चिदानन्द श्रीराम ।
दरश परश देवत तिनहिं, रहत संग सुख धाम ॥७३॥

श्री महाराज जनक जी व श्री सुनैना जी के चिदाकाश में अपनी चिद् शक्ति श्री सीता जी के सहित चिदानन्दमय व सुखों के धाम श्री राम जी महाराज अपना दर्शन व स्पर्श प्रदान करते हुए नित्य साथ–साथ रहते हैं।

चर्म चक्षु सो विलग सखी री । वसे अवध सिय राम सही री ॥
ताते विरह विकल नृप नैना । ललचत लखन भरे जल अयना ॥

किन्तु हे सखी! यथार्थतः उनके चर्म चक्षुओं से अलग होकर श्री सीताराम जी श्री अयोध्यापुरी में निवास कर रहे हैं इसीलिए उनके वियोग में श्री जनक जी महाराज के नेत्र अश्रु भरे हुए उन्हें देखने के लिए ललचाये रहते हैं।

लक्ष्मीनिधि शुचि सिद्धि कुमारी । भाग अनन्त कहै को पारी ॥
लली लाल पद प्रेम स्वरूपा । युगल कृपा प्रिय पात्र अनूपा ॥

हे सखि–कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व पवित्र श्री सिद्धिकुँअरि जी के अनन्त सौभाग्य का वर्णन कर कौन पार पा सकता है वे दोनों तो लली लालन श्री सीताराम जी के चरणों के प्रेम स्वरूप तथा दोनों की कृपा के अनुपमेय प्रिय पात्र ही हैं।

जनक सुवन लखि लाल जुड़ावै । तिनके भाग कहौ को गावैं ॥
मज्जन असन शयन बिन तिनके । रामहिं भावत नाहिं सहिन के ॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को देख देखकर रघुनन्दन श्री रामजी महाराज भी हृदय में शीतलता प्राप्त करते हैं, फिर तुम्हीं कहो कि– उनके सौभाग्य का बखान कौन कर सकता है। उनके बिना तो सत्य ही श्रीरामजी महाराज को स्नान, भोजन व शयन भी नहीं सुहाता है।

आनन्द सिन्धु रहैं नित मगना । अनुजा भाव धरे हिय गगना ॥
धनि धनि सखि धनि धन्य कुमारा । सीय राम कहँ प्राण पियारा ॥

वे अपनी छोटी बहन श्रीसीताजी के प्रति उच्चतम भाव अपने हृदयाकाश में धारण किये हुए आनन्द के सागर में नित्य निमग्न रहते हैं। हे सखी! श्री मिथिलेश कुमार जी धन्य, धन्य तथा धन्याति धन्य हैं जो श्री सीताराम जी को प्राणों के समान प्रिय हैं।

दो०–जाकी भाग अनूप लखि, नर मुनि सुरहुँ सिहाहिं ।
ताकी समता और नहि, आत्मा राम सो आहिं ॥७४॥

जिनके अनुपमेय सौभाग्य को देखकर मनुष्य, मुनि व देवता भी स्पृहा करते हैं उन श्री मिथिलेश कुमार लक्ष्मीनिधि जी की समानता और कहीं नहीं है क्योंकि वे तो श्री राम जी महाराज की भी आत्मा हैं।

सखी हमहुँ सब परम सुभागी । नयन विषय करि ब्रह्महिं पागी ॥
जनक नन्दिनी नरपति नन्दन । जानहु जुगल भक्त उर चन्दन ॥

हे सखी! हम सभी महान सौभाग्यशालिनी हैं जो परब्रह्म श्रीरामजी महाराज को अपने नेत्रों का विषय बनाकर उनमें अनुरक्त बनी हुई हैं। हे सखि! जनक नन्दिनी श्री जानकी जू व दशरथ नन्दन

श्री रामजी महाराज दोनों को अपने भक्तों का हृदय शीतल बनाने वाला चन्दन ही समझिये।

परब्रह्म परमारथ दूला । दुलही आदि शक्ति जग मूला ॥
रसमय व्याह लखे मनहारी । मंगल गान किये सुख सारी ॥

हम सभी ने नव दूलह–दुलहिन परम परमार्थ स्वरूप पूर्ण ब्रह्म श्री राम जी महाराज व परमाद्या शक्ति व संसार की मूल स्वरूपा श्री सीता जी के रसमय व मनोहारी शुभ–विवाह का दर्शन कर सुखपूर्वक मंगल गीतों का गायन किया है।

परछन व्याह पेखि सुख शोभा । परमानन्द लयो मन लोभा ॥
कोहवर हँसि हँसाय सखि तिनही । बहु विधि छकी छकायो उनही ॥

उनके परछन व शुभ–विवाह की सुख शोभा का दर्शन कर हमारे मन ने लुब्ध होकर परमानन्द प्राप्त किया तथा कोहवर भवन में उन्हें विविध प्रकार से हास विलास कर स्वयं संतृप्त हुई व उन्हें भी संतृप्त किया हैं।

जब तब जाय राज गृह माहीं । कीन्ही बात मधुर तिन पाहीं ॥
समय पाय कछु सेवहुँ कीन्ही । बीरी गन्ध माल शुभ दीन्ही ॥

जब–तब राज–महल में जाकर हमने उनसे रसमयी बातें की हैं तथा अवसर प्राप्त कर ताम्बूल, इत्र व शुभ माल आदि देकर कुछ सेवा भी की हैं।

दो०– दरश परश सुख सेव तिन, पाई हमहुँ अकाम ।
ताते धनि धनि पात्र सखि, मिथिलापुर प्रिय वाम ॥७५॥

हे सखी! हमने निष्काम होकर उनका दर्शन, स्पर्श तथा सेवा का सुख प्राप्त किया है इसलिए हम सभी श्री राम जी महाराज को प्रिय श्री मिथिलापुरी की, नारियाँ सभी प्रकार से धन्य तथा धन्यवाद की पात्रा हैं।

हँसनि तकनि बतरानि सुहाई । दूलह राम कृपा अधिकाई ॥
लखी हमहुँ सब निज निज ओरी । बाकी काह रहेउ री गोरी ॥

हमने अपनी ओर दिव्य दूलह श्रीरामजी महाराज की सुन्दर विंहसनि, चितवनि, बतरानि तथा अत्यधिक कृपा निक्षेप को प्राप्त किया है। अतः हे सखी! तुम्ही बताओ कि अब हमे क्या? पाना शेष रहा।

बार बार मिथिलापुर अइहैं । कुँअर प्रेम रह अवध न पइहैं ॥
जनक नेह वश राम बोलाहीं । सहित सीय सुख मूरि सोहाहीं ॥

अब वे नव दम्पति श्री सीताराम जी बारम्बार श्री मिथिलापुरी आते रहेंगे क्योंकि वे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रेम से विवश हो श्री अयोध्यापुरी में नहीं रह पायेंगे। श्री जनक जी महाराज भी उनके प्रेम के वशी होकर श्री सीता जी सहित सुखों के मूल श्री राम जी महाराज को बुलाया करेंगे तब वे यहाँ आकर सुशोभित होते रहेंगे।

होइहिं हाव भाव अति अधिका। दरश परश बतरान अवधिका॥
इहै आस तन मन मति प्राना। रहत रसे धरि भाव महाना॥

उस समय उनका हमारे साथ हाव–भाव पूर्वक अवाधित रूप से दर्शन, स्पर्श व सम्भाषण होगा इसी लालसा से हमारे शरीर, मन, बुद्धि व प्राणों को महान भाव पूर्वक धारण किये हुए रसे रहते हैं।

नतरु काह होवति सखि बाती। लगत विरह विदरत मम छाती॥
अस कहि बहुरि विरह रस छाई। बेसुध भई करत विपलाई॥

नहीं तो, हे सखी! न जाने क्या? बात होती, मुझे तो ऐसा लगता है कि मेरा हृदय उनके वियोग में विदीर्ण हो जाता। ऐसा कह कर वह सखी पुनः प्रभु प्रभु–विरह रस में डूब गयी और विलाप करती हुई स्मृति हीन हो गयी।

दो०–एक सखी कह सुनहु सब, पुण्य पुञ्ज सब कोय।
भाग आपनी महत मह, लजत त्रिशक्तिहुँ जोय॥७६॥

एक सखी ने कहा! ऐ सभी सखियो सुनो! हम सभी पुण्यों की राशि हैं क्योंकि हमारी ऐसी महान सौभाग्य को देखकर त्रिशक्तियाँ (श्री सरस्वती जी, श्री लक्ष्मी जी व श्री पार्वती जी) भी लज्जित होती हैं।

सीय कृपा सब विधि सब पाई। भई भाग भाजन अमिताई॥
कहति लाड़िली आपन सबहीं। भाभी भगिनि मातु कहि नवहीं॥

हम सभी ने जनक दुलारी श्री सीता जी की सभी प्रकार की सम्पूर्ण कृपा को प्राप्त किया है व असीमित सौभाग्य की पात्रा बनी हुई हैं। लाड़िली श्री सिया जू हमें अपना मानती हैं तथा वे भाभी, बहन व माता कह कर हमें प्रणाम किया करती हैं।

करि सम्बन्ध अचल सिय प्यारी। दीन्ह डुबाय सबहिं रस धारी॥
तिनकी कृपा राम की आसू। लगती सारी सरहज सासू॥

हमारी प्रिय श्री सिया जू ने इस प्रकार से हमारे साथ अचल सम्बन्ध स्थापित कर सबको रस की धारा में डुबा दिया है तथा उनकी कृपा से सभी की जीवनी शक्ति श्री राम जी महाराज की हम साली, सलहज तथा सासू हो गयी हैं।

अस मन आनि भाग बड़ि जानी। होहु सुखी सब सखी सयानी॥
कहै एक सखि मिथिला धन्या। विहरति जहाँ सिया सुर मन्या॥

अतएव सभी प्रज्ञ सखियो! अपने मन में इस प्रकार का विचार कर अपनी भाग्य को महान समझ सुखी हो जाओ। तब उनमें से एक सखी ने कहा– हे सखी! श्री मिथिलापुरी धन्य है, जहाँ देव पूजिता श्री सिया जू विहार करती हैं।

बाल केलि जहँ कीन्ह सुभाँती। उमा रमा शारद ललचाती॥
सहित शक्ति शिव अज सनकादी। लोटत धूरि ललिहिं गुनि आदी॥

श्री सिया जू ने जिस मिथिलापुरी में श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी व श्री सरस्वती जी को भी ललचाने वाली सुन्दर विविध प्रकार की अपनी बाल लीलायें की हैं तथा जहाँ की धूल में अपनी शक्तियों सहित श्रीशिवजी, श्रीब्रह्माजी व श्रीसनकादिक ऋषि श्रीजनक लली सिया जू को परमाद्या शक्ति समझ लोटते रहते हैं।

उद्भव पालन प्रलय सुमूली। क्लेश हरनि सुख करनि अतूली॥
रामहिं प्रिय प्रिय प्राणहुँ तेरे। सोइ सिया प्रगटी इत हेरे॥

जो संसार के उत्पत्ति, पालन व संहार की सुन्दर मूल स्वरूपा, दुःखों को हरण करने वाली, समस्त सुखों की प्रदायिनी, अनुपमेय तथा अपने पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज को अपने प्रिय प्राणों से भी अधिक प्रियकारी हैं वही श्री सीता जी यहाँ श्री मिथिला में आकर प्रगट हुई हैं।

तासु अकर्षण राम लुभाये। आये मिथिलहिं बिना बुलाये॥
कीन्ही विविध भाँति भलि लीला। मनहर बनरा बनेउ रसीला॥

उन्हीं के प्रेम आकर्षण से लुब्ध हुए श्रीरामजी महाराज बिना बुलाये ही श्री मिथिलापुरी चले आये और मनोहारी व रसमय दूल्हा वेश धारण कर विभिन्न प्रकार की सुन्दर लीलायें किये।

दो०—जड़ चेतन जग जीव जे, सुर नर मुनि तिरदेव।
अनुप राम वर वेश लखि, मोहे करत सुसेव॥७७॥

इस संसार में जड़ चेतन युक्त जितने भी जीव हैं, देवता, मनुष्य, मुनि व त्रिदेव (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी) सभी श्री राम जी महाराज के अनुपमेय दूलह वेश को देख कर मोहित हो गये थे तथा उनकी सुन्दर सेवा करने लगे थे।

ताते सुनहु सखी सत बाता। मिथिला गुनहु सकल सुखदाता॥
इहैं वसत सियाराम सुभाये। रखिहैं निज रस रहसि डुबाये॥

इसलिए हे सखी! मेरी सत्य बात को सुनो, और श्रीमिथिलापुरी को ही सम्पूर्ण सुखों की संदायिनी समझो। क्योंकि श्री सीताराम जी यहाँ सहज ही निवास किये हुए हैं और वे हमें अपने रस व रहस्य के आनन्द में नित्य डुबाये रखेंगे।

प्रभु रस यदा रँगे सब रहिहैं। तदा राम सिय निकटहि पइहैं॥
विरह सनी सिय राम सुभागी। बोली एक अली रस पागी॥

हम सभी जब उन के प्रेम रस में रँगी रहेंगी तब श्री सीताराम जी को अपने समीप ही पायेंगी। अनन्तर श्री सीताराम जी के वियोग में सनी हुई परम सौभाग्य शालिनी व प्रिय रस मग्ना एक सखी बोली———

कहहुँ आपनी अलि अभिबतियाँ। बनरा विरह बढ्यो ब्रण छतियाँ॥
काह करौं कहँ जाउँ सखी री। जगत जरेउ हिय हेरि भगी री॥

हे सखी! मैं अपने हृदय की बात कह रही हूँ कि– नव दूलह श्रीरामजी महाराज के विरह के बढ़ जाने से मेरे हृदय में घाव हो गये हैं, मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ, हे सखी! उनके रूप अग्नि से

मेरा संसार जल गया है और अपने हृदय को देख–देखकर मैं भागती फिर रही हूँ।

लली लाल बिन विलपत हियरा। भूलेव खाब पियब सुख जियरा॥
लोक लाज कुल कानि गँवाई। गयी सखी बिन मोल बिकाई॥

लली–लाल श्री सिया जू व श्री राम जी महाराज बिना मेरा हृदय विलाप करता रहता है, मुझे हृदय से खाना–पीना व सभी सुख भूल गये हैं तथा हे सखी! मैं सांसारिक लज्जा व अपने कुल की मर्यादा को गवाँकर उन पर बिना मोल बिक गयी हूँ।

दो०– ताहू पै सखि विरह दुख, सह नित हिये मझार।
आगे चल का होहिगो, जानै इक करतार॥७८॥

उतने पर भी, हे सखी! मैं नित्य ही अपने हृदय में उनके वियोग का दुख सहन कर रही हूँ अब आगे न जाने क्या? होगा उसे तो एक ईश्वर ही जानता है।

प्रेम दुर्दशा मिथिला केरी। को जानै को कहै निबेरी॥
हौं सखि सँग सिया के जाती। अवशि त्यागि कुल कानि सँघाती॥

हे सखि! श्री मिथिलापुरी के प्रभु प्रेम की इस दयनीय अवस्था को कौन जान व वर्णन कर सकता है। हे सखी! मैं श्री सीता जू के साथ अपने कुल की मर्यादा व संगियों का साथ छोड़ कर अवश्य ही चली जाती–––

जो पै राम सियहिं संकोचा। मोरे हित होतो नहिं सोचा॥
सीय राम की इच्छा सजनी। है सुख मूरि जानि नहिं गवनी॥

यदि श्री सीताराम जी का संकोच और उनके हृदय में मेरे हित के लिए चिन्तन नहीं होता। हे सखी! श्री सीताराम जी की इच्छा ही समस्त सुखों की मूल है, ऐसा समझ कर मैं उनके साथ नहीं गयी हूँ।

वरुक विरह दुख सहिहौं आली। तिन प्रतिकूल न चलिहौं चाली॥
नीके रहैं अवध सखि दोऊ। नीको सुनै नीक पुनि जोऊ॥

हे सखी! मैं भले ही उनके वियोग का असहनीय दुख सहन कर लूँगी परन्तु उनके विपरीत आचरण कभी भी नहीं करूँगी। वे मेरे दोनों प्राणराध्य श्री सीताराम जी श्रीअयोध्यापुरी में कुशल पूर्वक निवास करें, मंगलमय वार्ताओं का श्रवण करें तथा मंगलमय दृश्यों का दर्शन करें।

नीको परश नीक नित वासा। घ्राण लहै रसना रस भासा॥
नीके बैन नीक सुख शयना। नीके भवन करैं दोउ चैना॥

वे सदैव सुखमय स्पर्श ही प्राप्त करें, उनकी नासिका व जिह्वा सुन्दर व रसमय गन्ध तथा रसमय भोग ग्रहण करें, वे परस्पर में मधुर व मंगलमय वचनों का विनियोग करें, वे परम सुखावह व सुकोमल शयनासन में विश्राम करें तथा वे दोनों ही सम्पूर्ण सुविधा सम्पन्न सुशोभन भवन में शान्ति के साथ निवास करें।

नीकी रहनि करनि सब नीकी । नीकी हँसनि सदा सिय पीकी ॥
नीकी सहनि स्वभाव सु नीको । बनो रहे नित दूलह सी को ॥

उनकी सभी रहनी व करनी मंगलमय हो, सीताकान्त रघुनन्दन जू के मुखरविन्द में सदैव मंगलमयी मुसुकनि सुशोभित हो। हे सखि! अपने शील सम्पन्न सुन्दर स्वभाव से युक्त श्री सिया जू के प्राणधन श्री राम जी महाराज नित्य बने (चिरंजीवी) रहें।

दो०—कृपा कोर नीकी परै, सखी स्वजन की ओर ।
तौ नीकी नीकी रहैं, हमहुँ वसत यहि ठौर ॥७९॥

उनके स्वजनों और हम सखियों की ओर उनकी सुन्दर कृपा दृष्टि पड़ती रहे तो हम यहाँ श्री मिथिलापुरी में निवास करती हुई भी सकुशल बनी रहेंगी।

राम सिया सुख आपन मानी । सत सत सखी कहौं हिय वानी ॥
इच्छा रसिक राय सुख दाई । गिनी सखी आपन दृढ़ताई ॥

हे सखी! मैं अपने हृदय की सत्य सत्य कह रही हूँ कि मैंने श्रीसीतारामजी के सुख को ही अपना सुख मान लिया है तथा रसिक राय श्रीरामजी महाराज की सुखप्रद इच्छा को ही मैंने दृढ़तापूर्वक अपनी इच्छा समझ लिया है।

निज वियोग जो रामहिं भावा । मोकहँ सुखद सखी सत गावा ॥
प्रति प्रति स्वास राम सिय गाई । विरह सनी सब उमिर बिताई ॥

हे सहेली! यदि श्रीरामजी महाराज को मेरा वियोग ही अच्छा लगता है तो मैं सत्य सत्य कह रही हूँ कि मुझे प्रभु–वियोग की अवस्था ही सुखदायी है। अब प्रत्येक श्वास में श्री सीताराम नाम का उच्चारण करते हुए उनके विरह में डूब कर मैं अपनी पूरी आयु व्यतीत कर दूँगी।

करि तन खीन अहं बुधि त्यागी । होय अमन चित रामहिं रागी ॥
प्राणहिं प्रलय प्राण के प्राना । मिलिहौं अवध राम भगवाना ॥

इसप्रकार मैं अपने शरीर को क्षीण कर अहंकार बुद्धि को त्याग अमन बन कर अपने चित्त को श्रीरामजी महाराज में आसक्त बना दूँगी तथा अपने प्राणों को, प्राणों के प्राण श्रीरामजी महाराज में विलय कर नित्य श्रीअयोध्यापुरी में अपने प्रियतम श्रीरामजी महाराज से मिल जाऊँगी।

औरहु सुनहु सखी रुचि मोरी । विनय करौं विधि सों कर जोरी ॥
पंच तत्व जब छुटै शरीरा । तुरत जाय प्रभु सेव सुधीरा ॥

हे सखी! मेरी और भी इच्छा सुनो, मैं श्री ब्रह्मा जी से हाथ जोड़कर यही प्रार्थना करती हूँ कि जब यह मेरा पंच तत्वों से बना शरीर छूटे तब यह भी तुरन्त ही परम धीर–वीर श्रीरामजी महाराज की सेवा में लग जाय।

पृथ्वी तत्व मिलै तहँ आई । राम धरैं पद जहँ सुखदाई ॥
जाय मिले जल तत्व सुधीरा । कर स्नान जहाँ रघुवीरा ॥

तेज तत्व दरपन मिलि जाया । देखहिं सुमुख नित्य रघुराया ॥

मेरे शरीर का पृथ्वी तत्व जाकर भूमि उस भाग में मिल जाय जहाँ परम सुखदाई श्रीरामजी महाराज अपने चरण रखते हैं, मेरा जल तत्व जाकर वहाँ उस जल में सम्मिलित हो जाय जिस जल में परम धीर–वीर रघुनन्दन श्रीरामजी महाराज स्नान करते हैं तथा अग्नि (तेज) तत्व जाकर उस दर्पण में मिल जाय जहाँ रघुराज श्री राम जी महाराज नित्य अपना सुन्दर मुख कमल दर्शन करते हैं।

दो०– वायु तत्व व्यजनहिं मिलै, जासु पवन रघुलाल ।
लेवैं हरषि प्रमोद हिय, होऊँ तबहिं निहाल ॥८०॥

हे सखि! मेरे शरीर का वायु तत्व उस व्यजन की वायु में सम्मिलित हो जाय जिसकी सुखावह वायु रघुनन्दन श्री रामजी महाराज आनन्दित हृदय, हर्ष पूर्वक ग्रहण करते हैं, तभी मैं पूर्णकाम होऊँगी।

तत्व गगन मिलि जाय अकाशा । विहरत जहँ नित राम अवासा ॥
कहत अधीर चेत सब गयऊ । विरह दशा अति प्रगटत भयऊ ॥

मेरे शरीर का आकाश तत्व जाकर वहाँ सम्मिलित हो जहाँ पर श्रीरामजी महाराज अपने आवास में नित्य विहार करते हैं, ऐसा कहते ही वह सखी अधीर हो गयी उसकी सम्पूर्ण चैतन्यता लुप्त हो गयी तथा उसके शरीर में विरह की महा–दशा प्रगट हो गयी।

चीखत रोवत करत प्रलापी । श्यामा श्याम वदति हिय थापी ॥
प्यारी प्यारो लली सुलालन । प्राण अधार लखहु निमि वालन ॥

तब वह चीख–चीख कर रोती हुई प्रलाप करने लगी व अपने हृदय में श्यामा–श्याम श्री सीतारामजी को सम्हाले हुए– हे श्यामा जू, हे श्याम सुन्दर जू कहने लगी। हे प्यारी लली जू व हे प्यारे लाल साहब रघुनन्दन जू आप तो हमारे प्राणाधार हैं अतः हम निमिवंशी बालाओं की ओर दृष्टिपात कीजिये।

तलफति कहति किशोर किशोरी । तुम्हरे कारण लोग हँसोरी ॥
शरणन राखि सेव निज देहू । करिहौं टहल नीच अति नेहू ॥

वह तड़पती हुई कह रही थी– हे अवध किशोर श्री राम जी महाराज व हे जनक किशोरी श्री सिया जू! आपसे प्रेम होने के कारण ही लोग मेरा उपहास कर रहे हैं। आप अपनी शरण में रखकर अपनी सेवा प्रदान करें मैं आपकी निम्नतर सेवा भी अत्यधिक प्रेम पूर्वक करूँगी।

शीथ प्रसादी लहि दोउ केरी । रखिहौं देह सेव हित तेरी ॥
पाइ दरश मन मुदित रसीले । रहिहौं देह गेह नित भूले ॥

आप दोनों की जूठन प्रसादी प्राप्तकर मैं आपकी सेवा के लिए अपना शरीर धारण किये रहूँगी तथा आप दोनों के रसमय मुख कमल का दर्शन पाकर मुदित मना अपने शरीर व घर की स्मृति नित्य भुलाये रहूँगी।

दो०–यहि प्रकार मिथिला पुरी, विरह सनी सब वाम ।
नित्यहिं ढारत नयन जल, करहिं सुरत अठयाम ॥८१॥

इस प्रकार श्री मिथिलापुरी में श्री सीताराम जी के वियोग में सनी हुई सभी स्त्रियाँ नित्य प्रति नेत्रों से अश्रु बहाती रहतीं तथा आठो याम उनका स्मरण करती रहती थीं।

तैसहिं पुरुष परस्पर सिगरे। बोलहिं वचन विरह रस रँगि रे ॥
श्याम स्वभाव शील गुण वरनै । रूप माधुरी मधु रस झरनै ॥

उसी प्रकार श्री मिथिलापुर के सभी पुरुष आपस में प्रभु श्री राम जी महाराज के विरह रस में रँगे हुए वचन बोल रहे थे। वे श्याम सुन्दर श्रीरामजी महाराज के स्वभाव, शील, गुण तथा रूप माधुरी का वर्णन, मधुर रस के निर्झर के समान करते रहते थे।

चित्त रँगा सिय रामहिं रंगा । प्रेम विरह रस रहै अभंगा ॥
पुरवासिन कर प्रेम अपारा। कछुक सुनायों पवन कुमारा ॥

उनके चित्त श्री सीताराम जी के प्रेम रंग में रँगे हुए थे अतः वे प्रेम व विरह के रस में नित्य अनवरत रसे रहते थे। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे पवन कुमार श्री हनुमानजी! मैंने श्री मिथिलापुर वासियों के असीमित प्रेम के कुछ अंश का वर्णन कर सुनाया है।

कहौं जनक कर प्रेम बखानी । सहित सुनैना सुनु सुख मानी ॥
भूप सने सिय राम वियोगा । भाव समाधि मगन रस भोगा ॥

अब अम्बा श्री सुनैना जी सहित मिथिला नरेश श्री जनक जी महाराज के प्रेम का बखान कर रहा हूँ आप सुख पूर्वक श्रवण करें। श्री विदेहराज जी महाराज श्री सीताराम जी के वियोग में सने हुए भाव समाधि में मग्न, उनके प्रेम रस का उपभोग कर रहे थे।

जेवन जबहिं जाहिं जहँ राजा । बोलत सियहिं बुलावन काजा ॥
कोउ कह सीता अवध सिधारी। सुनत सूख बड़ विरह विदारी ॥

श्री जनक जी महाराज जहाँ भी जब कभी भोजन पाने के लिए जाते तो वे अपनी दुलारी श्री सीताजी को भोजन करने के लिए बुलाने लगते, यदि कोई कह देता कि श्री सीता जी तो श्री अयोध्यापुरी चली गयी हैं तो यह सुनते ही उनका विरह से अत्यधिक व्यथित हो सूख जाता था।

दो०–नयन नीर हिय तपत नृप, यद्यपि होत अधीर ।
तदपि धैर्य हित स्वजन के, भोजन करत प्रवीर ॥८२॥

यद्यपि श्री महाराज जनक जी के आँखों में अश्रु भरे रहते थे, हृदय विरह ताप से जलने लगता और अधीर हो उठते थे तथापि स्वजनों के सुख के लिए परम प्रवीर श्री महाराज धैर्य धारण कर भोजन कर लिया करते थे।

तैसहिं सुरति राम की आवत । भूलि अपनपौ विरह समावत ॥
गुरु उपरोहित मंत्रिन साथा । वरणत रघुवर रसमय गाथा ॥

उसी प्रकार श्री राम जी महाराज की समृति आते ही वे अपना आपा भूलकर उनके विरह में समा जाते थे। वे अपने गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी, उपरोहित श्री शतानन्द जी व मंत्रियों के साथ श्री राम जी महाराज के रसमय चरित्रों का वर्णन किया करते रहते थे।

कहत सुनत हिय होत उदीपा । जलन लगत प्रभु विरह प्रदीपा ॥
कहुँ मानत मिथिला मधि रामा । रहहिं सदा नहिं गये स्वधामा ॥

जिनके कहने व सुनने से हृदय में विरहोद्दीपन हो जाता और श्री निमि कुल दीप (प्रकाशक) श्री जनक जी महाराज प्रभु श्रीरामजी महाराज की वियोगाग्नि में जलने लगते थे। वे कभी मानते कि श्री राम जी महाराज श्री मिथिलापुरी में ही निवास कर रहे हैं, अपने धाम श्री अयोध्यापुरी नहीं गये हैं।

कबहुँ होत मन महँ यह भाना । गये अवध सिय राम सुजाना ॥
प्रेम दशा की प्रथा अनैसी । जानै सोइ लही जिन वैसी ॥

कभी उनके हृदय में यह ज्ञान होता है कि परम सुजान श्री सीताराम जी श्री अयोध्यापुरी चले गये हैं। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–प्रेम अवस्था की इस अनोखी रीति को तो वही समझ सकता है जिसने इस प्रकार की स्थिति प्राप्त की हो।

यहि प्रकार मिथिला महाराजा । वसत भवन भरि विरहहिं भ्राजा ॥
सीय राम हित चेष्टित रहहीं । अर्पण बुद्धि कार्य सब वहहीं ॥

श्री जनक जी महाराज इस प्रकार श्री मिथिलापुरी में अपने राजभवन में श्रीसीतारामजी के वियोग में भरे हुए निवास कर रहे थे। वे श्री सीताराम जी के लिए ही वे अपनी सम्पूर्ण चेष्टायें करते तथा समर्पण बुद्धि से सभी कार्यो का निर्वाह कर रहे थे।

परमारथ पथ परम प्रवीने । चिदाकाश मय चरत स्वधीने ॥
मुनिन मते मिथिला कर भूपा । देह धरे परमारथ रूपा ॥

परम प्रवीण श्री जनक जी महाराज परमार्थ पथ का अनुसरण करते हुए इस प्रकार चिदाकाश स्वरूप बन कर अवाधित रूप से विचरण कर रहे थे। मुनियों के मतानुसार, श्री मिथिलेश जी महाराज देह धारण किये हुए 'परमार्थ पद' ही हैं।

दो०–भगति योग वैराग्य निधि, सत चिद आनन्द रूप ।
ज्ञान शिरोमणि भाव निधि, सब विधि अमल अनूप ॥८३॥

श्री विदेहराज जी महाराज भक्ति, योग व वैराग्य के निधि, सच्चिदानन्दमय, ज्ञान के शिरोमणि, भाव के धनी तथा सभी प्रकार से निर्मल व अनुपमेय हैं।

कर्म रहस्य ज्ञान अधिकाई । तिन समान तेइ कह सब गाई ॥
वेदहुँ जासु बड़ाई कीनी । करत मुनिन उपदेश प्रवीनी ॥

मिथिलाधिराज श्री विदेहराज जी को कर्म के रहस्यों का महान ज्ञान है तथा उनके समान वे ही है ऐसा सभी विज्ञजन कहते हैं। वेदों ने भी जिनकी प्रशंसा की है तथा जो परम प्रवीणता पूर्वक

मुनियों को भी उपदेश करते रहते हैं।

महिमा अवधि अहैं निमिराई। सिया पुत्रि प्रिय राम जमाई॥
सो सिय प्रीति पगेउ रस भीना। विरह विकल जिमि कम जल मीना॥

निमिराज श्री जनकजी महाराज तो महिमा की सीमा हैं जिनकी पुत्री श्री सीता जी व श्री रामजी महाराज जामाता हैं। वे भी अपनी पुत्री श्री सीता जी की प्रीति में पगे व वियोग–रस में समाये हुए उसी प्रकार व्याकुल रहते हैं जिस प्रकार कम पानी में मछली।

सोवत सिय रामहिं लखि सपना। जागि विरह बढ़ि बढ़त जलपना॥
ब्रह्म ज्ञान वैराग्य सुयोगा। आवहिं सुनन नित्य मुनि लोगा॥

वे सोते समय स्वप्न में श्रीसीतारामजी को देखकर जागृत हो जाते। तब उनका विरह व प्रलाप अत्यधिक बढ़ जाता था। उनके समीप ब्रह्म–ज्ञान, वैराग्य व सुन्दर योग की रहस्य वार्ता सुनने हेतु नित्य ही मुनिगण आया करते थे।

पगे प्रेम श्री तिरहुत भूपा। कहिं न सकैं कछु मन रस रूपा॥
देखि दशा मुनिगन तिन केरी। प्रेम पगैं जग प्रभु मय हेरी॥

तब प्रेम में पगे हुए तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज कुछ भी नहीं कह पाते थे क्योंकि उनका मन रस स्वरूप हो गया था। उनकी प्रभु वियोगजन्य स्थिति को देखकर तथा संसार को भगवत्स्वरूप समझ वे मुनिजन भी उनके प्रेम में डूब जाते थे।

दो०–साधन फल हनुमान सुनु, प्रभु पद रति रस पूर।
ज्ञान विराग सुयोग सत, बिना प्रेम सब धूर॥८४॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! सुनिये, सम्पूर्ण साधनों का फल प्रभु श्री राम जी महाराज के चरण कमलों में रसमयी प्रीति होना है क्योंकि ज्ञान, वैराग्य व सुन्दर योग सभी साधन यथार्थतः प्रभु प्रेम के बिना धूल ही हैं।

जासो उपजै प्रभु पद प्रेमा। साधन सघन सोइ वर नेमा॥
कर्म रहस्य सोइ हनुमाना। बनि अकाम अरपै भगवाना॥

जिस साधन से प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में प्रेम उत्पन्न हो जाय वही साधन व नियम श्रेष्ठ तथा सारतम है। हे श्री हनुमान जी! कर्मो का वास्तविक रहस्य तो वही है कि निष्काम बन कर उसे श्री भगवान को अर्पित कर दिया जाय।

रस रस होय योग आरुढ़ा। तब संकल्प मिटै मन बूढ़ा॥
बिन संकल्प योग अस सोहै। जिमि पंकज पानी बिच मोहै॥

जब योगीजन धीरे–धीरे योग में आरुढ़ होते हैं तभी संकल्प–विकल्प रहित हो मन शान्ति को प्राप्त करता है तथा संकल्प रहित योग उसी प्रकार सुशोभित होता है जेसे कमल पानी में रहते हुये भी उससे पृथक हो सभी को मुग्ध किये रहता है।

योगारूढ़ सोह तब भाई । परम विराग हिये जब छाई ॥
परम विराग पाइ विज्ञाना । सोहै अतिशय कहहि सुजाना ॥

योग में आरूढ़ योगी तभी शोभा को प्राप्त करता है जब उसके हृदय में सभी दृष्ट व अदृष्ट वस्तुओं से परम वैराज्ञ हो जाता है और महान वैराग्य भी विज्ञान (ब्रह्म ज्ञान) को प्राप्त कर अत्यधिक सुशोभित होता है, ऐसा सुधीजन कहते हैं।

तबहिं सोह विज्ञान सुहावा । प्रेमा भक्ति जीव जब पावा ॥
निष्करमपि विज्ञान निरंजन । कैवल रूप कहै जेहिं सज्जन ॥

वह श्रेष्ठ विज्ञान भी उसी समय सुशोभित होता है जब प्रभु श्री राम जी महाराज की जीव प्रेमा–भक्ति प्राप्त कर लेता है। यद्यपि निष्काम कर्म से युक्त श्रेष्ठ विज्ञान भी पूर्णतम पर ब्रह्म स्वरूप ही है जिसे सज्जनों ने कैवल्य–स्वरूप कह कर गायन किया है।

दो०–अच्युत भावापन्न बिन, प्रेमा भक्ति विहीन ।
ज्ञान अशोभित रह सदा, निमि रसाल रसहीन ॥८५॥

तथापि अच्युत भगवान के भाव में भावित हुए बिना व प्रेमा भक्ति से रहित ज्ञान उसी प्रकार अशोभनीय रहता है जैसे बिना रस का आम का फल।

नवाह्न पारायण तीसरा विभाम

मास पारायण दसवाँ विश्राम

जानन योग वस्तु तिन जानी । पावन योग पाइ सुख सानी ॥
राम सीय पद प्रेम अथाई । रहहिं रसे निशि दिन रघुराई ॥

श्री विदेहराज जी महाराज ने जानने के योग्य वस्तु को जान लिया है तथा पाने योग्य श्रेष्ठ प्राप्तव्य को प्राप्तकर सुख में सने हुए हैं। उनके हृदय में श्री सीताराम जी के चरणों के प्रति अथाह प्रेम है और वे दिन–रात श्री राम जी महाराज में ही आसक्त रहते हैं।

मातु सुनयना दशा दुखानी । सुनहु विरह के सिन्धु समानी ॥
प्राकृत मातु प्राकृती वाला । पति गृह जात विरह उर शाला ॥

श्रभ्द लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री पवन नन्दन जी! अब आप श्री सुनैना अम्बा जी की प्रभु वियोगजन्य दुखमयी अवस्था को सुनिये, अम्बा श्री सुनैना जी तो श्री सीताराम जी विरह के सागर में ही समायी हुई थीं। जब एक सांसारिक माता को सांसारिक पुत्री के ्वसुरालय जाते समय हृदय में विरह की अत्यधिक पीड़ा हो जाती है तथा–––

जनित वियोग दुःख मति मोई । पगली बनै रात दिन रोई ॥
जाके कोख सुता भइ सीता । जगत जननि छबि छई पुनीता ॥

–––उसके वियोग जन्य दुख में उस माता की बुद्धि पग जाती है। वह पागलों के समान

रात–दिन रोती रहती है, किं पुनः जिनकी कोख से स्वयं सम्पूर्ण संसार की माता, परम पवित्र व सुन्दरता की खानि श्री सीता जी पुत्री रूप में प्रगट हुई हों–––

प्रेम सनी सो मातु सुनैना। लली विरह कस कसक दुखै ना॥
लेवहिं सज्जन हृदय विचारी। कुछ संकेत कहौं हिय धारी॥
पागल सी बनि विरह समानी। भूली खाब पियब नृप रानी॥

–––वे अम्बा श्री सुनैना जी प्रेम में सनी हुई अपनी लली श्री सिया जू के विरह दुख में क्यों दुखी न हों। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–ऐ सज्जन वृन्द! मैं उन अम्बा श्री सुनैना जी को हृदय में धारण कर संकेत रूप से उसका कुछ वर्णन कर रहा हूँ। आप इससे उनकी स्थिति का विचार कर लेंगे। श्री विदेहराज जी महाराज की महारानी श्री सुनैना जी अपनी पुत्री श्री सीता जी के विरह में डूबी हुई पागल सी बनी खाना–पीना तक भूली हुई थीं–––

दो०– कछुक कहति कहि जाति कछु, करति और करि जाय।
सुनति और सुनती कछुक, लखति और लखि पाय॥८६॥

–––वे कुछ बोलना चाहतीं परन्तु कुछ अन्य बोल जातीं, कुछ करना चाहतीं परन्तु कुछ का कुछ कर जाती थीं, कुछ सुनना चाहती थीं परन्तु कुछ अन्य ही सुन लेतीं तथा कुछ देखना चाहतीं परन्तु कुछ अन्य ही देखने लगती थीं।

लली लाल मय चित्त स्वभावहिं। देखन सुनन अनत नहिं जावहिं॥
रामहिं विषय किये सब करणा। नयन श्रवण त्वक वाक सुवरणा॥

उनका चित्त स्वाभाविक ही श्री सीताराममय बना हुआ था अतः वे अन्य किसी वस्तु को देखना व सुनना नहीं चाह रही थी। उनके चारो अन्तःकरणों (मन, चित, बुद्धि व अहंकार) ने श्री राम जी महाराज को ही अपना विषय बना लिया था तथा नेत्र, कर्ण, त्वचा व वाणी आदि ने मात्र श्री सीताराम जी को ही वरण कर रखा था।

श्रवत नयन जल राजहिं पाई। राम सिया यश कहति सुहाई॥
कबहुँ कुँअर कहँ पाय प्रमोदी। कहत बात बैठावत गोदी॥

कभी वे श्री जनक जी महाराज को पाकर अश्रुपूरित नेत्रों से श्री सीताराम जी की सुन्दर कीर्ति का बखान करतीं तो कभी अपने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि को पाकर आनन्दपूर्वक गोद में बैठा बातें करती थीं।

अब लौं लली किशोरी मोरी। भोजन कियो नाहिं बड़ि भोरी॥
तुम्हरे साथ पाय सुख मानैं। ताते लाल ललिहिं अब आनैं॥

वे कहतीं कि, मेरी लाड़िली किशोरी सिया तो अत्यन्त भोली है उसने अभी तक भोजन नहीं किया, वह आपके साथ भोजन करने में सुख प्राप्त करती है इसलिए हे लाल लक्ष्मीनिधि! आप अब उन्हें लिवा कर ले आवें।

भ्रात भगिनि पावहु सुख छाई । बैठि जिवाँवहुँ जीव जुड़ाई ॥
सुनत कुँअर भरि नयनन वारी । कहैं सिया गइ अवध सिधारी ॥

आप दोनों भाई–बहन सुखपूर्वक भोजन करें और मैं बैठ कर आप लोगों को पवाऊँ जिससे मेरा हृदय शीतल हो जाय। उनकी इस प्रकार की बातें सुनकर आँखों में अश्रु भरकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कहते कि– श्री सिया जू तो श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान कर गयी हैं।

दो०–दशरथ भवन प्रकाशती, छन छन भाग बढ़ाय ।
मातु भयो अँधियार इत, कबहुँ समय सो आय ॥८७॥

आपकी लली श्री सिया जू तो अयोध्या नरेश श्री मान् दशरथ जी महाराज के भवन को उसके सौभाग्य का प्रतिक्षण विवर्धन करती हुई प्रकाशित कर रही हैं। हे श्री अम्बाजी! यहाँ तो अब अंधकार ही हो गया है। हाय! क्या? कभी वह समय पुनः आयेगा।

सुनतहिं मातु बहुत विपलाई । कुँअरहिं लै हिय अश्रु बहाई ॥
कुँअरहुँ सने विरह के भावा । लिपटि मातु उर नयन बहावा ॥

ऐसा सुनते ही अम्बा श्री सुनयना जी अत्यधिक विलाप करने लगतीं तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगाकर अश्रु बहाने लगती थीं। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी अपनी अनुजा के विरह भाव में भरे हुए श्री अम्बा जी के हृदय से लिपटकर आँखों से अश्रु बहाने लगते थे।

कबहुँ सबेर होत सिय माता । सियहिं जगावति हिय हुलसाता ॥
पुत्रि पलँग जब पावत नाहीं । सिया सिया कहि रुदत तहाँ ही ॥

कभी श्री सीता जी की अम्बा श्री सुनैना जी सबेरा होते ही हृदय में आनन्दित हो अपनी पुत्री श्री सीताजी को जगाने लगतीं परन्तु जब वे उन्हे पलँग में नहीं पाती तो हे सिया, हा सिया जू कहती हुई वहीं रुदन करने लगती थीं।

कबहुँ सखिन सँग बैठ सुनैना । सिय सुभाग वरणति सुख अयना ॥
सब सुख सदन श्याम पति पाई । अमित तेज गुण सुन्दरताई ॥

कभी श्री सुनैना अम्बा जी सखियों के साथ बैठ कर सुख की सदन श्री सिया जू के सौभाग्य का वर्णन करतीं कि हमारी पुत्री श्री सीताजी ने सम्पूर्ण सुखों के आगार, असीमित तेजोमय, परम गुणवान व अप्रतिम सौन्दर्य सम्पन्न श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज को पति रूप में प्राप्त किया है।

भई भाग्य की सब विधि अधिका । राम प्रेम प्रिय नित नव लधिका ॥
चक्रवर्ति नृप श्वसुर सिया के । होहिं लाज लखि शची प्रिया के ॥

इस प्रकार वह सभी प्रकार से सर्वाधिक सौभाग्य–शालिनी हो गयी है तथा नित्य प्रति अपने प्राण–पति श्री राम जी महाराज के नवीन व प्रिय प्रेम को प्राप्त कर रही हैं। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज उनके श्वसुर होते हैं जिनको देखकर शचीपति श्री इन्द्र को भी लज्जा लगने लगती है।

दो०– लषण भरत शुचि शत्रुहन, विष्णु सरिस गुण गेह ।
देवर जाके सेवते, सियहिं मातु के नेह ॥८८॥

जिनके राजकुमार श्री लक्ष्मण कुमार, श्री भरत लाल जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी आदि देवर हें जो परम पवित्र, श्री विष्णु भगवान के समान व समस्त गुणों के आगार हैं। वे श्री सीता जी की मातृत्व भावानुसार प्रेम पूर्वक सेवा करते हैं।

धाम अयोध्या शुचि ससुरारी । प्रेम प्रवाहिनि सरयू धारी ॥
रिद्धि सिद्धि नित करहिं खवासी । उमा रमा शारद जेहिं आसी ॥

सुन्दर श्री अयोध्या धाम उसकी पवित्र ससुराल है जहाँ साक्षात् भगवत्प्रेम द्रवा श्री सरयू जी प्रवाहित होती हैं। श्री सीता जी की तो वे सभी रिद्धियाँ व सिद्धियाँ नित्य चाकरी करती हैं जिनकी कामना श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी व श्री सरस्वती जी भी किया करती हैं।

ताकर भाग कौन विधि गाऊँ । सुमिरि सुमिरि अति आनन्द पाऊँ ॥
यहि प्रकार सिय सुख सुख मानी । हरषित होत मगन मन रानी ॥

मैं उसकी सौभाग्य का बखान किस प्रकार से करुँ, बस उसका स्मरण कर ही अत्यानन्द प्राप्त किये रहती हूँ। महारानी श्री सुनैना जी इस प्रकार श्री सीता जी के सुख को ही अपना सुख मान कर हर्षित होती हुई मन में मग्न हो जाती थीं।

कबहुँ कहति सिय सकुच स्वरूपा । निज दुख कही न चाह अनूपा ॥
को नित तेहि कहँ जाय जगाई । गावत लोरी प्यारि पवाई ॥

कभी वे कहतीं, कि– हमारी लाड़िली श्री सिया जू तो संकोच की स्वरूपा ही हैं अतः अनुपमेय सौभाग्य सम्पन्ना वे अपनी इच्छा व अपना दुख नहीं कह पायेगी। वहाँ उसे जाकर नित्य लोरी गाते हुए कौन जगायेगा तथा प्यार पूर्वक भोजन करायेगा?

को तेहिं दैहैं समय कलेवा । प्रेम पगे सरसाइ सुसेवा ॥
को नहवाय अनूप सिंगारी । खेलन साज कौन सजि सारी ॥
मंगल स्तव कौन पढ़ाई । रक्षा मंत्रहिं मुनिन बुलाई ॥

उसे समय समय से कौन कलेवा (बालभोग) देगा, कौन प्रेम में पग–सुखपूर्वक उनकी सुन्दर सेवा करेगा, कौन स्नान करवा कर उसका अनुपमेय श्रृंगार करेगा, खेलने की सम्पूर्ण सामग्री कौन सजा कर रखेगा तथा कौन मुनियों को बुलाकर मांगलिक स्तवन व रक्षा मंत्र पाठ करायेगा?

दो०– कोमल पलँग डसाय नित, कवन तत्र पुचकार ।
सीतहिं शयन करावई, होवत सखी खभार ॥८९॥

सुन्दर पलंग में सुकोमल बिछावन बिछाकर नित्य प्रति कौन पुचकारते हुए श्री सिया जू को शयन करायेगा? हे सखि! इन्हीं सब बातों का मुझे दुख हो रहा है।

सिय रुख अष्ट याम को जानी । सेवी प्रमुदित प्राण समानी ॥
अस कहि मुरछि परी महि माहीं । हा सिय कहत चेत चित नाहीं ॥

श्री सीता जी की इच्छानुसार उनके आठो याम की क्रियाओं को जानकर कौन उनकी प्राणों के समान, आनन्द पूर्वक सेवा करेगा? ऐसा कहकर वे हा सिया! हे सिया कहती हुई मूर्छित हो भूमि में गिर जाती थीं व उस समय उनके चित्त में चैतन्यता नहीं रहती थी।

राम अवध या मिथिला राजैं । कहुँ कहुँ जाति भूलि भ्रम भ्राजै ॥
कुअरहिं कबहुँ कहति अतुराई । भ्रातन युत द्रुत राम बुलाई ॥

श्री राम जी महाराज श्री अयोध्यापुरी में अथवा श्री मिथिलापुरी में निवास कर रहे हैं वे कभी–कभी भ्रम के कारण यह भी भूल जाती थीं तब वे कभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से आतुर हो कहतीं कि 'भ्राताओं सहित श्रीरामजी महाराज को बुलाकर–––

लावहु करन कलेऊ काजा । बेर भई बड़ि थार सुसाजा ॥
कहत कुँअर सुन री मम भैया । अवध गये सियराम भुलैया ॥

–––आप उन्हें कलेवा करने के लिए ले आवें, बहुत अधिक विलम्ब हो गया है, मैं थाल सजा रही हूँ। तब उनकी बातें सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कहते कि– हे मेरी अम्बा जी! सुनिये, श्री सीताराम जी तो हमें भुलाकर श्री अयोध्यापुरी चले गये हैं।

सुनत बैन बनि व्याकुल माता । कहति राम रघुवर रस राता ॥
देखि देखि सिय क्रीड़न साजा । उदित उदीपन विरह विराजा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की बातें सुनकर अम्बा श्री सुनैना जी व्याकुल होकर श्री रामजी महाराज के वियोग रस में रसी हुई, हा राम! हा रघुवर! कहने लगती थीं। श्री सीता जी की क्रीड़ा सामग्रियों को देख–देखकर उन्हें उद्दीपन हो जाता और वे विरह में डूब जाती थीं।

दो०–अम्ब विरह सिय श्याम की, रटति नाम यश पाँति ।
राम सिया सुख समुझि शुचि, कहुँ कहुँ धीरज शाँति ॥९०॥

अम्बा श्री सुनयना जी अपनी पुत्री श्री सीता जी व जामाता श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज के वियोग में उनके नाम व सुकीर्ति गाथाओं को अविरल रटती रहती थीं व श्री सीताराम जी के परम पवित्र सुख को अपना सुख समझकर वे कभी–कभी धैर्य व शान्ति धारण किये रहती थीं।

कुँअर दशा अब पवन कुमारा । कहौं कछुक रस विरह विकारा ॥
गयी सिया जब ते ससुरारी । रामहु गे अवधहिं पगु धारी ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे पवन नन्दन श्री हनुमान जी! मैं अब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रभु वियोग–व्याधि से ग्रसित अवस्था का किंचित बखान कर रहा हूँ। जबसे उनकी अनुजा श्री सीता जी अपनी ससुराल चली गयीं व श्री राम जी महाराज भी श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान कर गये–––

विरह व्यथा हिय होत महाना। जनु पक्षी बिन पंख प्रमाना॥
नाम मात्र जल बिच जिमि मीना। तलफत जियत कुँअर तिमि दीना॥

---तबसे प्रभु वियोग जन्य अत्यधिक पीड़ा से उनके हृदय की स्थिति उसी प्रकार हो रही थी जिस प्रकार बिना पंख के पक्षी की वास्तविक स्थिति होती है। जिस प्रकार नाम मात्र पानी में मछली तड़पती रहती है उसी प्रकार दीन बने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तड़पते हुए जी रहे थे।

मिथिला कुँअर विरह रस बोरा। वसै दिवस बिनु चन्द्र चकोरा॥
चितवहिं रैन वियोग सशोकी। यथा विरह दुख पावत कोकी॥

कुँअर लक्ष्मीनिधि जी विरह रस में डूबे हुए श्री मिथिलापुरी में उसी प्रकार निवास कर रहे थे जैसे दिन के समय चन्द्रमा के अभाव में चकोर व्याकुल रहता है। वे प्रभु वियोग में दुखी हुए उसी प्रकार जागते हुए रात्रि को व्यतीत कर रहे थे जिस प्रकार रात्रि में चकवी पक्षी अपने स्वामी चकवे से वियोग का दुख प्राप्त करती है।

मणि विहीन जिमि डोलत नागा। तथा राम बिन कुँअर अभागा॥
पपिहा रटत कहत मुख पीपी। तथा कुँअर सिय राम उदीपी॥

जिस प्रकार मणि से रहित हो नाग दुखी होकर व्याकुल हुआ भटकता रहता है उसी प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी श्री राम जी महाराज के बिना भाग्यहीन से बने विचरते रहते थे। जिस प्रकार पपीहा मुख से पी-पी कहता हुआ रटन लगाये रहता है उसी प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी उद्दीपित हुए श्री सीताराम नाम की रटन लगाये रहते थे।

भृंग ध्यान बनि कीट सुभृंगा। कुँअर रँगेव तिमि राम के रंगा॥
रामाकार चित्त रस पागा। रामहिं देखत सुनत सुभागा॥

जिस प्रकार कोई कीड़ा, भृंग (लखहरी) के ध्यान करते रहने से सुन्दर भृंग का स्वरूप धारण कर लेता है उसी प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी श्री राम जी महाराज के रंग में रंगे हुए रामाकार हो गये थे, उनका चित्त श्री रामजी महाराज के प्रेम-रस में पगा हुआ था तथा परम सौभाग्यशाली वे सर्वत्र श्रीरामजी महाराज को ही देख व सुन रहे थे।

जिमि अहीर वश गाय लवाई। चरत विपिन मन अति अकुलाई॥
विधि वश तिमि सिय राम वियोगा। वसत कुँअर गृह कह सब लोगा॥

जिस प्रकार लवाई गाय (तुरन्त की व्याई हुई) अहीर के वशीभूत हो वन में अत्यन्त आकुल मन से घास चरती है उसी प्रकार श्री ब्रह्मा जी के विधान से विवश कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने भवन में श्री सीताराम जी के वियोग-दुख को सहन करते हुए निवास कर रहे हैं, ऐसा सभी लोग कह रहे थे।

जिमि मृग मोह कान सुनि नादा। भूलि जात निज तन अहलादा॥
सीय राम यश विशद महाना। सुनत कुँअर तिमि भूलत भाना॥

जिस प्रकार मृग वीणा की ध्वनि कान से सुनकर मोहित हो जाता है और वह अत्यन्ताह्लाद

में अपने शरीर को भी भूल जाता है उसी प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीताराम जी के व्यापक व महान यश को सुनते हुये अपनी स्मृति भूले रहते थे।

बनि आसक्त चरित्र रसाला । नहिं अघात चूसत निमि लाला ॥
शकुन अण्ड जिमि थानहिं रहई । कुँअर चित्त तिमि धामहि लहई ॥

निमि नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी आसक्त बन कर श्री सीताराम जी के चरित्र रूपी आम्र–फल को चूसते हुये तृप्ति नहीं पाते थे। जिस प्रकार पक्षियों के अण्डे अपने घोसले में ही (एक स्थान में) स्थिर रहते हैं कहीं अन्यत्र नहीं जाते उसी प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का चित्त भी प्रभु श्री राम जी महाराज के धाम श्री अयोध्या जी को प्राप्त किये हुये स्थिर था।

दो०–प्रेम मूर्ति सिय राम की, सोहत सुखद सुधीर ।
कीन्ह राम जाकहँ वरण, ताकी यह गति वीर ॥९१॥

इस प्रकार परम धीर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने बहन–बहनोई श्री सीताराम जी की सुखप्रद व सुन्दर प्रेम के विग्रह बने हुए सुशोभित हो रहे थे। हे पवन पुत्र, परम वीर हनुमान जी! श्री राम जी महाराज ने जिसका वरण कर लिया है उसी की यह अवस्था होती है।

कहुँ सिय सदन कबहुँ जन वासा । जाहिं कुँअर वर दरशन आसा ॥
प्रेम विभोर देह सुधि नाहीं । सीता राम न देख तहाँहीं ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीताराम जी के सुन्दर दर्शनों की कामना से कभी श्री सीता–सदन तो कभी जनवास गृह जाते परन्तु वहाँ श्री सीताराम जी के दर्शन न होने से वे प्रेम में विभोर हो जाते थे उन्हें शारीरिक स्मृति नहीं रहती थी।

विरह बहे विह्वल ह्वै जावत । भ्रात सखा सब धीर बँधावत ॥
कबहुँक सिय हित हार बनाई । जाय जननि कहँ देहिं दिखाई ॥

जब वे श्री सीताराम जी के विरह प्रवाह में बहते हुए विह्वल हो जाते थे तब उनके भ्राता व सखागण सभी उन्हें धैर्य धारण कराते थे। कभी वे अपनी अनुजा श्री सिया जू के लिए पुष्पहार बना लेते तथा श्री अम्बा जी के समीप जा उन्हें दिखाते थे–––

सुनत मातु मुख सीता गवनी । सहित भगिनि अवधहिं मन भवनी ॥
मुरछि परैं महि शिथिल शरीरा । विरह बढ़े जल नयन अधीरा ॥

–––तब श्री अम्बा जी के मुख से यह सुनते ही कि– श्री सीताजी तो अपनी बहनों सहित अपनी मनभावन श्वसुराल श्री अयोध्या पुरी चली गयी हैं, वे मूर्छित हो भूमि में गिर पड़ते थे, उनका शरीर शिथिल हो जाता, विरह ताप बढ़ जाता था तथा अधीर होकर वे नेत्रों से अश्रु बहाने लगते थे।

मातु उठाय लेत निज कनिया । समुझावति हिय धीर रखनिया ॥
मुख धुवाय दृग पोंछि सुमाता । कछुक पवाय जुड़ावति गाता ॥

उस समय अम्बा श्री सुनैना जी उन्हें उठाकर अपनी गोद में ले लेती तथा समझातीं कि–आप, हृदय में धैर्य धारण करें। पुनः अम्बा श्री सुनयना जी कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी का मुख

धुला आँखों को पोंछ, कुछ पवाकर उनके शरीर को शीतलता प्रदान करती थीं।

दो०—कबहुँ कुँअर पितु दरश हित, जावत प्रेम बढ़ाय।
चरचा चल तहँ राम की, सुनत प्रेम प्रिय छाय ॥९२॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कभी प्रेम–परिवर्धित करते हुये अपने श्रीमान् पिताजी के दर्शन के लिए जाते और वहाँ श्री राम जी महाराज की चर्चा चलने लगती, जिसे सुनते ही उनके हृदय में प्रिय प्रेमोद्दीपन हो जाता था।

रसमय चरित किशोर किशोरी। कुँअरहिं देत बनाय विभोरी॥
प्रेम पगे विह्वल लखि राजा। गिनत ताहि प्रेमिन सिरताजा॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अवध किशोर श्री राम जी महाराज व जनक किशोरी श्री सिया जू के रसमय चरित्र प्रेम विभोर बना देते थे, जिससे उन्हे प्रेम में पगे, विह्वल हुए देखकर श्री जनक जी महाराज प्रेमियों के शिरोभूषण समझने लगते थे।

अंक धारि समुझाव सुवानी। धरत कुँअर तब धीरज आनी॥
राज काज पितु आयसु धारी। करत राम सेवा गुनि प्यारी॥

तदनन्तर श्री जनक जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को गोद में लेकर सुन्दर वाणी से समझाते तभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी धैर्य धारण करते थे। वे अपने श्री मान् पिताजी की आज्ञा मानकर, श्रीरामजी महाराज की प्रिय सेवा समझ सभी राजकीय कार्यो का सम्पादन किया करते थे।

कर सो कर्म सुरति सिय रामा। हृदय धरे जुग रुप ललामा॥
मुख महँ नाम सुयश प्रिय केरा। नयन वहैं हिय द्रवत घनेरा॥

वे श्री सीताराम जी का स्मरण करते हुए हाथों से कार्य करते रहते तथा हृदय में उन दोनों की सुन्दर रूप माधुरी को धारण किये रहते थे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मुख में अपने स्वामी श्री सीताराम जी का नाम व सुन्दर कीर्ति सदैव बसी रहती थी, उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहते रहते तथा उनका हृदय अत्यधिक द्रवीभूत हो गया था।

कुँअर नित्य पितु आयसु पाली। बने रहैं प्रभु विरह विहाली॥
कबहुँ जाय गुरुदेव सकासा। पूजि सविधि दै भेंट हुलासा॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी नित्य प्रति अपने श्रीमान् पिताजी की आज्ञा का पालन करते रहते थे तथा प्रभु विरह में विह्वल बने रहते थे। कभी वे अपने गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी के समीप जाते तथा उनका विधिवत पूजन कर आनन्द पूर्वक भेंट अर्पित करते थे।

दो०—राम तत्व सिय तत्व सुनि, पागत प्रेमानन्द।
कुँअर चरित सुन्दर सुखद, शोभन आनन्द कन्द ॥९३॥

वहाँ श्री गुरुदेव जी के मुखार्विन्द से श्री राम–तत्व और श्री सीता–तत्व का विवेचन सुनकर प्रेम व आनन्द में पग जाते थे। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का चरित्र सुन्दर, सुखदायक, शोभनीय व आनन्द का मूल स्रोत है।

रहहिं अहिर्निशि प्रेम मदीले। छके रहैं निमि वंश छबीले॥
सिद्ध कुँअरि सँग नित्य कुमारा। सीयराम यश कहत उदारा॥

श्री निमिवंश के परम सुशोभन कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी दिन–रात प्रभु प्रेम में मतवाले बने छके रहते थे तथा नित्य ही अपनी वल्लभा श्री सिद्धि कुँअरि जू के साथ श्री सीताराम जी की उदार कीर्ति का बखान करते रहते थे।

सोऊ सुनि सुनि राम चरित्रा। होति विभोर सुप्रेम पवित्रा॥
कुँअर कहैं सुनु प्राण पियारी। मानत लली लाल तोहि भारी॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी भी श्री राम जी महाराज के चरित्रों को सुन–सुनकर उनके सुन्दर पवित्र प्रेम में विभोर हो जाया करती थीं। उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कहते, हे मेरी प्राण प्रिया! सुनिये, आपको हमारी लली सिया जू व लाल साहब श्रीरघुनन्दन जू अत्यधिक मानते हैं अर्थात् अतिशय प्रेम करते हैं।

मोहि सन कहे राम रघुराई। कुँअरि प्रेम की मूर्ति सुहाई॥
मम हिय बसै तासु नित रूपा। सहित सुयश दिवि भक्ति अनूपा॥

रघुकुल नरेश श्रीरामजी महाराज ने मुझसे कहा था कि श्री सिद्धि कुँअरि जी तो साक्षात् प्रेम विग्रहा हैं। सुन्दर कीर्ति और दिव्य अनुपमेय भक्ति सहित उनका सुन्दर स्वरूप मेरे हृदय में नित्य निवास करता है।

सिद्धि प्रेम वश बन नित ऋणिया। रहौं सकुच नहिं देन लखनिया॥
श्रीधर कुँअरि सुनत पिय बोली। राम कृपा सुधि करति अलोली॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी के प्रेम के वशीभूत हो मैं नित्य ऋणी बनकर सकुचाया रहता हूँ क्योंकि उन्हें देने के लिए मैं अपने समीप कुछ भी नही पाता हूँ। अपने प्राण पति के ऐसे वचनों को सुनकर श्रीधर–नन्दिनी श्री सिद्धि कुँअरिजी श्री रामजी महाराज की कृपा का स्मरण करती हुई स्तब्ध हो गयीं।

दो०–परम प्रेम रस महँ पगी, भूली तन मन भान।
मुरछि परी झइँ भूमि में, कसक हिये जनु बान॥९४॥

वे अत्यधिक प्रेम पूर्वक श्री राम जी महाराज के विरह रस में डूबी हुई शरीर व मन की स्मृति भूल गयीं व मूर्छित हो पछाड़ खा कर भूमि में गिर पड़ीं, उनके हृदय में ऐसी विरही पीड़ा होने लगी जैसे हृदय में बाण बिंध गया हो।

तासु विरह दुख देखि कुमारहिं। भयो उदीपन प्रेम पसारहिं॥
रुदत बदत हिचकत अकुलाना। विरह सनेउ नहिं जाय बखाना॥

श्री सिद्धिकुँअरि जी के विरह दुख को देखकर राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को भी प्रेमाधिक्य के कारण उद्दीपन हो गया तब वे रोते हुए हिचकियाँ ले ले कर आकुलता पूर्वक प्रलाप करने लगे तथा प्रभु विरह में ऐसे सन गये जिसका बखान नहीं किया जा सकता।

सखिगन कीन्ह विविध उपचारा। लहेव चेत चित राजकुमारा ॥
सिद्धि शीश निज अंकहि धारी। परसि मुखहिं समुझाव सम्हारी ॥

सखियों ने विभिन्न प्रकार के उपचार किये तब राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी चित्त में चैतन्यता प्राप्त किये और श्री सिद्धि कुँअरि जी के शिर को अपनी गोद में रख उनके मुख का स्पर्श करते हुए सम्हाल कर समझाने लगे।

नयन नीर ढारत सिधि शीशा। चेत करावत सुनु कपि ईशा ॥
कछुक काल चित चेतहिं लयऊ। पिय पद शीश रुदत सो दयऊ ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा–हे श्री वानर राज हनुमान! सुनिये, वे नेत्रों से अश्रु बहाते हुए श्री सिद्धि कुँअरिजी के सिर का स्पर्श कर उन्हें चैतन्य करा रहे थे। कुछ समय में श्री सिद्धि कुँअरिजी का चित्त चैतन्यता प्राप्त कर लिया तब वे अपने शिर को अपने प्राण–वल्लभ श्री लक्ष्मीनिधि जी के चरणों में रखकर रुदन करने लगीं।

कुँअर उठाय उरहिं लिय लाई। प्रेम नदी नद मिले सुहाई ॥
राम प्रेम जल बाढ़ सुपूरे। रूप सिन्धु चल मिलन दुहूँ रे ॥
युगल प्रेम मिलि एक सुहाया। नद सो भयो समुद्र सुभाया ॥

तदनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सिद्धि कुँअरि जी को उठाकर हृदय से लगा लिया इस प्रकार उनके नेत्रों से प्रवाहित होन वाले प्रेमाश्रु सुन्दर 'प्रेमनदी' व 'प्रेमनद' बनकर परस्पर मिल गये और उनमें श्री राम प्रेम रूपी जल पूर्ण रूप से बृद्धि को प्राप्त हो गया तब वे दोनों श्री रामजी महाराज के सौन्दर्य महा सागर से मिलने हेतु चल पड़े। इस प्रकार उन दोनों का सुन्दर प्रभु–प्रेम मिलकर एक 'महानद' बन स्वाभाविक ही महासागर हो गया।

दो०– मन चित बुधि सूक्ष्म अहं, सबही गये बिलाय।
आत्म सार शुचि प्रेम रस, रहेव एक तहँ छाय ॥९५॥

उन दोनों कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि के मन, चित्त, बुद्धि व सूक्ष्म अहंकार सभी विलीन हो गये, वहाँ आत्मा का सारभूत तत्व एक मात्र पवित्र प्रभु–प्रेम–रस ही छाया रहा।

प्रेम विभोर सुधिहिं बिसराये। चिदाकाश रहि गये सुभाये ॥
आत्म धाम सिय रघुवर जोरी। षोडस द्वादस वयस किशोरी ॥

इस प्रकार प्रेम विभोर हुए वे दोनों अपनी स्मृति भूल गये, उस समय वे अपने सहज स्वरूप से चिदाकाश में स्थित हो गये तब उनके आत्मा रूपी धाम में सोलह व बारह वर्ष की अवस्था वाले नित्य किशोरी–किशोर श्री सीताराम जी की जोड़ी का प्राकट्य हो गया।

दरश परे प्रियतम रस रूपे। नख शिख लौं सब अंग अनूपे ॥
मोहत मौर मौरि की लटकन। रवि सत कोटि द्युतिहुँ तहँ भटकन ॥

अनन्तर नख शिखान्त सभी अनुपमेय अंगो से परिपूर्ण उनके रस स्वरूप प्रियतम श्री सीताराम जी दिखायी पड़े। वे अपने सुन्दर शिर में धारण किये दूलह वेश के अनपुरूप मणिमय मौर व मौरी

की लटकनों से मन को मुग्ध कर रहे थे जिनकी द्युति पर सौ करोड़ सूर्यों की ज्योति भी फीकी पड़ रही थी।

अँतर रसी केशावलि कारी। रसिकन रसहिं बढ़ावन वारी॥
कुण्डल श्रवण सुभग दोउ धारी। हलनि कपोलनि मोहनि डारी॥

उनकी इत्र से भीगी हुई काली–काली केशावलियाँ रसिकों के रस को विवर्धन करने वाली थीं। वे दोनों कानों में सुन्दर कुण्डल धारण किये हुए थे जो उनके कपोलों पर हिलते हुए मोहनी सी डाल रहे थे।

तिलक खौर भरि भाल सुहाये। वशीकरण जनु चिन्ह चुआए॥
भौंह कमान काम मद मारी। भक्त जनन नित रक्षन वारी॥

उनके सुशोभन मस्तक, सुन्दर ऊर्ध्व तिलक और केशर की खौर से भरे हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे वे वशीकरण करने हेतु यन्त्र प्रगट किये हुए हों। उनके भौंह रूपी धनुष, कामदेव के दर्प का दलन कर नित्य अपने भक्तजनों की रक्षा करने वाले थे।

दो०– नयन रसीले रस भरे, शील कृपा आगार।
चहुँ दिशि ताकि जुड़ावहिं, प्रेमिन हिय सुखसार॥९६॥

उनके नेत्र रसीले, रस से भर हुऐ, शील व कृपा के धाम ही थे जिनके द्वारा चतुर्दिक निहारते हुये वे सुखों के सार अपने प्रेमियों के हृदय को शीतल बना रहे थे।

छं०– सियराम निरखनि एक इक, भरि भाव हिय हुलसावती।
मग नैन पीवत प्रेम पगि, अनुरूप अमृत भावती॥
लखि भाव प्रेमी जात बलि, आनँद सने सरसत हिये।
तकि दोउ दूनहु ओर प्रिय, लखि लखि कृपा हरषण जिये॥

श्री सीताराम जी की परस्पर देखने की भाव में भरी हुई कला हृदय को उल्लसित करने वाली थी मानों वे नेत्रों के मार्ग से प्रेम में पग कर अपना मनचाहा रूपामृत पान कर रहे हों। उनके इस भाव को देखकर प्रेमी लोग आनन्द में सने हुए बलिहार जाते हैं तथा हृदय में प्रसन्न होते हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– दोनों को परस्पर प्रिय दृष्टि से निहारते हुए देख–देख तथा उनकी कृपा प्राप्त कर ही हमें जीना चाहिए।

चितवनि चषनि मुसुकि मृदु बोलनि। जन पर कृपा भाव रस खोलनि॥
भक्त जनन चित चपरि चुराई। निजहिं रमावत जगत छुड़ाई॥

श्री सीताराम जी के नेत्रों की चितवनि व मुस्कुरा कर बोलने की कोमल विधि उनके जनों पर कृपा करने वाली और हृदय में भाव–रस के प्रवाह को खोल देने वाली हैं। वे अपने भक्तजनों के चित्त को चपलता पूर्वक चुराकर व उनके संसार को छुड़ाकर अपने आप में अनुरक्त बना लेते हैं।

आनन अमित चन्द्र बलिहारी। काम रती बहु जावहिं वारी॥
रसिकन हेतु सुखद रस सागर। छन छन शोभित अधिक उजागर॥

उन दोनो के मुख–चन्द्र पर असंख्य चन्द्रमा भी बलिहार जाते हैं तथा अनन्त कामदेव व रती भी उन पर न्योछावर हैं। रसिक जनों के लिए सुखप्रद व प्रत्येक क्षण नवीन शोभा सम्पन्न वे दोनो श्री सीताराम जी अत्यधिक प्रकाशवान व रस के सागर हैं।

दुहुँ कर कमल विभूषित भाते । भक्त अभय प्रद प्यार दिखाते ॥
हृदय प्रेम रस सिन्धु समाना । जनन जुड़ावै सतत सुजाना ॥

उन श्री सीताराम जी के हस्त कमल आभूषणों से सजे हुए सुशोभित हो रहे थे जो भक्तजनों को अभय प्रदान करने वाले व प्रिय प्यार प्रदर्शित करने वाले हैं। उनके हृदय में प्रेमरस का सागर समाया रहता है तथा परम सुजान वे अपने जनों को सदैव शीतलता प्रदान करते रहते हैं।

मणिन हार हिय छजत प्रकाशा । यथा नखत सब सोह अकाशा ॥
सोह सुभग कटि कसे सुफेंटा । रक्षक व्रत जनु लीन्ह दुल्हेटा ॥

उनके हृदय में प्रकाश विखेरते हुए मणियों के हार उसी प्रकार सुशोभित हो रहे है जिस प्रकार सभी नक्षत्र आकाश में सुशोभित रहते हैं। वे श्री राम जी अपनी सुहावनी कमर में कस कर सुन्दर फेंटा ऐसे बाँधे हुए हैं जैसे दुलहा रघुनन्दन जू ने अपने जनों की रक्षा करने का व्रत ले रखा हो।

चरण कमल शुचि सुभग सुहावन । भक्त शरण्य त्रिताप मिटावन ॥
नूपुर नव छवि जावक जोही । कासु हिये नहिं लालच होही ॥
हियहिं हेरि पग पगउँ अमन्दे । यथा कमल मधु मधुप अनन्दे ॥

उन दोनो श्री सीताराम जी के चरण कमल सुन्दर, पवित्र और अत्यन्त सुहावने हैं जो भक्तजनों के एक मात्र आश्रय प्रदाता व तीनों तापों को मिटाने वाले हैं। उन नूपुरों से युक्त व सुन्दर महावर लगे नवीन सुन्दरता सम्पन्न चरण कमलों को देखकर किसके हृदय में यह लालच नहीं हो जायेगा कि उन श्रेष्ठ चरणों को अपने हृदय में बसाकर, इस प्रकार से पग जाऊँ जिस प्रकार कोई भ्रमर आनन्द पूर्वक कमल के मधु में पग जाता है।

दो०–मनहर सुखकर शोभ धर, सीता राम स्वरूप ।
सत चिद आनन्द हर्ष युत, देखे कुँअर अनूप ॥९७॥

नव दूलह दुलहिन श्री सीताराम जी के मनोहारी, सुखकारी, शोभागार, अनुपमेय तथा सच्चिदानन्दमय स्वरूप का कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने हर्ष पूरित होकर अपने हृदय देश में दर्शन किया।

दम्पति देखि मगन मन भूले । प्रेम प्रवाह बहे रस झूले ॥
प्रेमातुर सिय राम कुमारहिं । हिय लगाइ भेंटे सुख सारहिं ॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी अपने चिदाकाश में नव दम्पति श्री सीताराम जी को देखकर मग्न हो अपने मन को भूल गये तथा प्रभु प्रेम के प्रवाह में बहते हुए रस के झूले में झूलने लगे। पुनः श्री सीताराम जी ने प्रेमातुर हो अपने सुखों के सार कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगाकर भेंट किया।

मिलन प्रीति रस सनी प्रगाढ़ी । मनहु त्रिवेनी पूरहिं बाढ़ी ॥
सीय राम लखि कुँअरहिं मोहैं । शक्ति ब्रह्म जस जीवहिं जोहैं ॥

उनकी तीनों की प्रेम रस से सनी हुई प्रगाढ़ मिलनि ऐसी थी मानों श्री त्रिवेणी (श्री गंगा जी, श्री यमुना जी, व श्री सरस्वती जी का संगम) पूर्ण रूप से बढ़ी हुई हों। श्री सीताराम जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर उसी प्रकार मोहित हो रहे थे जैसे ब्रह्म व शक्ति जीव को देखकर।

तीनहुँ आत्म प्रेम मिलि एका । जिमि चिद ब्रह्म न रहै अनेका ॥
अहं विलीन एक रस छाया । जानि दशा कोउ योगि अमाया ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–उस समय तीनों की आत्मा प्रेम पूर्वक मिलकर उसी प्रकार एक हो गयी थी जिस प्रकार चिद–ब्रह्म अनेक दिखते हुये भी अनेक न होकर एक ही रहता है, उनके अहंकार विलीन हो गये थे तथा एकमात्र प्रेमरस ही व्याप्त हो गया था, उनकी अवस्था को कोई निर्मल योगी ही जान सकता है।

सिद्धिहुँ पेखि प्रीति रस सोही । चित्त विहीन भई भरि मोही ॥
लीला रसिक राम रुचि तेरे । कछुक काल सब चेत चयेरे ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी भी इस दृश्य को देखकर प्रेम व रस से सुशोभित होने लगीं तथा मुग्ध होकर चित्त विहीन हो गयीं। पुनः लीला रसिक श्री राम जी महाराज की इच्छा से वे सभी अपने चित्त प्रदेश में ही कुछ समययोपरान्त आनन्दपूर्वक चैतन्य हो गये।

दो०–कुँअर भगिनि अरु भाम कहँ, लिये ललकि निज गोद ।
रत्न सिंहासन अष्ट दल, राजत हिय भरि मोद ॥९८॥

तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने बहन व बहनोई श्री सीताराम जी को लालायित होकर अपनी गोद में ले लिये तथा आठ दलों वाले कमल के ऊपर सुन्दर रत्न सिंहासन में आनन्द–प्रपूरित हृदय से विराज गये।

सिद्धि कुँअरि अँग परशि सुहाई । दै बीड़ा शुचि गंध लगाई ॥
शुचि सुमाल सुन्दर गल डारी । करत आरती हर्ष अपारी ॥

अनन्तर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने उनके सुहावने अंगों का सुन्दर स्पर्श करते हुए उन्हें ताम्बूल देकर पवित्र इत्र लगाया तथा उनके सुशोभन कण्ठ में पवित्र सुन्दर माला पहनाकर असीमित हर्ष पूर्वक आरती उतारने लगीं।

बने रहहिं तीनहु मम प्यारे । निरखि लहउँ सुख नैनन तारे ॥
अस कहि पुनि पुष्पांजलि दीन्ही । आत्म समर्पण गहि पद कीन्ही ॥

पुनः मंगलानुशासन कर हे मेरे प्रिय व नेत्रों के तारे! आप तीनों जन, सदैव प्रसन्न बदन बने रहिये तथा आपको देख देखकर मैं सुख प्राप्त करती रहूँ। ऐसा कहकर उन्होंने पुष्पांजलि दी तथा श्री सीताराम जी चरणों को पकड़ कर अपना आत्म समर्पण कर दिया।

सीय राम प्रिय परशहिं पाई । कृपा प्यार लहि सत सुख छाई ॥
चिदाकाश चिद दृश्य निहारी । भे प्रकृतिस्थ कुँआर कुँआरी ॥

तब श्री सिद्धि कुँअरि जी श्री सीताराम जी के प्रिय स्पर्श, कृपा तथा प्यार को प्राप्त कर सच्चे सुख में समा गयीं। इस प्रकार अपने चिदाकाश में यह चिद–दृश्य देखकर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्रीधर कुमारी श्री सिद्धि कुँअरि जी दोनो प्रकृतिस्थ हो गये।

सोवत जागि परै जस कोई । भलो स्वप्न सुख सुमिरण होई ॥
कुँअर जागि तिमि सुमिरण करई । सो छवि हृदय वशी चित हरई ॥

जिस प्रकार कोई व्यक्ति सोते से जाग कर अपने सुन्दर स्पप्न का सुखपूर्वक स्मरण करता है उसी प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी जागृत होकर उस दृश्य का स्मरण कर रहे थे, उनके हृदय में वह सुन्दर झाँकी बसी हुई उनके चित्त का अपहरण कर रही थी।

दो०–विरह सने दृग वारि भरि, बोले अति अतुराय ।
सुनहु प्रिया अबहिन लखे, मनहर सिय रघुराय ॥९९॥

प्रभु विरह में डूबे हुए निमि नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी नेत्रों में अश्रु भर आतुर होकर बोले– हे प्रिये! सुनिये, मैंने अभी–अभी मनहरण नव दूलह–दुलहिन श्री सीताराम जी के दर्शन किये हैं।–––

दरश देय कहँ गये दुलारे । भाम भगिनि मम प्राण पियारे ॥
कही सिद्धि सुनु जीवन नाथा । हमहुँ लखी सत सिय रघुनाथा ॥

–––मेरे दुलारे, प्राणों के प्यारे बहन–बहनोई श्री सीताराम जी मुझे दर्शन देकर न जाने कहाँ चले गये? उनकी बाते सुनकर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा– हे मेरे जीवन नाथ! सुनिये, मैं सत्य कह रही हूँ कि– हमने भी अपने ननद–ननदोई श्री सीतारामजी के दर्शन किये हैं।

दरश परश लहि कृपा महानी । आनँद अमित भयो रस सानी ॥
रूप यथा लखि भये सुखारे । कहे परस्पर सिद्धि कुँआरे ॥

उनके दर्शन, स्पर्श व महान कृपा को पाकर, रसपूर्ण असीमित आनन्द प्राप्त हुआ था। तदनन्तर वे दम्पति श्री सिद्धि कुँअरिजी व श्री लक्ष्मीनिधि जी जिस प्रकार अपने अपने चिदाकाश में अपने प्राणाधार श्री सीताराम जी का दर्शन कर सुखी हुए थे, आपस में बखान किये।

कहेव कुँअर सुनु प्रिया प्रवीना । स्वप्न होय नहिं पागल पीना ॥
ध्यान मगन चित राम स्वरूपा । कहत सुनत शुचि यशहिं अनूपा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे पाण्डित्य प्रपूर्णा प्रियतमे ! सुनिये, यह कोई स्वप्न अथवा पागलपन नहीं है। श्री सीताराम जी के पवित्र व अनुपमेय यश को कहते–सुनते हुये, ध्यान मग्न होकर हमारा चित्त श्री रामजी महाराज के आकार का हो गया था।–––

प्रेम दशा अन्तिम गति पाई । अह चित बुधि सब गये भुलाई ॥
तदाकार बनि चित्त प्रकाशा । चिदाकाश पेखेव प्रभु भासा ॥

---उस समय हमारी स्थिति प्रेम की अन्तिम अवस्था को प्राप्त हो गयी थी जिससे अहंकार, चित्त व बुद्धि आदि सभी अन्तःकरण विस्मृत गये थे और तदाकार बन कर चित्त प्रकाशित हो गया तब चिदाकाश में उसने प्रभु श्रीरामजी महाराज के दर्शन व अनुभव किये हैं।

दो०—सीय कृपा लहि राम की, पावहि कृपा महानि।
जीव लहे गति सो प्रिये, आनन्दमय रस खानि ॥१००॥

हे प्रिये! परमाद्या शक्ति श्री सीता जी की कृपा को प्राप्त कर जब जीव प्रभु श्री राम जी महाराज की महान कृपा प्राप्त कर लेता है तभी उस आनन्दमयी व रस की खानि अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

मैं अति दीन सुसाधन हीना। अतिहिं अकिंचन मायाधीना ॥
हर्षामर्ष रूप अज्ञाना। अहं सनेउ कहुँ भासत ज्ञाना ॥

मैं अत्यन्त दीन, सभी श्रेष्ठ साधनों से रहित, अत्यन्त अकिंचन, माया के अधीन, हर्ष व क्रोध का स्वरूप, अतिशय अज्ञानी तथा अहंकार से सना हुआ हूँ कहीं ऐसे व्यक्ति के हृदय में भी ज्ञान का प्रकाश हो सकता है।

पाप रूप करमन के माहीं। राखत रुचि गे जन्म सिराहीं ॥
प्रेमाभक्ति सेव प्रभु केरी। लह्यो न अब लौ जस रुचि मेरी ॥

मेरा यह जन्म पाप रूपी कर्मों में रुचि रखते हुए व्यतीत हुआ जा रहा है परन्तु प्रभु श्री राम जी महाराज की प्रेमाभक्ति तथा अपनी रुचि के अनुसार उनकी सेवा मैं अभी तक नहीं प्राप्त कर सका।

तदपि अहैतुक दीन दयाला। निज जन जानि नित्य प्रतिपाला ॥
लली लाल की कृपा महानी। तदाकार चित छवि छहरानी ॥

तथापि दीनों पर दया करने वाले प्रभु श्रीरामजी महाराज ने मुझ पर अकारण कृपा कर, मुझे अपना जन समझ नित्य ही मेरा प्रतिपालन किया है। हमारी लली श्री सिया जू व श्री जानकी जीवन लाल जी की महान कृपा से मेरा चित्त उनके आकार का बन गया था जिसमें उनकी सुन्दर छवि दिखायी पड़ी थी।

नाहित मोकहँ अगम अथाहा। अज्ञहिं ब्रह्म दरश नहिं लाहा ॥
सुनत कुँअर की बात प्रवीनी। सिद्धि कुँअरि अतिशय भइ दीनी ॥

अन्यथा मुझे यह दर्शन उसी प्रकार अगम्य व अथाह था जिस प्रकार अज्ञानी जीव को ब्रह्म दर्शन अप्राप्त ही रहता है। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की विवेक-पूर्ण वार्ता श्रवणकर श्री सिद्धि कुँअरि जी अत्यन्त दीन भाव से परिपूर्ण हो गयीं।

दो०—यहि विधि दम्पति दीन बनि, राम विरह विकलाय।
भवन वसैं सिय राम यश, कहत सुनत रस छाय ॥१०१॥

इस प्रकार पति–पत्नी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धि कुँअरि जी दीन बन कर श्री सीताराम जी के वियोग में व्याकुल हो उनके सुन्दर यश को आनन्द पूर्वक कहते व सुनते हुए अपने भवन में निवास कर रहे थे।

एक दिवस लक्ष्मीनिधि देखा। पुष्प वेलि कुम्हलानि विशेषा ॥
जाहि राम परशे बहु बारा। लगी रही सिधि सदन सुद्वारा ॥

एक दिन राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने देखा कि– वह पुष्प–लता जो श्री सिद्धि–सदन के सुन्दर दरवाजे पर लगी हुई है और जिसका श्री राम जी महाराज ने कई बार स्पर्श किया था, विशेष ही कुम्हलाई हुई है।

मन अनुमान कीन्ह निमि बाला। राम वियोग बेलि अस हाला ॥
सीय भ्रात हौं रघुवर श्याला। हृदय विदरि नहिं कियो विहाला ॥

उसे देखकर निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने मन में अनुमान किया कि श्री राम जी महाराज के वियोग में जब इस पुष्पलता की यह स्थिति हो गयी है फिर, मैं तो श्री सीता जी का भैया व श्री राम जी महाराज का श्याल हूँ, उनके वियोग में मेरा हृदय विदीर्ण होकर मुझे विह्वल क्यों नहीं कर दिया ?

बेलि विलोकि लाज नहिं आई। अहे मोह ममता अधिकाई ॥
सिय अस बहिन होत दृग ओटा। संग गये नहिं प्राणहुँ खोटा ॥

हाय! हाय ! इस लता को देखकर भी मुझे लज्जा नहीं आ रही, मुझमें अवश्य सांसारिक मोह व ममता का आधिक्य है। हाय! श्री सीता जी जैसी बहन के आँखों से ओझल होते ही ये प्राण उनके साथ ही क्यों नहीं चले गये? ये अवश्य ही दोषी हैं।

इतना कहत विरह बहु बाढ़ा। तलफत मीन मनहुँ जल काढ़ा ॥
सिद्धि कुँअरि उपचारहिं तेरे। भये स्वस्थ कछु कुँअर प्रवीरे ॥

इतना कहते ही उनके हृदय में श्री सीताराम जी का अत्यधिक विरह बढ़ गया और वे जल से निकाली मछली के समान तड़पने लगे। तदनन्तर श्री सिद्धि कुँअरि जी के उपचार से परम प्रवीर श्री लक्ष्मीनिधि जी कुछ स्वस्थ हुए।

सुनि द्रुत जननि जनक तहँ आये। कुँअरहिं अंक राखि समझाये ॥
मातु भवन निज गई लिवाई। करि पियार प्रिय अशन पवाई ॥

उनकी अवस्था सुनकर शीघ्र ही अम्बा श्री सुनैना जी व श्रीमान् पिताजी श्री जनक जी महाराज वहाँ आ गये तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को गोद में लेकर बहुत समझाया। पुनः अम्बा श्री सुनैनाजी उन्हें अपने महल में ले गयीं तथा प्यार करते हुए प्रियकर भोजन करवाई।

दो०–कही बहुरि सुनु प्राण प्रिय, मोरे लाल अधार।
लली वियोगिन मोहिं लखि, राखहु निजहिं सम्हार ॥१०२॥

अनन्तर उन्होंने कहा– हे मेरे प्राण प्रिय लाल लक्ष्मीनिधि! आप ही तो मेरे प्राण के आधार है

अतः लली श्री सिया जू की वियोगिनी मुझे देखकर, आप अपने आपको सम्हाले रखिये।

तुमहिं देखि मैं धरति सुधीरा । हिय लगाय मिटवति जिय पीरा ॥
मेरो हेतु जानि तुम लालन । मुख प्रसन्न नित रहौ स्वचालन ॥

आपको देखकर ही मैं सुन्दर धीरज धारण किये रहती हूँ और आपको हृदय से लगाकर अपने हृदय की पीड़ा को मिटाती रहती हूँ, इसलिए हे लाल लक्ष्मीनिधि! आप मेरे लिए सुन्दर चर्या करते हुए नित्य प्रसन्न–वदन बने रहिये।

सुदिन सुअवसर लहि तोहि दाऊ । अवध पठैहैं सीय लिवाऊ ॥
अइहैं इतै प्राण प्रिय रामा । धूम मची पुनि मिथिला धामा ॥

आपके श्रीमान् दाऊ जी सुन्दर दिन व सुहावना समय प्राप्त कर श्रीसीताजी को लिवाने के लिए आपको श्रीअयोध्यापुरी भेजेंगे तब प्राण प्रिय श्री राम जी महाराज यहीं आयेंगे और श्री मिथिलापुरी में पुनः आनन्द महोत्सव छा जायेगा।

भगिनि भाम भल दरशन पाई। सेयो त्रिकरण हिय हरषाई ॥
सुनत कुँअर मन मोद बढ़ावा। गयो भवन भलि आयसु पावा ॥

उस समय आप अपनी प्रिय बहन सिया जू व प्यारे बहनोई श्री रघुनन्दन जू के सुन्दर दर्शन प्राप्त कर हृदय में हर्षित हो उनकी त्रिकरण (मन, वचन व कर्म) सेवा करियेगा। यह सुनते ही कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी के मन में आनन्द बढ़ गया और वे उनकी सुन्दर आज्ञा प्राप्त कर अपने भवन चले गये।

सिद्धि कुँअरि उठि आरति कीन्ही। गहि पद पतिहिं सुआसन दीन्ही ॥
छत्र चमर शुभ सखिगन लीनी। सेवा साज सबै सुख भीनी ॥

अपने प्राण वल्लभ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को आते देख श्री सिद्धि कुँअरि जी ने उठकर उनकी आरती उतारी तथा अपने चरणों में प्रणाम कर उन्हें सुन्दर आसन प्रदान किया। उस समय सुख में सनी सभी सखियाँ छत्र व चमर आदि शुभ सेवा सामग्री धाकर लीं।

पान दान इतरादिक नाना । सेवहिं कुँअरहिं भाव महाना ॥
सविधि पूजि सिधि कर लै वीना। गावन लगी प्रेम परवीना ॥

पानदान व इत्र आदि कई प्रकार की सेवा सामग्री से महान भाव पूर्वक वे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की सेवा करने लगी। इस प्रकार प्रेम पण्डिता श्रीसिद्धि कुँअरिजी उनका सविधि पूजन कर हाथ में वीणा ले गायन करने लगीं।

दो०–औरहुँ अलि बहु वाद्य लै, वादहिं हिय हरषाय ।
सिद्धि कुँअरि श्री यश सुखद, गावति राग रसाय ॥१०३॥

उस समय दूसरी अन्य सखियाँ हृदय में हर्षित हो बहुत से वाद्य ले लेकर बजाने लगीं। इस प्रकार रस में समायी हुइ श्री सिद्धि कुँअरि जी श्री सीतारामजी की परम सुखदायी सुकीर्ति का गायन सुन्दर राग पूर्वक करने लगीं।

छं०– जय जय रसनायक प्रेम प्रदायक, श्यामल सुभग सलोने ।
मम मन रम रामा ललित ललामा, चक्रवर्ति छवि छौने ॥
मुनि कौशिक संगा कर तिय गंगा, मिथिला बने विहारी ।
जय मृदु मुसुकाई चषन चलाई, कीह स्ववश नर नारी ॥

हे रस नायक, प्रेम प्रदाता, सुन्दर, सलोने, श्याम सुन्दर आपकी जय हो, जय हो, हे मेरे मन में रमण करने वाले, सुन्दरातिसुन्दर, चक्रवर्ती कुमार श्री राम जी महाराज! आप मुनिवर विश्वामित्र जी के साथ ऋषि पत्नी श्री अहल्या जी को श्री गंगा जी के समान पवित्र कर श्री मिथिला विहारी बने हैं। आपकी जय हो, आपने अपनी मृदुल मुस्कान और सुन्दर नेत्रों से दृष्टि निक्षेप कर मिथिलापुरी के सभी स्त्री–पुरुषों को अपने वश में कर लिया है।

पुर अन्तः बगिया, लै रस रगिया, दीन्हे दरश ननन्दै ।
जय जय रस दानी, सियहुँ सुहानी, पाई अमित अनन्दै ॥
भंज्यो भव चापा, जन परितापा, जयति जयत जयमाला ।
शिर सोह सुमौरा, सिहरा लोरा, व्याह सिया श्रुति चाला ॥

आपने अन्तःपुर की पुष्पवाटिका में, प्रेम व रस से परिपूर्ण हो, हमारी ननन्द श्री सिया जू को दर्शन दिया था हे रस प्रदाता आपकी जय हो, जय हो, आपको प्राप्त कर परम सुशोभना श्री सिया जू असीम आनन्द प्राप्त की हैं। आपने श्री शिव जी के अत्यन्त प्रचण्ड धनुष का खण्डन कर, हम सभी के दुखों का हरण किया और विजय स्वरूप "जयमाल" प्राप्त की है आपकी जय हो, जय हो। आपने अपने सिर में सुन्दर मौर धारण कर सिहरा लहराते हुए श्री सिया जू से वेद विहित विवाह किया है।

आनन्द अति पागे, प्रेमिन लागे, वसे पुरहिं ननदोई ।
पितु दशरथ साथा, अतिहिं अनाथा, करत गये हम लोई ॥
अति अँखियाँ आसी, दरशन प्यासी, रसनिधि रूप तुम्हारे ।
रसि रहत उदासी, तेजहुँ नासी, रुदत रैन दिन प्यारे ॥

हे श्री ननदोई जी! आप अत्यानन्द में पगे हुए प्रेमियों के हेतु श्री मिथिलापुरी में वास किये तथा हम लोगों को सर्वथा अनाथ बना कर अपने पिता श्रीमान् दशरथजी महाराज के साथ श्री अयोध्या पुरी चले गये हैं। हे रस निधि श्री राम जी महाराज! , आपके सुन्दर रूप के दर्शनों के प्यासे व अत्यधिक आशान्वित हमारे नेत्र आपके विरह में समाये हुए उदास रहते हैं। हे प्यारे! दिन–रात रोते–रोते इनकी ज्योति भी विनष्ट हो गयी है।

अणु अणु वर वासा, नेह निवासा, बिन स्वारथ हितकारी ।
सब प्राणिन मित्रा, प्रेम पवित्रा, देत निजहिं सब वारी ॥
नित सेव सुचाऊँ, दरशन पाऊँ, अतिशय कृपा महानी ।
छन छन बढ़ प्रेमा, योग सुक्षेमा, तजि अकाम रस सानी ॥

आप तो सर्वत्र अणु अणु में वास करने वाले हैं, प्रेम ही एक मात्र आपका निवास है, आप बिना स्वार्थ सबका हित करने वाले सभी प्राणियों के मित्र हैं तथा आप पवित्र प्रेम में अपना सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं। मैं आपकी नित्य सुन्दर सेवा, आपके दर्शन तथा अत्यन्त महान कृपा की कामना करती हूँ। मैं अपने योग व क्षेम को त्यागकर, निष्काम भाव से आपके विरह रस में सनी हुई, यही इच्छा करती हूँ कि आपके प्रति मेरा प्रेम प्रतिक्षण बृद्धि को प्राप्त होता रहे।

दो०–दीन अकाम विभोर बनि, प्रेम पगी अकुलाय ।
श्रवत नयन गदगद गिरा, गाई सिधि रस छाय ॥१०४॥

इस प्रकार प्रेम में पगी हुई श्री सिद्धि कुँअरिजी ने दीन, निष्काम व विभोर बन आकुलता पूर्वक अश्रु बहाते हुए गदगद वाणी से श्री राम जी महाराज की कीर्ति का रस में समाविष्ट हो गायन किया।

गीत सुरस वीणा झनकारा । भरेउ व्योम प्रभु प्रेम पसारा ॥
सिद्धि नेह वश सब सुधि भूली । धरी भूमि शिर विरह विहूली ॥

सुन्दर रस से परिपूर्ण तथा वीणा की झनकार से युक्त प्रभु श्रीरामजी महाराज के प्रेम से समन्वित गीत आकाश में गूँज गया उस समय श्री सिद्धि कुँअरिजी प्रभु प्रेम के वशीभूत हो सभी स्मृति भूल गयीं तथा विरह से विह्वल हो उन्होंने अपना सिर भूमि में रख दिया।

कुँअरहुँ प्रेम पगे भरि भाये । हृदय कसक लोचन जल लाये ॥
सिर उठाय सिधि नयनन खोली । देखी कुँअर ओर हिय धोली ॥

तब कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी भी प्रेम में पगे हुए भाव में भर कर हृदय की वियोग जन्य पीड़ा के कारण आँखों से अश्रु विमोचन करने लगे। उस समय श्री सिद्धि कुँअरिजी ने अपना सिर उठा आँखे खोलकर द्रवित हृदय से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की ओर देखा।

पेखी राम रसिक सुखकारी । हृदय विमोहन छवि बहु मारी ॥
नयन सजल सुठि सुन्दर सोहैं । कृपा शील प्रिय प्रेम प्रमोहैं ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी में श्री सिद्धि कुँअरि जी ने अमित कामदेवों की छवि संयुक्त, सुख करण, रसिक श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज की हृदय विमोहिनी छवि का दर्शन किया। वे अश्रु प्रपूरित नेत्रों से युक्त, सुन्दर, कृपा, शील व प्रिय प्रेम से परिपूर्ण, मुग्ध करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे–––

प्रिय प्रेमिन जनु पाय विछोहा । विरह विवश ग्रसि गये विमोहा ॥
छन छन छलकै रूप सुशोभा । अँग अँग निरख मुदित मन लोभा ॥

–––जैसे वे अपने प्रिय प्रेमियों का वियोग प्राप्त कर विरह के वशीभूत हो मोह से ग्रस लिये गये हों। श्री राम जी महाराज के रूप की सुन्दर शोभा प्रति क्षण छलक रही थी तथा उनके प्रत्येक अंग को देख देखकर मन मुदित व लुब्ध हुआ जा रहा था।

दो०–अनुपम भूषण वसन वर, राजे रघुवर राम ।
लखति सिद्धि हिय हर्ष अति, चरण पड़ी सुख धाम ॥१०५॥

रघुनन्दन श्री राम जी महाराज अनुपमेय भूषण व सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए थे, उन सुख के धाम श्री राम जी महाराज का, हृदय में अत्यन्त हर्ष पूर्वक दर्शन करती हुई श्री सिद्धि कुँअरि जी उनके चरणों में गिर पड़ीं।

जाने कुँअर परी मम चरणा। परशि शीश करि प्रेम अवरणा ॥
कुँअरि गुनी प्रभु कृपा महाई। कीन्हे परश शीश सुखदाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सिद्धिकुँअरि जी को अपने चरणों में पड़ी जानकर अवर्णनीय प्रेम करते हुए उनका सिर स्पर्श किया तब श्री सिद्धि कुँअरि जी ने समझा कि प्रभु श्री राम जी महाराज ने महान कृपा कर मेरे शिर का सुखदायी स्पर्श किया है।

बहुरि सिंहासन देखि कुमारी। बैठे पेखि पतिहिं प्रियकारी ॥
अचरज मानि प्रेम वश भोरी। स्तम्भित सी भई विभोरी ॥

पुनः श्री सिद्धि कुँअरि जी ने सिंहासन की ओर देखा जहाँ अपने प्राण–प्रिय–पति श्री लक्ष्मीनिधि जी को बैठे हुए देखकर आश्चर्य माना। प्रेम की वशीभूता वे भोली–भाली श्री सिद्धि कुँअरि जी प्रेममग्न होकर निश्चेष्ट हो गयीं।

कछुक काल पुनि धीरज लीनी। दृगहिं लखी सिय स्वामि प्रवीनी ॥
पाइ विमोहहिं श्री निधि वामा। परी धरणि मति खोय ललामा ॥

कुछ समयोपरान्त धैर्य धारण कर, उन परम प्रवीणा श्री सिद्धि कुँअरिजी ने अपनी आँखों से सिंहासन में पुनः सीताकान्त श्री रामजी महाराज का दर्शन किया। इस प्रकार व्यामोह को प्राप्त हुई लक्ष्मीनिधि वल्लभा श्री सिद्धि कुँअरि जी अपनी सुन्दर सुध–बुध खोकर भूमि में गिर पड़ीं।

लक्ष्मीनिधि निज अंकहि लीन्हे। करि उपचार चेत पुनि दीन्हे ॥
सिद्धि कुँअरि सब दशा बताई। जेहिं विधि लखी राम रघुराई ॥

तब श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें अपनी गोद में ले लिया पुनः उपचार कर उन्हें चैतन्यता प्रदान किये तदनन्तर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने सम्पूर्ण स्थिति का बखान किया, जिस प्रकार उन्होंने श्री राम जी महाराज का दर्शन प्राप्त किया था।

दो०– प्राण नाथ तन आपके, देखी श्री रघुवीर।
बहुरि विलोकी आपु कहँ, पुनि लखि श्याम शरीर ॥१०६॥

हे प्राण नाथ! मैंने आपके श्री वपु में रघुकुल प्रवीर श्री राम जी महाराज का दर्शन प्राप्त किया है, पुनः कुछ समय उपरान्त मैने आपका दर्शन किया तदनन्तर पुनः श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज का दर्शन प्राप्त किया है।

कैयक बार आपु पुन रामा। आपुहिं माहिं लखी सुखधामा ॥
विरह सने मन मोहन रामहिं। देखी सुखकर श्याम अकामहिं ॥

इस प्रकार मैंने आप के शरीर में कई बार, आपको पुनः सुख के धाम श्री राम जी महाराज को देखा है। उन सुख करण, निष्काम, मनमोहन, श्याम शरीर वाले श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज को

भी विरह में सने हुए, मैंने दर्शन किया है।

काह कहौं प्रभु देहिं बताई। सुनत कुँअर बोले सुख पाई ॥
धन्य धन्य मम प्राण पियारी। तुम्हहिं पाय पायों सुख भारी ॥

हे नाथ! अब मैं क्या कहूँ? इसका रहस्य आप ही मुझे बतायें। श्री सिद्धि कुँअरि जी की बातें सुनते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुख प्राप्त कर बोले– हे मेरी प्राण प्यारी प्रियतमे! आप धन्यातिधन्य हो, आपको पाकर मैंने असीम सुख प्राप्त किया है।

यथा पथिक लहि उत्तम साथा। लक्ष पहुँचि बन जाय सनाथा ॥
सीय राम पद प्रेम सुमूरति। तोहि देखि नव नेह सुपूरति ॥

जिस प्रकार कोई यात्री उत्तम साथ पाकर अपने लक्ष्य तक पहुँच सुरक्षित हो जाता है उसी प्रकार श्री सीताराम जी के चरणों के प्रेम की सुन्दर मूर्ति आपको देखकर मुझमें नवीन प्रेम की बाढ़ सी आ जाती है।

लक्ष्य वेध तन्मयता पाई। जेहिं प्रकार श्रुति कहेउ बुझाई ॥
प्रणवो धनुः शरोहि आत्मा। ब्रह्म लक्ष्य तत भने महात्मा ॥
अप्रमत्तेन वेधव्यम् लक्ष्या। शर वत तन्मय होत सुदक्ष्या ॥

आपने लक्ष्य वेधन की वैसी ही तन्मयता प्राप्त की है जैसा कि– श्रुतियों ने समझा कर बर्णन किया है। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी कहते हैं कि– प्रणव अक्षर को धनुष, आत्मा को बाण और ब्रह्म को लक्ष्य बना कर प्रमाद रहित हो, बाण की नोक (आत्मा) में एकाग्र होकर लक्ष्य वेध करने वाला ही सुन्दर चतुर साधक होता है, ऐसा महात्माओं ने बखान किया है।

दो०–श्रुति निदेश शिर रखि प्रिया, ब्रह्म राम करि चाप।
जीवहिं बाण बनाय वर, ब्रह्म लक्ष विध आप ॥१०७॥

हे प्रिये! आपने श्रुतियों की आज्ञा शिरोधार्य कर पूर्ण ब्रह्म श्री राम जी महाराज के नाम 'राम' को धनुष तथा अपनी आत्मा को सुन्दर बाण बनाकर ब्रह्म लक्ष्य का भेदन कर लिया है।

तन्मय भई यदपि हौ बाला। धन्य धन्य तव बुद्धि विशाला ॥
अहौ प्रिया तुम पूरब सिद्धा। मन महँ भव रस तनिक न विद्धा ॥

यद्यपि आपका अबला (स्त्री) शरीर हैं फिर भी पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज में तल्लीन हो गयी हैं। आपकी महान बुद्धि को धन्यवाद है। हे प्रिये! आप अवश्य ही पूर्व जन्म की सिद्धा हैं क्योंकि आपके मन में सांसारिक रस किंचित भी प्रवेश नहीं कर पाया है।

रामाकार रसी रस रूपा। प्रेम भक्ति भल भाव अनूपा ॥
ब्रह्म राम सर्वेश्वर ईशा। पूजहु मोमहँ मानि अधीशा ॥

आप श्री राम जी महाराज के रूप व रस में अनुरक्त हुई, प्रेमा–भक्ति व अनुपमेय सुन्दर भावों से परिपूर्ण श्री राम जी महाराज की स्वरूपा ही हैं। आप पूर्णतम ब्रह्म, सभी के स्वामी व शासक श्री रामजी महाराज की भावना मुझमें ही कर मेरी पूजा करती हैं–––

निश्चय ब्रह्म बनेव पति आई । मोहि कहँ मिल्यो सरस सुखदाई ॥
सुदृढ़ भावना भरि प्रिय प्यारी । सेवहु सदा अकाम सुखारी ॥

–––तथा सुख प्रदायक, रसमय ब्रह्म ही निश्चित रूप से यहाँ आकर मेरे पति बनकर मुझे प्राप्त हुये हैं ऐसी सुन्दर दृढ़ भावना भावित होकर, हे प्रिय प्रियतमे! आप सदैव सुखपूर्वक मेरी निष्काम भाव से सेवा करती रहती हैं।

अतिशय भाव प्रिया लखि तोरा । विश्व वास प्रगटेउ तन मोरा ॥
भाव वश्य भावहिं अनुसारा । तुमहि दिखेव प्रभु मोहि मँझारा ॥
राम वियोग यथा दुख तोही । रामहु विरह बहे तव जोही ॥

अतः हे प्रिये! आपके अत्यधिक भाव को देखकर ही घट–घट निवासी प्रभु श्री राम जी महाराज मेरे शरीर में प्रगट हुए थे। सदैव भावों के वश में रहने वाले प्रभु श्री राम जी महाराज आपकी भावना के अनुसार ही आपको मुझमें दिखायी दिये हैं। श्री राम जी महाराज के वियोग में जिस प्रकार आप दुखी हैं उसी प्रकार आपको देखकर श्री राम जी महाराज भी विरह के प्रवाह में बह गये थे।

दो०–यथा विरह सिय राम के, जीव हृदय अकुलाय ।
तथा वियोगी रामहूँ, नयनन नीर बहाय ॥१०८॥

क्योंकि जिस प्रकार श्री सीताराम जी के विरह में जीवों का हृदय अकुलाया रहता है उसी प्रकार उनके वियोगी बने श्री राम जी महाराज भी आँखों से अश्रु बहाते रहते हैं।

जो जन भजैं राम कहँ जैसे । रामहुँ भजैं जनहिं निज तैसे ॥
धनि धनि प्रिया अहहु बड़भागी । कियो ब्रह्म दर्शन अनुरागी ॥

जो प्रेमी भक्त प्रभु श्री राम जी महाराज का जिस भावना से भजन–स्मरण करता है श्री राम जी महाराज भी अपने उस भक्त को उसी प्रकार से भजते हैं। हे प्रिया जी! आप धन्यातिधन्य व अत्यन्त सौभाग्यशालिनी हैं जो आपने अनुराग पूर्वक पूर्णतम परब्रह्म श्रीरामजी महाराज का दर्शन प्राप्त किया है।

सकुचि सिद्धि पति पद धरि माथा । बोली मधुर वचन सुनु नाथा ॥
अमित प्यार राउर जिय जोही । सुख न समाउँ रहौं नित मोही ॥

अपने प्राण वल्लभ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के ऐसे वचनों को श्रवण कर श्री सिद्धि कुँअरि जी संकुचित हो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी के चरणों में अपना मस्तक रख प्रणाम कर मधुर वाणी से बोलीं– हे नाथ! सुनिये, आपका अपने प्रति अपने हृदय में असीमित प्यार देखकर मैं सुख में फूली नहीं समाती तथा नित्य विमोहित सी रहती हूँ।

प्राणनाथ मोहि दीन्ह बड़ाई । सो सब मृदुल स्वभाव सुहाई ॥
नाथ छाँह रुख राखन हारी । दासी प्रिय पद सेवन वारी ॥

प्राणनाथ ने जो मुझे बड़ाई दी है वह सभी आपके कोमल व सुन्दर स्वभाव के अनुरूप ही है। मैं तो आपकी रुचि को रखने वाली आपकी प्रतिछाया व आपके प्रिय चरणों की सेवा करने वाली

सेविका हूँ।

जीवन धन भल मोर भलाई । राउर बड़पन अपन बड़ाई ॥
तव सुख चाह मोर सुख चाहा । त्रिकरण जानहिं सत मम नाहा ॥

हे मेरे जीवन धन! आपकी कुशलता ही मेरी कुशलता तथा आपकी बड़ाई ही मेरी बड़ाई है। आपकी इच्छा व सुख ही मेरी इच्छा व सुख है इस सत्य बात को मेरे नाथ! आप त्रिकरण (मन, वचन व कर्म) जानते ही हैं।

दो०–राउर शक्ति प्रकाश ते, रहहुँ प्रकाशित भाय ।
प्राण नाथ गुण दिव्य सब, मोरेहु हिये जनाय ॥१०९॥

हे नाथ! आपकी शक्ति व प्रकाश से ही मैं सहज प्रकाशित रहती हूँ तथा हे प्राणनाथ! आपके ही सभी दिव्य गुण मेरे हृदय में दिखाई पड़ते हैं।

मैं जड़ नारि कहावहुँ अबला । नाथ चरण आश्रय लहि सबला ॥
अस कहि प्रेम पगी पुनि वानी । बोली सिद्धि चरण लपटानी ॥

मैं तो सहज ही जड़ व अबला कही जाने वाली स्त्री हूँ और नाथ के चरणों का आश्रय प्राप्त कर ही बलवती बनी हुई हूँ ऐसा कहकर श्री सिद्धि कुँअरि जी उनके चरणों में लिपटकर प्रेम परिपूरित वाणी से पुनः बोली–

नाथ प्रेम परमारथ रूपा । रसिक राम रस पियत अनूपा ॥
ध्यान धारणा अविज समाधी । स्वयं सिद्ध बिन साधन साधी ॥

हे नाथ! आप तो प्रेम व परम परमार्थ स्वरूप तथा श्री राम रस के रसिक हैं और उस अनुपमेय रस का पान सदैव करते रहते हैं। ध्यान, धारणा व निर्वीज समाधि तो आपको स्वयमेव बिना किसी साधन ही सिद्ध है।

राम रमत चित राम समाना । भयो यथारथ यह परमाना ॥
यथा अगिनि परि सबहिं पदारथ । अग्नि बनैं सब लखै यथारथ ॥

यह प्रमाणित है कि श्री राम जी महाराज में रमण करता हुआ आपका चित्त उसी प्रकार यथार्थ रूप में श्री रामजी महाराज के समान हो गया है, जिस प्रकार अग्नि में पड़कर सभी पदार्थ वास्तविक रूप से अग्नि बनकर सभी को दिखाई पड़ते हैं।

कीट भृंग कर न्याय प्रसिद्धा । ध्यानी बनै ध्येय चित विद्धा ॥
चित विहीन निज देह भुलानी । सो किमि लखै स्वतन कस जानी ॥

भृंग–कीट का न्याय तो प्रसिद्ध ही है अतः ध्यान करने वाला अपने चित्त को ध्येय से बँधा रखने के कारण स्वयं ध्येय तो बन जाता है परन्तु चित्त विहीन होने से अपने शरीर की स्मृति भुलाये रहता है अतएव वह अपने शरीर को किस प्रकार समझ और जान सकता है।

दो०— ध्यानी दासहिं लखि परै, भाव भरी सो देह ।
चरण सेव जो रत रहैं, भूले तन मन गेह ॥११०॥

ऐसे भगवच्चरणानुरागी की वह भावमयी देह, उसका ध्यान करने वाले उस सेवक को दिखाई पड़ती है जो अपने शरीर, मन व गृह को भूलकर उसके चरणों की सेवा में लगा रहता है।

चरण सेविका मन क्रम वानी । ईश रूप नित नाथहिं जानी ॥
देखी राम रूप तव देहा । सुखद सुभग श्यामल गुण गेहा ॥

मैं मन, वचन व कर्म से आपके चरणों की सेविका हूँ व नाथ को नित्य भगवान का स्वरूप समझती हूँ इसीलिए मैंने आपके शरीर में सुख प्रदायक, सुन्दर व गुणों के धाम, श्याम वपु श्रीरामजी महाराज के दर्शन किये हैं।

रामाकार चित्त तव नाथा । प्रगट कियो देहहिं रघुनाथा ॥
रंचहुँ अहै न मम पुरुषारथ । पेखी महिमा तव परमारथ ॥

हे नाथ! आपके रामाकार हुए चित्त ने ही आपके शरीर में श्री रामजी महाराज को प्रगट किया है। इसमें मेरा किंचित भी पुरुषार्थ नहीं है, मैंने तो इस प्रकार से आपके परमार्थ स्वरूप की महिमा का ही दर्शन किया है।

रावरि कृपा भाग बड़ि पाई । लोचन लखी अलख रघुराई ॥
कहि अस गिरी कुँअर पद पाहीं । कुँअरहुँ हृदय लिये तेहिं काही ॥

आपकी कृपा से ही महान सौभाग्य को प्राप्त कर मैंने अपने नेत्रों से इन्द्रियातीत श्री राम जी महाराज के दर्शन किये हैं। ऐसा कहकर श्री सिद्धि कुँअरि जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के चरणों में गिर पड़ीं तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया।

प्रेम मगन मन दम्पति राजैं । स्वर्ण सिंहासन रसमय भ्राजैं ॥
सेवहिं सखि गण प्रेम बढ़ाई । सीय राम शुभ चरित सुनाई ॥

इस प्रकार वे रस–स्वरूप पति–पत्नी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धिकुँअरि जी मन में प्रेम मग्न हो स्वर्ण सिंहासन में विराज कर सुशोभित होने लगे, उनकी सखियाँ उनमें प्रेम बढ़ाकर, श्री सीताराम जी के शुभ गुणानुवाद को सुनाकर उनकी सेवा करने लगीं।

दो०— कहहिं सुनहिं शुचि चरित नित, सुखमय सुखद गंभीर ।
हर्षहिं पुलकहिं दृग सजल, होवहिं बहुरि अधीर ॥१११॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– वे दोनों कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धिकुँअरि जी श्री सीताराम जी के सुख स्वरूप, सुख प्रदायक, गम्भीर तथा पवित्र चरित्रों को नित्य प्रति कहते व सुनते हुए हर्षित, पुलकित, अश्रुपूरित तथा बारम्बार अधीर होते रहते थे।

लक्ष्मीनिधि कहुँ सिय गृह डोली। जाय सुनहिं शुक सारिक बोली॥
व्याकुल रटत सीय सिय नामा। सुनत कुँअर भूलहिं तन धामा॥

श्रीलक्ष्मीनिधिजी कभी टहलते हुए "श्री सीता सदन" जाकर तोता व सारिका आदि पक्षियों की बोली सुनते जो व्याकुल होकर श्री सीता–सीता नाम रटते रहते थे उसे सुनकर कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी अपने देह व गेह की स्मृति भूल जाते थे।

विरह उदीपन होत कुमारैं। भयौ जगत जड़ चेतन सारैं॥
नाम रूप लीला रस धामा। सत चित आनन्द गुनि जस रामा॥

इस प्रकार जड़ चेतनात्मक सम्पूर्ण संसार ही कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के लिये प्रभु–विरह का उद्दीपन करने वाला हो गया था। वे श्रीरामजी महाराज के समान ही संसार को सच्चिदानन्दमय समझकर उनके नाम, रूप, लीला व धाम में रसे रहते थे।

सुमिरत सुनत कहत युवराजा। पगैं प्रेम रस विरह विभ्राजा॥
मानहुँ बसैं विरह घर माहीं। नयन नीर मुख फफकत जाहीं॥

श्री सीताराम जी का स्मरण व उनके चरित्रों का श्रवण व वर्णन करते हुए प्रभु विरह में समाये युवराज कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी प्रेम रस में पगे रहते थे। उनकी आँखों से सतत अश्रु बहते रहते तथा वे मुख से फफकते हुए इस प्रकार विलाप करते रहते थे मानों विरह के भवन में निवास कर रहे हों।

सुनु हनुमान धन्य नर सोई। सीय राम रति जा तन होई॥
राम प्रीति लहि स्वपचहुँ प्रानी। धन्य भाग बड़ बनै महानी॥

श्री सुमित्रा नन्दन लक्ष्मण कुमार कहते हैं कि–हे हनुमान जी! सुनिये, वही मनुष्य धन्य है जिसके शरीर में श्री सीताराम जी के प्रति, प्रीति होती है। प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेम को प्राप्त कर चाण्डाल प्राणी भी धन्य, बड़–भागी तथा महान बन जाता है।

दो०–मानहिं प्राण प्रियार तेहिं, प्रमुदित प्रभु भगवान।
बिना भक्ति रघुराज के, ब्रह्महुँ नीच अयान॥११२॥

ऐसे सौभाग्यशाली जीव को भगवान श्री राम जी महाराज प्राणों से प्रिय मानते हैं परन्तु श्री राम जी महाराज की भक्ति से रहित होकर श्री ब्रह्मा जी भी निकृष्ट व अज्ञानी ही हैं।

एक दिवस लक्ष्मीनिधि नारी। कोहवर भवन लखन पगु धारी॥
मज्जन अशन शयन के कक्षा। केलि कुंज गवनी रस दक्षा॥

एक दिन लक्ष्मीनिधि–वल्लभा श्री सिद्धिकुँअरि जी कोहवर भवन का दर्शन करने गयीं वहाँ स्नान, भोजन व शयन कक्ष के उपरान्त रस मर्मज्ञा श्री सिद्धिकुँअरि जी केलि कुंज गयीं।

देखि सदन सब आसन सूने। बनी बना जहँ बैठत पूने॥
प्रेम पगी जल आँखिन ढारी। विरह धरेव जनु रूप कुमारी॥

वे कोहवर भवन के सभी आसनों को जहाँ पर बनरी व बनरा श्री सीताराम जी विराजते थे, रिक्त देखकर प्रेम में पगी आँखों से ऐसे अश्रु बहाने लगीं मानों स्वयं विरह ने ही उनका रूप धारण कर लिया हो।

इक इक चरित चन्द्र हिय आये । कोहवर किये जो राम सुहाये ॥
दरश परश चितवन चित आती । मधु मुसकनि कल कहर मचाती ॥

उनके हृदयाकाश में वे सभी चरित्र रूपी चन्द्रमा एक–एक कर उदित होने लगे जिन्हें सुशोभन श्री राम जी महाराज ने कोहवर कक्ष में किये थे। उस समय प्रभु श्री राम जी महाराज का दर्शन, स्पर्श व चितवनि की स्मृति उनके चित्त में आने लगी तथा उनकी सुन्दर व मधुर मुसुकनि उनके हृदय में कहर मचाए दे रही थी।

भई विभोर विरह वश तहँवा । भूली ज्ञान कवन हम कहँवा ॥
समाचार सुनि अम्ब सुनयना । आई द्रुतहिं लखी दुख अयना ॥

तब वहाँ प्रभु विरह के वशीभूत होकर वे विभोर हो गयी, उन्हे हम कौन व कहाँ हैं यह ज्ञान भी भूल गया उस समय उनका समाचार सुनकर अम्बा श्री सुनैना जी शीघ्र ही वहाँ आ गयीं और अपनी पुत्रवधू की दुखमयी अवस्था का उन्होंने दर्शन किया।

दो०–अंक शीष लै मातु द्रुत, परशि मनोहर गात ।
करि उपचार सचेत किय, समुझाई सुखदात ॥११३॥

श्री अम्बा जी ने शीघ्र ही उनका सिर अपनी गोद में ले उनके सुन्दर शरीर का स्पर्श व उपचार करके उन्हें चैतन्य किया और सुखदायी वचनों से समझाया।

कुँअरि धीर धरि आसन केरी । कीन्ह प्रदक्षिण कैयक बेरी ॥
चरण चौकि पुनि निज कर परसी । धूरि धरी शिर नयनन सरसी ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी ने धैर्य धारण कर उस आसन की जिसमें कोहबर–कक्ष में दूल्हा–दुलहिन श्री सीताराम जी विराजते थे, कई बार परिक्रमा की पुनः चरण चौकी का अपने हाथ से स्पर्श कर उसकी रज को प्रसन्नता पूर्वक अपने शिर व आँखों में लगा लिया।

बहुरि कक्ष कहु राघव पनही । देखी धरी हरषि अति मनहीं ॥
हृदय लाय पुनि शीष चढ़ाई । नयन पात्र जल भरि अन्हवाई ॥

पुनः उसी कक्ष में एक ओर श्री राम जी महाराज की चरण पाँवरियों को रखी हुई उन्होंने देखा तो मन में अत्यधिक हर्षित हुई। उन पाँवरियों को हृदय से लगाकर पुनः शिर में धारण कर श्री सिद्धिकुँअरि जी ने अपने नेत्रों के जल (प्रेमाश्रुओं) से उनका अभिषेक कर दिया।

भई सुखी श्रीधर बड़ि बेटी । जूती लहि जनु निधिहिं समेटी ॥
वन्दि सासु पग सखिन समेता । गई मुदित मन निजहिं निकेता ॥

उस समय विड़ावल नरेश श्री श्रीधर जी महाराज की बड़ी पुत्री श्री सिद्धि कुँअरिजी इस प्रकार सुखी हुई जैसे श्रीरामजी महाराज की जूतियाँ पाकर वे कोई महान सम्पति अर्जित कर ली हों।

तत्पश्चात् वे अपनी सासू श्री सुनैना जी के चरणों की वन्दना कर सखियों सहित मुदित–मना अपने भवन चली गयीं।

करि प्रणाम कुँअरहिं सुख पागी। बोली वचन अधिक अनुरागी॥
नाथ आज रघुवर वर जूती। कोहवर भवन मिली अति पूती॥

वहाँ वे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को सुख में पगी हुई प्रणाम कर अत्यन्त अनुराग पूर्वक वाणी से बोलीं– हे नाथ! आज कोहवर भवन में दूल्हा श्री राम जी महाराज की अत्यन्त पवित्र जूतियाँ प्राप्त हुई हैं।

दो०–दरश कियो मैं नयन भरि, छाती गयी जुड़ाय।
शान्ति प्रदायक वर शरण, लीन्ही शीश चढ़ाय॥११४॥

मैंने उनका भर नेत्र दर्शन किया जिससे मेरा हृदय शीतल हो गया पुनः मैंने उन शान्ति प्रदायिनी प्रभु पद पाँवरियों की सुन्दर शरण ग्रहण कर उन्हें अपने शीश में धारण कर लिया।

सुनत कुँअर अतिशय हरषाने। कहाँ कहाँ कहि लाहु बखाने॥
सिद्धि तुरत पद त्राणहिं लाई। रत्न सुवर्ण खँची मन भाई॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी की बातें सुनते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त हर्षित हुए तथा बोले– वे कहाँ हैं? कहाँ हैं? लाइये। तब श्री सिद्धि कुँअरि जी स्वर्ण व रत्नों से जड़ी हुई श्री राम जी महाराज की मन–भावनी चरण पाँवरियों को शीघ्र ले आयीं।

कुँअर लाय हिय शीशहिं धारे। नयन वारि बहु बार पखारे॥
भयो महा सुख आनन्द एता। राम दरश करि मिलतो जेता॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें हृदय से लगा शिर में धारण कर लिया तथा नेत्रों के जल से उनका कई बार अभिषेक किया। उस समय उन्हें इतना अधिक सुख व आनन्द प्राप्त हुआ जितना कि श्रीरामजी महाराज के दर्शनों से प्राप्त होता था।

कहे कुँअर सुनु प्राण पियारी। प्रभु जूती मोहिं रक्षन वारी॥
सीय राम पद सेवा देई। नित्य पाय रहिहौ सुख सेई॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे प्राण प्यारी! सुनिये, प्रभु श्री राम जी महाराज की पद पाँवरियाँ मेरी रक्षिका हैं जो मुझे श्री सीताराम जी की चरण सेवा प्रदान करेंगी। इन्हे पाकर मैं नित्य सुख पूर्वक इनकी सेवा करता रहूँगा।

हृदय सरोवर प्रेमहिं भरि कै। सदा बढ़ावहिं जूती झरि कै॥
उछरि उछरि छन छन नव लहरी। सदा प्रेम सर मम उर घहरी॥

ये श्री राम जी महाराज की जूतियाँ मेरे हृदय के सरोवर को प्रभु प्रेम से आपूरित कर देंगी तथा प्रभु प्रेम निर्झरण कर उसे वृद्धिंगत करती रहेंगी। तब मेरे हृदय का प्रेम सरोवर सदैव गम्भीर नाद करता हुआ प्रत्येक क्षण नवीन लहरों को उछाल–उछाल कर लहराता रहेगा।

दो०– राम प्यार सुख सिन्धु मोहिं, देई जूती बोर ।
कृपा पूर्ण सिय राम की, लहिहौं ललित अथोर ॥११५॥

मुझे ये चरण पाँवरियाँ श्री राम जी महाराज के प्रेम व सुख के सागर में डुबा देंगी और मैं श्री सीताराम जी की अतिशय, सुन्दर और पूर्ण कृपा को प्राप्त कर लूँगा।

अक्षर धामाव्यक्त कहावा । सीय राम साकेत सुहावा ॥
प्रभु पद त्राण तहाँ पहुँचाई । आनन्द सिन्धुहिं मोहि डुबाई ॥

प्रभु श्री सीताराम जी का जो नित्य धाम सुन्दर साकेत है तथा जिसे अक्षर व अव्यक्त धाम कह कर बखान किया गया है, प्रभु श्री राम जी महाराज की चरण रक्षिका पनहियाँ मुझे वहाँ पहुँचाकर आनन्द के सागर में डुबा देंगी।

ज्ञान विराग योग की देनी । धर्म कर्म मन पूत करेनी ॥
पाँवरि कृपा मोह दुख दोषा । नसिहैं हृदय मिली संतोषा ॥

ये श्री चरण पाँवरियाँ ज्ञान, वैराग्य व योग प्रदान करने वाली तथा धर्मानुसार कर्म में लगाकर मन को पवित्र करने वाली हैं। इन प्रभु पद पाँवरियों की कृपा से हृदय से मोह, दुख व दोष आदि विकार नष्ट हो जायेंगे तथा संतोष प्राप्त होगा।

सब छर भार पाँवरिहिं डारी । योग क्षेम बिन यतन बिचारी ॥
बनि असोच सिय राम सुसेवा । करिहौं मुदित प्रेम जल देवा ॥

मैं अपने योग व क्षेम के लिये किन्हीं अन्य साधनों का विचार न करते हुए सम्पूर्ण भार श्री प्रभु–पद पाँवरियों पर डाल कर निश्चिन्त हो प्रेमाश्रु बहाते हुए आनन्दपूर्वक श्री सीताराम जी की सुन्दर सेवा करता रहूँगा।

कहत कहत भरि भावहिं माहीं । भये विभोर देह सुधि नाहीं ॥
जूती कुँअर हृदय छपकाये । सीय राम कहि कहि तड़पाये ॥

ऐसा कहते–कहते कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भाव में भरकर विभोर हो गये, उन्हें शरीर की स्मृति न रही। इस प्रकार श्रीरामजी महाराज की जूतियों को हृदय में लिपटाये हुए वे श्री सीताराम श्री सीताराम कह–कहकर तड़पने लगे।

दो०– कछुक काल हिय धीर धरि, कुँअर प्रिया निज लीन ।
नित्य नेम गृह जाय के, पाँवरि धरे प्रवीन ॥११६॥

कुछ समयोपरान्त हृदय में धैर्य धारण कर परम प्रवीण कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी को साथ ले अपने नित्य नियम गृह में जाकर श्री राम जी महाराज की चरण पाँवरियों को पधरा दिये।

रत्न सिंहासन महँ पधरायो । जूतिहिं हरषि हृदय भरि भायो ॥
अतिशय सुभग बनाई झाँकी । पेखत हृदय प्रेम रस छाकी ॥

उन्होंने श्री राम जी महाराज की पनहियों को हर्षित हृदय भाव में भरकर रत्न सिंहासन में पधरा दिया तथा उनकी अत्यन्त ही सुन्दर झाँकी बनायी जिसे देखकर हृदय प्रेम रस से छक जाता था।

पूजि यथा विधि भाव कुमारा। छत्र चमर पत्नी पति धारा ॥
पुष्प अरपि कीन्हे बहु वन्दन। धन्य भाव कपि निमिकुल नन्दन ॥

राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री राम पद पाँवरियों का भावपूर्वक विधि–विधान से पूजन किया और उन दोनों (पति–पत्नी) ने छत्र लगाकर चँवर चलाये। पुनः पुष्प अर्पित कर उन्होंने बहुत प्रकार से उनकी वन्दना की। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! निमिकुल नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी के भाव धन्य हैं।

द्विजन दान नाना विधि दीन्हें। इष्ट थापि अति उत्सव कीन्हे ॥
कुँअरि कही सुनु प्राण पियारे। धन्य दैन्यमय रूप सम्हारे ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उस अवसर पर ब्राह्मणों को कई प्रकार से दान दिया तथा अपनी इष्ट श्री राम जी महाराज की चरण पाँवरियों की स्थापना कर महा महोत्सव किये। तदनन्तर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा– हे प्राण प्यारे, सुनिये, आप धन्य हैं, जो आप परम दीनता युक्त स्वरूप धारण किये हुए हैं।

दैन्य अकिंचन साधन हीना। प्रभु परतन्त्र प्रपत्ति प्रवीना ॥
सहज दास प्रभु प्रेम अनूपा। सत चिद आनँद अरु अणुरूपा ॥
सहज स्वरूप नित्य जिव केरा। नहिं आगंतुक श्रुती निबेरा ॥

अपनी प्राण प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी के वचन श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे प्रिये! दीनता, अकिंचनत्व, साधनहीनता, प्रभु–पारतन्त्र्य, शरणागति–पथ में पूर्ण निष्ठा, सहज दासत्व, अनुपमेय प्रभु प्रेम परत्व तथा सच्चिदानन्दमय व अणु रूप होना तो जीव का नित्य व सहज स्वरूप ही है, यह कोई आगन्तुक बात नहीं है ऐसा श्रुतियों ने वर्णन किया है।

दो०– सहज स्वभाविक सो थितिहिं, रहैं मगन नित नाथ।
बिन प्रयास साधन बिनहिं, ब्रह्म न छोड़े साथ ॥११७॥

ऐसा सुनकर श्री सिद्धिकुँअरि जी ने कहा– हे नाथ! आप तो उस स्थिति में सहज व स्वाभाविक ही बिना किसी प्रयास व साधन के नित्य डूबे रहते हैं तथा पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज कभी भी आपका साथ नहीं छोड़ते।

कुँअर कहा सुनु प्रिया प्रवीना। मैं अरु मोर बिना अति दीना ॥
जस चह प्रभु तस मोहिं बनाई। यामहँ मोर न नेक बड़ाई ॥

श्री सिद्धिकुँअरि जी के वचन सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे परम प्रवीणा प्रिया जू! सुनिये, मुझे अहंकार व ममकार से रहित व अत्यन्त दीनता–युक्त जिस प्रकार प्रभु श्री राम जी महाराज चाहते हैं वैसा ही बना लेते हैं, इसमें मेरी किंचित भी बड़ाई नहीं है।

सब समर्थ विभु व्यापक रामा। जड़हिं बनावै चेतन धामा ॥
सब विधि कीर्तनीय प्रभु सोई। अहं सनो मैं नहि कछु कोई ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज ही सम्पूर्ण सामर्थ्य से युक्त, सर्वेश्वर और व्यापक हैं जो जड़ को भी चैतन्य बना सकते हैं इसलिए वे प्रभु ही सभी प्रकार से प्रशंसनीय हैं, अहंकार में सना हुआ मैं द्धजीव) कुछ भी नहीं हूँ।

प्यारी मोहिं राम पद त्राना । जीवन यात्रा भई विधाना ॥
ताते मोरे हित चित लाई । पाँवरि पूजन बनहु सहाई ॥

हे प्यारी श्री सिद्धि कुँअरि जी! प्रभु श्री राम जी महाराज की ये चरण रक्षिका जूतियाँ तो मेरे जीवन–यात्रा की विधायिनी बनी हुई हैं इसलिए मेरे हित को ध्यान में रखते हुए आप इन पाँवरियों के पूजन में मेरी सहायिका बनिये।

कही कुँअरि पिय धनि धनि भयऊँ । मोकहँ आदर जो प्रभु दयऊ ॥
यहि प्रकार दम्पति अनुरागे। प्रभु पनही नित पूजन लागे ॥

तब श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा हे प्रियतम जू! मैं धन्यातिधन्य हो गयी जो नाथ ने मुझे सम्मान प्रदान किया है। इस प्रकार वे पति–पत्नी अनुराग में भरे हुए प्रभु श्री राम जी महाराज की पनहियों का नित्य पूजन करने लगे।

दो०–धन्य धन्य पितु मातु वर, धनि कुल धरती भूत ।
जहाँ जन्मि प्रभु प्रेम पगि, रह प्रेमी कोउ पूत ॥११८॥

वे माता–पिता धन्यातिधन्य, कुल धन्य तथा पृथ्वी, आकाश, वायु, जल व अग्नि आदि पंच महाभूत धन्य हैं, जहाँ जन्म धारण कर भगवान के प्रेम में पगा हुआ कोई पवित्र प्रेमी निवास करता है।

कुँअर चरित प्रिय परम उदारा । सुनहु अपर अब पवन कुमारा ॥
प्रेम मगन निशि वासर लखहीं । सीय राम दृग झूलत बसहीं ॥

हे लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे पवन पुत्र हनुमान जी! सुनिये, अब मैं कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के महान, प्रिय व उदार अन्य चरित्रों का बखान कर रहा हूँ। वे रात्रि–दिन प्रभु–प्रेम में मग्न रहते थे तथा उनके नेत्रों में श्री सीताराम जी झूलते हुए बसे रहते हैं।

कुँअर बैठि निज भ्रातन तेरे । कहहिं सुनहिं सिय चरित घनेरे ॥
राम स्वभाव शील छवि भारी । हँसनि मिलनि सकुचनि सुखकारी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने भ्राताओं के साथ बैठकर अपनी प्रिय अनुजा श्री सीता जी के विशद चरित्रों को कहते व सुनते रहते थे। श्री राम जी महाराज के स्वभाव, शील, अतीव सौन्दर्य, हँसनि, मिलनि व संकुचित होने की सुखकारी क्रिया–––

भाव कृपा वीरता बड़ाई । रहनि करनि सुखप्रद प्रभुताई ॥
कहहिं सुनहिं भरि भाव उमंगा । प्रभु पद कमल वसत चित भृंगा ॥

–––भाव, कृपा, वीरता, बड़ाई, रहनी, करनी और सुख प्रदायक ऐश्वर्य का भाव व उमंग में भर कथन व श्रवण करते रहते थे तथा उनका चित्त रूपी भ्रमर सदैव श्री राम जी महाराज के चरण

कमलों में निवास करता था।

कहेउ कुँअर प्रभु प्रीति अपारी। अहहि सबहिं पर लख बहु बारी॥
सुनि सब विरह पंक मधि मगना। भूलहिं सुधि बुधि प्रभु हिय गगना॥

एक समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा कि– हम सभी पर प्रभु श्री राम जी महाराज की असीमित प्रीति है ऐसा मैंने कई बार अनुभव किया है। यह सुनकर सभी भ्रातृगण प्रभु विरह के पंक में मग्न हुए श्री राम जी महाराज को हृदयाकाश में धारण कर अपनी सुधि–बुधि भूल गये।

होहिं अधीर कुँअर सह भ्राता। करि करि सुरति विलप अकुलाता॥
चहत नयन भरि रामहिं देखन। हृदय मिलन करि प्रेम विशेषन॥

उस समय अपने भ्राताओं सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी अधीर हो गये तथा प्रभु श्रीरामजी महाराज का स्मरण कर आकुल हो विलाप करने लगे। वे भर–नेत्र अपने भाम श्री राम जी महाराज के दर्शन करना चाहते थे तथा विशेष प्रेम पूर्वक उनका हृदय–हृदय से लगकर उनसे भेंट करना चाहता था।

दो०–कर्ण चहैं अमृत वचन, सुनन राम के मीठ।
रसना अधर प्रसाद चह, जग रस लागत सीठ॥११९॥

भ्रातृगणों सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के श्रवण अपने प्राण प्रिय बहनोई श्री राम जी महाराज के मधुरातिमधुर अमृत स्वरूप वचनों को ही सुनना चाहते थे तथा उनकी जिह्वा श्री राम जी महाराज के अधरों से लगा हुआ शीथ–प्रसाद (जूँठन प्रसाद) पाना चाहती थी, संसार के सभी रस उन्हें स्वादहीन व नीरस लगते थे।

त्रिकरण सेवा सहित उमाहा। नित नित करन हेतु मन चाहा॥
कछुक धीर धरि भ्रात बुझाये। नित्य नियम हित गे अतुराये॥

वे सभी उत्साह प्रपूरित हो नित्य, त्रिकरण (मन, वचन व कर्म से) श्री राम जी महाराज की सेवा करना चाहते थे। पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी किंचित धैर्य धारण कर भ्राताओं को समझा आतुरता पूर्वक नित्य नियम करने के लिए चले गये।

पति मुख कमल विकासन हेता। सिद्धि कुँअरि बहु बाँधति नेता॥
कबहुँ कीर्तन मन मुद नामा। कबहुँ चरित सुखमय अभिरामा॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी अपने प्राण पति कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मुख कमल को विकसित करने के लिए बहुत प्रकार से उपाय करती रहती थी। कभी प्रसन्नमना वे श्री राम जी महाराज के नाम का संकीर्तन करतीं तो कभी श्री राम जी महाराज के सुख स्वरूप सुन्दर चरित्रों को–––

सहित सखिन लै वाद्य विविध विधि। नित्य सुनावति कुँअरहिं श्री सिधि॥
सुनि सुख सनहिं विदेह कुमारा। प्रेमानन्द मगन मति वारा॥

–––सखियों के सहित विभिन्न प्रकार के वाद्य लेकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी को नित्य सुनाती रहती थीं। जिन्हें सुनकर परम बुद्धिमान विदेह कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी सुख में सनकर

प्रेमानन्द में मग्न हो जाते थे।

कबहुँ आपने कर लै वीना। वरणहिं हरि गुण गान प्रवीना॥
गावत प्रेम सिन्धु उमड़ावत। सुनत सिधिहिं सह सखिन डुबावत॥

कभी परम प्रवीण कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने हाथ में वीणा ले, श्री राम जी महाराज के गुण–गणों का गायन कर, प्रभु–प्रेम का सागर उड़ेलते हुए, वर्णन करते जिसे सुनकर श्री सिद्धि कुँअरि जी उसमें स्वयं डूबकर सखियों को भी डुबा लेती हैं।

दो०–प्रेम दशा मन मगन तब, लागत श्यामा श्याम।
युगल रूप इत राजहिं, मोहत बहुत रति काम॥१२०॥

जब प्रेम की इस अवस्था में उनका मन मग्न हो जाता तब उन्हें ऐसा प्रतीत होता कि अनेक रती व कामदेव को मोहित करते हुए श्यामा–श्याम श्री सीताराम जी युगल रूप से यही विराज रहे हैं।

कबहुँ सिद्धि सिय रघुवर चरिता। बिना वाद्य वरणति रस झरिता॥
कबहुँ लिवाय चित्र के शाला। कुँअरहिं जाति सिद्धि शुचि बाला॥

कभी श्री सिद्धि कुँअरि जी बिना वाद्य बजाये ही श्री सीताराम जी के रस परिपूर्ण चरित्रों का वर्णन करती थीं तो कभी परम पवित्रा वे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को चित्र–शाला में ले जाया करती थीं–––

सीय चरित शुचि बाल केलि के। बने चित्र सब सखिन मेलि के॥
एक दिवस श्री सिद्धि कुँआरी। गइ लिवाय पति कहँ चित सारी॥

–––जहाँ सखियों सहित श्री सीता जी की पवित्र बाल लीलाओं के सभी चित्र बने हुए थे। एक दिन श्री सिद्धि कुँअरि जी अपने प्राणपति श्री लक्ष्मीनिधि जी को चित्र–शाला ले गयीं।

देखि कुँअर सो चित्र स्वरूपा। तदाकार बनि रँगे अनूपा॥
कहहिं प्रिया लखु सीता भोरी। खेलि रही कस सखि सँग सोरी॥

चित्र–शाला में उन चित्रों की आकृति को देख कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तदाकार हो अनुपमेय प्रेम में रँग गये तथा बोले– हे प्रिये! देखो, हमारी भोली–भाली (निश्छल हृदया) अनुजा श्री सिया जू किस प्रकार सखियों के साथ क्रीडा कर रही हैं।

क्रीड़नि हँसनि तकनि सुनु प्यारी। बसी सिया की हृदय हमारी॥
लाड़िलि खाब पियब सुधि भूली। खेलि रही बनि आनन्द मूली॥
लावहु जाय उठाय स्वगोदी। कछुक पवावहुँ भरि उर मोदी॥

हे प्यारी जू! सुनिये, श्री सीता जी की क्रीड़ा करने की, हँसने की तथा देखने की कला हमारे हृदय में बसी हुई हैं। हमारी लाड़िली सिया जू भोजन व जल की स्मृति भूल आनन्द की मूल बनी क्रीडा कर रही हैं। आप जाकर अपनी गोद में उठा, उन्हें ले आइये ताकि मैं आनन्दित हृदय उन्हें कुछ पवा दूँ।

दो०— कुँअर रँगे चित जानि के, सिद्धि कुँअरि मति मान ।
कही चलहिं राउर थलहिं, लैहों लली सुहान ॥१२१॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के चित्त को प्रेम रंग में रँगा हुआ जानकर परम बुद्धिमती श्री सिद्धि कुँअरि जू ने कहा हे नाथ! आप अपने शोभाशाली भवन को प्रस्थान कीजिये, मैं अपनी सुशोभना लली जू को लिये हुए आपके समीप आ रही हूँ।

सखिन सहित गृह कुँअरहिं भेजी । आप रुकी तहँ बैठि सुसेजी ॥
लक्ष्मीनिधि निज भवन मझारी । बैठे आसन अति सुखकारी ॥

तदनन्तर सखियों सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को भवन भेजकर आप वहीं ठहरकर सुन्दर आसन में बैठ गयीं। उधर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने भवन में पहुँच अत्यन्त सुखकारी आसन में विराज गये।

कछुक काल महँ चित भ्रम नासा । जानेव सिया अवध कर वासा ॥
तब लौं सिद्धि कुँअरि चलि आई । कीन्ह प्रणाम चरण सिर लाई ॥

कुछ समय बाद उनके चित्त का भ्रम नष्ट हो गया तब उन्होंने समझा कि श्री सीता जी तो श्री अयोध्या पुरी में निवास कर रही हैं, तब तक श्री सिद्धि कुँअरि जी भी वहीं आ गयीं और उन्होंने उनके चरणों में शिर रखकर प्रणाम किया।

कुँअर प्रियहिं अतिशय सतकारे । पानि पकरि आसन बैठारे ॥
कहेव चित्त मम भ्रम युत होई । अबहिं बात इक रह्यो सुजोई ॥

अनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपनी प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी का अत्यन्त सत्कार किया तथा हाथ पकड़कर आसन में बैठा लिया और बोले— हे प्रिये! मेरा चित्त भ्रमित हो गया था उसमें अभी—अभी मुझे एक बात समझ आई है।

मोरे जान सिया उत खेलैं । सखिन सहित निज भुज गल मेलैं ॥
आये यहाँ चेत चित भयऊ । जानि न जाय सुसुधि कहँ गयऊ ॥

मुझे वहाँ ऐसा प्रतीत हो रहा था कि श्री सिया जी सखियों सहित गले में बाहें डालकर क्रीडा कर रही हैं, यहाँ आने पर चित्त में चैतन्यता प्राप्त हुई है। मेरी सुन्दर स्मृति न जाने कहाँ चली गयी है।

दो०— अस कहि सने सनेह जल, अहह लाड़िली लाल ।
कहत उसाँसे भरि कुँअर, दशा कही सब बाल ॥१२२॥

ऐसा कहकर प्रेमाश्रुओं से भीगे हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हाय! लाड़िली सिया जू, हे लाल रघुनन्दन जू, कहते हुए ऊर्ध्व श्वाँस भरकर, अपनी सम्पूर्ण स्थिति का वर्णन श्री सिद्धि कुँअरि जी से किये।

एक दिवस सिधि हृदय बिचारी । प्राणनाथ मम रहहिं सुखारी ॥
सीय चरित अभिनय कर प्यारा । बोरउँ आनन्द सिन्धु अपारा ॥

एक दिन श्री सिद्धि कुँअरि जी ने हृदय में विचार किया कि मेरे प्राणनाथ सुखी रहें इसके लिए मैं श्री सीता जी के चरित्रों का प्रियकारी अभिनय कर उन्हें आनन्द के असीम सागर में डुबा दूँ।

करि विचार सब सखिन बुलाई । लीला सुखद होहिं बतराई ॥
योग सिद्धि सब करतल जाके । श्रीधर कुँअरि प्रीति रस छाके ॥

इस प्रकार का विचार कर उन्होंने सभी सखियों को बुलाकर समझाया कि–श्री सिया जू के सुखदायी चरित्रों का अभिनय होना चाहिए। सभी योग की सिद्धियाँ जिनके करतलगत हैं वे श्रीधर नन्दिनी सिद्धि कुँअरि जी प्रभु–प्रेम रस में छकी हुई हैं।

छन महँ सब सुख साज सजाई । लक्ष्मीनिधि कहँ लीन्ह बुलाई ॥
बैठे कुँअर सिंहासन सोहैं । छत्र चमर शिर ढरत सुमोहैं ॥

एक क्षण में ही उन्होने सभी सुखों की सामग्री सजा कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बुला लिया और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सिंहासन में बैठकर सुशोभित होने लगे। उनके सिर पर सुन्दर मनोमुग्धकारी छत्र व चवँर ढुरे जाने लगे।

अभिनय सुखमय होवन लागेव । नृत्य गान वर वाद्य सुपागेव ॥
सो सब शुचि रसमय रस दानी । सुनहु पवन सुत कहौं बखानी ॥

इस प्रकार सुन्दर नृत्य, गान व वाद्य से आपूरित सुखमय अभिनय होने लगा। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा–हे पवन पुत्र श्री हनुमान जी! सुनिये, मैं उस पवित्र, रसमय व रस प्रदायक अभिनय का बखान कर रहा हूँ।

दो०–प्रारम्भहिं ते जानियहु, अमृत चूवन लाग ।
कर्ता दर्शक रस रसे, मन चित बुधि रस पाग ॥१२३॥

आप जान लीजिये, कि– उस अभिनय में प्रारम्भ से ही अमृत निर्झरित होने लगा तथा उसके अभिनय कर्ता व दर्शक सभी रस में समा गये, उनके मन, चित्त व बुद्धि आदि अन्तःकरण प्रभु प्रेम–रस में डूब गये।

प्रथम दृश्य सिधि सखिन समेता । बैठि सिंहासन सोह निकेता ॥
छत्र चमर सखि ऊपर ढारी । सेवा साज लिये सुखकारी ॥

प्रथम दृश्य में श्री सिद्धि कुँअरि जी सखियों सहित अपने भवन में सिंहासन में विराजी हुई सुशोभित हो रही हैं। सखियाँ शिर पर छत्र धारण करा, चँवर चला रही हैं तथा अन्य सभी सखियाँ सुखकर सेवा सामग्री लिये–––

खड़ी चतुर्दिक प्रमुदित राजैं । सिद्धि सोह जस शशि नभ भ्राजैं ॥
सिय यश गान करहिं सुख पागी । नृत्यत भाव बताय सुरागी ॥

–––आनन्द पूर्वक चारों ओर खड़ी हुई हैं। उस समय श्री सिद्धि कुँअरि जी ऐसी सुशोभित हो रही थीं जैसे आकाश में चन्द्रमा सुशोभित होता है। सखियाँ सुख में पगी हुई, सुन्दर राग से जनक दुलारी श्री सीता जी की कीर्ति का गायन, भावों को प्रदर्शित कर नृत्य करते हुए, कर रही हैं।

तेहिं अवसर सीता सहँ सखियाँ । आई तहाँ सबन की अँखियाँ ॥
देखत सिद्धि उठी तत्काला । हिय लगाय भइ नेह निहाला ॥

उसी समय सभी की नेत्र–स्वरूपा (अतिशय प्रियतरा) श्री सीता जी अपनी सखियों सहित वहाँ आ गयीं, जिन्हें देखते ही श्री सिद्धि कुँअरि जी तत्काल उठकर खड़ी हो गयीं तथा उन्हें हृदय लगाकर प्रेम से निहाल हो गयीं।

बैठि निजासन गोद बिठाई । चूमी मुख दुलराय सुभाई ॥
निज कर कछुक पवाय जुड़ानी । दीन्हेव बहुरि सुशीतल पानी ॥

पुनः अपने आसन में बैठकर श्री सिद्धि कुँअरिजी श्री सिया जू को गोद में बैठा लीं तथा स्वाभाविक ही उनका मुख चुम्बन करते हुये दुलार किया। श्री सिद्धि कुँअरि जी नें श्री सीता जी को अपने हाथों से कुछ भोग पवाकर हृदय में शीतलता का अनुभव किया तथा पीने के लिए शीतल जल प्रदान किया।

दो०–बीड़ा गन्ध सुअर्पि करि, सीतहिं सखि सह धीय ।
माल मुदित पहिराय पुनि, पुलकी सिधि शुचि हीय ॥१२४॥

अनन्तर सखियों सहित श्री सीता जी को ताम्बूल व इत्र अर्पित कर आनन्दित हृदय सुशोभन माला धारण करा, पवित्र हृदया श्री सिद्धि कुँअरि जी पुलकित हो गयीं।

प्राण प्राण प्रिय लाड़िली सीते । कहति सिद्धि सुख पाय सुप्रीते ॥
चहहु कहन कछु मोहिं जनाई । ललित लाड़िली देहु बताई ॥

इस प्रकार सुख प्राप्तकर श्री सिद्धि कुँअरि जी सुन्दर प्रीति पूर्वक बोली– हे! मेरी प्राण स्वरूपा प्राण–प्रियतरा लाड़िली श्री सिया जू! मुझे समझ आ रहा है कि– आप कुछ कहना चाह रही हैं अतएव हे मेरी लावण्यमयी लाड़िली जू! आप मुझसे अपना अभीष्ट निस्संकोच बता दीजिये।

कहति सीय भरि नयनन वारी । भाभी सुनिबी बात हमारी ॥
चन्द्रकला सखि मोरी भलरी । चौपर खेलि हरावति छलरी ॥

अपनी भाभी जी के वचन सुनकर श्री सीता जी आँखों में अश्रु भरकर बोलीं– हे श्री भाभी जी! आप हमारी बात सुनिये, मेरी यह चन्द्रकला सखी, मेरे साथ चौपड़ खेल कर, छल करती हुई मुझे हरा देती है–––

मोहि खिझावति कहि कहि हारी । बहुरि हँसै दै निज करतारी ॥
याते आई रावरि वासा । तव साक्षी हो खेल भला सा ॥

–––तत्पश्चात् मुझे हारी–हारी कहकर खिझाती है और हाथों सें ताली बजा–बजाकर हँसती है। इसलिए मैं आपके भवन आयी हूँ कि– आपकी उपस्थिति में सुन्दर चौसर क्रीड़ा का सम्पादन हो।

जो हारे सो सत सुनु भाभी । भैया गोदी प्यार न लाभी ॥
जीतनवारी निज मन तेरे । होइ प्रसन्न करि कृपा सुहेरे ॥

किन्तु हे भाभी जी! सुनिये, उस क्रीड़ा में जो भी पराजित हो वह निश्चित रूप से श्री भैया जी की गोद का प्यार न प्राप्त करे और जब जीतने वाली अपने मन से स्वयं प्रसन्न होकर अत्यन्त कृपा कर–––

दो०–भ्रात प्यार प्रिय लहन की, देवै सुखद रजाय ।
तब कहुँ बड़ भैया मिलै, नाहित नयन बहाय ॥१२५॥

–––श्री भैया जी के प्यार को प्राप्त करने की सुखदायी आज्ञा प्रदान करे तब कहीं उसे बड़े भैया जी का प्यार प्राप्त हो, अन्यथा वह दुखी होकर अश्रु बहाती रहे।

सुनि बोली शशिकला प्रवीना । मोर जीत नित होत स्वधीना ॥
खेलहिं खेल प्रेम ते प्यारी । मानहुँ कबहुँ न मन महँ हारी ॥

श्री सिया जू का क्रीड़ा प्रस्ताव सुनकर परम दक्षा श्री चन्द्रकला जी बोलीं कि– मेरी विजय तो नित्य मेरे आधीन है इसलिए हे प्यारी जू! आप प्रेम पूर्वक खेल लीजिए, मैं कभी भी मन में हार नहीं मानती।

बाल केलि प्रिय लखिबे हेतू । सिद्धि कही खेलहु मति चेतू ॥
होवन लगी केलि सुखदाई । पाँसा फेकति दोउ हरषाई ॥

तदनन्तर उन दोनो की बाल–लीला देखने के लिए श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा कि आप अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार चौसर–क्रीड़ा करें, इस प्रकार सुख प्रदायिनी चौसर क्रीड़ा होने लगी और उसमें दोनों ही श्री सिया जू व श्री चन्द्रकला जी हर्षित होकर पाँसे फेंकने लगीं।

एक एक की गोटी मारी । क्रीड़न वारी होंय सुखारी ॥
अन्त समय सिय बाजी जीती । हारी चन्द्रकला हिय भीती ॥

चौसर खेलने वाली दोनों राज कुमारियाँ एक दूसरे की गोटी मार–मारकर सुखी हो रही थी इस प्रकार अन्तिम समय में श्री सीता जी बाजी जीत गयी और श्री चन्द्रकला जी हार कर हृदय में अत्यन्त भयभीत हो गयीं।

हँसी किशोरी सखिन समेता । चन्द्रकला चष आँसु न चेता ॥
कुँअरि गोद लै बहु समुझाई । भानु सुता सो समझ न पाई ॥

उस समय जनक किशोरी श्री सिया जू सखियों सहित हँसने लगीं व श्री चन्द्रकला जी की आँखों में आँसू आ गये तथा वे बेचैन हो गयीं। तब श्री सिद्धि कुँअरि जी ने उन्हें गोद में लेकर बहुत प्रकार से समझाया परन्तु चन्द्र–भानु नन्दिनी श्री चन्द्रकला जी दुखी होने के कारण न समझ सकीं।

दो०–गयी भवन दुख दाबि द्रुत, हृदय भरेव अति शोच ।
बड़ भैया को प्यार प्रिय, हार दियो मैं पोच ॥१२६॥

श्री चन्द्रकला जी अपने हृदय में दुख को छुपाये हुए अत्यधिक चिन्तित हुई कि –आज मुझ मूर्खा ने श्री बड़े भैया जी के प्रिय प्यार को चौसर के खेल में हार दिया,ऐसा सोचते हुये वे अपने भवन को चली गयीं।

अहं सनी अति भयी अभागी । स्वामिनि सह मैं खेलन लागी ॥
मन पछितात हृदय दुख भारी । मातु पिता समुझाये सारी ॥

हाय! अपनी स्वामिनी श्री सिया जू के साथ खेलने चली थी, इसलिये अहंकार में डूबी हुई मैं अतिशय अभागिनी हो गयी, इस प्रकार श्री चन्द्रकला जी मन में पछता रही थी, उनके हृदय में महान दुख हो रहा था। श्री चन्द्रकला जी को दुखी देखकर उनके माता–पिता आदि सभी ने बहुत समझाया।–––

भोजन पान त्यागि निज भवना । पड़ी रही शोचत हित अपना ॥
स्वामिनि कृपा मोर हित होई । आन उपाय न कछु जिय जोई ॥

–––परन्तु वह भोजन व जल का त्यागकर अपना हित चिन्तन करती हुई अपने भवन में पड़ी रही कि– श्री स्वामिनी जू (श्री सिया जू) की कृपा से ही मेरा हित होगा मुझे अब और कोई दूसरा उपाय हृदय में नहीं सूझ रहा।

शरण शरण सिय शरण अबोधी । अहौं सदा पुनि तुम्हरिहिं सोधी ॥
अस जिय जानि कृपा दरशाऊ । भ्रात प्रेम मैं माँगे पाऊँ ॥

ऐसा विचार कर वे प्रार्थना करने लगीं कि– हे श्री स्वामिनी सिया जू! मैं आपकी शरण हूँ, शरण हूँ, शरण हूँ, मैं तो अत्यन्त अज्ञानी हूँ फिर भी आपके द्वारा ही पाली गयी हूँ। आप अपने हृदय में ऐसा जानकर मुझ पर, अपनी उसी कृपा दृष्टि का निक्षेप कीजिये, मैं आपसे याचना कर रही हूँ कि– मुझे श्री बड़े भैयाजी का प्रिय प्यार प्राप्त हो।

अस कहि रोवति हिचकति भारी । चन्द्रकला चित भई दुखारी ॥
पायी सुधि इत जनक लाड़िली । अति कृपालु जन दोष हारिली ॥

ऐसी विनय कर श्री चन्द्रकला जी हिचकियाँ लेते हुये अत्यधिक रुदन करने लगीं, उनका चित्त अत्यधिक दुखी हो गया। इधर जनक लाड़िली श्री सिया जू, जो अत्यन्त कृपालु और सेवकों के दोषों का हरण करने वाली हैं, ने जब यह समाचार प्राप्त किया।

दो०–पहुँचि सखिन सह तासु घर, कृपा रूप दरशाय ।
लखतहिं आतुर शशि कला, परी चरण महँ आय ॥१२७॥

तब श्री सिया जू अपना कृपा स्वरूप दरशाते हुए सखियों सहित श्री चन्द्रकलाजी के घर पहुँच गयीं। उन्हें देखते ही श्री चन्द्रकला जी आतुर हो आकर उनके चरणों में गिर पड़ीं।

सियहुँ उठाय उरहि छपकाई । प्रेम वारि दीन्हेव नहवाई ॥
चन्द्रकला आसन पधराई । पूजी सविधि नीर दृग छाई ॥

श्री सीता जी ने भी श्री चन्द्रकला जी को उठाकर हृदय से चिपका लिया तथा प्रेमाश्रुओं से स्नान करा दिया। श्री चन्द्रकला जी ने श्री सीता जी को आसन में बिठाकर उनका अश्रु–पूरित नेत्रों से विधिवत पूजन किया।

हाथ जोरि विनती बहु कीन्ही। छमिय सकल अपराध प्रवीनी ॥
आज मोहि अपनो हिय भावा। भैया पर कस अहै सुहावा ॥

पुनः श्री चन्द्रकला जी हाथ जोड़कर अत्यधिक विनय पूर्वक बोली– हे परम प्रवीणा स्वामिनी श्री सिया जू! आप मेरे सभी अपराधों को क्षमा कर दीजिये। आज मुझे अपने हृदय में श्री भैया जू के प्रति अगाध स्नेह के सुन्दर भाव का ज्ञान हो गया है–––

जानन मिलो स्वामिनी तैसा। बिना भ्रात जग सूनो जैसा ॥
करहु कृपा गुनि आपन चेरी। भैया विरह सूझ नहिं हेरी ॥

–––तथा यह जानने को मिल गया कि– हे श्री स्वामिनी जू! श्री भैयाजी के बिना तो यह संसार सूना जैसा ही है। अतः आप मुझे अपनी दासी समझ मुझ पर कृपा कर श्री भैया जी का प्रेम प्रदान कीजिये क्योंकि श्री भैया जी के विरह में मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा।

जनक लली मृदु वचन सुहाये। बोली परशि सखिहिं सुख छाये ॥
सुनहु सखी सच प्राण समानी। अहहु मोहि प्रिय सत मम वानी ॥

श्री चन्द्रकला जी की विनय सुनकर जनक लली श्री सिया जू ने कोमल व सुन्दर वचनों से उनका स्पर्श करते हुए सुख पूर्वक कहा, हे सखी! सुनों, तुम सत्य ही मुझे प्राणों के समान प्रिय हो, यह मेरी सत्य वाणी है।

दो०–भैया प्रीतिहिं पेख नहिं, अहं छुड़ावन काज।
भयी मधुर लीला ललित, तजहु शोक भय लाज ॥१२८॥

यह मधुर तथा सुन्दर लीला श्री भैया जी के प्रति प्रेम का परीक्षण करने के लिए नहीं बल्कि आपका अहंकार छुड़ाने के लिए हुई है अतः आप दुख, डर और लज्जा को त्याग दीजिये।

यथा अहैं भैया मम प्यारे। मोहि प्यार नित रहैं सुखारे ॥
तथा गिनहु सखि आपन भैया। जीती बाजी रहौ सदैया ॥

जिस प्रकार वे मेरे प्रिय भैया है तथा नित्य मेरा प्यार–दुलार कर सुखी रहते हैं, हे सखी! उसी प्रकार आपभी उन्हें अपना भैया समझिये और सदैव ही बाजी जीतती रहो।

चन्द्रकला सुनि सिय पद लागी। स्वामिनि कृपा लही बड़ भागी ॥
अति विनीत मृदु सरस सुहानी। बोली भाव भरी शुभ वानी ॥

श्री सिया जू के स्नेहिल वचन सुनकर श्री चन्द्रकला जी, उनके चरणों में गिर पड़ी तथा अपनी स्वामिनी श्री सिया जू की कृपा को प्राप्त कर परम सौभाग्य को प्राप्त हो गयीं। पुनः वे अत्यन्त विनय पूर्वक कोमल, रस–युक्त, सुन्दर व भावों से भरी हुई शुभ वाणी बोलीं–

छन छन तव पद कमल सनेहा। बढ़ै अकाम भूलि तन गेहा ॥
तव सुख नित निज सुख कर जानी। इच्छा राउरि आपन मानी ॥

हे स्वामिनी जू! आपके चरण कमलों में मेरा प्रति क्षण निष्काम प्रेम शरीर व धाम की स्मृति को

भूल वृद्धि को प्राप्त होता रहे, आपके सुख को ही मैं नित्य अपना सुख तथा आपकी इच्छा को ही अपनी इच्छा समझूँ।

करत सेव नित रहौं सुखारी। सरस सुखद तव वदन निहारी ॥
सुनत सिया निज हिय तेहिं मेली । चली लिवाय संग हित केली ॥
लहिहहिं भ्रात प्यार बड़ि आसा। चन्द्रकला मन भरी हुलासा ॥

मैं नित्य प्रति सुखपूर्वक आपका रस परिपूर्ण व सुख प्रदायक मुखचन्द्र निहारती हुई, आपकी सेवा करती रहूँ। श्री चन्द्रकला जी की विनय पूर्ण वाणी सुनते ही श्री सीता जी ने उन्हे अपने हृदय से लगा लिया और क्रीड़ा के लिए साथ में लिवा कर ले चलीं। अब मुझे श्री भैया जी का प्याार–दुलार अवश्य ही प्राप्त होगा श्री चन्द्रकला जी इसी उत्साह स भर गयी।

दो०–उत लक्ष्मीनिधि भाव भरि, भयो यथा हनुमान ।
सुनिये प्रेमिन प्रिय सुखद, हर्षित करौं बखान ॥१२९॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! उधर उपरोक्त अभिनय को देखकर भाव में मग्न हो जाने से श्री लक्ष्मीनिधि जी की जैसी स्थिति हो गयी, प्रेमियों को प्रियकर व सुख प्रदायक उनकी अवस्था का मैं हर्ष पूर्वक बखान कर रहा हूँ, आप श्रवण करें।

लखतहिं लीला ललित सो पागा। मानेव साँच बढ़ेव अनुरागा ॥
जबहिं शशिकला भवन पधारी। हृदय दुखित जल नयनन ढारी ॥

उस सुन्दर अभिनय को देखते ही वे उसमें डूब गये तथा उसे सत्य समझने लगे, उनके हृदय में उनका अनुराग की बाढ़ आ गयी। जब श्री चन्द्रकला जी हृदय में दुखी हुई आँखों से आँसू बहाती हुई अपने भवन गयीं।

चाहे कुँअर देहिं समुझाई। उतरि सुआसन चले तुराई ॥
तौ लौं पटाक्षेप द्रुत भयऊ। गई भवन अस चित्तहिं ठयऊ ॥

तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उन्हें समझाना चाहे और शीघ्रता पूर्वक सुन्दर आसन से उतर कर चल दिये तभी शीघ्र पटाक्षेप हो गया और उनके चित्त में ऐसा प्रतीत हुआ कि श्री चन्द्रकला जी भवन चली गयीं।

चित्त चढ़ेव भै दुखी कुमारी। अधिक काल भो करत बिचारी ॥
तौ लौं लीला भयी समापत । जानेउ नहीं कुँअर चित झाँपत ॥

उनके चित्त में यह बात दृढ़ता पूर्वक बैठ गयी कि राजकुमारी श्री चन्द्रकला जी दुखी हो गयी हैं। इस प्रकार का विचार करते–करते अधिक समय व्यतीत हो गया और तब तक अभिनय लीला भी समाप्त हो गयी परन्तु कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, विचारों से चित्त आवृत्त होने के कारण वे समझ नहीं पाये।

सिद्धिहिं बोलि कही पुनि वानी । लावहु बोलि सिया सुख खानी ॥
साथहिं चन्द्रकला इत आवैं । हार जीत को भेद मिटावैं ॥

कही सिद्धि सिय भानु सुता के । गयी भवन निज सखि ममता के ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सिद्धि कुँअरि जी को बुलाकर उनसे कहा कि– सुख की खानि हमारी अनुजा श्री सीता जू को बुला लाइये तथा उनके साथ यहाँ, श्री चन्द्रकला जी भी आवें, मैं उनके हृदय से हार व जीत का अन्तर मिटा दूँ। तब श्री सिद्धि कुँअरि जी ने कहा कि– हे स्वामिन्! श्री सिया जू तो अपनी सखी के प्रति ममत्व होने के कारण चन्द्र–भानु नन्दिनी श्री चन्द्रकलाजी के भवन गयी हुई हैं।

दो०– तौ लौ आयी लाड़िली, सिय शशिकला सुवेष ।
कुँअरहिं कीन्ह प्रणाम दोउ, कीन्हे भाव अशेष ॥१३०॥

तब तक वेषधारी सुन्दर लाड़िली श्री सिया जू व श्री चन्द्रकला जी आ गयीं तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अत्यधिक भाव मे भर कर दोनों ने प्रणाम किया।

कुँअरहु ललकि लाय मन मोदी । लीन्हे दुहुन बिठाय स्वगोदी ॥
परमानन्दहिं पगेउ कुमारा । कीन्हेव दुहुँ कहँ बहु विधि प्यारा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने भी दोनों को अनुजाओं को मुदित मन से लालायित होकर अपनी गोद में बिठा लिया तथा परमानन्द में पग कर दोनों को विविध प्रकार से प्यार किया।

कहेव बहुरि समुझावत बाता । चन्द्रकलहिं बहु प्यार दिखाता ॥
मानहुँ सियहिं तथा तुम काहीं । मोर प्राण प्रिय अनुजा आहीं ॥

पुनः वे श्री चन्द्रकला जी को अत्यधिक प्यार–दुलार कर समझाते हुए बोले, मैं जिस प्रकार अपनी अनुजा श्री सीताजी को मानता हूँ उसी प्रकार आपको भी मानता हूँ, आप दोनों ही मेरी प्राण प्रिय बहनें हो।

खेल माँहि मोकहँ जनि हारो । दूनहु मोहि कहँ रहहु सम्हारो ॥
सियहिं खिझावहु जनि अब कबहुँ । बड़ी जानि सेयो पद नवहूँ ॥

आप क्रीड़ा में बाजी लगाकर मुझे कभी भी मत हारिये बल्कि आप दोनों ही मेरी सम्हाल करती रहिये। अब आप श्री सीता जी को कभी भी मत खिझायियेगा तथा अपनी बड़ी बहन समझकर चरणों में प्रणाम करती हुई सेवा करती रहियेगा।

लली काहिं तुम प्राण पियारी । तेहिं सुख हेतु तुमहुँ सब वारी ॥
मोहि विदित तुम्हरो नित नेहू । प्रगट हेतु भइ लीला एहू ॥

लली श्री सिया जू को आप प्राणों के समान प्रिय हैं तथा आप भी श्री सिया जू के सुख के लिए अपना सर्वस्व उन पर निछावर किये हैं। मुझे श्री सीता जी के प्रति आपका नित्य व नवीन प्रेम ज्ञात है और उसे प्रगट करने के लिए ही यह लीला हुई है।

दो०– बसन विभूषण दै विविध, प्यार पुलकि पुनि कीन्ह ।
निज निज भवनहिं जाहु अब, सुख सह आयसु दीन्ह ॥१३१॥

पुनः राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें विभिन्न प्रकार के वस्त्र व आभूषण दे पुलकित होकर प्यार किया तथा सुखपूर्वक आज्ञा दी कि अब दोनों अपने–अपने भवन को जाइये।

दूनहु अनुजा गयीं सिधारी । कुँअरहुँ शयन कक्ष पगु धारी ॥
शयन कीन्ह अतिशय सुखसाने । मिथिला अहैं सिया सत जाने ॥

इस प्रकार दोनों बहनें श्री सिया जू व श्री चन्द्रकला जू जब चली गयीं तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी शयन कक्ष गये और अत्यन्त सुख में सने हुए शयन किये। उन्होंने यही सत्य समझा कि श्री सिया जू श्री मिथिलापुरी में ही हैं।

पाँय पलोटि सिद्धि सरसाई । वरणत सिय बतकही सुहाई ॥
सोवत स्वामि जानि निज आसन । पौढ़ी सुमिरि राम प्रति श्वासन ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी सुखपूर्वक श्री सीता जी की सुन्दर बातें करती हुई अपने प्राण वल्लभ श्री लक्ष्मीनिधि जी के चरण दबाने लगीं तथा अपने स्वामी को सोया हुआ जानकर वे अपने आसन में प्रत्येक श्वांस के साथ श्री राम जी महाराज का स्मरण करती हुई लेट गयीं।

भोर जागि निज नित्य निबाही । दरश हेतु गवने पितु पाँही ॥
पितु पद बन्दि सुआशिष पाये। बैठे कुँअर हृदय हरषाये ॥

प्रातःकाल जागकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने नित्य नियमों का निर्वाह करने के उपरान्त श्रीमान पिताजी के समीप दर्शन के लिए गये। उन्होने श्रीमान् पिताजी के चरणों की वन्दना की और सुन्दर आशीर्वाद प्राप्त कर हर्षित हृदय बैठ गये।

जनक अवध की बात चलाई। समाचार सब कहेव सुनाई ॥
दीन्ह पत्रिका कहि सिय केरी । पठये अवध नाथ हिय हेरी ॥
कुँअर पत्र पढ़ि हृदय लगाये । बढ़ेव विरह दृग वारि बहाये ॥

तदनन्तर श्री जनक जी महाराज ने श्री अयोध्यापुरी की बात चलायी और वहाँ का सम्पूर्ण समाचार कह सुनाया। पुनः यह श्री सीताजी की पत्रिका है, जो अयोध्याधिपति श्री दशरथ जी महाराज ने भिजवायी है, कहकर उन्होने पत्रिका कुमार के हाथ में दे दी। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने पत्र पढ़कर हृदय से लगा लिया तथा उनका हृदय विरह दुख से व्यथित हो गया व उनके प्रेमाश्रु बहने लगे।

दो०–अब लौं सुधि भूले रहे, जब सों अभिनय देख ।
पाइ पत्रिका चेत भो, सिया अवध रह लेख ॥१३२॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने जब से सुन्दर अभिनय लीला का दर्शन किया था तबसे वे अपनी स्मृति भूले हुए थे, अब पत्रिका प्राप्त कर चैतन्य हुए और श्री सिया जू अयोध्यापुरी में हैं ऐसा उन्होंने जाना।

पितु आयसु निज सदन सिधारे । सोचत हृदय काल का भारे ॥
प्रियहिं बुलाय कुँअर द्रुत पूँछे । बिना सिया सब आनन्द छूँछे ॥

श्री मान् पिता जी की आज्ञा प्राप्त कर वे हृदय में यह विचार करते हुए कि– कल क्या हुआ था? अपने भवन पधार गये और शीघ्र ही अपनी प्रिया श्री सिद्धि कुँअरि जी को बुलाकर उन्होने कहा– कि श्री सिया जी के बिना तो हमारे सभी आनन्द फीके ही हैं।

कल ते मोंहि बहुत सुख आवा । मम मन मिथिलहिं सिय रह छावा ॥
दाऊ कहे अवध बस सीया । भेजी प्रेम पत्र निज हीया ॥

परन्तु कल से मुझे अत्यधिक सुख हो रहा है तथा मेरे मन में ऐसी प्रतीति हो रही है कि श्री सिया जी श्री मिथिलापुरी में ही हैं। जब श्रीमान् दाऊ जी ने कहा कि श्री सीता जी श्री अयोध्यापुरी में निवास कर रही हैं तथा अपने हृदय के भावों को प्रगट कर उन्होंने यह प्रेम–पत्रिका भिजवाई है।

तबते मोहिं ज्ञान सत भयऊ । कहहु दशा प्रिय कल का ठयऊ ॥
बोलि सिद्धि कुँअरि कर जोरी । देखेऊँ नाथ विरह मति भोरी ॥

तबसे मुझे सत्य का ज्ञान हुआ है, हे प्रिया जी! आप कल की स्थिति कहिये, कि कल क्या हुआ था? अपने प्राण वल्लभ के वचनों को श्रवण कर श्री सिद्धि कुँअरि जी हाथ जोड़कर बोलीं– हे नाथ! मैंने आपकी विरह मग्न, बावरी बनी बुद्धि से युक्त स्थिति देख–––

करि विचार तव आनन्द काजा । अभिनय कीन्ही जोरि समाजा ॥
अभिनय रूप सियहिं दृग देखी । बाल चरित पुनि सुखमय पेखी ॥

–––विचार कर आपके आनन्द के लिए अपनी समाज को एकत्र कर अभिनय चरित किया था। अभिनय में बनी हुई श्री सीता जी के स्वरूप को नेत्रों से देख तथा पुनः उनके सुखमय बाल चरित्र का दर्शन कर–––

दो०– नाथ भये आनन्द मगन, मन चित बुधि बिसराय ।
साँचहिं मान्यो सियहिं इत, रहे प्रेम प्रिय छाय ॥१३३॥

–––मेरे प्राणनाथ अपने मन, चित्त व बुद्धि को भूल आनन्द मग्न हो गये थे तथा सत्य समझ लिये कि श्री सीता जी यहीं हैं अतः आप उनके प्रेम में डूबे हुए थे।

प्रेम दशा उपजी तव देहा । लखत सुखद अभिनय अति नेहा ॥
तन्मय बने नाट्य सिय देखी । प्रेमिन को जस भाव विशेषी ॥

अत्यन्त प्रेम पूर्वक उस सुख प्रदायक अभिनय का दर्शन करने से आपके हृदय में प्रेम की अवस्थायें उत्पन्न हो गयी और जिस प्रकार प्रेमियों का विशेष भाव होता है उसी प्रकार अभिनय स्वरूप श्री सीता जी को देखकर आप तन्मय हो गये थे।

सुन सब कारण निमिकुल वारा । पगेउ प्रेम नयनन जल धारा ॥
बाँचन लगे बहुरि प्रिय पाती । सुनहु प्रिया सीता कुशलाती ॥

इस प्रकार सभी कारण सुनकर निमिकुल नन्दन श्री लक्ष्मीनिधिजी प्रेम में पग गये और उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। पुनः वे श्री सिया जू द्वारा भेजी हुई प्रिय पत्रिका पढ़ने लगे

हे प्रिये! श्री सीता जी की कुशलता सुनिये,

मंगलमय नित मंगल देखैं । सुनैं सुमंगल भ्रात अशेषैं ॥
मंगल परशि सुमंगल धेवैं । मन चित बुधि सब मंगल लेवैं ॥

हमारे श्री भईया जी! पूर्ण रूप से मंगल स्वरूप बने हुए मंगलमय दर्शन, मंगलमय श्रवण व मंगलमय स्पर्श प्राप्त करें तथा मंगलमय ही ध्यान करे, उनके मन, चित्त, बुद्धि आदि सभी अन्तःकरण मंगलमय वस्तुओं को ही ग्रहण करें।

मंगल मंगल मंगल होई । मंगल बसैं सुमंगल जोई ॥
श्री युत मोरे प्रिय बड़ भैया । लेऊँ तव पद कमल बलैया ॥

उनका त्रिकरण (मन वचन व कर्म सेद्ध मंगल हो, वे मंगल में ही निवास करें तथा सुन्दर मंगलमय दर्शन ही करें। श्री युत मेरे प्रिय बड़े भैया जी! मैं आपके चरण कमलों की सभी बलायें ले लूँ।

दो०—कुशल रूप सुख रूप नित, सत चित आनन्द धाम ।
अत्र निवासिन ज्ञान नहिं, दुख का कर है नाम ॥१३४॥

श्री अयोध्या पुरी कुशलता का स्वरूप, सुखमय व सच्चिदानन्दमय नित्य धाम है। यहाँ के निवासियों को तो ज्ञान भी नहीं है कि दुख किसका नाम है अर्थात् सभी परमानन्द में निमग्न रहते हैं।

आनन्द आनन्द आनन्द देनी । तत्वन बीच रहौं सुख ऐनी ॥
तदपि मोर मन नित तुम पाहीं । वसै भ्रात मानहु सत याही ॥

पुनः मैं तो त्रिकरण आनन्द प्रदायक तत्वों के बीच सुख की भवन सी निवास कर रही हूँ फिर भी हे श्री भइया जी! इस बात को आप सत्य मानियेगा कि– मेरा मन नित्य ही आपके पास रहता है।

जहाँ चित्त तहँ वसै सुआत्मा । अनुभव सिद्धहुँ भनैं महात्मा ॥
ताते तव मम जानहु भैया । छन वियोग नहिं परत जनैया ॥

क्योंकि जहाँ चित्त होता है वहीं सुन्दर आत्मा निवास करती है यह बात अनुभव सिद्ध है तथा ऐसा ही महात्माजन बखान करते हैं इसलिए हे श्री भैया जी! आप जान लीजिये कि आपका और मेरा एक क्षण का भी वियोग मुझे नहीं प्रतीत होता।

काह कहौं अँखियाँ नहिं मानै । दरश प्यास तव तलफत जानैं ॥
अश्रु बहाय रहैं नित गीली । आयसु मोर कीन्ह सब ढीली ॥

परन्तु मैं क्या कहूँ? मेरी आँखें यह तथ्य स्वीकार नही करतीं, ये तो आपके दर्शनों की प्यास में सिर्फ तड़पना ही जानती हैं। ये सदैव अश्रु बहाती हुई भीगी रहती हैं तथा इन्होने मेरी सभी आज्ञाओं को शिथिल कर दिया है।

कर्ण चहैं मधुरी तव वानी । सुनन हेतु रहते अकुलानी ॥
घ्राण चहैं नित गंधहिं लेना । इतर पुष्प तुम्हरो कर देना ॥

मेरे श्रवण आपकी मधुर वाणी सुनना चाहते हैं तथा उसे सुनने के लिए सदैव अकुलाये रहते हैं। मेरी नासिका नित्य ही आपके द्वारा दिये गये इत्र व पुष्पों की सुगन्ध ही ग्रहण करना चाहती है।

दो०–रसना चाहति नित नितहिं, तव कर अमृत कौर।
पाइ सुचाषहिं सरस अति, तृप्ति लहौं नहिं और ॥१३५॥

मेरी जिह्वा आपके कर कमलों से दिया हुआ अमृत स्वरूप अत्यन्त रसमय व सुन्दर कवल नित्य प्रति प्राप्त कर आरोगना चाहती है तथा अन्यत्र कहीं भी तृप्ति को नहीं प्राप्त करती।

त्वक चाहत नित तव स्पर्शा। वाछलभावित दिव्य सुघरसा ॥
अकथ अलौकिक भगिनि सनेहा। करन हेतु भैया धरि देहा ॥

मेरी त्वचा नित्य वात्सल्य भाव में भावित, सुन्दर सुखों का सदन आपका दिव्य स्पर्श चाहती है। हे मेरे श्री भैया जी, अपनी इस बहन को अवर्णनीय तथा अलौकिक स्नेह करने के लिए ही आपने शरीर धारण किया है।

परम उदार मोर मन देखी। लालन पालन कियो विशेषी ॥
छन छन जोगयो आँखिनताई। प्राण प्राण मोहिं मान्यो भाई ॥

हे मेरे परम उदार श्री भैया जी! आपने मेरे मन की रुचि जानकर ही मेरा विशेष रूप से लालन–पालन किया है तथा हे श्री भैया जी! सदैव नेत्रों के समान मेरी सम्हाल करते हुए आपने मुझे अपने प्राणों की भी प्राण माना है।

सो अनुराग कबहुँ नहिं भूली। भगिनि तुम्हार त्रिसत अनुकूली ॥
सोइ उदारपन चाहति सीया। चाहिय बन्धु तुमहिं करणीया ॥

आपका वह अनुराग मुझे कभी नहीं भूल सकता, आपकी बहन त्रिवाचा सत्य रूप से आपके अनुकूल ही रहेगी। हे श्रीभैयाजी! यह 'सीता' आपकी उसी उदारता की कामना कर रही है, आपको अवश्य यही करना चाहिए।

आय अत्र दै दरशन भैया। होवहु आँखिन प्यास बुझैया ॥
मोहि लिवाय जनकपुर जाई। मातु पिता भाभी दिखराई ॥

हे श्री भैयाजी! आप यहाँ आकर अपना दर्शन दे मेरे नेत्रों की प्यास बुझाने वाले बन जाइये तथा मुझे श्री जनकपुरी लिवा ले जाकर श्री अम्बा जी, श्रीमान् दाऊ जी व श्री भाभी जी के दर्शन करा दीजिये।

दो०–देवहु हिय आनन्द अति, विनय करहुँ कर जोर।
मिथिला तृण हूँ लखन हित, जियरा ललचत मोर ॥१३६॥

इस प्रकार आप मेरे हृदय को अत्यानन्द प्रदान कीजिये, मैं हाथ जोड़कर विनती कर रही हूँ क्योंकि श्री मिथिलापुरी के तृण (चारे) पर्यन्त सभी जीवों को देखने के लिए मेरा हृदय लालायित है।

भाभी ते कहि मोर प्रणामा । सुरति करायहु नित अठ यामा ॥
चाहौं लिपटि एक हिय होऊँ । अहं चित्त बुद्धी सब खोऊँ ॥

श्री भाभी जी से मेरा प्रणाम निवेदन कर, नित्य आठों याम मेरा स्मरण कराइयेगा। मैं चाहती हूँ कि अपने अहंकार, चित्त, मन व बुद्धि सभी अन्तःकरणों को विलीन कर उनसे लिपट एक हृदय वाली हो जाऊँ।

बैठि अंक कब प्यार लहौंगी । भाभी कहि कहि गले लगौंगी ॥
प्रिया सदन तव दासी दासन । लली सबहिं किय नेह प्रकाशन ॥

मैं उनकी गोद में बैठकर कब उनका प्यार प्राप्त करुँगी? तथा हे भाभी जी, श्री भाभी जी कह–कह कर उनके गले लगूँगी। हे प्रिया, श्री सिद्धिकुँअरि जी! आपके भवन की दासियों व दासों सभी पर लली श्री सिया जू ने प्रेम प्रकाशित किया है।

यहि प्रकार बाँचत प्रिय पाती । श्रवत नयन जल कसकत छाती ॥
सिद्धि सुनत प्रेमाकुल होई । विरह सनी सिसकति दुख मोई ॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सिया जू द्वारा प्रेषित प्रिय पत्रिका पढ़ रहे थे, उस समय उनकी आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगे थे तथा वियोगजन्य पीड़ा से हृदय दुखित हो रहा था। श्री सिद्धि कुँअरि जी प्रेम में आकुल हो पत्रिका सुनती हुई विरह रस में डूबकर व दुखों में पगी हुई सिसक रही थीं।

कहत सुनत सिय केर स्वभाऊ । दम्पति मगन सुधी नहि काऊ ॥
कछुक काल दोउ धीरज लीने । पातिहिं लाय हृदय रस भीने ॥

वे पति पत्नी दोनों कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिद्धिकुँअरि जी श्री सीता जी के स्वभाव का बखान करते व सुनते हुए उनमें मग्न हो गये, उन्हें कुछ भी स्मरण नहीं रहा पुनः कुछ समय उपरान्त वे दोनों धैर्य धारण किये तथा पत्रिका को हृदय से लगाकर प्रेम रस से आप्लावित हो गये।

दो०–साँझ समय निज मातु घर, लली विरह रस पाग ।
गये कुँअर कछु सखन युत, हृदय अतिहिं अनुराग ॥१३७॥

अपनी अनुजा जनक लली श्री सिया जू के विरह रस में डूबे हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कुछ सखाओं सहित हृदय में अत्यन्तानुराग भरकर सायंकाल अपनी अम्बा श्री सुनैना जी के सदन गये।

मातुहिं लखे सखिन बिच बैठी । सिय सुधि करत विरह रस पैठी ॥
नयन नीर गद्गद स्वर होई । कहति चरित सिय के रसमोई ॥

उन्होंने श्री अम्बा जी को अपनी पुत्री श्री सीता जी के विरह रस में डूबी, उनकी याद करते हुए, सखियों के बीच विराजी हुई देखा। वे नेत्रों में अश्रु भर गद्गद् वाणी से श्री सीता जी के चरित्रों को रस निमग्न हुई बखान कर रही थी।

कुँअरहिं अधिक उदीपन भयऊ । जाय प्रणाम मातु कहँ कियऊ ॥
देखि अधीर कुँअर की माता । गोद बिठाय परशि प्रिय गाता ॥

यह देखकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अत्यधिक उद्दीपन हो गया, उन्होंने जाकर श्री अम्बाजी को प्रणाम किया। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अम्बा श्री सुनयना जी ने व्याकुल देख गोद में बैठा लिया व उनके शरीर का प्रियकर स्पर्श किया।

अश्रु पोंछि हिय लाय दुलारी। अवध कुशल सब कही सुखारी ॥
भूप निकट पाती प्रिय आई। अवध नृपति कर कृपा पठाई ॥

पुनः अम्बा जी नें कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के अश्रु पोंछकर हृदय से लगा दुलार किया और श्री अयोध्यापुरी का सम्पूर्ण कुशल समाचार सुखपूर्वक सुनाया। उन्होने कहा– श्री महाराज के समीप प्रिय पत्रिका आई है जिसे चक्रवर्ती श्रीमान् दशरथ जी महाराज ने कृपा कर भेजी है।

क्षेम कुशल सब भाँति सुहानी। पुर परिवार भूप अरु रानी ॥
भ्रात सखन युत रघुवर श्यामा। सखी भगिनि सह सिया ललामा ॥

वहाँ श्री अयोध्यापुरी, राज–परिवार, चक्रवर्ती महाराज श्री दशरथ जी और महारानियाँ आदि कुशल–मंगल पूर्वक सभी प्रकार से सुखी हैं। भ्राताओं व सखाओं सहित श्याम सुन्दर श्री रघुनन्दन जू तथा सखियों व बहनों सहित सुन्दर श्री सिया जू–––

दो०–अति प्रसन्न सब भाँति ते, भोगत दुर्लभ भोग।
परमानन्दहिं रस पगे, सत चित आनन्द जोग ॥१३८॥

–––सभी प्रकार से अत्यधिक प्रसन्न व दुर्लभ भोगों का उपभोग करते हुए सच्चिदानन्दमय बने परमानन्द रस में पगे हुये हैं।

तदपि तुम्हार वियोग कुमारा। सालत सबके हृदय मँझारा ॥
गुरु बसिष्ठ विज्ञान स्वरूपा। तिनहुँ हृदय तव वास अनूपा ॥

तथापि हे कुमार! आपका वियोग सभी के हृदय को दुखी करता रहता है। रघुकुल गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी तो विज्ञान स्वरूप ही हैं, परन्तु उनके अनुपमेय हृदय में भी आपका निवास बना हुआ है।

पत्र माँहि प्रिय प्यार पठायो। देखन तुमहिं अतिहिं ललचायो ॥
चक्रवर्ती रस सने सुभावा। विविध प्रकार पत्र महँ गावा ॥

पत्र में उन्होंने आपके लिए अपना प्रिय प्यार प्रेषित किया है तथा वे आपको देखने के लिए अत्यन्त ललचाये हुए हैं। श्री चक्रवर्ती जी महाराज ने विभिन्न प्रकार से रस में सनकर अपने सुन्दर भावों का प्रकटीकरण पत्र में किया है।

आशिष प्यार कियो मन मोदी। चाहत लखन बिठाय स्वगोदी ॥
सब सिय सासुहुँ प्यार सुभाषा। चहत दरश तव नयनन चाखा ॥

श्री चक्रवर्ती जी ने आनन्दित मन से आपको आर्शीवाद देते हुये प्यार किया है तथा अपनी गोद में बिठाकर वे आपको देखना चाहते हैं। श्री सिया जू की सभी सासुओं ने आपको सुन्दर प्यार कहा है तथा नेत्रों से वे सभी आपके दर्शन करना चाहती हैं।

राम दशा कहि दशरथ राऊ। दीन्हे पत्रहिं माहिं जनाऊ॥
तव वियोग नित राम सुजाना। दुर्बल सम लखि परैं महाना॥

श्री राम जी महाराज की अवस्था का वर्णन करते हुए चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज पत्र में प्रगट करते हैं कि– आपके वियोग में सर्वज्ञ श्री राम जी महाराज नित्य प्रति अत्यन्त दुर्बल से दिखाई पड़ने लगे हैं।

दो०–प्रिय थल पाइ इकान्त नित, करहिं लाल तव ध्यान।
भ्रातन युत कहुँ बैठि पुनि, करहिं चरित्र बखान॥१३९॥

हे लालन! वे नित्य प्रति प्रिय एकान्त स्थान पाकर आपका ध्यान करते हैं व कभी कभी अपने भ्राताओं के साथ बैठकर आपके चरित्रों का बखान किया करते हैं।

प्रेम वारि भरि सुरति तुम्हारी। करि अधीर विरहावति भारी॥
सोवत स्वप्न तुम्हारेहिं देखैं। हाय सखे कह कुँअर विशेषैं॥

आपका स्मरण उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भरकर, उन्हें अत्यधिक विरह परिपूर्ण और अधीर बना देता है। वे शयन करते समय आपके ही स्वप्न देखते हैं तथा विशेष रूप से हाय सखे! हाय कुँअर! कह कर पुकारते रहते हैं।

कबहुँ गोद लै रघुवर मैया। पूँछत प्रीति ललन कस भैया॥
वरणत राम सुप्रेम तुम्हारा। बेसुध होइ जग भूलत सारा॥

कभी श्री राम जी महाराज की श्री अम्बा जी उन्हे गोद में लेकर उनसे पूँछती हैं कि हे भैया! लाल लक्ष्मीनिधि जी की प्रीति कैसी है, तब श्री राम जी महाराज आपके सुन्दर प्रेम का वर्णन करते हुए स्मृतिहीन हो सम्पूर्ण संसार को भूल जाते हैं।

यथा राम तस सीतहुँ केरी। दशा पत्र महँ लिखी ह्हेरी॥
भरत लखन अरु रिपुहन लाला। तैसहिं साने विरह विशाला॥

आपके विरह में जिस प्रकार श्री राम जी महाराज की स्थिति है उसी प्रकार की स्थिति आपकी अनुजा श्री सीता जी की भी पत्र में लिखी हुई है। राज कुमार श्री भरत लाल जी, श्री लक्ष्मण कुमार व श्री शत्रुघ्न लाल जी भी उसी प्रकार आपके महान विरह में डूबे हुए हैं।

यथा छाँह अनुसरे स्वदेहहिं। भ्रात सखा तस राम सनेहहिं॥
जानहु यथा सिया वस अवधा। सखी भगिनि तस विरह प्रलबधा॥

जिस प्रकार छाया अपने शरीर का अनुसरण करती है उसी प्रकार उनके भ्राता व सखागण श्री राम जी महाराज के प्रेम का अनुसरण किये हुए हैं। आप समझ लीजिये कि जिस प्रकार आपके वियोग में श्री सीता जी श्री अयोध्यापुरी में निवास कर रही हैं उसी प्रकार उनकी सखियाँ व बहनें भी विरह प्राप्त कर वहाँ निवास कर रही हैं।

दो०–तुमहिं अवध वासी सकल, प्रेम पगे नित चाह ।
जनक सुवन कब आइहैं, कहहिं भरे सब आह ॥१४०॥

श्री अयोध्यापुर निवासी सभी जन प्रेम में पगे हुए आपके दर्शन की नित्य अभिलाषा करते हैं और आह भरी वाणी से कहते हैं कि जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी यहाँ कब आयेंगे।

अहहु ललित लालन बड़ भागी। जापै राम रहैं अनुरागी ॥
शुक सनकादि शम्भु उर वासी । काग भुसुण्डि भजैं जेहिं ध्यासी ॥

हे मेरे सुन्दर लाल लक्ष्मीनिधि जी! आप अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं, जिस पर श्री राम जी महाराज इतना अनुराग करते हैं। श्री शुकदेव जी, श्री सनकादिक कुमार व श्री शंकर जी के हृदय में निवास करने वाले वे प्रभु जिनका भजन ध्यानपूर्वक श्री काग भुसुण्डि जी किया करते हैं–––

जाकर नाम त्रिदेवहुँ ध्याई। शक्ति सहित सेवत सुख पाई ॥
सत चित आनन्द रूप विलासी । अमित अण्ड जेहिं रोमहिं भासी ॥

–––जिनके नाम का ध्यान शक्तियों सहित त्रिदेव (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी) भी करते हैं व सुखपूर्वक सेवा किया करते हैं, जो नित्य सच्चिदानन्दमय विग्रह में विलसने वाला है तथा जिसके रोम–रोम में असीमित ब्रह्माण्ड समाये हुए हैं–––

सो तोहि मानै आत्म समाना । तव वियोग नित रहत भुलाना ॥
तुमहि जनमि मैं भयी सुवत्सा । चिरंजीवि सुत रहो सुसत्सा ॥

–––वही प्रभु श्री राम जी महाराज आपको अपनी आत्मा के प्रिय समान मानते हैं तथा आपके वियोग में नित्य सम्पूर्ण स्मृति भुलाये रहते हैं। हे पुत्र! आपको जन्म देकर मैं यथार्थ में पुत्रवती हो गयी हूँ आप सुन्दर "सत्य" के समान चिरंजीवी रहो।

धन्य मातु जो राम उपासी । जन्मै पुत्र सुप्रेम प्रकाशी ॥
प्रभु पद विमुख पुत्र जन जननी । वृथहिं जियत जग यौवन हननी ॥

यथार्थ में वही माता धन्य है जो श्री राम जी महाराज के उपासक तथा उनके सुन्दर प्रेम को प्रकाशित करने वाले पुत्र को जन्म देती है अन्यथा श्री सीताराम जी के चरणों से विमुखी पुत्र को जन्म देकर वह माता अपने यौवन को नष्ट कर संसार में व्यर्थ ही जीवित रहती है।

दो०–बाँझ रहब अति ही भलो, जो अभक्त सुत होय ।
गर्भ चुअत सोऊ सुखद, वृथा मास दस ढोय ॥१४१॥

भगवान की भक्ति से विहीन पुत्र को जन्म देने की अपेक्षा बाँझ (पुत्रहीन) रहना अत्यधिक उत्तम है व अभक्त पुत्र के जन्म देने से तो गर्भ गिर जाना भी सुखप्रद होता, जो प्रभु की भक्ति से रहित है, उसे व्यर्थ ही दस माह तक उदर में ढोना पड़ा।

मास पारायण ग्यारहवाँ विश्राम

ईश कृपा भलि भयी वरण्या। सिय माता पद लही अनन्या ॥
भगिनि भाम के प्राण पियारहिं। तुमहिं जनमि धनि भई अपारहिं ॥

श्री सुनैना अम्बा जी ने कहा–हे प्रिय लाल लक्ष्मीनिधि! परमात्मा की असीम कृपा ने मुझे भली प्रकार से वरण कर लिया है जिससे परमाद्याशक्ति श्री सीता जी के अनुपमेय मातृत्व–पद को मैंने प्राप्त किया है तथा अपने बहन व बहनोई श्री सीताराम जी महाराज के प्राणों के प्रिय आपको जन्म देकर तो असीमित धन्या हो गयी हूँ।

बहत नयनन जल अम्ब कुमारहिं। समुझाई बहु करत दुलारहिं ॥
सुनत कुँअर प्रभु कृपा महानी। प्रीति पगे हिय बीच अमानी ॥

अम्बा श्री सुनयना जी ने इस प्रकार नेत्रों से अश्रु बहाते हुए, कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को अत्यधिक दुलार करते हुए समझाया तब अमानी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने प्रति प्रभु श्री राम जी महाराज की महान कृपा सुनकर हृदय में प्रभु–प्रीति से पग गये।

बोले सिसकत भरि जल नयना। सुनहिं मातु मैं दोषन अयना ॥
अमित कृपा बिनु हेतु सुईशा। पुत्र बनायो तोर अमीसा ॥

पुनः वे आँखों में अश्रु भरकर सिसकते हुए बोले– हे श्री अम्बा जी! सुनिये, मैं तो दोषों का भवन ही हूँ, मुझे तो श्रेष्ठ परमात्मा ने अपनी अहैतुकी व असीम कृपा से आपका अमृत के समान पुत्र बनाया है।

ताते बहिन सिय सुख रूपी। मिले भाम घनश्याम अनूपी ॥
रावरि कृपा सुपुण्यहिं तेरे। हमहुँ लखे सियराम सुखेरे ॥

इसलिए मुझे सुख–स्वरूपा श्री सीता जी बहन और अनुपमेय मेघ–श्याम श्री राम जी महाराज बहनोई के रूप में प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार आपकी कृपा और आपके सुन्दर पुण्यों के प्रताप से मैंने भी सुखपूर्वक श्री सीताराम जी के दर्शन प्राप्त किये हैं।

दो०–मइया दाऊ अमित तप, सियाराम फल दीन्ह ।
मोहिं सहित संसार सब, स्वादन ताको कीन्ह ॥१४२॥

हे श्री अम्बा जी! आपने और श्रीमान् दाऊ जी ने असीमित तपस्या कर श्री सीताराम जी रूप सुन्दर फल प्रदान किया है जिसका मुझ सहित सम्पूर्ण संसार ने आस्वाद प्राप्त किया है।

मात पिता जस उद्यम करिकै। शिशुहिं पवावहिं आनन्द भरिकै ॥
आपहुँ तस सिय राम विभूती। लाधी तप करि वर्ष बहूती ॥

जिस प्रकार माता–पिता आनन्द पूर्वक विभिन्न प्रकार के उपाय कर अपने शिशु (अबोध–बच्चे) को पवाते हैं उसी प्रकार आप ने भी बहुत वर्षो तक तपस्या कर श्री सीताराम जी रूप महा–वैभव प्राप्त किया था।

बहुरि जानि मोकहुँ शिशु आपन। दीन्ही सुख हित निधिहिं दयापन ॥
भगिनि भाम सिय रामहिं पाई। जग महँ सब विधि लही बड़ाई ॥

पुनः मुझे अपना शिशु समझकर, दयालुतावश मेरे सुख के लिए अपने धन को आपने मुझे प्रदान किया है। इस प्रकार बहन–बहनोई श्री सीताराम जी को पाकर मैंने संसार में सभी प्रकार से महान कीर्ति प्राप्त कर ली है।

सो सब तव श्री चरण प्रसादा। मोहिं देखि रामहिं अहलादा॥
नतरु मातु सबहीं विधि हीना। अबुध अकिंचन हृदय मलीना॥

वह सभी तो, आप श्री के चरणों का प्रसाद है कि– मुझे देखकर श्री राम जी महाराज को आह्लाद होता है, नहीं तो हे श्री अम्बा जी! मैं सभी प्रकार से निम्न(हीन), बुद्धिहीन, अकिंचन तथा मलिन हृदय हूँ।

ज्ञान विराग योग सत संगा। ब्रह्म राम पद प्रीति अभंगा॥
मोरे मन महँ एकौ नाहीं। गति विहीन कछु सूझत नाहीं॥

ज्ञान, वैराग्य, योग, सत्संग तथा पूर्ण ब्रह्म श्री राम जी महाराज के चरणों में अटूट–प्रेम इत्यादि में से एक भी मेरे मन मे नहीं है तथा मुझ गति–विहीन को कुछ सूझ भी नहीं रहा।

दो०–प्राण प्रिया सिय लाड़िली, प्राण प्राण श्रीराम।
आपन मानत मोहि नित, यहै एक अभिराम॥१४३॥

सभी के प्राणों की प्रियतरा लाड़िली श्री सिया जू व प्राणों को प्राणित करने वाले श्री राम जी महाराज मुझे नित्य अपना मानते हैं यही एक मुझमें अच्छाई है।

केवल कृपा अहैतुक भाती। राम सिया की मोहि सुखदाती॥
अवध सिया रघुनन्दन रामा। मोरे विरह दुखी सुखधामा॥

श्री सीताराम जी की सुन्दर अहैतुकी कृपा मात्र ही मुझे सुख प्रदान करने वाली है। परन्तु श्री अयोध्यापुरी में समस्त सुखों के धाम श्री सीताराम जी मेरे विरह में दुखी हैं।

यहि ते कवन पाप जग अधिका। जेहिं कारण प्रभु सुखहिं न लधिका॥
सुनत मोहिं लागत दुख दूना। हृदय होत जनु प्राण विहूना॥

संसार में इससे अधिक कौन सा पाप होगा जिसके कारण मेरे स्वामी श्री सीताराम जी सुख नहीं प्राप्त कर रहे। ऐसी बात सुनते ही मुझे दुगुना दुख लगने लगता है तथा मेरा हृदय ऐसा हो जाता है जैसे वह प्राण–विहीन हो।

जग महँ प्रगट पाप की देहा। करन न जानेव राम सनेहा॥
धिक धिक धिक मैं अमित अभागी। तापर राम रहैं अनुरागी॥

संसार में मैं पापरूप शरीर लेकर ही प्रगट हुआ हूँ तथा श्री राम जी महाराज से किस प्रकार प्रेम करना चाहिए यह भी नहीं समझ पाया हूँ। मुझे धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है, मैं तो अत्यन्त अभागी हूँ उतने पर भी श्री राम जी महाराज मुझ पर अनुराग किये रहते हैं।

सुनहि मातु मम हिय अभिलाषा। सीय राम नित लहैं सुपासा ॥
बने रहैं सुख रूप सलोने। देखैं सुनैं सुमंगल भौने ॥

हे श्री अम्बा जी! सुनिये, मेरे हृदय की इच्छा है कि श्री सीताराम जी नित्य सुख प्राप्त करें तथा वे दोनों लावण्य–निधि सुख–स्वरूप होकर सुमंगलों के सदन का ही दर्शन व श्रवण करें।

सुनहुँ सदा निज कानन तेरे। राम सीय सुख लहत घनेरे ॥
मोरे हृदय अपेक्षा नाहीं। मम वियोग प्रभु दुखित रहाहीं ॥

मैं सदैव अपने श्रवणों से यही सुना करूँ कि श्री सीताराम जी महान सुख प्राप्त कर रहे हैं। मेरे हृदय में यह अपेक्षा नहीं है कि प्रभु श्री राम जी महाराज मेरे वियोग में दुखी रहें।

दो०–चाहे सीता राम बिन, रहौं सदा अकुलान।
बिना दरश दुख विरह दह, घुट घुट निकसैं प्रान ॥१४४॥

भले ही मैं श्री सीताराम जी के बिना सदैव अकुलाया रहूँ और उनके दर्शनों के अभाव में विरह दुख से जलते हुए मेरे प्राण घुट–घुट कर निकल जायें।

कर्म विवश जस मोकहँ होवै। राम सिया सुख सुन्दर जोवैं ॥
एकै आस सत्य मन माहीं। मुखोल्लास नित राम दिखाहीं ॥

मेरे कर्मों के अनुसार मुझे चाहे जैसा भी फल प्राप्त हो परन्तु श्री सीताराम जी सर्वकाल में सुन्दर सुख का ही संदर्शन करें। वास्तविक रूप से मेरे मन में एक ही कामना है कि श्री राम जी महाराज का मुख कमल सदैव उल्लसित दिखाई देता रहे।

जानहिं सदा मोहि करि आपन। कृपा दृष्टि भरपूर सुथापन ॥
चेष्टा सकल मोर सुनु माता। होवै उनहिन हेतु सुहाता ॥

मुझे वे सदैव अपना समझ कर जानते रहे तथा पूर्ण रूपेण कृपा करते हुए अपनी दृष्टि में बनाये रखें। हे श्री अम्बा जी! सुनिये, मेरी सभी क्रियायें मेरे भगिनी–भाम श्री सीताराम जी के लिए ही सम्पादित हों।

सघन प्रेम छन छनहिं अकामा। बढ़े राम पद नित अभिरामा ॥
सुनहिं सत्य कह मैं सत भाये। सीयराम जब अवध सिधाये ॥

श्री राम जी महाराज के सुन्दर चरण कमलों में मेरा अविरल व निष्काम प्रेम प्रत्येक क्षण नित्य वृद्धि को प्राप्त होता रहे। हे श्री अम्बा जी! आप सुनें, मैं यथार्थतया सत्य कह रहा हूँ कि– जब श्री सीताराम जी अयोध्यापुरी गये थे–––

जातेउँ साथ अवध पुर काहीं। विरह अग्नि धधकति उर माहीं ॥
जानि राम रुख तिन सुख हेता। रहेउँ भवन बनि विरह निकेता ॥

–––मैं भी उनके साथ श्री अयोध्यापुरी चला जाता क्योंकि मेरे हृदय में विरह की अग्नि धधक रही थी परन्तु श्री राम जी महाराज की इच्छा जानकर उनके सुख के लिए ही मैं विरह का सदन

बना हुआ अपने भवन में रह गया।

दो०–जेहिं विधि मानैं राम सुख, सहित सिया सरसाय ।
सोइ करन मम धर्म प्रिय, जानि इष्ट सुखदाय ॥१४५॥

अतएव श्री सीता जी सहित श्री राम जी महाराज जिस प्रकार से सुख में सरसाये रहें, उन्हें अपना सुखदायी इष्ट समझकर वही करना मेरे लिए प्रियकर धर्म है।

अमित नेह राखहिं सिय रामा । कहि न जाय मों पर बिन कामा ॥
हाय विरह मम कसे कृपाला । रहैं उदास सीय रघुलाला ॥

श्री सीताराम जी मुझ पर बिना प्रयोजन इतना असीमित स्नेह रखते हैं कि– उसका बखान नहीं किया जा सकता। हाय! हाय! मेरे वियोग की डोरी में बँधे हुए वे कृपालु श्री सीताराम जी उदास रहते हैं।

मोंहि विलोकन तिन दृग तरसैं । राग रंग मन महँ नहिं परसैं ॥
हाय सुमिरि रघुनाथ सुभाऊ । कृपा प्यार अविरल सुखदाऊ ॥

मुझे देखने के लिए उनके नेत्र तरस रहे हैं तथा किसी प्रकार के राग–रंग (सुख–विलास) उनका स्पर्श नहीं कर पाते। हाय! हाय! श्री राम जी महाराज के स्वभाव, सुखदायी कृपा तथा सघन प्यार का स्मरण कर–––

हृदय कसक छेदति जिमि सूला । करुण कृपा तिनकी सब भूला ॥
हा प्रभु प्रीति केर इक अंशा । मोरे हृदय न तिन पर रंशा ॥

–––हृदय की पीड़ा मुझे शूल के समान छेदती है परन्तु उनकी करुणा व कृपा से मुझे सभी कुछ भूला रहता है। हाय! हाय! प्रभु श्री राम जी महाराज की मेरे प्रति प्रीति के एक अंश का, कण भी मेरे हृदय में नहीं है।

अति कृतघ्न दम्भी बड़ अहहूँ । धिक धिक वचन वृथा नहिं कहहूँ ॥
रुदत कुँअर मुख वचन न आवा । राम स्वभाव सुमिरि विरहावा ॥

मैं तो अत्यन्त कृतघ्नी और महान दम्भी हूँ, मुझे धिक्कार है, धिक्कार है, मैं यह सब सत्य कह रहा हूँ, व्यर्थ नहीं। इस प्रकार कहते हुये कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी रुदन करने लगे, उनके मुख से बोल नहीं निकल रहे थे। वे श्री राम जी महाराज के स्वभाव का स्मरण कर उनके वियोग में डूब गये।

दो०–हिचकत श्यामा श्याम कहि, लाड़िली लाल सुहाय ।
कसक हिये हूकें उठत, लई मातु लपटाय ॥१४६॥

कुमार, हाय, श्यामे–सिया जू, हे श्याम सुन्दर, हा लाड़िली जू, हा लाल रघुनन्दन जू! कह–कह कर हिचकियाँ लेकर रुदन कर रहे थे तथा उनके हृदय में विरह की वेदना उठ रही थी। ऐसे विरह विभोर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अम्बा श्री सुनैना जी ने हृदय से लिपटा लिया।

छं०– अति पीर सालति प्रेम की, निमि कुँअर विरहानल जरै ।
कहि सीय लाड़िली लाल हा, तलफत दशा नहिं कहि परै ॥

तन ढील बेसुध नैन जल, थर थर कपत रोमाञ्च भो ।
लखि मातु ढारति अश्रु बहु, हर्षण हिये अकुलात भो ॥

उस समय निमिकुल नन्दन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में, प्रेम की अत्यधिक पीड़ा हो रही थी, वे अपने बहन–बहनोई श्री सीताराम जी के वियोग की अग्नि में जले जा रहे थे तथा हे लाड़िली सिया जू, हे लाल रघुनन्दन जू कहते हुए तड़प रहे थे। उनकी इस अवस्था का बखान नहीं किया जा सकता। उनका शरीर शिथिल व स्मृतिहीन हो गया था, नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे तथा वे रोमांचित हो थर–थर काँप रहे थे। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की ऐसी अवस्था को देखकर अम्बा श्री सुनयना जी अत्यधिक अश्रु बहा रही थीं तथा उनका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो रहा था।

कबहुँ कुँअर बोलहिं अकुलाई । तजि कहँ गये राम सुखदाई ॥
हा मम प्राण सजीवन मूरी । गवनी सिया छोड़ि मोहिं दूरी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कभी आकुलता पूर्वक बोलने लगते कि– हे मेरे सुख प्रदाता श्री राम जी महाराज आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गये? हाय, हाय! मेरे प्राणों की संजीवनी बूटी श्री सिया जू! मुझे छोड़कर मुझसे दूर चली गयी हैं।

सिय अस बहिन साथ नहि गयऊ। रोवत पंथ नाम मम लयऊ ॥
देखि दशा सिय केर वियोगी। धिक नहिं गयो भयो गृह भोगी ॥

हाय! मैं श्री सीता जी के समान करुणामयी बहन के साथ नहीं गया जो मार्ग में मेरा नाम ले लेकर रुदन कर रही थीं। मुझे धिक्कार है जो श्री सीता जी की विरह अवस्था को देखकर भी मैं उनके साथ नहीं गया बल्कि गृह सुख–भोगी बना हुआ हूँ।

प्रेम विभोर दशा पगलानी। चेष्टा करत बोल मुख बानी ॥
मातु अधीर कुँअर समुझाती । तदपि प्रबुद्धि हृदय नहिं आती ॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की अवस्था प्रेम में विभोर पागलों के समान हो गयी थी तथा वे उसी प्रकार की चेष्टायें करते और मुख से वैसी ही वाणी बोलते थे। उनकी अवस्था को देखकर अम्बा श्री सुनैना जी अधीर हुए अपने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को बहुत समझातीं थीं परन्तु उनके हृदय में प्रबोध नहीं होता था।

कहत सखिन सन मातु सुनैना। काह कहूँ कहि जात न बयना ॥
लली सिया अरु कुँअर पियारे । रहे दोउ मम नयनन तारे ॥

अपने कुमार की अवस्था को देखकर श्री सुनैना अम्बा जी अपनी सखियों से कहतीं कि– मैं क्या? कहूँ, मुझसे तो कुछ कहा ही नहीं जाता, लाड़िली श्री सिया जू व कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी दोनों ही मेरी नेत्रों की पुतलियाँ हैं।–––

भैया विरह अवध पुर माहीं । तलफत सिया शोक मन माहीं ॥
अनुजा विरह राम के प्यारा । कुँअर दशा सब रही निहारा ॥

———उसमें से एक श्री सिया जू तो अपने श्री भैया जी के विरह में मन में शोक संतप्त हुई श्री अयोध्यापुरी में तड़प रही हैं तथा अपनी बहन श्री सिया जू के विरह व बहनोई श्री राम जी महाराज के प्रेम में हुई कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अवस्था तो आप सभी देख ही रही हैं।

दो०—करत बतकही सखिन सन, सीय मातु दुख पाग ।
ता बिच तिरहुत भूप वर, पहुँचे सुनि अनुराग ॥१४७॥

श्री सीता जी की अम्बा श्री सुनैना जी दुख में पगी हुई सखियों के साथ इस प्रकार की वार्ता कर ही रही थीं कि उसी बीच अपने कुँअर की प्रेमावस्था को सुनकर तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज वहाँ पहुँच गये।

अंक धरे निज कुँअर सुशीशा। पोंछि अश्रु परशत नर ईशा ॥
सिय गुणगान राम गुण गाना । नृपति करायो प्रेम विधाना ॥

श्री विदेह राज जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शीश को अपनी गोद में रख लिया तथा उनके अश्रु पोंछ, शिर स्पर्श किया। पुनः प्रेम पूर्वक श्री महाराज जनक जी ने श्री सीता जी व श्री राम जी महाराज के गुण—गणों का गायन (कीर्तन) करवाया।

सुनत सुकीर्तन प्रभु यश पूरी । कुँअर लही सुधि पाय सुमूरी ॥
लहि चित चेत पेखि पितु काहीं । कीन्ह प्रणाम अधीर लखाहीं ॥

भगवद्यश से परिपूर्ण सुन्दर कीर्तन श्रवण करते ही सुहावनी संजीवनी बूटी सी प्राप्त कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्मृति को प्राप्त किया तथा चित में चैतन्यता धारण कर अपने पिता जी को देख अधीर बने हुए प्रणाम किये।

नयन नीर पितु पद अन्हवाई । लिपटि रहे रस वरणि न जाई ॥
कहेव पिता मन मोहन श्यामा । भगिनि किशोरी ललित ललामा ॥

उन्होंने अपने श्रीमान् पिताजी के चरणों को अश्रुओं से नहला दिया और उनसे लिपट गये। उस समय के आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता। पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा— हे श्रीमान् पिता जी! हमारे मनमोहन श्यामसुन्दर श्री राम जी महाराज व सुन्दराति सुन्दर अनुजा श्री किशोरी सिया जू———

युगल प्रीति मम लाज छुड़ायी। राउर आगे ढीठ बनायी ॥
ज्ञान विराग स्वरूप भुलावा । कछुक भान नहिं मोहिं रहावा ॥

———दोनों की प्रीति ने मेरी लज्जा छुड़ा दी है और आपके आगे मुझे धृष्ट बनाकर मेरा ज्ञान, वैराग्य व स्वरूप भुला दिया है, मुझे कुछ भी भान नहीं रहा।

दो०—क्षमा करहिं सो तात सब, आरत विरही दीन ।
जानि कृपा कर पालियहिं, हौं अति अधम मलीन ॥१४८॥

इसलिए हे तात! आप मुझे दुखी, विरही व दीन समझ कर उन सभी बातों के लिए क्षमा कर कृपा करते हुए मेरा पालन करते रहियेगा क्योंकि मैं अत्यन्त अधम व मलिन हृदय हूँ।

सुनत जनक शुचि सुवन सुवानी। आरत विरह दीन रस सानी॥
प्रेम विभोर नयन जल ढारी। कुँअरहिं लै हिय भये सुखारी॥

श्री जनक जी महाराज अपने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की आर्ति, विरह तथा दैन्य भावों से सनी हुई पवित्र सुन्दर वाणी सुनकर प्रेम विभोर हो गये तथा नेत्रों में अश्रु भर, उन्हे हृदय से लगाकर सुखी हुए।

कहेव तात तुम प्राण समाना। भये राम के सब जग जाना॥
सियहिं अहो पुनि प्राण पियारे। देखि देखि मैं रहौं सुखारे॥

अनन्तर श्री विदेह राज जी महाराज ने कहा– हे तात लक्ष्मीनिधि जी! आप श्री राम जी महाराज के प्राण समान हो गये हैं इस बात को सम्पूर्ण संसार जानता है। पुनः आप अपनी अनुजा श्री सीता जी के भी प्राण प्यारे हैं, यह सब देख–देखकर मैं सुखी रहता हूँ।

अकथ अलौकिक तुम्हरी प्रीती। राम सिया महँ अहै अतीती॥
लाल कियो तुम पर पुरुषारथ। पायो राम सीय परमारथ॥

श्री सीताराम जी के प्रति आपकी अकथनीय, अलौकिक और अत्यधिक प्रीति है। हे लालन लक्ष्मीनिधि! तुमने महान पुरुषार्थ किया है जो परम परमार्थ स्वरूप श्री सीताराम जी को प्राप्त किया है।

लीला ललित रमहु रस छाई। संत गुरुन मन मोद बढ़ाई॥
तुमहि कहैं ऋषि निमिकुल भूषण। ज्ञान विराग भक्ति रस पूषण॥

आप आनन्द में समाये हुए अपने भगिनी–भाम श्री सीताराम जी की सुन्दर लीला में अनुरक्त रहते हैं तथा संतो व गुरुजनों के मन में आनन्द की परिवृद्धि किये रहते हैं। आपको समस्त ऋषिगण श्री निमि कुल के आभूषण तथा ज्ञान, वैराज्ञ, भक्ति व प्रेम–रस का पोषण करने वाला कहते हैं।

दो०–सुनि सुनि उरहिं उछाह बहु, रहनि करनि सुख दैन।
तोषित रहौं तुम्हार ह्वै, लखि प्रिय प्रेम अबैन॥१४९॥

आपकी सुखदायी रहनी व करनी को श्रवण कर तथा श्री सीताराम जी के प्रति अवर्णनीय प्रिय प्रेम को देख–देख मेरे हृदय में अत्यधिक आनन्द होता है तथा ऐसे भगवद्–भक्त, आपका पिता होकर मैं संतुष्ट बना रहता हूँ।

पितु सुवानि सुनि सकुचि कुमारा। सिसकत बोलेव वचन सम्हारा॥
सुनि तव कथन लाज मोंहि दाबै। पिता तत्व पुत्रहिं महँ आवैं॥

अपने श्रीमान् पिताजी की सुन्दर वाणी को सुनकर संकुचित हो कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी स्वयं को सम्हाल कर सिसकते हुए वचन बोले– हे श्रीमान् दाऊ जी! आपकी कही हुई वाणी सुनकर मुझे तो लज्जा लगने लगती है क्योंकि पिता के ही गुण तो पुत्र में आते हैं।

मैं नहि कछु मम गुण नहि एका। भगति विराग योग सविवेका॥
जो कछु दिखै अहै तव दाऊ। मम थिति नहि तव पृथक लखाऊ॥

फिर न तो मैं ही कुछ हूँ और न एक भी गुण मेरे हैं, ज्ञान सहित भक्ति, वैराग्य, व योग आदि जो भी गुण मुझमें दिखाई पड़ रहे हैं, हे श्री दाऊ जी! वे सभी आपके ही हैं क्योंकि आपसे भिन्न मेरी कोई स्थिति, मुझे नहीं दिखाई देती।

लाड़िलि सिया राम की प्यारी। कृपा अहैतुक भई सुखारी॥
दीन्हेव राउर सुवन बनाई। भयो हेतु मोंहि लहन बड़ाई॥

मुझ पर, आपकी लाड़िली श्री सिया जू व श्री राम जी महाराज की अकारण ही प्रिय व सुखप्रद कृपा हुई है जो उन्होंने मुझे आपका पुत्र बना दिया, वही मुझे महान सुयश प्राप्त होने का हेतु बना हुआ है।

अहह ढिठाई बहुतहिं कीनी। क्षमा करहिं प्रभु मोहि गुनि दीनी॥
अस कहि भयो सकोच स्वरूपा। धन्य कुँअर पितु भाव अनूपा॥

अहा हा! मैंने अत्यन्त धृष्टता की है, अतः हे तात! मुझे दीन समझ कर आप क्षमा करेंगे ऐसा कहकर वे संकोच के स्वरूप बन गये। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हें कि– अपने पिता श्रीमान् विदेहराज जी महाराज के प्रति कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के भाव अनुपमेय व धन्य है।

दो०–अति अधीर विरहातुरे, श्रवत नयन जल धार।
सोचहिं पितु कहि देंय मोहिं, जावहिं अवध सुखार॥१५०॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त अधीर व विरह में आतुर हुए नेत्रों से अश्रुओं की धार बहाते हुए विचार कर रहे थे कि– श्रीमान् पिता जी मुझे सुखपूर्वक श्री अयोध्यापुरी जाने की आज्ञा प्रदान कर दें।

पुत्र दशा लखि लखि अति दीना। पति सन बोली मातु प्रवीना॥
नाथ कुँवर सिय राम वियोगी। प्रीति दशा देखत सब लोगी॥

अपने पुत्र की अत्यन्त दैन्यावस्था को देखकर परम प्रवीणा अम्बा श्री सुनैना जी ने अपने प्राण–पति श्री जनकजी महाराज से कहा– हे नाथ! कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अपने बहन–बहनोई श्री सीताराम जी के वियोग में हुई प्रेमावस्था को तो सभी लोग देखते ही हैं।

दुर्बल भयो शरीरहुँ पीला। खीन विकल तन अतिशय ढीला॥
याते आयसु देंय सुखारी। जान अवध की करैं तयारी॥

ये कैसे दुर्बल हो गये हैं, शरीर भी पीला व अत्यन्त शिथिल हो गया है तथा अत्यन्त दुखी व व्याकुल बने रहते हैं इसलिए आप इन्हें सुखपूर्वक आज्ञा प्रदान करें कि– ये श्री अयोध्यापुरी जाने की तैयारी करें।

सियहिं बुलावन समयहुँ आयो। जाहिं कुँअर अब मो मन भायो॥
कुँअर गये सिय आनन्द मानी। लहिहैं सुख श्यामहुँ सुखखानी॥

क्योंकि अब अपनी लाड़िली श्री सिया जू के लिवाने का समय भी आ गया है अतः मुझे मन

में अब ऐसा लग रहा है कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सिया जू को लिवाने हेतु श्री अयोध्यापुरी जायें। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के जाने से इनकी अनुजा श्री सिया जू आनन्द मानेंगी तथा सुख की खानि श्याम सुन्दर श्रीरामजी भी सुख संप्राप्त करेंगे।

बोले जनक प्रिया सुन लेहू। मोरेहु हृदय विचार सुएहू ॥
अवध नृपति की पाती पेखी। तब ते करौं विचार विशेषी ॥

अम्बा श्री सुनैना जी की वाणी सुनकर श्री विदेह राज जी महाराज बोले– हे प्रिया जी! सुनिये, मेरे हृदय में भी ऐसे ही सुन्दर विचार का स्फुरण हुआ है। अयोध्या नरेश चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की पत्रिका मैंने जब से देखी है, तभी से मैं यह विशेष विचार कर रहा हूँ।

दो०–भूप पुरोहित औध जन, राम भ्रात युत जान ।
सीय सखिन सह सासु सब, कुँअर लखन अकुलान ॥१५१॥

महाराज श्री दशरथ जी, रघुकुल पुरोहित श्री बसिष्ठ जी, समस्त अयोध्यापुर–निवासी, भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज तथा सखियों व सभी सासुओं सहित लाड़िली श्री सीता जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखने के लिए व्याकुल हैं, ऐसा आप जान लीजिये।

कृपा पात्र सब केर कुमारा। इन पै सब कोउ प्रेम प्रसारा ॥
प्रीति पगे सब देखन चाहत। भरे लालसा हृदय उमाहत ॥

कुमार सभी के कृपा पात्र हैं और इनके ऊपर सभी प्रेम करते हैं। इनके प्रेम में पगे हुए वे सभी जन इन्हें देखना चाहते हैं तथा हृदय में उमंग भरे हुए लालायित बने रहते हैं।

ताते कुँअर अवशि उत जावें। सियहिं लाय मोंहि दरश करावें ॥
करन पहुनई दशरथ राजा। पुत्रन भाइन सहित समाजा ॥

इसलिए कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी वहाँ अवश्य जायें तथा अपनी अनुजा श्री सीता जी को लिवा लाकर मुझे दर्शन करायें। पुत्रों, भ्राताओं तथा समाज सहित चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज को पहुनाई करने के लिए–––

अवधहिं लावैं कुँअर लिवाई। निरखहुँ नयन सुचारहु भाई ॥
राउ वचन सुनि हरषी रानी। यथा मोरनी वारिद वानी ॥

–––कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री अयोध्यापुरी से यहाँ लिवा लायें जिससे मैं अपने नेत्रों से सुन्दर चारो भ्राताओं के दर्शन कर सकूँ। श्री जनक जी महाराज के वचनों को सुनकर महारानी श्री सुनैना जी उसी प्रकार हर्षित हुई जैसे बादलों की गर्जना से मोरनी हर्ष में भर जाती है।

कुँअरहिं भयो अनन्द अपारा। बिन जाने को कहैं सम्भारा ॥
मुख प्रसन्न नव पंकज फूला। उर प्रमोद लखि पितु अनूकुला ॥

पने श्रीमान् पिताजी के वचन सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को ऐसा असीम आनन्द हुआ जिसका बिना अनुभव किये कौन बखान कर सकता है। उनका मुख नवीन विकसित कमल के समान खिल गया तथा श्रीमान् पिता जी को अपने अनुकूल देखकर हृदय आनन्द से आपूरित हो गया।

दो०–अति कृतज्ञ बनि कुँअर तब, पितु पद वन्दन कीन्ह ।
प्राण प्रदाता वैद्य कहँ, जनु रोगी सब दीन्ह ॥१५२॥

अनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त कृतज्ञ हुये श्रीमान् पिताजी के चरणों की उसी प्रकार वन्दना किये जैसे कोई 'रोगी' अपने प्राण–दाता वैद्य को अपना सब कुछ दे दिया हो।

भूप कुँअर कहँ प्यारि प्रवीना । आशिष वचन कहे सुख भीना ॥
तात सखन सह अवधहिं जाहू । परसो पुष्य योग शुभ लाहू ॥

श्री जनक जी महाराज अपने परम दक्ष कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्यार कर सुख में समाये हुए आशीर्वचन दिये तथा बोले– हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! परसों शुभ प्रदायक पुष्य योग है अतएव आप अपने सखाओं सहित श्री अयोध्यापुरी चले जाइये।

अवध अवध वासी कर दर्शन । लेहु लाह सियराम सुपरसन ॥
सकल अवध वासी हरि रूपा । श्रुति पुराण कवि संत निरूपा ॥

वहाँ जाकर आप, श्री अयोध्यापुरी व श्री अयोध्यापुर–वासियों के दर्शन कर अपने बहन व बहनोई श्री सीता जी व श्री राम जी के सुन्दर स्पर्श का लाभ लीजिये। हे तात! श्री अयोध्या पुरी के सभी निवासी भगवत–स्वरूप हैं ऐसा श्रुतियों, पुराणों, कवियों और सन्त–जनों ने वर्णन किया है।

प्रकृति पार सिय रघुवर धामा । अहै विकुण्ठन मूल ललामा ॥
पुरी सच्चिदानन्द प्रकाशी । रामहिं प्रिय नित निज आत्मा सी ॥

श्री सीताराम जी का धाम 'श्री अयोध्यापुरी' प्रकृति से परे और सुन्दर वैकुण्ठों का मूल है। वह सच्चिदानन्द–स्वरूपा पुरी, परम प्रकाशवान और सदैव श्री राम जी महाराज को अपनी आत्मा के समान प्रिय है।

पश्चिम उत्तर पूरब सरजू । घेरि रही अवधहिं सुख करजू ॥
जासु अंश विरजादिक सरिता । प्रगट होहिं जन पावन करिता ॥

श्री अयोध्यापुरी को अत्यन्त सुखकारी श्री सरयू जी पश्चिम, उत्तर तथा पूर्व से घेरे हुए हैं जिनके अंश से श्री विरजा जी आदि जन–जन को पवित्र करने वाली नदियाँ प्रगट होती हैं।

दो०–प्रेम वारि धारा बहत, ब्रह्महिं बनि रस रूप ।
सरयू सत सत जानियो, सत चिद आनन्द रूप ॥१५३॥

श्री सरयू जी में रस–स्वरूप, पूर्णतम परब्रह्म ही प्रेम–जल की धारा के रूप में प्रवाहित होता है अतः श्री सरयू जी को आप, निश्चय ही सच्चिदानन्दमयी जानियेगा।

प्रेम सहित जन करि स्नाना । प्रभु समीप पावैं सुख नाना ॥
अस मन आनि सुभाग विचारी । जान अवध अब करहु तयारी ॥

श्री सरयूजी में प्रेम पूर्वक अवगाहन कर लोग प्रभु श्री राम जी महाराज का समीप्य व अनेक प्रकार के सुख प्राप्त करते हैं। वहाँ की महिमा को अपने मन में इस प्रकार विचारकर अपना सौभाग्य

समझते हुए आप अब श्री अयोध्यापुरी जाने की तैयारी कीजिये।

भेंट बहुत विधि देवन हेतू । करिहहिं हमहुँ तयार सुचेतू ॥
अस समुझाय प्यार करि भूपा । बाहर गे कछु कार्य निरूपा ॥

हम भी वहाँ भिजवाने हेतु सजगतापूर्वक बहुत सी सुन्दर भेंट सामग्री तैयार करेंगे। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को समझाकर उन्हे प्यार करते हुये श्री जनक जी महाराज कुछ कार्य सम्पादन करने के लिए बाहर चले गये।

कुँअरहुँ मातु पिता पद वन्दी । आये अपने भवन अनन्दी ॥
सिद्धि कुँअरि लखि पति पद लागी । परम प्रसन्न जानि अनुरागी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने माता–पिता के चरणों की वन्दना कर आनन्द पूर्वक अपने भवन आ गये। उन्हें देखकर श्री सिद्धि कुँअर जी ने उनके चरणों में प्रणाम किया तथा उन्हें अत्यधिक प्रसन्न जानकर वे अनुराग से भर गयीं।

जनक सुवन बोले सुनु प्यारी। पितु आयसु पायों सुखकारी ॥
परसों दिवस अवध पुर जैहौं । सियहिं लिवाय कछुक दिन ऐहौं ॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे प्यारी जू! सुनिये, मैंने श्रीमान् दाऊ जी की सुख प्रदायिनी आज्ञा प्राप्त कर ली है। कल का दिन व्यतीत होने के उपरान्त परसों मैं श्री अयोध्यापुरी जाऊँगा और कुछ ही दिनों में आपकी प्रिय ननँद श्री सीता जी को लिवाकर वापस आ जाऊँगा।

दो०–सब विधि भाग विभूति सुख, मोकहँ दाऊ दीन ।
अवध जान आयसु दयी, आनन्द ह्वै हौं लीन ॥१५४॥

श्रीमान् दाऊ जी ने मुझे सभी प्रकार से भाग्य, वैभव व सुख प्रदान किया है जो श्री अयोध्यापुरी जाने की आज्ञा प्रदान की हैं जिससे मैं आनन्द स्वरूप बना हुआ उसी में समाया हुआ हूँ।

सुनत सिद्धि अति आनन्द पाई । कहेव वचन प्रिय प्रेमहिं छाई ॥
जाहिं अवध भल मोकहँ लागा । लहै शान्ति सुख बनैं सुभागा ॥

अपने प्राणवल्लभ के वचन सुनते ही श्री सिद्धि कुँअरि जी ने आनन्द प्राप्त किया तथा वे प्रेम भर कर प्रिय वचन बोली– हे नाथ! मुझे बहुत अच्छा लग रहा है, आप श्री अयोध्यापुरी जायें और सुन्दर शान्ति व सुख प्राप्त कर सौभाग्यशाली बनें।

बहुरि लिवाय सीय रघुराई । थोरेहिं दिन आवहिं हरषाई ॥
नयन अतिथि सिय रघुवर केरी । सेवा सरिहौं सुखद घनेरी ॥

पुनः थोड़े ही दिनों में श्री सीता जी व श्री राम जी महाराज को लिवाकर हर्ष पूर्वक आप वापस आ जायें जिससे मैं अपनी नेत्रों के अतिथि श्री सीताराम जी की सुख–प्रदायिनी अविरल सेवा करूँगी।

पाय दरश मम नयनहुँ प्यारे । होइहैं सुफल रहत अँसुआरे ॥
तनिक वियोग यदपि पिय तोरा । सहि न जाय अस हिय मन मोरा ॥

हे प्यारे! मेरे नेत्र जो सदैव अपने ननद–ननदोई श्री सीताराम जी के वियोग में अश्रुओं से भीगे रहते हैं उनके दर्शन पाकर सफलीभूत हो जायेंगे। हे प्रिय! यद्यपि मेरा हृदय व मन ऐसा है कि– उससे आपका किंचित वियोग भी नहीं सहा जाता है।

तदपि नाथ सिय राम बुलावन । अवसि जाँय राउर मन भावन ॥
प्रीति रीति सुनि सिद्धिहिं केरी । कुँअर लहेव संतोषहि हेरी ॥

तथापि हे नाथ! हमारे मन भावन श्री सीताराम जी को लिवाने के लिए आप अवश्य ही श्री अयोध्या पुरी प्रस्थान करें। श्री सिद्धि कुँअरि जी की प्रीति की रीति को देख व सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने संतोष प्राप्त किया।

दो०–प्राण प्रिया धनि धनि अहौ, संगिनि जीवन मोर ।
परमारथ पथ दर्शिका, देति सुआनन्द बोर ॥१५५॥

हे मेरी जीवन संगिनी! प्राण प्रिये! तुम धन्यातिधन्य हो जो मुझे परमार्थ पथ का प्रदर्शन करती हुई सुन्दर आनन्द में डुबाये रहती हो।

अस कहि कुँअर हिये निज लाई । कहे सुने प्रभु चरित सुहाई ॥
सीय राम महँ मन लय कीने । किय विश्राम सहज रस भीने ॥

ऐसा कह कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया तथा प्रभु श्री सीताराम जी के सुन्दर चरित्रों को आपस में कथन व श्रवण करने लगे। पुनः वे दोनो सहज ही प्रभु प्रेम रस में भीगे हुए श्री सीताराम जी में अपने मन को लीन कर विश्राम किये।

प्रात काल उठि नित्य निवाही । गुरु पितु मातु चरण अवगाही ॥
भ्रात सखन पुनि लिये बुलाई । करि सुप्यार आसन बैठाई ॥

प्रातःकाल उठकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी नित्य नियमों का निर्वाह करने के उपरान्त श्री गुरुदेव जी, श्रीमान् पिता जी व श्री अम्बा जी के चरणों में प्रणाम किये तथा अपने भ्राताओं व सखाओं को बुलाकर सुन्दर प्यार किया व आसनों में बिठाया।

श्रवण सुखद बोले मृदु वानी । काल अवध गवनब सत जानी ॥
करहिं तयारी सब विधि भाई । चलैं लिवावन सिय रघुराई ॥

पुनः वे श्रवणों को सुखप्रदायिनी कोमल वाणी से बोले– आप लोग सत्य जान लें कि– कल श्री अयोध्यापुरी को प्रस्थान करना है। इसलिए आप सभी भ्रातागण सभी प्रकार से तैयारी कर लें और श्री सीताराम जी को लिवाने के लिए चलें।

दाऊ मोहि शासन शुभ दीन्हा । सुफल मनोरथ सब विधि कीन्हा ॥
सुनत कुँअर के बैन सुहाये । हरषि सबन जल नयन बहाये ॥

श्रीमान् दाऊ जी ने यह शुभ आज्ञा प्रदान कर सभी प्रकार से मुझे पूर्ण–काम कर दिया है। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुन्दर वचनों को सुनकर सभी भ्रातृ–गण हर्षित हो गये तथा नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाने लगे।

दो०–बोले वचन विनीत वर, पुलकित हिय कर जोर ।
राखी रुचि हम सबहिं की, सदा नाथ रस बोर ॥१५६॥

पुनः वे पुलकित हृदय हो हाथ जोड़कर सुन्दर विनय पूर्ण वाणी से बोले– हे नाथ! आपने सदैव ही हम सभी की इच्छाओं की रक्षा की है व हमें सतत रस में डुबाये रखा है।

खेलब खाब सखन सँग लीने । भ्रातन सहित मोद मन कीने ॥
प्यारेव सदा नाथ हरषाता । जोगयो सबहि प्रेम सुखदाता ॥

आपने आनन्दित मन से, क्रीड़न व भोजन आदि सभी क्रियायें हम सभी भ्राताओं व सखाओं को साथ लेकर की है तथा हम सभी को सदैव हर्ष पूर्वक प्यार करते हुए, प्रेम व सुख का दान दे देकर आपने हमारी रक्षा की है।

रावरि कृपा अहैतुक पाई । लही कृपा सियराम सुहाई ॥
दरश परश पुनि वचन तुम्हारे । राम प्रेम कछु भयो हमारे ॥

आप श्री की अकारण कृपा को प्राप्त कर हमने श्री सीताराम जी की सुन्दर कृपा को प्राप्त किया है तथा आपके दर्शन, स्पर्श और वाणी से हम लोगों के हृदय में भी श्रीरामजी महाराज का किंचित प्रेम उत्पन्न हो गया है।

तव प्रसाद लहि जन्म सुलाभा । भये कृतारथ तन मन आभा ॥
प्रत्युपकार न होय तुम्हारा । रहैं ऋणी यह आस हमारा ॥

आपके कृपा प्रसाद को प्राप्त कर हमें जन्म धारण करने का सुन्दर लाभ प्राप्त हो गया है, हम सभी कृतार्थ तथा शरीर व मन से आलोकित हो गये हैं। हम सभी से आपका कोई भी प्रति उपकार नहीं हो सकता और हमारी यही हार्दिक इच्छा है कि– हम सदा आपके ;णी बने रहें।

शुचि सतसंग दरश तव पाई । करहिं सेव नित हम सब भाई ॥
जन्म जन्म बनि राउर भ्राता । पावहिं सिय रघुनाथ स्वनाता ॥

आपका पवित्र सत्संग व दर्शन प्राप्त कर हम सभी भ्रातृगण आपकी नित्य सेवा करते रहें तथा प्रत्येक जन्म में आपके भ्राता बनकर अपने सम्बन्धी श्री सीताराम जी को प्राप्त करते रहें।

दो०–अमित सुखद आयसु भयो, नाथ साथ चलि काल ।
पहुँचि अवध दरशन लहैं, सुखद सिया रघुलाल ॥१५७॥

हे नाथ! हम सभी के लिए आपकी आज्ञा असीमित सुख प्रदायिनी है। अतः कल आपके साथ चलकर श्री अयोध्यापुरी पहुँच परम सुखदायी श्री सिया जू व श्री रघुनन्दन जू का दर्शन प्राप्त करेंगे।

कुँअर कहेव सुनु सखा सनेही। अहै सबन गति इक वैदेही ॥
ताकी कृपा हमार तुम्हारा। राम प्यार करिहैं सुख सारा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे प्रेमी सखा गणों! हम सभी की तो एकमात्र विदेहराज नन्दिनी श्री सिया जू ही गति हैं इसलिए उनकी कृपा से हमारा व आप सभी का श्री राम जी महाराज सुखपूर्वक प्यार करेंगे।

जो मैं अहौं मोर जो होई । राउर जन सुख हेतुहिं सोई ॥
अब गृह जाय चलन की साजा । साजहु सुख सह आयसु राजा ॥

मैं जो कुछ हूँ और जो कुछ भी मेरा है वह सब तो आप सभी जनों के सुख के लिए ही है। अब अपने भवनों को जाकर सुख पूर्वक, चलने की सामग्री सजा लीजिये, ऐसी श्रीमान् दाऊ जी महाराज की आज्ञा है।

सुनत कुँअर के वचन अमोले । अहं रहित प्रिय प्यारहिं घोले ॥
सखा भ्रात सब शीश नवाई। गये सदन सुमिरत बड़ भाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी के अहंकार शून्य, प्रिय प्रेम घुले हुए अनमोल वचनों को सुनकर सभी सखा व भ्रातृगण उन्हें शिर झुका प्रणाम किये तथा अपने बड़े भइया श्री लक्ष्मीनिधि जी के स्वभाव का स्मरण करते हुए अपने अपने सदन चले गये।

नृप विदेह मंत्री बुलवाये । आयसु दिये हर्ष हिय छाये ॥
काल कुमार अवधपुर जैहैं । सीय बुलाय कछुक दिन ऐहैं ॥

श्री जनक जी महाराज ने सचिव को बुलाकर हर्षित हृदय हो आज्ञा प्रदान की कि– कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी कल श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान करेंगे तथा पुत्री श्री सीता जी को लिवाकर कुछ दिनों में वापस आयेंगे।

दो०–करहिं तयारी मंत्रि वर, हरषि हृदय अनुमान ।
उचित सुखद जो जो रुचै, अहहु दक्ष मतिवान ॥१५८॥

अतः यह विचार कर हर्षित हृदय हो, हे मंत्रिवर! जो भी उचित व सुखप्रद हो और आपको जो भी अच्छा लगे वह तैयारी कर लीजिये क्योंकि आप तो परम प्रवीण व बुद्धिमान हैं।

आपहुँ जाय कुँअर के साथा। लावहि बोलि अवधपुर नाथा ॥
करन चहौं तिनकी पहुनाई । आवहिं सुत समाज सह भाई ॥

आप भी कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ जाकर श्री अयोध्या नाथ दशरथ जी महाराज को लिवा लायें। मैं उनका आतिथ्य करना चाहता हूँ अतः वे अपने पुत्रों व भ्राताओं सहित समाज को लेकर यहाँ पधारें।

सचिव रजायसु धरि सिर माहीं । गयो तयारी हेतु उमाहीं ॥
बहुरि कुमारहिं भूप बुलायो । अति सनेह वर वचन सुनायो ॥

श्री जनक जी महाराज की आज्ञा शिरोधार्य कर सचिव, उत्साह पूर्वक तैयारी करने हेतु चले गये। पुनः श्री महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बुलवाया और उनसे अत्यन्त स्नेह पूर्वक सुन्दर वचन कहने लगे।

भूपहिं मोर प्रणाम सुनाई। यह पाती पुनि दिहेहु थमाई॥
विनती विविध सुनाय सुखारा। लायहु तिन्हैं संग सतकारा॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज को हमारा प्रणाम निवेदन करते हुए आप उन्हे यह पत्रिका दे दीजियेगा और विभिन्न प्रकार से सुखपूर्वक हमारी विनय सुनाकर उन्हें आदरपूर्वक यहाँ लिवा लाइयेगा।

कौशिल्यादि राम महतारिन। नित्य प्रणाम कहेउ सुख सारिन॥
भ्रातन सहित राम कहँ प्यारा। कहेउ सुमंगल मोर दुलारा॥
भगिनि सहित सीतहिं समुझाई। अमित प्यार कहियो सरसाई॥

श्री कौशिल्या जी आदि सभी सुखों की सारभूता श्री राम जी महाराज की माताओं को हमारा नित्य प्रणाम कहियेगा, भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज को हमारा सुन्दर प्यार–दुलार व मंगलानुशासन कहियेगा तथा बहनों सहित श्री सीता जी को समझाकर हमारा आनन्दपूर्वक असीमित प्यार कहियेगा।

दो०– भेंट विविध विधि सबहिं कहँ, यथा योग्य हर्षाय।
सौंपेउ अह मम रहित ह्वै, विनती मधुर सुनाय॥१५९॥

आप अहंकार व ममकार रहित हो, हर्ष पूर्वक, सभी लोगों को यथा योग्य, मधुर मधुर विनय करते हुए विभिन्न प्रकार की भेंट समर्पित करियेगा।

पितु आयसु सिर राखि कुँअर वर। आये मातु समीप सुखदतर॥
शीष नाइ शुभ आशिष लहिकै। सुखद प्यार रस सरितहिं बहिकै॥

श्रीमान् पिताजी की आज्ञा शिरोधार्य कर श्रेष्ठ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुखपूर्वक अम्बा श्री सुनैना जी के समीप आये और उन्हें शिर झुका प्रणाम कर सुभाशिष प्राप्त किये। पुनः उनके सुखदायी प्यार की रस–सरिता में प्रवाहित होकर–––

बैठ सुआसन प्रेम पसारे। बोली मातु सुनहु मम प्यारे॥
राम समीप जाहु सुख छैया। सिया देखि हरषी निज भैया॥

–––वे प्रेम पूर्वक सुन्दर आसन में बैठ गये तब अम्बा श्री सुनैना जी ने कहा– हे मेरे प्यारे लाल लक्ष्मीनिधि जी! सुनें, आप सुख पूर्वक श्री राम जी महाराज के समीप जायें। श्री सीता जी अपने भैया जी को देखकर हर्ष से भर जायेंगी।

राम मातु कहँ कहेव प्रणामा। मोर ओर करि विनय ललामा॥
जेहिं विधि सिया सुखी रह नित्या। सोइ करणीय चरैं चित चित्या॥

आप मेरी ओर से सुन्दर विनय कर श्री राम जी महाराज की श्री अम्बा जी को प्रणाम कहियेगा। जिस प्रकार से श्री सीता जी नित्य सुखी रहें वही कार्य आपके लिए करने योग्य है अतएव चित में उनके सुख का चिन्तन करते हुये आप वही कीजियेगा।

प्राणन प्राण संजीवन मूरी । हिय दुख सहै न थोरहु ऊरी ॥
नरपति सों सुत मोर सुनमना । कहेव प्रेम युत वचन करमना ॥

क्योंकि प्राणों की प्राण तथा संजीवनी–बूटी श्री सिया जी अपने हृदय में किंचित दुख नहीं सहन कर पाती हैं। हे तात! चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज से मेरा प्रेम पूर्वक मन, बचन व कर्म से सुन्दर प्रणाम निवेदन करियेगा।

दो०–चारहुँ लालन कहँ कहेव, अमित प्यार पुनि तात ।
अँखियाँ प्यासी दर्श बिन, अहनिशि अति अकुलात ॥१६०॥

हे तात! पुनः आप चारों राजकुमारों को मेरा असीमित प्यार देकर कहियेगा कि– आपके दर्शन के अभाव में मेरे नेत्र पिपासित हो दिनरात अत्यधिक व्याकुल रहते हैं।

प्राण सुखद सीतहिं तुम लाला । कहेउ मोर जस दशा विहाला ॥
बार बार मम सुरति कराई । कहेव प्यार जननी निठुराई ॥

हे लाल लक्ष्मीनिधि जी! आप प्राणों के लिये सुखदायी पुत्री श्री सीता जी से, मेरी जैसी मेरी विह्वल अवस्था है बखान कीजियेगा तथा बारम्बार मेरा स्मरण कराकर इस माता के हृदय की निष्ठुरता का वर्णन करते हुए प्यार कहना।

भगिनि सहित सब सखियन काहीं । प्यार भेंट वरणेउ सुख माहीं ॥
दिहेहु सबहिं कहँ भेंट सुखारी । अहं रहित निज ज्ञान बिसारी ॥

अपनी बहनों सहित सभी सखियों को सुखपूर्वक मेरा प्यार व भेंट कहना तथा सभी को अहं विहीन हो और अपनत्व के ज्ञान को भूल, सुख में समाकर भेंट अर्पित करना।

यहि विधि मातु कुमारहिं बाती । समुझाई प्रिय प्रेम प्रमाती ॥
सुनि कुमार मातहिं शिर नाई । गये भवन हिय हर्ष महाई ॥

इस प्रकार प्रिय प्रेम में मतवाली हुई अम्बा श्री सुनैना जी ने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को भली प्रकार समझाया जिसे सुन व अम्बा जी को शिर झुका प्रणामकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हृदय में महान हर्ष पूर्वक अपने भवन को गये।

आपहुँ कीन्हे विविध तयारी । जान अवध हित होत सुखारी ॥
फैली खबर नगर महँ भाती । कुँअर गवन कल अवध प्रभाती ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वयं भी सुखपूर्वक श्री अयोध्यापुरी जाने के लिए विभिन्न प्रकार की तैयारी की। श्री मिथिलापुरी में यह सुन्दर समाचार फैल गया कि– कल प्रातः काल राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान करेंगे।

दो०– नगर नारि नर नेह नव, सिद्धि सदन सुखदात ।
आवत जात उमंग भरि, कहत सुनत प्रिय बात ॥१७१॥

उस समय श्री जनक नगर निवासी पुरुष व स्त्री नवीन प्रेम में भरकर सुख प्रदायक श्री सिद्धि सदन में उत्साह परिपूर्ण हो प्रियकर बातें कहते सुनते हुए आ जा रहे थे।

सिद्धि कुँअरि शुचि समयहिं पाई । पति सन बोली बात सुहाई ॥
नाथ लाड़िली मोर ननन्दहिं । कहिहैं मिलन प्रणाम अनन्दहिं ॥

शुभ समय प्राप्त कर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने अपने प्राणपति कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से विनय पूर्वक सुन्दर वाणी से कहा– हे नाथ! मेरी लाड़िली ननन्द श्री सिया जू को आनन्द पूर्वक मेरा भेंट व प्रणाम कहियेगा।–––

सिय बिन दशा मोर जस होई । कहिहैं तस प्रभु हिरदय जोई ॥
रामहिं पुनि पुनि कुशल हमारा । मिलन प्रणाम विनय वर प्यारा ॥

–––हे नाथ! श्री सिया जू के बिना, मेरी जैसी अवस्था हो रही है उसे आप उसी प्रकार अपने हृदय में बिचार कर उनसे निवेदन करियेगा। पुनः श्री राम जी महाराज से बार–बार सुन्दर विनय व प्रेम–पूर्वक हमारी कुशलता व भेंट, प्रणाम कहियेगा।–––

दरश प्यास अँखियाँ अकुलानी । कहिहैं समय पाय हित सानी ॥
सीय सासु कहँ विनय विभोरी । कहिय प्रणाम दोउ कर जोरी ॥

–––अनुकूल समय पाकर आप मेरे हित से सनी हुई यह बात कहियेगा कि– आपके दर्शनों की प्यास से मेरी आँखें व्याकुल हो रहीं हैं। श्री सीता जू की सासू श्री कौशिल्या जी से प्रेम विभोर हो विनय पूर्वक दोनों हाथ जोड़कर मेरा प्रणाम कहियेगा।

लाल लाड़िली वेगि बुलाई । दैहैं दिव्य दरश सुखदाई ॥
भेंट विविध विधि सब कहँ दीजै । कृपा याचना मोर करीजै ॥

पुनः लाल साहब श्री रघुनन्दन जू व लाड़िली श्री सिया जू से शीघ्र लिवा पधार कर अपना सुखप्रद दिव्य दर्शन प्रदान करने हेतु कहियेगा तथा सभी को विभिन्न प्रकार की भेंट देकर मेरे हेतु कृपा की याचना कीजियेगा।

दो०–यहि विधि मधुर विनीत वर, श्री सिधि कहत सँदेश ।
सीय राम शुचि सुरति सनि, भूली ज्ञान अशेष ॥१६२॥

इस प्रकार मधुर व सुन्दर विनय पूर्ण सन्देश श्री सिद्धि कुँअर जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से कह रही थीं तथा श्री सीताराम जी की पवित्र स्मृति में डूबकर वे अपना सम्पूर्ण ज्ञान भूल गयीं।

तबहिं कुमार सिद्धि समुझाये । लहहौ लाड़िली लाल लिवाये ॥
सिधि धरि धीर पियहिं सनमानी । भाव भरी पति प्रेम अघानी ॥

तभी कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सिद्धि कुँअरि जी को स्वस्थ करा, समझाया कि– मैं

लाड़िली श्री सिया जू व लाल साहब रघुनन्दन जू को लिवा लाऊँगा। उनके वचनों को श्रवण कर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने धैर्य धारण किया व भाव में भरकर अपने प्राण वल्लभ श्री लक्ष्मीनिधि जी का सम्मान करते हुये पति प्रेम से परम प्रसन्न व संतृप्त हो गयीं।

जानि निशा बड़ि जनक कुमारा । सोयउ सुमिरत राम उदारा ॥
जागे बहु प्रसन्न बड़ भोरे । नित्य निवाहि प्रेम रस बोरे ॥

अत्यधिक रात्रि हुई जानकर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने प्रिय बहनोई परमोदार श्री रामजी महाराज का स्मरण करते हुए शयन कर गये तथा अत्यधिक प्रसन्नता के साथ बड़े सबेरे जागकर, प्रेम रस में डूबे हुए नित्य कर्मो का निर्वाह किये।

जननि जनक पद नायो माथा । माँगी विदा जोर युग हाथा ॥
दै अशीष मिथिलेश सुनैना । रक्षा मंत्र पढ़े उर चयना ॥

पुनः उन्होंने श्री अम्बा जी व श्रीमान् पिता जी के चरणों में सिर झुका प्रणाम कर दोनों हाथ जोड़ उनसे विदा माँगी। तब श्री मिथिलेश जी महाराज व श्री सुनैना अम्बाजी ने आनन्दित हृदय से रक्षा मंत्र का पाठ किया।

कछुक पवाय कहेव अब जाहू । अवध नगर सुत सहित उछाह ॥
सुनि कुमार पद वन्दन कीना । सिद्धि सदन गे प्रेम प्रवीना ॥

पुनः कुछ प्रभु प्रसाद पवाकर, उन्होंने कहा हे लाल! अब आप आनन्द पूर्वक श्री अयोध्यापुरी को प्रस्थान करें। अपने श्रीमान दाऊजी व अम्बा जी की आज्ञा सुनकर प्रेम पारंगत कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उनके चरणों की वन्दना की तथा अपने भवन श्री सिद्धि–सदन चल दिये।

दो०–पूजि सविधि करि आरती, सिद्धि प्रेम रस खानि ।
मंगल स्तव पुनि पढ़ी, गिरी चरण महँ आनि ॥१६३॥

सिद्धि–सदन में प्रेम व रस की खानि श्री सिद्धि कुँअरि जू ने विधिपूर्वक उनका पूजन कर आरती उतारी तथा मंगलानुशासन कर उनके चरणों में सप्रेम प्रणिपात किया।–––

कुँअर उठाय उरहिं लिय लाई । अति सप्रेम बहु विधि समुझाई ॥
चले बहोरि प्रेम रस पागी । आई सिद्धि द्वार अनुरागी ॥

–––तदनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सिद्धि कुँअरि जी उठा कर हृदय से लगा लिया तथा अत्यन्त प्रेम पूर्वक उन्हें बहुत प्रकार से समझा कर प्रेम रस में डूबे हुए वे चल दिये, श्री सिद्धि कुँअरि जी अनुराग प्रपूरित हो द्वार तक आ गयीं।

गये कुँअर गुरु गेह बहोरी । करि प्रणाम बोले कर जोरी ॥
आयसु होय नाथ अब मोही । राम दरश हित जाँव सुसोही ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज के आश्रम गये और उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़कर बोले– हे नाथ! अब मुझे आज्ञा दीजिये कि– मैं परम सुशोभन श्री राम जी महाराज के दर्शन के लिये प्रस्थान करूँ।–––

रावरि दया धाम साकेता। मिलै दरश मोहिं कृपा निकेता॥
तुमहिं छाड़ि गति दूसर मोरे। नाहिन नाथ जानु जिय कोरे॥

———हे कृपा के आगार स्वामिन्! आपकी कृपा से ही मुझे श्री साकेत धाम द्ध्श्री अयोध्यापुरी) के दर्शन प्राप्त हो रहे हैं क्योंकि हे नाथ! आप तो मेरे हृदय को भली–भाँति जानते ही हैं कि– आपके अतिरिक्त मेरी दूसरी गति नहीं है।

अस कहि परेउ चरण धरि माथा। लीन्हे हृदय लाय मुनि नाथा॥
प्रीति प्रतीति कुँअर की देखी। मुनिवर माने मोद विशेषी॥

ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी आचार्य चरणों में अपना मस्तक रखकर गिर पड़े तब मुनिराज श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अपने प्रति प्रीति व प्रतीति को देखकर मुनिवर श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज ने अपने मन में विशेष आनन्द माना।

दो०– मंगल शासन पुनि किये, कुँअर शिरहिं धरि हाथ।
सुख युत गवनहु शिष्य वर, अवध धाम रघुनाथ॥१६४॥

पुनः मुनिवर श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शिर पर अपना कर कमल रखकर मंगलानुशासन किया और कहा– हे शिष्य श्रेष्ठ श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप सुखपूर्वक रघुनाथ जी के धाम श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान करें।

दशरथ सहित अवधपुर वासी। सीय राम नित आनँद रासी॥
तुमहिं देखि जइहैं मुद मोई। रामहिं हर्षण तोहि लखि होई॥

हे राज कुमार! सभी अयोध्यापुर–निवासियों सहित चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज और नित्य आनन्द की राशि श्री सीताराम जी आपको देखकर आनन्द में डूब जायेंगे तथा श्री राम जी महाराज को तो आपके दर्शन से अपार हर्ष प्राप्त होगा।

कृपा नेह एकान्तिक सेवा। पैहौ नित्य सुखद रस देवा॥
मज्जन अशन शयन दिन चारा। होई नित सँग राम कुमारा॥

आप नित्य उनकी कृपा, प्रीति तथा सुखदायी व रसप्रदायिनी एकान्तिक सेवा प्राप्त करेंगे। स्नान, भोजन व शयन आदि आपकी दिनचर्यायें नित्य ही श्री राम जी महाराज के साथ सम्पादित होंगी।

आपुन तुमहिं राम सब देई। नयन विषय रखिहैं रस गेई॥
सब प्रकार अभिलाष तुम्हारी। सीय पुरइहैं लखि रुख सारी॥

आपके प्रिय भाम श्री राम जी महाराज आपको अपना सर्वस्व प्रदान कर अपनें नेत्रों का विषय बनाकर रस में डुबाये रखेंगे तथा आपकी सभी प्रकार की सम्पूर्ण अभिलाषाओं को आपकी अनुजा श्री सीता जी आपकी रुचि को देखते हुए पूर्ण करेंगी।

राम हृदय नित वास तुम्हारा । सत्य सत्य सुनि सत्य उचारा ॥
सुनि अशीष दृग नीर बहाई । गुरु पद धोयो शीश नवाई ॥

हे वत्स! श्री राम जी महाराज के हृदय में आपका नित्य निवास है, यह मैं त्रिवाचा सत्य कह रहा हूँ। अपने गुरुदेव जी के आशीर्वचनों को सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने नेत्रों से अश्रु बहाते हुए, श्री गुरुदेव भगवान के चरणों को शीष झुका प्रणाम कर प्रेमाश्रुओं से प्रच्छालित कर दिया।

दो०—माँगे विदा सुप्रेम उर, पुनि पुनि वन्दन कीन ।
आयसु दै मुनि नाथ तब, बोले वचन प्रवीन ॥१६५॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने सद्गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी महाराज के चरणों की बारम्बार वन्दना कर सुन्दर प्रेम पूर्ण हृदय से श्री अयोध्यापुर जाने हेतु आज्ञा माँगी तब परम विज्ञ मुनिवर श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज ने आज्ञा प्रदान करते हुये कहा———

कहेव बसिष्ठहिं मोर प्रणामा । भूपहिं आशिष अमित अकामा ॥
भ्रातन युत रघुनन्दन रामहिं । अमित प्यार बोलेहु वसु यामहिं ॥

हे कुमार! आप रघकुल आचार्य श्री बसिष्ठ जी महाराज को मेरा प्रणाम कहियेगा, श्रीमान् दशरथजी महाराज को निष्काम आशीर्वाद दीजियेगा तथा भ्राताओं सहित रघुनन्दन श्री राम जी महाराज को मेरा अष्टयाम असीम प्यार कहियेगा।

भगिनिन सह श्री जनक दुलारी । नेह कृपा मम लहैं सुखारी ॥
परम अकिंचन मम कछु नाहीं । भेंट काह पठवौं तिन्ह पाहीं ॥

बहनों सहित जनक दुलारी श्री सिया जू सुख में सनी हुई मेरे प्रेम व कृपा को प्राप्त करें। मैं तो अत्यन्त अकिंचन हूँ और मेरा कुछ भी नहीं है इसलिए मैं उनके पास क्या? भेंट भिजवाऊँ।

इतना कहत नीर दृग आया । लीन्हे तुलसी दलहिं उठाया ॥
अश्रु भिगोय दलहिं मुनि राई । राम सियहिं भेजेव सुखछाई ॥

इतना कहते ही मुनिराज श्री याज्ञवल्क्य जी की आँखें अश्रुपूरित हो गयीं तब उन्होंने तुलसी दल उठा लिया और अपने अश्रुओं से भिगाकर सुखपूर्वक श्री राम जी महाराज व श्री किशोरी जू के लिए भेंट स्वरूप भिजवा दिया।

कहेव जाहु सुत सत सुख पागे । सुनि कुमार अतिशय अनुरागे ॥
सकल द्विजन कहँ शीष नवाई । सुमिरि हृदय सियराम गोसाईं ॥

पुनः श्री याज्ञवल्क्य जी बोले— हे तात! तुम सच्चे सुख में डूबे हुए श्री अयोध्यापुर को प्रस्थान करो, उनकी आज्ञा सुनकर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त अनुराग में भर गये और सभी ब्राह्मणों को शिर झुका प्रणाम कर हृदय में अपने प्रभु श्री सीताराम जी का स्मरण करते हुए———

दो०—दिव्य रथहिं राजे मुदित, श्री निमिवंश कुमार ।
दुन्दुभि धुनि आकाश ते, झरहिं सुपुष्प अपार ॥१६७॥

–––निमिवंश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी आनन्दपूर्वक दिव्य रथ में विराज गये। उस समय आकाश से दुन्दुभी ध्वनि और सुन्दर असीमित पुष्पों की वर्षा होने लगी।

छं०– सिय राम दरशन हेतु वर, गवनत कुँअर मिथिलेश को ।
सुर जानि आनन्द पागि प्रिय, सेवहिं सुखद भक्तेश को ॥
करि गान दुन्दुभि चोट दय, जय जय सदा जय जय करैं ।
पुनि प्रेम पागहिं पुष्प प्रिय, वरषहिं विविध झर झरि परैं ॥

मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीताराम जी के सुन्दर दर्शन के लिए श्री अयोध्यापुरी जा रहे हैं, यह जानकर देवता आनन्द में डूब, भक्तों के भूप राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की सुखदायी सेवा कर रहे हैं तथा गायन करते हुए दुन्दुभी बजा–बजाकर जय हो–जय हो, सदैव जय हो, कह रहे हैं। पुनः वे प्रेम परिप्लुत हो विभिन्न प्रकार के प्रियकर पुष्पों की झड़ी लगाकर वर्षा करने लगते हैं।

ऋषि मग्न आनन्द पेखि प्रिय, जातो कुँअर प्रभु धाम है ।
करि स्वस्ति वाचन नेह नव, आशिष दये अभिराम है ॥
मन होय पूरण काम नित, सिया राम सेवत सुख सरैं ।
प्रिय प्यार पावहिं तासु कर, भरि भाव मोदित रस झरैं ॥

ऋषिवर श्री याज्ञवल्क्य जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रभु श्री राम जी महाराज के धाम श्रीअयोध्यापुरी जाते हुए देखकर आनन्द मग्न हो नवीन नेह पूर्वक स्वस्ति वाचन करते हुए सुन्दर आशीष दे रहे हैं कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की सभी मनोकामनायें नित्य पूर्ण हों, वे श्री सीताराम जी की सुखपूर्वक सेवा करते हुये उनके प्रिय प्यार प्राप्त कर भाव में भरे हुए आनन्दित हृदय रस निर्झरण करते रहें।

पितु जात सूँघत पुत्र शिर, करि प्यार शुभ आशिष दई ।
नव नेह बाढ़हिं राम पद, छन छन सिया तव सुधि लई ॥
नर नारि देखहिं हर्षि हिय, कहि जय सुमन वरषन लगे ।
जड़ जीव चेतन खानि चहुँ, हरषण लखहिं सुख महँ पगे ॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी के पिता श्रीमान् जनक जी महाराज श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान करते हुए अपने पुत्र का शिर सूँघते हैं तथा प्यार करते हुए शुभाशीष देते हैं कि– आपका श्री राम जी महाराज के चरणों में नवीन प्रेम बृद्धिंगत होता रहे व श्री सीता जी प्रत्येक क्षण आपकी स्मृति करती रहें। श्री मिथिलापुरी के सभी स्त्री–पुरुष हर्षित हृदय हो कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी को प्रस्थान करते हुए देख रहे हैं तथा जय–जय कहते हुए उन पर पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्रीराम हर्षण दासजी महाराज कहते हैं कि कुमार के अयोध्यापुर प्रस्थान के समय चारों प्रकार के (अण्डज, स्वदेज, उद्भिज, व जरायुज) जड़ चेतनात्मक सभी जीव सुख में पगे उन्हें हुए निहार रहे थे।

सो०—आनँद भयो अपार, चलत कुँअर मिथिलेश के ।
धेनु वसन उर हार, विविध दान विप्रन लहे ॥१६७॥

मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान करते समय असीमित आनन्द हुआ, उस समय ब्राह्मणों ने गाय, वस्त्र और हृदय हार आदि विभिन्न प्रकार के आभूषण दान में प्राप्त किये।

संग अनुज सब सखा सुखारी । सेवक सचिव सुवेष सम्हारी ॥
विप्र साधु सब रुचि अनुसारा । चढ़ि चढ़ि वाहन चले सुखारा ॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ सुखपूर्वक सुन्दर वेष बनाये हुए उनके सभी भ्रातृ, सखा, सेवक तथा सचिव आदि चल रहे थे। ब्राह्मण व साधुजन, सभी अपनी इच्छानुसार वाहनों में सवार हो सुख में भरकर उनके साथ चल पड़े।

अमित भेंट श्री तिरहुत राजा । भेजी भरि भरि यानहि साजा ॥
सेनप कछुक सेन चहुँ भाँती । लै संग चल्यो हृदय हर्षाती ॥

तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज ने श्री अयोध्यापुरी में भेंट देने के लिए असीमित भेंट सामग्री सजे हुए वाहनों में भर—भरकर भिजवा दी। सेनापति हृदय में हर्षित होकर चारों प्रकार की (रथ, गज, अश्व व पैदल) सुन्दर सेना की टुकड़ी लेकर उनके साथ चलने लगे।

विविध वाद्य लै विविध बजनिया । चले बजावत निज सुख सनिया ॥
होत पंच ध्वनि मोद अपारा । मिथिलहिं कीन्ह प्रणाम कुमारा ॥

विभिन्न प्रकार के वादक गण भाँति—भाँति के वाद्य साथ लेकर उन्हें बजाते हुए अपने आत्म—सुख में सने हुए साथ चल पड़े। कुमार के अयोध्या प्रस्थान के समय पंचध्वनि (जय घ्वनि, बन्दी—घ्वनि, वेद घ्वनि, मंगलगीत ध्वनि व नगाड़ों की ध्वनि) हो रही थी व असीमित आनन्द छाया हुआ था। अनन्तर राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री मिथिलापुरी को प्रणाम किया।———

बहुरि सबहिं मन महँ शिर नाई । हृदय हर्ष कछु वरणि न जाई ॥
राज साज सब साथहिं लीने । चले कुँअर हरषाय प्रवीने ॥

———पुनः उन्होंने समुपस्थित सभीजनों को मन में शिर झुका प्रणाम किया। उस समय उनके हृदय में ऐसा हर्ष हो रहा था जिसका किंचित भी वर्णन नहीं किया जा सकता। इस प्रकार सम्पूर्ण राज—सामग्री अपने साथ लेकर परम दक्ष कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हर्षित होकर चल दिये।

दो०—विविध शकुन सरसन लगे, गवनत सुत मिथिलेश ।
जय जय एकहिं साथ रव, कीन्हे सबहिं विशेष ॥१६८॥

मिथिलेश नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी के श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान करते समय विभिन्न प्रकार के सगुन होने लगे तथा उपस्थित सभी जनों ने एक साथ मिलकर विशेष जय ध्वनि की।

कुँअर हृदय प्रभु प्रेम पसारा । कवन कहै को परखन वारा ॥
मन महँ होतो परम उछाहा । लगत मिलौं उड़ि जाय उमाहा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रति जैसा प्रेम है उसे वर्णन करने व समझने वाला कौन हो सकता है? अर्थात् उनके राम प्रेम को न तो कोई वर्णन कर सकता और न ही कोई समझ सकता। उनके हृदय में ऐसा अपार आनन्द उमड़ रहा था कि– मैं उड़कर उल्लास पूर्वक प्रभु श्री राम जी महाराज से जा मिलूँ।

विविध विचार करैं मन माहीं । प्रेम पयोधि प्रवाह बहाहीं ॥
प्रथम मिलेव पथ पाकर ग्रामा । जहाँ बराती बसे सुधामा ॥

वे अपने मन में विभिन्न प्रकार के विचार करते हुए प्रेम–सागर के प्रवाह में प्रवाहित हुये जा रहे थे। इसप्रकार चलते हुये सर्व प्रथम मार्ग में वह सुन्दर धाम 'पाकर ग्राम' मिला जहाँ बारातियों ने निवास किया था।

कहेव सचिव कुँअरहिं समुझाई । आज बसैं इत सदन सुहाई ॥
राम वास थल अहे प्रवीना । सेवन योग सुखद रस भीना ॥

पाकर ग्राम के निवास भवन को देखकर श्री मंत्री जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से समझाकर कहा कि– हे परम दक्ष कुमार! आज इस सुन्दर भवन में ही निवास किया जाय क्योंकि यह श्री राम जी महाराज का वास स्थल है, जो हम सभी के सेवन योग्य, सुख प्रदायक और रस से ओत–प्रोत है।

सुनत कुँअर सरसे सुख पाई । प्रेम प्रवाह नयन छवि छाई ॥
उतरि यान पहुँचे तेहिं वासा । दीखे सुखद सुतेज प्रकाशा ॥

सचिव की वाणी सुनते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुख प्राप्तकर प्रेमरस से ओत–प्रोत हो गये तथा प्रभु श्री राम जी महाराज की छवि उनकी नेत्रों में छा जाने से वे प्रेम के प्रवाह में बह गये। अनन्तर वाहन से उतर पाकर ग्राम के उस निवास में पहुँचे जो परम सुखदायी, सुन्दर तेज से परिपूर्ण व दिव्य प्रकाश समन्वित दिखाई दे रहा था।

दो०–प्रथम प्रदक्षिण प्रेम पगि, प्रभु प्रिय वासहिं कीन्ह ।
पुनि पुनि कीन्हे दण्डवत, धूरि शीष शुचि लीन्ह ॥१६९॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रभु निवास स्थल की प्रेम परिप्लुत हो सर्वप्रथम प्रदक्षिणा की तथा बार–बार दण्डवत कर वहाँ की पवित्र रज (धूल) को अपने शिर में धारण किया।

यथा योग निज रुचि अनुसारी । बसे थलहिं सब सहित सुखारी ॥
कुँअर लीन्ह निज भ्रात बुलाई । चले विलोकन कक्ष सुहाई ॥

वहाँ यथा–योग्य अपनी–अपनी इच्छा के अनुसार सभी समाज सहित वे उस निवास स्थल में सुखपूर्वक निवास किये। पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने भ्रातृगणों को बुलाकर उस सुन्दर कक्ष का दर्शन करने चल दिये।–––

जहाँ राम सोये निशि माँहीं । पहुँचे देखन हरष समाहीं ॥
दीन्ह पलँग दाहिन रस भीनें । पुष्प अरपि पुनि शिर शुभ दीन्हे ॥

———जहाँ पर श्री राम जी महाराज ने रात्रि में शयन किया था। श्री राम शयन स्थल का दर्शन करने हर्ष मे समाये हुये वे कक्ष के भीतर पहुँच गये। रस परिपूरित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने पलंग के दाहिनी ओर पुष्प अर्पित कर अपना शिर रख प्रणाम किया।

देखि सुसज्जित पलँग सुहावा । मन महँ वर रामहिं सुतवावा ॥
भे विभोर नयनन जल धारा । कुँअर रँगेव प्रभु प्रेम मझारा ॥

उस सुन्दर सुसज्जित पलंग को देखकर वे मन से उसमें नव दूलह श्री राम जी महाराज को शयन कराकर विभोर हो गये, उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी और जनक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्रीरामजी महाराज के प्रेम में रँग गये।

पुनि सुचेत लहि पलकहिं पेखेव । केशर खौर झरी तहँ देखेव ॥
लीन्ह उठाय नयन निज लायो । कछुक खाय शिर तिलक लगायो ॥

सुन्दर चैतन्यता प्राप्त कर उन्होंने पलंग की ओर देखा तो वहाँ केशर की खौर गिरी हुई पाया जिसे उन्होंने उठाकर अपनी आँखों से लगा लिया और कुछ अंश खाकर शेष का शिर में तिलक लगा लिया।

दो०—प्रेम पगे मिथिलेश सुत, उपवर्हन हिय लाय ।
कक्षहिं कीन्ह प्रणाम पुनि, गये अनत सुख पाय ॥१७०॥

प्रभु प्रेम में पगे हुए मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने वहाँ रखे हुए मसनद को हृदय से लगा लिया और सुखपूर्वक कक्ष को प्रणाम कर दर्शन के लिये अन्य कक्ष में चले गये।

सीय शयन गृह तैसहिं देखे । प्रेम सने उर भाव विशेषे ॥
प्रमुख प्रमुख सब शयनागारा। देखे कुँअर सनेह सँभारा ॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उसी प्रकार श्री सीता जी के शयन कक्ष का प्रेम परिप्लुत हृदय से विशेष भाव पूर्वक दर्शन किया। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रेम पूर्वक वहाँ के सभी प्रमुख शयनागारों के दर्शन किये।

बहुरि सबन सह भोजन पायो । सात्विक सूक्षम भोग लगायो ॥
राम शयन गृह कुँअर सुगवने । भूमि शयन कीन्हे सुख भवने ॥

पुनः उन्होंने सभी के साथ, भगवदर्पित कर सात्विक व सूक्ष्म भोजन ग्रहण किया तथा सुख के सदन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज के शयन कक्ष में जाकर भूमि में ही शयन किये।

भ्रातन कीन्हे सेव सुखारी । आयसु लहि पुनि गये सिधारी ॥
सुख सह सोई सकल समाजा । निज निज वास सुशोभ सुसाजा ॥

भ्रातृ—गणों ने उनकी सुखपूर्वक सेवा की व आज्ञा प्राप्त कर वहाँ से शयन के लिये चले गये। इस प्रकार सम्पूर्ण समाज अपने अपने निवास में सुशोभनीय व सुसज्जित शयनासन मे शयन कर गयी।

प्रेमी कुँअरहिं नींद न आई। बैठे सुमिरहिं सिय रघुराई॥
देखि देखि रघुनन्दन पलँगा। होय उदीपन मन रस गलगा॥

परन्तु प्रभु प्रेमी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को निद्रा ने वरण नहीं किया और वे बैठे हुए श्री सीताराम जी का स्मरण करते रहे। श्री राम जी महाराज के पलंग को देख–देखकर उनके हृदय में प्रेमोद्दीपन होने लगा उनका हृदय रस की परिबृद्धि के कारण द्रवित हो गया।

कबहुँ लेंय सिय रघुवर नामा। सुमिरहिं चरित कबहुँ सुखधामा॥
भये प्रेम वश तन सुधि नाही। आसन लुढ़कि गये छन माहीं॥

उस समय वे कभी तो श्री सीताराम जी के नाम का उच्चारण करते तो कभी सुखों के धाम प्रभु सीताराम जी के चरित्रों का स्मरण करते थे। इस प्रकार वे प्रेम के वशीभूत हो गये, उन्हें शरीर की स्मृति न रही और एक ही क्षण में अपने आसन में लुढ़क कर गिर पड़े।

दो०– मुरछित शान्त विदेह सुत, गये राम रस भींज।
लखे स्वप्न सम दृश्य इक, राम कृपा दुख छीज॥१७१॥

विदेहराज नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी मूर्छित व शान्त होकर श्री राम जी महाराज के विरह रस में भीग गये तब श्री राम जी महाराज की कृपा से उन्होने स्वप्नवत एक दुख विनासक (सुख संवर्धक) दृश्य का दर्शन किया।

सो मैं कहहुँ सुनहु हनुमाना। प्रेम प्रदायक गत अभिमाना॥
स्वप्न बीच रघुवर रस रागे। आये कुँअर प्रीति प्रिय पागे॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमानजी! मैं उस स्वप्न दृश्य का वर्णन कर रहा हूँ! जो अभिमान को दूर करने वाला व प्रभु प्रेम प्रदायक है। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रियकर प्रीति में पगे तथा उनके रस में आसक्त हुए श्री राम जी महाराज स्वप्न के बीच आ गये–––

मिले तिनहिं तन प्रीति समाई। बार बार निज हृदय लगाई॥
बोले मधुर सुनहु मम प्यारे। भेंटन आयों तुमहिं सुखारे॥

–––तथा प्रीति में समाये हुए वे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुन्दर वपु को बार–बार हृदय से लगा कर भेंट किये व मधुर वाणी से बोले– हे मेरे प्यारे! मैं सुखपूर्वक आप से भेंट करने हेतु आया हूँ।

आवत जानि अवध मम प्राना। बनेव तुम्हारो मैं अगवाना॥
सुनत कुँअर प्रभु कृपा महानी। बोले वचन प्रेम रस सानी॥

हे मेरे प्राणों के प्राण! आपको श्री अयोध्यापुरी आते हुए जान कर मैं आपके स्वागत हेतु आगे आया हूँ। प्रभु श्री राम जी महाराज की ऐसी महान कृपामयी वाणी सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम रस से सने हुए वचन बोले–

जनहिं सदा देवहिं सुख माना। सहज स्वभाव तुम्हार सुजाना॥
कहँ मैं कहाँ राम रघुराजा। राउर विरद गरीब निवाजा॥

हे सर्वज्ञ स्वामी! आपका तो सहज स्वभाव है कि– आप अपने सेवकों को सुख व सम्मान प्रदान करते रहते हैं। आपका विरद ही गरीबों पर दया करना है अन्यथा कहाँ मैं और कहाँ रघुकुल के राजा श्री राम जी महाराज आप।

दो०–आपहुँ ते बड़ मानियत, जनहिं सदा यह रीति ।
अस स्वभाव आपहि फबै, धनि धनि प्रीति प्रतीति ॥१७२॥

हे नाथ! आपकी सनातन यही रीति है कि– आप, अपने सेवकों को अपने से भी बड़ा मानते हैं। ऐसा महान स्वभाव आपको ही शोभा देता है, आपकी प्रीति और प्रतीति धन्यातिधन्य है।

अकथ अलौकिक सुखद स्वभाऊ। जानि भजहिं शिव काग महाऊ ॥
अस कहि लायो हृदय कुमारा। प्रिय प्रभु पायो प्राण अधारा ॥

आपके अकथनीय, संसार से परे व सुख प्रदायक स्वभाव को जानकर ही महान ईश्वर श्री शिव जी व भक्त–प्रवर श्री काग भुसुण्डि जी आपका भजन करते रहते हैं। ऐसा कह कर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री राम जी महाराज को अपने हृदय से लगा लिया मानों वे प्राणों के अधार प्रिय प्रभु श्री राम जी महाराज को प्राप्त कर लिये हों।

बहुरि राम कुँअरहिं समुझाई । सोवहिं सखे नींद मोहिं आई ॥
अस कहि लै श्यालहि रघुराया। पौढ़े पलँग प्रेम रस छाया ॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को समझा कर कहा हे सखे! अब शयन कीजिये मुझे नींद आ रही है। ऐसा कहकर अपने प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी को लेकर श्री राम जी महाराज प्रेमानन्द में समाये हुए पलँग में लेट गये।

युगल कुमार प्रेम सुख साने । इक सँग सोये उर लपटाने ॥
बड़े भोर वाद्यन धुनि काना । सुनत जगे सिय भ्रात अमाना ॥

इस प्रकार दोनों राजकुमार प्रेम सुख में सने हुए एक दूसरे के हृदय से लिपट कर एक साथ शयन कर गये। ब्रह्म मुहूर्त में मधुर वाद्यों की ध्वनि अपने श्रवणों में सुनकर श्री सिया जू के अमानी भैया श्री लक्ष्मीनिधि जी जागृत हुए–––

आपुहिं पेखि पलँग महँ सोये । अचरज गुने गरुअ रस मोये ॥
लोटत रहेव भूमि मैं आजू । राम पलँग कस सोवत भ्राजूँ ॥
स्वप्न ज्ञान हिरदय महँ आयो । कुँअर सुरति कर बहु बिलखायो ॥

–––तब स्वयं को श्री राम जी महाराज के पलँग में शयन किए देखकर प्रेमरस में डूबे हुए वे अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हुये कि– मैं तो आज भूमि में लोट रहा था अर्थात् भूमि में शयन किया था फिर अब श्री राम जी महाराज के पलँग में कैसे सोया हुआ हूँ। कुछ समय में जब उनके हृदय में स्वप्न का परिज्ञान हुआ तब उसका स्मरण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी बिलख–विलख कर बहुत रुदन करने लगे।

दो०–राम कृपा हिय गुनि समुझि, मन महँ धारे धीर ।
नित्य कर्म किय प्रेम युत, निमिकुल भूषण हीर ॥१७३॥

तदुपरान्त अपने हृदय में श्री राम जी महाराज की कृपा का स्मरण कर उन्होंने मन में धैर्य धारण किया और श्री निमि–वंश रूपी आभूषण के अनमोल रत्न 'हीरा' कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी ने प्रेम पूर्वक नित्य कर्मो का सम्पादन किया।

कछुक पाय सब सहित कुमारा। चले अवध बजवाय नगारा ॥
बसे बराती जेहिं जेहि थाना। कुअरहुँ वास करत मतिवाना ॥

समाज सहित कुछ भगवत्प्रसाद ग्रहण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी नगाड़े बजवाते हुए श्री अयोध्यापुरी को प्रस्थान किये। इस प्रकार जिन–जिन स्थानों में बरातियों ने निवास किया था वहाँ–वहाँ, परम बुद्धिमान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी निवास करते चल रहे थे।

प्रभु गुण–गान कीर्तन होई । जात समाज अमित सुख मोई ॥
वन पर्वत नद नदी तलावा । ग्राम नगर जनपद मन भावा ॥

मार्ग में प्रभु श्री राम जी महाराज के गुणों का गायन तथा कीर्तन होता था। इस प्रकार सम्पूर्ण समाज असीमित सुख में डूबा हुआ श्री अयोध्या पुरी चला जा रहा था। वन, पर्वत, नद, नदी, तालाब, ग्राम, नगर तथा सुन्दर जनपद,–––

मन्दिर तीरथ आश्रम पावन । जहाँ वसैं मुनिजन शुभ भावन ॥
मग महँ परैं विलोक कुमारा। सचिवहिं पूँछत प्रेम प्रसारा ॥

–––मन्दिर, तीर्थ और पवित्र आश्रम आदि जहाँ मुनि–जन पवित्र–भावनाओं से परिपूर्ण हो निवास करते हैं, मार्ग में पड़ते थे जिन्हें देखकर कुमार प्रेम प्रपूरित हो अपने सचिव से उनके बारे में पूछते जाते थे।

विवरण सहित सुभग इतिहासा । नाम ग्राम अनुराग प्रकासा ॥
सहित महातम सचिव सयाना । वरणत सुनहिं कुँअर सुखसाना ॥

उन सभी के विवरण सहित सुन्दर इतिहास, माहात्म्य सहित नाम व ग्राम आदि चतुर सचिव प्रेम पूर्वक बतलाते जाते जिसे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुख में सनकर, श्रवण करते थे।

दो०–कहुँ कहुँ उतरि सुयान ते, दरशन करिबे हेत ।
तीरथ आश्रम मन्दिरहिं, जावत सचिव समेत ॥१७४॥

कभी कभी वे वाहन से उतरकर अपने सचिव सहित तीर्थों, आश्रमों व मन्दिरों में दर्शन करने के लिए भी जाते थे।

कहहिं सुनहिं सिय राम चरित्रा। मानत वाणी कर्ण पवित्रा ॥
राम सीय यश विशद मनोहर। मग वासी वरणहिं परमोदर ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीताराम जी के चरित्रों को कहते व सुनते हुये प्रस्थान कर रहे

थे तथा अपनी वाणी व कर्णों को पवित्र मानते थे। मार्ग के निवासी भी श्री सीताराम जी की परम उदार, व्यापक व मनोहारी कीर्ति का वर्णन किया करते थे।

कहहिं नारि नर इक इक पाहीं। लक्ष्मी निधिहिं देखि मग माहीं ॥
ये कुमार मिथिलेश दुलारा। रानि सुनयना मातु अधारा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अयोध्यापुरी प्रस्थान करते हुये देख–देख कर मार्ग में पुरुष–स्त्री आपस में कह रहे थे कि– ये श्री मिथिलेश जी महाराज के दुलारे कुमार और महारानी श्री सुनैना अम्बा जी के प्राणाधार पुत्र श्री लक्ष्मीनिधि जी हैं।

सिया भ्रात रघुनन्दन श्याला। सुभग शरीर विभूषण जाला ॥
जात लिवावन भगिनि स्वभामा। दशरथ पुरी अवध दिवि धामा ॥

सुन्दर वपु व आभूषणों के जाल से संयुक्त ये कुमार श्री सीताजी के प्रिय भइया व रघुनन्दन श्री राम जी महाराज के प्रिय श्याल हैं। ये अपनी बहन श्री सीता जी को अपने धाम श्री मिथिलापुरी में लिवाने के लिए श्री दशरथ जी महाराज के नगर दिव्य–धाम श्री अयोध्या जा रहे हैं।

सुनि सुनि हरषहिं मग नर नारी। देखि कुँअर कहँ होहिं सुखारी ॥
यहि विधि चले जात मग मोहैं। राम ध्यान मन लीन सुसोहैं ॥

यह सब सुन सुनकर मार्ग के पुरुष–स्त्री हर्षित होते तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देख–देखकर सुखी होते थे। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी मार्ग में सभी को मोहित करते हुए व अपने मन को श्री राम जी महाराज के ध्यान में लीन किये, जाते हुए सुशोभित हो रहे थे।

दो०– जस जस श्री मिथिलेश सुत, अवध नगर नियरात।
तस तस रामहिं मिलन की, त्वरा तीब्र अधिकात ॥१७५॥

मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी जैसे–जैसे श्री अयोध्यापुरी के समीप पहुँचते जा रहे थे, वैसे–वैसे ही उनके ह्रदय में श्री राम जी महाराज के मिलन की इच्छा अत्यधिक तीव्रतर होती जा रही थी।

रही अर्ध योजन सरि सरजू। पहुँचि गये तहँ भूप कुँअर जू ॥
सचिवहिं पूछत अति अतुराई। मन महँ रहेउ कुतूहल छाई ॥

इस प्रकार जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी वहाँ पहुँच गये जहाँ से परम पावन श्री सरयू जी मात्र आधा योजन दूर रह गयीं तब उनके मन में अत्यन्त कौतूहल छा गया और वे अत्यधिक व्यााकुल हो अपने सचिव से पूछने लगे।

मंत्रि प्रवर मोहिं वेगि बतावैं। कवन विपिन यह परम सुहावै ॥
परम प्रकाशमयी छवि भासै। सत चिद आनँद रूप प्रकाशै ॥

हे मंत्रि श्रेष्ठ! आप मुझे शीघ्र बताइये कि– यह परम सुहावना कौन सा वन है जो परम प्रकाशवान, शोभा–सम्पन्न व सच्चिदानन्दमय स्वरूप वाला दिखायी पड़ रहा है।

त्रिविध वायु वर वहत रँगीला । सुर तरु सम सब वृक्ष सुशीला ॥
नन्दन वनहुँ अमित इत वारै । मम मन आनन्द भरो अपारै ॥

यहाँ पर तीनों प्रकार की (शीतल, मन्द व सुगन्धित) आनन्ददायी वायु प्रवाहित हो रही है, सभी वृक्ष, देववृक्ष के समान सुन्दर शीलवान दीख रहे हैं, असीमित नन्दन वन भी यहाँ की वनश्री पर न्योछावर हैं तथा इसे देख–देखकर मेरा मन असीम आनन्द से ओत–प्रोत हुआ जा रहा है।

बोले सचिव सुनिय सरसाई । अहै प्रमोद विपिन सुखदाई ॥
रघुवर विहरहिं इत सुख धामा । भ्रातन सहित नित्य अभिरामा ॥

राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचन श्रवण कर उनके सचिव ने कहा– हे कुमार! आप आनन्दपूर्वक श्रवण करें, यह परम सुख प्रदायक 'प्रमोद वन' है। अपने भ्राताओं सहित सुख के धाम श्री राम जी महाराज यहाँ पर नित्य, सुन्दर विहार किया करते हैं।

दो०–सब ऋतु रह इत एक रस, विपिन प्रमोद ललाम ।
सरस सुखद मन हरत नित, सुर दुर्लभ सत धाम ॥१७६॥

यहाँ पर सभी ऋतुएँ एक समान रहती हैं तथा यह सुन्दर "प्रमोद वन" रसमय, सुखदायी, देव–दुर्लभ, मनोहारी, नित्य, व सत्य–स्वरूप दिव्य धाम है।

सुनत कुँअर मन आनँद भारी । उतरि यान सुधि देह बिसारी ॥
गिरेउ भूमि द्रुत लकुटि समाना । प्रेम प्रमोद न जाय बखाना ॥

सचिव के ऐसे वचन सुनते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी मन में अत्यानन्दित होकर वाहन से उतरे और शरीर की स्मृति भूल, शीघ्र ही छड़ी के समान भूमि में गिर पड़े उस समय उनके हृदय के प्रेम और आनन्द का बखान नहीं किया जा सकता।

धूरि धरे पुनि हर्षि स्वशीषा। वृक्षन भेंटे गुनि जगदीशा ॥
खग मृग जीव जन्तु तरु सारे। मन महँ हरि सम गुने सुखारे ॥

पुनः उन्होंने हर्षित होकर वहाँ की पावन रज (धूल) को अपने शिर में लगाया तथा वहाँ के वृक्षों को संसार के स्वामी श्रीरामजी महाराज के समान समझ कर उनसे भेंट किये। वहाँ के सभी पक्षी, पशु, जीव–जन्तु व वृक्ष आदिकों को कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने भगवान के समान सुख स्वरूप समझकर–––

सबहिं प्रणाम कीन्ह मन माहीं । भयो सुखी कहि जात सो नाहीं ॥
प्रेम मगन मिथिलेश दुलारे। सीयराम मय विपिन निहारे ॥

–––सभी को मन से प्रणाम किया तथा इतने सुखी हुए कि उसका बखान नहीं किया जा सकता। मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रेम मग्न हो प्रमोद वन का श्री सीताराम जी के स्वरूप में ही दर्शन किया।

देखि कुँअर कर नेह अपारा। प्रेम विभोर सकल परिवारा ॥
चलन कहेव युवराजहिं सचिवा। सुनत कुँअर धरि धीर सुमतिवा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के असीम प्रेम को देखकर सम्पूर्ण समाज प्रेम विभोर हो गया। तब सचिव ने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी से आगे चलने हेतु निवेदन किया जिसे श्रवणकर परम बुद्धिमान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी धैर्य धारण कर———

दो०—प्रेम पगे पाँयन चले, पेखत विपिन प्रमोद ।
आनन्दमय उर उमग उठ, सो जानै जेहिं मोद ॥१७७॥

———प्रेम मग्न हो, श्री प्रमोद वन का दर्शन करते हुए पैदल ही चल पड़े। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि— उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का आनन्द—स्वरूप हृदय तरंगायित हो उठता था, उनकी अवस्था तो वही जान सकता है जिसने उस आनन्द को प्राप्त किया हो।

कुँअर पयादे जातहिं जानी। चले सकल पायन सुख मानी ॥
चलत चलत सरयू नियराये। कल कल शब्द सुने सुख छाये ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को पैदल चलते जानकर उनका सम्पूर्ण समाज मन में सुखी हो, हुये पैदल ही चलने लगा। इस प्रकार चलते—चलते वे परम पावन श्री सरयू जी के समीप आ गये तथा उन्होंने श्री सरयू जी का सुख प्रदायक कल—कल नाद सुना।

पूछेव कुँअर जोरि युग हाथा। सुखमय शब्द कवन सरि पाथा ॥
बोलेव सचिव सुनहु नरवीरा। सरयू बहति अत्र शुचि नीरा ॥

तब युवराज श्री लक्ष्मीनिधि जी नें दोनों हाथ जोड़कर सचिव से पूँछा कि—हे मंत्रि प्रवर! यह श्रवण सुखदायी शब्द किस नदी के जल का है? सचिव ने कहा— हे नरवीर, राजकुमार! सुनिये, यहाँ पवित्र जल वाली श्री सरयू जी प्रवाहित होती हैं।———

विटप ओट नहिं परै दिखाई। केवल कल कल शब्द सुनाई ॥
कहत सुनत सरि महत महातम। उतपति प्रकरण सुखद पुरातम ॥

———जो वृक्षों की आड़ के कारण दिखाई नहीं दे रहीं, उनका केवल कल—कल शब्द ही सुनाई पड़ रहा है। श्री सरयू जी के अतिशय महान माहात्म्य और परम सुखदायी प्राचीनतम उत्पत्ति का प्रसंग कहते सुनते———

पहुँचि गये सरि सरयू तीरा। दरश करत भरि प्रेम अधीरा ॥
कीन्ह प्रणाम लोट भुइँ माहीं। कुँअर रंगे मन सरयू काहीं ॥
दीन्ही नयन वारि की भेंटी। निज उर ताप सकल विधि मेटी ॥

———अपने समाज सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सरयू जी के तट पर पहुँच गये तथा उनका दर्शन कर प्रेम में भरकर अधीर हो गये। अनन्तर युवराज श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रेमरंग में रंगे मन से भूमि में लेटकर श्री सरयू जी को दण्डवत प्रणाम किया व प्रेमाश्रुओं की भेंट अर्पित कर अपने

हृदय के ताप को सभी प्रकार से शान्त कर लिया।

दो०–बहुरि कुमारहिं सचिव शुचि, कहेव हृदय हर्षाय ।
इहै अवध दिवि जानियहिं, जो सरि पार लखाय ॥१७८॥

पुनः परम विज्ञ सविच ने हृदय में हर्षित हो कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी से यह परम पवित्र वार्ता कही–हे युवराज! आप श्री जान लें कि– यही परम दिव्य श्री अयोध्यापुरी है जिसका दर्शन श्री सरयू जी के उस पार हो रहा है।

जगजग चमचम चारहु ओरा । जनु रवि अवलि घिरी तम तोरा ॥
दीख रहेव परिकोट सुहावा । भीतर जासु धाम भल भावा ॥

वहाँ चारो ओर अत्यधिक प्रकाश से परिपूर्ण, चमकता हुआ अतिशय घने अंधकार को विनष्ट करने के लिए, सूर्य की कतारों के समान सुन्दर परिकोटा दिखाई दे रहा है जिसके भीतर परम सुशोभन श्री अयोध्या धाम स्थित है।

सरयू तीर तीर शुभ आश्रम । सोह मुनिन के जान यथा क्रम ॥
विविध वाटिका मंदिर सोहैं । मनहु सरित भूषण मन मोहैं ॥

श्री सरयू जी के किनारे–किनारे क्रमानुसार मुनियों के शुभ आश्रम सुशोभित हो रहे हैं। यहाँ विभिन्न प्रकार की वाटिकायें व मंदिर ऐसे सुशोभित हैं मानों वे श्री सरयू जी के मनोमुग्धकारी आभूषण हों।

अवधहिं कीन्ह कुमार प्रणामा । भे मन मगन देखि जनु रामा ॥
पानि जोरि पुनि पुनि शिर नाई । निर्भर नेह निरखि सुख पाई ॥

सचिव की वाणी श्रवणकर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री अयोध्यापुरी को प्रणाम किया तथा ऐसे मन मग्न हो गये जैसे श्री राम जी महाराज के दर्शन कर रहे हों। पुनः वे हाथ जोड़कर बार–बार शिर झुका प्रणाम करते है तथा प्रेम के वशीभूत हो श्री अयोध्यापुरी को निहार–निहार कर सुख प्राप्त करते हैं।

याही बिच आई बहु तरणी । सुखद सुशोभित जाय न बरणी ॥
सबहिं चढ़ाय कुँअर मति माना । आपहुँ चढ़ेव हृदय हरषाना ॥
शुचि सरि लहर विलोकत कैसे । रसिक देख रस सिन्धुहिं जैसे ॥

इसी समय वहाँ परम सुखदायी व सुशोभित बहुत सी नौकायें आ गयीं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। परम बुद्धिमान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी लोगों को उन नौकाओं में चढ़ाकर हर्षित हृदय स्वयं भी चढ़ गये। वे श्री सरयू जी की लहरों को इस प्रकार देख रहे थे जैसे कोई परम रसिक रस के महासागर को देखता है।

दो०–परशि लहर दोउ पानि सो, लेत शिरहिं सुख सींचि ।
कुँअरहिं मिलन उमंग उर, उठति मनहुँ सरि बीचि ॥१७९॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी दोनों हाथों से सुखपूर्वक श्री सरयू जी की लहरों का स्पर्श कर अपने शिर में जल सिंचन कर लेते थे। श्री सरयू जी को देखकर ऐसा लग रहा था मानों कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से मिलने की, उमंग हृदय में होने के कारण ही श्री सरयू जी में लहरें उठ रही हैं।

उतरि पार सब मैथिल भयऊ । वस्त्र भवन विरचत बहु भयऊ ॥
नाविक पाये द्रव्य अपारा । वस्त्र विभूषण विविध प्रकारा ॥

इस प्रकार सभी मैथिल श्री सरयू जी के पार उतर गये और बहुत से, वस्त्र के भवनों (तम्बुओं) का निर्माण करने लगे। नाविकों ने विभिन्न प्रकार के वस्त्र, आभूषण तथा असीम द्रव्य प्राप्त किया।

सचिव कियो सब भाँति सम्हारा । सब कर सुखद सुमोद अपारा ॥
सविधि सबहिं सरयू स्नाना । कीन्हे भाग अमित अनुमाना ॥

श्री सचिव ने असीम आनन्दपूर्वक सभी की सुखदायी सम्हाल की। पुनः सम्पूर्ण ने अपनी असीम भाग्य का अनुमान करते हुए विधि–पूर्वक श्रीसरयू जी में स्नान किया।

नित्य कर्म करि सरयू पूजी । मागे राम प्रेम नहिं दूजी ॥
जनक सुवन मन आनन्द भूले । जाने ईश अहहिं अनुकूले ॥

नित्य कर्मों के अनुष्ठान के उपरान्त सभी ने श्री सरयू जी का पूजन किया एवं दूसरी कोई वस्तु न माँग कर श्री राम प्रेम की याचना की। जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का मन तो आनन्द में भूला हुआ था, उन्होंने यह जान लिया कि प्रभु उनके अनुकूल हैं।

पूजन साज विविध मँगवाई । लागे पूजन सरि तट जाई ॥
स्वर्ण सिंहासन प्रथम बहायो । जल बिच आसन हेतु सुहायो ॥
पंच पात्र जल भरे सुहाये । बड़े बड़े सरि माँहिं छोड़ाये ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी विभिन्न प्रकार की पूजन सामग्री मँगवाकर श्री सरयू जी के तट पर जाकर उनका पूजन करने लगे। सर्व प्रथम आसन के लिए स्वर्ण विनिर्मित एक सुन्दर सिंहासन उन्होंने जल में बहाया, पुनः जल से भरे हुये बड़े–बड़े सुन्दर पाँच स्वर्ण–कलश श्री सरयूजी के पाद्य, अर्घ्य, आचमन, पंचामृत–स्नान व शुद्ध–जल–स्नान हेतु सरयू जी की धार में छोड़े गये।

दो०–वसन विभूषण विविध विधि, सरयू सरि मँझ धार ।
कुँअर बहाये हर्ष हिय, सोहति सरित अपार ॥१८०॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने हर्षित हृदय से विभिन्न प्रकार के वस्त्र व आभूषण श्री सरयू जी की मध्य धारा में प्रवाहित किये, उस समय श्री सरयू जी असीमित शोभा प्राप्त कर रही थीं।

चन्दन अंगराग शुचि भूरी । सरितहिं दीन्हे मन सुख पूरी ॥
पुष्प अनेकन पुष्पन माला । कुँअर बहाये भरि भरि डाला ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने आनन्दित मन से बहुत सा पवित्र चन्दन व अंगराग श्री सरयू जी को अर्पित किया। पुनः अनेक प्रकार के पुष्प व पुष्प–मालायें बड़ी डलियों में भर–भरकर श्री सरयू जी

में प्रवाहित किया।

धूप दीप मन मोद अपारे। कीन्हे कुँअर चाव उर भारे॥
स्वर्ण कलश दूधादिक पेया। भरे हजारन कैयक गेया॥

अनन्तर असीमित आनन्द भरे हुये मन व अत्यन्त उत्साहित हृदय से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सरयू जी को धूप व दीप अर्पित किया। तथा कई हजार स्वर्ण कलशों में भरे हुए शास्त्र वर्णित दुग्ध आदि पेय---

सरयू धारहिं कुँअर छोड़ायो। परमोदार हृदय सरसायो॥
अमित भार मेवा पकवाना। छोड़े सरि व्यंजन विधि नाना॥

---श्री सरयू जी की धारा में बहाकर परम उदार कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधि जी हृदय में अत्यानन्दित हुये। असीमित मात्रा में मेवा, पकवान तथा विभिन्न प्रकार के व्यंजन आदि उन्होंने श्री सरयू जी के भोग हेतु जलधार में अर्पित किये।

दीन्ह आचमन कैयक गगरा। स्वर्ण बने डारे रस अगरा॥
गंध अनेकन भाँति कुमारा। पात्र सहित त्यागे मँझधारा॥

तदुपरान्त रसागार कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सरयू जी को जल से भरे स्वर्ण विनिर्मित कई कलशों में आचमन प्रदान कर पात्र सहित अनेक प्रकार के इत्र श्री सरयू जी की मध्य-धारा में समर्पित किये।

दो०-अमित मसालन साधि शुचि, कैयक डाली पान।
सरयू मधि मन मोद भरि, अर्पे कुँअर सुजान ।।१८१।।क।।

परम सुजान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने आनन्दित मन से असीमित प्रकार के पवित्र पान-मसालों से परिपूरित कर, पान की कई डलियाँ श्री सरयू जी को अर्पित कीं।

सो०-शोभा अमित अपार, ता छन सरयू की लगै।
वरणि सकै को पार, शारद शेषहुँ डगमगे ॥ख॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दासजी महाराज कहते हैं कि-उस समय परम पावन ब्रह्म-द्रवा श्री सरयू जी असीमित और अपार शोभा सम्पन्न लग रही थी, उनकी शोभा का पार वर्णन कर कौन पा सकता है क्योंकि श्री सरस्वती जी व श्री शेष जी भी उनका वर्णन करने में स्वयं के वुद्धि की अस्थिरता का अनुभव कर रहे थे।

छं०- जल धार शोभित स्वर्णमय, आसन सुभग जग जग बरैं।
जनु भानु तैरत धार सरि, ऊषण विकल विहरन करैं॥
अति सोह साटिक वस्त्र बहु, सब सूत सुवरण ते खँची।
बिच धार तैरहिं स्वर्ग तिय, दिवि द्योति मानहु तन रची॥

श्री सरयू जी की जल-धारा में सुन्दर जगमगाता हुआ परम प्रकाशित स्वर्ण विनिर्मित सिंहासन

उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे स्वयं सूर्य देवता ही गर्मी से व्याकुल होकर श्री सरयू जी की धार में तैरते हुए विहार कर रहे हैं। स्वर्ण सूत्रों से खँची हुई साड़ियाँ तथा बहुत से वस्त्र आदि वहाँ ऐसी अतीव शोभा संप्राप्त कर रहे थे मानों दिव्य ज्योति सम्पन्ना देवांगनायें जल प्रवाह के मध्य तैर रही हों।

मझ सोह चन्दन अंग रँग, जनु लाल प्रवहति सरसुती ।
पुनि माल राजत पुष्प बहु, तारे अकाशहिं मनु उती ॥
बहु दीप शोभित धार बिच, दीपावली उत्सव मनो ।
शुचि गंध वासित नीर सरि, हर्षण अतर बहिता जनो ॥

श्री सरयूजी के मध्य जल प्रवाह में बहते हुये, चन्दन व अंग–राग आदि इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे अरुण वर्णा श्री सरस्वती जी स्वयं प्रवाहित हो रही हैं, पुनः पुष्प मालायें और बहुत से पुष्प ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों आकाश में नक्षत्र–गण उदित हों। श्री सरयू जी की धारा के बीच बहुत से दीप ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों दीपावली का उत्सव मनाया गया हो। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्रीराम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि श्री सरयू जी में समर्पित किये हुए पवित्र इत्र आदि की सुगन्ध से युक्त जल को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे श्री सरयू जी में इत्र ही प्रवाहित हो रहा हो।

दो०–पान देय आरति किये, श्री मिथिलेश कुमार ।
भाव रूप बनि भाव ते, चहत दरश सुखसार ॥१८२॥

प्रेम भाव से भरे हुये मिथिलेश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सरयू जी को पान अर्पित कर उनकी आरती उतारी तथा भाव–मग्न होकर सुखों के सार स्वरूप उनके दर्शन की कामना करने लगे।

भावमयी प्रिय पूजा पाई । अति प्रसन्न ह्वै सरयू माई ॥
भई प्रगट बिच धार दिखानी । सेवित पद अहि कन्यन जानी ॥

श्री सरयूजी, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की भावमयी प्रियकर पूजा प्राप्तकर अत्यधिक प्रसन्न हुई और नाग–कन्याओं के द्वारा चरण सेवित, श्री सरयू जी प्रगट होकर दिखाई देने लगीं।

गंगादिक शुचि सरित सुहाई । सेवहिं सरयुहिं भाव बढ़ाई ॥
सरसिज बीच सिंहासन राजी । छत्र चमर सखिगन लै भ्राजी ॥

श्री गंगा जी आदि पवित्र व सुहावनी सरितायें महामना श्री सरयूजी की भाव बढ़ाकर सेवा कर रही हैं, वे श्री सरयू जी, कमल के बीच सिंहासन में विराजी हुई थीं तथा सखियाँ छत्र व चँवर लिये हुए सुशोभित हो रही थीं।

परम प्रकाशित दिव्य शरीरा । प्रेममयी सुमिरत रघुवीरा ॥
प्रेम चिन्ह तन उदित सुसोही । प्रेम मूर्ति जनु सबहिन जोही ॥

उनका दिव्य वपु परम प्रकाशवान था तथा प्रेमस्वरूपा श्री सरयू जी श्री सीताराम जी का

स्मरण कर रही थीं। उनकी देह में प्रेम चिन्ह प्रगट होकर सुशोभित हो रहे थे तथा भगवत्प्रेम की साक्षात् मूर्ति सी, वे सभी की दृष्टि का विषय बन रही थीं।

देख रूप निमि वंश कुमारा । मन प्रमोद बड़ प्रेम प्रसारा ॥
चरण परेउ प्रेमाकुल होई । भूलेव सुरति अहं सब खोई ॥

निमिवंश कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी उनका स्वरूप देखकर मन में आनन्दित तथा परम प्रेम से परिपूर्ण हो गये। वे प्रेम विह्वल हो उनके चरणों में गिर पड़े, उनकी सम्पूण स्मृति भूल गयी तथा अहंकार सहित सभी अन्तःकरण विलीन हो गये।

सरयू आसन सह चलि आई । कुँअर उठाय सुधीर बँधाई ॥
परशि शीश कर कमल बहोरी । सूँघी शीश प्रेम रस बोरी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अवस्था को देखकर श्री सरयू जी आसन सहित उनके समीप आ गयीं और उन्हें उठाकर धैर्य धारण कराया पुनः अपने हस्त–कमल से कुमार का सिर–स्पर्श कर प्रेम रस में डूबी हुई श्री सरयू जी ने उनका शिरोघ्राण किया।

दो०– नयन पात्र भरि प्रेम जल, कुँअरहिं दियो भिजाय ।
हृदय सरोवर दिव्य गुनि, मनहु भरी अतुराय ॥१८३॥

श्री सरयू जी ने अपने नेत्रों के पात्र में प्रेम–जल भरकर (प्रेमाश्रुओं से) कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को भिगा दिया मानों वे अत्यन्त व्याकुल हो उनके हृदय स्थित दिव्य प्रभु प्रेम सरोवर को आपूरित कर दी हों।

अति कृतज्ञ मिथिलेश दुलारा । परसेव चरण कमल सुख सारा ॥
जाय सरोजा आसन बीचा । गयी विराज सुप्रेमहिं सींचा ॥

उस समय अत्यन्त कृतज्ञ हो मिथिलेश दुलारे श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सरयू जी के सुखों के सार चरण कमलों का स्पर्श किया और सुन्दर प्रेम रस में भीगी हुई श्री सरयू जी जाकर आसन के मध्य विराज गयीं।

कुँअर सुखद स्तुति अनुसारी । जय जय देवि प्रेम रस वारी ॥
उपजहिं लहर छनहिं छन देवा । ब्रह्मा विष्णु महेश जितेवा ॥

तदनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सरयू जी की सुख प्रदायिनी स्तुति की। हे प्रेम रस–वारि प्रवाहिनी देवि! आपकी जय हो, जय हो। आपकी लहरों से प्रत्येक क्षण श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, व श्री शंकर जी आदि सभी देवता उत्पन्न होते रहते हैं।

होवहिं बहुरि सुधार विलीना । बहहु ब्रह्म रस सदा नवीना ॥
चार पदारथ की तुम देनी । देवि सदा साकेत नसेनी ॥

पुनः वे सभी आपके सुन्दर प्रवाह में विलीन हो जाते हैं, आपमें सदैव नवीन ब्रह्म–रस ही प्रवाहित होता है, आप चारों पदार्थो (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) को प्रदान करने वाली हैं तथा हे देवि! परम पद स्वरूप श्री साकेत धाम की तो आप सोपान ही हैं।

राम प्रेम सानिध्य प्रदायिनि । अह्हु सकल सरितन ठकुरायिनि ॥
अंश रूप विरजादिक सोही । विरज नहाय पाव नर तोही ॥

आप श्री राम जी महाराज के प्रेम व उनकी समीपता प्रदान करने वाली तथा सम्पूर्ण नदियों की महारानी हैं। श्री विरज ाजी आदि श्रेष्ठ नदियाँ आपकी अंश स्वरूपा हैं तथा आप में समवगाहन कर मनुष्य विमल हो आपको प्राप्त कर लेते हैं।

दो०–मन क्रम वाचिक रोग सब, देखत तव दुरि जाय ।
दिव्य स्वास्थ्य लहि जीवजिय, पुनि नहिं रुज दरशाय ॥१८४॥

जीवों के मानसिक, कायिक व वाचिक सभी रोग आपके दर्शन मात्र से दूर हो जाते हैं तथा दिव्य स्वास्थ्य प्राप्त कर जीव जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें फिर रोग के दर्शन नहीं होते।

बार बार माँगौ कर जोरी । देवि मनोरथ पुजवहु मोरी ॥
प्रेम लक्षणा परा सुप्रीती । नित्य शान्ति मन अचल अभीती ॥

हे देवि! हाथ जोड़कर मैं बार–बार आप से माँग रहा हूँ कि– आप मेरी अभिलाषा को पूर्ण करें। मुझे प्रेमा, लक्षणा व पराभक्ति से युक्त सुन्दर प्रभु प्रीति प्राप्त हो, मेरे मन में नित्य शान्ति छायी रहे व मेरा मन अचंचल और निर्भय हो जाय।

परमैकान्तिक सेवा पावौं । सहज एक रस रुचि दरशावौं ॥
राम सदा आपन करि जानहिं । सीय कृपा तजि चहौं न आनहिं ॥

मैं श्री राम जी महाराज की परमैकान्तिक सेवा प्राप्त करूँ तथा उसमें मेरी सहज ही एक रस रुचि बनी रहे। श्री राम जी महाराज मुझे सदैव अपना समझे और मैं श्री सीता जी की कृपा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी कामना न करूँ।

कुँअर विनय सुनि सरयू बोली । एवमस्तु तव चाह अलोली ॥
महा भाव रस रसिक प्रवीरा। पावहु राम प्यार गम्भीरा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की विनय सुनकर श्री सरयू जी ने कहा–हे राजकुमार! ऐसा ही होगा, आपकी कामना अडिग रहेगी। हे महा–भाव परिपूर्ण, रस स्वरूप, रसिक श्रेष्ठ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप श्री राम जी महाराज के गूढ़–प्रेम को प्राप्त करेंगे।

अस कहि सरयू अंतर ध्याना । भई कहत जय कुँअर सुजाना ॥
देखि दशा सुर वरषे फूला । सरयू दरश मगन मन भूला ॥

ऐसा कहकर श्री सरयू जी परम सुजान कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की जय हो कहती हुई अंतर्ध्यान हो गयीं। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सरयू जी के दर्शन से मन मग्न हो अपनी स्मृति भूल गये। उनकी अवस्था देखकर देवताओं ने पुष्पों की वरषा की।

दो०–जय जय जय धनि कुँअर कह, दुन्दुभि करहिं सुनाद ।
प्रेम मगन मैथिल सकल, सरयू दर्शन ह्लाद ॥१८५॥

राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की जय हो, जय हो, जय हो, आप धन्य हैं, कहते हुए देवता दुन्दुभी बजाने लगे तथा सभी मैथिल श्री सरयू जी के दर्शनाह्लद में प्रेम मग्न हो गये।

बहुरि कुँअर अवधहिं सुख पागे । पूजे हृदय अधिक अनुरागे ॥
यथा साज लै सरयुहिं पूजे । तथा अयोध्या भाव न दूजे ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सुख में पगकर, हृदय में अधिक अनुराग भरकर श्री अयोध्यापुरी का पूजन किया। उन्होंने सभी सामग्रियों सहित जिस प्रकार श्री सरयू जी का पूजन किया था उसी प्रकार, किसी भी अन्य भाव से रहित हो पूर्ण श्रृद्धा के साथ श्री अयोध्यापुरी का पूजन किया।

परम भागवत कुँअरहिं जानी । भई गगन वानी सुख खानी ॥
मोहिं ते पृथक न कबहुँ कुमारा । कहौं त्रिसत्यहिं बचन विचारा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को परम भागवत समझकर सुखों की खानि आकाश–वाणी हुई। हे जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मैं विचार कर त्रिवाचा सत्य कह रहा हूँ कि– आप मुझसे कभी भी भिन्न नहीं हैं।

परम धाम मय बनि अभिरामा । नित्य वास तव अवध स्वधामा ॥
सियाराम राखहिं अति नेहू । रँगे रहहु रँग राम विदेहू ॥

हे परम धाम–स्वरूप, सुशोभन राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! आपका नित्य निवास अपने श्री अयोध्या धाम मे ही है, श्री सीताराम जी आप पर अत्यधिक स्नेह रखते हैं तथा हे श्री विदेह कुमार! आप भी श्री राम जी महाराज के प्रेम–भाव में सतत निमग्न रहते हैं।

अवध पुरी सुनि आशिरवादा । कुँअरहिं भयो परम अहलादा ॥
द्विजन पूजि दीन्हे बहु दाना । हय गय स्यंदन मणिगन नाना ॥

श्री अयोध्यापुरी के ऐसे आशिर्वचनों को सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को महान आह्लाद हुआ। अनन्तर उन्होंने ब्राह्मणों का पूजन कर घोड़े, हाथी, रथ तथा मणि आदि विविध प्रकार से दान दिया।

दो०– वसन विभूषण विविध विधि, दीन्हे निमिकुल बाल ।
सीय राम कल्याण हित, लूट मचाई लाल ॥१८६॥

निमिकुल नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सीताराम जी की मंगल कामना के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्र और आभूषण दान किये तथा विविध बहुमूल्य वस्तुओं की लूट मचा दी।

सविधि पूजि विप्रन सिर नाई । लाख सवा गोदान कराई ॥
अति प्रसन्न महिदेव सुखारी । आशिष दीन्हे प्रेम पसारी ॥

ब्राह्मणों का विधि पूर्वक पूजन कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उनके चरणों में सिर झुका प्रणाम किया तथा सवा लाख गायों का गोदान करवाया। जिससे सभी भूदेव (ब्राह्मण) अत्यधिक सुखी हो प्रेम प्रपूरित हृदय से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को आशीष प्रदान किये।

ब्रह्मचर्य रत ब्रह्म विचारी । वानप्रस्थ सन्यास जे धारी ॥
वैष्णव योगी ऋषि मुनि जेते । पूजित भये कुँअर सों तेते ॥

वहाँ नैष्ठिक ब्रह्मचारी गण, ब्रह्म की उपासना में लगे हुए ब्रह्मवादी, वानप्रस्थ, सन्यासी, वैष्णव, योगाश्रयी योगी जन तथा ऋषि–मुनि आदि जो भी साधकगण थे वे सभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के द्वारा पूजित हुए।

मन भावत सब कर सब भाँती । सेवा कीन्ह कुँअर हरषाती ॥
दान विनय वर मानहिं पाई । हरषे सब कोउ करत बड़ाई ॥

कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी हर्ष पूरित हो सभी जनों की, सभी प्रकार की मनोभिलषित सेवा किये। विनय पूर्वक दान व सम्मान प्राप्त कर सभी हर्षित हुए और राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रशंसा करने लगे।

सब कर कृपा पाइ बड़ छोहू । जनक सुवन भे मुदित अमोहू ॥
वरणहिं लोग कुँअर की कीती । सुनत रहे तस दिखे अमीती ॥

सभी जनो की कृपा व असीम वात्सल्य प्राप्तकर ममता–विहीन जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी अतिशय आनन्दित हुये। उस समय वे सभी युवराज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुन्दर यश का वर्णन कर रहे थे कि इनके सम्बन्ध में जैसा हमने सुना था उससे बहुत अधिक दर्शन किया।

दो०–ज्ञान विराग सुयोग सुठि, प्रेम अमान उदार ।
रहनि करनि शुचि शील मय, रूप लजावन मार ॥१८७॥

युवराज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी तो ज्ञान, वैराग्य, योग, प्रेम, निराभिमानित्व व औदार्य आदि सुन्दर सद्‌गुणों के भण्डार हैं, इनके आचार–विचार अतिशय पवित्र व शील संयुक्त हैं तथा सौन्दर्य में तो ये सौन्दर्य के अधिदेवता कामदेव को भी विलज्जित करने वाले हैं।

भे सब सुखी कुमारहिं देखी । सब आकर्षित चित्त विशेषी ॥
एहिं विधि कुँअर सबहिं सनमानी । गये शिविर अपने सुख सानी ॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर वे सभी अत्यन्त सुखी हुए तथा सभी का चित्त उनकी ओर विशेष रूप से आकर्षित हो गया। इस प्रकार राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी का सम्मान कर सुख में सने हुए अपने शिविर आ गये।

पगे प्रेम प्रिय दरशन आसा । जलहिं चहैं जिमि व्याकुल प्यासा ॥
सेवक सखा कुमारहिं केरो । कीन्ह श्रृङ्गार विविध सुख हेरो ॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीताराम जी के प्रेम में पगे हुए उनके प्रिय दर्शन की कामना उसी प्रकार कर रहे थे जैसे प्यास से व्याकुल जीव केवल जल ही चाहता है। तदनन्तर सेवकों तथा सखा गणों ने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुख का विचार कर, विविध प्रकार से श्रृंगार किया।

स्वर्ण सिंहासन सुभग सुसोहैं । भ्रात सखा परिकर मन मोहैं ॥
भ्रातन सन रघुवीर सुभाऊ । कहत सुनत जल लोचन छाऊ ॥

तदुपरान्त युवराज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी सुन्दर स्वर्ण सिंहासन में विराज कर अपने भ्रातृ, सखा और परिकरगणों के मन को मुग्ध करते हुए सुशोभित हो गये तथा अश्रु प्रपूरित नेत्रों से अपने भ्राताओं के साथ श्री राम जी महाराज के सुन्दर स्वभाव को कहने–सुनने लगे।

ताहि बीच इक सेवक आई । दीन्हेव अमृत वचन सुनाई ॥
नाथ सुनहिं तव प्राणन प्राना । सुख कर सुख जेहिं राउर माना ॥

उसी समय एक सेवक ने आकर अमृत के समान वचन सुनाया कि हे नाथ! सुनिये, आपके प्राणों के प्राण और जिन्हें आप सुखों के सुख समझते हैं–––

दो०–दशरथ नन्दन राम सोइ, जन हित सुखमागार ।
आवत तव अगवान हित, प्रेम निबाहन हार ॥१८८॥

–––वही चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के कुमार, सुषमा के आगार, अपने सेवकों के हित में सदैव तत्पर रहने वाले व प्रेम का भली–प्रकार निर्वाह करने वाले प्रभु श्री राम जी महाराज आपके स्वागत हेतु आ रहे हैं।

सुनत कुँअर अति आनँद बूड़े । होइहैं नयन आज मम जूड़े ॥
प्राण अतिथि रामहिं उर लाई । देहों विरही बह्नि बुझाई ॥

सेवक के प्रिय वचन श्रवण करते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यानन्द में डूब गये कि– आज मेरे नेत्र शीतल हो जायेंगे तथा अपने प्राणों के अतिथि श्री राम जी महाराज को ह्वदय से लगाकर मैं अपने विरह की अग्नि को शीतल कर लूँगा।

मधुर मधुर मन मोहन वानी । सुनिहैं श्रवण आज सुख सानी ॥
शुचि सुगन्ध सुख करन सलोनी । राम देह निसृत रस बोनी ॥

अहा! उनकी मुधरातिमधुर मन मोहनी वाणी को मेरे कर्ण आज सुख में सने हुये श्रवण करेंगे तथा श्री राम जी महाराज के परम सुशोभन वपु से निकली हुई परम पवित्र, रसोत्पादिका व सुखप्रदायिनी जो सुहावनी सुगन्ध है।–––

लहिहिं घ्राण सोइ आज अनूपा । देव सिहैंहैं लखि मम रूपा ॥
अधर सनी प्रभु पाय प्रसादी । रसना रसी अमित अहलादी ॥

–––उसी अनुपमेय सुगन्ध को मेरी नासिका आज ग्रहण करेगी। अहा,हा! देवता भी मेरे स्वरूप को देखकर मुझसे स्पृहा करेंगे। मेरी रसना श्री राम जी महाराज के अधर रस से सनी हुई प्रभु–प्रसादी को प्राप्त कर असीमित आह्लाद पूर्वक उसमें अनुरक्त बनी रहेगी।

सब विधि भाग उदय भै आजू । आत्म आत्म लखिहौं रघुराजू ॥
रसमय रसिया तकनि लुभानी । आजु चली मम ओर मोहानी ॥

आज सभी प्रकार से मेरा भाग्योदय हुआ है जो मैं अपनी आत्मा के भी आत्मा श्री रघुनन्दन जू का दर्शन करूँगा। अहा! रस स्वरूप व रसिक शिरोमणि श्री राम जी महाराज की मन को मोहित कर लेने वाली परम लुभावनी चितवनि का आज मेरी ओर निक्षेप होगा।

दो०— मधुर मधुर मुसकाय करि, कुण्डल अलक हिलाय ।
मोहिं परशि बतराहिंगे, सखे ललन कहि भाय ॥१८९॥

वे प्रभु श्री राम जी महाराज मधुर–मधुर मुस्कुराते हुए अपनें कुण्डलों तथा अलकों को हिलाते हुए मेरा स्पर्श कर, हे सखे, हे लालन, हे कुमार! आदि सुन्दर सम्बोधनों से सम्बोधित कर मुझसे बातें करेंगे।

छं०— धनि धन्य होइहिं भाग भलि, घनश्याम राम लुभावने ।
हिय मोहि मेलहिं प्राण प्रिय, कहि कहि सुनैन बहावने ॥
इक साथ राजत आसनहिं, गल बाँह दै इक इक सटे ।
मनमान पीहैं प्रेम रस, हरषण हरषि प्रभु पै कटे ॥

मै परम धन्य व अतिशय सौभाग्यशाली हो जाऊँगा, जब परम लुभावने व मेघ के समान श्याम वर्ण वपु श्री राम जी महाराज मुझे हृदय से लगाकर, हे मेरे प्राण प्रिय कुँअर! कह–कहकर अश्रु बहाते हुए भेंट करेंगे और हम गले में बाहें डालकर एक दूसरे से सटे हुए एक आसन में बैठे हुये हर्षित हृदय मन–मानी (इच्छानुसार) प्रेम–रस का पान करेंगे। अहा! जन–मन हर्षणकारी प्रभु की कृपा से अब मेरे दुर्दिन दूर हो गये।

यहि विधि भाव विभोर कुमारा । शिविर निकरि मन मोद अपारा ॥
देखहिं अवधपुरी की ओरा । आवत हैं का अवध किशोरा ॥

इस प्रकार भावनाओं में विभोर हुए कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी मन में असीम आनन्द परिपूर्ण हो शिविर से बाहर निकलकर श्री अयोध्या पुरी की ओर देखते हैं कि– क्या अवध किशोर श्री रघुनन्दन जू आ रहे हैं?

चहल पहल वाद्यन धुनि काना । परी सुखद आवत प्रभु जाना ॥
सहित समाज मिलन चलि दीन्हे । पद त्राणहुँ नहिं धारण कीन्हे ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के श्रवणों में आनन्दोत्सव और विविध वाद्यों की सुखदायी ध्वनि सुनाई पड़ी जिससे उन्होने जान लिया कि– प्रभु श्री राम जी महाराज आ रहे हैं। तदुपरान्त त्वरान्वित हो पैरों में पादुकाएँ धारण किये बिना ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी समाज सहित प्रभु श्री राम जी महाराज से मिलने के लिए चल दिये।

हरबर चलत लखन बहनोई । राम रसिक अखिलेश्वर जोई ॥
गजहिं चढ़े मन मोद बढ़ावत । सहित समाज मिलन मोहि आवत ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने प्रिय बहनोई, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी व रसिक श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज के दर्शन के लिए शीघ्रता पूर्वक चल रहे हैं। अहा! मेरे प्राणाधार, रघुनन्दन जू सुन्दर गज

पर सवारी किये हुए ससमाज आनन्दित मन मुझसे मिलने हेतु आ रहे हैं।

धाइ परे निमि कुँअर अधीरा । अस्त व्यस्त वर भूषण चीरा ॥
को हम कहाँ भूलि सब गयऊ । गिरत उठत भुँइ भागत भयऊ ॥

यह विचार करते ही निमि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अधीरता पूर्वक दौड़ने लगे, उनके सभी सुन्दर आभूषण व वस्त्र अस्त–व्यस्त हो गये। हम कौन हैं? और कहाँ हैं? उन्हें सभी कुछ विस्मृत हो गया तब वे भूमि में गिरते व उठते हुए दौड़ने लगे।

दो०– कछुक दूरि चलि कुँअर वर, गिरि भुँइ भये अचेत ।
लखे राम भक्तन सुखद, गजहिं चढ़े निज हेत ॥१९०॥

इस प्रकार कुछ दूर चलते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भूमि में गिरकर चेतनाहीन हो गये। भक्त जनों के सुखदायी प्रभु श्री राम जी महाराज ने स्वयं के लिए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की ऐसी स्थिति का दर्शन, गज में चढ़े हुए किया।

सहि न सके हिय दुख निज श्याला । प्रणत पाल प्रभु दीन दयाला ॥
चलत करिहिं कूदे महि माहीं । लखा न कोउ लखे मग जाहीं ॥

तब प्रणतजनों के प्रति–पालक व दीनों पर दया करने वाले प्रभु श्री राम जी महाराज अपने हृदय में, प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी के दुख को सहन नहीं कर सके और चलते हुए गज से भूमि में कूद पड़े। उन्हें ऐसा करते कोई देख नहीं सका, सभी जनों ने उनका, मार्ग में जाते हुये ही दर्शन किया।

बेसुध गिरत उठत चल धाई । उत्तरीय खसि परेव सुहाई ॥
टूटत मनिगन मोतिन माला । भयो प्रेमवश विभुहुँ विहाला ॥

हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री राम जी महाराज चेतनाहीन से गिरते–उठते व दौड़कर चल रहे थे, उनका सुन्दर उत्तरीय खिसक कर गिर गया था तथा मोतियों व मणियों की मालायें टूट कर बिखर रही थीं। उस समय परम विभु श्री राम जी महाराज भी अपने प्रिय श्याल प्रेम के वशीभूत हो विह्वल हो गये थे।

पहुँचे जाय कुँअर के पासा । देखे विकल ऊर्ध्व चल श्वासा ॥
धरणि परेउ तन तेज अपारा । मनहुँ सूर्य खँसि गिरेउ विचारा ॥

इस प्रकार चलते हुए प्रभु श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के समीप पहुँच गये और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की ऊर्ध्व श्वास चलती हुई व व्याकुल अवस्था का दर्शन किये। कुमार का असीमित तेज से परिपूर्ण वपु भूमि में ऐसा पड़ा हुआ था मानों स्वयं भुवन भास्कर आकाश से खिसक कर भूमि में गिर पड़े हों।

धूरि भरे तन बिथुरी अलकैं । मुख सरोज मूँदी युग पलकैं ॥
कबहुँ कबहुँ बोलत हा प्राना । प्रीतम राम श्याम अकुलाना ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की देह धूल से भरी, अलकें बिखरी, मुख कमल मलिन तथा दोनों

पलकें मुँदी हुई थी। वे अकुलाये हुए कभी कभी हा मेरे प्राण! हे मेरे प्रियतम, हा राम! तथा हा श्याम सुन्दर! बोल रहे थे।

दो०–अश्रु बहत हिक हिक करत, प्रेम दशा मन पाग ।
कुँअर शिरहिं प्रभु गोद रखि, भरे स्वजन अनुराग ॥१९१॥

उनकी आँखों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे, वे हिक–हिक करते हुए हिचकियाँ ले रहे थे एवम् उनका मन प्रभु प्रेम की उच्च्तम अवस्था में पगा हुआ था। ऐसे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शिर को स्वजन प्रेम परिपूरित हो प्रभु श्री राम जी महाराज अपनी गोद में रख लिये।

प्रेम अहार जाहि कर होई । कस न करै अस ब्रह्म सो मोई ॥
राम प्रेम पगि ढारत नीरा । कुँअरहिं हृदय बँधावत धीरा ॥

जिन प्रभु का आहार ही प्रेम है, वे पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज प्रेम परिप्लुत हो ऐसा क्यों नहीं करेंगे। श्री राम जी महाराज स्वजन प्रेम में डूबकर अश्रु बहाते हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी के हृदय को धैर्य बँधा रहे थे।

अश्रु पोंछि आनन प्रिय परसैं । मुख पर मुखहिं धरे मन सरसैं ॥
प्रभु कर परसि पाइ सुकुमारा । ह्वै सचेत पेखेव निज प्यारा ॥

वे प्रभु, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के आँसुओं का प्रोक्षण कर उनके प्रिय मुख का स्पर्श करते तथा उनके मुख कमल में अपना मुख कमल रखे हुए मन में आनन्दित हो रहे थे। प्रभु श्री राम जी महाराज के सुखदायी स्पर्श को प्राप्त कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी चैतन्यता धारण किये और अपने परम प्रेमास्पद रघुनन्दन जू का दर्शन किये।

उठेउ तुरत गिरि चरणन माहीं । दीन भाव हिय अति झलकाहीं ॥
राम उठाय हृदय निज लाये । बड़ी बार लगि नेह समाये ॥

तब शीघ्र ही उठकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु चरणों में गिर पड़े। उस समय उनके हृदय का अत्यन्त दैन्य भाव प्रगट हो रहा था। श्री राम जी महाराज ने उन्हें उठा कर अपने हृदय से लगा लिया तथा बहुत देर तक प्रेम में समाये हुए वे एक दूसरे के हृदय से लगे रहे।

अहमिति भूलि गये दोउ वारा । मन चित बुधि नहिं देह सँभारा ॥
बही प्रेम रस अविरल धारी । डूबी सकल समाज अपारी ॥

उस समय दोनों राज कुमार (श्री राम जी व श्री लक्ष्मीनिधि जी) अपने अस्तित्व को भूल गये थे, मन, चित्त व बुद्धि विस्मृत हो जाने से वे अपने शरीर नहीं सम्हाल सके। उस समय प्रेम रस की अविरल धारा प्रवाहित हो चली थी जिसमें समुपस्थित असीमित सम्पूर्ण समाज डूब गया था।

दो०–श्याल भाम की मिलनि लखि, देव रहे मन भूल ।
बाजे विविध बजाव पुनि, हरषित वरषहिं फूल ॥१९२॥

श्याल–भाम (श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज) की इस पारस्परिक भेंट को देखकर

देवता अपने मन को भुलाये दे रहे थे तथा बार–बार विभिन्न प्रकार के बाजे बजा–बजा कर हर्ष पूर्वक पुष्पों की वरषा कर रहे थे।

जय जग मोहन रघुवर रामा । जय प्रभु लोभन कुँअर ललामा ॥
जयति श्याम जै घट घट बसिया । जयति गौर रघुवर हिय लसिया ॥

हे सम्पूर्ण संसार को मुग्ध कर लेने वाले रघुकुल श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज आपकी जय हो तथा प्रभु श्री राम जी महाराज को भी लुब्ध कर लेने वाले हे सुन्दर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी आपकी जय हो। हे घट–घट में निवास करने वाले श्याम वपु श्री राम जी महाराज आपकी जय हो तथा हे श्री रघुनन्दन जू के ह्रदय में सुशोभित होने वाले गौर–वपु श्री लक्ष्मीनिधि जी आपकी जय हो।

सीता पति जय अवध विहारी । सिद्धि पीव जय मिथिलाचारी ॥
जय भगवान जनन प्रतिपालक । जयति भक्त रामहिं सुख ढालक ॥

श्री अयोध्यापुरी में विहार करने वाले हे सीता–कान्त श्री रामजी महाराज आपकी जय हो तथा श्री मिथिलापुरी में विहार करने वाले हे सिद्धि कुँअरि जी के प्राण वल्लभ श्री लक्ष्मीनिधि जी आपकी जय हो। हे भक्तजनों के प्रतिपालक भगवान श्री राम जी महाराज आपकी जय हो तथा हे श्री राम जी महाराज को सुख प्रदान करने वाले परम भक्त श्री लक्ष्मीनिधि जी आपकी जय हो।

जयति जयति रघुवंश विभूषण । जय सुखरूप जनक कुल पूषण ॥
जय जय भाम रसिक सुखदाई । जयति श्याल रस रूप लखाई ॥

रघुकुल के अलंकार स्वरूप हे श्री राम जी महाराज आपकी जय हो जय हो तथा जनक कुल के सुख–स्वरूप सूर्य श्री लक्ष्मीनिधि जी आपकी जय हो। हे परम सुखदायी रसिक श्रेष्ठ श्री लक्ष्मीनिधि जी के प्रिय भाम (बहनोई) आपकी जय हो, जय हो तथा हे रसस्वरूप दृष्टि गोचर होने वाले श्री राम जी महाराज के प्रिय श्याल (साले) आपकी जय हो।

जय जय प्रेम रूप दोउ जियरे । जयति बने इक एकन हियरे ॥
जयति जयति जय प्रेम अनूपा । एक होय दुइ धरे स्वरूपा ॥

हे साक्षात् प्रेम विग्रह स्वरूप आप दोनों की जय हो, जय हो, परस्पर के ह्रदय बने हुए आप दोनों की जय हो, एक होकर भी दो स्वरूप धारण किये हुए अनुपमेय प्रेम से परिपूर्ण आप दोनों की जय हो, जय हो।

दो०–दशरथ नन्दन राम जय, जनक सुवन जय होय ।
एक आत्म दुइ नित लसैं, श्याल भाम सुख मोय ॥१९३॥

हे चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के प्रिय कुमार श्री राम जी महाराज आपकी जय हो तथा हे श्री जनक जी महाराज के परम दुलारे राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी आपकी जय हो, आप दोनों भाम–श्याल सुख में समाये हुए नित्य एक आत्मा होते हुए भी दो बनकर सुशोभित हो रहे हैं।

यहि प्रकार जय जयति उचारी । वरषहिं सुमन देव सब झारी ॥
कहहिं परस्पर सुर समुदाया । प्रेम स्वरूप लखे मन भाया ॥

इस प्रकार दोनो राज कुमारों की जय–जय उच्चारण कर सभी देवता पुष्पों की वरषा करते हैं तथा परस्पर में कहते हैं कि– हमने आज ही प्रभु श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के रूप में सुन्दर प्रेम के साक्षात् स्वरूप का दर्शन प्राप्त किया है।

अकथ अलौकिक दिव्य अचाहा । सूक्ष्म आत्म रस अगुन अथाहा ॥
एकाङ्गी नव छन छन बाढ़े । प्रेमास्पद सुख चाह सुगाढ़े ॥

यह प्रेम अकथनीय, अलौकिक, दिव्य, निष्काम, सूक्ष्म, आत्मवत, रसमय, हेय गुणरहित, अथाह, एकाङ्गी, नवीन, प्रतिक्षण–विवर्धमान, प्रेमास्पद के सुख की कामना से युक्त व अतिशय गहरा है।

मिले रहत जनु अबहिन मीले । तदपि विरह डर बन विरहीले ॥
प्रेमिन प्रेम स्वरूप अनूपा । अनुभव गम्य सुखद हरि रूपा ॥

ये दोनों राजकुमार श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी परस्पर में इस प्रकार हृदय से लगे हुए हैं जैसे इनकी सम्प्रति भेंट हुई हो और वियोग हो जाने के भय से विरही से दृष्टि गोचर हो रहे हैं। इन दोनों में प्रेमियों के अनुपमेय प्रेम के उस स्वरूप का दशर्गन हो रहा है जो अनुभवगम्य, सुखदायक व भवत्स्वरूप है।

प्रेम दिखाये सबहिन सोई । धनि धनि सरस श्याल बहनोई ॥
ब्रह्म जीव जस सहज सनेहा । कहत वेद सज्जन मति गेहा ॥

हम सभी को इन दोनो भाम व श्याल ने उस अद्वितीय प्रेम का दर्शन कराया है, हे रसस्वरूप भाम व श्याल श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मीनिधि जी आप दोनो धन्यातिधन्य हैं। ब्रह्म व जीव में जिस प्रकार का सहज प्रेम होता है तथा जिस प्रेम का वेदों, सज्जनों व परम प्रबुद्ध–जनों ने बखान किया है––––

दो०–देखे तैसहिं प्रेम शुचि , धन्य घरी यह काल ।
अवनि बीच प्रत्यक्ष भो, माध्यम रघु निमि लाल ॥१९४॥

–––उसी प्रकार के पवित्र प्रेम का हमने दर्शन किया है, इस समय का यह क्षण धन्य है जिसमें श्री रघुनन्दन जू व श्री निमिनन्दन जू के माध्यम से पृथ्वी के बीच यह प्रेम प्रगट हुआ है।

योगी कर्मठ पंडित ज्ञानी । शूर सुकोविद तापस मानी ॥
परम विरागी गत अभिमाना । जे यहि काल रहे मति माना ॥

श्रेष्ठ योगी, कर्मकाण्डी, शास्त्रज्ञ, ज्ञानी, वीर, विद्वान, तपस्वी, सम्माननीय, परम वैराग्यवान, निरभिमानी तथा बुद्धिमान आदि जो भी इस समय उपस्थित थे।–––

नारि पुरुष जड़ चेतन सिगरे । राम प्रेम हिय गये सुपगिरे ॥
सब साधन फल प्रभु पद प्रेमा । माने सकल बिसरि निज नेमा ॥

–––उन समस्त नर–नारियों तथा समस्त जड़–चेतनात्मक संसार के हृदय श्री राम जी महाराज के सुन्दर प्रेम से परिपूरित हो गये हैं तथा सभी अपने जागतिक नियमों को भूलकर सम्पूर्ण

साधनों का फल प्रभु श्री रामजी महाराज के चरणों में प्रेम होना स्वीकार कर लिये हैं।

प्रेम देव की अकथ कहानी। देव विपुल बहु बार बखानी॥
वरषहिं सुमन दुहुन के ऊपर। प्रेम धार बहि चली सुभूपर॥

इस प्रकार 'प्रेम–देवता' की अवर्णनीय गाथा का बखान देव–समुदाय बारम्बार करते हुये श्याल–भाम कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज दोनों के ऊपर फूलों की विपुल वर्षा करने लगे। उस समय भूमि में सुन्दर प्रेम की धारा प्रवाहित हो चली थी।

कछुक काल महँ दूनहुँ चेते। मुखन विलोकत प्रेम समेते॥
प्रेमी प्रियतम चन्द्र चकोरा। बने परस्पर राज किशोरा॥
प्रेम वारि दृग ढारत दूनौ। मिथिला अवध नृपति वर सूनौ॥

कुछ समय में चैतन्यता धारण कर श्याल–भाम दोनों प्रेमपूर्वक एक दूसरे का मुख–कमल निहारने लगे तथा वे युगल राजकुमार श्री राम जी महाराज व कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी परस्पर में प्रेमी–प्रियतम व चन्द्र–चकोर बने हुये थे। श्री मिथिलापुरी व श्री अयोध्यापुरी के दोनों सुन्दर राज कुमार उस समय अपने नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धार प्रवाहित कर रहे थे।

दो०–कुँअर देखि रघुनाथ मुख, शिथिल भये क्षण एक।
परे चरण दृग वारि सो, करत सुभग अभिषेक॥१९५॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री रघुनाथ जी के मुख मयंक को देखकर एक क्षण को शिथिल हो गये पुनः उनके चरणों में गिर कर, नेत्र जल से उनके श्री चरण कमलों का सुन्दर अभिषेक करने लगे।

राम लिये पुनि हृदय लगाई। प्रीति रीति कहि वचन सुहाई॥
कुँअर हृदय कछु धीरज धारे। भरतहिं सहित समाज निहारे॥

श्री राम जी महाराज ने पुनः उन्हें प्रीति–रीति पूर्वक सुन्दर वचनो से सान्त्वना देते हुए हृदय से लगा लिया। तदन्त्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने हृदय में कुछ धैर्य धारण कर ससमाज श्री भरत जी की ओर देखा–––

अति अतुराये सुवन विदेहू। मिले राम भ्रातन भरि नेहू॥
भ्रातन मिलत अमित सुख पायउ। जनक सुवन रसरूप दिखायउ॥

–––और आतुरता पूर्वक प्रेम में भरकर विदेहराज नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री राम जी महाराज के भ्रातृ–गणों से भेंट की। सभी भ्रातृ–गणों से भेंट करते समय उन्होंने असीमित सुख प्राप्त किया तथा जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम चिन्हों से परिपूर्ण दिखाई देने लगे।

सुनु हनुमान कहौं सत तोही। कुँअरहिं मिलत भयो सुख मोही॥
अनुभव जन्य कहत नहिं बनई। सो सुख अकथ अलौकिक अहई॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! सुनिये, मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ कि–

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी से भेंट करने में मुझे जो सुख प्राप्त हुआ है, वह अनुभव से ही जाना जा सकता है, उसे कहते नहीं बनता। वह सुख तो अकथनीय व अलौकिक है।

इतना कहत लखन सब भूले । सो सब दृश्य चित्त पर झूले ॥
बाहर कीन्ह बहुरि मन काहीं । समाधान होइ पुलकत जाहीं ॥

इतना कहते ही श्री लक्ष्मण कुमार जी अपनी सम्पूर्ण स्मृति भूल गये तथा वे सभी दृश्य उनके चित्त पटल पर दिखाई देने लगे। पुनः अपने मन को बाहर कर वे प्रकृतिस्थ हुए परन्तु अभी भी उनका शरीर पुलकत प्रपूरित दीख रहा था।

कहन लगे प्रिय कथा प्रसंगा । सुनु हनुमान प्रीति रस रंगा ॥
राम सखन पुनि मिले कुमारा । मानि राम सम भाव अपारा ॥
यथा योग सबहिन भरि भेंटे । पुलकि पुलकि प्रिय प्रेम लपेटे ॥

पुनः श्री लक्ष्मण कुमार जी प्रेमानन्द में डूबे हुए अपने प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी के चरित्र प्रकरण का बखान करने लगे। हे हनुमान जी! सुनिये, कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी असीमित भाव में भरकर श्री राम जी महाराज के समान श्री राम सखाओं से भी मिले, वे सभी से पुलक प्रपूरित हो, प्रिय प्रेम में पगे हुए यथा योग्य भुजाओं में भरकर भेंट किये।

दो०–मिथिलापुर वासी सकल, भेंटे राम सुजान ।
सहित भ्रात पुर जनन मिलि, बने प्रेम रस खान ॥१९६॥

तदनन्तर सभी मिथिलापुर–वासियों नें सर्वज्ञ श्री राम जी महाराज से भेंट की तथा श्री राम भ्राताओं सहित पुरजनों से भेंट कर प्रेम व रस की खान हो गये।

मास पारायण बारहवाँ विश्राम

मिलनि परस्पर सुठि सुखदाई । मिथिला अवधहिं भई सुहाई ॥
भ्रातन करि संकेत कुमारा । बैठन हित निज शिविर मझारा ॥

इस प्रकार श्री मिथिलापुर–वासियों व श्री अयोध्यापुर–वासियों की सुन्दर विधि पूर्वक पारस्परिक सुन्दर तथा सुखप्रद भेंट हुई। कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने भ्रातृ–गणों को शिविर के मध्य बैठक व्यवस्था हेतु संकेत किया।

पानि पकरि रघुनन्दन केरा । चले लिवाय कुँअर निज डेरा ॥
चार सिंहासन चारहुँ भाइन । बैठारे मन सरसि सुहाइन ॥

तदनन्तर श्री रघुनन्दन जू का कर–कमल पकड़कर उन्हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने निवास (शिविर) ले चले तथा वहाँ चार सुन्दर सिंहासनों में चारों भ्राताओं को आनन्द प्रपूरित मन से बिठा दिये।

चहत कुँअर रघुपति पद पूजा । जानि ईश हिय भाव न दूजा ॥
राम तुरत निज करहिं उठाई । लीन्हे निज आसन पधराई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज के चरणों का परमेश्वर के भाव से पूजन करना चाह रहे थे, उनके हृदय में अन्य कोई भाव नहीं था परन्तु श्री राम जी महाराज ने उनका हाथ पकड़कर उन्हें अपने आसन में बरवश बैठा लिया।

युगल कुमार प्रेम रस पागे । शोभित इक आसन अनुरागे ॥
प्रेम भरे दोउ राज दुलारे । पियत रूप रस भये सुखारे ॥

इस प्रकार दोनों राजकुमार श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम व रस में पगे हुए एक आसन में अनुराग प्रपूरित हो सुशोभित हो गये तथा दोनों राज–दुलारे प्रेम में भरे हुए एक दूसरे के रूपामृत का पान करते हुए सुखी होने लगे।

दो०–प्रेम सने सब शान्त मन, कोउ कछु कहत न पूँछ ।
मन अलोल रँग राम रस, लगत मनहुँ जग छूँछ ॥१९७॥

उस समय सभी प्रेम में डूबे हुए, शान्त मन वाले हो गये थे, कोई कुछ कह व पूँछ नहीं रहा था, सभी के मन स्थिर व अपने प्रेमास्पद श्री राम जी महाराज के रस में रँगे हुए थे, ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों संसार में कुछ हो ही नहीं, सम्पूर्ण संसार रिक्त हो गया हो।।

धैर्य रूप प्रभु धीरज धारी । बोले बचन प्रेम रस गारी ॥
कहहिं कुँअर अपनी कुशलाता । रानि राय सब हरषित गाता ॥

तदनन्तर परम धैर्य स्वरूप प्रभु श्री राम जी महाराज धैर्य धारण कर प्रेम–रस से ओत–प्रोत वचन बोले– हे राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जू! आप अपनी कुशलता कहिये, हमारी अम्बा महारानी श्री सुनयना जी व श्री मान् मिथिलेश जी महाराज स्वस्थ व प्रसन्न्ता पूर्वक तो हैं।

मिथिलापुरी सहज सुख धामा । है तेंहि वासी सहित अरामा ॥
कुँअर कहे सुन प्राण पियारे । आप कुशलता सदा सुखारे ॥

श्री मिथिलापुरी तो सहज ही सुख की धाम हैं अतः वहाँ के निवासी कुशलता पूर्वक तो हैं। उनकी बातें सुनकर कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने कहा– हे प्राण प्यारे रघुनन्दन जू! सुनिये! आपकी कुशलता से हम सदैव सुखी हैं।

राउर सुख सब निज सुख मानैं । मिथिला वासी और न जानैं ॥
जाकी कुशल पूँछि रघुनाथा । सो नित सुखमय रहैं सनाथा ॥

सभी मिथिलापुर निवासी आपके सुख को ही अपना सुख मानते हैं तथा अन्य किसी सुख को जानते भी नहीं। तथापि रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज जिसकी कुशलता की पृच्छा कर रहे हों वह तो नित्य सुख स्वरूप और सुरक्षित ही है ।

तव वियोग नित मिथिला वासी । जग रस भूलि सकल दुख नासी ॥
दरश प्यास इक लोचन तरसैं । यदपि रहत नित भादौं वरषैं ॥

परन्तु आप श्री के वियोग में श्री मिथिलापुरी निवासी संसारी सुखों को भूल सभी दुखों को विनष्ट कर, नेत्रों में आपके दर्शन की प्यास लिये तरसते रहते हैं, यद्यपि उनके नेत्र नित्य ही 'भाद्रपद'

महीने के समान आपके वियोग जनित अश्रुओं की वर्षा करते रहते हैं।

दो०–जब ते आये अवध प्रभु, मिथिला बधिर लखाय ।
राउर चरचा छोड़ि के, नेक न श्रवण सुनाय ॥१९८॥

हे नाथ! आप जबसे श्री अयोध्यापुरी आ गये हैं तभी से श्री मिथिलापुरी बहरी (बधिर) समझ पड़ती है क्योंकि उसे आपकी चरचा के अतिरिक्त श्रवणों में कुछ भी सुनाई ही नहीं पड़ता।

रसना मूक सु मिथिला केरी । आप बिना भइ लखु हिय हेरी ॥
तव गुण गान छोड़ि प्रभु मिथिला । बनी बावरी अँग अँग शिथिला ॥

आप अपने हृदय में समझ लीजिये कि– श्री मिथिलापुरी की जिह्वा आपके बिना गूँगी हो गयी है। आप श्री के गुणों के गायन करने के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए श्री मिथिलापुरी बावली (पागल) हो गयी है तथा उसके प्रत्येक अंग शिथिल पड़ गये हैं।

चित्त मधुप नित तुव पद पंकज । रमेव रहत रस पियत प्रमोदज ॥
सोवत जागत स्वप्न मझारी । बैठत उठत चलत नर नारी ॥

श्री मिथिलापुरी का चित्त रूपी भ्रमर आप श्री के चरण कमलों में नित्य रमा हुआ आनन्दोत्पादक पराग–रस का पान करता रहता है। वहाँ के पुरुष–स्त्री सोते, जागते, स्वप्न में, बैठते, उठते, चलते–––

देखत सुनत परस के माहीं । रामहिं रमे अन्य गति नाहीं ॥
निज गृह काज सम्हारत काला । राम रँगे मन रहैं विहाला ॥

–––देखते, सुनते तथा स्पर्श आदि क्रियाओं में श्री राम जी महाराज ही रमे रहते हैं, उनकी अन्य कोई गति नहीं है। अपने घर के कार्य सम्हालते समय में वे मन से श्री राम जी के रंग में रँगे व विह्वल बने रहते हैं।

मिथिला भई विरहिनी नारी । आठ याम रम राम रहारी ॥
तन मन रोम रोम रम रामा । बुद्धि जहाँ सब रमैं ललामा ॥

श्री मिथिलापुरी तो आपकी वियोगिनी स्त्री हो गयी है आठो–प्रहर उसका चित्त श्री राम जी महाराज में रमा रहता है। उसके शरीर, मन तथा रोम–रोम में सर्वत्र श्री राम जी महाराज ही रमे हुए हैं, उसकी सुन्दर बुद्धि भी वहीं रमी हुई है जहाँ अन्य सभी अंग रमण करते हैं।

प्राण रमे तन दरशन हेतू । करत आस निशिदिन चित चेतू ॥
जनक पुरी नित आँसुन झरना । सिमिट सिन्धु भे जाय न बरना ॥

श्री मिथिलापुरी के प्राण उसके शरीर में आप श्री के दर्शनों के लिए ही रमे हुए है और दिनरात चैतन्य–चित्त उसी की कामना करते रहते हैं। आपके वियोग में श्री मिथिलापुरी में नित्य अश्रुओं का निर्झर प्रवाहित होता रहता है जो एकत्रित होकर अवर्णनीय महासागर बन गया है।

दो०–तामहँ मिथिला मगन भै, जड़चेतन जित आय ।
सत्य सत्य पुनि सत्य है, सुनहु सु कौशलराय ॥१९९॥

हे परम सुशोभन कौशलाधिपति श्री राम जी महाराज! सुनिये, यह बात त्रिवाचा सत्य है कि– जड़–चेतन जितनें भी जीव हैं उनके सहित श्री मिथिलापुरी उस विरह के महासागर में अस्त हो गयी है।

हौंही बूड़त बचेव अभागा । सकेव न सिन्धु डुबाय सुभागा ॥
वज्र हृदय तव आगे बैठो । कहत सँदेश धीर धुज ऐंठो ॥

मात्र अभागा मैं ही डूबने से बच पाया हूँ क्योंकि परम सौभाग्यशाली अश्रु का महासागर मुझे डुबाने में असमर्थ हो गया है। अतः बज्र हृदयी मैं आपके सम्मुख बैठा हुआ धैर्य की ध्वजा धारण किये अभिमान पूर्वक संदेश कह रहा हूँ।

अस कहि कुँअर विकल भे भारी । लिये राम निज हृदय मँझारी ॥
पुनि लिपटाय पोंछि दृग आँसू । श्यालहिं समुझाये प्रिय भाषू ॥

ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यधिक व्याकुल हो गये तब श्री राम जी महाराज ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया पुनः उनके आँखों से अश्रु पोंछ गाढ़ालिंगन कर अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रिय वचनों से समझाया।

भाम बचन सुनि धीरज धारी । स्वपुर दशा पुनि कुँअर उचारी ॥
सुनि सुनि प्रीति श्वसुर पुर केरी । राम फँसे प्रिय प्रीति फँसेरी ॥

अपने भाम (बहनोई) के बचनों को श्रवणकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी धैर्य धारण किये पुनः अपनी 'श्री मिथिलापुरी' की प्रभु वियोग–जन्य अवस्था का वर्णन करने लगे। श्री राम जी महाराज अपनी श्वसुर पुरी की प्रीति को सुन–सुनकर उसके प्रियकर प्रीति के बन्धन में बँध गये।

बड़ी बार लगि दोउ सुधि भूले । आसन बैठि रहे रस फूले ॥
धरि बड़ धीरज जनक कुमारा । भ्रातन चितयो प्रेम पसारा ॥
करहु राम पूजन प्रिय भाई । भेंट देहु जो पिता पठाई ॥

बहुत देर तक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज स्मृति भूले हुए आनन्द से प्रफुल्लित हुए आसन में विराजे रहे पुनः जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यधिक धैर्य धारण कर प्रेम पूर्ण दृष्टि से अपने भ्राताओं की ओर निहार कर बोले– हे प्रिय भ्रातृ–गणों! आप सभी श्री राम जी महाराज का पूजन करें तथा श्री मान् दाऊ जी ने जो भेंट भिजवायी है उसे समर्पित कीजिये।

सो०–सुनत कुँअर के बैन, भ्रात सखा अति मुदित मन ।
प्रेम भरे रस ऐन, कीन्ही पूजा बिविध विधि ॥२००॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचन सुनते ही अत्यधिक आनन्द–मना भ्राताओं व सखाओं ने प्रेम प्रपूरित हो रस के आगार श्री राम जी महाराज का विभिन्न प्रकार से पूजन किया।

बसन विभूषण विविध प्रकारा । सुखद वस्तु को वरणै पारा ॥
वाहन यान द्रव्य बहु भाँती । दीन्हे हरषि प्रेम रस माती ॥

उन्होने विभिन्न प्रकार के वस्त्र, आभूषण एवं अन्य सुखदायी वस्तुएँ जिनका वर्णन कर कोई इति को नही प्राप्त कर सकता तथा वाहन, विमान व बहुत प्रकार का द्रव्य, प्रेम–रस में मतवाले होकर अपने आराध्य श्री राम जी महाराज को अर्पित किया।

यथा राम तस भ्रातन केरी। करि पूजा दिय भेंट घनेरी ॥
राम सखा सब लहि बहु भेंटी। भरे भाव शुचि प्रेम लपेटी ॥

उन्होने श्री राम जी महाराज के समान ही श्री राम जी के भ्रातृगणों का भी पूजन कर अत्यधिक भेंट समर्पित की। भाव परिपूर्ण बहुत सी भेंट प्राप्त कर श्री राम जी महाराज के सखागण पवित्र प्रेम में सराबोर हो गये।

देखि कुँअर वैभव रघुराई। सुखी भये जन महिमा भाई ॥
कुँअर उतरि आसन रस पागे। बोले बचन सुखद अनुरागे ॥

श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वैभव को देखकर अत्यन्त सुखी हुए तथा उन्हें अपने भक्त की महिमा अतिशय प्रिय लगी। तदनन्तर प्रेम रस में पगे हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी आसन से उतर कर अनुराग प्रपूरित हो सुखदायी वचन बोले–

अतिहिं अकिंचन श्याल तुम्हारा। अहै नाथ यह लेहु बिचारा ॥
हौं कछु भेंट न लायो तुमहीं। लाज लगी नहिं रचहु ममहीं ॥

हे मेरे स्वामी रघुनन्दन जू! आपका यह श्याल अत्यन्त ही अकिंचन है, ऐसा आप विचार कर लें। मैं आपके लिए कुछ भी भेंट सामग्री नहीं लाया और ऐसा करने में मुझे किंचित संकोच भी नहीं हुआ।–––

दो०–भेंट देन हित यत्न करि, किय अन्वेषण नाथ।
भीतर बाहर नहि लख्यो, किंचित रघुकुल माथ ॥२०१॥

–––क्योंकि हे रघुकुल शिरोमणि, मेरे स्वामी, श्री राम जी महाराज! आप को भेंट देने के लिए उपाय करते हुए मैंने बहुत खोज की परन्तु भीतर और बाहर सर्वत्र मुझे अपना कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

देखे बिविध लोक परलोका। बिविध पदारथ के सब ओका ॥
आपन वस्तु एक नहिं पाई। देखी सब तुम्हारि रघुराई ॥

मैंने इस लोक और परलोक में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के भण्डार देखे किन्तु वहाँ अपनी एक भी वस्तु नहीं प्राप्त की, मुझे जो भी दिखाई दिया, हे रघुश्रेष्ठ श्री राम जी महाराज वह सब आपका ही था।

अस कहि फफकत जनक कुमारा। गिरेउ चरण नहिं देह सँम्हारा ॥
आत्महिं दृढ़ करि प्रभु की मानेउ। सौंप्यो परम प्रेम सरसानेउ ॥

ऐसा कहकर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी फफकते हुए देह स्मृति भूल कर गिर पड़े तथा अत्यन्त प्रेम परिपूरित हो, दृढ़ता पूर्वक अपनी आत्मा को, श्री राम जी महाराज की निजी वस्तु समझ,

समर्पित कर दिया।

राम उठाय तुरत हिय लाये। मनहु कहे रखिहौं उर ताये ॥
आसन बहुरि बिठाये रामा। बोले बचन सुखद सुखधामा ॥

श्री राम जी महाराज ने शीघ्र ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को उठाकर अपने ह्रदय से लगा लिया मानों वे कह रहे हों कि– मैं आपको अपने ह्रदय में छुपाकर रखूँगा। पुनः सुख के धाम श्री राम जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को आसन में बैठाकर सुख प्रदायक वाणी से कहा–

आप सहित सब मिथिला भाऊ। कीन्हो मोहिं स्ववश बरिआऊ ॥
सो सब समय पाइ सुकुमारा। कहिहौं सुखद सहित विस्तारा ॥

हे परम सुकुमार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप सहित मैथिल भावापन्न सभी जनों ने मुझे हठात् अपने वश में कर लिया है, वह सभी सुखमयी वार्ता मैं विस्तारपूर्वक समय पाकर आपसे कहूँगा।

दो०–सुनहु तात अति लाड़िले, चक्रवर्ति के आप।
दरश देहु चल छनहिं छन, होहिहैं व्याकुल बाप ॥२०२॥

हे सखे श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप श्री चक्रवर्ती जी महाराज के अत्यन्त दुलारे हैं अतः अब चलकर उन्हे दर्शन दीजिये क्योंकि श्रीमान् दाऊ जी आपके दर्शन बिना प्रतिक्षण व्याकुल हो रहे होंगे।

अस विचारि मन कुँअर सुजाना। करहिं अवध अब बेगि पयाना ॥
कुँअर सेवकन राम बुलाई। कहा सिंगारहु ललनहिं जाई ॥

अतः आप अपने मन में ऐसा विचार कर, हे परम बुद्धिमान कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी, अब शीघ्र ही श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान करें। पुनः श्री राम जी महाराज ने कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के सेवकों को बुलाकर कहा कि लाल लक्ष्मीनिधि जी का जाकर श्रृंगार कर दीजिये।

राम हरषि निज करहिं तुरन्ता। झारी धूर कुँअर तन कन्ता ॥
विलुलित केशन दीन्ह सँवारी। राम रसिक जन के हितकारी ॥

श्री राम जी महाराज ने हर्ष में भरकर अपने कर कमलों से शीघ्र कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मनोहर वपु की धूल स्वच्छ कर दी और जन हितकारी रसिक श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज नें उनके बिखरे हुए बालों को सँवार दिया।

सेवक वस्त्र विभूषण लीन्हे। खड़े पिन्हावन परम प्रवीने ॥
जनक सुवन द्रुत चार प्रकारा। नख शिख भूषण वसन सिंगारा ॥

परम दक्ष सेवक उन्हें धारण कराने हेतु वस्त्र व आभूषण लिये हुए खड़े हो गये तब तक जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने शीघ्र ही चार प्रकार के नख शिखान्त वस्त्र, आभूषण व श्रृंगार सामग्री–––

दै आयसु भ्रातन मँगवाई। स्वयं सिंगारे चारहुँ भाई ॥
राम सखा सेवकन सुप्रीती। पहिनाये पुनि कुँअर सुरीती ॥

———भ्राताओं को आज्ञा दे, मँगवाकर चारों भ्राताओं श्री राम जी, श्री भरत जी श्री लक्ष्मण कुमार जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी का स्वयं अपने हाथों से श्रृंगार किये। पुनः श्री राम जी महाराज के सखाओं व सेवकों को सुन्दर प्रीति—रीति पूर्वक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने वस्त्र व आभूषण पहनाये।

दो०—ता पीछे सेवक सुखद, कुँअरहिं किये सिंगार।
रामहुँ मुकुट स्वपानि लै, शिर धारे करि प्यार ॥२०३॥

तदुपरान्त सेवकों ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का सुखदाई श्रृंगार किया तथा स्वयं श्री राम जी महाराज भी अपने हाथों से मुकुट लेकर प्यार करते हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शीश में धारण करा दिये।

प्रभु सुख हेतु कुँअर मन भाया। अनुपम दिवि सिंगार अपनाया॥
हरषित सबहिं सुआयसु दीनी। चलन साज साजहु सुख भीनी॥

प्रभु श्रीरामजी महाराज के सुख के लिए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने मनभावन व अनुपमेय दिव्य श्रृंगार स्वीकार कर लिया तथा हर्षित होकर सभी को आज्ञा प्रदान किये कि— प्रस्थान की सुखमयी सामग्री सजा लीजिये।

मैथिल सिगरे तुरत तयारा। भये हृदय करि त्वरा सुखारा॥
कुँअर तबहिं मिथिला की रचिता। प्रिय पद त्राण मनोहर खचिता॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की आज्ञा शिरोधार्य कर सभी मैथिल हृदय में अत्यधिक त्वरान्वित हो सुख पूर्वक शीघ्र तैयार हो गये। तभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री मिथिलापुरी की बनी हुई सौन्दर्य प्रपूरित मनोहारी प्रिय चरण रक्षिका पाँवरियो को———

शुचि सुगन्ध सो सनी सुहाई। दश दिक पवन प्रसंग बसाई॥
स्वर्ण सूत्र भरि रतनन कणिका। बनी मखमली जगमग मणिका॥

————जो कि पवित्र व सुन्दर सुगन्ध से सनी हुई दशों दिशाओं को सुवासित कर रही थीं तथा स्वर्ण सूत्रों के द्वारा रत्नों की कणिकाओं व जगमगाते हुए मणियों से जड़ी, मखमल से बनी———

ललित सुकोमल सुखद आनि कै। निज कर पहिरायो रसानि कै॥
जानि पिन्हावत सुखकर श्यामा। रोके कर गहि द्रुत मति धामा॥
राम कहा सुनु सखा सनेही। सेवक मोहि पिन्हैहैं एही॥

————सुन्दर, सुकोमल तथा सुख प्रदायिनी है, लाकर आनन्द में सने हुए अपने हाथों से श्री राम जी महाराज के चरण कमलों में धारण कराने लगे। परम सुखकारी व बुद्धि के आगार श्याम सुन्दर श्री राम जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को पाँवरियाँ पहनाते हुए जानकर शीघ्र उनके हाथों को पकड़, रोक दिया तथा बोले— हे मेरे प्रिय आत्म सखा कुमार लक्ष्मीनिधि! इन्हें मेरे सेवक पहना देंगे।

दो०—कुँअर कहे रघुवंश मणि, हौं तव दासन दास।
याते आपन सेव गुनि, पहिनाऊँ सुख वास ॥२०४॥

कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधि जी ने कहा हे समस्त सुखों के निवास स्थल रघुकुल मणि श्री राम जी महाराज! मैं तो आपके सेवकों का भी सेवक हूँ इसलिए अपनी सेवा समझ कर मैं इन्हें आपको धारण करा रहा हूँ।

अस कहि कुँअर तुरत पहिनाई। पाँवरि प्रभु पद परम सुहाई ॥
भरत लखन रिपुहन पद माहीं। करत निवारण कुँअर पिन्हाहीं ॥

ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री राम जी महाराज के चरण कमलों में अत्यन्त सुन्दर पाँवरियाँ (पनहियाँ) पहना दी। श्री भरत लाल जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी के चरण कमलों में भी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने मना करने पर भी जूतियाँ धारण करा दीं।

लखि कुँअरहिं अस अतिहिं अमानी। राम हृदय अति प्रीति समानी ॥
बोले धनि राउर बड़ भैया। जो कछु करैं तुम्हें सब छैया ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को इस प्रकार अत्यन्त अमानी बने देख श्री राम जी महाराज अत्यधिक प्रेम में डूब गये तथा बोले– हे बड़े भइया श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप धन्य हैं, आप जो भी करें, आपको सभी कुछ शोभा देता है।

अधिक दुलार आप यह कीने। बड़न बड़ाई इहै प्रवीने ॥
विहँसि कहे रघुकुल अवतंसा। करौ कवन विधि आप प्रशंसा ॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवणकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कहा– हे रघुनन्दन! आपने मुझ पर यह अत्यन्त दुलार किया है, महज्जनों की प्रवीणता व बड़प्पन यही है कि– वे अपने जनों को सदा सम्मान देते रहते हैं। श्री राम जी महाराज ने विहँसते हुए कहा कि–हे कुमार! मैं आपकी किस प्रकार से प्रशंसा करूँ,–––

चलहिं अवध शत्रुञ्जय ठाढ़ो। गजन शिरोमणि शोभा माढ़ो ॥
अस कहि पकरि कुँअर कर कंजा। चले लिवाय प्रीति रस रंजा ॥

–––अब श्री अयोध्यापुरी चलिये, 'शत्रुञ्जय गज' खड़ा हुआ प्रतीक्षारत है, इस हस्ति शिरोमणि की शोभा को वृद्धिंगत कीजिये। ऐसा कहकर प्रेमानन्द में पगे सभी के मन को आनन्दित करने वाले श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हस्त कमल को पकड़कर लिवा ले चले।

दो०–श्यालहिं सुख बैठाय कै, बैठ आपु हरषाय।
जिन निज वाहन सब चढ़े, प्रीति रीति रस छाय ॥२०५॥

अपने श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी को सुखपूर्वक गज में बिठाकर हर्षित हृदय स्वयं श्री राम जी महाराज भी विराज गये तथा सभी लोग प्रीति–रीति पूर्वक आनन्द में समाये हुए अपने अपने वाहनों में सवार हो गये।

गज शोभा कछु वरणि न जाई। श्याल भाम जेहिं चढ़े सुहाई ॥
नख शिख किये सिंगार अनूपा। लजत देख ऐरावत रूपा ॥

उस गज की शोभा का किंचित भी वर्णन नहीं किया जा सकता जिस पर श्याल व भाम '(श्याले

बहनोई) श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज सुन्दर सवारी किये हुए हैं। नख शिखान्त अनुपमेय श्रृंगार से युक्त शत्रुंजय नामक गज को देखकर ऐरावत (देवराज इन्द्र का हाथी) भी अपने स्वरूप से विलज्जित हो रहा था।

मखमल झूल छोर मणि हलरैं। स्वर्ण खचित चमचम द्युति फहरैं॥
आसन सुवरण रतन जड़ाया। उपवर्हन गादी छबि छाया॥

उस शत्रुंजय नामक गज की पीठ पर मखमल का बिछावन लटक रहा था जिसके किनारों में मणियाँ लहरा रही थी, जो स्वर्ण सूत्रों से जटित, चमचम ज्योति (अत्यधिक प्रकाश) विखेर रहा था उसके ऊपर स्वर्ण का रत्न जटित आसन, मसनद तथा गद्दियाँ सुशोभित हो रही थीं।

बैठे सोहहिं युगल कुमारा। ब्रह्म जीव जिमि नेह अपारा॥
छत्र चमर सिर शोभ सुलहरत। युगल किशोर दिव्य छबि छहरत॥

उस रत्न जटित आसन पर विराजे हुए दोनों राजकुमार (श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी) ऐसे शोभायमान हो रहे थे जैसे ब्रह्म व जीव सहज और अपरिमेय प्रेम पूर्वक सुशोभित होते हैं। दोनों राज किशोर के शिर पर छत्र व चँवर लहराते हुए सुशोभित हो रहे थे तथा वे अपना दिव्य सौन्दर्य चतुर्दिक बिखेर रहे थे।

भरतादिक यावत रघुवंशी। कुँअर सखा भ्राता निमिवंशी॥
कीन्हे हयन सुखद असवारी। अनुपमेय छबि सकल सम्हारी॥

श्री भरत जी आदि जितने भी रघुवंशी थे और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सभी भ्रातृ व सखा आदि निमिवंशी सम्पूर्ण अनुपमेय सुन्दरता को सम्हाले हुए घोड़ों की सुखदायक सवारी किये हुए थे।

दो०–श्याल भाम जबहिन चढ़े, गज ऊपर चित चोर।
परी निशानहिं चोट बहु, बाजत बाद्य अथोर॥२०६॥

श्याल व भाम (श्याले–बहनोई) श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज जैसे ही जन–जन के चित्त को चुराते हुए गज पर सवार हुए वैसे ही नगाड़ों की अत्यधिक तीव्र ध्वनि होने लगी और बहुत से वाद्य बजने लगे।

छं०– मस्स मस्स गज चलत सुहावन, धुनि घंटा घहरावै।
इन्द्रोपेन्द्र चढ़े ऐरावत, उपमा रंच न आवै॥
हयन चढ़े सब छयल छबीले, शोभितचारहुँ ओरी।
अमित काम जनु प्रगट भये हैं, दिव्य प्रेम वस भोरी॥१॥

सुन्दर मद–मस्त गति से मस्स–मस्स तथा गज घण्टा की ध्वनि करते हुए शत्रुंजय गजराज के ऊपर सवार युगल राजकुमारों श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज की समता में ऐरावत गज में सवार देवराज इन्द्र व उनके छोटे भाई उपेन्द्र श्री बामन भगवान जी की उपमा किंचित भी नहीं आ रही। अश्वों पर सवार हुए सभी सुशोभन बाँके वीर युगल राजकुमारों के चारों तरफ चलते हुये ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे दिव्य प्रेम के वशीभूत, विभोर होकर अपरिमित कामदेव ही प्रगट हो गये हों।

बाजत वाद्य विविध विधि मीठे, नचत अपसरा जातीं ।
मधुर गान करि भाव बतावैं, राम प्रेम सरसाती ॥
मागध सूत बन्दि गुण गायक, युगल कुमारन केरी ।
वरणत प्रीति रीति यश पूरी, श्रवण सुखद गुण घेरी ॥२॥

विधिपूर्वक विभिन्न प्रकार के वाद्य मधुर–मधुर बज रहे है, अप्सरायें श्री राम जी महाराज के प्रेम से ओत–प्रोत हो, नृत्य व मधुर गायन करती हुई भावों को प्रदर्शित कर रही हैं। मागध, सूत, बन्दी तथा गुणों का गायन करने वाले गवैये आदि दोनों राजकुमारों की यश परिपूर्ण, गुणों से युक्त तथा श्रवण सुखदायी प्रीति–रीति का बखान कर रहे हैं।

ध्वज पताक फहरत मनहारी, युग कुल यशहिं जनावैं ।
देखि देखि मन होत अचंचल, राम भक्ति हिय छावै ॥
श्याल भाम की जै जै बोलत, बरषत सुमन अपारे ।
पेखनहार प्रेम रस भींजे, जिय जग सुरति बिसारे ॥३॥

मन को हरण करने वाली ध्वजा व पताकायें फहराती हुई दोनों कुलों की कीर्ति का प्रकटीकरण कर रही हैं जिन्हें देखकर मन की चंचलता शान्त हो जाती है तथा हृदय में श्री राम जी महाराज की भक्ति छा जाती थी। दर्शक–गण प्रेम रस में भीगे हुए श्याल भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री रघुनन्दन जू की जै जैकार करते हुए, हृदय से सांसारिक स्मृति को विस्मृत कर अपरिमित पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं।

शान्ति पाठ प्रिय करत विप्रगण, साम रीति मन भाई ।
मनहु मंत्र बहु रूप धरे शुभ, रक्षहिं कुँअर सुहाई ॥
मंद मंद सब चलत सुखारी, शोभित मार्ग अनूपा ।
कुँअर अवाई जानि सजाये, प्रथमहिं दशरथ भूपा ॥४॥

ब्राह्मण सामवेद की विधि का अनुसरण कर, प्रिय व मनभावना शान्ति पाठ करते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों स्वयं मंत्र ही बहुत से शुभप्रद स्वरूप धारण कर दोनों राजकुमारों की सुन्दर रक्षा कर रहे हैं। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के आगवन में चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज द्वारा सजवाये हुए अनुपमेय व सुशोभित राजमार्ग में सभी लोग धीरे–धीरे चल रहे थे।

दो०–श्याल भाम बतरात मृदु, इक एकन सुख लागि ।
प्रीति सुचेष्टित लखि परैं, मधुर मधुर रस पागि ॥२०७॥

श्याल–भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज एक दूसरे के सुख के लिए मधुर रस में पगे, मृदु वार्ता का विनियोग व प्रेम परिपूर्ण क्रियायें करते दिखाई पड़ रहे थे।

युगल कुँअर की अनुपम झाँकी । श्याम गौर मनहरण प्रभा की ॥
चलत गजहिं जब दोऊ डोलत । झुकि झुकि परत प्रेम रस घोलत ॥

युगल राजकुमारों की अनुपमेय श्याम व गौर वर्ण की कान्ति से युक्त शोभा मन को हरण करने वाली तथा प्रकाश परिपूर्ण थी। गज के चलने से जब दोनों राजकुमार हिलते हुए एक दूसरे की ओर झुक–झुक पड़ते हैं तब वे मानों हृदय में प्रेम का रस सा घोल देते थे।

अलक कपोल युगल सँट नीके । खैंचि लेत हियरा सब ही के ॥
झुकत कबहुँ इक एकन काहीं । पकड़हिं युगल डालि गलबाहीं ॥

युगल राजकुमारों की कपोंलों से लगी हुई केशावली परम सुशोभित तथा सभी के हृदय को आकर्षित करने वाली थी। कभी–कभी झुककर वे दोनो एक दूसरे को पकड़कर परस्पर गले में बाहें डाल लेते थे।

सम्हलि लजात कछुक पुनि दोऊ । मनहुँ प्रेम रस राखत गोऊ ॥
मधुर मधुर मुसकनि मन हारी । चितवहिं एकहिं एक निहारी ॥

पुनः दोनों सम्हलकर कुछ लज्जित से हो जाते हैं मानों अपने प्रेमानन्द को छिपाकर रखना चाहते हों। वे मन को हरण करने वाली मधुर–मधुर मुस्कान से युक्त दृष्टि से एक दूसरे की ओर निहार रहे थे।

दुइ के एक एक दुइ होई । प्रीति रसहिं वरषावत सोई ॥
आसन जटित सुनग मणि माहीं । कबहुँ बिलोकत इक इक छाहीं ॥

परस्पर में युगल मुख चन्द्र चकोर बने श्याल–भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज दो के एक और एक के दो होकर प्रेमानन्द की वर्षा कर रहे थे। कभी वे आसन में जड़े हुए नगों व मणियों में एक दूसरे की प्रतिछाया देखने लगते थे।

दो०–अनुपम शोभा निरखि दोउ, जावत मनहिं लुभाय ।
राखत हिय तेहिं करि अचल, बिना मोल बिक जाय ॥२०८॥

इस प्रकार एक दूसरे की अनुपमेय सुन्दरता देखकर मन में लुब्ध हो परस्पर की छबि को अटल रूप से हृदय में बसा कर परस्पर में बिना मोल बिके हुऐ थे।

युगल चन्द सम लगत सुहाये । सब कहँ सुखद सुधा वरषाये ॥
आनन अमित शशी सम प्यारा । लगत दुहुन कर मोहन हारा ॥

वे युगल राज कुमार दो चन्द्रमा के समान सभी को सुन्दर, सुखदायक तथा अमृत वरषाने वाले प्रतीत हो रहे थे। उन दोनों कुमारों श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज के मुख कमल असीमित चन्द्रमा के समान प्रियकर तथा मोहित करने वाले प्रतीत होते थे।

मधुर मधुर सब अंग दुहुन के । भूषण वसन मधुर चुन चुन के ॥
मधुर बोल मुस्क्यान माधुरी । मधुर तकनि सुख खानि चातुरी ॥

दोनों राजकुमारों के सभी अंग अतिशय मधुर तथा चुने हुए मधुर वस्त्र व आभूषणों से सुशोभित थे। उनकी वाणी मधुर, मुस्कान मधुर तथा चातुर्य पूर्ण दृष्टि निक्षेप की कला, सुखों की खानि व अत्यन्त ही मधुर थी।

सब प्रकार सब साज सुमधुरा । रहनि करनि गति मधुर अगधुरा ॥
मधुमय शोभित अन्तः करणा । मधुमय आतम जाय न वरणा ॥

उनकी सभी प्रकार की सम्पूर्ण साज–वाज सुन्दर व मधुर, रहनी–करनी व चाल, अगाध और मधुर थी। उनके अन्तःकरण सुशोभन व मधुमय थे एवं आत्मा इतनी मधुमयी थी जिसका वर्णन नही किया जा सकता ।

पियत मधुहिं रस रूप रसीले। जात चले दोउ प्रेम मदीले ॥
मधुमय प्रकृति मधुहिं बरषाती। सेवति दोहुन जनु मधु माती ॥

प्रेम–मद में मतवाले वे दोनों श्याल भाम परस्पर मधुरातिमधुर रूपासव का पान करते हुए चले जा रहे थे। उस समय मधुमयी प्रकृति भी मानो प्रेम–मधु से मतवाली हो मधु वर्षण करती हुई दोनों कुमारों की सेवा कर रही थी।

देखि दुहुन छवि सब सुर हरषे । प्रेम मगन हिय भरे सुसरसे ॥
लखि लखि भाव दुहुन सुख सारा । ब्रह्मादिक मन मोद अपारा ॥

सभी देवता दोनों राजकुमारों कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज की सुन्दर छबि का दर्शन कर हर्ष से भर जाते तथा प्रेम मग्न हो हृदय में अत्यानन्द प्राप्त कर रहे थे। दोनों कुमारों के सुखों के सार स्वरूप व सुन्दर पारस्परिक भाव को देख–देखकर ब्रह्मादिक देवता भी मन में असीम आनन्द प्राप्त कर रहे थे।

दो०–जय जय उचरत सुरहुँ सब, मुदित निशान बजाय ।
सुरतरु वरषैं सुमन शुचि, महा मोद मन छाय ॥२०९॥

उस समय सभी देवता जय जयकार कर, आनन्द में भरकर नगाड़े बजाते हुये देव–वृक्ष (कल्पवृक्ष) के पवित्र पुष्पों की वर्षा कर रहे थे तथा उनके मन में महान आनन्द छाया हुआ था।

जस जस लक्ष्मीनिधि सह रामा। चढ़े गजहिं गवनहिं सुखधामा ॥
तस तस सब सुर अरु सुर नारी। चलैं गगन पथ होत सुखारी ॥

सुखों के धाम श्री राम जी महाराज के साथ गज पर सवार श्री लक्ष्मीनिधि जी मार्ग में जैसे जैसे चल रहे थे उसी प्रकार सुखपूर्वक सभी देवता व देवनारियाँ भी आकाश मार्ग में चल रही थी।

भूमि व्योम भै भीर अपारी । निरखहिं जीव ईश व्यवहारी ॥
करहिं प्रबन्ध राज के सेवक । दुख न लहे जेहिं प्रजा सुदेवक ॥

भूमि व आकाश में अपार जन समूह एकत्रित हो गया था जो जीव व ईश श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज के पारस्परिक व्यवहार का दर्शन कर रहा था। सेवक गण राज्यकीय व्यवस्था कर रहे थे जिससे प्रजा व देव–गणों को कोई कष्ट न प्राप्त हो।

पहुँचे जाय द्वार परिकोटे । छन छन परहिं निशानन चोटें ॥
तोप तुपक घहराय सुशबदा । बजत बधायी सुखद सुरवदा ॥

इस प्रकार चलते हुए वे युगल राज कुमार परिकोटे के दरवाजे पर पहुँच गये जहाँ प्रति क्षण नगाड़ों की आवाजें गूँजती रहती हैं। तोप व तुपकों के सुन्दर शब्द घहराते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानो सुन्दर स्वर में सुख प्रदायिनी बधायी बज रही हो।

कुँअर प्रणाम पुरी कहँ कीन्हें। बहुरि प्रवेश राम सह लीन्हें ॥
महा मोद महि मन न समाई। सौ जानै जेहिं राम जनाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री अयोध्यापुरी को प्रणाम कर, श्री राम जी महाराज के सहित वहाँ प्रवेश किया। उस समय भूमि में जो महान आनन्द हो रहा था वह मन में समा नहीं रहा था उस आनन्द को तो वही जान सकता है जिसे प्रभु श्री राम जी महाराज ने ज्ञात करा दिया है।

सो०–रसिक शिरोमणि राम, मधुर मधुर बतियात मग।
सत चित आनन्द धाम, कुँअरहिं हरषि दिखावहीं ॥२१०॥

रसिकों के शिरोमणि श्री राम जी महाराज मार्ग में मधुर–मधुर वार्ता का विनियोग करते हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि को हर्ष में भरकर सच्चिदानन्दमय परम धाम श्री अयोध्यापुरी का दर्शन करा रहे थे।

अवधपुरी लहि दरश कुमारा। भयो कृतारथ मोद अपारा ॥
सत चित आनँद परम प्रकाशी। जासु तेज तेजित रवि भासी ॥

श्री अयोध्यापुरी के दर्शन प्राप्त कर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी असीम आनन्दित व कृत–कृत्य हो गये। श्री राम जी महाराज ने मधुर वाणी से कहा–हे कुमार! यह श्री अयोध्या पुरी सच्चिदानन्दमयी व परम प्रकाश स्वरूपा है जिसके तेज से परम प्रकाशित सूर्य भी प्रकाशवान भासित होता है।

राम प्रेम रत पुर नर नारी। निशि दिन मगन सेव धनुधारी ॥
पंच तत्व सब दिव्य लखाई। जग रस छाँह न परै जनाई ॥

श्री अयोध्यापुरी के सभी पुरुष–स्त्री श्री राम प्रेम में निरत तथा अहर्निशि धनुर्धर श्री राम जी महाराज की सेवा में मग्न रहते हैं। इनके शरीर के सभी पाँचों तत्व दिव्य प्रतीत होते हैं तथा इनमें भव रस की परछायी तक नहीं समझ आती।

चिदानन्दमय देहहिं धारे। पुरवासी अति रहहिं सुखारे ॥
भगति ज्ञान वैराग्य प्रवीने। परम तेज मय प्रभु रस भीने ॥

यहाँ के पुरवासी सच्चिदानन्दमय शरीर धारण किये हुए अत्यन्त सुखपूर्वक यहाँ निवास करते हैं तथा भक्ति, ज्ञान वैराग्य से परिपूर्ण परम प्रकाश स्वरूप, महान दक्ष व भगवद्रस में भीगे रहते हैं।

अमित देह धरि धर्म सुहावा। मानहुँ अवध वास कहँ आवा ॥
सुषमा सीम पुरी नर नारी। अमित कामरति छवि पर वारी ॥

इन्हे देखकर ऐसी प्रतीति होती है जैसे सुन्दर धर्म अपरिमित शरीर धारण कर श्री अयोध्यापुरी में निवास करने हेतु आ गया हो। यहाँ के पुरुष–स्त्री सुषमा की परिसीमा हैं जिन पर असीमित कामदेव व रति की सुन्दरता भी न्योछावर है।

दो०–सुभग सदन सब उच्च अति, परम तेजमय भास ।
दिव्य दिव्य रतनन जटित, बनन मनोहर जास ॥२११॥

यहाँ के सभी भवन आकाश को छूते हुये से परम तेजोमय आभासित होते हैं जो दिव्यातिदिव्य मणि–रत्न जड़ित व मनोहारी बने हुये हैं।

राज मार्ग इतरन भिंजवाया । रहै सतत मृदु पुष्प बिछाया ॥
पुरी विराजित बहु चौराहे । लखत जिनहिं मन बढ़त उमाहैं ॥

यहाँ के राजमार्ग सदैव इत्रादि सुगन्धित द्रव्यों से भीगे हुए और कोमल पुष्पों से आच्छादित रहते हैं। श्री अयोध्यापुरी में बहुत से चौराहे सुशोभित है जिन्हें देखकर मन में अत्यधिक आनन्द की परिवृद्धि होती रहती है।

शोभित पुर बहु सर बहु कूपा । भरे सुधा जल सुभग अनूपा ॥
बाग बाटिका विविध सुहाये । शत शत नन्दन वनहिं लजाये ॥

इस पुरी में अमृत स्वरूप अनुपमेय जल से परिपूर्ण अनेक तालाब व कुओं के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के बाग व वाटिकायें सुशोभित हैं जिनकी शोभा पर सैकड़ों नदन वन भी विलज्जित हो जाते हैं।

अमित प्रभाव पुरी जिय जानी । कुँअर प्रणाम करहिं मन बानी ॥
अहह अयोध्या सुरतिहिं आये । बनहिं जीव सुख धाम सुहाये ॥

श्री अयोध्यापुरी के असीमित प्रभाव को हृदय मे समझ कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी मन व वाणी से उसे प्रणाम करते हैं। हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–अहा! श्री अयोध्यापुरी की स्मृति मात्र आ जाने से ही जीव सुन्दर सुखों के धाम बन जाते हैं।

कुँअर पुरी लखि सुधिहिं बिसारे । बहे प्रेम सरि सब कछु वारे ॥
श्याल प्रीति लखि राम सुजाना । बोले बचन प्रेम रस साना ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री अयोध्यापुरी के दर्शन कर अपनी स्मृति भूल गये तथा अपना सर्वस्व न्योछावर कर प्रेम सरिता में प्रवाहित हो गये। सर्वज्ञ श्री राम जी महाराज अपने प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रीति को देखकर प्रेमरस से सने हुए बचन पुनः बोले–

दो०–सुनहु कुँअर तुम सन कहहुँ, गुप्त हृदय की बात ।
सब प्रकार मम प्राण सम, नाहिं छिपावौं तात ॥२१२॥

हे तात, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, मैं आपसे से अपने हृदय की रहस्यात्मक वार्ता, गुप्त न रखते हुए कह रहा हूँ क्योंकि आप सभी प्रकार से मेरे प्राण के समान हैं।

लीला धाम पुरी सुख रासी । मोहिं प्राण प्रिय परम प्रकाशी ॥
पुरी तेज निर्गुण कहवाई । मम तन तेज पृथक नहिं भाई ॥

यह हमारी लीला धाम श्री अयोध्यापुरी सुखों की राशि, परम प्रकाशवान तथा मुझे प्राणों से प्रिय

है। हे भाई! इस पुरी का तेज, जो निर्गुण कहलाता है मेरे शरीर के तेज से भिन्न नहीं है।

प्रकृति पार है सबहिं अधारा। यामहँ मैं नित करौं विहारा ॥
योगी ज्ञानी ढूँढ़त जेहीं। जानहु धाम अयोध्या तेहीं ॥

यह पुरी प्रकृति से परे तथा सभी की आधारभूता है, मैं इसमे नित्य विहार करता हूँ। योगी व ज्ञानी जन अपने योग व ज्ञान के द्वारा जिसका अन्वेषण करते हैं यह वही श्री अयोध्या धाम है, ऐसा आप समझ लीजिये।

उपजहिं अंश अमित बैकुण्ठा। जानहु धाम मोर बिन कुण्ठा ॥
मूलाधार अमित अण्डन की। चर्चा करैं वेद मण्डन की ॥

जिसके अंश मात्र से असीमित वैकुण्ठ लोकों की उत्पत्ति होती है, उसे ही सभी प्रकार की हेयता से रहित मेरा दिव्य धाम "श्री अयोध्या" जानिये। यह अयोध्यापुरी असीमित ब्रह्माण्डों की मूलाधार शक्ति व आभूषण है ऐसा वेद बखान करते हैं।

दव्य दृष्टि बिन लखै न कोई। पचि पचि मरै चहै सब खोई ॥
भक्ति अनन्य पाव जब प्रानी। अक्षर धाम लखै सुखसानी ॥

इस श्री अयोध्यापुरी का दर्शन, दिव्य दृष्टि प्राप्त किये बिना कोई भी नहीं कर सकता चाहे वह अपना सर्वस्व गवाँ कर पच–पच कर क्यों न मर जाये। जब जीव मेरी अनन्य भक्ति प्राप्त कर लेता है तभी सुखपूर्वक इस शास्वत (कभी विनाश को न प्राप्त होने वाले) दिव्य धाम श्री अयोध्या पुरी का दर्शन प्राप्त करता है।

दो०–रसरूपा रसिकन पुरी, रस दाता रस खानि ।
भक्ति प्रतापहिं जानि जन, कहौं त्रिसत्य बखानि ॥२१३॥

हे कुमार! मैं त्रिसत्य बखान कर रहा हूँ कि– रसिक जनों की रस स्वरूपा यह श्री अयोध्यापुरी, रस प्रदायिका व रस की खानि है इसे भक्ति के प्रताप से ही भक्तजन, समझ पाते हैं।

कहत सुनत रघुराज कुमारा। पहुँचे सुख सह बीच बजारा ॥
जन समूह लखि सिन्धु समाना। रस रस चलत गजहुँ मतिवाना ॥

इस प्रकार श्री अयोध्यापुरी का माहात्म्य कहते–सुनते रघुकुल मण्डन श्री राम जी महाराज व कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी सुखपूर्वक बाजार के बीच पहुँच गये। वहाँ सागर के समान उमड़ते जन समूह को देखकर परम बुद्धिमान शत्रुंजय गजराज भी धीरे–धीरे चलने लगा।

कछुक काल चौराहन रोकत। हस्तिप गजहिं जनन अवलोकत ॥
श्याल भाम मनहरण कुमारे। लखि लखि होते सबहिं सुखारे ॥

श्याल–भाम कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज के दर्शन के लिये समुत्सुक जन समूह को देखकर हस्तिपाल (महावत) गज को चौराहों पर कुछ समय के लिए रोक देता था तब मन को हरण करने वाली युगल जोड़ी का दर्शन कर सभी अत्यन्त सुखी होते थे।

बरषहिं सुमन सुजय जय बानी । प्रेम पगे पुर लोग महानी ॥
विविध भाँति के बाद्य सुहाये । बाजत मधुर मधुर मन भाये ॥

उस समय युगल कुमारों के प्रेम मे पगे हुये श्री अयोध्यापुर वासी सुन्दर स्वर से जय जयकार करते हुए पुष्पों की विपुल वर्षा कर रहे थे तथा विभिन्न प्रकार के सुन्दर व मन–भावन वाद्य मधुर–मधुर स्वर से बज रहे थे।

देवहुँ लखि लखि आनँद होहीं । श्याल भाम की प्रीति सुसोहीं ॥
बरषि सुमन दुन्दुभी बजावहिं । जय जय कहि हिय मोद बढ़ावहिं ॥

श्याल भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज की सुन्दर प्रीति को देख–देखकर देवता भी आनन्दित होते हैं तथा विविध प्रसूनों की वर्षा कर दुन्दुभी बजाते हुये, जय–जयकार कर सभी के हृदय में आनन्द की परिवृद्धि करते हैं।

दो०– लखत कुमारहिं मोद भरि, अवधपुरी नर नारि ।
मन आकर्षे सबहिं कर, कुँअर रूप उजियारि ॥२१४॥

उस समय श्री अयोध्यापुरी के पुरुष व स्त्री आनन्द में भर कर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को निहार रहे थे तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के परम ज्योतिर्मय स्वरूप से उन सभी के मन आकर्षित हो गये थे।

जनक सुवन रघुनन्दन दोई । जात बतात श्याल बहनोई ॥
अटन चढ़ी शशि मोहन बदनी । देखहिं कुँअर रूप जित मदनी ॥

दोनों श्याल–भाम जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व रघुनन्दन श्री राम जी महाराज परस्पर बातें करते हुए प्रस्थित हो रहे थे। अट्टालिकाओं में चढ़ी हुई चन्द्र विमुग्धकारी मुख मण्डल संयुक्ता तथा अपने रूप लावण्य से कामदेव पत्नी रती को परास्त करने वाली वामांगनायें कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का दर्शन कर रही थीं।

कह इक एकन ते गहि पानी । जनक सुवन सखि शोभा खानी ॥
सिय सम गौर सुमुख सुख सानन । शत शशि लाजहिं लखि प्रिय आनन ॥

वे अंगनायें एक दूसरे का हाथ पकड़कर कह रही थीं कि– हे सखी! जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी तो शोभा की खानि हैं। ये श्री सीता जी के समान ही गौर वर्ण से युक्त हैं तथा इनके सुख में सने हुए, सुन्दर प्रिय मुख–चन्द्र की छबि को देखकर, सैकड़ों चन्द्रमा भी विलज्जित हो जाते हैं।

सिय के योग भ्रात येइ अहहीं । रूप शील गुण प्रेम अथहहीं ॥
राम योग सखि मनहर श्याले । सब विधि जनक लाल रस पाले ॥

ये रूप, शील, गुण व अथाह प्रेम से परिपूर्ण श्री सीता जी के अनुरूप भ्राता है तथा हे सखी! प्रेम रस में पले हुए ये श्री जनक जी महाराज के लाल श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी प्रकार से श्री राम जी महाराज के योग्य मनहरण श्याल हैं।

सखी निरखु भल कुँअर सुअलकैं। अतर सनी कुञ्चित कस कलकैं॥
गौर मधुर रसमय शुभ आनन। छबि पै वारि कोटि शशि भानन॥

हे सखी! कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की सुन्दर अलकों को तो देखो, ये इत्र से सनी हुई, घुँघुराली तथा कैसी क्रीड़ा कर रही हैं। इनके शुभ, रसमय व मधुर गौर मुखचन्द्र की सुन्दरता पर तो करोड़ों चन्द्र व सूर्य की छवि न्योछावर है।

परम रम्य मनहरण कपोला। देखत चित्त बिकै बिन मोला॥
तापै हलकि सुकुण्डल झाँई। लेय सबन कर चित्त चुराई॥

इनके अत्यन्त सुन्दर मनोहारी कपोल हैं जिन्हें देखते ही हमारा चित्त बिना मोल इन पर बिक जाता है। उस पर हिलते हुए सुन्दर कुण्डलों की प्रति छाया तो सभी के चित्त को ही चुराये ले रही है।

दो०–नयन लजीले प्रेम रस, भरे शील सुख रूप।
कमल सुखंजन मीन मृग, लाजहिं देखि अनूप॥२१५॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के नेत्र लज्जा से युक्त, प्रेम–रस से परिपूर्ण, शील सम्पन्न, सुख स्वरूप व अनुपमेय हैं जिन्हें देखकर कमल, खंजन–पक्षी, मछली व मृग भी लज्जित हो जाते हैं।

एक सखी कह भृकुटि अनूपी। लजै काम धनु देख सुरूपी॥
परहित सनी कृपा रस बोरी। मनहुँ बतावत प्रेम करोरी॥

एक सखी ने कहा कि– हे सखि! इनकी सुन्दर भृकुटि तो अनुपमेय है जिसके सुशोभन स्वरूप को देखकर कामदेव का धनुष भी लज्जित हो जाता है। इनकी ये भौंहे दूसरों के हित से सनी और कृपा रस से भीगी हुई हैं मानों प्रभु श्री राम जी महाराज से प्रेम करने हेतु उपदेश कर रही हैं।

तिलक खौर कस भाल सुसोही। चितवत चित्त टरत नहिं ओही॥
राम प्रेम रस रूप निसानी। मनहुँ लगी वश करन सुहानी॥

अहा! इनके भव्य भाल पर सुन्दर तिलक व केशर की खौर किस प्रकार सुशोभित हो रही हैं, उसे देखकर तो हमारा चित्त वहाँ से हटाये ही नही हटता मानों वह ऐसा प्रतीत हो रहा है कि– श्री राम जी महाराज के प्रेम व रस का सुन्दर प्रतीक हो जो उन्हे वशीभूत करने के लिए विशाल भाल पर लगा हुआ है।

रम्य नासिका तेहिं पर मोती। हलकि हलकि लेवत रस गोती॥
अधर सुधामय प्यारे प्यारे। पान शोणिमा सुन्दर धारे॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की नासिका अत्यन्त ही सुन्दर है और उस पर शुकाकार मोती सुशोभित है जो सुखपूर्वक ऐसा हिल रहा है मानो इनके अधरामृत सागर में बार बार डुबकियाँ लगा रहा हो। हे सखि! इनके अमृत के समान प्यारे–प्यारे अधराधर पान की सुन्दर लालिमा को धारण किये अत्यन्त ही सुशोभन प्रतीत हो रहे हैं।

दाड़िम दसन सखी मन भाते । सुख सुखमा छबि छुभि छहराते ॥
चिबुक सुहावन निरखु सखी री । जनु अधार सब शोभ सही री ॥

हे सखी! अनार के दानों के समान इनकी सुन्दर दन्तावलि मन को अत्यधिक सुहावनी लगती है जो सुख, सुषमा व सुन्दरता की राशि–राशि भूमि में विखेर रही है। अरी सखी! इनकी सुहावनी सुशोभन ठोढ़ी को तो देखो, वह तो ऐसी प्रतीत हो रही है जैसे यह इनके मुख–मयंक के सम्पूर्ण शोभा की वास्तविक आधार हो।

दो०–एक अली कह क्रीट शिर, कलगी तुर्रा पेंच ।
तेज राशि पै मधुर मधु, लखत लोग मन बेंच ॥२१६॥

एक सखी ने कहा कि–अहा हा! राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के शिर में रत्न विनिर्मित क्रीट, कलँगी तथा पेंचदार तुर्रा लगा है जो तेज की राशि होने पर भी अत्यन्त मधुर है जिसे अपने–अपने मन को उन पर न्योछावर कर, लोग निहारते ही रहते हैं।

कहा कहा सखि निरखहु झीने । श्याल श्रृङ्गार स्वकर प्रभु कीन्हे ॥
सुर नर नाग त्रिदेव समर्था । अस सिंगार नहिं बनै यथर्था ॥

एक अन्य सखी ने कहा– हे सखी! जरा सूक्ष्मता के साथ तो निहारो, अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का अनुपमेय श्रृंगार प्रभु श्री राम जी महाराज नें अपने हाथों से स्वयं किया है क्योंकि देवता, मनुष्य, नाग तथा परम सामर्थ्यवान त्रिदेवों (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, व श्री शंकर जी) से भी यथार्थतया इस प्रकार का श्रृंगार नहीं बन सकता।

कोटि काम मद मर्दन रूपा । लखि मोहेउ मन मोहन भूपा ॥
धन्य कुँअर बलि जावन योगू । बरषैं सुमन कहत सखि लोगू ॥

हे सखि! कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के करोड़ों कामदेव के अभिमान को मर्दन करने वाले सुशोभन स्वरूप को देखकर सभी के मन को मोहित कर लेने वाले भूप श्री राम जी महाराज भी मोहित हो गये हैं। राजुकमार श्री लक्ष्मीनिधि जी धन्य तथा बलिहारी जाने के योग्य हैं ऐसा कहती हुई सखियाँ उन पर पुष्प वृष्टि करने लगती हैं।

बोली अपर सखी सुनु सजनी । प्रेम प्रतीत कहौं रुचि छजनी ॥
अस मोहिं लगत स्व सरवस रामा । दीन्हेउ कुँअरहिं पूरण कामा ॥

अनन्तर दूसरी सखी ने कहा– अरी सखी! सुनों, मैं इन युगल राजकुमारों की पारस्परिक प्रीति व प्रतीति को देखकर अपने हृदय के सुन्दर भाव को प्रगट कर रही हूँ, मुझे तो ऐसा लग रहा है कि– श्री राम जी महाराज ने अपना सर्वस्व (रूप, गुण व वैभव) कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रदान कर पूर्ण काम कर दिया है–––

जनक सुवन प्रभु प्राण अधारा । आनँद सतत बढ़ावन वारा ॥
कहा एक सत सत तव बानी । मुद्रा युगल लखहु रस सानी ॥

–––क्योंकि श्री जनक नन्दन जू तो प्रभु श्री राम जी महाराज के प्राणों के आधार तथा

अनवरत उनके आनन्द की परिवृद्धि करने वाले हैं। उस सखी के भाव को श्रवण कर, एक सखी ने कहा– हे सहेली! तुम्हारे वचन सर्वथा सत्य हैं, सत्य हैं। किंचित, इन दोनों राजकुमारों की परस्पर प्रेम रस में सनी हुई मुद्रा (बैठनें का ढंग) को तो देखो।–––

करतल पकड़ि रहे इक एकनि । पगे परस्पर प्रेम बिलोकनि ॥
मनहुँ चहत इक एक सहारा । दरश परश हित बनहिं अधारा ॥

–––प्रेम दृष्टि से निहारते हुए ये एक दूसरे की हथेली पकड़े हुए परस्पर में ऐसे खोये हुए हैं। मानों एक दूसरे के अवलम्बन की कामना कर रहे हो, जिससे परस्पर दर्शन व स्पर्श के लिए परम आधार प्राप्त होता रहे।

दो०–पीत वसन रघुनाथ धर, हरित वसन निमिलाल ।
देह वरण इक एक के, धारे सोह विशाल ॥२१७॥

हे सखि! एक दूसरे के वपु वर्ण के अनुसार श्री रघुनाथ जी पीले रंग के व निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी हरे रंग के वस्त्र धारण किये हुए उसी प्रकार अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं।–––

मनहुँ परस्पर परम सनेहा । प्रकट रहे युग वस्त्र सुदेहा ॥
बैठे यदपि एक सँग दोऊ । तदपि दिखैं ललचत सम जोऊ ॥

–––मानों श्याल भाम दोनों अपनी पारस्परिक सुन्दर शारीरिक प्रीति को वस्त्रों के द्वारा प्रगट कर रहे हों। ये युगल राजकुमार श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी यद्यपि एक साथ विराजे हुए हैं तथापि एक दूसरे को देखने के लिए अतिशय लालायित से दीख रहे हैं।

दरश प्यास इक एकहिं हेरी । बढ़त लगै सखि दोउन केरी ॥
धन्य अलौकिक प्रेम सुहावा । अकथ अकाम अगम्य लखावा ॥

हे सखी! इन दोनों की पारस्परिक दर्शन की तृषा एक दूसरे को देख–देखकर बढ़ती हुई सी प्रतीत होती है। इनका पारस्परिक सुन्दर प्रेम धन्य व अलौकिक है जो अकथनीय, निष्काम व अगम्य है।

कहा एक सखि आस हमारी । दीन्ह पुजाय भली करतारी ॥
सुनि सुनि श्रीसिय भ्रात बड़ाई । चहत रही दरसन सो पाई ॥

एक सखी ने कहा, हे सखी! हमारी अभिलाषा को विधाता ने भली प्रकार से पूर्ण कर दिया क्योंकि श्री सीता जी के श्रीमान् भइया जी की प्रशंसा सुन–सुनकर हम दर्शन की कामना करती रहती थी, उसे हमने प्राप्त कर लिया।

अहह अली मिथिलेश दुलारा । लगत सबहिं नर नारिन प्यारा ॥
बोलनि हँसनि तकनि मनहारी । रहनि करनि मिलनी सुखसारी ॥
चित्ताकर्षण अवधहिं केरा । करि कुमार हिय लीन बसेरा ॥

अहा सखी! मिथिलेश दुलारे राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी तो श्री अयोध्यापुरी के सभी पुरुष

व स्त्रियों को प्रिय लगते हैं। इनका बोलना, हँसना व निहारना मन को हरण करने वाला तथा रहनी, करनी व मिलनी तो समस्त सुखों की सार–भूता ही है। कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने निश्चय ही श्री अयोध्यापुर वासियों के चित्त को आकर्षित कर उनके हृदय में अपना निवास बना लिया है।

दो०–जो सुख सखि मोकहँ भयो, निरखि युगल मुख चन्द ।
अकथनीय साधन रहित, काह लखैं मति मन्द ॥२१८॥

हे सखी! इन युगल राजकुमारों श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मुख–चन्द्र का दर्शन कर मुझे जो सुख हुआ है वह अकथनीय है। भगवान की अहैतुकी कृपा से ही मुझे इन युगल कुमारों के दर्शन हो सके हैं अन्यथा सभी साधनों से सर्वथा विहीन व मन्द बुद्धि मैं इनका दर्शन किस प्रकार प्राप्त कर सकती थी।

श्याल भाम की सुन्दर जोरी । युग युग जिये सखी रुचि मेरी ॥
मोहन मधुर मधुर मन माहीं । पगे रहैं लखि इक इक काहीं ॥

हे सखी! मेरी तो यही कामना है कि– यह श्याल–भाम की जोड़ी युगों–युगों तक जीवन धारण किये रहे तथा सभी को मोहित करने वाले ये युगल राज कुमार श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी एक दूसरे को निहारते हुए मन में मधुरातिमधुर रस से ओत–प्रोत बने रहें।

श्याम गौर दोउ तेज सलोने । बने रहैं रसिकन रस बोने ॥
दशरथ जनक गोद की शोभा । रहैं बढ़ावत जन मन लोभा ॥

अप्रतिम लावण्य सम्पन्न श्याम व गौर वर्ण वाले दोनों राजकुमार महान तेज से युक्त तथा रसिक जनों के लिए रस वपन करते हुए सदैव बने रहे। जन–जन के मन को लुब्ध कर लेने वाले ये दोनों राज कुमार चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज व श्री जनक जी महाराज के गोद की शोभा को निरंतर वृद्धिंगत करते रहें।

कौशिल मातु सुनैना गोदी । विहरैं सदा देत उर मोदी ॥
पुरी अयोध्या मिथिला दोऊ । करैं विहार नित्य सुख मोऊ ॥

महारानी श्री कौशिल्या अम्बा जी व श्री सुनैना अम्बा जी को हृदय में आनन्द प्रदान करते हुए ये दोनों श्याल–भाम सदा ही उनकी गोद में क्रीड़ा करते रहें तथा श्री अयोध्यापुरी व श्री मिथिलापुरी में आनन्द प्रपूरित हो नित्य विहार करें।

सरयू कमला सरित सुकेली । सदा करैं अभिलाष सहेली ॥
सखन सहित भ्रातन मधि सोहैं । सरसत नित्य सबन मन मोहैं ॥
मज्जन अशन शयन सुखछाई । करहि सखी इक संग सदाई ॥

हे सखी! मेरी यह अभिलाषा है कि– ये दोनों राज कुमार श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सरयू जी व श्री कमला जी आदि पवित्र नदियों में सदैव सुन्दर क्रीड़ा करते रहें, अपने भ्राताओं के मध्य सखाओं सहित सभी के मन को मोहित करते हुए नित्य आनन्दपूर्वक सुशोभित होते रहें तथा हे सखी! ये दोनों सदैव ही सुख में सने हुए स्नान, भोजन व शयन आदि अपनी दिनचर्यायें एक साथ सम्पादित किया करें।

दो०–प्रीति रसीली छन छनहिं, बढ़ै अमित सुख दैन ।
इक एकन मुख निरखि दोउ, बने रहहिं रस ऐन ॥२१९॥क॥

इन युगल राज कुमारों श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मीनिधिजी की रसमयी पारस्परिक प्रीति असीमित सुख प्रदान करती हुई प्रतिक्षण अनुवर्धित होती रहे तथा एक दूसरे का मुख दर्शन करते हुए दोनों रस के आगार बने रहें।

यहिं विधि परमानन्द पगि, अवधपुरी प्रिय बाम ।
बरषहिं सुमन सुमोद भरि, छाई प्रेम अकाम ॥ख॥

इस प्रकार श्री अयोध्यापुरी की प्रिय वामांगनायें परमानन्द में पगी हुई सुन्दर आनन्द में भरकर व निष्काम प्रेम में समायी हुई पुष्पों की वर्षा करने लगीं।

देखत सुनत कुँअर सब केरी । प्रीति रीति कल कृपा घनेरी ॥
हरषत पुलकत रामहिं पेखी । मनहुँ कहत तव कृपा विशेषी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने प्रति सभी श्री अयोध्यापुरवासियों की प्रीति, रीति व सुन्दर सघन कृपा को देख तथा सुन रहे थे और श्री राम जी महाराज की ओर देख–देखकर ऐसे हर्षित व पुलकित हो जाते थे मानों कह रहे हों कि यह सब आपकी विशेष कृपा का ही परिणाम है।

यहि प्रकार सबहिन सुख देते । जात चले दोउ लाल सुखेते ॥
पहुँचे राज भवन के द्वारा । परम सुशोभित कहै को पारा ॥

इस प्रकार सभी को सुख प्रदान करते हुए दोनों कुमार श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुखपूर्वक अयोध्यापुरी के राजमार्ग में चलते हुये, राजमहल के परम शोभायमान व अनिर्वचनीय द्वार पर पहुँच गये।

बृक्ष अशोक एक तहँ अहई । अति विस्तार एक रस रहई ॥
बारहिं अमित देव तरु जापै । अनुपमेय सुख होत तहाँ पै ॥

राज महल के द्वार पर अत्यन्त विस्तार युक्त व सदा एकरस रहने वाला एक अशोक वृक्ष है, जिसके सौभाग्य पर अनन्त कल्प–वृक्ष भी न्योछावर हो जाते हैं तथा जहाँ पहुँचने पर अनुपमेय सुख संप्राप्त होता है।

शीतल सुखद अमल तरु छाया । शान्ति प्रदायक करति अमाया ॥
परम प्रकाश रूप तरु भाई । मूल डार वर पात सुहाई ॥
पुष्प सुगन्धित फल रस रूपा । परम प्रेम मय नित्य अनूपा ॥

उस अशोक वृक्ष की छाया अत्यन्त शीतल, सुखदायी, निर्मल, शान्ति प्रदायिनी व माया से रहित कर देने वाली है। हे भाई! वह वृक्ष परम प्रकाश स्वरूप और सुन्दर जड़, डाली व पत्तों से सुशोभित है। उसके पुष्प सुगन्ध से परिपूर्ण मकरन्द संयुक्त व फल रसमय है तथा वह अशोक वृक्ष, परम प्रेम स्वरूप, नित्य व सर्वथा अनुपमेय हैं।

दो०–पातन पातन लखि परैं, सीता राम सुवर्ण ।
उइ उइ होहिं विलीन पुनि, सत चित आनन्द पर्ण ॥२२०॥

उस सच्चिदानन्दमय दिव्य "अशोक वृक्ष" के प्रत्येक पत्ते में श्री सीताराम नाम के सुन्दर अक्षर दिखाई पड़ते हैं जो उनमें प्रगट होकर पुनः विलीन हो जाते थे।

परम प्रकाश सु अक्षर केरा। कहै महात्म कवन हिय हेरा ॥
देखि कुँअर चिद् विटप अशोका। सीय राम मय नित्य विशोका ॥

उन परम प्रकाश स्वरूप सुन्दर वर्णों (श्री सीताराम नाम) के माहात्म्य को कौन वर्णन कर सकता है। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उस श्री सीताराम मय, परम पद स्वरूप व नित्य चिद–वृक्ष अशोक को देखकर–––

भये मुदित कहि जात न मोसों। देखी बात कहत सुत तोसों ॥
प्रेम रूप लक्ष्मीनिधि जाने। सुखद राम मृदु बचन रसाने ॥

–––इतने आनन्दित हुए कि– मुझसे उसका बखान नहीं किया जा रहा। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा–हे तात श्री हनुमानजी! मैं आपसे अपनी आँखों देखी बात कह रहा हूँ। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को दिव्य अशोक वृक्ष का दर्शन कर प्रेम परिप्लुत जानकर सुख प्रदायक श्री राम जी महाराज मधुर व रसमय बचनों से–––

तरु महिमा सब विधिहिं सुनाई । हरषित तथा प्रथम मैं गाई ॥
परमानन्दहिं लहेउ कुमारा। रुके हरषि तरु छाँह सुखारा ॥

–––हर्ष पूरित हो दिव्य अशोक वृक्ष की सभी प्रकार की महिमा सुना दिये, जैसा मैंने पूर्व में बखान किया है। उस चिद् अशोक वृक्ष की महिमा से युक्त श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने परमानन्द प्राप्त किया और हर्षित हो उस वृक्ष की छाँह में सुख पूर्वक कुछ देर तक रुके रहे।

राज सदन परिकर बहु आये। उत्सव भाँति अनेक मनाये ॥
शंख घड़ी झालर धुधुकारी। बाजत डफ मृदंग करतारी ॥
नृत्य गान अप्सरा सुकरहीं। स्वाँग विदूषक बहु विधि धरहीं ॥

उसी समय वहाँ राजभवन के बहुत से परिकर आ गये तथा अनेक प्रकार से उत्सव मनाने लगे। शंख, घड़ियाल, झालर, धुधकारी, डफ, मृदंग तथा करताल आदि वाद्य बजने लगे, अप्सरायें सुन्दर नृत्य–गान करने लगीं तथा विदूषक बहुत प्रकार के स्वाँग (अभिनय) दिखाने लगे।

सो०–वरषहिं सुमन अपार, जय जय बोलत लोग सब ।
चिरंजीव सुख सार, कुँअर अवध मिथिलेश के ॥२२१॥

सभी जन जय–जयकार करते हुए पुष्पों की अपरिमित वर्षा करने लगे तथा कहने लगे कि अयोध्याधिपति श्री दशरथ जी महाराज व मिथिला पति श्री जनक जी महाराज के सुखों के सार दोनो राजकुमार चिरंजीवी हों।

विप्र पढ़हिं श्रुति मंत्र सुहाये। कुँअर प्रेम रँगि गये सुभाये ॥
आनन्द सिन्धु लहर उमड़ानी । कुँअर आगमन अति सुखदानी ॥

ब्राह्मण सुन्दर वेद मन्त्रों का पाठ कर रहे हैं तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहज ही प्रभु प्रेम के रंग में रँगे हुए हैं। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के अयोध्या आगमन की अत्यन्त सुख प्रदायी लहरें पुरवासियों के हृदयानन्द के सागर में उमड़ने लगी हैं।

परमानन्द रूप रघुराया। सोउ लखि कुँअरहिं आनँद पाया ॥
राम सुखी कुँअरहिं लखि ताते । जीव त्रिलोकी आनँद माते ॥

श्री राम जी महाराज तो परमानन्द स्वरूप ही हैं परन्तु कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर उन्होंने ने भी अत्यानन्द प्राप्त किया है। जनक नन्दन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर श्री राम जी महाराज सुखी हो रहे हैं इसीलिए तीनों लोकों के सभी जीव आनन्द में समाये हुए हैं।

घहरत तोप शब्द बहु बोला । बजत नगारा दुन्दुभि ढोला ॥
बन्दी विरद बखान सुनावहिं । सबन हिये प्रभु प्रेम बढ़ावहिं ॥

तोपें तीव्र ध्वनि करती हुई घहरा रही है, नगाड़े, दुन्दुभी व ढोल आदि बज रहे है तथा बन्दीजन विरद का बखान कर, सुनाते हुए सभी के हृदय में प्रभु प्रेम की परिवृद्धि कर रहे हैं।

यथा अनन्द भूमि महँ छाया । तथा गगन रस सिन्धु समाया ॥
देखि देखि छबि युगल किशोरा। होहिं सकल सुर प्रेम विभोरा ॥

जिस प्रकार का आनन्द भूमि में छाया हुआ है उसी प्रकार आकाश भी रस के समुद्र में समाया हुआ है। युगल कुमारों श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की छबि को देख देखकर सभी देवता प्रेम विभोर हुए जा रहे हैं।

छन छन वरषहिं सुमन सुजाना। जय जय कहत बजाय निशाना ॥
नाचहिं गावहिं किन्नर देवी। चढ़ी विमानन आनँद लेवी ॥

परम सर्वज्ञ देवगण प्रतिक्षण पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं और नगाड़े बजा–बजा कर जय जयकार कर रहे हैं। किन्नरियाँ व देवियाँ विमानों में चढ़ी हुई नाच व गाकर आनन्द प्राप्त कर रही हैं।

दो०–कहहिं परस्पर देव सब, सहित नारि सुख पाग ।
राम प्रेम फल लखहु प्रिय, कुँअर बने बड़ भाग ॥२२२॥

सभी देवता अपनी नारियों सहित सुख में पगे हुए कह रहे हैं कि– श्री राम जी महाराज से प्रेम करने के प्रिय फल को तो देखिये कि– श्री लक्ष्मीनिधि जी परम सौभाग्यशाली बने हुए हैं।

श्याल भाम छवि सिन्धु सुहाये । प्रगटि प्रेम सब जगहिं डुबाये ॥
देखहु दूनहु तेज अपारा । सुखद मधुर जगदेक सहारा ॥

दोनों श्याल व भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज के सौन्दर्य सागर ने प्रेम को

प्रकट कर सम्पूर्ण संसार को उसमें अस्त कर दिया है। दोनों के सुख प्रदायी, मधुर और अपार तेज (प्रकाश) को तो देखिये, जो संसार का एक मात्र आधार है।

जासु अंश सब जगत प्रकाशा । दश दिक देखहु तेज सुभाषा ॥
शोभा कन लहि जनु इन केरी । विरचे अण्ड अमित हिय हेरी ॥

जिनके अंश मात्र से सम्पूर्ण संसार प्रकाशित है तथा दसों दिशाओं में तेज दिखाई पड़ता है। हमारे हृदय में ऐसा प्रतीत होता है, जैसे इन दोनों की शोभा के कण मात्र को प्राप्त कर ही असीमित ब्रह्माण्डों की रचना की गयी है।

मोहन मोहन हैं सत दोऊ। वशीकरण की सीमहुँ सोऊ ॥
अखिल गुणन के धाम अनूपा । सत सत जानहु दूनहु रूपा ॥

परस्पर को मोहित करने वाले ये दोनों राजकुमार सत्य ही सभी के मन को मुग्ध कर लेने वाले तथा वशीकरण की सीमा हैं। ये दोनों सम्पूर्ण अनुपमेय गुणों के धाम हैं एवं इनके स्वरूप को शास्वत सत्य ही समझिये।

बीज रूप दूनहु तन धारे । इनहिन ते यह सृष्टि अपारे ॥
प्रेम रूप दोऊ अति सोहैं । करत दरश सबहिन मन मोहैं ॥

ये दोनों श्याल भाम अखिल ब्रह्माण्ड के बीज स्वरूप होकर ही शरीर धारण किये हुए हैं तथा इन्हीं से इस अपरिमित सृष्टि की रचना हुई है। ये दोनों प्रेम स्वरूप व अत्यन्त सुशोभन हैं जिनका दर्शन करते ही सभी का मन स्वयं मोहित हो जाता है।

दो०—प्रेम वृक्ष युग छाँह ते, लखहु जगत व्यवहार ।
बिना प्रेम छाया दुखद, जरत लगत संसार ॥२२३॥

इन दोनों राजकुमारों के प्रेम रूपी वृक्ष की छाया से ही सम्पूर्ण संसार में प्रेम व्यवहार दिखाई देता है तथा इस प्रेम–वृक्ष की छाया के अभाव में समस्त संसार दुखप्रद और जलाने वाला हो जाता है।

देखहु दूनहु केर सुप्रीती । सहज सुखद मन भावत मीती ॥
प्रेम सिन्धु डूबे युग बारा । भये एक सम सुखद अपारा ॥

दोनों श्याल व भाम की सहज, सुखदायी, मनभावनी, सख्य भाव से भावित सुन्दर पारस्परिक प्रीति को तो देखिये, ये दोनों राजकुमार श्री राम जी व श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम के सागर में डूब कर एक समान अपार सुखदायी हो गये हैं।

बेगि करै पहिचान न कोई । कौन गौर को श्यामल होई ॥
देखहु झीने आँख लगाई । रघुवर छाँह कुँअर तन भाई ॥

शीघ्रतापूर्वक इन्हें कोई भी नहीं पहचान सकता कि कौन गौर वर्ण वाले तथा कौन श्याम वपु हैं। नेत्रों को एकाग्र कर सूक्ष्मता पूर्वक देखिये कि– श्री राम जी महाराज का प्रतिबिम्ब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के देह पर सुशोभित हो रहा है–––

कुँअर छाँह देखहु तन रामा। सहित विभूषण वस्त्र ललामा ॥
श्याम गौर मिश्रित दोउ सोहैं। जीव ब्रह्म जिमि युगल विमोहैं ॥

———और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का सुन्दर प्रतिबिम्ब आभूषण व वस्त्रों सहित श्री राम जी महाराज के वपुष में दिखाई पड़ रहा है। अतएव दोनों श्याम व गौर 'मिश्रित' वर्ण वाले उसी प्रकार सुशोभित हो रहे हैं जैसे जीव और ब्रह्म मिलकर एक हो सभी को विमोहित करते हुए सुशोभित होते हैं।

प्रेम पगे दोउ आपा भूले। भूलि स्वयं विद ज्ञान अतूले ॥
राम रँगा चित रामाकारा। भयो कुँअर कर सोह अपारा ॥

अतुलनीय ज्ञान से परिपूर्ण दोनों प्रेम में पगे हुए स्वयं को भुलाकर अपने अस्तित्व को भूल गये हैं। श्री राम जी महाराज में रँगा हुआ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का चित्त श्री राम जी के आकार वाला होकर असीमित शोभा संप्राप्त कर रहा है।

दो०—कुँअर रँगा चित राम कर, बनो कुँअर को रूप।
भयो अकथ अद्वैत यह, रसमय रसद अनूप ॥२२४॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी में रँगा हुआ श्री राम जी महाराज का चित्त कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के रूप वाला बन गया है। यह कैसा अकथनीय, रसमय, रसप्रदायक व अनुपमेय अद्वैत है।

धन्य धन्य धनि जनक कुमारा। सबकर खींचेव चित्त पियारा ॥
अस कहि देव मगन मन होई। वरषहिं सुमन प्रेम मति मोई ॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी धन्यातिधन्य हैं जिन्होंने सभी के प्रिय चित्त को आकर्षित कर लिया है ऐसा कहते हुये देवता मन मग्न हो, प्रेम–प्रपूरित बुद्धि से पुष्प वरषाने लगे।

सुनु हनुमान राम रघुराऊ। कृपा सिन्धु जानत हिय भाऊ ॥
देवहिं जन कहँ अमित बड़ाई। बिकैं तासु कर रीति सदाई ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! सुनिये, कृपा के सागर, श्री राम जी महाराज हृदय के भावों को पहचानने वाले हैं तथा वे अपने भक्तों को असीमित बड़ाई देकर उनके हाथों बिके रहते हैं यह उनकी सदा की रीति है।

अस स्वभाव सुनि गुनि मन माहीं। जो न भजे रघुनन्दन काहीं ॥
दुःख रूप जीवत सो प्रानी। अत्र तत्र सब लोक नसानी ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज के ऐसे स्वभाव को सुन व मन में अनुभव कर जो कोई भी रघुनन्दन श्री राम जी महाराज का भजन नहीं करता वह प्राणी अपने उभय लोकों को विनष्ट कर दुख–स्वरूप बना हुआ जीवित रहता है।

अस जिय जानि जीव धरि देहा। रामहिं भजैं नित्य करि नेहा ॥
आगे चरित कहन मैं भूला। सुनहु तात मुद मंगल मूला ॥

अतः अपने हृदय में ऐसा समझकर, सभी शरीर–धारी जीवों को चाहिये कि– वे प्रेम पूर्वक नित्य, श्री राम जी महाराज का भजन करे। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे तात श्री हनुमान जी! मैं श्री राम जी महाराज के स्वभाव का स्मरण कर आगे का चरित्र कहना ही भूल गया था, आप आनन्द व मंगल के मूल चरित्र को श्रवण करें।

भूमि गगन अरु अनुप अटारी। उत्सव देखहिं सब नर नारी॥
पंच शब्द धुनि बाजत बाजा। कुँअर प्रवेश किये रस भ्राजा॥

भूमि, आकाश व अनुपमेय अट्टालिकाओं से सभी पुरुष–स्त्री अशोक वृक्ष के नीचे हो रहे उत्सव का दर्शन कर रहे थे। वहाँ पंच ध्वनि हो रही थी तथा बाजे बज रहे थे। इसी बीचप्रेम–रस में मग्न हुए राजमहल परिसर में प्रवेश किये।

दो०–तीन कक्ष लौं करिहिं पर, गये कुँअर लै राम।
प्रति प्रति कक्षन भीर अति, उत्सव आनँद धाम॥२२५॥

अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को श्री राम जी महाराज तीन कक्षों (आवरणों) तक गज में ही ले गये। वहाँ प्रत्येक कक्ष में विपुल जन समुदाय उपस्थित था व आनन्दोत्सव हो रहे थे।

उतरि राम अरु जनक कुमारा। भाइन भृत्यन सहित उदारा॥
चले मिलन दशरथ महराजहिं। पाँवड पड़े सुखद मन भ्राजहिं॥

तदनन्तर परम उदार श्री राम जी महाराज व जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी गज से उतरकर भ्राताओं व सेवकों सहित चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज से भेंट करने के लिए चले। वहाँ मनोहारी सुखद पाँवड़े पड़े हुए सुशोभित हो रहे थे।

चौथ आवरण अकथ अनूपा। मेरु श्रृङ्ग सम सदन सुरूपा॥
ऊँचे अटहिं विराजि भूप वर। लखत रहे उत्सव अनूप कर॥

चतुर्थ आवरण में अवर्णनीय, अनुपमेय, सुमेरु पर्वत की चोटी के समान सुन्दर स्वरूप वाले भवन की ऊँची अट्टालिका में विराजे हुए चक्रवर्ती जी महाराज अनुपमेय उत्सव का दर्शन कर रहे थे।

कुँअरहिं आवत जानि भुआरा। चले मिलन तजि अटा सुखारा॥
प्रेम मूर्ति श्री दशरथ दाऊ। पहुँचे तुरत कुँअर ढिग आऊ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को आते हुए जानकर श्री दशरथ जी महाराज परम सुखावह अट्टालिका को छोड़ उनसे मिलने के लिए चल दिये और प्रेम मूर्ति "दाऊ साहब" श्री मान् दशरथ जी महाराज शीघ्र ही आकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के समीप पहुँच गये।

कुँअर देखि तेहिं हरबर धाई। गिरे सप्रेम चरण भहराई॥
अश्रु बिन्दु बहु पगन चढ़ाये। प्रेम विभोर सुधिहुँ बिसराये॥

उन्हे देखकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी त्वरापूर्वक दौड़, प्रेम सहित उनके चरणों में भहरा कर (आधार विहीन हो) गिर पड़े तथा अश्रु–बिन्दुओ की भेंट उनके चरणों में चढ़ा दिये। तदनन्तर वे प्रेम विह्वल हो अपनी स्मृति भूल गये।

भूपति पगे प्रेम रस धारी । लीन्हे कुँअर उठाय सम्हारी ॥
हृदय लाय दृग ढारत नीरा । कुँअरहिं देत अशीष अधीरा ॥
लहि सुप्यार ब्रहु भाँति दुलारा । धारेउ धीरज कछुक कुमारा ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज प्रेमानन्द के प्रवाह में डूबकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को सम्हाल पूर्वक उठा लिये तथा हृदय से लगा अश्रु बहाते हुए व्याकुल कुमार को आशीर्वाद प्रदान किये। उनके सुन्दर प्यार व अत्यधिक दुलार को प्राप्त कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कुछ धैर्य धारण किया।

दो०–कुँअर भ्रात भरि प्रेम प्रिय, भूपहिं कीन्ह प्रणाम ।
हिय लगाय सब कहँ नृपति, दिय अशीष अभिराम ॥२२६॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के भ्राताओं ने प्रिय प्रेम प्रपूरित होकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज को प्रणाम किया व सभी को हृदय से लगाकर श्री महाराज ने सुन्दर आशीर्वाद प्रदान किया।

सानुज राम भूप पद बन्दे । लहि आशिष अति प्यार अनन्दे ॥
कुँअर सहानुज भूपति भाइन । बन्दे सचिवन सहित उराइन ॥

पुनः भ्रातृ–गणों सहित श्री राम जी महाराज ने अपने श्री मान् पिता श्री दशरथ जी महाराज के चरणों की वन्दना की व आनन्दपूर्वक अत्यधिक प्यार और आशीर्वाद प्राप्त किया। अनन्तर अपने अनुजों सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सचिवों सहित चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के भ्रातृगणों की आनन्द पूर्वक वन्दना की।

यथा योग हिल मिल सब काऊ । लहे शान्ति सुख दरशन चाऊ ॥
भूप कुँअर कर गहे सुखारे । सभा सिंहासन जाय पधारे ॥

इस प्रकार सभी जन यथा योग्य मिल–भेंट कर शान्ति, सुख व दर्शनानन्द प्राप्त किये। तदनन्तर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज सुखपूर्वक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का हाथ पकड़, जाकर कर राज्य सभा में सिंहासनासीन हो गये।

कुँअरहिं लीन्हे अंक बिठाई । बार बार निज हृदय लगाई ॥
दुहुँ समाज बैठी शुभ आसन । प्रेम भरी कछु करत न भाषन ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपनी गोद में बिठा कर बार बार हृदय से लगा लेते हैं। अनन्तर श्री मिथिला व श्री अवध दोनों समाज शुभ आसनों में विराज गया उस समय प्रेम परिपूरित होने से कोई कुछ भी बोल नहीं पा रहा था।

बहुरि धीर धरि दशरथ राई । पूँछी कुशल विदेह भलाई ॥
कुँअर सुनत मिथिला सुधि कीनी । विरह सनी सिय राम रसीनी ॥

पुनः धैर्य धारण कर श्री महाराज दशरथ जी ने श्री विदेहराज जनक जी महाराज की कुशल–क्षेम पूँछी जिसे सुनते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सीताराम जी के वियोग में डूबी हुई, रसमयी श्री मिथिलापुरी का स्मरण किया।

दो०– छल छलाय दृग अश्रु झर, भयो कण्ठ अवरोध ।
कछुक काल नहिं बोल सक, भूपति दीन्हे बोध ॥२२७॥

श्री मिथिलापुरी का स्मरण करते ही कुमार के नेत्रों से छल–छलाकर अश्रु प्रवाहित होने लगे, गला अवरुद्ध हो गया और वे कुछ समय तक बोल नहीं सके तब श्री दशरथ जी महाराज ने उन्हें शान्त्वना प्रदान की।

जनक सुवन धीरज मन धारा । बोलेउ बचन सुबुद्धि अगारा ॥
जासु कुशल पूछहिं नर नाथा । सब विधि कुशल रहै तेहिं साथा ॥

सुन्दर बुद्धि के आगार जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी मन में धैर्य धारण कर मृदुल वचन बोले– हे महाराज! जिसकी कुशलता पूछने वाले आप श्री हैं, सभी प्रकार की कुशलता तो उसके साथ सदैव ही रहेगी।

राउर जब ते भयो पयाना । मिथिला दशा न जाय बखाना ॥
विरह अग्नि तन ताप बढ़ावै । राग रंग कछु मनहिं न भावै ॥

आप श्री का जब से श्री मिथिलापुरी से प्रस्थान हुआ था तब से उसकी दुखमयी अवस्था का बखान नहीं किया जा सकता। प्रभु विरह की अग्नि उसके शरीर के ताप को बढ़ाती रहती है तथा सांसारिक आनन्दोपभोग उसके मन को किंचित भी अच्छे नहीं लगते।

दाऊ पद प्रणाम बहु कीना । विनती किय जो सुनहु प्रवीना ॥
आप कहाय दरश तव प्यासा । लगी रहै यह बड़ि उपहासा ॥

श्रीमान् दाऊजी ने आपके श्री चरणों में अगणित प्रणाम निवेदन किये हैं और उन्होंने जो विनययुक्त प्रार्थना की है, हे सर्वज्ञ महाराज! आप उसे श्रवण करें। हे महाराज! आपका कहलाकर भी आपके दर्शनों की प्यास मुझे लगी रहे यह हमारे लिये बड़ी उपहास की बात है।

भाइन सहित राम धनुधारी। योगिहिं दिये वियोग सम्हारी ॥
सीता प्राण सजीवन मूरी। ता बिन श्वास चलै नहिं पूरी ॥

भ्राताओं सहित धनुर्धर श्री राम जी महाराज ने मुझ योगी को वियोग सम्हलवा दिया है। पुत्री श्री सीता जी तो हमारे प्राणों की संजीवनी बूटी ही हैं जिनके बिना हमारी साँसे पूर्ण रूपेण नहीं चल पा रही हैं।

दो०–श्वास सुहागिन स्वार्थ निज, चहत रहत अठयाम ।
ताते आवत जात नित, रटति विकल सियराम ॥२२८॥

साँस रूपी सौभाग्यवती नारी आठो–याम अपना स्वार्थ श्री सीताराम जी के दर्शन चाहती रहती है इसलिए व्याकुल होकर सीताराम नाम रटती हुई नित्य आती व जाती रहती है।

दीन्ह पत्रिका यह मम दाऊ । चरण पृष्ठ अरपे सति भाऊ ॥
सचिव सहित सिगरे रघुवंशिन । तात प्रणाम सहित निमि वंशिन ॥

हमारे श्रीमान् दाऊ जी ने यह पत्रिका दी है, ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उसे सद्भाव पूर्वक चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के चरण–पीठ में अर्पित कर दिये। हे महाराज! मंत्रियों सहित सम्पूर्ण रघुवंशी जनों को, सभी निमिवंशियों सहित श्रीमान दाऊजी ने प्रणाम निवेदित किया है।

तव पद मातहुँ केर प्रणामा । होवै स्वीकृत भाव ललामा ॥
सुन्दर श्याम राम मनहारी । मिथिलहिं दिये बनाय भिखारी ॥

हमारी श्री अम्बा जी का भाव पूर्वक सुन्दर प्रणाम भी आप श्री के चरणों में स्वीकार हो। हे नाथ! मन हरण श्याम स्वरूप वाले सुन्दर श्री राम जी महाराज ने तो श्री मिथिलापुरी को भिक्षुक ही बना दिया है।

माँगब उचित नाथ नहिं होऊ । जानहिं नीके कर सब कोऊ ॥
दरशन दान तदपि सब माँगे । हाथ पसारि भाव अनुरागे ॥

हे महाराज! यद्यपि आप से माँगना उचित नहीं है, ऐसा सभी श्री मिथिलापुर वासी भली प्रकार जानते हैं तथापि सभी ने हाथ फैला कर प्रेम भाव पूर्वक दर्शन दान की याचना की है।

कहौं काह अब कुशल भलाई । दरश प्यास सबहीं अकुलाई ॥
आपन दशा कहौं किमि गाई । दरश बिना जिमि दिवस बिताई ॥

मैं अब उन सभी की कुशल क्षेम क्या कहूँ? सभी लोग दर्शन प्यास से आकुल–व्याकुल हुए जा रहे हैं। पुनः मैं अपनी अवस्था का वर्णन किस प्रकार से करूँ कि– आप सभी के दर्शनाभाव में जिस प्रकार दिन व्यतीत कर रहा था।

दो०–इतना कहतहिं भाव भर, बोलि न आयो बैन ।
विरह ध्यान विरहहिं पगे, बही धार दोउ नैन ॥२२९॥

इतना कहते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भाव में भर गये व आगे बोल नहीं सके। प्रभु विरह का ध्यान करते ही वे प्रभु विरह में डूब गये तथा दोनों नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली।

प्रेम विभोर भयो युवराजा । बेसुध विधु जनु भूमि विराजा ॥
पितु संकेत राम सुखदाई । परस किये कुँअरहिं हरषाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ऐसे प्रेम विभोर हो गये जैसे स्मृतिहीन हो गिरकर चन्द्रमा भूमि में शोभायमान हो जाय। अपने श्रीमान् पिताजी के संकेत से परम सुखदाई श्री राम जी महाराज ने हर्ष में भर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का स्पर्श किया।

राम परश लहि निमिकुल बाला । उठि सचेत सकुचत मुख ढाला ॥
भूप प्यार तब बहु विधि कीना । मुख धुवाइ विहँसाइ प्रवीना ॥

श्री राम जी महाराज के प्रिय स्पर्श को प्राप्त कर निमिकुल नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी सचेत हो, उठ पड़े तथा संकुचित हो निम्न मुख कर लिये। तब परम प्रवीण चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने उनका विविध प्रकार से प्यार किया तथा उनका मुख धुलाकर उन्हें प्रहसित वदन कर दिया।

निज कर दीन्हे पान पवाई । गंध देय दिवि माल पिन्हाई ॥
बहुरि सभा कहँ पत्र सुनाये । कहहिं प्रशंसा बचन सुहाये ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने अपने हाथ से कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को ताम्बूल पवाया व सुन्दर इत्र लगाकर दिव्य माला धारण करायी। पुनः वे सम्पूर्ण सभा को श्री विदेहराज जी महाराज का पत्र सुनाये तथा उनकी प्रशंसा के सुन्दर वचन कहने लगे।

जनक समान जनक जग अहहीं । ऋषि मुनि संद सदा यह कहहीं ॥
विद्या विनय शील पर ज्ञाना । योग विराग भक्ति गत माना ॥

इस संसार में श्री विदेहराज जनक जी के समान एकमात्र श्री जनक जी ही हैं ऐसा ऋषि, मुनि व संतजन सदैव बखान करते हैं। श्री जनक जी महाराज विद्या, विनय, शील, श्रेष्ठ ज्ञान, योग, वैराज्ञ व भक्ति से युक्त तथा अभिमान रहित हैं।

दो०– अहमिति ममता विगत नित, अनासक्त बिन चाह ।
जनु परमारथ देह धरि, मिथिला पुर नर नाह ॥२३०॥

वे नित्य अहंकार व ममता से रहित, आसक्ति विहीन व निष्काम मन वाले हैं, उन्हे देख कर ऐसा प्रतीत होता है जैसे स्वयं "परम परमार्थ" ही शरीर धारण कर श्री मिथिलापुरी का सम्राट बना हुआ हो।

अति उदार राखत उर प्रीती । सूर समर जानत नृप नीती ॥
सब गुण धाम जनक महराजू । तिनहिं पाय हमहूँ रह भ्राजू ॥

श्री जनक जी महाराज अत्यन्त उदार, हृदय की प्रीति से युक्त, रण कौशल में दक्ष, वीर तथा राजनीति के ज्ञाता हैं। वे समस्त श्रेय गुणों के धाम हैं उनको पाकर हम भी शोभा सम्पन्न हो गये हैं।

लक्ष्मीनिधि का करौं बड़ाई । मनहुँ परम परमारथ भाई ॥
उपजि भये जग निमिकुल भूषण । सब विधि पितु समान निरदूषण ॥

मैं राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की क्या प्रशंसा करूँ? हे भाइयो! ये तो मानो मूर्तिमान परम परमार्थ स्वरूप निमिकुल के अलंकार और सभी प्रकार से अपने पिता के समान ही समस्त दोषों से रहित हैं।

सुनत सभा सब भई सुखारी । अपलक निमि नृप सुतहिं निहारी ॥
शीश नाइ कर जोरि कुमारा । बोलेव बचन अमान सुखारा ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के वचनों को श्रवण कर सम्पूर्ण सभा अत्यधिक सुखी हुई और बिना पलक गिराये निमिवंश राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को निहारने लगी। तब सर्वथा अमानी कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी शिर झुका, हाथ जोड़कर सुखप्रद वचन बोले–

नाथ प्रभुन कर सहज सुभावा । नीचहुँ आदर देय सुहावा ॥
राम पिता कस कहहिं न ऐसे । वेद प्रशंसहि जाहि सुभैसे ॥

हे नाथ! श्रेष्ठ पुरुषों का सहज ही ऐसा स्वभाव होता है कि– वे निम्न व्यक्तियों को भी सुन्दर आदर प्रदान करते हैं। फिर, जो श्री राम जी महाराज के पिता श्री हैं व जिनकी वेद भी प्रशंसा करते हैं, वे ऐसा क्यों नहीं कहेंगे।

दो०–जनक सुवन पुनि वचन मृदु, शीश नाय कर जोर ।
बोले सब कहँ देत सुख, सुनहिं विनय प्रभु मोर ॥२३१॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी पुनः चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज को शिर झुका प्रणाम कर, हाथ जोड़ विनम्रतापूर्वक सभी को सुख प्रदान करते हुए कोमल वाणी से बोले कि– हे नाथ! आप, मेरी विनय को श्रवण करें।

भेजी भेंट तात तव चरणा । स्वीकृत करहिं दास गुनि शरणा ॥
दशरथ कहे काह नहिं पाये । पुनि पुनि जनक सुभेंट पठाये ॥

हमारे श्रीमान् दाऊ जी महाराज ने आप श्री के चरणों में कुछ भेंट भिजवायी है, आप अपना रक्षित सेवक समझकर उस भेंट को स्वीकार करें। जनक कुमार के वचनों को श्रवण कर अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज ने कहा– कि– श्री विदेहराज जी महाराज से हमनें क्या नहीं प्राप्त किया, वे तो बारम्बार सुन्दर भेंट भिजवाते ही रहते हैं।

धनि धनि वैभव अमित उदारा । लजत कुबेरहुँ देखि भुआरा ॥
अस कहि दीन्ही स्वीकृत भूपा । लहे सबहिं निज निज अनुरूपा ॥

उनके असीमित वैभव व उदारता को धन्यवाद है, श्री महाराज जनक जी के वैभव को देखकर तो धनराज कुबेर जी भी लज्जित हो जाते हैं। ऐसा कहकर श्री महाराज ने स्वीकृति प्रदान की, और सभी ने अपने–अपने अनुरूप भेंट प्राप्त कर ली।

जे नृप भ्रात सचिव सह सेवक । पाये भेंट संग महिदेवक ॥
वसन विभूषण मणिगण नाना । हय गय स्यन्दन विविध विधाना ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के सभी भ्रातृगणों ने मंत्रियों, सेवकों व ब्राह्मणों सहित वस्त्र, आभूषण, अनेक प्रकार की मणियाँ, घोड़े, हाथी व रथ आदि विभिन्न प्रकार की भेंट सामग्री प्राप्त की।

यहि विधि भेट पाइ मन हरषे । प्रेम विवश बन गये सुरस से ॥
दशरथ गोद कुमार सुहावा । लिये पुत्र जनु इन्द्र लखावा ॥

इस प्रकार भेंट प्राप्त कर, सभी अपने मन में हर्षित हुए एवम् प्रेम के वशीभूत हो सभी सुन्दर रसस्वरूप बन गये। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की गोद में कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी उस समय ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे देवराज इन्द्र अपने पुत्र को लिये हुए दिखाई दे रहे हों।

दो०–प्रेम पगी सिगरी सभा, कुँअरहिं लखि हर्षाय ।
नयन मार्ग पीवन चहत, सुभग रूप चित चाय ॥२३२॥

प्रेम में डूबी हुई सम्पूर्ण सभा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर ऐसे हर्षित हो रही थी मानों

अपने नेत्रों के मार्ग से उनके सुन्दर रूप–आसव का पान आनन्द परिपूर्ण चित्त से करना चाह रही हो।

जनक सुवन लहि भूपति प्यारा । बोलेव वचन विनीत विचारा ॥
आयसु होय मातु पहँ जाऊँ । करि पद परश जन्म फल पाऊँ ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के प्यार को प्राप्त कर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी विचारकर विनय परिपूर्ण वाणी से बोले– हे महाराज! यदि आज्ञा हो तो श्री अम्बा जी के समीप जाकर उनके चरणों का स्पर्श कर अपने जन्म धारण करने के फल को प्राप्त कर लूँ।

भूपति कहेव सकल रनि वासा । निशिदिन रहत दरश तव प्यासा ॥
जाहु सबहिं प्रिय रूप दिखाई । करहु सुखी मन मोद बढ़ाई ॥

श्री दशरथ जी महाराज ने कहा कि– हे कुमार! सम्पूर्ण रनिवास अहर्निशि तुम्हारे दर्शन का प्यासा रहता है अतः जाओ, सभी को अपना प्रिय दर्शन देकर सुखी करो एवं उनके मन में आनन्द की वृद्धि कर दो।

रामहिं कहा कुमार लिवाई । जावहु अन्तःपुर सुख छाई ॥
भूपहिं कुँअर दण्डवत कीना । आशिष प्यार लहेव सुख भीना ॥

पुनः श्री चक्रवर्ती जी ने श्री राम जी महाराज से कहा कि– कुमार लक्ष्मीनिधि जी को लेकर सुखपूर्वक अन्तःपुर जाइये। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज को दण्डवत किया व उनसे सुख मिश्रित आशीर्वाद और प्यार प्राप्त किया।

सकल सभहिं अभिनन्दन करिके । चले राम सह आनँद भरिके ॥
कुँअर करहिं गहि राम सुजाना । भीतर जात सोह मतिवाना ॥
सोहत संग कुँअर के भ्राता । भरत लखन रिपुहन सुखदाता ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण सभा को अभिनन्दन कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज के साथ आनन्द में भरकर अन्तःपुर चल दिये। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का कर–कंज पकड़े हुए सर्वज्ञ व परम बुद्धिमान श्री राम जी महाराज अन्तःपुर जाते हुए सुशोभित होने लगे। उनके साथ कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के भ्रातृगण तथा अतिशय सुखदायक रामानुज श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी व श्री शत्रुघ्न कुमार जी सुशोभित हो रहे थे।

दो०–छत्र चमर सिर पर ढुरत, जात चले दोउ लाल ।
मोहि रहे मन सबन्ह के, रघुकुल निमिकुल बाल ॥२३३॥

दोनो राजकुमारों के शिर पर छत्र व चँवर चल रहे थे, इस प्रकार दोनों कुमार श्री रघुकुल नन्दन व श्री निमिकुल नन्दन, अन्तःपुर जाते हुए सभी के मन को मोहित कर रहे थे।

प्रीति सनी रसमई सुहाई । जात करत बातैं मन भाई ॥
राम कहेव मम पूरण भागा । आज दरश तव योग सुजागा ॥

वे दोनों राजकुमार श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम रस से सनी हुई, सुन्दर रसमयी व मनभावती बातें करते हुए चले जा रहे थे। श्री राम जी महाराज ने कहा कि– हे कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरी पूर्ण भाग्य का योग, आपके दर्शन से आज ही जागृत हुआ है–––

देखे अवध तुमहिं भरि नयना। जो सुख भयो न कहि सक बयना॥
निशिदिन छनछन मम मन आसा। बढ़त रही तव दरशन प्यासा॥

–––जो श्री अयोध्यापुरी में भर–नेत्र आप श्री को देख रहा हूँ। मैं सत्य कह रहा हूँ कि– मुझे जो सुख प्राप्त हुआ है उसे वाणी के द्वारा नहीं कह सकता। मेरे मन में रात–दिन प्रतिक्षण आपके दर्शन की अभिलाषा व प्यास बढ़ती ही जाती थी–––

कबहिं देखिहैं अवध मँझारी। मम सँग बनिहैं अत्र विहारी॥
सो सब भयी चाह मम पूरी। सुख सनेह कहि जाय न भूरी॥

–––कि श्री अयोध्यापुरी में आपको मैं कब देख सकूँगा और आप यहाँ मेरे साथ विहार करने वाले कब बनेंगे? आज मेरी वे सभी इच्छायें पूर्ण हो गयीं, मुझे जो सुख व स्नेह प्राप्त हुआ है, बार–बार कहने पर भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सुनत कुँअर दृग वारि बहाई। बोले रामहिं निज हिय लाई॥
रावरि कृपा जाहि पर होई। करहिं वरण आपहुँ तेहिं जोई॥

श्री राम जी महाराज के प्रेम रस से सिक्त वचन सुनते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी आँखों से अश्रु बहाते हुए श्री राम जी महाराज को हृदय से लगाकर बोले– हे नाथ! जिस जीव पर आपकी कृपा हो जाती है और उसकी दीन अवस्था को देखकर आप भी उसका वरण कर लेते हैं।–––

दो०– नाथ वरण जा कहँ करैं, सो विहरै तव धाम।
नित्य सेव लहि आपकी, पावै आनँद राम॥२३४॥

–––पुनः हे नाथ! आप जिसका वरण कर लेते हैं वही आपके इस परम धाम श्री अयोध्यापुरी में विहार कर सकता है तथा आपकी नित्य सेवा प्राप्त कर आपके रामानन्द को प्राप्त करता है।

छं०– नहि धाम आनँद बुद्धि ते, नहिं वर प्रवचनन कोउ लहै।
सुनि वेद आगम नित्य वरु, तव धाम परसन नहि गहै॥
करि छोह राउर वरण जेहिं, सो पाव तुम कहँ नित प्रभो।
हिय ज्ञान सूरज दिव्य अति, हरषण सुछावत हे विभो॥

हे नाथ! आपके परम धाम श्री अयोध्यापुरी व तज्जनित आनन्द को न तो कोई बुद्धि वैशद्य से और न ही श्रेष्ठ प्रवचन के द्वारा प्राप्त कर सकता है। चाहे कोई वेदों व शास्त्रों का नित्य श्रवण करे फिर भी आपके धाम श्री अयोध्यापुरी का स्पर्श तक नहीं प्राप्त कर सकता है। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– हे परम विभु स्वामी श्री राम जी महाराज!

आपने अपनी कृपा कर जिसका वरण कर लिया है वही जीव आपको नित्य प्राप्त कर सकता है और उसके हृदय में ही दिव्य ज्ञान का प्रखर सूर्य सदा प्रकाशित होता है।

तव सेव प्यारहु पाइ जन, सँग सँग सदा विहरण करैं।
सब काम पूरण भोग शुचि, सादृश तुम्हारे सुख भरैं॥
प्रिय नाम रूप सुधाम लीला, रस रसिक रसमय बने।
जन जानि आपन मोंहि प्रभु, अवधहिं बुलाये रस सने॥

इस प्रकार आपकी सेवा व प्यार प्राप्त कर आपके सेवक सदैव आपके साथ–साथ विहार करते हैं तथा सभी प्रकार से पूर्ण–काम हो आपके समान पवित्र भोग व सुख प्राप्त करते हैं। वे ही आपके प्रिय नाम, रूप, लीला व सुन्दर धाम रस के रसमय रसिक बन जाते हैं। हे प्रभु! आपने मुझे अपना सेवक समझ, श्री अयोध्यापुरी में बुलाकर रससिक्त कर दिया है–––

सो०–सकल साधना हीन, मोकहँ दुर्लभ धाम तव।
केवल कृपा अधीन, पायो प्रमुदित अवध कहँ॥२३५॥

–––अन्यथा समस्त साधनों से रहित मुझे तो आपका व आपकी पुरी का दर्शन सदा अलभ्य ही रहता, मैने केवल आपकी कृपा बल से ही आनन्दपूर्वक श्री अयोध्यापुरी को प्राप्त किया है।

पेखि भाव सिद्धान्त सुहाई। आनँद सिन्धुहुँ आनँद पाई॥
बोले आज प्रभात सुहावा। भयो अवध वासिन मन भावा॥

राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के भाव व सुन्दर सिद्धान्त को देखकर आनन्द के सागर रघुनन्दन श्री राम जी महाराज ने भी आनन्द प्राप्त किया तथा बोले आज का प्रातः अत्यन्त ही सुहावना था जो श्री अयोध्यापुर वासियों का मनोरथ पूर्ण हुआ है।

रहा न एक पुरी अस प्रानी। तुमहिं विलोकन नहिं ललचानी॥
घर घर उत्सव बजत बधावा। महा मोद मंगल रस छावा॥

श्री अयोध्यापुरी में एक भी प्राणी ऐसा शेष नहीं था जो आपको देखने के लिए लालायित न रहा हो। आज आपके आगमन से प्रत्येक घर में उत्सव व बधावा बज रहे हैं तथा महान आनन्द व मंगलमय रस छाया हुआ है।

विविध दान महि देवन पाये। गृह गृह लोगन दृव्य लुटाये॥
मातु सदन बहु विप्र समाजा। पूजा दान पाइ सुख साजा॥

भूदेवों (ब्राह्मणों) ने विभिन्न प्रकार के दान प्राप्त किये हैं व घर–घर में लोगों ने दृव्य लुटाये हैं। श्री अम्बा जी के महल में तो विपुल ब्राह्मण समाज ने पूजा, दान व विविध सुखों की सामग्री प्राप्त की है।

देखहिं जात चले पथ माहीं। हेतु आगमन अरु कछु नाहीं॥
बोले कुँअर रावरी दाया। नित्य अहैतुक सुखद सुभाया॥

देखिये! वे सभी मार्ग से संतुष्ट होकर चले जा रहे हैं, इसका कारण आपका श्री अयोध्यापुरी आना ही है, अन्य कुछ नहीं। श्री राम जी महाराज के वचन सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी बोले– हे नाथ! यह सभी तो आपकी नित्य, निर्हेतुकी, सुखप्रदायी व स्वाभाविक दया का ही प्रतिफल है।———

दो०—पाइ नाथ सब विधि सुखी, जग भूषण भो आज ।
देव सिहावहिं मोहिं लखि, भयों कृतारथ भाज ॥२३६॥

———हे नाथ! जिसे प्राप्तकर मैं आज सभी प्रकार से सुखी व संसार का आभूषण बना हुआ हूँ, यहाँ तक कि देवता भी मुझसे स्पृहा कर रहे हैं मैं तो आपका कृपा पात्र होकर, आज कृत्य—कृत्य हो गया।

यहि विधि करत बतकही दोऊ । पहुँचे जननि भवन सुख मोऊ ॥
कुँअर हरष कहि जात न जेता । बढ़त छनहि छन भूलत चेता ॥

इस प्रकार मधुर बातें करते हुए दोनों राजकुमार सुख में सने, अम्बा श्री कौशिल्या जी के भवन पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में जितना हर्ष हो रहा था उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह आनन्द प्रतिक्षण बृद्धिंगत हो रहा था और उन्हे अपनी स्मृति भूली जा रही थी।

कौशिल्यादिक रानि सुहाई । करत प्रतीक्षा रहीं अवाई ॥
देखत भई मगन सब माता । करी आरती पुलकित गाता ॥

श्री कौशिल्या जी आदि सुन्दर महारानियाँ इनके आने की प्रतीक्षा ही कर रही थीं। कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखते ही सभी मातायें प्रेम मग्ना हो गयीं व पुलकित शरीर उनकी आरती उतारने लगीं।

जनक सुवन प्रेमाकुल भयऊ । लकुटि समान चरण गिर गयऊ ॥
अम्ब उठाय उरहिं लपटाई । करत प्यार दृग वारि बहाई ॥

जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम विह्वल हो लकुटी (लकड़ी) के समान श्री कौशिल्या अम्बा जी के चरणों में गिर पड़े। श्री अम्बा जी ने उन्हे उठाकर हृदय से लिपटा लिया व आँखों से आँसू बहाती हुई प्यार करने लगीं।

पोंछी आँसु कुँअर दृग छवनी । प्रीति रीति जानत नृप रवनी ॥
कुँअर बहुरि सब मातन काहीं । कीन्ह प्रणाम पुलक तन माहीं ॥

प्रीति व रीति का ज्ञान रखने वाली चक्रवर्ती श्री दशरथ जी की महारानी श्री कौशिल्या अम्बा जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुन्दर नेत्रों से अश्रुओं का प्रोच्छण कर दिया। पुनः कुमार ने पुलकित शरीर अन्य सभी माताओं को प्रणाम किया।

दो०—भरत लखन प्रिय मातु दोउ, प्रेम पगी हिय लाय ।
शीश सूँघि आशिष दई, करत प्यार सुख छाय ॥२३७॥

श्री भरत लाल जी व श्री लक्ष्मण कुमार जी दोनों की प्रिय अम्बाओं ने प्रेम में पग कर, हृदय से लगा, सुखपूर्वक प्यार करते हुए, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का शिर सूँघकर आशीर्वाद दिया।

सहित राम सिगरे रघुवंशी । मातन प्रणमे सब निमिवंशी ॥
लक्ष्मीनिधि अरु राम समाना । आशिष प्यार लहे मतिवाना ॥

श्री राम जी महाराज व सभी रघुवंशियों सहित सम्पूर्ण निमिवंशियों ने सभी माताओं को प्रणाम किया तथा श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज के समान ही उन सभी प्रवीण कुमारों ने आशीर्वाद व प्यार प्राप्त किया।

बैठ सुआसन सब सुख छाई । देखहिं भाम श्याल सुख दाई ॥
लिये कौशिला कुँअरहि गोदी । बैठि सिंहासन कहति प्रमोदी ॥

तदनन्तर वे सभी सुखपूर्वक सुन्दर आसनों में बैठकर परम सुखदायी बहनोई व श्याले (श्री राम जी व श्री लक्ष्मीनिधि जी) को निहारने लगे। अम्बा श्री कौशिल्या जी कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को गोद में लिये सिंहासन में विराजी हुई आनन्दपूर्वक बोलीं–

राम सिया सम मोहि प्रिय लालन । भई सुखी लखि लखि सब बालन ॥
दरश प्यास तव रही महाई । आजु भई सुठि शान्ति सुहाई ॥

हे लालन लक्ष्मीनिधि जी! आप मुझे श्री राम जी व श्री सीता जी के समान प्रिय हैं। मैं आप सभी निमि–वंशी बालकों को देखकर अत्यन्त सुखी हो गयी। आपके दर्शन की मुझे अतिशय तृषा थी जो आज सुन्दर शान्ति को प्राप्त हो गयी।

कहहु कुशल मिथिलापुर केरी । सहित मातु पितु सुखद घनेरी ॥
करत मोरि सुधि रानि सुनैना । आपन जानि कहहु सत बैना ॥

अब आप अपनी श्री अम्बा जी व श्रीमान् दाऊ जी सहित श्री मिथिलापुरी की सुखदायी व कुशलता का वर्णन करें। आप सत्य कहिये कि– महारानी श्री सुनैना जी अपना समझकर मेरा स्मरण करती तो हैं?

दो०– राम मातु वर वचन सुनि, साने कृपा सुप्रीति ।
पुलकित हिय नयनन सजल, बोले कुँअर सुरीति ॥२३८॥

श्री राम जी महाराज की श्रेष्ठ अम्बा श्री कौशिल्या जी की सुन्दर कृपा व प्रीति से सने वचनों को सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी पुलकित हृदय, अश्रुपूरित नेत्रों से सुन्दर विधि से बोले–

राउर प्यार पाइ सुखदाई । मातु भयों कृत कृत्य महाई ॥
प्रेम कृपा रस भरे सुहाये । छाजहिं वचन तुमहिं अस भाये ॥

हे श्री अम्बा जी! आपका सुख प्रदायक स्नेह पाकर मैं अतिशय कृत–कृत्य हो गया। प्रेम, कृपा व रस से परिपूर्ण आपके सुन्दर वचन आपके ही अनुरूप हैं व आपको ही शोभा देते हैं।

शील सिन्धु रघुनाथ दयाला । कस न होय तेहिं मातु कृपाला ॥
चरण दरश तव आज सुपाया । भाग विभूति मोहिं अपनाया ॥

शील के सागर व परम दयालु रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज की अम्बा जी ऐसी कृपामयी कैसे न हों। आज भाग्य वैभव ने मुझे वरण किया है जो मैंने आपके सुन्दर चरणों का दर्शन प्राप्त किया है।

मोर मातु तव चरण प्रणामा । करि वर विनय कही अभिरामा ॥
रावरि चर्चा प्राण अधारी । भई मातु कहँ लेहिं विचारी ॥

हमारी अम्बा श्री सुनयना जी ने आपसे बहुत प्रकार से विनय कर, आपके चरणों में प्रणाम करने हेतु निवेदन किया था। हे श्री माता जी! आप विचार लें कि आपके गुणगणों की सुन्दर चर्चा ही हमारी श्रीअम्बाजी के प्राणों की आधार बनी हुई है।

चलत मोहिं नयनन भरि वारी । कही सँदेश सुनहिं महतारी ॥
प्राण प्राण प्रिय लली सो अहई । तुमहि सौंपि मैं निर्भय रहई ॥

हे श्री अम्बा जी! मेरे चलते समय, अश्रूपूरित नेत्रों से उन्होंने जो संदेश कहा था, उसे आप श्रवण करें– जो सभी के प्राणों की प्राण व प्रियतरा हमारी लली श्री सीता जू हैं, उसे आपको सौंपकर मैं निर्भय (निश्चिन्त) रह रही हूँ।

दो०–भोरी भारी बालिकहिं, मनिहैं सदृश राम ।
सकल चूक छमि पालिहहिं, दैहैं सीख ललाम ॥२३९॥

अतः हमारी भोली–भाली बालिका श्री सीता जू को आप, श्री राम जी महाराज के समान मानेंगी व उसकी सभी गल्तियों को क्षमा कर पालन करती हुई सुन्दर सिखावन देती रहेंगी।

इतना कहत हृदय भरि आया । सकी न बोलि मातु विरहाया ॥
सुनत कौशिला प्रिय रस सानी । बोली सुखद सरल मृदु बानी ॥

इतना कहते ही श्री अम्बा जी का हृदय भर आया था और विरह में डूब जाने के कारण वे कुछ नहीं बोल सकी थीं। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रिय व रस से ओत–प्रोत वाणी को सुनकर श्री कौशिल्या जी नें सरल, कोमल व सुखदायी वाणी से कहा–

मोहिं नृप सहित सकल परिवारा । अवध केर सिय प्राण अधारा ॥
जीवन मूरि नित्य हिय जानी । सेवहुँ नयन पुतरि करि मानी ॥

श्री सीता जी तो मेरे सहित श्री चक्रवर्ती जी महाराज, सम्पूर्ण परिवार व श्री अयोध्यापुरी सभी के प्राणों की आधार हैं। मैं उन्हें हृदय में संजीवनी बूटी समझकर, नित्य–प्रति नेत्र–पुतली के समान उनकी सार–सम्हाल करती हूँ।

सब गुण धाम सुआनन्द रासी । चूक दुःख स्वप्ने नहि भाषी ॥
केवल पितु पुर विरह अधीना । कहुँ कहुँ लागति प्रिय रस भीना ॥

वे श्री सिया जू तो सभी गुणों की आगरी व आनन्द की सुन्दर राशि ही हैं, मुझे उनकी गल्तियाँ व दुख तो स्वप्न में भी आभासित नहीं होते। किन्तु कभी–कभी वे अपने पितृ–पुरी श्री मिथिला के वियोग विवश प्रिय विरह रस में डूबी हुई प्रतीत होती हैं।

स्वप्न माहिं कहुँ मइया मइया । कबहुँ कहति हे भाभी भइया ॥
कहुँ दाऊ कहि करत पुकारी । सुनतहिं लेवहुँ हृदय मझारी ॥

वे स्वप्न में कभी हे श्री अम्बा जी, हे प्यारी अम्बा जी तो कभी हे श्री भाभी जी, हे श्री भइया जी और कभी श्रीमान् दाऊ जी कहकर पुकारती हैं, तब ऐसा सुनते ही मैं उन्हें अपने हृदय से लगा लेती हूँ।

दो०–विरह सने अँसुआन कहँ, पोछि हृदय छुपकाय ।
करि दुलार बतराय कछु, तुरतहिं देति सुवाय ॥२४०॥

पुनः उनके वियोग–जन्य अश्रुओं को पोंछ, हृदय से छुपकाकर, मैं दुलार करती हुई, कुछ बातें कर उन्हें तुरन्त ही सुला देती हूँ।

छन छन चेष्टा मोरहु लालन । सिय सुख हेतु रहति सब कालन ॥
काह करौं तव विरह दुलारी । सनी रहत यद्यपि सुख भारी ॥

हे लालन श्री लक्ष्मीनिधि जी! मेरे सम्पूर्ण समय की, प्रत्येक क्षण की सभी चेष्टायें श्री सीता जी के सुख के लिए ही होती हैं, किन्तु मैं क्या करूँ, सम्पूर्ण सुखों के समुपलब्ध होते हुए भी दुलारी श्री सिया जी आपके वियोग में डूबी रहती हैं।

सुनि सुनि लक्ष्मीनिधि सिय प्रीती । भये विभोर नेह की रीती ॥
कही मातु धनि भगिनी भ्राता । प्रीति अलौकिक इक इक राता ॥

अपने प्रति अपनी अनुजा श्री सीता जी की प्रिय प्रीति व प्रेम की विलक्षण रीति को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम विभोर हो गये। तब अम्बा श्री कौशिल्या जी ने कहा– आप दोनों बहन व भाई धन्य हैं जो एक दूसरे की अलौकिक प्रीति में रँगे हुए हैं।

बहुरि कुँअर मुख पैर धुवाई । अंक बिठाय सुभोग पवाई ॥
कैकइ निज कर पान पवाई । मातु सुमित्रहुँ गंध लगाई ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के पैर व मुख धुलाकर, गोद में बिठा, अम्बा श्री कौशिल्या जी ने सुन्दर भोग पवाया। अम्बा श्री कैकई जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को ताम्बूल दिया व श्री सुमित्रा अम्बा जी ने सुन्दर इत्र लगाया।

कुँअर मातु के प्यारहिं पोषे । बोले बचन प्रेम रस तोषे ॥
दाऊ करि प्रणाम सरसाई । भेजी भेंट विनय महताई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी अम्बाओं के प्यार से पोषित व प्रेमरस से सन्तुष्ट हो मधुर वचन बोले– श्रीमान् दाऊ जी ने आप सभी को प्रणाम करते हुए भाव में भरकर अत्यधिक विनय के साथ भेंट भिजवायी है।

दो०—मातहुँ भेजी भेंट मम, तव चरणन के पास ।
करन कृतारथ लेहिं सब, विनय करत यह दास ॥२४१॥

हमारी श्री अम्बा जी ने भी आपके चरणों में सप्रेम भेंट प्रेषित की हैं अतएव यह सेवक विनती कर रहा है कि– मुझे कृतार्थ करने हेतु आप इन्हें स्वीकार करें।

सुनि वर विनय राम महतारी । बोली धनि धनि प्रीति उदारी ॥
सियहिं पाइ मैं काह न पाई । सब विभूति तेहिं अंश लखाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की सुन्दर विनय को सुनकर श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी ने कहा– आप सभी की उदार प्रीति धन्यातिधन्य है। श्री सीता जी को प्राप्तकर मैंने क्या नहीं प्राप्त कर लिया, जिनके सामने ब्रह्माण्ड का सम्पूर्ण वैभव कणमात्र दिखाई देता है।

तापर धनि धनि जनक सुनैना । दीन अमानी बने सचैना ॥
तिन की भेंट परम प्रिय मानी । स्वीकृत सदा कुँअर जिय जानी ॥

उतनें पर भी परम धन्य श्री जनक जी महाराज व श्री सुनैना जी ने अमानी बनकर आनन्द पूर्वक जो भेंट भिजवाई है। हे कुमार! अत्यन्त प्रिय समझते हुए उनकी भेंट मुझे ह्दय से सदा ही स्वीकार है, ऐसा आप जान लीजिये।

भूषण वसन अनेक प्रकारा । सब सुख साज देह व्यवहारा ॥
यथा योग दशरथ रनिवासा । पायो भेंट सुखद वर–मासा ॥

पुनः अनेक प्रकार के आभूषण व वस्त्र, शारीरिक उपयोग की सभी अनुकूल व सुखदायी बारहों मास की सामग्री तथा विविध उपहार चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के रनिवास ने प्राप्त किया।

कुँअर मातु की पातिहुँ दीनी । बाँचि कौशिला प्रेम प्रवीनी ॥
प्रेम विवश नयनन झर आँसू । सबहिं सुनाई पुनि सिय सासू ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपनी अम्बा श्री सुनैना जी के द्वारा भिजवाई हुई पत्रिका भी उन्हे दी जिसका प्रेम प्रवीणा श्री कौशिल्या जी ने वाचन किया। प्रेम के वशीभूत उनके नेत्रों से झर–झर आँसू बहने लगे। पुनः श्री सीता जी की सासू श्री कौशिल्या जी ने सभी को वह पत्रिका पढ़कर सुनायी।

दो०—भक्ति भाव शुचि शीलता, विनय विवेक सुरीति ।
भरी बिचारन पत्रिका, सुनत बढ़ी अति प्रीति ॥२४२॥

भक्ति, भाव, पवित्रता, शीतलता, विनय, ज्ञान व सुन्दर रीतिपूर्वक विचारों से भरी हुई पत्रिका को सुनकर सभी के ह्दय में अत्यधिक प्रीति विवर्धित हो गयी।

राम मातु बहु भाँति सराही । रानि सुनैना नेह उछाही ॥
बहुरि कुमार जोरि युग हाथा । बोले बचन नाइ पद माथा ॥

श्री राम जी महाराज की अम्बा श्री कौशिल्या जी ने महारानी श्री सुनैना जी के प्रेम व उत्साह

की विविध प्रकार से प्रशंसा की। तदनन्तर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने दोनों हाथ जोड़कर चरणों में शिर झुका मधुर वाणी से कहा–

निरखन ललिहिं नयन अतुराई। आयसु होय मिलौं तहँ जाई ॥
कहत भरे जल नयन मँझारी। सुनि सुख लही राम महतारी ॥

हे श्री अम्बा जी! लली श्री सिया जी को देखने के लिए मेरे नेत्र व्यग्र हो रहें हैं, आज्ञा हो तो वहाँ जाकर मिल लूँ। ऐसा कहते ही युवराज श्री लक्ष्मीनिधि जी की आँखों में अश्रु भर आये, उनकी विनय सुनकर श्री राम जी की अम्बा जी ने अत्यधिक सुख प्राप्त किया।

पुनि पुनि लै लै गोद मझारा। तीनहुँ मातु कीन्ह बहु प्यारा ॥
रामहिं मातु कही हरषाई। कनक भवन देवहु पहुँचाई ॥

तब बारम्बार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को गोद में ले–लेकर तीनों अम्बाओं ने बहुत प्यार किया और श्री कौशिल्या अम्बा जी ने हर्षित होकर श्री राम जी महाराज से कहा कि– इन्हें श्री कनक भवन पहुँचा दीजिये।

कुँअरहिं कही अवशि अब भइया। जाय बनहु भगिनिन सुखदैया ॥
करति प्रतीक्षा लली तुम्हारी। भगिनिन सहित बैठ निज द्वारी ॥

पुनः उन्होंने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से कहा हे भइया! अब आप अवश्य ही जाकर अपनी बहनों को सुख प्रदान करने वाले बनिये। लाड़िली श्री सिया जू तो सभी बहनों के साथ अपने द्वार पर बैठकर आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।

दो०–ललित लड़ैती ओर ते, आवन जान तुम्हार।
उत्सव दान अनेक विधि, मचो अहै सुखकार ॥२४३॥

लाड़िली लली श्री सिया जी की ओर से आपका आगमन जानकर उनके भवन में अनेक प्रकार के सुखकारी उत्सव व विविध दान मचा हुआ है।

सुनत कुँअर सीता शुचि प्रीती। हृदय बढ़त अनुराग अतीती ॥
सकल मातु कहँ कीन्ह प्रणामा। चरण शीश धरि प्रेम प्रधामा ॥

श्री सीता जी की अपने प्रति पवित्र प्रीति को श्रवण करते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में अत्यन्तानुराग बढ़ गया। प्रेम स्वरूप कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सभी माताओं के चरणों में शिर रखकर प्रणाम किया।

शीश सूँघि आशिष वर दीन्ही। हरषित सबहिं प्यार बहु कीन्ही ॥
चले कुँअर पुनि पुनि शिर नाई। सहित राम दूनहुँ दल भाई ॥

सभी अम्बाओं नें कुमार का शिरोघ्राण कर सुन्दर आशिर्वाद दिया व हर्ष में भरकर उनका अत्यधिक दुलार किया। तब कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अम्बा श्री कौशिल्या जी को बारम्बार शिर झुका प्रणाम कर, श्री राम जी महाराज व दोनों पक्षों (मिथिला व अवध) के भ्राताओं सहित कनक भवन को चल दिये।

द्वार देश पहुँचे युग वारे । रथहिं विराजे सोह अपारे ॥
निज रुचि कीन्हे सकल सवारी । चले हृदय हरषित अति भारी ॥

दरवाजे पर पहुँच श्री मिथिला व श्री अवध दोनों कुलों के राजकुमार रथ में विराजकर असीमित शोभायमान होने लगे, अन्य सभी भ्रातृगण अपनी इच्छानुसार सवारी कर, हृदय में अत्यधिक हर्षित हो चल दिये।

लक्ष्मीनिधि अरु राम कुमारा । सुभग सुशोभित कहै न पारा ॥
त चमर शिर छत्र विराजा । लखि लखि अमित काम वपु लाजा ॥

श्री लक्ष्मीनिधि जी व कुमार श्री राम भद्र जी उस समय ऐसे सुन्दर व सुशोभित हो रहे थे कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके शिर पर चँवर चल रहा था व छत्र सुशोभित हो रहा था, उनके काय वैभव को देखकर असीमित कामदेवों का मन भी विलज्जित हो रहा था।

छं०– मन काम लाजत गर्व तजि, तन रथ अनूपम धरि लियो ।
निज पृष्ठ ऊपर राखि जनु, युग लाल सेवन मन दियो ॥
छबि छाय छहरत ओर सब, चुइ चुइ परत जनु भूमि महँ ।
नव छयल छाजत बृन्द बहु, हरषण लखे मन झूमि तहँ ॥

उस समय ऐसी प्रतीति हो रही थी कि– युगल कुमारों की छवि को देखकर स्वयं कामदेव अपने मन में लज्जित हो, अभिमान को त्याग, अनुपमेय रथ का स्वरूप धारण कर अपनी पीठ में युगल राजकुमारों को बिठाकर उनकी सेवा में अपने मन को लगाये हो। उनकी सुन्दरता सभी दिशाओं में छहराती हुई मानों भूमि में निर्झरित सी हो रही थी। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– उस समय नवीन वय के शोभा सम्पन्न राज कुमारों के बहुत से समूह देखकर सभी के मन झूम उठते थे।

दो०–रस रस जातो सुभग रथ, उमड़ी भीर महान ।
बजत वाद्य बहु मोद भरि, जय जय शब्द सुहान ॥२४४॥

उन राज कुमारों के सुन्दर रथ को मंद गति से चलते हुए देखकर अत्यधिक भीड़ उमड़ पड़ी थी, वहाँ आनन्दपूर्वक बहुत से बाद्य बज रहे थे एवं जय–जय का सुहावना शब्द सुनाई पड़ रहा था।

देवहुँ लखि लखि सुन्दर जोरी । वरषहिं सुमन सुहात विभोरी ॥
चढ़े विमानन व्योम सुजाना । मुदित बजावहिं बिपुल निसाना ॥

युगल नृपति कुमारों की सुन्दर जोड़ी को देख–देख कर देवता पुष्प वरषा कर, विभोर हुए सुशोभित हो रहे थे। वे आकाश से विमानों पर चढ़े हुए आनन्दपूर्वक बहुत से नगाड़े बजा रहे थे।

मोहत सबके मनहिं सुभायो । स्वर्ण सदन द्वारहिं रथ आयो ॥
बहु विधि ते तहँ उत्सव भयऊ । पुर अरु व्योम महा रस छयऊ ॥

इस प्रकार स्वाभाविक ही सभी के मन को, मुग्ध करता हुआ राजकुमारों का मनोहर रथ श्री

कनक भवन के दरवाजे पर आ गया तब वहाँ बहुत प्रकार से उत्सव हुआ और नगर व आकाश में महान आनन्द व्याप्त हो गया।

त्यागे रथहिं श्याल अरु भामा। पायन चले जनन सुख धामा॥
पाँवड़ परे परम सुख दाई। कोमल कलित न कछु कहि जाई॥

तदनन्तर श्याल–भाम कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज ने रथ त्याग दिया (रथ से उतर गये) तथा जन–जन के सुखों के धाम वे दोनों राज कुमार पैदल चल पड़े। वहाँ पर अत्यन्त सुखदाई कोमल व सुन्दर पाँवड़े बिछे हुए थे जिनका किंचित भी बखान नहीं किया जा सकता।

मंत्री धनिक महाजन सुवना। राम सख्य पद लहे लुभवना॥
स्वागत हेतु कुँअर के ठाढ़े। प्रथम कक्ष मन मोदहिं माढ़े॥

श्री राम जी महाराज के लुभावने सख्य पद को प्राप्त मंत्री, धनी व व्यापारियों के पुत्र, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के स्वागत हेतु आनन्द में डूबे हुए प्रथम आवरण (कक्ष) में खड़े थे।

दो०–पुष्प वरषि सतकार रत, जय जय कहत उचार।
पानि जोरि शिर नत किये, प्रभु सह चलत कुमार ॥२४५॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के स्वागत में लगे हुए वे सभी पुष्पों की वर्षा कर उच्च स्वर में जय–जयकार कर रहे थे तथा उनके स्वागत को स्वीकार करते हुये कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हाथ जोड़े, शीष झुकाये श्री राम जी महाराज के साथ चल रहे थे।

राम सखा जे राज कुमारा। कक्ष दूसरे खड़े अपारा॥
स्वागत किये यथावत सिगरे। कुँअरहुँ किय प्रणाम सुख पगरे॥

श्री राम जी महाराज के सखा, असीमित राजकुमार दूसरे आवरण (कक्ष) में खड़े हुए थे, उन सभी ने यथा योग्य कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का स्वागत सत्कार किया और कुमार श्री लक्ष्मीनिधिजी ने भी सुख में पगकर उन्हें प्रणाम किया।

राम सखन गुनि राम समाना। लखि लखि सरस सुखहिं सुठिसाना॥
विप्र वंश जे सखा सुजाना। कक्षा तीसरे खड़े अमाना॥

श्री राम जी महाराज के सखागणों को श्री राम जी महाराज के समान समझकर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी उन्हें देख प्रेम परिपूर्ण हो सुन्दर सुख में सराबोर गये। ब्राह्मण वंश के परम गुणवान व अमानी कुमार जो श्रीराम जी महाराज के सखा थे, वे तीसरे आवरण (कक्ष) में खड़े हुए थे।

शान्ति पाठ स्वस्त्ययन उचारे। मंगल पुष्प दिये मनहारे॥
कुँअर लकुटि इव गिरि महि माहीं। वंदन किये नेह हिय पाहीं॥

उन सभी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर शान्ति पाठ व स्वस्ति वाचन किया तथा मनोहारी मंगलानुशान करते हुए पुष्पांजलि दी। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हृदय में प्रेम परिप्लुत हो लकुटी के समान भूमि में गिरकर उन सभी विप्र सखाओं की वन्दना किये।

हाथ जोरि बोले युवराजा । दास सदा मैं विप्र समाजा ॥
सीता राम सुमंगल गाइय । मंगल मोर इहै मन भाइय ॥
तिन सों पृथक न मंगल मोरा । इतना कहत कुमार विभोरा ॥

पुनः युवराज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी दोनो हाथ जोड़कर बोले– मैं तो सदैव ही ब्राह्मण समाज का सेवक हूँ। आप सभी श्री सीताराम जी का मंगलानुशासन करें, यही मेरा यथार्थ मंगल व मनोभिलषित है क्योंकि उनसे भिन्न मेरा कोई मंगल नहीं है, इतना कहते ही कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी भाव–विभोर हो गये।

दो०–बहुरि धीर धरि विनय किय, नहिं अस स्वागत योग ।
परम अकिंचन जानि जन, राम देहिं बड़ भोग ॥२४६॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने पुनः धैर्य धारण कर विनती की– कि हे विप्र समाज! मैं इस प्रकार का स्वागत प्राप्त करने योग्य नहीं हूँ। मुझ परम अकिंचन को अपना सेवक जानकर ही श्री राम जी महाराज ऐसा महान सुखानुभव प्रदान कर रहे हैं।

जन कहँ देवहिं वृहत बड़ाई । धनि धनि अस स्वभाव सुखदाई ॥
सरवस वारि आपनो देहीं । अहह राम सों कवन सनेही ॥

वे अपने भक्तों को महान यश देते रहते हैं, अहा! धन्य है, उनके ऐसे सुखदायी स्वभाव को। अहा! श्री राम जी महाराज के समान सेवकों प्रेमी कौन हो सकता है जो अपना सर्वस्व न्योछावर कर, स्वयं को भी भक्तों को दे डालते हैं।

आपहुँ ते बढ़ जन कहँ मानै । तेहिं बिन छनहु चैन नहिं आनै ॥
जो नहि भजैं सखा अस प्यारा । सो कृत निंदक मंद गँवारा ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज तो अपने सेवक को अपने से भी अधिक मानते हैं और उसके बिना एक क्षण भी विश्राम नहीं प्राप्त करते। ऐसे अपने प्रिय सुहृद का जो कोई भजन नहीं करता वह निन्दनीय, मंदबुद्धि तथा मूर्ख है।

अस कहि कुँअर कृपा सब केरी । पाइ पगे हिय हरष घनेरी ॥
चौथे कक्ष जाय रघुराया । सुभग श्याल कर धरे सुभाया ॥

ऐसा कह कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उन सभी विप्र कुमारों की कृपा प्राप्तकर हृदय में हर्ष के आधिक्य से प्रेम मग्न हो गये। इस प्रकार श्री राम जी महाराज सहज ही कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का हाथ पकड़े हुए चतुर्थ आवरण (कक्ष) में जा पहुँचे।

रतन सिंहासन सहित कुमारा । बैठे हरषि मनहुँ निधि धारा ॥
राम भ्रात लक्ष्मीनिधि भ्राता । राजे आसन पुलकित गाता ॥
महा मनोहर श्याल सुभामा । सुखी भये दोउ पूरण कामा ॥

वहाँ चतुर्थ आवरण (कक्ष) में श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहित रत्न

सिंहासन में प्रसन्नता पूर्वक ऐसे विराज गये मानो वे अपनी निधि को धारण किये हुए हों। श्री राम जी महाराज व श्री लक्ष्मीनिधि जी के भ्रातृगण पुलकित शरीर सुन्दर आसनों में विराज गये। इस प्रकार अतिशय मनहरण व परम सुशोभन श्याल–भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज दोनों एक दूसरे को प्राप्त कर अत्यन्त सुखी व पूर्ण काम हो गये।

दो०–झलमल झाँकी झाँकि दृग, होवत सबहिं विभोर।
प्रीति अलौकिक रूप रसि, सोहत युगल किशोर ॥२४७॥

परस्पर अलौकिक रूप, प्रेम तथा रस में निमग्न परम सुशोभित दोनों राजकिशोर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज की दिव्याभा परिपूर्ण झाँकी का अपनें नेत्रों से दर्शन कर सभी प्रेम विभोर हो रहे थे।

बोले सरस राम मृदु बानी। कहा करौं स्वागत सुख खानी ॥
रावरि प्रीति पेखि सुकुमारा। सकुचत मम मन निजहिं निहारा ॥

श्री राम जी महाराज अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से रस परिपूर्ण कोमल वाणी से बोले– हे सुखों की खानि, कुँअर! मैं आपका क्या, स्वागत करूँ? हे परम सुकुमार आपकी प्रीति को देखकर तथा स्वयं को निहारकर मेरा मन संकुचित हो जाता है।

अति प्रिय मोहिं मानहु मन माहीं। प्रीति योग मोरे कछु नाहीं ॥
हमहीं वारि गये तुम पाहीं। याते अधिक कहौं का लाही ॥

हे कुमार! आप अपने मन में यह मान लें कि– आप मुझे अत्यधिक प्रिय हैं। परन्तु आपकी अतुलनीय प्रीति के बदले, आपको देने योग्य मेरे पास कुछ भी नहीं है। इसलिए मैं स्वयं ही, आप पर न्योछावर हूँ, इससे अधिक आपके लिये और क्या लाभ हो सकता है।

यथा मोहिं प्रिय राउर लागैं। तैसेहिं मोर भ्रात अनुरागैं ॥
वरणत प्रीति नयन रस धारा। बही राम के हर्ष अपारा ॥

हे प्रिय निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी! जिस प्रकार मुझे, आप प्रिय लगते हैं, उसी प्रकार मेरे भ्रातृगण भी आप पर प्रीति करते हैं। कुमार के प्रेम का वर्णन करते समय असीमित हर्ष के कारण श्रीरामजी महाराज के नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा बह चली।

लीन्ह राम करतल दृग वारी। केशर खौर बहुरि मन हारी ॥
शिरहिं छुड़ाय तुरत सुख मानी। दृग जल बीच डारि पुनि सानी ॥

अनन्तर श्री राम जी महाराज ने उन प्रेमाश्रुओं को अपने करतल में ले लिया व अपनी मनोहाररिणी केशर की खौर को सुखपूर्वक शिर से छुड़ाकर, अश्रुओं के बीच उसे रख अश्रुमिलित कर–––

दो०–प्रेम राज्य सिंहासनहिं, कुँअरहिं प्रभु पधराय।
अश्रु सने केशर तिलक, कीन्ह महा सुख छाय ॥२४८॥

———प्रभु श्री राम जी महाराज अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रेमराज्य के सिंहासन में आसीन कर, अपने अश्रु से सनी हुई उस केशर द्वारा अतिशय आनन्द प्रपूरित हो राजतिलक कर दिये।

भरत दीन्ह ताम्बूल पवाई । लखन सुगन्धित माल पिन्हाई ॥
रिपुहन निज कर इतर लगाये । चमर छत्र कोउ सखा चलाये ॥

उस समय श्री भरतलाल जी ने ताम्बूल पवाया, श्री लक्ष्मण कुमार जी ने सुगन्धित माला धारण कराई, श्री शत्रुघ्न कुमार जी ने अपने हाथ से इत्र लगाया और चँवर तथा छत्र कोई अन्य सखा चलाने लगे।

राम भाव सुर जानि विशेषी । बरषहिं सुमन मुदित मन पेखी ॥
जय जय कहत दुन्दुभी देहीं । कहहिं धन्य अस कवन सनेहीं ॥

श्री राम जी महाराज के विशेष भाव को समझ, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर देवता पुष्प वरषाने लगे, जय जय कहते हुए दुन्दुभी नाद करने लगे तथा बोले कि— धन्य है, धन्य है, प्रभु श्री राम जी महाराज के समान जीवों का प्रेमी (सुहृद) कौन हो सकता है———

जिन जन कहँ देवैं अस माना । राम समान राम नहिं आना ॥
युग दल सखा देखि यह भावा । प्रेम विवश सब भान भुलावा ॥

———जो अपने सेवकों को ऐसा आदर प्रदान करते हैं। श्री राम जी महाराज के समान तो प्रभु श्री राम जी महाराज ही हैं अन्य कोई भी नहीं। दोनों समाज के सखागण प्रभु श्री राम जी महाराज के ऐसे भाव को देखकर प्रेम के वशीभूत हो सभी ज्ञान भूल गये।

कुँअर विलोकि राम की रीती । कृपा पूर्ण रस सनी सुप्रीती ॥
प्रेम विवश तन सुधिहिं विसारे । चरण गिरे गहि राम सम्हारे ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज की कृपा से परिपूर्ण, रससिक्त सुन्दर रीति व प्रेम को देखकर प्रेम के वशीभूत हो शरीर स्मृति भूल गये तथा श्री राम जी महाराज के चरणों में गिर पड़े तब श्री राम जी महाराज ने उन्हें पकड़ कर सम्हाल लिया।

दो०—अश्रु बहत कंपत बदन, स्वेद श्रवत स्वर भंग ।
सात्विक चिन्ह प्रवाह महँ, बूड़ि गये सब अंग ॥२४९॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे, देह प्रकम्पित हो रही थी, स्वेद निकल रहा था, स्वर भंग हो गया था एवं सात्विक चिन्हों के प्रवाह में उनके सम्पूर्ण अंग डूब गये थे अर्थात् उनके सभी अंग प्रेम चिन्हों से संयुक्त हो गये।

छं०— तन प्रेम छायो मोद उर, वर प्रीति जाती नहिं कही ।
रघुवीर श्रीनिधि रस पगे, धनि श्याल भाम सम्हालही ॥
एक एक हिरदय लगि रहे, सख रस रसे दोउ लाल हैं ।
जनु कनक तरुवर प्रेम युत, सरसत सुभेंट तमाल हैं ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शरीर में प्रेम व हृदय में आनन्द छाया हुआ था, उनकी सुन्दर प्रभु प्रीति का बखान नहीं किया जा सकता। प्रभु श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी परस्पर के प्रेमरस में पगे हुए हैं। प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी धन्यातिधन्य हैं जिनकी श्री राम जी महराज सम्हाल कर रहे हैं। वे दोनो कुलों के (श्री निमि कुल व श्री रघुकुल) राजकुमार एक दूसरे के हृदय से लगे व सख्य रस में डूबे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे स्वर्ण–वृक्ष प्रेम परिपूर्ण हो तमाल वृक्ष से सरसाया हुआ सुन्दर भेंट कर रहा हो।

कछु काल बीते वर कुँअर, चेतहिं लहे उपचार ते ।
कर जोरि विनवत राम कहँ, धारा बहत अँखियान ते ॥
तव पाइ आदर उच्चतम, अब कछु न पावन मोहिं रहा ।
गत मान सेवहुँ भाम नित, पद त्राण हर्षण सुख लहा ॥

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर उपचार द्वारा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी चैतन्यता प्राप्त किये तब अपने हाथ जोड़कर नेत्रों से अश्रुओं की धार बहाते हुये श्री राम जी महाराज से विनय करने लगे, हे श्री रघुनन्दन जू! आपके सर्वोच्च आदर को प्राप्तकर मुझे अब कुछ भी पाना शेष नहीं रहा। अब मेरी मात्र यही कामना है कि– मैं अभिमान रहित हो अपने बहनोई, आपके चरण पादुकाओं की हर्ष प्रपूरित हृदय से नित्य सेवा करता हुआ सुख संप्राप्त करूँ।

सो०–हौं तिन दासन दास, जे प्रेमी तव चरण के ।
नहीं अन्य गति आस, रटैं नाम सुख छाय के ॥२५०॥

हे नाथ! मैं तो आपके उन सेवकों का सेवक हूँ जो आपके चरणों के प्रेमी हैं, जिनकी दूसरी गति व भरोसा नहीं है और जो सुखपूर्वक आपके नाम को रटते रहते हैं।

गत अभिमान प्रेम युत बानी । सुनि रघुनाथ हृदय सुख मानी ॥
बोले आत्म भाव मम प्यारे । सुनहु सुभग शुचि सहज उदारे ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की अभिमान शून्य व प्रेम परिपूर्ण वाणी को सुनकर श्रीरामजी महाराज ने हृदय में सुख प्राप्त किया तथा बोले– हे प्यारे! कुमार श्रीलक्ष्मीनिधिजी! मेरे सुन्दर, पवित्र, सहज और उदार आत्म भाव को आप श्रवण करें–।

परम अकिंचन गत अभिमाना । तुम समान जे भक्त सुजाना ॥
बनि अकाम सुमिरहिं दिन राती । तिन बिनु मोहिं नहि छनहुँ सुहाती ॥

अत्यन्त अकिंचन व अभिमान रहित, आपके समान जो सुजान भक्त निष्काम बनकर दिन रात्रि मेरा स्मरण करते हैं उनके बिना मुझे एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता।

दरश लागि लागौं नित साथा । तिन पग धूरि धरौं निज माथा ॥
तिन कर योग क्षेम मैं वहहूँ । लिये हथेली छन छन रहहूँ ॥

उन भक्तों के दर्शन के लिए मैं नित्य उनके साथ लगा रहता हूँ तथा उनके चरणों की

धूल अपने मस्तक में धारण करता हूँ, उनका योग व क्षेम वहन करता हूँ तथा प्रत्येक क्षण उन्हें अपने करतल में लिये हुये सभी प्रकार से रक्षा करता रहता हूँ।

तेहिं ब्रह्मादिक पूज्य बनाऊँ। राखहुँ हृदय आपने भाऊँ॥
ता सुख गिनौ आपनो सुक्खा। दुखी होहुँ भगतन के दुक्खा॥
भगत चाह आपन गुनि चाहा। पूरण करहुँ बनाय अचाहा॥

अपने ऐसे भक्तों को श्री ब्रह्मादिक देवताओं से भी पूजित बनाकर भावपूर्वक अपने हृदय में बसाये रखता हूँ, उनके सुख को अपना सुख मानता हूँ तथा उन भक्तों के दुख से मैं दुखी होता हूँ, भक्तों की इच्छा को अपनी इच्छा समझ उसे पूर्ण कर उन्हें निष्काम कर देता हूँ।

दो०—परमानन्दहिं बोरि तेहिं, जाहिं हमहुँ रस बोर।
रूप परख नहिं लखि परै, स्वामी सेवक भोर॥२५१॥

अपने भक्तजनों को परमानन्द में डुबा कर मैं भी रस से ओतप्रोत हो जाता हूँ। तब खोजने पर, भूल से भी स्वामी व सेवक (मेरा व भक्त) का स्वरूप नहीं समझ पड़ता अर्थात् मैं उसे राम रूप कर देता हूँ।

हौं बनि भक्त भक्त बनि रामा। रहैं सदा अद्वैत ललामा॥
अस बिचारि सज्जन मन माहीं। सेवहिं सदा मानि मोहिं काहीं॥

मैं भक्त बनकर तथा मेरे भक्त मेरे स्वरूप राम बने हुए सदैव सुन्दर अद्वैत भाव से संयुक्त रहते हैं। अतः ऐसा विचार कर सज्जन वृन्द मेरे भक्तों में मेरी भावना कर सदैव उनकी सेवा करते रहें।

जनहिं त्यागि मम पूजा करई। अफल मनोरथ सो नर जरई॥
जगत तोष मम तोष महाना। माता उदर बाल जिमि पाना॥

मेरे भक्तों को त्यागकर जो मेरी पूजा करते हैं वे विफल मनोरथ हो मेरी क्रोधाग्नि में भष्म हो जाते है। भक्तों की संतुष्टि से मुझे उसी प्रकार महान संतोष प्राप्त होता है जैसे माता के गर्भ में शिशु, माता के भोजन से संतुष्ट होता है।

जन सो बैर मोर अपराधा। सत सत जानहु महा असाधा॥
असहनीय करि मम अपचारा। कहहु कौन जग होय सुखारा॥

मेरे भक्तों से शत्रुता करना मेरा अत्यन्त दुष्कर अपराध करना है और इसे आप सर्वथा सत्य व अक्षम्य जानिये। अतः मेरे इस असह्यापचार को कर, आप ही कहिए, संसार में कौन सुखी हो सकता है?

प्राणन प्राण भक्त प्रिय मोरे। शंका यामहँ अहहि न थोरे॥
तुम तो कुँअर मोर निज देहा। धरे सदा भोगत रस नेहा॥

हे कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! भक्त जन मेरे प्राणों के प्राण व प्रियतर होते हैं, इसमें किंचित शंका नहीं है। पुनः आप तो मेरा ही शरीर धारण किये हुए सदैव मेरे प्रेम व रस का उपभोग कर रहे हैं।

दो०—प्राण सखे सत सत कहहुँ, तुम्हरो मैं अरु मोर।
पलक नयन रक्षहुँ सदा, निरखत मुख प्रिय तोर॥२५२॥

हे प्राण सखे! मैं सत्य कह रहा हूँ कि– मैं और मेरा सभी कुछ आपका है तथा आपके सुन्दर मुख को निहारते हुए मैं आपकी सदैव उसी प्रकार रक्षा करता रहता हूँ जैसे नेत्रों की रक्षा पलकें करती हैं।

राम कृपा अति पाय कुमारा। भयउ सुखी निर्भय रस बारा॥
बोले मधुर बचन रस सानी। प्रणत कुटुम्ब पाल प्रभु बानी॥

प्रभु श्री राम जी महाराज की महती कृपा को प्राप्त कर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी सुखी, निर्भय और रसमग्न हो गये तथा रसमयी मधुर वाणी से बोले– हे प्रभो! आपका तो विरद ही, आश्रित जनों के परिवार का पालन करना है।

धनि धनि सखे तुम्हार स्वभावा। जिव अभिमानी तुमहिं भुलावा॥
तबहुँ कृपा तब लगि जिव साथा। देवैं ताहि बनाय सनाथा॥

हे आत्म सखे! आपका स्वभाव धन्यातिधन्य है। परन्तु अभिमानी जीव आपको भुलाये रहते हैं तब भी आपकी कृपा जीव के साथ सदैव लगी रहती है और उसे सुरक्षित बना देती है।

कहँ मैं कहाँ गरीब निवाजा। कृपा करी मम सब विधि काजा॥
चरण परेउ पुनि कुँअर राम के। तुरत उठाये सुख सुधाम के॥

हे नाथ! कहाँ मैं और कहाँ गरीबों पर कृपा करने वाले आप, आपकी अकारण कृपा ने ही मुझे सभी प्रकार से कृतकृत्य कर दिया है। ऐसा कहकर पुनः कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज के चरणों में गिर पड़े तब सम्पूर्ण सुखों के सुन्दर धाम श्री राम जी महाराज ने उन्हें तुरन्त उठा लिया।

बैठे आसन दोउ रस छाके। पाये पानहुँ मुखहिं धुवा के॥
बीड़ा गंध आदि व्यवहारा। भयो विविध विधि शिष्टाचारा॥
राम सकल मैथिल सतकारे। सीय भ्रात सम मानि पियारे॥

तदनन्तर दोनों राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज प्रेम–रस में छके हुए सुन्दर आसन में विराज गये। अनुजों ने उनका मुख धुलवाकर फलों का रस पान कराया। पुनः ताम्बूल व इत्र आदि व्यवहार एवं विभिन्न प्रकार से शिष्टाचार हुआ तथा श्री राम जी महाराज ने सीताग्रज श्री लक्ष्मीनिधि जी के समान प्रिय मानकर सभी मैथिल जनों का सत्कार किया।

दो०–परमानन्दहिं मगन मन, मिथिला अवध समाज।
लक्ष्मीनिधि रघुनाथ कहँ, देखत रही विराज॥२५३॥

इस प्रकार सुन्दर आसनों में विराजा हुआ, श्री मिथिलापुरी व श्री अयोध्यापुरी का समाज राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज का पफुल्ल मुख कमल दर्शन करता हुआ परमानन्द में मग्न हो रहा था।

मास पारायण तेरहवाँ विश्राम

बहुरि राम श्रीनिधि रुचि जानी। दासी चतुर बुलाय बखानी॥
अन्तःपुरहिं कुँअर लै जाहू। प्रेम सहित मन महा उमाहू॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की इच्छा समझकर, एक चतुर दासी को बुलाकर कहा– तुम, प्रेम पूर्वक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को, मन में अत्यन्त उत्साह परिपूर्ण हो अन्तःपुर ले जाओ।

जनक सुवन लहि प्रभु संकेता। हिलमिल गवने सिया निकेता॥
सहित भ्रात मन पुलकत जाहीं। दरश प्यास बहु सब हिय माहीं॥

तब जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रभु श्री राम जी महाराज के संकेत को प्राप्त कर उनसे हिल–मिल भेंट कर श्री सीता जी के महल को चल दिये। वे भ्रातृगणों सहित प्रेम प्रफुल्लित–मना चले जा रहे थे। सभी के हृदय में अपनी प्रिय भगिनी श्री सीता जी के दर्शनों की अत्यन्त तृषा समायी हुई थी।

पहुँचे प्रथम कक्ष निमि वारे। दासी अमित सुसाजहिं धारे॥
करि पुष्पांजलि आरति कीनी। मिथिला वासिन रही प्रवीनी॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रथम कक्ष (पाँचवे–आवरण) में पहुँच गये, वहाँ असीमित दासियाँ सुन्दर सेवा साज (स्वागत सामग्री) लिये हुई खड़ी थीं। श्री मिथिलापुरी से आई हुई उन कैंकर्य–कुशला दासियों ने पुष्पांजलि देकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की आरती उतारी।

देखत कुँअर तिनहिं सुधि भूले। प्रेम प्रवाह बहे अनुकूले॥
परम सुभागिन गुनि मन माहीं। कीन्ह प्रणाम हियहिं हिय माहीं॥

उन्हें देखते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी स्मृति भूल गये तथा प्रेम की अनुकूलता प्राप्त कर प्रेम के प्रवाह में बह गये। अपने मन में परम सौभाग्यशालिनी जानकर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन सभी को हृदय ही हृदय में प्रणाम किया।

दो०–कक्षा दूसर जब गये, देखी सखियन भीर।
चन्द्रकला यूथेश्वरी, लिये आरती धीर॥२५४॥

राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी जब दूसरे कक्ष (छठवें आवरण) में पहुँचे तो वहाँ सखियों के समूह में सखियों की स्वामिनी श्री चन्द्रकला जी को धैर्य पूर्वक आरती लिये प्रतीक्षारत देखा।

वरषत सुमन आरती कीन्हीं। भैया मंगल रव भर दीन्हीं॥
चन्द्रकला द्रुत पायन लागी। बहत वारि दृग अति अनुरागी॥

श्री चन्द्रकला जी ने पुष्प वरषाते हुए कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की आरती उतारी तथा हमारे श्री भैया जी का मंगल हो, मंगल हो, इस शब्द से कक्ष को गुंजरित कर दिया। पुनः श्री चन्द्रकला जी ने शीघ्रता पूर्वक श्री भैया जी के चरणों में अत्यन्त अनुराग प्रपूरित हो आँखों से अश्रु बहाते हुए प्रणाम किया।

कुँअर उठावत प्रेम अधीरे । आपहुँ गिरे दृगन भरि नीरे ॥
सब सम्हार भ्रातन द्रुत कीन्हीं । कुँअर उठे चित चेतहिं लीन्ही ॥

भगिनि प्रेम में अधीर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री चन्द्रकला जी को उठाते है परन्तु स्वयं भी आँखों में अश्रु प्रपूरित हो गिर पड़ते है। उनके भ्रातृगणों ने शीघ्र ही उनकी पूर्ण सम्हाल की तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने चित्त में चैतन्यता प्राप्त कर उठ पड़े।

चन्द्रकलहिं लै अंक मझारी । सिय सम समुझि सुभाँति दुलारी ॥
शीश सूँघि आशिष बहु दीन्हीं । करि वात्सल्य गवन पुनि कीन्हीं ॥

श्री चन्द्रकला जी को श्री सीता जी के समान समझ गोद में लेकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उनका भली प्रकार दुलार किया व शिरोघ्राण कर बहुत सा आशीर्वाद दिया। पुनः उनका वात्सल्य पूर्वक प्यार कर वे आगे प्रस्थान किये।

पहुँचे सदन सिया के जाई । परम प्रकाश रहेव जहँ छाई ॥
परम दिव्य सत चिद आनंदा । मन अभिराम अमित सुख कन्दा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी चलते हुये अपनी अनुजा श्री सीता जी के महल (सातवें आवरण) में पहुँचे। वह कक्ष अत्यधिक प्रकाश परिपूर्ण, परम दिव्य, सच्चिदानन्दमय, मनोभिराम व असीमित सुखों का मूल था।

दो०—देखि कुँअर आनन्द पगे, मन चित गयो बिलाय ।
अहंकार सूक्षम नसेव, प्रेम रहेव इक छाय ॥२५५॥

उस भवन को देखते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी आनन्द में डूब गये, उनके मन व चित्त का विलीनीकरण हो गया तथा सूक्ष्म अहंकार भी विनष्ट हो गया, उनके हृदय में केवल प्रेम ही प्रेम छाया रह गया।

छं०— सखि संग गवनत वर कुँअर, सिय प्रेम पागे मन लसे ।
अति मंद रेंगत भाव भरि, लरखरत कहुँ कहुँ पद खसे ॥
उत सीय राजत भव्य तनु, भ्रातहिं मिलन अकुलावती ।
कर धारि आरति प्रेम युत, हरषण सखिन सह राजती ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीता जी के प्रेम में डूबे हुए आनन्दित मन सखियों के साथ चल रहे थे, वे भाव में भरकर अत्यन्त मन्द गति से चल रहे थे, कभी वे लड़खड़ा जाते तो कभी उनके पैर खिसक जाते थे। उधर अन्त:पुर में भव्य वपु सम्पन्ना श्री सीता जी अपने भवन में श्री भैया जी से मिलने की आकुलता लिए हुए, प्रेमपूर्वक हाथ में आरती धारण कर हर्ष में समायी हुई, सखियों सहित सुशोभित हो रही थीं।

लखि कुँअर आवत द्रुत सिया, उठि उरहिं होत विभोर है ।
तन कम्प नैनन धार जल, स्वर भंग स्वेदहुँ बोर है ॥

कछु धीर धारति प्रेम पगि, आरति करति विलखन लगी ।
तजि भान चरणन भ्रात के, हरषण गिरी रस महँ रँगी ॥

अपने प्रिय भैया कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को आते हुए देखकर श्री सीता जी शीघ्रता पूर्वक उठ पड़ीं, उनका हृदय प्रेम विभोर हो गया, सम्पूर्ण वपु प्रकम्पित होने लगा, आँखों से आँसुओं की धारा बह चली, स्वर भंग हो गया तथा शरीर स्वेद से भीग गया। कुछ धैर्य धारण कर श्री सीता जी प्रेम में डूबकर अपने भैया जी आरती उतारने लगीं। पुनः विलखती हुई स्मृति भूलकर हर्ष में समायी हुई प्रेमानन्द परिप्लुत हो अपने श्री भैया जी के चरणों में गिर पड़ी।

सो०–दशा न जाय बखान, भ्रात विरह सानी सिया ।
आदि शक्ति जिय जान, प्रेमिन प्रेम प्रमानता ॥२५६॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–अपने प्रिय भैया कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के विरह में समायी हुई, श्री सीता जी की अवस्था का बखान नहीं किया जा सकता, वे तो परमाद्या शक्ति और प्रेमियों के प्रेम की प्रमाण स्वरूपा हैं।

सियहिं गिरत पग प्रेम विभोरी । चहेव उठावन कुँअर गहोरी ॥
भूलि गयो सुधि गिरेउ पछारी । को हम कहाँ कितै सिय प्यारी ॥

भ्रातृ–प्रेम–पगी, विभोर हुई श्री सीता जी को अपने चरणों में गिरते देखकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें पकड़कर उठाना चाहा तभी वे स्वयं स्मृति भूल पछाड़ खाकर गिर पड़े, हम कौन हैं? कहाँ हैं? प्यारी श्री सिया जू कहाँ हैं? सभी कुछ भूल गये।

चन्द्रकला सिय काहिं जगाई । बहुरि भ्रात उपचार कराई ॥
सिय कर परश पाइ सुकुमारा । खोलेव नेत्र बहत जलधारा ॥

अनन्तर श्री चन्द्रकला जी ने श्री सीता जी को सचेत किया तब श्री सीता जी ने अपने श्री भैया जी की चैतन्यता के लिए उपचार किया और अपनी अनुजा श्री सीताजी के प्रिय स्पर्श को प्राप्त कर, निमिवंश राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने नेत्र खोल दिये, उनके नेत्रों से अविरल आँसुओं की धारा प्रवाहित हो रही थी।

देखि भगिनि मन मोद बढ़ाई । हृदय लाय अति तपनि मिटाई ॥
गोद बिठाय सिया कर शीशा । सूँघत प्रेम भरे मुख दीशा ॥

अपनी प्रिय बहन श्री सीता जी को देख, मन में आनन्द विवर्धित कर, कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हे अपने हृदय से लगाकर विरहजन्य ताप को शान्त किया तथा गोद में बिठा, शिरोघ्राण करते हुए, प्रेम में भरकर उनका मुख दर्शन करने लगे।

नयन नीर भगिनिहिं अभिषेका । करत कुँअर भरि नेहहिं एका ॥
सियहुँ सुढारति नयनन पानी । परत कुँअर पद मनहुँ धुवानी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अनन्य भगिनि प्रेम में भरकर, नेत्रों के प्रेम जल से अपनी बहन श्री सिया जू का अभिषेक करने लगे उस समय श्री सिया जू भी अपने सुन्दर नेत्रों से प्रेम जल वरषा रहीं

थीं, जो कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के चरणों में ऐसे गिर रहे थे मानों वे अपने प्रेमाश्रुओं से उनके चरणों को प्रच्छालित कर रही हों।

दो०—बिलखि बिलखि भ्राता भगिनि, बने दोय के एक ।
प्रेम सरोवर उमड़ि चल, दियो डुबाय विवेक ॥२५७॥

इस प्रकार भाई—बहन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिया जू दोनों बिलख—बिलख कर रुदन करते हुए दो के एक बने हुए थे, उनके नेत्रों से प्रेमजल का सरोवर उमड़ कर बहते हुए उनके ज्ञान को डुबा दिया था।

कछुक काल लहि धैर्य कुमारा । औरहु भगिनिन मिलेव सुखारा ॥
उरमीला माण्डवि श्रुति कीरति । प्रेम विवश तन दशा विभूरति ॥

कुछ समयोपरान्त धैर्य धारण कर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सुखपूर्वक अपनी अन्य बहनों से भेंट की। श्री उर्मिला जी, श्री माण्डवी जी व श्री श्रुतिकीर्ति जी आदि बहनें प्रेम के वशीभूत हो अपने शरीर की स्मृति भूली हुई थी।

भ्रातहिं कीन्ही सकल प्रणामा । विरह सनी भूली तन धामा ॥
कुँअर उठाय हिये निज लाई । सिय सम प्यार किये सुखदाई ॥

भ्रातृ विरह में समायी हुई, शरीर व धाम की स्मृति भूलकर उन सभी बहनों ने श्री भैया जी को प्रणाम किया तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें उठा, हृदय से लगाकर श्री सीता जी के समान सुखदायी प्यार किया।

सहित सिया सब भगिनि अधीरी। मिली सकल भ्रातन विरहीरी ॥
हिलमिल सबहिं सिंहासन राजे । मैथिल प्रेम विभोर विभ्राजे ॥

श्री सीता जी सहित भ्रातृ विरह में मग्न हुई सभी बहनों ने व्याकुल हो, अपने सभी भ्राताओं से भेंट किया तदनन्तर अपनी बहनों से हिलमिल भेंटकर सुन्दर सिंहासनों में विराज, प्रेम विभोर हो सभी मैथिल जन सुशोभित होने लगे।

जनक सुवन लै गोदिहिं सीता । बैठे आसन प्रेम पुनीता ॥
चहुँ दिशि औरहुँ भमिनि सुसोहीं । सखी सेविका बैठि विमोही ॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी अनुजा श्री सीता जी को गोद में लेकर पवित्र प्रेम परिपूर्ण हो, आसन में विराज गये तथा उनके चारों ओर अन्य बहनें व सखी सेविकायें मुग्ध सी हो, बैठी हुई सुशोभित होने लगीं।

दो०—आत्म आत्म सिय पाइ प्रिय, आनँद रूप कुमार ।
पोंछत भगिनी नयन जल, करि वात्सल्य उदार ॥२५८॥

अपनी आत्मा की आत्मा प्रिय बहन श्री सीताजी को प्राप्त कर, आनन्द स्वरूप, परम उदार कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी वात्सल्य पूर्वक उनके नेत्रों के प्रेमाश्रुओं का प्रोच्छण करने लगे।

पूँछत सिया फफकि हे भइया। कुशल अहैं मम दाऊ मइया ॥
भाभी कुशल सुनन ये काना। आतुर रहत सदा अकुलाना ॥

अत्यन्त अधीर हो रुदन करती हुई (फफकती हुई) श्री सीता जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से पूँछती हैं कि– हे श्री भइया जी! मेरे श्रीमान् दाऊ जी व श्री अम्बा जी कुशलपूर्वक हैं। श्री भाभी जी की कुशलता सुनने के लिये तो मेरे श्रवण सदैव व्याकुल रहते हैं।

प्रिय परिवार पुरी के लोगा। अहैं प्रसन्न रहैं रत योगा ॥
सुआ सारिका मोर जियाये। औरहुँ पुर पशु पक्षी भाये ॥

हमारे प्रिय परिवार व श्री मिथिलापुरी के लोग प्रसन्न व अपनी–अपनी आत्म–साधना में निरत तो हैं। मेरे पाले–पोषे तोता, मैना तथा मिथिलापुरी के अन्य सुन्दर पशु–पक्षी–––

तृण पादप जड़ चेतन जीवा। अहैं कुशल सुख सने अतीवा ॥
रावरि कुशल काह मै पूछौं। जानत हृदय अन्य गति छूछौं ॥

–––तृण, पौधे आदि सभी जड़–चेतन जीव कुशलपूर्वक व अत्यधिक सुख में सने तो हैं। हे श्री भैया जी! आपकी कुशलता मैं क्या पूछूँ, अनन्य गति से युक्त उसे तो मेरा हृदय जानता ही है–––

भैया मो बिन गयो सुखाई। छन छन विरहा रहेव दबाई ॥
भोजन समय नयन भरि वारी। करति सुरति मम हृदय मझारी ॥

–––कि, आप मेरे बिना अतिशय कृश–गात हो गये हैं तथा मेरा वियोग आपको प्रत्येक क्षण सताता रहता है। भोजन के समय नेत्रों में अश्रु भरकर, आप अपने हृदय में मेरा स्मरण करते रहते थे।

दो०–भ्रात भरे दुख मोहि बिन, जात रहेव नहि कौर ।
तनिक पाय उठि आवते, धनि प्रिय प्रेम अथोर ॥२५९॥

हे श्री भैया जी! मेरे वियोग जन्य दुख से दुखी, आपके मुख में, मेरे बिना भोजन का कवल तक नहीं जा पाता था इसलिए थोड़ा पाकर ही उठ जाते थे, मेरे प्रति आपका असीम व प्रिय प्रेम धन्य है।

निज मन मो पहँ सदा लगायो। राग रंग कछु कबहुँ न भायो ॥
मम सुख लागि जियहु तुम भैया। और चाह नहिं हृदय रहैया ॥

हे मेरे प्रिय भैया जी! आपने सदैव ही अपना मन मुझमें लगाया है और किसी प्रकार का राग–रंग (भोगोपभोग) आपको कभी भी अच्छा नहीं लगा। आप मेरे सुख के लिए ही जीवित हैं तथा मेरे सुख के अतिरिक्त आपके हृदय में अन्य कोई भी अभिलाषा नहीं है।

बने अकिंचन मम हित लागी। स्वारथ परमारथ सुख त्यागी ॥
अकथ अलौकिक प्रीति प्रवीने। ज्ञान विराग विरागहिं दीने ॥

आप श्री, मेरे हित के लिये अपने स्वार्थ, परमार्थ व समस्त सुखों को त्यागकर अकिंचन बने

हुए हैं। हे अतिशय प्रवीण श्री भैया जी! मेरे प्रति आपके हृदय में अकथनीय व अलौकिक प्रीति हैं जिसके के सामने आप, अपने कुल की परम्परानुसार प्राप्त ज्ञान व वैराग्य से भी अपने मन को विरत किये हुए हैं।

हौं हूँ धन्य भई सब भाँती। ऐसो भइया पाय सँघाती॥
कहति कहति भै सिया अधीरा। लिपट रहीं दृग ढारति नीरा॥

हे मेरे परम दुलारे वीर! ऐसे भइया का सांनिध्य प्राप्त कर मैं भी सभी प्रकार से धन्य हो गयी हूँ। ऐसा कहते–कहते श्री सीता जी विह्वल हो आँखों से अश्रु बहाती हुई अपने श्री भइया जी से लिपट गयीं।

लक्ष्मीनिधि पुचकार दुलारी। कहत बचन भरि लोचन वारी॥
बज्र हृदय मोहिं देहु बड़ाई। लली कृपा यह अहै अमाई॥

तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें पुचकार कर, दुलार करते हुए अपने नेत्रों में अश्रु भर कर कहा– हे श्री लली जू! आप मुझ बज्र हृदयी को जो इतनी बड़ाई दे रही हैं, यह आपकी महान कृपा है।

दो०–जो कठोर होतो नहीं, भगिनि हृदय यह मोर।
तब विछुरन केहिं विधि सहत, पिघल जात चहुँ ओर॥२६०॥

हे भगिनि! यदि मेरा हृदय कठोर नहीं होता तो भला आपके वियोग को किस प्रकार सहन कर पाता, वह तो द्रवित होकर चारों तरफ फैल जाता।

तुम अस भगिनि पाइ सुखकारी। सेव कियो नहिं कछुक विचारी॥
यथा रहै सुरतरु तर कोई। सुभग बनाय कुटी सुख खोई॥

आपके समान अतिशय सुखकारी बहन को प्राप्तकर भी आपकी महिमा का किंचित विचार न कर, मै आपकी कोई भी सेवा उसी प्रकार नहीं कर सका जिस प्रकार कोई कल्पवृक्ष के नीचे समस्त सुखों को विनष्ट कर दुखी बना हुआ, कुटिया बनाकर निवास करे–––

वृक्ष महातम जानि न सेयो। दारिद दीन मलीन दुखेयो॥
तैसहिं अनुजा दशा हमारी। ह्वै तव भ्रात न कीन्ह बिचारी॥

–––तथा वृक्ष के माहात्म्य (महत्ता) को जानते हुए भी उसका सेवन न करे, दरिद्र, दीन, मलीन व दुखी बना रहे। हे अनुजे! उसी प्रकार ही मेरी स्थिति है कि– आपका भैया होकर भी मैंने आपकी महत्ता का कुछ भी विचार न किया–––

पारस मणि लहि दारिद दीना। बना रहा मति मन्द मलीना॥
दया रूप भगिनी श्रुति गाई। सो अवलम्ब मोहिं दिखराई॥

–––– और पारस मणि को प्राप्त कर भी अतिशय दरिद्र, दीन, मन्द–बुद्धि व म्लीन बना रहा। परन्तु हे मेरी अनुजा! वेदों ने बहन के स्वरूप को दयामय कह कर बखान किया है अतः मुझे एकमात्र वही आश्रय दिखाई दे रहा है।

ताते कृपा कोर दिन राती। चितवत रहौं अमित सुखदाती॥
मम करनी रखिहै उर धारी। कबहुँ न होई मोर उबारी॥

अतः मैं दिन–रात आपकी, असीमित सुखदायिनी कृपा को निहारता रहता हूँ। हे श्री सिया जू! यदि आप मेरे कर्मो की ओर ध्यान देंगी तो मेरा उद्धार कभी भी नहीं हो पायेगा,–––

दो०–सेवा दरशन प्रीति सुख, स्वप्नेहुँ मिली न मोहिं।
बिना कृपा तव लाड़िली, आत्महुँ दरश न होहिं॥२६१॥

––––आपकी सेवा, दर्शन, प्रेम व सुख मुझे स्वप्न में भी नहीं प्राप्त हो सकेगा तथा हे श्री लाड़िली जू! आपकी कृपा के बिना तो मुझे आत्मदर्शन तक नहीं हो पायेगा।

मिथिला कुशल कहौं किमि गाई। तव वियोग तरु रहे सुखाई॥
पशु खग मृग छोड़े जल पाना। ढारत नीर नयन अकुलाना॥

मैं श्री मिथिलापुरी की कुशलता का बखान किस प्रकार करूँ। आपके वियोग में वहाँ के वृक्ष भी सूख गये हैं। पशु, पक्षी व जानवर आदि जल पीना छोड़कर व्याकुल हो आँखों से अश्रु बहाते रहते हैं।

सुनि तव नाम सुहेरहिं तेही। जो कह जनक लली वैदेही॥
है सुनसान पुरी छबि हीना। देखि न जाबै महा मलीना॥

आपका नाम सुनते ही वे उसी ओर देखने लगते हैं जो जनक नन्दिनी सिया जी कहता है। श्री मिथिलापुरी सूनसान, छवि विहीन व ऐसी अतिशय मलिन हो गयी है कि– उसकी ओर देखा भी नही जाता।

दरश आस राखत तन प्राना। नतरु जात महि बीच समाना॥
मनुज दशा हिय लेहिं बिचारी। होइहैं यथा नगर नर नारी॥

वह आपके दर्शन की अभिलाषा में अपने शरीर में प्राणों को धारण किये हुए है नहीं तो भूमि में ही समाविष्ट हो जाती। जब मनुष्येतर जीवों की ऐसी अवस्था है तो, आप मनुष्यों की अवस्था का स्वयं विचार कर लें, कि– श्री मिथिलापुर निवासी पुरुष–स्त्री जिस प्रकार होंगे।

मैया दाऊ प्यारहिं कीन्हे। शीश सूँघि तोहि आशिष दीन्हे॥
तिनकी दशा न जाय बखानी। छन छन बीतल कल्प समानी॥

श्री अम्बा जी व श्रीमान् दाऊ जी ने आपको प्यार किया है तथा शिरोघ्राण कर आपको आशीश प्रदान किये है। उनकी अवस्था का तो बखान ही नहीं किया जा सकता, आपके वियोग में उनका एक–एक क्षण कल्प के समान व्यतीत होता है।

दो०–कहत कुँअर विरहातुरे, जननि–जनक सुधि लाय।
भूले सिगरी देह सुधि, सियहुँ गई अकुलाय॥२६२॥

ऐसा कहते ही श्री अम्बा जी व श्री जनक जी महाराज का स्मरण कर उनके विरह में समाहित

होकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी शरीर की सम्पूर्ण स्मृति भूल गये, श्री सीता जी भी उस समय अतिशय व्याकुल हो गयी थीं।

बहुरि कुँअर कछु धीरज धारी । दीन्हेउ सिद्धि पत्रिका प्यारी ॥
पढ़तहिं गई लली रस पागी । नयन नीर तन मन अनुरागी ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कुछ धैर्य धारण कर श्री सिद्धिकुँअरि जी द्वारा भिजवाई हुई प्रिय पत्रिका श्री सिया जू को दिये, उसे पढ़ते ही श्री जनक लली जू प्रेम रस में डूब गयी तथा आँखों से अश्रु बहाती हुई, शरीर व मन में उनके प्रेम से ओत–प्रोत हो गयीं।

करि प्रिय प्यार कुमार प्रवीना । मणि गन भूषण वसन नगीना ॥
बहु सुख साज कहे को पारी । दीन्हीं भेट सियहिं सुखकारी ॥

परम प्रवीण कुमार श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने उनका प्रिय प्यार कर मणियाँ, आभूषण, वस्त्र तथा रत्न आदि बहुत सी सुख की सामग्री, जिनका वर्णन कर पार नहीं पाया जा सकता है, श्री सीता जी को सुखपूर्वक भेंट की।

यथा सियहिं तस औरहुँ दीन्ही । सकल भगिनि भरि प्रेमहिं लीन्हीं ॥
सखी सेविका जो सिय केरी । ते सब पाई भेंट घनेरी ॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सीता जी को जैसी भेंट दी थी, वैसी ही भेंट अपनी अन्य बहनों को भी प्रदान की, जिसे सभी बहनों ने प्रेम पूर्वक ग्रहण किया। वहाँ श्री सीता जी की जो सखियाँ व सेविकायें थी, उन सभी ने भी राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी से बहुत सी भेंट प्राप्त की।

बोले कुँअर लाड़िली सीते । मातु पिता भेजे कर प्रीते ॥
मोरे निकट भेंट कछु नाहीं । तुम्हरे योग लली जो चाही ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे लाड़िली श्री सिया जू! यह भेंट तो श्री अम्बा जी व श्रीमान् दाऊ जी ने प्रेमपूर्वक भिजवायी है। हे श्री लली जू! मेरे पास तो ऐसी कुछ भी भेंट– सामग्री नहीं है जो आपके लायक व आपकी मनोभिलषित हो।

दो०–परम अकिंचन जानि जिय, अश्रु बिन्दु इक लेहु ।
मम पुरुषारथ सोउ नहिं, करिय कृपा अति नेहु ॥२६३॥

हे श्री लाड़िली जू! आप हृदय में मुझे अत्यन्त अकिंचन जानकर, मेरे एक अश्रु बिन्दु की भेंट ही स्वीकार कर लीजिये। परन्तु इसमें भी मेरा कुछ पुरुषार्थ नहीं है अतः आप मुझ पर अपनी कृपा व अत्यधिक प्रेम करती रहियेगा।

छं०– बनि दीन सीतहिं भार जिन, सौंपत मनहुँ अकुलाय के ।
जल ढारि नैनन भेंट महँ, देतो न निज कछु पाय के ॥
अब पालि दीनहिं भ्रात गुनि, गति मम न एकौ कहुँ रही ।
हौं अति अकिंचन हीन साधन, सिय शरण हरषण गही ॥

उस समय ऐसी प्रतीति हो रही थी मानो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी दीन बन, अतिशय व्याकुल होकर अपने योग व क्षेम का सम्पूर्ण भार, श्री सीता जी को सौंप रहे हैं तथा खोजने पर भी श्री सिया जू के योग्य भेंट हेतु अपना कुछ भी न पाकर अपने प्रेमाश्रुओं को ही भेंट स्वरूप अर्पित कर रहे हैं। कुमार की ऐसी अवस्था का विचार कर हमारे आचार्य महा प्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–हे श्री लाड़िली जू! अब आप मुझ दीन को अपना भ्रात समझकर पालन कीजिये क्योंकि मेरी कहीं कोई भी गति नहीं है। मैं तो अत्यन्त अकिंचन तथा साधन हीन हूँ, मैंने हर्ष पूर्वक आपकी शरण ग्रहण कर ली है।

सो०–भये प्रेम वश लाल, भूलि अपनपौ तुरत सब ।
सिय जू करति सम्हाल, भरी भ्रात ममता अधिक ॥२६४॥

इस प्रकार जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी, श्री सिया जू के प्रेमाधीन हो शीघ्र ही अपना सम्पूर्ण अस्तित्व भूल गये तब भ्रातृ–ममत्व के आधिक्य से आप्लावित श्री सिया जू उनकी सम्हाल करने लगी।

भ्रातहिं बोध कराय सम्हारी। पोंछी नयन वारि सुकुमारी ॥
भैया काहे होहिं अधीरा। मनहुँ दरिद्री छुधित कुपीरा ॥

परम सुकुमारी श्री सिया जू ने अपने श्री भैया जी को सम्हाल कर चैतन्य कराते हुए नेत्रों से उनके अश्रुओं का प्रोच्छण कर कहा– हे श्री भैया जी! आप ऐसे अधीर क्यों हो रहे हैं जैसे आप कोई भूखे, पीड़ा ग्रस्त व दरिद्री हो।

आपन मोहिं जान सुख पाई । नित्य रहहु आनन्द अघाई ॥
मैं अरु मोर तात सब तोरा। सब विधि जानहु सत बच मोरा ॥

आप मुझे अपनी समझकर सुख प्राप्त कीजिये तथा नित्य आनन्द में छके रहिये। मैं और मेरी सभी वस्तुयें आपकी हैं, आप मेरे वचनों को सभी प्रकार से सत्य जानिये।

मोकहँ दियो काह तुम नाहीं। मो ढिग सकल वस्तु तव आही ॥
तव सुख हेतु सुचेष्टा मोरी। संशय यामहँ कियो न भोरी ॥

आपने मुझे कौन सी वस्तु नहीं प्रदान की यहाँ तक कि– मेरे समीप की सभी वस्तुयें तो आपके द्वारा ही दी हुई हैं। हे श्री भैया जी! मेरी सभी सुन्दर चेष्टायें आपके सुख के लिए ही होती हैं, इस बात में भूलकर भी सन्देह मत कीजियेगा।

सब विधि भैया अहहु महाना । आनन्द मगन रहहु रस साना ॥
तनिक दैन्य नहिं तव सहि जाई। भैया कहहुँ सत्य सत गाई ॥

हे श्री भइया जी! आप सभी प्रकार से महान हैं, अतः आनन्द मग्न व रस में सराबोर बने रहिये। मैं यह सत्य–सत्य बात पुकार कर कह रहीं हूँ कि– आपका किंचित दैन्य भी मुझसे नहीं सहा जाता।

दो०–देखत सुनत सुदैन्य तव, छटपटाय मन मोर ।
काह कहौं जस लगत जिय, करत सुरति अस तोर ॥२६५॥

हे मेरे प्रिय, श्री भइया जी! आपके सुन्दर दैन्य को देखते व सुनते ही मेरा मन छटपटाने लगता है। मैं क्या? कहूँ कि– आपके ऐसी अवस्था की स्मृति भी मुझे हृदय में कैसी लगती है।

कृपा सुधा बरसाय किशोरी। कुँअरहिं कर प्रसन्न सुख बोरी ॥
करि संकेत सखिन कहँ प्रीता। स्वागत साज मँगाय पुनीता ॥

जनक किशोरी श्री सीता जी ने इस प्रकार कृपामृत की वर्षा कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रसन्न कर, सुख में डुबा दिया। पुनः श्री सिया जू ने प्रीतिपूर्वक सखियों को संकेत कर स्वागत की पवित्र सामग्री मँगवाकर–––

दै पाद्यादि निवेद पवाई। निज कर बीड़ा गन्ध लगाई ॥
माल पिन्हाय मुद्रिका धारी। दिव्य सदा नव नेह पसारी ॥

–––कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को पाद्यादि देकर नैवेद्य पवाया, अपने हाथों से ताम्बूल दे इत्र लगाया, माला धारण करायीं तथा अपने दिव्य शाश्वत व नवीन प्रेम को प्रसारित करती हुई सुन्दर मुद्रिका धारण करवायीं।

नीराञ्जन करि सखिन समेता। मंगल स्तव पढ़ी सुहेता ॥
करि प्रणाम भइ मगन कुमारी। कुँअर उठाये गोद मँझारी ॥

अनन्तर सखियों सहित नीराञ्जन (आरती उतार) कर जनक कुमारी श्री जानकी जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के सुन्दर हित के लिए मांगलिक स्तवन पाठ किया तथा प्रणाम कर उनके प्रेम में मग्न हो गयीं तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उन्हें गोद में उठा लिया।

प्रेम मगन सिय काहिं दुलारे। हर्षण हिरदय भये सुखारे ॥
प्रीति रीति भगिनी अरु भाई। को कवि कहै यथारथ गाई ॥

पुनः प्रेम मग्न हो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीता जी का दुलार करने लगे और उनका हृदय अत्यन्त सुखी हो गया। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे तात! श्री हनुमान जी! उन बहन व भाई श्री सीता जी व श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रीति व रीति का गायन यथार्थ रूप में कौन कर सकता है अर्थात कोई नहीं कर सकता।

दो०–गोद विराजति जानकी, कुँअरहुँ सुख न समाय।
पावन योग सुवस्तु लहि, हरषण हिय हरषाय ॥२६६॥

उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की गोद में श्री जानकी जी सुशोभित हो रही थीं और वे सुख से फूले नहीं समा रहे थे। हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– प्राप्त करने योग्य सुन्दर व श्रेष्ठ वस्तु को प्राप्त कर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी का हृदय अत्यधिक हर्षित हो रहा था।

नवाह्न पारायण चौथा विश्राम

विविध बात मिथिलापुर केरी । कहे सुने सिय कुँअर सुखेरी ॥
भ्रात भगिनि नित आनन्द रूपा । प्रीति रीति रस रसे अनूपा ॥

पुनः श्री मिथिलापुरी की विभिन्न प्रकार की सुखद स्मृतियों की वार्तायें कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सिया जू ने सुखपूर्वक परस्पर में कही व सुनी तथा आनन्द स्वरूप वे दोनों भाई व बहन श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री सीता जी प्रीति–रीतिपूर्वक अनुपमेय प्रेम–रस में समाहित हो गये।

कुँअर कहे सुनु अनुजा एरी । संध्या करन भई अब बेरी ॥
करि दुलार सिय पूँछि कुमारा । चले वास घर सुखद अपारा ॥

तदुपरान्त कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी बोले– हे मेरी अनुजे सीते! अब सन्ध्या करने का सुखद समय समुपस्थित हो गया है। ऐसा कह, श्री सीता जी का दुलार कर व उनसे सम्मति ले, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी असीमित सुखदायी निवास गृह को चल दिये।

सबके वास अनूप सुहाये । दशरथ नृप दीन्हे मन भाये ॥
अन्तःपुरहिं कुँअर कर वासा । सुखद सत्य रसमय चिद भासा ॥

सभी मैथिलों को चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने अनुपमेय, सुन्दर तथा मनोनुकूल निवास प्रदान किया था तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का सुखदायी निवास, सत्य स्वरूप, रसमय व चिदानन्दमय अन्तःपुर में ही था।

साज अनन्त सुखहिं के हेतू । आनँदमयी सुसोह निकेतू ॥
रिद्धि सिद्धि बहु दासी दासा । सखी सखा सेवहिं सहुलासा ॥
जोगवहिं कुँअर जानि रुख जैसी । अनुभव गम्य कहनि नहिं वैसी ॥

उस सुन्दर निवास गृह में आनन्दमयी, सुखों की अनन्त सामग्री उपस्थित थी। वहाँ रिद्धियाँ, सिद्धियाँ, बहुत से दासी–दास तथा सखी व सखागण आनन्दपूर्वक सेवा करते थे। वे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की रुचि जानकर जैसी सेवा करते थे उसे अनुभव के द्वारा ही जाना जा सकता है, वाणी से उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो०–स्वागत कर्ता राम सिय, जाके भये अनूप ।
सुख समृद्धि वरणैं कहा, अमृत आनँद रूप ॥२६७॥

जिन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का स्वागत करने वाले अनुपमेय पूर्णतम परब्रह्म पुरुषोत्तम श्री राम जी महाराज व परमाद्या शक्ति श्री सीता जी हैं उनके अमृतमय व आनन्दस्वरूप सुख तथा समृद्धि का वर्णन क्या किया जाय, वह तो वाणी के पार होगा ही।

जाय कुँअर कृत्यादि निबाही । निशा भई जनु स्वागत काही ॥
बैठ पलँग निज कक्ष सुहाहीं । राम कृपा वरणत मन माहीं ॥

अपने निवास भवन जाकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने सान्ध्यीय कृत्यों का निर्वाह किया, तब तक रात्रि भी मानो उनका स्वागत करने के लिए समुपस्थित हो गयी। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने कक्ष में पर्यक पर विराजे हुए मन में श्री राम जी महाराज की कृपा का अनुसन्धान करते हुये सुशोभित

होने लगे।

प्रीति पगे कहुँ होत विभोरा। ललन रसे रस जन मन चोरा॥
तेहिं अवसर रघुनन्दन प्यारे। मिलन एकान्तिक आइ पधारे॥

इस प्रकार निज जनों के मन की चोरी करने वाले रघुनन्दन श्री राम जी महाराज के प्रेमरस में डूबे हुए लाल लक्ष्मीनिधि जी कभी–कभी प्रेम विभोर हो जाते थे। उसी समय उनसे एकान्त मिलन हेतु उनके प्रिय भाम रघुनन्दन श्री राम जी महाराज आ गये।

देखत कुँअर उठे हरषाई। हिय लगाइ पलकहिं बैठाई॥
श्याल भाम जस प्रीति सलोनी। भई नहै नहिं अब कहुँ होनी॥

श्री राम जी महाराज को देखते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हर्ष प्रपूरित हो उठ पड़े तथा हृदय से लगाकर उन्हें पलंग में ही बिठा लिये। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्याल–भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज की जैसी विलक्षण पारस्परिक प्रीति थी वह न तो भूतकाल में किसी की हुई है, न वर्तमान में है, और न ही अब भविष्य में कभी होने वाली है।

इन सम येइ प्रीति प्रिय धारे। प्रेम पाठ पढ़ये जग सारे॥
इक एकन हिय लाय लपेटे। अन्तः राखन चहत समेटे॥

इनके समान प्रिय–प्रीति तो ये श्याल–भाम ही धारण किये हुए हैं तथा अपने पारस्परिक प्रेम से सम्पूर्ण संसार को प्रेम की शिक्षा दे रहे हैं। वे दोनों एक दूसरे को हृदय से लगाकर ऐसे लिपटे हुए थे मानो एक–दूसरे को समेट कर हृदय के भीतर रख लेना चाहते हों।

दो०–परमैकान्तिक प्रेम रस, सद चिद आनँद रूप।
आय विराजेहु धारि तनु, अनुभव गम्य अनूप॥२६८॥

उस समय ऐसा प्रतीति हो रही थी मानों परम ऐकान्तिक प्रेमानन्द ही अनुभव गम्य व अनुपमेय सच्चिदानन्दात्मक विग्रह धारण कर श्याल–भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज के रूप में सुशोभित हो रहा है।

प्रेम सिन्धु दोउ गये समाई। महा शान्ति सनि रहे सुहाई॥
कवन बताय सुनै पुनि कौना। चित्त बिना चेष्टित कस गौना॥

इस प्रकार श्याले–बहनोई श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज दोनों प्रेम के सागर में समा गये तथा सुन्दर परम शान्ति में समाहित हो गये अर्थात् दोनों के चित्त का विलीनीकरण हो गया। ऐसी स्थिति मैं कौन बातें करे व कौन सुने? क्योंकि चित्त के बिना चेष्टित क्रियायें कैसे सम्पादित हो सकती हैं।

जल ऊपर जब लौं मुख होई। बोलब सुनब बने दृग जोई॥
बूड़ि गयो जब नीर अथाहा। तनहु दरश तब कोउ न लाहा॥

जब तक मुख जल के ऊपर होता है तभी तक बोलना व सुनना बनता है तथा आँखे देख पाती

है किन्तु जब व्यक्ति निस्सीम जल में डूब जाता है तब तो उसकी देह तक का कोई दर्शन नहीं प्राप्त कर पाता।

सब समर्थ प्रभु राम सुजाना। कुँअरहिं देन चहे सुख नाना॥
जागि आपु पुनि तिनहिं जगाये। भरे प्रेम दोउ नीर बहाये॥

पुनः सब समर्थ सर्वज्ञ स्वामी श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को विविध प्रकार के सुख देना चाहते थे, अतः भाव समाधि से स्वयं जागृत होकर उन्हें भी जागृत किये तब वे दोनों प्रेम प्रपूरित नेत्रों से एक दूसरे को देख–देख कर प्रेमाश्रु बहाने लगे।

कुँअर कहे मम मैया दाऊ। प्यार अशीष कहे प्रिय भाऊ॥
झूलहिं आँखिन निशिदिन तिनके। सुमिरहिं चरित सुखद छिन छिनके॥
आप वियोग बने विरहीले। भूले ज्ञान विराग रसीले॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रेम पूर्ण वचनों से कहा– हे मेरे प्यारे रघुनन्दन जू! मेरी अम्बाजी व श्रीमान् दाऊ जी ने आपको भाव पूर्वक प्रिय प्यार व आशीष कहा है। आप उनके नेत्रों में रात–दिन झूलते रहते हैं तथा वे प्रत्येक क्षण घटित हुये आपके सुखदायी चरित्रों का स्मरण करते रहते हैं। आप के वियोग में वे अपने ज्ञान व वैराग्य को भूलकर प्रेम रस में डूब वियोगी बने हुए हैं।

दो०–प्रेम मदीले बनि रहे, भूलि जात सब भान।
राउर मिथिला या अवध, कहाँ वसहिं नहिं जान॥२६९॥

श्री अम्बा जी व श्रीमान् दाऊ जी आपके प्रेम में मतवाले हो गये हैं, उन्हें सभी प्रकार की स्मृति भूल गयी है, आप श्री मिथिलापुरी में अथवा श्री अयोध्यापुरी, कहाँ निवास कर रहे हैं उन्हे यह ज्ञान भी नहीं रह गया।

सुनत राम प्रेमातुर होई। बोले वचन सुखद रस मोई॥
कबहुँ वियोग न उनसो मोरा। यह महँ संशय अहै न थोरा॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को सुनते ही श्री राम जी महाराज प्रेम में आतुर हो सुखदायी व रस सने हुए वचन बोले– अम्बा श्री सुनयना जी व श्रीमान् दाऊ जी से मेरा कभी भी वियोग नही है, इसमें किंचित भी संदेह नहीं है।

छिनहुँ अदृश्य न तिनते होऊँ। हैहुँ सदा निज अँखियन जोऊँ॥
सुनत कुँअर सुख भरे अतूला। सिद्धि पत्रिका दिय रस मूला॥

मैं एक क्षण के लिए भी उनसे अदर्शित नहीं होता तथा सदैव अपनी आँखों से मैं उन्हें देखता रहता हूँ। श्री राम जी महाराज की अप्रतिम वाणी को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अतुलनीय सुख से आपूरित हो गये। अनन्तर उन्होने रस स्वरूपा श्री सिद्धिकुँअरि जी की भिजवाई हुई पत्रिका श्री राम जी महाराज को दिये–––

बाँचत राम नयन भरि वारी। प्रीति परम नहिं सके सम्हारी॥
प्रेम विवश सब सुधि बिसराई। गिरे पलँग लिय कुँअर उठाई॥

———जिसे नेत्रों में पढ़ते हुए प्रेमाश्रु परिपूर्ण हो श्री राम जी महाराज उनके प्रति अपनी परम प्रीति को न सम्हाल सके तथा प्रेम में डूबे हुए अपनी सुधि–बुधि भूलकर पलँग में गिर पड़े तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उन्हें उठा लिया।

धरे अंक सियवर सिर प्यारा । पोछत प्रिय नयनन जल धारा ॥
चेत कराय कुँअर सुख पाई । बोले वचन प्रेम रस छाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सीताकान्त रघुनन्दन श्री राम जी महाराज के प्रिय शीश को अपनी गोद में रखे हुए उनके प्रिय नेत्रों से प्रवाहित आँसुओं की धारा का प्रोच्छण करने लगे। इस प्रकार श्री राम जी महाराज को चैतन्य कराकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुख प्राप्त कर प्रेम रससिक्त बचन बोले–

दो०–प्रीति रीति तुम सों प्रभू, और न जानन हार ।
जन की प्रेम सुडोरि महँ, रहत बँधे रसवार ॥२७०॥

हे प्रभु! आपके समान प्रीति की पद्धति को जानने वाला और कोई नहीं है, आप तो रस स्वरूप होते हुये भी अपने भक्तों की सुन्दर प्रेम डोरी में सदैव बँधे रहते हैं।

राम कहा सुनु सखा पियारे । मिथिला बिसरत नाहिं बिसारे ॥
सिद्धि कुँअरि किमि जाय बिसारी । प्रीति रीति जेहिं जगते न्यारी ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! के वचनों को श्रवण कर श्री राम जी महाराज ने कहा– हे प्रिय सखे! सुनिये, श्री मिथिलापुरी तो मुझे भुलाने पर भी नहीं भूलती फिर श्री सिद्धि कुँअरि जी किस प्रकार भुलाई जा सकती हैं जिनकी प्रीति व रीति सम्पूर्ण संसार से भिन्न है।

मन चित बुधि मोहिं अरपन कीनी । ममाकार बनि रही प्रवीनी ॥
आपुहिं खोय मोहि नित सेवी । विधिहुँ न जानैं तेहि कर भेवी ॥

परम प्रवीणा श्री सिद्धिकुँअरि जी ने अपना मन, चित्त व बुद्धि मुझे अर्पण कर दिया है तथा वे मेरे आकार की बन गयी हैं, वे अपना अस्तित्व मिटाकर नित्य मेरी सेवा परायण रहती हैं। मेरे प्रति उनके प्रेम–रहस्य को तो श्री ब्रह्मा जी भी नहीं जान सकते।

प्रेम मूर्ति सब विधि तव बामा । मोहि लगि त्यागि दई मन कामा ॥
ज्ञान विराग योग की अयना । रिधि सिधि दासी जासु सचयना ॥

आपकी वल्लभा श्री सिद्धिकुँअरि जी! सभी प्रकार से प्रेम की साक्षात विग्रहा हैं जिन्होंने मेरे लिये अपने मन की समस्त कामनाओं का परित्याग कर दिया है। वे ज्ञान, वैराग्य तथा योग की सदन है, रिद्धियाँ व सिद्धियाँ आनन्द पूर्वक जिनकी दासी बनी हुई हैं।

सबते करि विराग बुधि वारी । सब विधि मम अनुराग सम्हारी ॥
यह अभिलाष सदा उर धारूँ । सरहज सिधि नित मिलै सुखारूँ ॥

उन परम बुद्धिमती श्री सिद्धि कुँअरि जी ने सभी जागतिक कर्मो से वैराग्य लेकर सभी प्रकार से मेरे प्रेम को ही सम्हाल रखा है। अतः मैं अपने हृदय में सदैव यही इच्छा धारण किये रहता हूँ कि–

मुझे सरहज रूप में सुखदायी श्री सिद्धि कुँअरि जी ही नित्य प्राप्त हों।

दो०– सिद्धि कुँअरि ते उऋण नहिं, प्रीति सकौं नहिं तौल ।
एक बिन्दु प्रेमाश्रु महँ, लीन्ही मोहिं कहँ मोल ॥२७१॥

मैं श्री सिद्धि कुँअरि जी से कभी भी उ;ण नहीं हो सकता हूँ व मेरे प्रति उनकी कितनी प्रीति है उसको मैं नाप भी नहीं सकता क्योंकि उन्होंने अपने प्रेमाश्रुओं के एक बूँद से ही मुझे क्रय कर लिया है–––

शेष बिन्दु दिन रातिहिं केरे । चलत रहत जो प्रेम के प्रेरे ॥
तिनहिं देन हित नहिं कछु पासा । ताते ऋणिया बनेउँ श्री वासा ॥

–––पुनः मेरे प्रेम के कारण उनके नेत्रों से दिन–रात प्रवाहित होने वाले उन बचे हुये अश्रु बिन्दुओं के बदले में उन्हें देने के लिए मेरे समीप कुछ भी नहीं है इसलिए मैं लक्ष्मी–निवास (लक्ष्मीकान्त) होते हुए भी उनका ऋणी बना हुआ हूँ।

सब प्रकार मै सिद्धिहिं केरा । सुख अरु चाह तासु निज हेरा ॥
आपन आत्मा मैं गिन ताही । राखौ मनहिं सदा तेहिं पाहीं ॥

अतः मैं सभी प्रकार से अपनी सरहज श्री सिद्धि कुँअरि जी का हूँ तथा उनके सुख व इच्छा को अपना सुख व इच्छा समझता हूँ। उन्हें मैं अपनी आत्मा मानकर अपने मन को सदैव उनके समीप रखता हूँ।

सिद्धि कुँअरि लगि आपुहिं खोई । रहौं सदा शुचि प्रीति समोई ॥
इतना कहत प्रेम रस पागे । विरह नयन जल बरषन लागे ॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी के लिए मैं अपने अस्तित्व को मिटाकर सदैव उनकी पवित्र प्रीति में सना रहता हूँ। इतना कहते ही श्री राम जी महाराज प्रेमानन्द में डूब गये तथा श्री सिद्धि कुँअरि जी के वियोगजन्य दुख के कारण उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बरसने लगे।

बहुरि धीर धरि कुँअरहिं बोले । अमिय बचन मृदु रसमय घोले ॥
सिद्धि सहित तुम सुनहु कुमारा । बसहु सदा मम हृदय अगारा ॥

पुनः धैर्य धारण कर प्रभु श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी से कोमल, रससिक्त व अमृत बचन बोले– हे कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, श्री सिद्धि कुँअरि जी के सहित आप मेरे हृदय के भवन में नित्य ही निवास करते हैं।

दो०– वस्त्र उघारे राम द्रुत, अपने हिरदय केर ।
सिद्धि सहित निज मूर्ति तहँ, कुँअर लखेउ दृग हेर ॥२७२॥

ऐसा कहकर श्री राम जी महाराज ने शीघ्र ही अपने हृदय के वस्त्र खोल दिये तब वहाँ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने नेत्रों से श्री सिद्धि कुँअरि जी के सहित अपनी मूर्ति का दर्शन किया।

राम कृपा निज ओर निहारी । अमित अलभ्य सदा सुखकारी ॥
प्रेम विकल जल्पत निमि वारा । प्राण सखे हा कृपा अगारा ॥

श्री राम जी महाराज की असीमित दुर्लभ तथा सदैव सुखकारी कृपा को अपनी ओर देखकर निमिनन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम विकल हो गये व हा प्राण सखे! हे कृपा के आगार! कहकर विलखने लगे।

नाथ कृपा कर एकहु अंशा। सेवा प्रीति कियो नहिं भ्रंशा ॥
राउर नेह तबहुँ रह भारी। हौं अति अधम कृतघ्न अनारी ॥

हे नाथ! आपकी कृपा के एक अंश के योग्य भी यह पतित जीव, आपकी सेवा व प्रीति नहीं कर सका, यद्यपि मैं अत्यन्त ही नीच, कृतघ्नी व आर्य गुणों से सर्वथा रहित हूँ तथापि आपका अत्यधिक स्नेह मुझ पर रहता है।———

लाज न लागत नेह विलोकी। फटत हृदय नहिं मोर सशोकी ॥
राम बुझाय कहे बहु भाँती। आप प्रेम किमि कहौं सिराती ॥

———हे मेरे प्यारे! अपने प्रति आपके प्रेम को देखकर भी मुझे लज्जा नही लगती तथा विरह दुख से दुखी होकर मेरा हृदय फट भी नहीं जाता। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की आर्त–वाणी श्रवणकर श्री राम जी महाराज ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया कि– हे कुमार! आपके अवर्णनीय प्रेम का बखान मैं किस प्रकार करूँ।

राउर हृदय मोर नित वासा। मोरे हृदय तुम्हार प्रकाशा ॥
कुँअर हृदय लखि प्रभु कह गाई। देखहु मोर मूर्ति इत भाई ॥
लक्ष्मीनिधि प्रभु मूरति जोही। भयो प्रसन्न गयो मन मोही ॥

आपके हृदय में तो मेरा नित्य निवास है तथा मेरे हृदय में भी आपका ही प्रकाश प्रकाशित हो रहा है। अनन्तर प्रभु श्री राम जी महाराज, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय को देखकर बोले– हे भाई! आप यहाँ अपने हृदय में मेरी मूर्ति का दर्शन कीजिये। श्री राम जी महाराज के वचन श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने हृदय में प्रभु श्री राम जी महाराज की मूर्ति देखकर प्रसन्न हो गये तथा उनका मन मुग्ध हो गया।

दो०–श्याल भाम मन मोद भरि, एकहिं एक निहार ।
भये मगन मन क्रम वचन, आनन्द सिन्धु मझार ॥२७३॥

इस प्रकार दोनों (श्याले–बहनोई) श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज आनन्दित मन एक दूसरे को देख–देखकर मन वचन व कर्म से आनन्द के सागर में डूब गये।

कह रघुवीर हमार तुम्हारा। नित्य सुखद संयोग उदारा ॥
रहत एक रस संशय नाहीं। कहौं त्रिसत्य कुँअर तुम पाहीं ॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने कहा कि–हे कुमार! आपसे मैं त्रिसत्य कह रहा हूँ कि– हमारा व आपका सुखदायी तथा उदार संयोग एकरस व नित्य है, इसमें किंचित भी सन्देह नहीं है।

लखहु अबहिं जस हम तुम दोई। रहैं मगन अमृत रस मोई ॥
कहतहिं सियवर के निमि प्यारा। देखेउ दृश्य अलौकिक सारा ॥

आप अभी देख लीजिए कि– हम व आप, दोनों जिस प्रकार प्रेमरस में समाहित हुए अमृत के सागर में मग्न रहते हैं। सीताकान्त श्री रघुनन्दन जू के ऐसा कहते ही निमिकुल प्यारे श्री लक्ष्मीनिधि जी ने एक अलौकिक व सार भरे दृश्य का दर्शन किया।

दिव्य धाम साकेतहिं भाहीं। बैठे कुँअर राम पुलकाहीं॥
दिय गलबाँह सोह अति दोऊ। प्रीति सने मन आनन्द मोऊ॥

उन्होने देखा कि– दिव्य धाम श्री साकेत में पुलकित शरीर स्वयं कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज परस्पर गले में बाहें डाले हुए, प्रेम प्रपूरित मन व आनन्द मग्न हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं।

कहुँ विहरत मिथिलापुर पेखे। संग सखा रस रँगे विशेषे॥
बैठे सिद्धि सदन कहुँ राजैं। सेवत सखिगण चहुँ दिशि भ्राजै॥

कभी उन्होने स्वयं को श्री मिथिलापुरी में सखा गणों के साथ विशेष प्रेम रंग में रँगे हुए विहार करते देखा तो कभी स्वयं को कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सिद्धिसदन में चतुर्दिक सखियों से सेवित विराजे हुए दर्शन किया।

दो०–मातु सुनैना ढिंग कबहुँ, कहुँ मिथिलेश्वर गोद।
आप सहित देखे कुँअर, रामहिं अति मन मोद॥२७४॥

कभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अम्बा श्री सुनैना जी के समीप तो कभी श्री मिथिलेश जी महाराज की गोद में स्वयं के सहित अत्यन्त मुदित मन हो श्री राम जी महाराज को विराजे हुए दर्शन किया।

विविध भाँति मिथिला पुर लीला। निज सह देखी कुँअर सुशीला॥
तैसहिं देखे अवध विहारा। विविध भाँति रघुवर सँग सारा॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री मिथिलापुरी की अपने साथ घटित हुई विभिन्न प्रकार की सुन्दर लीलाओं का दर्शन किया, उसी प्रकार रघुनन्दन श्री राम जी महाराज के साथ अपने प्रिय श्याल लक्ष्मीनिधि जी (स्वयं) के श्री अयोध्यापुरी में हुये विभिन्न प्रकार के सभी विहारों का, उन्होंने दर्शन किया।

सीय सहित रघुनन्दन झाँकी। देखी कुँअर प्रीति रस छाकी॥
रस रहस्य रसिकेश्वर लीला। देखी विपिन प्रमोद रँगीला॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सीता जी सहित रघुनन्दन श्री रामजी महाराज की प्रेम रस से परिप्लुत झाँकी का दर्शन किया। प्रमोदवन में हुई रसिकेश्वर श्री राम जी महाराज की प्रेमरस व रहस्य से परिपूर्ण रसमयी सुखदायी लीला का भी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने दर्शन किया।

भगिनि कृपा अरु प्यार महाना। लखे प्रेम युत सुखद सुजाना॥
मन बुधि ऊपर राम चरित्रा। अति पुनीत निज सहित घनित्रा॥

पुनः परम गुणवान श्री लक्ष्मीनिधि जी ने प्रेम प्रपूरित हो अपनी बहन श्री सीता जी की महान

कृपा व सुखदायी प्यार का दर्शन किया। मन व वाणी से परे व अत्यन्त पवित्र श्री राम जी महाराज के सघन चरित्रों को स्वयं सहित उन्होने दर्शन किया।

देखा सुना कबहुँ नहिं जोई । लखेव कुमार चरित प्रिय सोई ॥
आप सहित सिय रामहिं देखी । सत चित आनन्द रूप विशेषी ॥
इक के तीन तीन इक होई । अक्षर धाम विराजत सोई ॥

जो चरित्र न कभी देखा गया और न ही सुना गया, कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने उस प्रिय चरित्र का भी दर्शन किया। अपने सहित कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने, श्री सीताराम जी को सत, चिद व आनन्दमय स्वरूप मे दर्शन किया, जो एक के तीन व तीन के एक बने हुए अक्षर धाम दिव्य श्री साकेत में विराज रहे थे।

दो०–सुन्दर सागर गुणन के, रूप विमोहन हार ।
भगिनि भाम आपुहिं सहित, देखे जनक कुमार ॥२७५॥

जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वयं सहित, गुणों के सागर, परम विमोहन कारी स्वरूप वाले सुशोभन बहन व बहनोई श्री सीताराम जी महाराज के दिव्य दर्शन किये।

भइ परतीति अनन्तहुँ काला । गये न बिछुरिहिं प्रभु ते श्याला ॥
सदा राम सिय सेवा दरसन । पइहौं नित नित आनन्द परसन ॥

तब उन दिव्य दृश्यों के दर्शन कर उन्हें प्रतीति हो गयी कि अनन्त समय व्यतीत हो जाने पर भी प्रभु श्री राम जी महाराज से उनका यह श्याल लक्ष्मीनिधि अलग नहीं होगा एवं नित्य–प्रति आनन्द प्रपूरित हो श्री सीताराम जी की सेवा व दर्शन प्राप्त करेगा।

लखत लखत तहँ जनक किशोरा ।प्रेम विवश अति भयो विभोरा ॥
बिसरि देह सुधि रघुवर गोदी । परेउ लुढ़कि मन भरो प्रमोदी ॥

इस प्रकार जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी दिव्य दृश्यों के दर्शन करते–करते प्रेमाधीन हो अत्यधिक विभोर हो गये और आनन्दित मन शरीर की स्मृति भूल, श्री राम जी महाराज की गोद में लुढ़क कर गिर गये।

कछुक काल महँ चेतहिं पाई । दृश्य सोइ सब गयो बिलाई ॥
कृपा विलोकि प्रेम वश वीरा । परेउ चरण कहि पाहि अधीरा ॥

कुछ समय में उन्होने चैतन्यता प्राप्त की और उनके चित्त से वे सभी दृश्य विलुप्त हो गये तब अपने ऊपर श्री राम जी महाराज की कृपा को देखकर प्रेम के वशीभूत हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अधीर हो 'पाहि'–पाहि' कहते हुए उनके चरणों में गिर पड़े।

राम उठाय हृदय निज लाई । कहे कुँअर त्यागहु विकलाई ॥
लखे दृश्य जो अहैं त्रिसत्या । हम तुम रहैं एक सँग नित्या ॥

तदुपरान्त श्री राम जी महाराज ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और बोले– हे कुँअर श्री

लक्ष्मीनिधि जी! आप विकलता को त्याग दें, आपने जिन दृश्यों का दर्शन किया हैं वे त्रिवाचा सत्य हैं, हम और आप नित्य एक साथ रहते हैं।

दो०—अस विचारि युवराज सुनु, संशय शोच बिहाय ।
लीला भूमिहिं आय के, लीला करैं सुहाय ॥२७६॥

ऐसा विचार कर हे युवराज कुँअर! सुनिये, आप सभी प्रकार के संदेह व चिन्ताओं को छोड़कर इस लीला भूमि में आकर अपनी सुहावनी लीला सम्पादित करें।

राम बचन सुनि गुनि निज भागा । कुँअर भरेउ हिय अति अनुरागा ॥
सब विधि दोउ प्रेम सुख साने । करत बात मन मोद महाने ॥

श्री राम जी महाराज के वचनों को सुनकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपना सौभाग्य समझ हृदय में अत्यानुराग से भर गये। इस प्रकार श्याल–भाम दोनों सभी प्रकार से प्रेमानन्द में सने हुए व अत्यानन्द प्रपूरित मन से बाते करने लगे।

बहुरि कुँअर लै राम गोसाईं । ब्यारू कीन्ह मातु गृह जाई ॥
आये रसिक दोउ पुनि तहँवा । सुन्दर सदन वास रह जहँवा ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को लेकर श्री राम जी महाराज श्री अम्बा जी के भवन जाकर व्यारू भोग प्राप्त किये। तदुपरान्त वे दोनों रसिक वहाँ आये जहाँ सुन्दर सदन में उनका निवास था।

वरणत प्रीति रीति शुभ बाती । श्याल भाम मन मोदहिं माती ॥
कुँअर कहे प्रभु सखा पियारे । जाहिं शयन हित निजहिं अगारे ॥

श्याले–बहनोई श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज शुभ प्रीति व रीति पूर्वक मंगलकारी वार्ता करते हुये मन में आनन्द मग्न हो रहे थे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा– हे मेरे स्वामी व प्रिय सखे, रघुनन्दन जू! अब आप शयन हेतु अपने भवन पधारें।

मृदु मुसकाय राम तब बोले । सुखद मनोहर वचन अमोले ॥
शयन कुञ्ज तव हृदय हमारा । जाँय कहाँ अब और अगारा ॥

तब श्री राम जी महाराज मधुर–मधुर मुस्कराते हुए सुखदायी, मनोहारी व अनमोल वचन बोले– हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! हमारा 'शयन कुञ्ज' तो आपका हृदय है, अतः अन्य भवन में अब हम कहाँ जायें।

दो०—तुमहि त्यागि हे कुँअर, प्रिय पद न चलत सत मोर ।
ताते जावन अनत कहँ, मोहिं न कहैं बरजोर ॥२७७॥

हे प्रियवर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! सत्य ही आपको त्याग कर मेरे पैर आगे नही बढ़ते अतएव आप हठपूर्वक मुझे अन्यत्र जाने के लिए मत कहिये।–––

तुमहिं पाय मैं सब कछु पायो । ताते सरवस मनहिं भुलायो ॥
कोटिन चहै कहौ तुम लालन । मैं न जाब अब औरहिं चालन ॥

–––आपको पाकर मैंने सर्वस्व पा लिया है इसलिए सभी कुछ मन से भुलाये रहता हूँ। हे लाल लक्ष्मीनिधि जी! आप चाहे करोड़ों बार कहें फिर भी मैं दूसरे स्थान में अब नहीं जाऊँगा।

जोपै चहहु कुँअर मोहिं छोड़न। मैं नहिं छोड़ौ जतन करोड़न ॥
यथा सूर्य नहिं किरणन छोड़ैं। सत सत बात तथा हम ओड़ैं ॥

हे कुँअर! यदि आप मुझे छोड़ना भी चाहें तो करोड़ों उपाय करने पर भी मैं आपको नहीं छोड़ूँगा। मैं इस सत्य बात को प्रकाशित कर रहा हूँ कि– जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों को कभी भी नहीं छोड़ता उसी प्रकार मैं आपको ग्रहण किये रहूँगा। ।

अस कहि राम कुँअर पौढ़ाई। आपुहुँ पौढ़े सेज सुहाई ॥
सो सुख काह कहे कवि कोई। जानहिं श्याल भाम रस सोई ॥

ऐसा कह कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को सुन्दर पर्यक में लिटाकर श्री राम जी महाराज स्वयं भी उसी में लेट गये। उस सुख को कोई कवि क्या कह सकता है उसे तो श्याल–भाम रस में रसे हुये श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज ही जानते हैं।

बाहर प्रभु यश गावहिं दासी। कोकिल बैन मधुर मधु भाषी ॥
मधुर मधुर बाजन धुनि होई। सुनत कुँअर सियवर उर गोई ॥

कक्ष के बाहर मधुभाषिणी, कोकिल बयनी दासियाँ मधुर–मधुर स्वर से भगवद्यश का गायन कर रही थीं तथा मधुर–मधुर वाद्यों की ध्वनि हो रही थी जिसे श्रवण करते–करते अपने प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी को सीताकान्त श्री राम जी महाराज ने हृदय में कसकर लिपटा लिया।

दो०–प्रेम पगे दोउ लाल वर, सुनत सुखद शुचि गान।
तिरसठ सम रस महँ पगे, लगे अधिक अलसान ॥२७८॥

इस प्रकार प्रेम में पगे हुए दोनों सुन्दर राजकुमार पवित्र व सुखदायी गायन सुनते हुए तिरसठ (६३) के अंक के समान (पूरी तरह से अभिमुख) बने, रस में समाये हुए अत्यधिक अलसाने लगे।

एक होय श्याला बहनोई। आनन्द सिन्धु गये पुनि सोई ॥
सो सुख शयन सुनहु हनुमाना। विषयी पामर कबहुँ न जाना ॥

इस प्रकार श्याल–भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज एक होकर आनन्द के सागर में शयन कर गये। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे हनुमान जी! सुनिये, शयन के उस सुख को विषयी व संसारासक्त जीव कभी नहीं जान सकते।

सद्गुरु शरण बसै बहु काला। सीखै वैष्णव धर्म विशाला ॥
बनि नित अमन कामना त्यागी। मोक्षहुँ ते पुनि होय विरागी ॥

जब जीव श्री सद्गुरुदेव भगवान की शरण में बहुत समय तक निवास करता है और महान वैष्णव धर्म की शिक्षा ग्रहण करता है पुनः नित्य प्रति अमन होकर कामनाओं का त्याग किये रहता है यहाँ तक कि मोक्ष से भी वैरागी हो जाता है।

परस्वरूप निज रूपहिं केरा। करै दरश अपरोक्ष ह्हेरा॥
जीव ईश औपाधिक दूरी। दूरि करै करि प्रेम सुपूरी॥

तदुपरान्त वह स्वस्वरूप व परस्वरूप का अपने ह्रदय में अपरोक्ष रूप से दर्शन कर ईश्वर व जीव के बीच की सम्पूर्ण औपाधिक दूरी को सुन्दर प्रेम करते हुये दूर कर लेता है।

बनै रसिक रस रूप सुजाना। भूमा सुख तब लहै अमाना॥
अकथ अलौकिक मन के पारा। सो सुख गंध न जगत मझारा॥
प्रेम विवश रघुनाथ गोसाईं। वरण करैं जेहि हठि बरियाई॥

इस प्रकार जब वह भगवद्रस का परम रसिक बन जाता है तभी वह अमानी व सुजान भक्त उस भौमा सुख को प्राप्त करता है जो अकथनीय, अलौकिक व मन के परे है, उस सुख की तो गंध भी संसार के मध्य में नहीं है। पुनः श्री राम जी महाराज, प्रेम के वशीभूत हो जिसका हठपूर्वक वरण कर लेते हैं।

दो०—अमृत बनि अमृत चखै, आतम रस सुख सार।
युगल लाड़िली लाल को, पावै प्यार पसार॥२७९॥

वही जीव अमृत स्वरूप बन कर उस अमृत का जो सुखों का सारभूत आत्म रस है, स्वाद प्राप्त करता है तथा युगल लाड़िली लाल श्री सीताराम जी के प्रेम प्रसार को प्राप्त करता है।

श्याल भाम कर सुखमय शयना। विधि हरि हर कोउ जानि सकैना॥
मंगलमय जब भयो प्रभाता। नौबत बाजन लगी सुहाता॥

अन्यथा श्याल—भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज के सुखमय शयन सुख को श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी आदि कोई भी नहीं जान सकते। जब मंगलमयी प्रातः बेला आयी और सुन्दर नौबत बजने लगी।———

दासी वीणा वेणु बजातीं। डफ मृदंग धुनि झाँझ सुहातीं॥
रागहिं राग भैरवी सोही। सुनत जगे दोउ लाल विमोही॥

———दासियाँ वीणा व वेणु बजाने लगी, सुन्दर डफ, मृदंग व झाँझ की ध्वनि सुनाई देने लगी थी तथा सुन्दर भैरवी राग से गायन कर करने लगीं। तब उन मधुर स्वरों को श्रवण कर दोनों राजकुमार मुग्ध से हुए जाग गये।———

इक एकहिं निज निज उर मेली। प्रीति बढ़ति छिन छिनहिं नवेली॥
बोले कुँअर सुनहिं प्रिय प्यारे। रात न होहि न नींद अधारे॥

———पुनः वे दोनों एक दूसरे को अपने ह्रदय से लगा लिये। उनके ह्रदय में परस्पर प्रतिक्षण नवीन प्रीति वृद्धि को प्राप्त कर रही थी। तदनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी बोले! हे प्रिय, प्यारे व आत्माधार श्री रघुनन्दन जू! सुनिये, यदि रात्रि व नींद नहीं होती तो———

निशि दिन निरखत रहत सुखारी । जागे अस रुचि होत हमारी ॥
राम कहेउ सुनु सखा प्रवीना । नयन पलक गिरि मोहि दुखदीना ॥

———रात्रि दिन मैं सभी समय सुखपूर्वक आपका दर्शन करता रहता, ऐसी इच्छा आज जागने पर हो रही है। यह सुनकर श्री राम जी महाराज ने कहा– हे मेरे सुजान, सखा श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, नेत्रों की पलकें गिर–गिरकर मुझे अत्यधिक दुख प्रदान करती रहती हैं।———

सो०–पलक गिरत महँ लाल, होवत दर्शन रोध तव ।
होवहुँ अतिहिं विहाल, बिना लखे मुख कंज के ॥२८०॥

———क्योंकि हे लालन! पलकों के गिर जाने पर आपके दर्शन में ब्यवधान आ जाता है इसलिए मैं आपके मुख कमल के अदर्शन से अत्यधिक विह्वल हो जाता हूँ।

यहि विधि दोउ प्रेम रस भीने। उठे सबहिं दर्शन प्रिय दीने ॥
नित्य कर्म करि नेम निबाही । गये भूप पहँ अतिहि उछाहीं ॥

इस प्रकार प्रेम रस में ओत–प्रोत दोनों राज कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज उठे और सभी परिकरों को अपने प्रिय दर्शन दिये। पुनः नित्य कर्मो को सम्पादित कर नियमों का निर्वाह किये तथा अत्यन्त आनन्द पूर्वक चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के समीप गये।

करत दण्डवत दूनहुँ काहीं । लीन्हे भूप लाय उर माहीं ॥
कहि मृदु बैन प्यार बहु कीन्हें । सोहहिं भूप गोद दोउ लीन्हें ॥

दण्डवत करते हुए दोनों राज कुमारों को चक्रवर्ती श्री दशरथजी महाराज ने हृदय से लगा लिया। पुनः कोमल वाणी का विनियोग करते हुऐ श्री महाराज दोनो राज कुमारों को अत्यधिक प्यार किये तथा उन्हे अपनी गोद मे बिठाकर सुशोभित होने लगे।

बहुरि कुँअर करि चरण प्रणामा । बोले वचन सुखद अभिरामा ॥
नाथ हृदय मम इक अभिलाषा । करौं चरण महँ ताहि प्रकाशा ॥

तदनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के चरणों में प्रणिपात कर सुखदायी व सुन्दर वचन बोले– हे नाथ! मेरे हृदय में एक इच्छा है, उसे श्री चरणों में प्रकाशित कर रहा हूँ।

अवधपुरी यावत नर नारी । वर्ण आश्रम बिना बिचारी ॥
भूषण वसन अनेक प्रकारा । पावहिं सब पहिनाव सुखारा ॥

श्री अयोध्यापुरी में जितने भी पुरुष–स्त्री हैं, वे सभी वर्ण व आश्रम का विचार किये बिना अनेक प्रकार के सुखकारी आभूषण व वस्त्र आदि परिधान प्राप्त करें।———

दो०–निज निज रुचि अनुहार सब, औरहु वस्तु अनेक ।
लेहिं कृपा करि सुखमयी, पुर महँ बचै न एक ॥२८१॥

———वे अयोध्यापुर वासी अपनी–अपनी इच्छानुसार, मुझ पर कृपा करते हुये और भी अनेक

सुखदायी सामग्री ग्रहण करे, पुरी में एक व्यक्ति भी शेष न बचने पाये जिसने भेंट प्राप्त न की हो।

सीय राम मुद मंगल हेता। धेनु सपाद कोटि शुभ सेता ॥
पावहिं सविधि विप्र समुदाई। यह हुलास मन रहेव समाई ॥

श्री सीताराम जी के आनन्द व मंगल के लिए एक करोड़ सवत्सा (बछड़ो सहित) धवला गायें ब्राह्मण समुदाय विधिपूर्वक प्राप्त करें। यही इच्छा मेरे मन में समायी हुई है।

भोजन ललित अनेक प्रकारा । सकल पुरी पावैं करि प्यारा ॥
दाऊ रुचि अस रही सुहाई। ताते विनती कीन्ह ढिठाई ॥

सम्पूर्ण पुरी निवासी प्रेम पूर्वक सुन्दर व अनेक प्रकार के भोजन प्राप्त करें, ऐसी हमारे श्रीमान् दाऊ जी की सुन्दर इच्छा थी। इसलिए मैंने आपसे धृष्टता पूर्वक निवेदन किया है।

दूसर आस एक मन माहीं । अबहिं जाउँ गुरु दर्शन काहीं ॥
भूप सुनत सुठि हिय हरषाने । बोले वचन सुखद रस साने ॥

हे श्री महाराज! मेरे मन में दूसरी एक अभिलाषा और है कि– सम्प्रति मैं गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी के दर्शन के लिए जाऊँ। महाराज श्री दशरथ जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की विनय सुनते ही सुन्दर हृदय में हर्ष से भर गये व रस से सने हुए सुखदायी वचन बोले–

जनकहिं अस उदारता फाबी। पूजहिं सब मन काम सुभावी ॥
तुरतहिं मंत्रिन आयसु दीन्हा । कुँअर रुची चह पूरण कीन्हा ॥

श्री मिथिलेश जी महाराज को ही ऐसी उदारता शोभा देती है। उनकी सभी मनोभिलाषायें स्वाभाविक ही पूर्ण होंगी। ऐसा कहकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने मंत्रियों को आज्ञा दी कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की इच्छा पूर्ण करना चाहिए।

दो०–रामहिं कह्यो सप्रीति पुनि, गुरु बशिष्ठ शुभ वास ।
कुँअरहिं जाय लिवाय द्रुत, पूर करहु प्रिय आस ॥२८२॥

पुनः उन्होंने प्रेमपूर्वक श्री राम जी महाराज से कहा कि– हे श्री राम भद्र जी! रघुकुल गुरुदेव श्री वशिष्ठ जी के शुभ आश्रम में शीघ्र ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को ले जाकर इनकी प्रिय इच्छा पूर्ण कीजिये।

सुनि पितु वचन राम शिर नाई। गुरु गृह चले सुश्याल लिवाई ॥
कुँअर बन्धु प्रभु भ्रात सखा सब। संग चले हिय हर्ष किये नव ॥

श्रीमान् पिता जी के वचनों को श्रवण कर, शीश झुका प्रणाम कर श्री राम जी महाराज अपने सुन्दर श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी को लेकर गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी के आश्रम चले। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व प्रभु श्री रामजी महाराज के भ्रातृ व सखागण हृदय में नवीन हर्ष धारण किये हुए साथ–साथ चल रहे थे।

देख्यो आश्रम जबहिं कुमारा। किय प्रणाम मन मोद अपारा ॥
पहुँचे द्वार देश अतुराई। एक शिष्य सों खबरि जनाई ॥

कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने जैसे ही श्री गुरु–आश्रम का दर्शन किया वैसे ही मन में असीम आनन्द से भरकर उसे प्रणाम किया तथा आतुरता पूर्वक दरवाजे पर पहुँच एक शिष्य से समाचार भिजवाया।

आयसु पाय कुँअर सह रामा । कीन्ह प्रवेश सहज सुखधामा ॥
अपर सूर्य सम आसन भ्राजे । तेज रूप सित जटा विराजे ॥

अनन्तर आज्ञा प्राप्त कर सुखों के धाम श्री राम जी महाराज सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सहज ही श्री गुरु–आश्रम में प्रवेश किये। वहाँ दूसरे सूर्य के समान तेज स्वरूप श्वेत जटाओं से युक्त गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी आसन में विराजे हुए थे।

देखि गुरुहिं मोदे मन भारी । करत दण्डवत सुधिहिं बिसारी ॥
लखि बशिष्ठ नययन जल छाई । दोउ कहँ लीन्हे द्रुतहिं उठाई ॥
हिय छपकाय युगल सुकुमारे । नयन नीर निकसत शिर डारे ॥

गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी को देखकर मन में अत्यधिक आनन्दित हो दण्डवत करते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी सम्पूर्ण स्मृति भूल गये। उन्हें दण्डवत करते देखकर श्री बशिष्ठ जी महाराज के नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये तथा उन्होंने दोनों राजकुमारों श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को शीघ्रता पूर्वक उठा लिया व अपने हृदय से लगा लिया उस समय उनके नेत्रों से निकलते हुए प्रेमाश्रु युगल कुमारों के शीश में गिरकर उनका अभिषेक सा करने लगे।

दो०–शीश सूँघि मन मोद भरि, कीन्हें बहु विधि प्यार ।
मनहुँ लवाई गाय प्रिय, चाटति शिशुहिं हुँकार ॥२८३॥

गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी नें आनन्दित मन युगल नृपति कुमारों का शिरोघ्राण कर विविध प्रकार से ऐसे प्यार किया मानों सद्यः प्रसूता गौ अपने प्रिय बछड़े को हुँकार भरती हुई चाट रही हो।

छं०– जनु धेनु प्यारति बाल निज, पुनि पुनि हुँकरि सुख छाय के ।
लखि देव वरषत पुष्प बहु, जय जयति बोलहिं गाय के ॥
आचार धनि धनि जग अहैं, बनि पुरुषकार स्वरूप जो ।
निज ज्ञान जीवहिं देत वर, अरु ईश स्ववसहिं करत जो ॥

गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी युगल नरपति कुमारों को हृदय से लगाये हुए उसी प्रकार प्यार कर रहे थे जैसे गाय अपने बछड़े को बार–बार हुँकार भरती हुई सुखपूर्वक प्यार करती हैं। यह देखकर देवता पुष्पों की विपुल वर्षा करते हुए सस्वर जय नाद कर रहे हैं कि– संसार में वे आचार्य धन्यातिधन्य हैं जो पुरुषकार स्वरूप बनकर अपना वह श्रेष्ठ ज्ञान, जो ईश्वर को वशीभूत कर देने वाला है, जीवों को प्रदान कर देते हैं।

युग बीच राजत प्रेम भरि, देवहिं दुहुन नित भाव हैं ।
जगि नित्य दूनहु जात मिलि, आनँद छके करि चाव हैं ॥

इक इक बिछुरे काल बहु, गुरुदेव दोउन हित किया ।
करि जीव ब्रह्महिं प्रेममय, हर्षण लगाये निज हिया ॥

आचार्य तो प्रेम में भरे हुए जीव व ब्रह्म दोनों के बीच विराजे रहते है तथा नित्य दोनों को भाव प्रदान करते रहते हैं, इस प्रकार जीव व ब्रह्म दोनों सचेत होकर नित्य आनन्द व उत्साह में छके हुए एक दूसरे से मिल जाते हैं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– अनन्त काल से एक दूसरे से बिछुड़े हुए जीव व ब्रह्म दोनों का परम हित आचार्य करते हैं और जीव व ब्रह्म दोनों को प्रेम स्वरूप बनाकर अपने हृदय से लगाये रहते हैं।

सो०–भरे प्रेम आनन्द, रहे दुहुन हिय लाइके ।
श्याल भाम सुख कन्द, भये सुखी लखि गुरु कृपा ॥२८४॥

गुरुदेव श्री वशिष्ठ जी दोनों राजकुमारों श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज को हृदय से लगाकर प्रेम व आनन्द में आपूरित हो गये तथा अपने ऊपर श्री गुरुदेव जी की अतिशय कृपा देखकर सुखों के मूल वे शाले–बहनोई दोनों अत्यन्त सुखी हुए।

बहुरि कुँअर दोउ आनँद छाई । गिरे अरुन्धति पद महँ जाई ॥
चरण धूरि निज नयनन लाये । प्रेम पुलकि भरि भाव सुहाये ॥

तदुपरान्त दोनों कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज आनन्द पूर्वक जाकर गुरुमाता श्री अरुन्धती जी के चरणों में गिर कर प्रणाम किये तथा प्रेम से पुलकित हो भाव में भरकर उनकी चरण धूल को अपने नेत्रों में लगा लिये।

ऋषि पतनी हिय सुख अति पाई । कर गहि युगल कुमार उठाई ॥
कर शिर परस सुआशिष दीनी । श्याम गौर दोउ रहहु सुखीनी ॥

उस समय गुरुमाता ऋषि पत्नी श्री अरुन्धती जी ने हृदय में अत्यन्त सुख प्राप्त किया तथा दोनों राजकुमारों को हाथ पकड़ कर उठा लिया। पुनः अपने कर कमल से उनके शिर का स्पर्श कर सुन्दर आशीर्वाद दिया कि– श्याम व गौर वर्ण वाले दोनों सुकुमार आप, सदैव सुखी रहो।

छिनछिन प्रीति अलौकिक तुम्हरे । बढ़े सदा सत बचननि हमरे ॥
सुनि आशिष दोउ भये सुखारे । रघुकुल निमिकुल सुन्दर वारे ॥

हमारे सत्य वचनों से प्रत्येक क्षण आप दोनों के हृदय में अलौकिक प्रेम सदैव वृद्धि को प्राप्त होता रहे। इस प्रकार रघुकुल व निमिकुल के दोनों सुन्दर सुकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज श्री गुरुमाता जी के आशीर्वचन सुनकर सुखी हुए।

तब व शिष्ठ प्रिय बचन उचारा। बैठहिं सिगरे राज कुमारा ॥
आपु बैठि सबहीं बैठाये। प्रेम मगन सुख सने सुभाये ॥
कछुक काल रस भरे स्वभाऊ। कोउ कछु कहै न सह मुनिराऊ ॥

तनदन्तर रघुकुल आचार्य श्री वशिष्ठ जी महाराज प्रिय वाणी से बोले– आप सभी राजकुमार

विराज जायें। पुनः स्वयं बैठकर सभी को बिठा, वे प्रेम मग्न हो स्वाभाविक ही सुख में डूब गये। कुछ समय तक सहज ही प्रेम रस से परिपूर्ण हो जाने के कारण मुनिराज श्री वशिष्ठ जी सहित कोई भी कुछ न कह सहा।

दो०—बहुरि धीर धरि प्रेम युत, ऋषिवर सुन्दर बोल ।
आज नयन इक साथ लखि, हर्षित करहिं किलोल ॥२८५॥

पुनः धैर्य धारण कर ऋषिवर श्री बशिष्ठ जी प्रेम पूर्वक सुन्दर वाणी से बोले– आज युगल राजकुमारों को एक साथ देख कर मेरे नेत्र हर्षित में भरकर तरंगायित हो रहे हैं।

श्याल भाम भलि सुन्दर जोरी । लोचन सुखद सनेहनि बोरी ॥
प्रेम उमगि उर जनक कुमारा । पानि जोरि शिर नाय सुखारा ॥

आप दोनो श्याल–भाम की सुन्दर जोड़ी अत्यधिक सुहावनी, नेत्र सुख प्रदायिनी तथा परस्पर प्रेम से ओत–प्रोत है। आचार्य देव के वचन श्रवण कर जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेमोच्छलित हृदय से सुख पूर्वक, हाथों को जोड़, शिर झुका, उन्हें प्रणाम किये तथा–––

परम विनीत भाव उर धारी। बोलेउ बचन दीन बनि भारी ॥
मम दाऊ तव चरण ललामा। पठये मोहिं सन अमित प्रणामा ॥

–––अत्यन्त विनय युक्त भाव हृदय में धारण कर अत्यधिक दीन हो मधुर वचन बोले– हे नाथ! हमारे श्रीमान् दाऊ जी ने आपके सुन्दर श्री चरण कमलों में मेरे द्वारा असीमित प्रणाम भिजवाये हैं।–––

मातहुँ बार बार शिर नाई । करी प्रणाम अनेक अमाई ॥
दर्शन प्यास तुम्हारि कृपाला । मम पितरन कहँ करति विहाला ॥

–––हमारी श्री अम्बा जी ने भी निश्छल हृदय हो बारम्बार शिर झुकाकर श्री चरणों में अनेक प्रणाम किये हैं। हे कृपालु, श्री गुरुदेव! आपके दर्शनों की प्यास हमारे पितृजनों को विह्वल बनाये रहती है।

हैं त्रिकाल दर्शी मुनि राऊ । मातु पिता हिय जानहिं भाऊ ॥
अस कहि बहुरि प्रेम रस पागी । बोले बचन चरण अनुरागी ॥

श्री मुनिराज जी तो स्वयं तीनों कालों के दृष्टा हैं, वे हमारी श्री अम्बा जी व श्री मान् दाऊ जी के हृदय के भावों को भली प्रकार जानते ही हैं। ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी पुनः प्रेमरस में डूबकर, गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी के चरणों में अनुराग प्रगट करते हुये बोले–

गोधन औरहु भेंट प्रकारा। पठये दाऊ बैन उचारा ॥
राउरि वस्तु रावरे चरणा । अरपित अहै मोर नहिं वरणा ॥

श्रीमान दाऊ जी ने गायें व अन्य भेंट की सामग्री यह कहकर भिजवायी है कि–हे नाथ! आपकी ये वस्तुयें आपके श्री चरण कमलों में समर्पित है, इनमें मेरा कुछ भी नही है।–––

दो०–याते स्वीकृत प्रभु करहिं, सरसत सदा सुनेह ।
आपन जानि न भूलिहैं, सरवस देह सगेह ॥२८६॥

–––अतः हे नाथ! आप इन्हें स्वीकार करें तथा सदैव आपका सुन्दर प्रेम मुझ पर बना रहे। हमें शरीर व भवन मैं व मेरे) सहित अपना समझते हुए कभी विस्मरण न कीजियेगा।

मुनि प्रसन्न सुनि भाव सुहावा । परम प्रेम हिय नयनन छावा ॥
पुनि करि कृपा अहं बिन जानी । लीन्ह भेंट सादर सुख सानी ॥

श्री जनक जी महाराज के सुन्दर भावों को श्रवण कर मुनिवर श्री बशिष्ठ जी अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उनके हृदय का अत्यधिक प्रेम नेत्रों में उमड़ आया। पुनः मुनिवर श्री बशिष्ठ जी ने कृपा पूर्वक, अहंकार विहीन जानकर, सुख समन्वित सभी भेंट को आदर सहित स्वीकार कर लिया।

सुनु हनुमान शिष्य वर धर्मा । आपन गिनै न कछु कृत कर्मा ॥
तन मन धन सरवस गुरु केरा । बनै अमानी सब विधि चेरा ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! सुनिये, श्रेष्ठ शिष्य का धर्म यही है कि– वह अपने द्वारा किये हुए कार्यों को अपना नहीं समझे तथा शरीर, मन व धन सभी कुछ आचार्य श्री का समझकर अमानी हो, सभी प्रकार से दासता स्वीकार किये रहे–––

जा दिन शरण गह्यो गुरु केरी । ता दिन अरपि दियो सब डेरी ॥
ताते आपन कछुक न मानै । मैं अरु मोर गुरुहिं कर जानै ॥

–––क्योंकि उसने जिस दिन श्री गुरुदेव जी की शरणागति ग्रहण की थी उसी दिन अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति उन्हें समर्पित कर दी थी। इसलिए शिष्य को चाहिये कि अब उसमें कुछ भी अपना न समझे, बल्कि मैं (स्वयं) और मेरा (अपना) सभी कुछ श्री गुरुदेव का जाने।–––

तन मन धन सों सेवा करई । अहं न लावै नहिं जर मरई ॥
आपन मानि द्रव्य की सेवा । करै पातकी अस गुनि लेवा ॥

–––वह शरीर, मन व धन से श्री गुरुदेव जी की सेवा करे परन्तु मन में किंचित भी अहंकार नहीं लाये नहीं तो वह त्रिताप की अग्नि से जलकर भस्म हो जाता है। यदि कोई शिष्य अपना धन समझकर अहंकार पूर्वक गुरुदेव की सेवा कर करता है तो उसे महान पापी समझना चाहिए।–––

दो०–प्रथम अरपि पुनि गुनि अहं, अरपै कछु गुरु पाहिं ।
दोष घटै दत्तापहर, चोर कहैं बुध ताहिं ॥२८७॥

–––क्योंकि पूर्व में समर्पित की हुई वस्तु को, यदि कोई अहंकार पूर्वक श्री गुरुदेव जी को पुनः अर्पित करता है तो, दान देकर लौटा लेने वाला दत्तापहारी दोष लगता है और विदुष जन उसे चोर कहते हैं।

गुरु की वस्तु गुरुहिं को अरपै । भाव भक्ति रस भरे अदरपै ॥
रक्षा कर निज देहहुँ केरी । गुरु प्रसाद सो नित हिय हेरी ॥

इसलिए शिष्य को चाहिये कि– वह भाव, भक्ति तथा आनन्द प्रपूरित, अहंकार रहित हो श्री गुरुदेव जी की वस्तु समझकर ही अपने गुरुदेव को कुछ अर्पित करे। वह अपने शरीर की रक्षा भी यही ह्रदय में यही समझकर करे कि– गुरु प्रसाद से ही मेरी रक्षा हो रही है अर्थात् अपने उपयोग की वस्तुओं को भी आचार्य की वस्तु समझकर उपयोग करे ।

जो गुरु अहं सनी शिष दैनी । करै ग्रहण सो लहै न चैनी ॥
अति अपूर्ण ताकहँ सत जानो । लोभ विवश गुरु तत्व भुलानो ॥

जो आचार्य, शिष्य के द्वारा अहंकार से युक्त, दी हुई भेंट को स्वीकार करता है वह शान्ति नहीं प्राप्त करता, उसे तो निश्चय ही अत्यधिक अपूर्ण समझना चाहिए क्योंकि लोभ के वशीभूत हो उसने गुरु–तत्व को भुला दिया है।

ताते भक्ति भाव रस सानी। लेवै शिष्य वस्तु गुरु ज्ञानी ॥
पूर्ण काम नित हिरदय रहई। शिष सुख हेतु गहै जो गहई ॥

इसलिए भक्ति, भाव व रस में सनी हुई शिष्य की वस्तु को ही परम ज्ञानवान गुरुदेव जी को ग्रहण करना चाहिए तथा नित्य अपने ह्रदय में पूर्णकाम रहना चाहिए, अपने शिष्य के सुख के लिए ही उसके द्वारा अर्पित की हुई वस्तुओं को ग्रहण करना चाहिए।

जनक सुवन शुचि भाव सुहावा । किये ग्रहण मुनि लखि हिय भावा ॥
बोले मुनिवर सुनहु कुमारा । वसी कियो मोहिं भाव अपारा ॥

जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी के पवित्र व सुन्दर भाव को देखकर परम ज्ञानवान गुरुदेव मुनिराज श्री बशिष्ठ जी ने उनकी भेंट सामग्री स्वीकार की तथा बोले– हे जनक कुमार! आपने मुझे अपने असीम भाव से अपने वशीभूत कर लिया है।

दो०– बहुरि कुँअर सब मुनिन कहँ, वसत जो आश्रम माहिं ।
भेटी दीन्ही विविध विधि, विनवत सबहिं सुहाहिं ॥२८८॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, सभी मुनियों को, जो आश्रम में निवास करते थे सुन्दर विनय पूर्वक विभिन्न प्रकार की भेंट अर्पित करते हुये अत्यन्त सुशोभित हुये।

मुनि सो लहिं सब विधि परसादा । भयो कुँअर मन अति अहलादा ॥
बारहिं बार चरण सिर नाई। करि विनती वर बैन सुहाई ॥

मुनिवर श्री बशिष्ठ जी से सभी प्रकार से कृपा–प्रसाद प्राप्त कर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी मन में अत्यन्त आहलादित हुए तथा बारम्बार उनके श्री चरणों में शिर झुका प्रणाम कर सुन्दर वाणी से विनय किये।

आयसु मागि प्रीति पगि प्यारा। चल्यो राम सह हर्ष कुमारा ॥
आयो प्रमुदित वास सुहाया। राम प्यार लहि अति सुख पाया ॥

मुनिवर श्री बशिष्ठ जी के प्रेम में डूब, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उनसे आज्ञा माँग कर हर्षित हो श्री राम जी महाराज के साथ प्रस्थान किये। वे प्रसन्नता पूर्वक सुन्दर निवास स्थल पहुँच गये तथा

श्री राम जी महाराज के परम प्यार को प्राप्त कर अत्यन्त सुखी हुए।

बहुरि राम सह भोजन पाई। किय विश्राम संग रघुराई ॥
बैठे दूनहुँ वर नृप बालक। आये भरत लखन रिपुघालक ॥

पुनः श्री राम जी महाराज के साथ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने भोजन ग्रहण किया तथा उनके साथ ही विश्राम किये। तदुपरान्त दोनों श्रेष्ठ नृपति कुमार आसन में विराज गये, उसी समय श्री भरत लाल जी, श्री लक्ष्मण कुमार जी तथा शत्रुओं का विनाश करने वाले श्री शत्रुघ्न कुमार जी भी आ गये।

भरे प्रेम सब सोह कुमारे। हरषत एकहिं एक निहारे ॥
मैथिल प्रेम कहत रघुराया। श्रवण करत सब उर उमगाया ॥

वहाँ मैथिल व अवध पक्ष के सभी राजकुमार प्रेम परिपूर्ण हो सुशोभित हो रहे थे तथा एक दूसरे को देख–देखकर हर्षित हो रहे थे। उस समय श्री राम जी महाराज श्री मिथिलापुर वासियों के प्रेम का वर्णन करने लगे जिसे श्रवण कर सभी के हृदय में प्रेम उमड़ने लगा।

दो०–जनक सुवन अरु राम की, प्रीति सरस सुख दानि ।
कहत सुनत मन रुज हरत, दायक शान्ति महानि ॥२८९॥

सुमित्रा नन्दन श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा हे पवन नन्दन श्री हनुमान जी! जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी व दशरथ नन्दन श्री राम जी महाराज का प्रेम तो अत्यन्त रस से परिपूर्ण व सुख प्रदायक है, जो कहने और सुनने से मन के विकारों का हरण कर, महान शान्ति प्रदान कर देता है।

पुनि रघुवीर कुँअर लै साथा। विहरत गृह वाटिक श्रुति माथा ॥
करि विहार संध्या किय दोऊ। प्रेम पगे एक एकहिं जोऊ ॥

पुनः श्रुतियों के तिलक श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को साथ लेकर गृहोद्यान में विहार करने लगे। विहारोपरान्त दोनों एक दूसरे की ओर देखते हुए प्रेम में डूबकर सन्ध्या वन्दन किये।

गये कुँअर पुनि सीता पाहीं। मिले सप्रेम उमगि उर माहीं ॥
यथा वशिष्ठ कृपा प्रिय पाई। वरणे कुँअर तनहिं पुलकाई ॥

तदनन्तर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी अनुजा श्री सीता जी के पास गये और उनसे प्रेम पूर्वक उच्छलित हृदय से मिले। वहाँ कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने पुलकित शरीर श्री सीता जी से वह वृतान्त वर्णन किया, जिस प्रकार उन्होने रघुकुल गुरुदेव श्री वशिष्ठजी महाराज की प्रिय कृपा प्राप्त की थी।

पान गंध दै माल पिन्हाई। सीता किय सतकार सुहाई ॥
कुअरहुँ करि वात्सल्य बहूता। पहुँचे भूप भवन आहूता ॥

श्री सीता जी ने उनका पान (ताम्बूल) व इत्र दे, माला पहनाकर सुन्दर सत्कार किया। तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीता जी को अत्यधिक वात्सल्य पूर्वक दुलार कर, श्री चक्रवर्ती जी के

बुलावे पर श्री महाराज के राजमहल पहुँच गये।

करत प्रणाम कुँअर नृप देखी । लिय उठाय करि प्रीति विशेषी ॥
गोद बिठाय विविध विधि प्यारा । कीन्हे हिय हरषाय अपारा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को प्रणाम करते हुए देखकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने विशेष प्रेम करते हुए उन्हे उठा लिया व गोद में बिठाकर हृदय में असीम हर्ष के साथ विभिन्न प्रकार से प्यार किया।

दो०—आये मनहर राम तब, भाइन सखन समेत ।
करि प्रणाम प्रिय प्यार लहि, बैठ सबहिं सुख देत ॥२९०॥

उसी समय मन को हरण करने वाले श्री राम जी महाराज भ्राताओं व सखाओं सहित वहाँ आ गये तथा श्री चक्रवर्ती जी महाराज को प्रणाम कर, उनके प्रिय प्रेम को प्राप्त कर सभी को सुख प्रदान करते हुए उनकी गोद में विराज गये।

श्याल भाम दोउ अंकहिं राजैं । नृपति प्रेम रस सने सुभ्राजैं ॥
देखि देखि सब सभा सुखारी । श्याम गौर दोउ तेज लुभारी ॥

हमारे सद्गुरु देव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि— इस प्रकार श्याल—भाम कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज दोनों चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की गोद में विराजे हुए हैं तथा वे प्रेमानन्द में सने हुए सुशोभित हो रहे हैं। यह दृश्य देख—देखकर सम्पूर्ण सभा सुखी हो रही है। श्याम व गौर वर्ण वाले, बहनोई व श्याल, श्री राम जी महाराज व कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी दोनों अपने महान तेज से सभी को लुब्ध कर रहे हैं।

निमिकुल रघुकुल दोउ दल भाये । बैठे लागत परम सुहाये ॥
प्रभु यश मिश्रित गीत पियारी । गावन लगीं अपसरा नारी ॥

निमिकुल तथा रघुकुल दोनों पक्षों का समाज उस समय विराजा हुआ अत्यधिक सुशोभन लग रहा है। उसी समय प्रिय अप्सरायें प्रभु श्री राम जी महाराज के सुन्दर यश से परिपूर्ण प्रिय गीत गाने लगीं।

साऱँगि वीणा वेणु सुहाई । ढोल मृदंग झाँझ सुखदाई ॥
मधुर मधुर बाजत बहु बाजे । सरस सुखद मनहर भल भ्राजे ॥

सारंगी, वीणा, बाँसुरी, ढोल, मृदंग तथा झाँझ आदि बहुत से सुन्दर सुखप्रद वाद्य मधुर—मधुर स्वर से बजने लगे जो रस से परिपूर्ण, सुख प्रदान करने वाले, मन को हरण करने में कुशल तथा अत्यन्त सुहावने लग रहे थे।

नृत्यत गावत भाव बताई । प्रेम पगी प्रमदा रस छाई ॥
सत संगीत रूप साकारा । भयो प्रकट मन मोहन हारा ॥

प्रेम में पगी व रस में छकी हुई नारियाँ भावों को प्रगट करती हुई गा—गाकर नृत्य कर रही थीं। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे मन को मोहित करने वाला यथार्थ (सत्य) संगीत ही साकार

स्वरूप धारण कर प्रकट हो गया हो।

दो०–प्रेम सिन्धु उमड़ान अति, बूड़ी सकल समाज ।
बचे न एकहुँ वीर वर, उबरि रहे जो भ्राज ॥२९१॥

वहाँ प्रेम का महान सागर उमड़ पड़ा जिसमें सम्पूर्ण समाज डूब गया। वहाँ उपस्थिति उभय समाज में एक भी वीर ऐसा नहीं था जो उसमें डूबने से बच सका हो।

भई विसर्जन सभा सुहाई । वरणत प्रीति रीति रस छाई ॥
मातु सदन सुखकर सुख धामा । कुँवरहिं गये लिवाय सुभामा ॥

इस प्रकर आनन्द से परिपूर्ण प्रभु–प्रीति–रीति का वर्णन करते हुए सुन्दर सभा विसर्जित हुई। तब सभी को सुखी करने वाले, सुख के धाम, सुन्दर बहनोई श्री राम जी महाराज, अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को श्री अम्बा जी के महल ले गये।

ब्यारू कीन्ह मातु कर दोऊ । सुधा अन्न रसमय रस जोऊ ॥
शयन सदन पुनि शयनहुँ कीन्हे । प्रेम भरे दोउ लाल रसीने ॥

वहाँ दोनों राज कुमार प्रेम–परिपूरित हो श्री अम्बा जी के हाथों से रसमय अमृतान्न की व्यारू किये। पुनः दोनों रसमय श्याल–भाम परस्पर–प्रेम में पगे हुए शयनागार में शयन किये।

शयन मध्य सुनु प्रिय हनुमाना । कुँअर लखेउ इक स्वप्न प्रमाना ॥
अभय प्रदायक प्रेम स्वरूपा । कृपा पूर्ण सब भाँति अनूपा ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे प्रिय श्री हनुमान जी! शयन के मध्य कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने एक प्रमाणित स्वप्न देखा जो अभय प्रदान करने वाला, प्रेम स्वरूप, सभी प्रकार से अनुपमेय और श्री राम जी महाराज की कृपा से परिपूर्ण था।

सो मैं वरणि सुनावौं तोही । कुँअर चरित भल लागत मोहीं ॥
कृपा सिन्धु करि कृपा महाई । कुँअरहिं लीन्हे साथ लिवाई ॥

हे मारुति! मैं आपको वह स्वप्न वर्णन कर सुना रहा हूँ क्योंकि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का चरित्र मुझे अत्यन्त प्रिय लगता है। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वप्न में देखा कि– कृपा के सागर श्री राम जी महाराज, महान कृपा कर अपने प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी को साथ लेकर,–––

दो०–अन्तःपुर पहुँचे हरषि, जहँ सखि सह सिय भ्राज ।
भये मुदित दोउ लाल वर, देखत सुभग समाज ॥२९२॥

–––हर्षित हो अन्तःपुर पहुँचे हुये हैं, जहाँ श्री सिया जू सखियों सहित विराजी हुई थीं। दोनों श्रेष्ठ नरपति कुमार वहाँ के सुन्दर समाज को देखकर आनन्दित हो गये।

राम कहा सुनु प्रिय वैदेही । कुँअर हमारे आत्म सनेही ॥
शिव विरंचि ऋषि मुनि सब भ्राता । कीर्ति विभव प्रिय धाम सुहाता ॥

अनन्तर श्री राम जी महाराज ने कहा– हे प्रिय, श्री विदेह राज नन्दिनी जू! कुँअर श्री

लक्ष्मीनिधि जी हमारे आत्माधिक प्रिय सुहृद है। श्री शंकर जी, श्री ब्रह्मा जी, सभी ऋषि, मुनि, अपने सभी भ्राता, अपनी कीर्ति, वैभव, अत्यन्त प्रिय व सुहावना श्री अयोध्या धाम,–––

तुमहिं सहित निज आतम जोही । इन सम प्रिय नहि लागत मोही ॥
ताते सकल भाँति सुनु प्यारी । मोरी प्रीति जानि जिय भारी ॥

–––यहाँ तक कि आपके सहित मेरी आत्मा भी मुझे इनके समान प्रिय नहीं लगती है, ऐसा मैंने विचार कर देख लिया है। इसलिए हे प्यारी जू! सुनिये, आप सभी प्रकार से, अपने हृदय में इनके प्रति मेरी अतिशय प्रीति समझ कर–––

सब सुख हेतु सुयतन विचारी । सब विधि कीन्हेउ भार सम्हारी ॥
जानि कुँअर निज आत्म अधारा । सिय पद गिरेउ न देह सम्हारा ॥

––– इनके समस्त सुखों के लिए, सुन्दर यत्नपूर्वक, विचार कर, सभी प्रकार से इनका योग–क्षेम वहन कीजियेगा। उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीता जी को अपनी आत्माधार समझ, देह को न सम्हाल सकने के कारण स्मृति भूलकर उनके श्री चरणों में गिर पड़े।

सीय आसु भ्राता गति देखी । अति अनन्य गति प्रेम विशेषी ॥
तुरत उठाय शीश कर फेरी । भइया भइया कहत सुहेरी ॥

श्री सीता जी ने तत्क्षण अपने श्री भैया जी की अत्यन्त अनन्यता व विशेष प्रेम से परिपूर्ण स्थिति को देख, उन्हे शीघ्रता–पूर्वक उठाकर, शिर स्पर्श किया और हे श्री भइया जी, हे भइया जी कहती हुई उनकी ओर निहारने लगी।

दो०–जनक सुवन अति दीन बनि, नैनन नीर बहाय ।
आपुहिं सौंपत जानकिहिं, पालिय लली सुभाय ॥२९३॥

जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त दीन बनकर, आँखों से अश्रु बहाते हुए श्री सीता जी को अपना आत्म समर्पण कर बोले– हे श्री लली जू! आप स्वाभाविक ही मेरा पालन कीजिये।

प्रेम विवश सीता बिलखाई । बैठी भइया गोद सुहाई ॥
पोंछत अश्रु कहत मृदु बानी । सब विधि भइया आपन जानी ॥

श्री सिया जू उस समय बिलखती हुई अपने श्री भैयाजी के प्रेम वशीभूत हो, उनकी सुन्दर गोद में बैठ गयीं तथा उनके आँसुओं का प्रोच्छण करती हुई कोमल वाणी से कहती हैं कि– हे श्री भइया जी! आप मुझे सभी प्रकार से अपनी ही समझिये।

तव सुख लागि हृदय थिति मोरी । या महँ संशय करहु न थोरी ॥
प्रभु रजाय पुनि सत मम प्रीती । चेष्टित तव सुख हेतु सुरीती ॥

आपके सुख के लिए ही मेरे हृदय की स्थिति है इसमें किंचित भी संदेह मत कीजियेगा। मैं अपने प्रभु श्री राम जी महाराज की आज्ञा तथा अपनी सत्य प्रीति के कारण आपके सुख के लिए विधि–पूर्वक सुन्दर चेष्टित रहती हूँ।

अस कहि बार बार अनुरागी । बहुरि सिया रघुवर पद लागी ॥
प्रेम रूप बड़ि कृपा स्वरूपिणि । बोली वचन भ्रात हित पोषिणि ॥

ऐसा कहती हुई श्री सिया जू बार–बार भ्रातृ प्रेम से भर जाती हैं। पुनः प्रेम स्वरूपा, कृपा विग्रहा श्री सीता जी श्री राम जी महाराज के चरणों में प्रणाम कर अपने श्री भैया जी के हित का पोषण करने वाले बचन बोलीं–

नाथ सुनहिं भैया नित मोरे । प्राण समान अहैं रस बोरे ॥
आप योग नित मोर सुभ्राता । पावहिं प्यार अमित सुखदाता ॥
छनहुँ वियोग होय नहिं कबहूँ । नित्य धाम रस रसैं सुलभहूँ ॥

हे नाथ! मेरे प्राणों के समान प्रिय हमारे श्री भैया जी, नित्य, रस में डूबे हुए व सर्वथा आपके अनुरूप हैं। हे प्रिय वर! मेरे श्री भइया जी आपके असीमित सुख प्रदायी प्यार को प्राप्त करें तथा इनसे आपका क्षण–मात्र का भी वियोग न हो, साथ ही नित्य धाम साकेत में भी रस में समाये हुए ये आपको ही प्राप्त हों।

दो०–परमैकान्तिक प्रीति सुख, सेवा आपन प्यार ।
अविचल देवहिं भ्रात कहँ, सदा गनै निज सार ॥२९४॥

आप हमारे श्री भैया जी को परमैकान्तिक प्रेम का सुख, अपनी सेवा तथा अपना अविचल प्रेम प्रदान करें व सदैव अपना श्याल समझते रहें।

सुनत राम अति कोमल बैना । भ्रात सनेह सने सुख दैना ॥
बोले प्रिया सुनहुँ मम बाती । हर्षण हृदय कुँअर सब भाँती ॥

श्री सीता जी के अत्यन्त कोमल, भ्रातृ–प्रेम से आपूरित, सुखप्रदायक वचन श्रवणकर श्री राम जी महाराज बोले– हे प्रिया जू! मेरी बात सुनिये! कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तो सभी प्रकार से मेरे हृदय को हर्षित करने वाले हैं।

इच्छा रावरि इच्छा मोरी । यामहँ बिलग कबहुँ नहिं थोरी ॥
आत्म पृथक नहिं कुँअर लखाई । मोहि परम प्रिय अति सुखदाई ॥

आपकी इच्छा ही मेरी इच्छा है, इसमें किंचित भी अन्तर नहीं है। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तो मुझे मेरी आत्मा से अलग नहीं समझ पड़ते, ये तो मुझे अत्यन्त सुखप्रद व परम प्रिय हैं।

अस कहि राम सिया सह जाई । बैठे कुँअर गोद हरषाई ॥
बोले अरपण मैं अरु मोरा । यामहँ कबहुँ न होई भोरा ॥

ऐसा कहकर हर्षित हो श्री राम जी महाराज श्री सीता जी के सहित जाकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की गोद में बैठ गये तथा बोले, कि– हे कुमार! मैं और मेरा सभी कुछ आपको अर्पित है, इसमें कभी भी सन्देह का स्थान नहीं है।

कहत कहत सिय राम सुजाना। गये कुँअर हिय तुरत समाना॥
कुँअर हृदय महँ देखे रामा। सीय सहित सुन्दर सुखधामा॥
स्वपन माँहि अस लखे कुमारा। राम कृपा गुनि हर्ष अपारा॥

ऐसा कहते हुए परम सुजान श्री सीताराम जी तुरन्त ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में समा गये। तब कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सीता जी सहित सुन्दर व सुख के धाम श्री राम जी महाराज का अपने हृदय में दर्शन किया। इस प्रकार के दृश्य का कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वप्न में दर्शन किया तथा अपने प्रति श्री राम जी महाराज की कृपा को समझ असीम हर्ष प्राप्त किये।

दो०—पुनि छन माझहिं तिन लखे, बाहर दूनहु रूप।
राम सीय सुन्दर सुखद, मूरति मधुर अनुप॥२९५॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने एक ही क्षण में हृदय के बाहर दोनों (श्रीसीतारामजी) की सुन्दर, सुखप्रद तथा मधुर अनुपमेय मूर्ति का दर्शन किया।

बहुरि बिलोके दृश्य सुहावा। जनक सुवन मन मोदहिं पावा॥
राम हृदय महँ आपुहिं देखा। सहित सीय अति सुन्दर वेषा॥

पुनः जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने एक अन्य सुन्दर दृश्य का स्वप्न में दर्शन कर मन में आनन्द प्राप्त किया। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री सीता जी सहित स्वयं को अत्यन्त सुन्दर वेष धारण किये हुए श्री राम जी महाराज के हृदय में दर्शन किया।

बाहर दूनहु रूप दुराये। प्रभु उर माँझ प्रत्यक्ष दिखाये॥
देखे पुनि सीता हिय माहीं। आपु सहित श्री रामहिं काहीं॥

उस समय हृदय के बाहर दिखने वाले श्री सीताजी व श्री राम जी महाराज दोनो के रूप विलुप्त हो गये थे तथा प्रभु श्री राम जी महाराज के हृदय में श्री सीता जी सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे थे। पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने स्वयं के सहित श्री राम जी महाराज का, श्री सीता जी के हृदय में दर्शन किया।

इक के तीन तीन इक होई। बनि अद्वैत रहैं रस मोई॥
रस स्वादन हित सुखमय लीला। विविध भाँति होती रस शीला॥

वे एक से तीन तथा तीन से एक होकर अद्वैत (अभिन्न) बने रस में समाये हुए हैं और परस्पर के रसास्वादन के लिए रस से भरी हुई विभिन्न प्रकार की सुखमयी लीला हो रही है।

कल्प अनन्त एक रस देखी। तीनहुँ हिय मन मोद विशेषी॥
नेह भरे तीनहुँ सुख पागे। लखि लखि एकहिं अति अनुरागे॥

इस प्रकार श्री सीता जी, श्री राम जी महाराज व कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी तीनों को अनन्त कल्पों तक एक समान रस में पगे हुए देखकर, तीनों के हृदय व मन में विशेष आनन्द छा गया। तब वे तीनों प्रेम में भरे, एक दूसरे को अत्यन्त अनुराग पूर्वक देख–देखकर सुख में डूब गये।

दो०— यहि विधि देखत स्वप्न सत, जागि कुँअर मिथिलेश ।
परम प्रेममय शोभ तन, सो सुख कहैं न शेष ॥२९६॥

मिथिलेश कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी इस प्रकार के सत्य–स्वरूप स्वप्न का दर्शन करते हैं तथा जागृत होने पर अतिशय प्रेम के कारण उनका श्री अंग अतीव सुशोभित हो रहा है। स्वप्न दृश्य के दर्शन में उन्हे जो सुख प्राप्त हुआ उस सुख का बखान स्वयं श्री शेष जी भी नहीं कर सकते।

रामहिं अति प्रिय स्वप्न सुनायो । सुनत राम अतिशय सुख पायो ॥
कहे राम सुनु कुँअर सुजाना । सत सत सत यह सपन महाना ॥

कुँवर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने श्री राम जी महाराज को अपना वह अत्यन्त प्रिय स्वप्न सुनाया, जिसे सुनते ही श्री राम जी महाराज ने अत्यधिक सुख प्राप्त किया और बोले– हे परम गुणवान कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! यह महान स्वप्न तो सत्य है, सत्य है, सर्वथा सत्य है।———

प्रेम पुरी मिथिला तव जन्मा । रसमय जीवन रसमय कर्मा ॥
ताते नित्य धाम रस प्यारा । मिलो रहत सहजहिं सुख सारा ॥

———क्योंकि आपका जन्म प्रेमपुरी श्री मिथिला जी में हुआ है, आपका समग्र जीवन व कर्म रसमय है। इसलिए हे प्यारे! नित्य धाम श्री साकेत में सुखों का सार 'प्रेमरस' आपको सहज ही मिलता रहेगा।

लीला धाम आय तुम प्यारे । लीला हेतु बने कछु न्यारे ॥
अस कहि प्रेम मगन मन होई । करन लगे दिनचर्या दोई ॥

हे प्यारे! आप इस लीलाधाम में आकार लीला कार्य के लिए मुझसे पृथक बने हुए हैं। ऐसा कहकर मन में प्रेममग्न हो दोनों नरपति कुमार दैनिक चर्चायें करने लगे।

साथ साथ दूनहु रस साने । मज्जन अशन शयन कर जाने ॥
रहैं छके इक एकहिं देखी । छिन छिन बाढ़त प्रेम विशेषी ॥

दोनों नृपति कुमार एक साथ स्नान, भोजन और शयन करते हुए रस में पगे रहते थे तथा एक दूसरे को देख–देखकर प्रेम से ओत–प्रोत रहते थे। उनके हृदय में विशेष प्रेम प्रतिक्षण वृद्धि को प्राप्त होता रहता था।

दो०— इक एकहिं बलिहार दोउ, निज सुख चाह बिसार ।
मनहुँ ब्रह्म रसमय सुखद, सोहत युग तन धार ॥२९७॥

वे दोनों अपनी सुखेच्छाओं को भूलकर एक दूसरे पर ऐसे न्यौछावर हो रहे थे मानों वे दोनो रसस्वरूप व परम सुख–दायक पूर्णतम ब्रह्म ही दो शरीर धारण कर शोभा प्राप्त कर रहा हो

यहि विधि कुँअर राम के साथा । भोगहिं भोग नित्य सुख क्वाथा ॥
अवध धाम बसि इक रस होई । दिन अरु रात परै नहिं जोई ॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज के साथ नित्य–प्रति सुखों के

आसव–रूप दिव्य भोगों का उपभोग कर रहे थे। वे श्री अयोध्या धाम में एक–रस बने हुये निवास कर रहे थे, प्रेम के कारण उन्हे दिन व रात्रि व्यतीत होते समझ नहीं पड़ते थे।

नित्यानन्द सिन्धु के माहीं । काल विलीन न नेक लखाहीं ॥
कर्म स्वभाव गुणन के घेरे । डूबि गये पुनि मिलत न हेरे ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शाश्वत सुख के सागर में 'काल' (समय) विलीन हो गया था जिससे उन्हे उसका किंचित भी ज्ञान नही होता था। कर्म, स्वभाव तथा गुणों की सीमायें उसमें अस्त हो गयीं थी अतः वे ढूँढने पर भी नहीं प्राप्त हो रही थीं।

आनँद आनँद आनँद एका । मैं तै नहिं तहँ रह्यो विवेका ॥
कुँअर भाग बरणिय केहिं भाँती । आनँद मगन रहे रस माती ॥

वहाँ एकमात्र आनन्द, आनन्द तथा आनन्द ही रह गया था तथा मैं और तू का ज्ञान भी शेष नहीं था। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के भाग्य वैभव का वर्णन किस प्रकार से करें, वे तो प्रभु प्रेमरस में मतवाले बने हुए शाश्वत आनन्द में मग्न रहते थे।

कहुँ सिय निकट कबहुँ ढिग रामा । कुँअर लहहिं सुख शान्ति ललामा ॥
कबहुँक भरत कबहुँ रामानुज । कबहुँक रिपुहन भेटहिं भरि भुज ॥
कुँअरहिं अपने भवन लिवाई । अति सतकार करहिं सुख छाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कभी अपनी अनुजा श्री सिया जू के समीप तो कभी प्रिय भाम श्री रामजी महाराज के समीप जाकर सुन्दर सुख व शान्ति प्राप्त करते थे। कभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को श्री भरत लाल जी, तो कभी रामानुज श्री लक्ष्मण कुमार जी और कभी श्री शत्रुघ्न कुमार जी भुजाओं में भर–भर कर भेंट करते हुये अपने भवन ले जाते थे और उनका सुख पूर्वक अतिशय सतकार किया करते थे।

दो०–यथा राम बहु प्रीति युत, करहिं कुँअर सन्मान ।
तथा करत सिगरे अनुज, सखा सहित मति मान ॥२९८॥

जिस प्रकार श्री राम जी महाराज अत्यन्त प्रेमपूर्वक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी का सम्मान करते थे उसी प्रकार सखाओं सहित परम बुद्धिमान सभी श्री रामानुज भी उनका आदर करते थे।

भगिनि उर्मिला माण्डवि आवैं । श्रुतिकीरति सह हिय हरषावैं ॥
भवन आपने भ्रात बुलाई । करहिं प्रेम सत्कार सुहाई ॥

कभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रिय बहने श्री उर्मिला जी व श्री माण्डवी जी श्री श्रुतिकीर्ति जी के साथ आती थीं और उनके हृदय को हर्ष प्रपूरित कर देती थीं। कभी वे अपने महलों में श्री भैया जी को बुलाकर प्रेमपूर्वक सुन्दर सत्कार करती थीं।

यथा सिया सेवहिं निज भैया । तथा भगिनि सिगरी सुख दैया ॥
कबहुँ बुलावैं नृप परिवारा । कबहुँ सचिव सरसत सुख सारा ॥

जिस प्रकार श्री सीता जी अपने श्री भैया जी की सेवा–सत्कार करती थीं उसी प्रकार उनकी सभी बहने भी अपने श्री भैया जी की सेवा–सत्कार कर सुख प्रदान करती रहती थीं। सुखों के सार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को कभी राज परिवार के लोग तो कभी मंत्रीगण आनन्द पूर्वक अपने यहाँ आमन्त्रित करते थे।

गवनहिं कुँअर प्रीति रस साने। पावहिं सुख सत्कार महाने ॥
कबहुँ राम सह अवध मझारा। रथारूढ़ कर सुखद विहारा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेमानन्द में पगे हुए वहाँ जाकर सुख तथा महान सत्कार प्राप्त करते थे। कभी वे श्री राम जी महाराज के सहित रथ में सवार हो श्री अयोध्यापुरी में सुखदायी विहार किया करते थे।

कबहुँक कन्दुक कहुँ जल केली। करहिं कुमार राम संग मेली ॥
क्रीड़ा होति अनेक प्रकारा। रसमय पावन प्रेम प्रसारा ॥

कभी कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज के साथ मिलकर गेंद खेलते थे तो कभी जल क्रीड़ा किया करते थे। श्री राम जी महाराज के साथ उनकी विविध प्रकार की रसमयी, पवित्र तथा प्रेम से परिपूर्ण क्रीड़ाएँ होती रहती थीं।

दो०–वन प्रमोद रघुनाथ सँग, विहरहिं कुँअर ललाम ।
देखि देखि ब्रह्मादि वर, कहत धन्य सुख धाम ॥२९९॥

परम सुन्दर कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी कभी श्री राम जी महाराज के साथ प्रमोद–वन में विहार करते थे, जिन्हें देख–देखकर श्री ब्रह्मा जी आदि देवता कहते थे, कि हे सुखों के धाम युगल नृपति कुमार! आप धन्यातिधन्य हैं।

तीरथ सकल अयोध्या केरे। किये राम सह प्रीति पगे रे ॥
दाय देय तहँ विविध विधाना। सेये विप्र साधु सुर नाना ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम में पगकर श्री राम जी महाराज साथ श्री अयोध्या पुरी के सभी तीर्थों का सेवन किये और वहाँ विभिन्न प्रकार से दान देकर अनेक ब्राह्मणों, साधुओं और देवताओं की उन्होने सेवा की–––

राम प्रेम लहि आशिरवादा। माने कुँअर अमित अहलादा ॥
सत समाज महँ बैठ कुमारा। सुनहिं राम यश हर्ष अपारा ॥

–––तथा उनसे आशीर्वाद में श्री राम जी महाराज का प्रेम प्राप्तकर असीमित आह्लाद प्राप्त करते थे। कभी कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी संत–समाज में बैठकर श्री राम जी महाराज की यशोगाथा का श्रवण करते तथा असीमित हर्ष प्राप्त करते थे।

श्रवण अघात नहीं तिन केरे। प्रभु यश भूष रहै नित नेरे ॥
कबहुँ सखन बिच अति सुख सानी। वरणत प्रभु यश प्रीति सुहानी ॥

उनके कर्ण कभी भी श्री राम जी महाराज की कीर्ति–कथा से तृप्ति नहीं प्राप्त करते थे और

प्रभु श्री राम जी महाराज की कीर्ति रूपी अलंकार से अलंकृत हुए नित्य श्री राम जी महाराज के समीप ही रहते थे। कभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने सखाओं के बीच अत्यधिक सुख में डूबकर प्रभु श्री राम जी महाराज की सुन्दर यशोगाथा व प्रेम का वर्णन किया करते थे।

जनक सुवन मुख निःसृत बानी। मधुर सुखद रसमय रसदानी ॥
सुनि सुख सनहिं सुकर्णन वारे। सोहहिं रसमय प्रीति पसारे ॥

जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी जी के मुख से निकली हुई मधुर, सुखप्रद, रसमयी तथा रस प्रदायिका वाणी को श्रवण कर श्रवणवन्त सुख में सन जाते तथा रसमयी प्रीति से परिपूर्ण हो सुशोभित होते रहते थे।

दो०–सकल अवध वासी सुखद, देखि कुँअर वर प्रीति ।
अमर प्रेम सबहीं पगे, राखे हिय रस रीति ॥३००॥

समस्त श्री अयोध्यापुर निवासी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की श्री राम जी महाराज के प्रति सुख–प्रदा सुन्दर प्रीति को देखकर उनके शाश्वत प्रेम में पग गये थे तथा उन्हें रस रीति पूर्वक अपने हृदय में धारण कर लिये थे।

एक दिवस रघुकुल गुरु पासा । गयउ कुँअर प्रिय प्रीति प्रकाशा ॥
करि प्रणाम पद रज सिर लाये । प्रेम उमगि नयनन जल छाये ॥

अपने प्रिय भाम, प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेम से प्रकाशित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी एक दिन रघुकुल के आचार्य श्री बशिष्ठ जी के पास गये तथा उन्हें दण्डवत प्रणाम कर उनके चरणों की धूल को शीश में लगा लिये, प्रेमाधिक्य के कारण उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु छा गये।

मुनिवर कुँअरहिं उर अरुझायो। करि प्रिय प्यार सुहृद सुख पायो ॥
बैठि सुआसन कुँअरहिं काहीं। बैठन कहे मोद मन माहीं ॥

मुनि श्रेष्ठ श्री बशिष्ठ जी ने अपने हाथों से उठाकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगा लिया तथा प्रिय प्यार कर हृदय में सुन्दर सुख प्राप्त किया। पुनः आसन में बैठकर मन में आनन्दित हो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बैठने के लिए कहा।

विविध प्रकार ज्ञान उपदेशा। कह बशिष्ठ बहु सुनहिं द्विजेशा ॥
कथा समाप्त कीन्ह मुनि जबहीं। गये जहँ तहँ श्रोता सबहीं ॥

मुनिवर श्री वशिष्ठ जी विभिन्न प्रकार के ज्ञानमय उपदेशों का बखान कर रहे थे, जिसे बहुत से ब्रह्म जिज्ञासु विप्रगण श्रवण कर रहे थे। मुनि श्रेष्ठ श्री बशिष्ठ जी ने जब कथा समाप्त की तब सभी श्रोता जहाँ–तहाँ चले गये।

कछु इकान्त महँ मुनिवर ज्ञानी। कुँअरहिं गये लिवाय महानी ॥
भरी कृपा सुखकर मृदु बानी। बोले वर्द्धन प्रेम प्रमानी ॥

तदुपरान्त महान, ज्ञानवान, मुनिश्रेष्ठ श्री बशिष्ठ जी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को कुछ एकान्त स्थल में ले गये तथा कृपा परिपूर्ण, सुखदायी कोमल वाणी से प्रेम प्रवर्धित करते हुए बोले–

दो०–कुँअर तुम्हारि सुभाग बड़ि, महा महिम सत तात ।
मुख पर वरणउँ सुयश किमि, सब विधि मोहिं सुहात ॥३०१॥

हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आपका सौभाग्य सत्य ही अत्यन्त महा–महिम्न है, हे तात! मैं आपके सम्मुख आपकी ही सुन्दर कीर्ति का वर्णन किस प्रकार करूँ? आप तो मुझे सभी प्रकार से सुहावने लगते हैं।

जासु ध्यान शिव तुरत न पावैं । खोजत योगी जेहिं चित लावैं ॥
नाम जासु नित सुमिरण करहीं । शिवा सहित शिव आनँद भरहीं ॥

जिनका ध्यान भगवान श्री शिव जी भी शीघ्र नहीं कर पाते, जिन्हें योगीजन अपने चित्त को, उनमें लगाये हुए, खोजते रहते हैं, जिनके नाम का स्मरण श्री पार्वती जी सहित श्री शिव जी आनँद में भरे हुए नित्य किया करते हैं,–––

पर ब्रह्म परमारथ रूपा । नित्य एक रस अचल अनूपा ॥
सत चित आनँद रसमय ईशा । जाहि भनत श्रुति नेति अहीशा ॥

–––जो परब्रह्म परमार्थ स्वरूप, नित्य, एक समान रहने वाले, अचल, अनुपमेय, सच्चिदानन्दमय, रस स्वरूप, सर्वेश्वर हैं, जिसे श्रुतियाँ व श्रीशेषजी नेति–नेति कह कर बखान करते हैं–––

विभु व्यापक भगवान विराटा । विश्व रूप जाकर सब ठाटा ॥
अणु ते अणु अरु महत महाना । जेहिं कहँ ब्रह्मादिक नहिं जाना ॥

–––जो परम विभु, सर्व व्यापक, षडैश्वर्य भगवान, महा विराट व संसार स्वरूप हैं, जिसकी सत्ता से ही इस सम्पूर्ण संसार की स्थिति है, जो अणु से भी सूक्ष्म तथा महान से भी महान हैं तथा जिसको श्री ब्रह्मा जी आदि देवता तक नहीं जानते–––

कारण कार्य परे पर धामा । निर्गुण सगुण पार अभिरामा ॥
लोक वेद पर परम दयाला । शब्द पार नित वृहद विशाला ॥

–––जो कारण और कार्य के परे, परम धाम (परम पद) स्वरूप, निर्गुण व सगुण आदि विशेषणों के पार, सर्व सुन्दर, संसार व वेद से परे (सबसे श्रेष्ठ), परम दयालु, वाणी के पार, शाश्वत, महान, असीम विस्तृत व विशाल हैं–––

दो०–परम प्रकाशक सबहिं कर, स्वयं प्रकाश स्वरूप ।
महा पुरुष मायापती, अकथ अगाध अनूप ॥३०२॥

–––जो सभी को प्रकाशित करने वाले, स्वयं प्रकाश स्वरूप, पुरुषोत्तम, मायापति, अकथनीय, अगाध तथा अनुपमेय–––

शक्ति अचिन्त्य भक्त हितकारी । प्रेम रूप सुखमय अविकारी ॥
सोइ परम प्रभु सुखद ललामा । भयो प्रेमवश तुम्हरो भामा ॥

–––अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न, भक्तजनों के हितैषी, प्रेमस्वरूप, सुखमय व सभी प्रकार के

विकारों से रहित हैं, वही महान सुख प्रदान करने वाले, परम प्रभु, सुशोभन श्री राम जी महाराज प्रेम के वशीभूत हो आपके सुन्दर भाम (बहनोई) बने हुए हैं।

मज्जन अशन शयन तेहिं साथा । करहु कुँअर नित भयेहु सनाथा ॥
कोटिन जन्म दरश हित जाके । करत यत्न योगीजन थाके ॥

हे राजकुमार! आप उनके साथ नित्य ही स्नान, भोजन, और शयन आदि क्रियायें करते हैं तथा सनाथ बने हुए हैं। योगीजन जिनके दर्शन के लिए करोड़ों जन्मों तक उपाय करते–करते थक जाते हैं।

सो प्रभु तुमहिं देखि सुख लहई । परश पाइ अति आनँद गहई ॥
सब सुख धाम सबहिं सुख दाता । सो तव अंक बैठि सुख पाता ॥

वही प्रभु श्री राम जी महाराज आपको देख कर सुख प्राप्त करते हैं, आपके महान स्पर्श को प्राप्त कर आनन्द में समा जाते हैं और सम्पूर्ण सुखों के धाम तथा सभी को सुख प्रदान करने वाले श्री राम जी महाराज आपकी गोद में बैठ कर सुख प्राप्त करते हैं।

अमृतमय सब प्राणिन प्यारा । प्यार पाइ तव होत सुखारा ॥
काम अनंत विमोहन हारा । मोहत सो प्रभु तुमहिं निहारा ॥

जो अमृत स्वरूप व सभी प्राणियों को प्रिय हैं वही श्री राम जी महाराज! आपका प्यार प्राप्त कर सुखी होते हैं, जो अनन्त कामदेवों को भी विमोहित करने वाले हैं वही प्रभु आपको देखकर स्वयं मोहित हो जाते हैं।

दो०– जासु भजन निशि दिन करहिं, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सो ध्यावत नित कुँअर तोहि, प्रीति प्रतीति अशेष ॥३०३॥

जिन श्री राम जी महाराज का भजन अहो–रात्रि श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी आदि सर्वज्ञ देव किया करते हैं, हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! वही श्री राम जी, पूर्ण प्रीति व विश्वास पूर्वक आपकी आराधना करते हैं।

अजा अनादि शक्ति अविनाशिनि । अपृथक ब्रह्म स्वरूप विलासिनि ॥
अनुजा भई तुम्हार सप्रीती । देन अमित सुख सुन्दर कीती ॥

जो कभी जन्म न धारण करने वाली, अनादि शक्ति, विनास को न प्राप्त होने वाली, ब्रह्म से सर्वथा अभिन्न व ब्रह्म में ही विलास करने वाली श्री सीता जी हैं वे ही आपको असीमित सुख तथा सुन्दर कीर्ति प्रदान करने के लिए, प्रेम पूर्वक आपकी छोटी बहन बनी हुई है।

जासु कृपा चाहहिं तिरदेवा । उमा रमा शारद करि सेवा ॥
सो तव गोद बैठि सुख मानै । नेक विरह तव निज दुख जानै ॥

जिनके कृपा की कामना त्रिदेव (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी) भी करते हैं तथा जिनकी सेवा श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी व श्री सरस्वती जी करती हैं वे श्री सीता जी आपकी गोद में बैठ कर सुख मानती हैं और आपके किंचित विरह में भी स्वयं को महान दुखी समझती हैं।–––

भइया कहत प्रेम रस सानी । तव सुख चेष्टित सदा सयानी ॥
ताते कुँअर महा बड़ भागी । सीता राम तुमहिं पर रागी ॥

–––वे श्री भैया जी कहती हुई प्रेमानन्द में सन जाती हैं तथा आपके सुख की चेष्टा में सदैव बुद्धिमत्ता पूर्वक संलग्न रहती हैं। अतः हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ! आप अत्यन्त ही सौभाग्यशाली हैं कि– आप पर श्री सीताराम जी अनुराग (प्रेम) किये हुए हैं।

प्रभु प्रसाद जस तुम नित पायो । लहा न कोउ सत्य मैं गायो ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिदेवा । ऋषि मुनि योगी शेष जितेवा ॥

हे कुमार! मैं सत्य कह रहा हूँ कि– जिस प्रकार श्री राम जी महाराज के कृपा प्रसाद को आपने प्राप्त किया है उस प्रकार श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शंकर जी आदि त्रिदेव, ऋषि, मुनि, योगी व श्री शेष जी आदि जितने भी श्रेष्ठजन हैं, उनमें से किसी ने भी नहीं प्राप्त किया।

दो०–उमा रमा शारद शची, पायो नहिं यह योग ।
यथा कृपा सिय राम की, मिली तुमहि रस भोग ॥३०४॥

हे कुमार! श्री पार्वती जी, श्री लक्ष्मी जी, श्री सरस्वती जी तथा श्री शची जी (श्री इन्द्राणी जी) आदि ने भी इस प्रकार का सुयोग नहीं प्राप्त किया है जिस प्रकार श्री सीताराम जी की कृपा और उनके रसास्वादन का सुयोग आपको प्राप्त है।

छं०– लखि भाग रावरि देख सब, दिन रात सुयश बखानहीं ।
जय जयति बोलहिं शुभ समय, हर्षित निशान बजावहीं ॥
झरि सुमन रीझहिं तोहि पर, रक्षत सदा पुलकित हिये ।
बनि विश्व आतम सत कुँअर, जग चित्तकर्षण तुम किये ॥

आपके महद् भाग्य वैभव को देखकर सभी देवता अहर्निशि आपकी सुन्दर कीर्ति का गायन करते रहते हैं तथा शुभ अवसरों में आपकी जय हो, जय हो, बोलते हुए हर्षित होकर नगाड़े बजाते रहते हैं, पुष्पों की वरषा करते हुए, आप पर रीझे रहते हैं तथा पुलकित हृदय हो सदैव आपकी रक्षा करते रहते हैं। हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप तो सत्य ही विश्व की आत्मा बनकर सम्पूर्ण संसार के चित्त को आकर्षित कर लिए हैं।

ऋषि नाग देवहुँ नारि नर, मंगल सदा तुम्हरौ चहैं ।
सिय राम मानहिं प्राण जेहिं, ता कहँ सबै दाहिन रहैं ॥
धनि तात प्रेम सुरूप धरि, सिय राम प्रगटे रूप तव ।
निमि वंश भूषण धाम गुण, हर्षण हमारेउ प्राण भव ॥

सभी ;षि, नाग, देवता, पुरुष व स्त्रियाँ आपकी मंगल कामना करते हैं। स्वयं श्री सीताराम जी ही जिसे अपने प्राण समझते हों उसके लिए तो समस्त जीव समुदाय अनुकूल ही रहेगा। हे तात! आप धन्य हैं जिनके रूप में श्री सीताराम जी ही प्रेम का सुन्दर स्वरूप धारण कर, प्रगट हुये हैं। हे निमिवंश

के आभूषण, समस्त गुणों के धाम व श्री राम जी महाराज को हर्षित करने वाले कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप तो हमारे भी प्राण हो गये हैं।

सो०–कुँअर सकुचि शिर नाय, मुनिवर दया विलोकि हिय ।
नयनन नीर बहाय, कृपा अहैतुक नाथ कहि ॥३०५॥

मुनि श्रेष्ठ श्री बसिष्ठ जी के हृदय की करुणा को अपने हृदय के अनुभव कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी संकुचित हो शिर झुका कर, आँखों से अश्रु बहाते हुए बोले, हे नाथ! यह सभी तो आपकी अहैतुकी कृपा का ही परिणाम है।

मास पारायण चौदहवाँ विश्राम

परम प्रसन्न जानि मुनि काहीं । पुनि पुनि पुलकत कुँअर सुहाहीं ॥
बोले बचन नाइ पद माथा । आरत मय बनि दीन सुगाथा ॥

मुनिश्रेष्ठ श्री बसिष्ठ जी को परम प्रसन्न जानकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी बार–बार पुलकित शरीर सुशोभित हो, चरणों में शीश झुका दण्डवत प्रणाम कर दीन बने हुये आर्ति भरी वाणी से बोले–

नाथ अमित तव कृपा विलोकी । करौं ढिठाई एक अशोकी ॥
याज्ञवल्यक्य निमि कुल गुरु ज्ञानी । कहे वचन मोहि निज जन जानी ॥

हे नाथ! आपकी असीम कृपा को देखकर मैं निर्भय हो हठपूर्वक आपसे एक विनती (धृष्टता) कर रहा हूँ, कि– निमिकुल के आचार्य, परम ज्ञानवान श्री याज्ञवल्क्य महाराज ने मुझे अपना सेवक समझकर बताया था कि–––

कवन सिया अरु को श्री रामा । युगल तत्व निरुपाधि ललामा ॥
जानहिं रघुकुल गुरू वसिष्ठा । सब बिधि दर्शी सूक्ष्म वरिष्ठा ॥

–––श्री सीता जी तथा श्री राम जी महाराज कौन हैं? इन दोनों के निरुपाधिक (सहज) सुन्दर तत्व को रघुकुल के गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी ही यथार्थतः जानते हैं। वे सभी प्रकार से सूक्ष्मदर्शी और श्रेष्ठ हैं।

ताते विनय करौं मुनि राई । करिय कृपा निहैतु सुहाई ॥
युगल तत्व प्रभु मोहि लखाइय । सीय राम पद प्रीति दृढ़ाइय ॥

इसलिए हे मुनिराज! मैं आपसे विनय कर रहा हूँ कि– मुझ पर अपनी अकारण व सुन्दर कृपा कीजिए तथा मुझे "श्री सीताराम तत्व" का बोध करा कर श्री सीताराम जी के चरणों में मेरी प्रीति को दृढ़ कर दीजिए।

दो०–अस कहि चरणन गिरि कुँअर, पद रज शीश चढ़ाय ।
श्रवण हिये अति लालसा, नयन रहेउ जल छाय ॥३०६॥

ऐसा कह कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी के चरणों में गिरकर उनके

चरणों की पावन धूलि को शिर में चढ़ा किये, उस समय उनके हृदय में युगल तत्व श्रवण करने की तीव्र लालसा जागृत हो गई थी तथा नेत्र अश्रु पूरित हो गये थे।

सुनि विनीत मृदु मंजुल बानी । भाव भरी हिय चाह चुआनी ॥
कह वसिष्ठ सुनु निमिकुल वारा । गुरु प्रसाद जानहु सब सारा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की कोमल, सुन्दर, विनय युक्त, भाव परिपूर्ण व हृदय में भगवत्तत्व की जिज्ञासा से ओत–प्रोत वाणी को सुनकर श्री बसिष्ठजी ने कहा– हे निमिकुल नन्दन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप तो अपने गुरुदेव श्री याज्ञबल्क्य जी के कृपा प्रसाद से सभी सार–तत्व भली भाँति जानते हैं।

तदपि तुम्हार प्रीति अति देखी । भयो भाव वश मुदित विशेषी ॥
सीता राम तत्व समुझाई । कहौं सुनहु मन चित बुधि लाई ॥

तथापि मैं आपकी अपने प्रति अतिशय प्रीति को देखकर आपके भाव के वशीभूत हो विशेष आनन्दित हूँ, अब मैं समझाकर "श्री सीताराम तत्व" का वर्णन कर रहा हूँ, आप उसे मन, चित्त और बुद्धि लगाकर श्रवण करिये।

परब्रह्म श्री राम गोसाँई । आत्मा तासु सिया सुखदाई ॥
परमाह्मदिनि शक्ति अनूपी । अपृथक ब्रह्म सिया सुख रूपी ॥

श्री राम जी महाराज पूर्णतम परब्रह्म हैं और उनकी आत्मा, सुख प्रदायिनी श्री सीता जी हैं। अनुपमेय परमाह्लादिनी शक्ति जो ब्रह्म से सर्वथा अभिन्न व सुख स्वरूपा है, वही श्री सीता जी हैं।

शक्ति अचिन्त्य ब्रह्म नहिं जानी । महा महिम्ना सिय गुण खानी ॥
उपजहिं जासु अंश बहुतेरी । शक्ति करन जग कार्य घनेरी ॥

श्री सीता जी की अचिन्त्य शक्ति को स्वयं पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी भी नहीं जान सकते। श्री सीता जी ऐसी महा महिमा सम्पन्ना व गुणों की खानि हैं, जिनके अंश से अनन्त शक्तियाँ, संसार के उत्पति, पालन व संहार आदि सभी कार्यो को करने हेतु उत्पन्न होती हैं।

दो०–ब्रह्म राम जाकर सुनहु, पाये कबहुँ न थाह ।
इदमित्थं को कवि कहै, राम अहैं जेहि नाह ॥३०७॥

पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज भी जिनकी इयत्ता का अनुमान नहीं कर पाते। वे श्री सीता जी ऐसी ही हैं (इतनी हैं) ऐसा कौन कवि कह सकता है जिनके प्राणपति (स्वामी) स्वयं श्री राम जी महाराज हैं।

उद्भव पालन प्रलय कारिणी । आनँदमय नित रूप धारिणी ॥
क्लेश हरणि सब श्रेय प्रदायिनि । सत चिद रूप राम मन भायिनि ॥

वे अखिल ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय करने वाली, नित्य, आनन्द स्वरूपा, जीवों के दुखों का हरण करने वाली, सभी को श्रेष्ठता प्रदान करने वाली, सच्चिद् रूपिणी तथा श्री राम जी महाराज के मन को अतिशय प्रिय लगने वाली हैं।

स्ववश विहारिणि रसमय रूपा। रस भोगी रसदानि अनूपा ॥
घट घट वास करति अनुरागी। प्रीति पुनीत जीव के लागी ॥

श्री सीता जी, रस स्वरूप श्री राम जी महाराज के प्रेम के वशीभूत हो, विहार करने वाली, उनके प्रेम–रस का उपभोग करने वाली तथा उन्हे अनुपमेय रस प्रदान करने वाली हैं। वे प्रेम पूर्वक घट–घट में निवास करती है तथा सभी जीवों के लिए उनके हृदय में पवित्र प्रीति समाहित रहती है।

मातु अनन्त प्यार हिय जाके। वसत जीव हित अति करुणा के ॥
जा बिन बृक्ष पात नहि हिलई। सुख की गंध कतहुँ नहिं मिलई ॥

जिनके हृदय में सम्पूर्ण जीवों के लिए अतिशय करुणा और अनन्त माताओं का प्यार निवास करता है, जिनकी इच्छा के बिना वृक्षों के पत्ते तक नहीं हिल सकते तथा कहीं भी सुख की सुगन्धि तक प्राप्त नहीं हो सकती,––

सो सीता कर अमित प्रभावा। नेति नेति कहि वेदन गावा ॥
जेहिं प्रकाश सब रहत प्रकाशी। चेष्टित जगत जासु बल भाषी ॥
विद्याऽविद्या माया चेरी। निरखत भौंह रहैं जेहिं केरी ॥

–––उन्हीं श्री सीता जी का ऐसा असीमित प्रभाव है, जिनकी इयत्ता का पार न पाकर वेदों ने नेति नेति कह कर गायन किया है, जिनके परम प्रकाश से सभी कुछ प्रकाशित रहता है, सम्पूर्ण संसार की क्रियाएँ जिनके बल से ही संचालित होती है तथा विद्या व अविद्या आदि माया भी जिनकी दासियाँ है और जिनके भ्रू विलास (इच्छा) को देखती हुई अपने कार्य करती रहती है।

दो०– ब्रह्मा विष्णु महेश सब, निज निज शक्ति समेत।
करैं जगत कर कार्य बड़, जेहि बल निज चित चेत ॥३०८॥

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शंकर जी आदि सभी देवता अपनी शक्तियों सहित जिनके बल से अपने चित में सजगता पूर्वक संसार के महान कार्य सृजन, संरक्षण व संहार आदि करते रहते हैं।

राम प्रिया जो जनक दुलारी। भगिनि तुम्हार प्राण सम प्यारी ॥
धारक पोषक सबहिन केरी। योग क्षेम नित करै ह्हेरी ॥

वही श्री सीता जी, श्री जनक जी महाराज की दुलारी पुत्री, श्री राम जी महाराज की प्रियतमा हैं तथा आपकी प्राणों के समान प्यारी बहन हैं। वे सभी का धारण व पोषण करने वाली तथा नित्य ही अपने हृदय में स्वयं का अनुसन्धान करते हुए सभी का योग और क्षेम (भगवत्प्राप्ति का योग और उसकी सुरक्षा कर) वहन करने वाली हैं।

जीवहिं रामहिं देय मिलाई। करि करि निज उपदेश अमाई ॥
अमित कृपा उपदेश सुनाई। जीव ब्रह्म सम्बन्ध दिखाई ॥

श्री सीता जी जीवों व श्री राम जी महाराज दोनों को नित्य, निर्मल व अप्राकृत उपदेश कर से उनका परस्पर योग करा देने वाली तथा असीमित कृपा करते हुये, उन्हें उपदेश सुनाकर जीव और

ब्रह्म के सहज व शाश्वत सम्बन्ध को प्रगट करने वाली हैं।

ब्रह्म जीव दूनहु हित सीता । करति सदा सुठि प्रेम पुनीता ॥
बिनु सिय कृपा जीव निस्तारा । कबहुँ न होय सुनहुँ निमि वारा ॥

श्री सीता जी तो ब्रह्म व जीव दोनों का पवित्र प्रेम पूर्वक सुन्दर हित करती रहती है। हे निमि नन्दन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुनिये! श्री सीता जी की कृपा के बिना जीवों का निस्तार कभी भी नहीं हो सकता।

सदा दयामय रूप सुहाई । करति जीव हित सत श्रुति गाई ॥
ब्रह्म राम कर मिलन सुहावा । सीय कृपा बिनु कोउ न पावा ॥

सदैव सुन्दर दयामय सवरूप वाली श्री सीता जी जीवों का सच्चा हित करती रहती हैं, ऐसा श्रुतियों ने गायन किया है। श्री सीता जी की कृपा के बिना परब्रह्म श्री राम जी महाराज के सुन्दर मिलन को कोई भी नहीं प्राप्त कर सकता।

दो०–सिय बिनु लीला जगत मय, सत चित आनँद रूप ।
कबहुँ न होवै सत्य यह, सीता जगत स्वरूप ॥३०९॥

यह बात सर्वथा सत्य है कि– इस संसार की सच्चिदानन्मयी लीला कभी भी सर्वेश्वरी श्री सीता जी के बिना सम्पादित नहीं हो सकती, क्योंकि श्री सीता जी ही संसार स्वरूपा हैं।

ब्रह्म राम प्रति प्रति अवतारा । करहिं जो लीला जगत मझारा ॥
सो सब करति सीय सुख दानी । राम अकर्त अचल सुख सानी ॥

पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज इस संसार में, प्रत्येक अवतार में जो चरित्र करते हैं वह सम्पूर्ण चरित्र सुख प्रदान करने वाली श्री सीता जी ही यथार्थतया करती है क्योंकि परमानन्द में निमग्न श्री राम जी महाराज तो कुछ न करने वाले (अकर्ता) तथा अचल हैं।

जीव मोह वश रामहि रोपी । कर्तृ भाव कहि निज मति थोपी ॥
सिय बिन ब्रह्म राम असमर्था । प्रभा हीन जिमि भानु यथर्था ॥

मोह के वशीभूत होकर जीव, सभी कार्यो को करने का कर्तृत्व भाव श्री राम जी महाराज में आरोपित कर देते हैं और अपनी बुद्धि को सत्य के ऊपर आच्छादित कर देते हैं परन्तु यथार्थ यही है कि श्री सीता जी के बिना पूर्णब्रह्म श्री राम जी महाराज भी उसी प्रकार कुछ कार्य करने में असमर्थ है जिस प्रकार बिना किरणों के सूर्य।

सीता रमण राम रघुराई । ता बिन आनन्द नेकु न पाई ॥
जो कछु लखिबो सुनिबो होई । समुझब अनुभव जिव कर जोई ॥

श्री राम जी महाराज तो श्री सीता जी में रमण करने वाले सीता–पति है, वे उनके बिना किंचित भी आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते। जीवों में देखना, सुनना, समझना और अनुभव करना आदि जो कुछ भी क्रियायें होती है–––

तीनहु काल गुनहु मन माहीं । सीय छाड़ि कछु दूसर नाहीं ॥
सीता कर सब लखहु पसारा । ता बिनु जानहु सकल असारा ॥

————वे सभी तीनों कालों में भी श्री सीता जी से अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है, हे निमि नन्दन! ऐसा आप अपने मन में समझ लीजिये। आप ऐसा समझिये कि– यह संसार श्री सीता जी का ही सम्पूर्ण विस्तार है और उनके बिना सभी सार हीन है।

दो०–सीय महा महिमा कुँअर, जानहिं इक श्रीराम ।
ता अनुभव सुख सनि रहैं, कहि न सकैं गुण ग्राम ॥३१०॥

हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! यद्यपि श्री सीता जी की महान महिमा को एक मात्र श्री राम जी ही जानते हैं तथापि वे भी, उनके अनुभव के सुख में सने रहने के कारण उसका वर्णन नहीं कर सकते।

सीता ब्रह्म पृथक है नाहीं । ब्रह्महिं सीता नाम सोहाहीं ॥
कुँअर अग्नि अरु दाहक शक्ती । अलग करै नहिं कोउ मुख वक्ती ॥

श्री सीता जी ब्रह्म से अलग नहीं है, स्वयं ब्रह्म ही सुन्दर श्री सीता नाम से सुशोभित होता है। हे कुमार! जिस प्रकार आग और उसकी जलाने की शक्ति को कोई भी मुख से कहकर अलग नहीं कर सकता।———

जल अरु जल द्रवता जिमि एकी । राम सीय तिमि कहैं विवेकी ॥
यथा इत्र अरु तासु सुगंधी । एक तत्व बुध कहहिं प्रबन्धी ॥

———जिस प्रकार जल और उसकी द्रवता दोनो एक ही है उसी प्रकार ज्ञानीजन श्री सीता जी व श्री राम जी महाराज को भी एक कहकर बखान करते हैं। जिस प्रकार इत्र व उसकी सुगन्ध को बुद्धिमान जन शास्त्रों में एक तत्व कहकर ही वर्णन करते हैं,———

पवन और स्पन्दन काहीं । कहत अलग कोऊ बुध नाहीं ॥
दुग्ध और तेहिं केर सपेती । मानत एकहिं सब चित चेती ॥

———हवा और हवा के प्रवाह को कोई भी प्रबुद्धजन अलग नहीं कहते, तथा दूध और उसकी धवलता (सफेदी) सभी एक ही मानते हैं———

यथा ईख रस तासु मिठाई । अलग अलग कछु नाहिं लखाई ॥
चन्द्र चन्द्रिका एकहिं जानौ । तैसहिं राम सिय कहँ मानौ ॥

———जिस प्रकार गन्ने का रस और उसकी मिठास में कुछ भी अलग नहीं समझ पड़ता, चन्द्रमा और चाँदनी दोनों सभी को एक ही समझ आती है उसी प्रकार श्री राम जी महाराज और श्री सीता जी दोनों को आप एक ही समझिये।

भानु प्रभा केवल दुइ नामा । तत्व भेद एकहुँ नहिं तामा ॥
यथाकाश नीलिमा सुजोई । एकहिं तत्व गिनै बुध लोई ॥

सूर्य तथा किरणे जैसे केवल नाम ही दो हैं, तत्वतः उनमें किंचित अन्तर नहीं है, जिस प्रकार आकाश और दिखने वाला सुन्दर नीला वर्ण दोनों को प्रबुद्धजन एक ही तत्व समझते हैं।

दो०—तस विचारि धी धारि सुत, ब्रह्म तत्व सत सीय ।
सीय तत्व ब्रह्महिं गुनहुँ, करहु न संशय हीय ॥३११॥

———हे तात श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप, उसी प्रकार का बिचार अपनी बुद्धि में धारण कर लीजिये कि— "श्री सीता जी ही सत्य रूप से, पूर्ण ब्रह्म "श्री राम तत्व" हैं तथा पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज को ही आप श्री सीता तत्व समझिये, इस तथ्य में अपने हृदय में किंचित शंका मत कीजिये।

सो०—राम तत्व समुझाय, कहौं कुँअर सादर सुनहु ।
कहनी में नहि आय, समुझत बनै सुबुद्धि पर ॥

रघुकुल गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी ने कहा— हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! अब मैं समझाकर श्री राम तत्व का बखान कर रहा हूँ, आप आदरपूर्वक श्रवण कीजिये। यह "राम तत्व" अकथनीय है, कहने में नहीं आ रहा इसे तो केवल सुन्दर बुद्धि के द्वारा ही समझा जा सकता है।

अनुभव गम्य अकथ रघुराया । नेति नेति श्रुति बहु विधि गाया ॥
जेहिं ते उपज्यो विश्व विराटा । रहै जासु मधि सब जग ठाटा ॥

श्री राम जी महाराज को अनुभव के द्वारा ही जाना जा सकता है, वे अकथनीय हैं, उनका श्रुतियों ने विविध प्रकार से नेति—नेति कहकर गायन किया है। यह सम्पूर्ण महान संसार जिनसे उत्पन्न हुआ है, तथा इस संसार की स्थिति जिनके द्वारा सुरक्षित है———

बहुरि होय लय जेहिं महँ सारा । ता कहँ राम कहैं बुधि वारा ॥
जेहिं ते प्राण प्राण युत रहई । निश्चय करन शक्ति बुधि लहई ॥

———पुनः जिनमें यह संसार विलीन हो जता है, विज्ञजन उसे ही श्री राम कहते हैं। जिनके द्वारा जीवों के प्राण प्राणित होते हैं, बुद्धि निश्चय करने की शक्ति प्राप्त करती है,———

मनन करन शक्ती मन पावै। चिन्तन जेहिं बल चित्त लगावै ॥
अहं जासु बल अस्मि विकासै। चक्षु चक्षु बनि नित्य प्रकाशै ॥

———मन, मनन करने की शक्ति प्राप्त करता है, चित्त जिनके बल से चिन्तन करता है, जिनके बल से अहंकार में अस्तित्व का विकास होता है, जो नेत्रों का भी नेत्र बनकर नित्य प्रकाशित होता है———

श्रवण श्रवण जो घ्राणन घ्राणा । परश शक्ति जेहिं ते त्वक आना ॥
रसना जेहिं बल नित रसग्राही । ब्रह्म राम जानहु तेहिं काहीं ॥

जो कर्ण का भी कर्ण है व नासिका की भी नासिका है, जिसके द्वारा त्वचा में स्पर्श करने की शक्ति आती है, जिह्वा जिसके बल से ही नित्य रस ग्रहण करती है, उसे ही आप परब्रह्म श्रीराम

समझ लीजिये।

दो०–मुख कर पद गुद लिङ्ग सब, जेहिं बल कर नित कर्म ।
सोइ राम रघुवंश मणि, वेद न जानत मर्म ॥३१२॥

सभी के मुख, हाथ, पैर, गुदा और लिंग आदि सम्पूर्ण अंग जिनके बल से नित्य अपने–अपने कार्य करते रहते हैं वे ही श्री रघुवंश में मणि स्वरूप श्री रामजी महाराज हैं जिनका रहस्य वेद भी नहीं जान पाते।

जीवन जीव पुरुष अविकारी । परम प्रकाशक जन सुखकारी ॥
स्वयं प्रकाश रूप रघुनन्दन । मोह तिमिर नाशक जगवन्दन ॥

श्री राम जी महाराज तो, जीवों के भी जीव, सम्पूर्ण विकार रहित, पुरुषोत्तम, परम प्रकाशवान, अपने जनों को सुखी करने वाले, स्वयं प्रकाश स्वरूप, मोहान्धकार को विनष्ट करने वाले तथा सम्पूर्ण संसार के वन्दनीय हैं।

सत चित आनन्द तत्व ललामा । ता कहँ वेद भनै नित रामा ॥
राम शब्द ही ब्रह्म महाना । वाचक वाच्य एक कर जाना ॥

जो सुन्दर सच्चिदानन्दात्मक तत्व है उसे ही वेद नित्य, श्री 'राम' कहते हैं। "श्री राम" शब्द ही महान ब्रह्म है, वाचक व वाच्य (नाम और नामी) दोनो को एक ही समझना चाहिए।

जेहिं पर तत्व रमैं नित योगी । सोइ राम जानहिं कवि लोगी ॥
अणु अणु महँ जो रमा सुभावा । ता कहँ वेद राम कहि गावा ॥

जिस परम तत्व में योगीजन नित्य रमें रहते है, विद्वज्जन उसी तत्व को 'श्री राम' जानते हैं। जो अणु–अणु में सर्वत्र स्वाभाविक रूप से रमा हुआ है वेदों ने उसे ही 'श्रीराम' कह कर गायन किया है।

जासु प्रकास प्रकृति जग मूला । अण्ड अनंत रचै अनुकूला ॥
सोइ राम रघुवर सुख धामा । जानहु परम तत्व निज भामा ॥

जिनकी सकाशता से ही संसार की मूल स्वरूपा (उत्पत्ति–भूता) प्रकृति अनुकूल होकर अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना करती है श्री रघुकुल श्रेष्ठ व सुख के धाम श्री रामजी महाराज वे ही हैं। अतः हे कुँअर! आप अपने बहनोई श्री राम जी महाराज को परम तत्व ही समझिये।

दो०–जाकहँ कोउ जानैं नहीं, सब कहँ जानै सोय ।
सर्व परे सब सो अलग, राम कहैं तेहिं लोय ॥३१३॥

हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! जिन्हें कोई भी नहीं जानता तथा जो सभी को जानने वाले हैं, जो सभी से श्रेष्ठ और सभी से अलग हैं उन्हें ही सभी 'श्रीराम' कहते हैं।

घट घट वास करै प्रभु जोई । ताकहँ राम कहैं सब कोई ॥
आदि अन्त बिनु अक्षर एका । नित्य अचल अज तत्व विवेका ॥

जो प्रभु समस्त घट–घट में निवास करते हैं उन्हें ही सभी श्री राम कहते हैं। आदि और अन्त रहित, अविनाशी, एक, नित्य, अचल, अजन्मा तथा परम ज्ञान वान–––

सहज प्रकाश सत्य पर धामा । वर विज्ञान अरूप अकामा ॥
परम पुरुष परमारथ रूपा । राम ब्रह्म तेहिं कहैं अनूपा ॥

–––सहज–प्रकाशवान, सत्य–स्वरूप, परम–धाम (परम पद), श्रेष्ठ, विज्ञानमय, बिना आकार का (निराकार) व समस्त कामनाओं से रहित जो परमार्थ स्वरूप, परम पुरुष हैं उसे ही अनुपमेय पूर्णब्रह्म 'श्रीराम' कहते हैं।

मन बुधि परे वाक के पारा । इन्द्रिय कर नहिं विषय अपारा ॥
अनुभव रूप कहैं जेहि ज्ञानी । राम तत्व सोई सुख खानी ॥

जो मन, बुद्धि और वाणी के परे, असीम व इन्द्रियों के विषय नहीं है, जिसे ज्ञानीजन अनुभव में आने वाला कहते हैं वही सुखों की खानि 'श्री राम तत्व' हैं।

ईश ईश कर ईशन कर्ता । शक्ति अचिन्त्य सबहिं कर भर्त्ता ॥
वेद वेद्य विभु अकल अनामय । सब समर्थ तद्यपि करुणामय ॥

जो ईश्वर के भी ईश्वर, सभी पर शासन करने वाले, अचिन्तनीय शक्ति से सम्पन्न, सभी के स्वामी, वेदों के द्वारा जानने योग्य, विभु, निष्कल, निर्मल तथा सर्व समर्थ होते हुए भी करुणा से ओत–प्रोत है–––

दो०–कालहुँ कर है काल जो, सम अतिशय नहि कोय ।
माया पति माया परे, राम ब्रह्म सुनु सोय ॥३१४॥

–––हे कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, जिनके समान व आधिक्य में कोई भी नहीं है, जो काल के काल, माया के पति और माया से परे हैं वही पूर्णब्रह्म श्री राम जी महाराज हैं।–––

एक परात्पर नित्य अनंता । हैं चिदात्म व्यापक सियकन्ता ॥
गुणातीत वर अमल सुजोती । महा महिम तारक भव पोती ॥

–––जो अद्वितीय (एक), श्रेष्ठाति–श्रेष्ठ, नित्य, अनंत, चिदात्मक व सर्व व्यापक हैं वे ही सीताकान्त श्री राम जी महाराज है। जो गुणों से परे, परम शोभन, निर्मल, प्रकाश स्वरूप, महान महिमा सम्पन्न, जीवों के उद्धारक, संसार सागर से पार उतारने के लिए जहाज स्वरूप–––

युग पद अमित अचिंत्य परस्पर । बहु विरोधि गुणधर्म नित्यधर ॥
गति भर्ता साक्षी सबही का । शरण सुहृद प्रभु प्रेरक जी का ॥

–––युगल पाद विभूतियो से सम्पन्न, असीम, चिन्तन में न आने वाले (अचिन्त्य), परस्पर विविध विरोधी गुणधर्मो के नित्य धारक, सभी की एकमात्र गति, सभी के स्वामी, सबके शरण (रक्षक), सभी के मित्र, सभी के ईश्वर, सभी के हृदय के प्रेरणा श्रोत,–––

अपति अशासित अमर अरूपा । मात पिता बिना नित्य अनूपा ॥
जगदात्मा कल्याण निधाना । सर्वभूत आधार प्रमाना ॥

———सर्व पति, किसी से शासित न होने वाले, मृत्यु को न प्राप्त होने वाले, निराकार, बिना माता–पिता के, शाश्वत, अनुपमेय, संसार की आत्मा, कल्याण के निधान, सभी के आधार और साक्षी,———

हृषीकेश जग बीज सुगूढ़ा । सर्व भूतमय लखहि न मूढ़ा ॥
कर्म शुभाशुभ दायक ईशा । परम विधायक विभु जगदीशा ॥

———इन्द्रियों के स्वामी, संसार के बीज, गम्भीर–आशय, सभी भूतों में विद्यमान रहने वाले, अज्ञानियों के लिये अदृश्य, शुभ और अशुभ कर्म के फलों के दाता, सर्वेश्वर, सभी के विधायक, भगवान, संसार के ईश (स्वामी) हैं।———

सूर्य चन्द्र तारक अरु चपला । अग्नि प्रकाश तहाँ नहि अबला ॥
अंश प्रकाश जासु ये सिगरे । रहैं प्रकाशित सह सब जगरे ॥

———वहाँ सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, विद्युत, अग्नि व प्रकाश आदि की स्थिति निर्बल व नगण्य रहती है, ये सभी, सम्पूर्ण संसार सहित जिनके अंश–मात्र प्रकाश से प्रकाशित रहते हैं,———

दो०– ताहि कहत श्रुति संत जन, राम नाम सुख दानि ।
परम हंस अन्तर हृदय, अणु अणु अहै समानि ॥३१५॥

———उन्ही को श्रुतियाँ तथा संतजन सर्व सुख प्रदायक "श्री राम" नाम से पुकारते हैं जो परब्रह्म स्वरूप, सभी के हृदय में निवास करने वाला तथा सर्वत्र अणु–अणु में समाया हुआ है।———

परम तत्व जेहिं मध्य कुमारा । ज्ञानाज्ञान न रहै पसारा ॥
यथा सूर्य बिच दिन अरु राती । कहत न बनै समुझि सब भाँती ॥

———हे कुमार लक्ष्मीनिधि! वही परम तत्व है, जिसके मध्य में ज्ञान और अज्ञान की स्थिति नहीं दिखाई पड़ती। जिस प्रकार सूर्य में दिन और रात का अस्तित्व कहते नहीं बनता उसी तरह सभी प्रकार से इसे भी समझिये।———

अणु सो अणु अरु महत महाना । सोई तत्व राम भगवाना ॥
सत्ता मात्र स्वतंत्र विलासी । निर्गुण सगुण विशेषण जासी ॥

———जो अणु से भी अणु अर्थात् सूक्ष्म तथा महान से भी महान है वही तत्व भगवान श्री राम हैं। जो स्वतन्त्र–सत्ता में सदा विलास करने वाले व सगुण और निर्गुण विशेषणों से युक्त हैं।———

विश्वरूप गुण धाम सुहावा । जासु भेद ब्रह्मादि न पावा ॥
बिन इन्द्रिय नित विषय सुग्राही । श्रुति पुराण सब संत कहाहीं ॥

———जो विश्व–रूप, समस्त गुणों के धाम व परम शोभनीय है, जिसका रहस्य श्री ब्रह्मा जी आदि देवता भी नहीं पा सकते, जो बिना इन्द्रियों के सभी विषयों को ग्रहण करता है, ऐसा श्रुतियाँ, पुराण और सभी संतजन कहते हैं।———

जासु रहत सब जग प्रिय भावै । जासु बिना जग मृतक कहावै ॥
सोइ तत्व रघुनायक रामा । ऋषि मुनि जपैं जासु जस नामा ॥

———जिनके रहने से ही सम्पूर्ण संसार प्रिय लगता है तथा जिनके अभाव में संसार मुर्दा (शव) कहलाने लगता है वही तत्व रघुकुल के नायक श्री राम जी महाराज हैं जिनके नाम और कीर्ति का जप ऋषि और मुनि किया करते हैं।———

दो०—असत अविद्या भास सत, जासु सत्यता तात ।
सोइ राम रघुकुल तिलक, सत्य गिनौ मम बात ॥३१६॥

———हे तात्! जिसकी सत्यता से असत्य अविद्या भी सत्य प्रतीत होती है श्री रघुकुल के तिलक श्री राम जी महाराज वही हैं, आप मेरी वार्ता को सत्य समझिये।———

ऋषि मुनि बुध बहु वेद पुराना । अस वरणहिं व्यवहार सुजाना ॥
कहौं त्रिसत्य कुँअर सुनि लेहू । कहत न बने तत्व वर एहू ॥

———हे सुजान श्री लक्ष्मीनिधि जी! ऋषि, मुनि, विद्वज्जन तथा बहुत से वेद व पुराण व्यवहार में ऐसा ही वर्णन करते हैं। हे कुमार! मैं त्रिसत्य कह रहा हूँ, आप सुनें, यह तत्व वाणी का विषय नहीं है अर्थात् वाणी द्वारा इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।———

अज्ञन हित व्यवहारिक वाचा । श्रुति निर्देश अहे सुत साँचा ॥
वास्तव महँ पर तत्व महाना । कारण कार्य परे अलखाना ॥

———हे तात्! व्यवहारिक वाणी में अज्ञानियों के लिए ही श्रुतियों का सच्चा निर्देश है। यथार्थतः तो वह महान परम तत्व कारण और कार्य से पृथक ही समझ में आता है।

भयौ न काहू सो वह ताता । तासो भयो न कछु सत बाता ॥
करत स्वयं स्वे स्वेन विहारा । आनन्द रूप एकरस सारा ॥

हे तात लक्ष्मीनिधि जी! सत्य बात तो यही है, कि— वह परमात्मा न तो किसी से उत्पन्न हुआ है और न ही उससे कुछ भी उत्पन्न हुआ। वह आनन्द स्वरूप परमात्मा, एकरस तथा सार—भूत बना हुआ, सभी में स्वयं ही, स्वयं के लिए स्वयं में, विहार कर रहा है।

सब ओरहिं परिपूरण भासा । सत चित आनँद स्वयं प्रकाशा ॥
द्वैताद्वैत अनेकहुँ एका । नहीं अहे तहँ सत्य विवेका ॥

वह सच्चिदानन्दमय ब्रह्म स्वयं प्रकाशित व सभी ओर से परिपूर्ण है। विवेक दृष्ट्या वहाँ पर द्वैत, अद्वैत, अनेक व एक कुछ भी नहीं है।

दो०—निर्गुण सगुणहुँ सत असत, पर अरु अवर सुशब्द ।
सूक्ष्म थूल पुनि जानियहु, नहीं तहाँ है लब्ध ॥३१७॥

यह आप जान लीजिये, कि— वहाँ पर निर्गुण—सगुण, सत्य—असत्य, पर—अवर, सूक्ष्म—स्थूल आदि नाम के लिये भी कुछ प्राप्त नहीं है ।

शून्याशून्य कहत नहिं बनई । केवल केवल केवल भनई ॥
यथा सिन्धु निज सहज स्वभावा । सदा लहरमय दिखै सुहावा ॥

वह शून्य तथा अशून्य कहते नहीं बनता उसे तो त्रिवाचा 'केवल' ही कहते हैं। जिस प्रकार समुद्र अपने सहज स्वभाव में सुन्दर लहरों के रूप में सदैव दिखलाई पड़ता है–––,

तथा ब्रह्म रसमय रसरूपा। लगत सृष्टिमय सहज अनूपा ॥
ब्रह्म सूत्र अरु पट संसारा। ब्रह्म बिना नहिं अन्य अकारा ॥

–––उसी प्रकार रसमय, रसस्वरूप परब्रह्म सहज ही अनुपमेय संसार के रूप में दिखाई देता है। ब्रह्म, सूत्र (धागा) है तथा संसार, वस्त्र है अतः जिस प्रकार सूत्र के बिना बस्त्र का कोई अस्तित्व नही है उसी प्रकार ब्रह्म के बिना संसार का कोई भी अस्तित्व नहीं है।

यथा सिन्धु अरु लहर अभेदा । सूत्र वस्त्र एकहिं सब वेदा ॥
तथा ब्रह्म अरु जगत सुहायो। अज्ञ दृष्टि दुइ नाम धरायो ॥

जिस प्रकार समुद्र और लहर दोनों अभिन्न हैं, सूत तथा वस्त्र दोनों को सभी लोग एक ही कहते हैं उसी प्रकार ब्रह्म और संसार दोनो एक ही है किन्तु अज्ञानियों की दृष्टि में ही दो नाम धारण किये हुये हैं।

कहौं त्रिसत्य अहैं पर्यायी । जगत ब्रह्म एक तत्व महाई ॥
ब्रह्म राम अतिरिक्त सुजाना । किंचित वस्तु न लोक दिखाना ॥

मैं त्रिसत्य कह रहा हूँ कि– ब्रह्म और संसार दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची और एक ही महान तत्व हैं। हे कुमार लक्ष्मीनिधि! ब्रह्म श्री रामजी महाराज के अतिरिक्त (अलावा) संसार में किंचित भी कोई वस्तु नहीं दिखायी देती है।

दो०–परम तत्व वर्णन कियो, अब लगि जौन कुमार ।
शंकर साखि त्रिसत्य कह, सो है भाम तुम्हार ॥३१८॥

हे कुमार! मैं भगवान श्री शंकर जी की साक्षी देकर त्रिसत्य कहता हूँ कि– अब तक मैंने जिस परम तत्व का वर्णन किया है, वही तत्व आपके भाम (बहनोई) श्री राम जी हैं।

पूर्ण ब्रह्म दाशरथी रामा । सत चित आनन्द शिव परधामा ॥
दृष्ट अदृष्ट सुना जो जाई । आँख विषय बनि देय दिखाई ॥

श्री दशरथ जी महाराज के पुत्र, श्री राम जी ही सच्चिदानन्दमय, सभी का परम कल्याण करने वाले व परम धाम (परमपद) स्वरूप हैं। जो कुछ देखा हुआ है, जो नहीं देखा गया है, जो श्रवण किया जाता है, जो नेत्रों का विषय बन कर दिखाई पड़ता है।–––

मनन निदिध्यासन जो होवै । अनुभव महँ नित जो नर जोवै ॥
राम छोड़ि कछु दूसर नाहीं । समुझहु कुँअर सत्य मन माहीं ॥

–––जो कुछ भी मन से मनन व निदिध्यासन का विषय है तथा जो कुछ भी नित्य मनुष्यों के अनुभव में आता है वह सभी श्री राम जी महाराज के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप इसे मन में सत्य समझ लीजिये।

कर्त्ता क्रिया करण अरु कर्मा। अधिष्ठान पुनि गुनहु सुमर्मा ॥
विषय करण सुर जीव सुजाना। जानहु सबै राम भगवाना ॥

हे सुजान, कुमार लक्ष्मीनिधि जी! आप उन्हें, कार्य करने वाला (कर्ता), होने वाली चेष्टायें (क्रिया), इन्द्रियाँ (करण) और किया गया कार्य (कर्म) आदि सभी का मूल–स्थान व रहस्य समझिये। इस शरीर के पाँचों विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गन्ध, पंच ज्ञानेद्रियाँ (नेत्र, त्वक, कर्ण, घ्राण व रसना) पंच कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, मुख, गुदा व लिंग), शरीर स्थित सभी देवता तथा जीवात्मा इन सभी को आप भगवान श्री राम जी की जानिये–

मूल प्रकृति गुण अरुऽहंकारा। मन चित बुद्धि राम हैं सारा ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिईशा। रामहिं अहहिं सत्य जगदीशा ॥

प्रकृति के मूल, समस्त गुण तथा अहंकार, मन, चित व बुद्धि आदि अन्तःकरण चतुष्टय सभी श्री राम जी महाराज ही हैं। सम्पूर्ण जगत के स्वामी श्री राम जी महाराज ही श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी आदि तीनों ईश्वर हैं।

दो०–अमित अमित लोकेश जे, विष्णु रूप सुख सार ।
रामहिं तिन कहँ जानियहु, मन वुधि वाणी पार ॥३१९॥

जो मन, बुद्धि और वाणी के परे, समस्त सुखों के सार श्री विष्णु जी के स्वरूप, असीमित लोकों के ईश्वर हैं उन्हें भी आप श्री राम जी ही जानिये।

कृष्णादिक अवतार अनंता । जानिय रामहिं सत बुधिमंता ॥
लोकपाल दिकपाल जहाँ लौं । सो सब जानहु राम तहाँ लौ ॥

हे प्रज्ञ! श्री कृष्ण आदि अनन्त अवतारों को भी आप सत्य, सत्य श्री राम जी महाराज ही समझिये तथा जहाँ तक लोकपाल व दिकपाल हैं वहाँ तक व उन सभी को श्री राम जी महाराज ही जानिये।

सुर नर मुनि किन्नर गंधर्वा । दानव दैत्य भूत जे सर्वा ॥
मात पिता भगिनी अरु भ्राता। सखा सुहृद जे जग सुखदाता ॥

देवता, मनुष्य, मुनि, किन्नर, गन्धर्व, दानव, दैत्य तथा भूत आदि जो भी योनियाँ हैं, माता, पिता, बहन, भाई, सखा आदि संसार में जो सुख–प्रदायक सम्बन्ध हैं,–––

संत गुरू जड़ चेतन जीवा । सब कहँ जानहु राम अतीवा ॥
पंच भूत अरु तिनके कारा । सो सब जानहु राम कुमारा ॥

–––जो संत, गुरु व जड़ चेतनात्मक सभी जीव हैं उन सभी को आप परम श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज ही समझिये तथा हे श्री कुमार लक्ष्मीनिधि! पाँचों तत्व पृथ्वी, आकाश, जल, वायु व अग्नि व उनके कार्यो आदि सभी को आप श्री राम जी महाराज ही जानिये।

प्रेम रूप रामहि हिय सोहा। काल रूप रामहि जग जोहा ॥
रस प्रकार हिय भाव प्रकारा। छन्द प्रबन्ध भेद व्यवहारा ॥

श्री राम जी महाराज ही प्रेम स्वरूप बनकर सभी के हृदय में सुशोभित होते हैं तथा श्री राम जी महाराज ही काल के स्वरूप हो कर सम्पूर्ण संसार में दिखाई पड़ते हैं। रस के सभी प्रकार, हृदय के सभी भाव, छन्द, प्रबन्धों के भेद और व्यवहार आदि–––

रामहिं गुनहु तात सत जानी । यामहँ संशय नेक न आनी ॥
ऊँचे नीचे चारहुँ ओरा । पूर रहेव सत अवध किशोरा ॥

–––सभी को सत्य, सत्य श्री राम जी महाराज ही समझिये और इस वार्ता में अपने मन में किंचित भी संदेह मत लाइये। हे कुमार! ऊँचे–नीचे, चारो ओर सर्वत्र अयोध्या कुमार श्री राम जी महाराज ही परिव्याप्त हैं।

दो०–जो है अरु जो होयगो, बीत गयो जो होय ।
सो सब रामहिं जानियहिं, सरि जल सम नित जोय ॥३२०॥

जो है 'वर्तमान), जो होने वाला है (भविष्य), जो बीत गया है (भूत), उस सभी को आप श्री राम जी महाराज ही उसी प्रकार समझिये जिस प्रकार नदी में प्रवाहित होने वाला जल तीनो कालों (भूत, भविष्य व वर्तमान) में एक समान ही रहता है।

सीतहिं जानहु राम स्वरूपा । आत्म रूप सब भाँति अनूपा ॥
राम छोड़ि किंचित जग नाहीं । सत्य सत्य रघुनाथ सुहाहीं ॥

आप श्री सीता जी को श्री राम जी महाराज का ही स्वरूप समझिये। वे श्रीराम जी महाराज की आत्मावत व सभी प्रकार से अनुपमेय है। श्री राम जी महाराज को छोड़कर इस संसार में अन्य कुछ भी नहीं है, यथार्थतया संसार के रूप में श्री राम जी महाराज ही सुशोभित हो रहे हैं।

पूर्ण सनातन ब्रह्म उदारा । पुनि पुनि कहौं राम सुखसारा ॥
कृपा सिन्धु निज किरपा तेरे । जन जिय जगत हरैं बिनु बेरे ॥

हे कुमार! मैं बारम्बार कह रहा हूँ कि श्री राम जी महाराज ही पूर्ण, सनातन, परब्रह्म, परम उदार तथा समस्त सुखों के सार हैं। कृपा के सागर वे अपनी कृपा से ही अपने भक्तों के हृदय से अविलम्ब संसार को समाप्त कर देते हैं।

सकृत प्रणाम मात्र गति दाता । भोग मुक्ति भक्ती सुख ताता ॥
राम नाम इन कर जपि प्राणी । आनँद रूप बनै सुख सानी ॥

हे तात! श्री राम जी महाराज तो जीवों को मात्र, एक बार प्रणाम कर लेने से ही सभी प्रकार के भोग, मोक्ष, गति, भक्ति और सुख प्रदान कर देने वाले हैं। इनके श्री राम नाम का जप करके सभी प्राणी आनन्द स्वरूप बनकर सुख में सने रहते हैं।–––

कहहिं सुनहिं जे चरित उदारा । बिनु प्रयास होवहिं भव पारा ॥
निज जन पर ये आपुहिं वारैं । राखत हिय गुनि प्राण अधारैं ॥
नाम रूप लीला अरु धामा । इनके चारहु आनँद नामा ॥

———ऐसा विचार कर जो कोई, इनके उदार चरित्रों का वर्णन तथा श्रवण करता है वह बिना प्रयत्न ही भव से पार हो जाता है। प्रभु श्री राम जी महाराज अपने भक्तों पर अपने आपको न्योछावर किये रहते हैं तथा उन्हें अपने प्राणों का आधार समझ कर हृदय में धारण किये रहते हैं। इनके नाम, रूप, लीला व धाम चारों ही अंग आनन्द स्वरूप है।

दो०—एकहुँ कर आश्रय किये, जीव लहै विश्राम ।
सत चिद आनन्द धाम लहि, बनि रस रूप ललाम ॥३२१॥

श्री राम जी महाराज के नाम, रूप, लीला व धाम इन चारो में से एक का भी आश्रय लेने पर जीव परम सुख प्राप्त करते हैं और सच्चिदानन्दमय धाम को प्राप्त कर सुन्दर रस—स्वरूप बन जाते हैं।

अति उदार इन कर अवलम्बा । सत सत सत सुख देन कदम्बा ॥
शरणापन्न होय इन केरी । प्रेमासक्त भजै हिय हेरी ॥

हे राजकुमार! मैं सत्य सत्य कह रहा हूँ कि—श्री राम जी का आश्रय अत्यन्त ही उदार है, शाश्वत सुख प्रदान करने के लिए यह सुखों की राशि है। अतएव सभी को चाहिए कि— अपने हृदय में ऐसा बिचार कर इनकी शरण में आकर प्रेम और आसक्ति पूर्वक श्री राम जी भजन करें।———

फलासक्ति कर्त्तापन त्यागी । करै राम प्रिय कर्म सुभागी ॥
करि निज धर्म अर्पि फल रामा । प्रेम मूर्ति बनि जाय ललामा ॥

———फल की आसक्ति व कर्त्तापन के अभिमान को छोड़कर, अपने धर्म के अनुसार कर्म करते हुए श्री राम जी महाराज के प्रिय कर्मो का अनुष्ठान करें तथा उसके फल को श्री राम जी महाराज को समर्पित कर सुन्दर प्रेम की मूर्ति बन जायें।

कथा कीरतन बढ़ै सुप्रीती । सब संकल्प नसै मन जीती ॥
महा भाव रस छकै अपारा । तब मिलि सहजहिं राम उदारा ॥

अपने प्रभु श्री राम जी महाराज के चरित्र तथा कीर्तन में उनका सुन्दर प्रेम बढ़ता जाय, मन से सभी प्रकार के संकल्प—विकल्प नष्ट हो जाँय तथा मन को वश में कर असीम महाभाव रस में छक जायें तब उदार श्री राम जी महाराज सहज ही प्राप्त हो जायेंगे।———

नर शरीर साधन फल एहा । लहै राम अरु तिन कर नेहा ॥
आनन्द धाम पाइ नहिं फिरई । वर पुरुषार्थ मनुज तन करई ॥

———क्योंकि मनुष्य शरीर धारण करनें तथा सभी साधनों (भक्ति ज्ञान वैराज्ञ) के अनुष्ठान की सफलता यही है कि— श्री राम जी और उनके प्रेम को प्राप्त कर पुनः मृत्यु लोक में लौट कर वापस न आयें। अतः जीवों को चाहिए कि— मनुष्य शरीर धारण करने के इस परम पुरुषार्थ को अवश्य कर ले।

दो०—शम सन्तोष बिचार शुभ, संत संग दिन रात ।
करत जाय प्रभु प्रेम पगि, रामानन्द समात ॥३२२॥

इस प्रकार जब जीव, अपने मन का निग्रह कर, अनुकूलता व प्रतिकूलता में सदा प्रसन्न हो, शुभ विचारपूर्वक, भगवत्प्रेम में डूबकर संत जनों का अहर्निशि संग करता रहे, तब वह श्री राम जी महाराज के आनन्द में समाया रहेगा।

कुँअर सुनहु मतिमान महाना। दशरथ तनय राम कर ध्याना॥
करत सदा शिव शिवा सुसाथा। अहनिशि रटत राम रघुनाथा॥

हे परम बुद्धिमान, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के प्रिय पुत्र श्री राम जी का ध्यान श्री पार्वती जी के साथ भगवान श्री शंकर जी सदैव करते हैं तथा दिन–रात श्री "राम" नाम रटते रहते हैं।

रघुवर चरित तासु आहारा। कहत सुनत शिव शिवा सुखारा॥
जासु नाम जपि श्रवणन माहीं। देहिं सुगति शिव काशी काहीं॥

श्री राम जी का चरित्र ही भगवान श्री शिव जी का यथार्थ आहार है, जिन्हें सुखपूर्वक श्री पार्वती जी के साथ कहते और सुनते रहते हैं। भोले नाथ श्री शिव जी जिनके पावन नाम को काशी में मरने वाले जीवों के श्रवणों में सुनाकर सुन्दर गति प्रदान करते हैं–––

नाम प्रभाव जासु गणराजा। बने सुपूजित प्रथम समाजा॥
भयो तुम्हार भाम सो ईशा। ब्रह्म विष्णु जेहिं नावत शीशा॥

–––तथा जिनके नाम के प्रभाव से श्री गणेश जी सम्पूर्ण देव समाज में सर्व प्रथम पूजित बने हुए हैं वही सर्वेश्वर श्री राम जी, आपके भाम (बहनोई) हैं। जिनके समक्ष श्री ब्रह्मा जी तथा श्री विष्णु जी आदि ईश–कोटि के देवता भी नत मस्तक रहते हैं,–––

जेहिं भुसुण्डि मानस नित राखैं। जीवन मुक्त चरित नित भाखै॥
शुक सनकादि नित्य भज जेहीं। सोइ बनो तव भाम सनेही॥

–––हे प्रियवर लक्ष्मीनिधि जी! जिन्हें भक्त प्रवर श्री काग भुसुण्डि जी नित्य, अपने हृदय में धारण किये रहते हैं, जीवन–मुक्त ऋषि–मुनि जिनके चरित्रों का नित्य बखान करते हैं और श्री शुकदेव जी व श्री सनकादिक ऋषि कुमार नित्य ही जिनका भजन करते हैं वही श्री राम जी, आपके भाम (बहनोई) बने हुए हैं।

दो०–नारद ध्रुव प्रहलाद वर, जाकर जपि सत नाम।
भक्त शिरोमणि पद लहे, सो सँग विहरै राम॥३२३॥

श्री नारद जी, श्री ध्रुव जी तथा श्री प्रहलाद जी आदि भक्त जिनके सुन्दर नाम का जप कर यथार्थतः भक्त शिरोमणि का पद प्राप्त कर लिए हैं वही श्री राम जी आपके साथ नित्य विहार करते हैं।

बाल्मीकि जेहिं उलटा नामा। जपत भये विधि समहिं ललामा॥
दशरथ तनय राम रघुराई। सो लखि तुमहिं अधिक हरषाई॥

आदिकवि श्री बाल्मीकि जी जिनके नाम के उल्टे अक्षर 'मरा' का जप करके श्री ब्रह्मा जी के

समान हो गये हैं वे श्री दशरथ जी महाराज के प्रिय आत्मज श्री राम जी आपको देखकर अत्यधिक हर्ष में भर जाते हैं।

इनहिं हेतु उपरोहित कर्मा । विधि सो लियो जानि मैं मर्मा ॥
गाधि तनय हिय इष्ट सो रामा । निशि दिन ध्यावैं गुनि पर धामा ॥

इन्हीं प्रभु श्रीराम जी के लिए ही, इनके रहस्य को समझकर, श्री ब्रह्मा जी से मैने इनका उपरोहित्य कार्य ग्रहण किया था। गाधिनन्दन श्री विश्वामित्र जी के हृदय के इष्ट यही श्री राम जी हैं, वे परम–पद स्वरूप समझ कर जिनकी रात्रि–दिन आराधना करते रहते हैं।

जासु नाम यश महत महाना । सोइ राम तव करत सुध्याना ॥
जे मुनिवर परमारथ वेता । जीवन्मुक्त ब्रह्म पर चेता ॥

जिनके परम पावन नाम का महद्यश अत्यन्त ही महानतम है वही श्री राम जी, आपका ध्यान करते हैं। जो परमार्थ को जानने वाले, जीवन–मुक्त तथा परब्रह्म का चिन्तन करने वाले, श्रेष्ठ मुनिजन हैं।–––

कह रघुपति कहँ ब्रह्म अनादी । राम जपहिं जिय अति अहलादी ॥
सुरतरु सम जेहिं नाम सुरुपा । अभिमत दायक प्रेम अनूपा ॥

–––वे रघुकुल के स्वामी श्री राम जी को सनातन ब्रह्म कहते हैं तथा अपने हृदय में अत्यन्त आह्लाद पूर्वक श्री राम नाम का जप करते हैं। जिनके नाम का स्वरूप कल्प वृक्ष के समान अभीप्सित तथा अनुपमेय प्रेम प्रदान करने वाला है–––

दो०–तासु संग मज्जन अशन, शयन तात तव होय ।
करत प्रशंसा देव मुनि, ताते निशि दिन जोय ॥३२४॥

–––हे तात! श्री लक्ष्मीनिधि जी! उन्हीं श्रीराम जी के साथ आपकी स्नान, भोजन और शयन आदि क्रियायें सम्पादित होती हैं इसीलिए देवता व मुनिजन रात–दिन आपकी प्रशंसा करते देखे जाते हैं।

राम कृपा लखि अधिक उछाहू । सेवहु निशिदिन सियवर नाहू ॥
राम ध्यान रत राम समाना । निश्चय होवै बात प्रमाना ॥

अतः आप! अपने प्रति श्री राम जी की कृपा का अवलोकन कर अधिक आनन्द पूर्वक अहर्निशि सबके स्वामी सीता कान्त श्री राम जी की सेवा करिये। क्योंकि श्रीरामजी के ध्यान में लगा हुआ जीव निश्चय ही श्री राम जी के समान हो जाता है, यह प्रामाणिक सत्य है।

विषय ध्यान विषयी बनि जावै । सपनेहु भक्ति मुक्ति नहि पावै ॥
जग दृष्टी सब भाँति नसाई । तबहिं विश्व प्रभु रूप लखाई ॥

हे कुमार! विषयों का ध्यान करते–करते जीव विषयी बन जाते हैं तथा स्वप्न में भी कभी भक्ति और मुक्ति को नहीं प्राप्त कर सकते। जब जीवों की सभी प्रकार से सांसारिक दृष्टि नष्ट हो जाती है तभी उन्हे संसार प्रभु श्री राम जी का स्वरूप दिखाई देने लगता है।

सत्य दृष्टि केवल सिय रामा । अणु अणु दिखैं सुरुप ललामा ॥
जग असत्य भ्रम मय दुख दाई । जस मृग तृष्णा नदी दिखाई ॥

हे तात! सत्य दृष्टि तो वही है कि– सर्वत्र अणु–अणु में श्री सीताराम जी का ही सुन्दर स्वरूप दिखाई पड़े। हे श्री निमिकुल कुमार! यह संसार झूँठा, भ्रम स्वरूप तथा दुख प्रदान करने वाला उसी प्रकार है जिस प्रकार अत्यधिक धूप के कारण रेत में प्यासे मृग को तृष्णा के कारण जल भरी नदी दिखाई देती है।

रज्जु सर्प भासत बिनु जाने । भय दायक सुनु कुँअर सयाने ॥
सूख ठूँठ लखि मानत प्रेता । अज्ञ लहहिं दुख गिरहिं अचेता ॥

हे सुजान, कुँअर! रस्सी बिना ज्ञान हुए सर्प के समान भय प्रदान करने वाली प्रतीत होती है, सूखे पेड़ के ठूँठ को देखकर अज्ञानी जन प्रेत समझ, भय–भीत व अचेत होकर दुख में गिर जाते हैं।

दो०–मृग सरिता महँ जल नही, नहीं रज्जु महँ नाग ।
ठूँठे तरु महँ प्रेत नहि, तीनहुँ काल अदाग ॥३२५॥

जिस प्रकार मृग की देखी हुई नदी (मृग सरिता) में पानी, रस्सी में नाग (सर्प) तथा ठूँठे पेड़ में प्रेत नहीं है यह बात तीनों कालों में सर्वथा सत्य है–––

केवल भ्रमवश है दुख रूपा । गिरत सुजीव शोक के कूपा ॥
तैसहिं ब्रह्म राम महँ ताता । जग नहिं तीनहुँ काल लखाता ॥

–––मात्र भ्रम के वशीभूत हो जाने से ही यह संसार दुख स्वरूप बन जाता है तथा सुन्दर जीव शोक के कुएँ में गिरकर दुखी रहता है, उसी प्रकार, हे तात! तीनों कालों में 'पूर्ण ब्रह्म श्री राम जी' में संसार कभी नहीं दिखाई पड़ता।

शान्त मौन केवल रस रूपा । सत चिद आनँद सिन्धु अनूपा ॥
निज स्वरूप निज माँहि विराजै । निज सो निज लीला कर भ्राजै ॥

श्री राम जी महाराज तो शान्त, मननशील (मौन), रसस्वरूप, अनुपमेय, सत, चिद और आनन्द के सागर हैं तथा अपने स्वरूप में स्थित रहते हुए, स्वयं से स्वयं की लीला करते हुए शोभायमान रहते हैं।

सपनेहु वस्तु नाम संसारा । नेंकहु नहिं तेहिं माहिं कुमारा ॥
भ्रम वश जीव राम महँ जोई । दुखद रूप जग असत कुलोई ॥

हे कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! उनमें स्वप्न में भी संसार नाम की किंचित वस्तु नहीं है। भ्रम के कारण ही दुर्बुद्धि (अज्ञानी) जीव श्री राम जी में दुख–प्रद तथा असत्य संसार को देखते हैं।

निशि दिन भोगैं दुःख अनन्ता । बिना लखे रघुवर सियकन्ता ॥
कहौं त्रिसत्य न यह संसारा । राम रूप सत सबहिं प्रकारा ॥

सीतापति श्री राम जी के स्वरूप को न देखकर इस संसार में, सभी जीव, रात्रि–दिन अनन्त दुख भोगते रहते हैं। मैं त्रिवाचा सत्य कह रहा हूँ कि– यह संसार अन्य कुछ भी नहीं है, यह तो सभी प्रकार से यथार्थतः श्री राम जी का स्वरूप ही है।

दो०–नयन दोष सित चन्द्र कहँ, पियर कहत नित लोग ।
तैसहिं ब्रह्महिं जग कहैं, विषयी चित के रोग ॥३२६॥

हे तात! जिस प्रकार श्वेत चन्द्रमा को नेत्र–रोगी नित्य पीले–वर्ण वाला कहते हैं उसी प्रकार चित के रोगी विषयी पुरुष 'ब्रह्म' को ही संसार कहते हैं।

ताते कुँअर हृदय जो चाही । संत बनन परमार्थ उछाही ॥
करि विराग अभ्यासहिं सोई । चित विनास मन कामहिं खोई ॥

अतएव हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! यदि कोई हृदय से संत बनने व परम परमार्थ पद को पाकर आनन्द प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है तो वह अभ्यास पूर्वक वैराग्य के द्वारा अपने चित को विनष्ट कर अपने मन की कामनाओं को समाप्त कर दे–––

ममता अहं त्यागि दुख दाया । बनै अकिंचन गत मद माया ॥
राग द्वेष नसि जाय समूला । तब सूझै आतम अनुकूला ॥

–––दुखदायी ममता और अहंकार का त्यागकर अभिमान और माया से रहित हो, अकिंचन बन जाये। हे तात! इस प्रकार जब जीवों के राग और द्वेष समूल नष्ट हो जाते हैं तभी अनुकूल आत्मा दिखायी पड़ती हैं।

आत्म देखि परमातम देखी । रघुवर राम स्वरूप अशेषी ॥
संशय शोक मोह भ्रम दोषा । नसै अविद्या सह सब कोषा ॥

आत्म दर्शन के पश्चात् ही श्री राम जी का पूर्ण परमात्म–स्वरूप दिखाई पड़ता है तथा संदेह, दुख, मोह, भ्रम, दोष व अविद्या सहित सभी विकारों के समूह नष्ट हो जाते हैं।

जागै महाभाव रस प्रीती । तब परमारथ लहै अतीती ॥
जित देखै तित राम सुहावा । आपु सहित संसार नसावा ॥
आनँद सिन्धु रहै नित मगना । भूल्यौ जगत कल्प हिय गगना ॥

रस और प्रेम की सर्वोच्च स्थिति (महाभाव अवस्था) जागृत हो जाती है तभी परम श्रेष्ठ परमार्थ पद प्राप्त होता है। उस समय जीव जहाँ देखता है वहीं सुन्दर श्री राम जी ही दिखाई देते हैं, स्वयं के सहित उसका यह संसार समाप्त हो जाता है। वह आनन्द के सागर में नित्य मग्न हो जाता है तथा उसके हृदयाकाश से कल्पना के समान "संसार" भूल जाता है।

दो०–होय कृतारथ जीव तब, नतरु बहै संसार ।
चौरासी भटकत फिरै, नित बैतरणी धार ॥३२७॥

हे कुअँर! तब यह जीव कृतार्थ हो जाता है नहीं तो संसार में चौरासी लाख योनियों में भटकता

हुआ नित्य बैतरणी नदी के प्रवाह में बहता ही रहता है।

छं०– सुनि तत्व सीताराम वर, उपदेश परमारथ लहे ।
निमि बाल प्रमुदित प्रेम भरि, मुनि पद कमल आतुर गहे ॥
कृतकृत्य कीन्हेव नाथ मोहिं, अति गूढ़ तत्व सुनायऊ ।
जन जानि आपन तत्व दै, हरषणहिं अलख लखायऊ ॥

इस प्रकार निमि नन्दन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, परम श्रेष्ठ "सीताराम तत्व" को श्रवण कर व परमार्थ पद प्राप्ति उपदेश प्राप्त कर, प्रभु–प्रेम में डूब, आनन्दित हो आतुरता पूर्वक रघुकुल आचार्य श्री बशिष्ठ जी के चरण–कमलों को पकड़कर बोले– हे नाथ! आपने मुझे अत्यन्त ही रहस्य परिपूर्ण सीताराम तत्व श्रवण करा–कर कृत कृत्य कर दिया तथा अपना सेवक समझ कर वह परमतत्व प्रदान कर हर्ष में भर इन्द्रियातीत परमात्मा का मुझे ज्ञान करा दिया।

सो०–कुँअर धरत निज शीश, बार बार मुनिवर चरण ।
धोयौ पद गुनि ईश, प्रेम भरे अँसुआन सो ॥३२८॥

ऐसा कहते हुये कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी, मुनिश्रेष्ठ श्री बसिष्ठजी के चरणों में बारम्बार अपना शीश रख कर प्रणाम किये तथा उन्हे "परम परमात्मा" समझ कर प्रेम परिपूरित हो उनके चरणों को नेत्रों के जल से प्राच्छालित कर दिये।

मुनिवर लीन्हे हृदय लगाई । बिछुरा बालक जनु पितु पाई ॥
शीष सूँघि आशिष पुनि दीन्ही । बढ़ै राम पद प्रीति नवीनी ॥

तदुपरान्त मुनिवर श्री बसिष्ठ जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपने हृदय से इस प्रकार लगा लिया जैसे पिता ने अपने बिछुड़े हुए पुत्र को प्राप्त कर लिया हो। पुनः उनका शिर सूँघकर श्री बसिष्ठजी ने आशिर्वाद प्रदान किया कि– श्री राम जी के चरणों में आपका नवीन प्रेम बृद्धिंगत होता रहे।

मुनि कहँ बार बार सिर नाये । पूँछि कुँअर निज वासहिं आये ॥
यहिं विधि कुँअर अवध कृत वासा । बीतत अहनिशि जनु इक श्वासा ॥

तदुपरान्त मुनिवर श्री बसिष्ठ जी को बार–बार शिर झुका प्रणाम कर व उनसे आज्ञा प्राप्तकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने निवास गृह आ गये। इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री अयोध्या पुरी में निवास कर रहे थे, उनके दिन और रात एक साँस के समान शीघ्रता पूर्वक व्यतीत हो रहे थे।

राम कृपा प्यारहिं नित पाई । आनँद सिन्धु मगन सिय भाई ॥
एक दिवस भल भरत सुगेहा । गये कुँअर उर अधिक सनेहा ॥

श्री राम जी महाराज की कृपा व प्रेम को नित्य प्राप्त कर सीताग्रज श्री लक्ष्मीनिधि जी आनन्द के सागर में मग्न रहते थे। एक दिन कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी हृदय में अत्यधिक स्नेह परिपूर्ण हो सुन्दर राजकुमार श्री भरतलाल जी के सुशोभन भवन गये।

केकयि सुवन अतिहिं अनुरागे। मिलि सप्रेम दूनहु रस पागे ॥
सुभग सिंहासन कुँअर बिठाई। भरत किये सतकार सुहाई ॥

कैकेयी नन्दन श्री भरतलाल जी ने अत्यन्त अनुराग में भरकर उनसे प्रेम पूर्वक भेंट की तथा दोनो भगवद्रस में डूब गये। पुनः श्री भरत जी ने सुशोभनीय स्वर्ण सिंहासन में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को बिठाकर सुन्दर सत्कार किया।

दो०–निज कर बीरी गंध दै, माल सुभग पहिनाय।
प्रेम भरे लखि कुँअर कहँ, हिय आनँद न समाय ॥३२९॥

अपने हाथ से श्री भरत जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को ताम्बूल व इत्र देकर सुन्दर माला धारण कराई। उस समय अपने प्रति प्रेम से ओत–प्रोत कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को देखकर उनके हृदय में आनन्द समा नहीं रहा था।

तेहिं अवसर लक्ष्मण तहँ आये। सहित शत्रुहन आनँद छाये ॥
हिलिमिलि सब शुभ आसन राजे। प्रेम भरे सबके दृग छाजे ॥

उसी समय आनन्द में छके हुए राजकुमार श्री शत्रुघ्न जी के साथ श्री लक्ष्मण कुमार जी आये तथा सभी कुमार परस्पर भेंट कर शुभ आसनों में विराज गये। सभी के हृदय प्रेम से परिपूरित व नेत्र अश्रुओं से आभूषित थे।

कहेउ भरत धनि धन्य कुमारा। सदा राम उर करहु विहारा ॥
नाम रूप रस चरित तुम्हारे। सुमिरि राम नयनन जल ढारे ॥

तदनन्तर श्री भरत लाल जी ने कहा– हे कुमार! आप धन्यातिधन्य हैं जो श्री राम जी महाराज के हृदय में सदैव विहार करते हैं। आपके नाम, रूप, रस तथा चरित्र का स्मरण कर हमारे भैया श्री राम जी भी अश्रु बहाते रहते हैं।

भ्रातन सन नित राम कृपाला। वरणैं राउर प्रेम विशाला ॥
कहुँ कहुँ होवैं देह विभोरा। प्रलपत कहि हे जनक किशोरा ॥

हम भ्राताओं से श्री राम जी महाराज नित्य ही आपके महान प्रेम का वर्णन करते रहते हैं जिसके कारण कभी–कभी उनका शरीर प्रेम विह्वल हो जाता है और वे हे जनक नन्दन! हे कुमार! कहकर प्रलाप करने लगते हैं।

राउर हम सबहिन अति प्यारे। प्राण सखे धनि भाग हमारे ॥
तुमहिं सुमिरि प्रिय प्रभुपद प्रीती। बाढ़त सरस अकाम अतीती ॥

पुनः आप हम सभी को भी अत्यन्त प्रिय हैं। हे आत्म सखे! हमारे धन्यभाग हैं जो आप हमारे सम्बन्धी हुये हैं। आपका स्मरण करने से प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में रसमयी, निष्काम, श्रेष्ठ व प्रिय प्रीति बृद्धिंगत होती जाती है।

दो०–मातु सीय के भ्रात बड़, ताते हम सब लोग ।
सहित राम निज सो बड़े, मानहिं नित गुनि योग ॥३३०॥

आप, माता श्री सीता जी के ज्येष्ठ भ्राता हैं इसलिए श्री राम जी सहित हम सभी आपको नित्य अपने से बड़े मानते हैं और तदनुरूप ही भाव रखते हैं।

सीय राम की कृपा सुजाना । नीचहुँ पूजित होत महाना ॥
ब्रह्मादिक नावहिं तेहिं शीशा । रामहु मान देय अति दीषा ॥

हे सर्वज्ञ श्री लक्ष्मीनिधि जी! श्री सीताराम जी की कृपा से तो नीच व्यक्ति भी महान और पूज्य हो जाता है, श्री ब्रह्मा जी आदि देवता उसे शिर झुकाते हैं तथा ऐसा देखा गया है कि– स्वयं श्री राम जी महाराज भी उसे अत्यधिक आदर प्रदान करते हैं।

तुम तो सिय बड़ भ्रात कहाये । राम श्याल अतिशय मन भाये ॥
सद्‌गुण सदन प्रेम के रूपा । प्रगटे निमिकुल भूषण भूपा ॥

पुनः आप तो माता श्री सीता जी के बड़े भइया व श्री राम जी महाराज के मन को अत्यन्त प्रिय लगने वाले श्याल हैं। हे कुमार! आप समस्त सद्‌गुणों के सदन, प्रेम के साक्षात् विग्रह तथा श्री निमिकुल के आभूषण व प्रतिपालक ही उत्पन्न हुए हैं।

नहि अचरज युग युग चलि आई । भक्त महा महिमा रस छाई ॥
सुनत कुँअर निज शिर करि नीचा । प्रेम भरे दृग जल भुवि सींचा ॥

इसमें आश्चर्य नहीं है, यह बात तो युग–युगान्तर से चलती आ रही है कि– भक्त की महिमा महान और रस परिपूर्ण होती है। श्री भरत जी के ऐसे वचन श्रवण करते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपना शिर नीचे की ओर कर, प्रेम प्रपूरित हो अश्रु बहाने लगे मानो अपने प्रेमाश्रुओं से श्री भू देवी का सिंचन कर रहे हों।

बोलेउ कुँअर सकुचि सरसाऊ । अहै प्रभुन कर यहै स्वभाऊ ॥
देवहिं नीचहुँ कहँ अति माना । सरल स्वभाव अहं नहिं जाना ॥

पुनः कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी संकोच पूर्वक, रसमय वाणी से बोले– हे नाथ! श्रेष्ठजनों का यही स्वभाव है कि– वे नीच व्यक्ति को भी अत्यन्त आदर प्रदान करते हैं क्योंकि वे सरल स्वभाव और अहंकार से सर्वथा विहीन होते हैं।

दो०–चार भाम चारो भगिनि, मोरे धन अरु धाम ।
चित्त लगाये नित रहउँ, सेवउँ प्रीति अकाम ॥३३१॥

हे राज कुमार भरत जी! मेरे तो आप चारों भाम (बहनोई) तथा चारों बहने ही धन और धाम हैं अतएव मैं उन्ही में नित्य अपने चित्त को लगाये रहता हूँ और प्रेम पूर्वक निष्काम भाव से सेवा करता रहता हूँ।

इहै चाह उर बीच समाई । जनम जनम विधि देय सुहाई ॥
राउर शरण छोड़ि जग आशा । लीन्ही राखहु गुनि निज दासा ॥

मेरे हृदय में मात्र यही कामना समाई हुई है कि– प्रत्येक जन्म में विधाता मुझे यही सुन्दर सुयोग प्रदान करें। मैंने तो संसार की आशा को छोड़कर आप लोगों की ही शरण ग्रहण की है अतः मुझे अपना सेवक समझ कर आप लोग मेरी सम्हाल करते रहियेगा।

नीच टहल देवहु गृह केरी। नित्य सुखद प्रभु प्रीति सनेरी॥
दीन अकिंचन साधन हीना। राम छोड़ि गति नाहिं प्रवीना॥

मुझे अपने महलों की अतिशय सुखदायी लघुतर सेवा ही नित्य प्रदान किये रहियेगा, उसे मैं प्रेम में सराबोर हो करता रहूँगा। मैं तो दीन, अकिंचन तथा सर्व साधनो से हीन हूँ, हे प्रवीण राजकुमार! श्री राम जी महाराज को छोड़कर मेरी अन्य कोई गति नहीं है।

अस कहि कुँअर दीन रस छाये। चुपहिं रहे जल नयन बहाये॥
तीनहु भाइ कुँअर गति देखी। प्राणन प्राण गिने प्रिय लेखी॥

ऐसा कहकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी दैन्य भाव से भावित हो शान्त हो गये तथा नेत्रों से अश्रु बहाने लगे। श्री भरत जी आदि तीनों राम भ्राताओं ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की दैन्यमयी स्थिति को देखकर उन्हें, चराचर के प्राण श्री राम जी महाराज के भी प्राण और परम प्रिय समझ लिया।

बोले भरत कुँअर धनि धन्या। राम प्रेम रत गती अनन्या॥
बनि बहु दीन राम वश कीन्हेउ। दीनबन्धु तोहि आपन चीन्हेव॥

अनन्तर श्री भरतलाल जी बोले– हे कुमार! आप धन्यातिधन्य हैं, जो श्री राम जी महाराज के प्रेम में रत व अनन्य गति वाले हैं। आपने अतिशय दैन्यता का वरण कर श्री राम जी महाराज को अपने वश में कर लिया है तथा दीनों के बन्धु श्री राम जी महाराज ने भी आपको सर्वविधि अपना बना लिया है।

सो०–सदा दीन प्रिय राम, मोकहँ अनुभव अति कुँअर।
राखहिं हिये ललाम, राम जानि मोहिं दीन अति॥३३२॥

हे कुमार! श्री राम जी महाराज को तो सर्वदा दीन ही प्रिय हैं इस रहस्य का मुझे अत्यन्त ही अनुभव है। क्योंकि अत्यन्त दीन समझकर ही श्री राम जी महाराज ने मुझे अपने सुन्दर हृदय में स्थान प्रदान किया है।

दैन्य भाव प्रभु कृपा कुमारा। वसै जीव उर जबहिं बिचारा॥
विधि हरि हर पद पाइ अधीना। दैन्य भाव नहिं छोड़ै खीना॥

हे कुमार! आप विचार कर लें कि– प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा से जब जीव के हृदय में दैन्य भाव निवास करता है और जब वह श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी के महान पद को अपने आधीन कर लेने के बाद भी दैन्य भाव का त्याग नहीं करता वरन् सदा दीनता को धारण किये रहता है–––

तब जानहु भै वृत्ति सुदीनी। वशीकरण प्रभु परम प्रवीनी॥
साधन हीन अकिंचन पापी। भाव धरत हिय दैन्यहिं थापी॥

———तभी समझना चाहिए कि– परम सुन्दर प्रभु श्री राम जी महाराज को वश में करने वाली उसकी अत्यन्त श्रेष्ठ दैन्य प्रवृत्ति हो गयी है। हे निमिकुल कुमार! दैन्य भाव धारण कर लेने पर सभी साधनों से रहित, अकिंचन तथा पापी जीव का भी प्रभु उद्धार कर देते हैं।

सब सो नवैं वचन प्रिय बोलै । एक राम गति नहि मन डोलै ॥
सहज दैन्य वश रघुवर रामा । सो तुम दियो दिखाय ललामा ॥

अतः जीव को चाहिए कि– वे सभी से विनम्र हो प्रिय बचन बोले तथा श्री राम जी महाराज ही जीवों के एक मात्र गति हैं ऐसा विचार, कभी भी मन से विचलित न करें। हे कुमार! दैन्य भाव भावित जीव के वश में श्री राम जी महाराज सहज ही हो जाते हैं यह आपने अपने आचरण से दिखा दिया है।

बहुरि सकुचि मन कुँअर सुवानी । पूँछेव भाव सरस हिय आनी ॥
केहिं विधि दैन्य हृदय महँ आवै । जाके वश सिय राम रहावै ॥

श्री भरत लाल जी के वचनों को श्रवण कर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी मन में संकुचित हो, हृदय में रस परिपूर्ण भाव लाकर उनसे जिज्ञासा किये कि– हे नाथ! जीवों के हृदय में वह दैन्यता किस विधि से आती है? जिस के कारण श्री सीताराम जी उनके वशीभूत बने रहते हैं।———

दो०–कहहु जिगासा जानि जिय, आरत पुनि जन जान ।
वशीकरण सो मंत्र वर, भक्ति मुक्ति सुखदान ॥३३३॥

———आप इसे मेरे हृदय की जिज्ञासा समझ, मुझे आर्त्त (दुखी) व अपना सेवक मानकर वह भक्ति, मुक्ति और सुख प्रदान करने वाला सुन्दर वशीकरण मंत्र मुझसे कहिये।

बोले भरत कुँअर सब जाना । तदपि सुनन रुचि उर अधिकाना ॥
प्रेमिन कर यह सहज स्वभाऊ । हरि यश सुनन होत अति चाऊ ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की जिज्ञासा को श्रवण कर श्री भरत लाल जी ने कहा– हे कुमार! यद्यपि आप जानते तो सभी कुछ हैं परन्तु मुझसे श्रवण करने की आपके हृदय में अत्यधिक लालसा है। यह तो प्रेमियों का सहज स्वभाव ही है कि– भगवद्यश श्रवण हेतु वे अत्यन्त उत्साहित रहते हैं।

कहहुँ सुनहु सादर चित लाई । साधक श्रद्धा प्रथम बढ़ाई ॥
हरि गुरु संत शास्त्र अनुकूला । चलै शरण पथ तजि प्रतिकूला ॥

अब मैं आपकी जिज्ञासा का समाधान कर रहा हूँ आप आदरपूर्वक चित्त लगाकर श्रवण करें। साधक को चाहिए कि वह सर्वप्रथम अपने हृदय में श्रद्धा को बढ़ाकर श्री भगवान, गुरुदेव, संतजनों व शास्त्रों के अनुकूल आचरण करे तथा प्रतिकूल परिस्थितियों को त्यागकर शरणागति के मार्ग का अनुसरण करे।———

रक्षा करिहैं राम सुजाना । दृढ़ विश्वास हृदय निज आना ॥
पाप स्वकृत मन माहिं विचारी । प्रभु सों विनती करै उचारी ॥

———श्री राम जी महाराज हमारी रक्षा अवश्य करेंगे ऐसा दृढ़ विश्वास हृदय में धारण किये

रहे और अपने किये हुए पापों का मन में चिन्तन करता हुआ भगवान से विनय पूर्वक प्रार्थना करे कि–––

रक्षहु नाथ जानि निज दासा। करै प्रार्थना नित्य सुआशा॥
आत्म निवेदन प्रभु कहँ करई। षड़ विधि शरणागति उर धरई॥

–––हे मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज! आप मुझे अपना सेवक समझ कर मेरी रक्षा करें। इस प्रकार की प्रार्थना नित्य ही सुन्दर आशा के साथ करे कि– प्रभु मुझे अवश्य ही शरण में रख लेंगे। वह प्रभु से आत्म निवेदन कर षड़विधा (अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूलता का त्याग, प्रभु हमारी रक्षा अवश्य करेंगे ऐसा विश्वास, रक्षा के लिये प्रभु से निवेदन, आत्म निवेदन व नैच्यानुसंधान) शरणागति को हृदय में धारण करे।

दो०–अहंकार ममकार तजि, अरु स्वशक्ति मन काम।
साधक चलै प्रपत्ति पथ, तव पावै विश्राम॥३३४॥

इस प्रकार जब साधक अहंकार, ममकार, अपना बल तथा मन की कामनाओं का त्यागकर शरणागति धर्म के अनुसार आगे बढ़ता है तभी वह विश्राम प्राप्त करता है।

गुरु प्रदत्त अष्टाक्षर मन्त्रा। जप कीर्तन कर प्रभु परतंत्रा॥
श्री रामः शरणं मम् भाया। शरणागति है मंत्र सुहाया॥

भगवान की परतन्त्रता को स्वीकार कर श्री गुरुदेव जी के द्वारा प्राप्त हुए अष्टाक्षर मंत्र का जप और कीर्तन करे। ''श्री रामः शरणं मम्'' यही शरणागति का सुन्दर अष्टाक्षर मंत्र है।

अर्थ सहित करि ध्यान राम कर। जप इकान्त नित बैठि मोद भर॥
प्रेम सहित अभ्यासहिं तेरे। बढ़ै दीनता कृपा घनेरे॥

इस शरणागति मंत्र के अर्थ सहित श्री राम जी महाराज का ध्यान करे तथा नित्य एकान्त में आनन्द पूर्वक बैठकर इसका जप करे। इस प्रकार प्रेम पूर्वक अभ्यास करने पर सघन कृपा के फलस्वरूप दैन्यता बृद्धिंगत होती जाती है।

सहज दीनता करि हिय वासा। राम प्राण प्रिय बनै सुदासा॥
दया करैं प्रभु दीन दयाला। जन रुख राखत प्रणतन पाला॥

वह साधक स्वाभाविक (सहज) दैन्यता को हृदय में धारण कर श्री राम जी महाराज के प्राणों का प्रिय बन जाता है क्योंकि दीनों पर दया करने वाले प्रभु अपने भक्तों पर दया कर उनके रुचि की रक्षा करते हैं तथा शरण में आये हुए जीवों का प्रतिपालन करते हैं।

तैसहिं मंत्र कीर्तन साधक। करै नित्य प्रभु पद आराधक॥
देश विविक्त भरे अनुरागा। नृत्यत अश्रु बहाय सुभागा॥
श्री रामः शरणं मम् गावत। पुलक पुलक वर वाद्य बजावत॥

तद्वत प्रभु चरणों की आराधना करने वाला साधक 'शरणागति मंत्र' का नित्य कीर्तन करे। इस प्रकार परम सौभाग्यशाली वह साधक जब एकान्त स्थल में अनुराग प्रपूरित हो नेत्रों से अश्रु बहाते

हुए नृत्य कर 'श्री राम शरणं मम्' गान करते हुए पुलक प्रपूर्ण हो सुन्दर वाद्य बजाता है।

दो०—भाव भरे उन्मत्त सम, हँसत रुदत करि ध्यान ।
दीन भाव निज हृदय धर, भूलो तन मन भान ॥३३५॥

पुनः वह मतवाले (पागल व्यक्ति) के समान भाव में भरा हुआ प्रभु ध्यान कर हँसता व रोता रहता है तथा अपने हृदय में दैन्य भाव धारण कर शरीर और मन की स्मृति भूल जाता है।

कीर्तन सों प्रभु आशु प्रसन्ना। दासहिं देहिं भाव अति खिन्ना ॥
दैन्य भाव वश कीर्तन बीचा। प्रगटहिं राम सिया रस सींचा ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज इस प्रकार किये हुए कीर्तन से अति शीघ्र प्रसन्न होकर उस भक्त को अत्यधिक दैन्य भाव प्रदान कर देते हैं। दैन्य भाव के वशीभूत प्रभु श्री सीताराम जी कीर्तन के बीच में प्रगट होकर उसके हृदय में प्रेम–रस सिंचन करने लगते हैं।

वरण करैं दै प्रेम अथोरा। रहहिं वशी नित अवध किशोरा ॥
जागत सोवत रघुवर दासा। शरण मंत्र नित जपै हुलासा ॥

श्री राम जी महाराज उस साधक का वरण कर कर लेते हैं तथा अपना महान प्रेम प्रदान कर नित्य उसके वश में रहते हैं। प्रभु के जो सेवक, जागते व सोते सभी अवस्थाओं में नित्य ही शरणागति मंत्र का आनन्द पूर्वक जप करते रहते हैं।

रक्षैं राम ताहि दिन राती । यथा शिशुहिं माता पुलकाती ॥
योग क्षेम सब भाँतिहिं केरा । करत राम नित सुखद सुहेरा ॥

उनकी रक्षा श्री राम जी महाराज अहोरात्रि उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार अपने अबोध शिशु की रक्षा पुलकित होकर उसकी माता करती है। श्री राम जी महाराज अपनी कृपा–दृष्टि में रख कर, अपने भक्तों का नित्य ही, सभी प्रकार से सुखदायी, योग और क्षेम करते हैं।

गति अनन्य की सब विधि लाजा । राखत राम देव सजि साजा ॥
शरणागति कर मंत्र प्रभावा । नारद शुक सनकादिक गावा ॥

अनन्य गति वाले भक्त के सम्मान की रक्षा श्री राम जी महाराज सभी प्रकार से करते हैं तथा उसे अपने समान साज (रूप, गुण व वैभव) से सजा कर सम्हाले रखते हैं। "श्री शरणागति मंत्र" के प्रभाव को श्री नारद जी, श्री शुकदेव जी तथा सनकादिक ऋषियों ने मुक्त कण्ठ से गायन किया है।

दो०—जप कीर्तन ये नित्य करि, भे परमारथ रूप ।
परम प्रेम सियराम कर, पाये अमल अनूप ॥३३६॥क॥

ये सभी ऋषि–मुनि नित्य शरणागति मंत्र का जप तथा कीर्तन कर परमार्थ स्वरूप हो गये हैं तथा श्री सीताराम जी के निर्मल और अनुपमेय परम प्रेम को प्राप्त कर लिए हैं।

साधक साथहिं नेम करि, शरणाष्टक करि गान ।
दैन्य भाव द्रुत ही लहै, सो मैं करौं बखान ॥ख॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री रामहर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– नियम पूर्वक, दृढ़ता के साथ, जिस शरणाष्टक का गान करने से साधक शीघ्र, दैन्य भाव को प्राप्त कर लेता है। मैं उस द्धशरणाष्टक) का वर्णन कर रहा हूँ

श्लोक– निरुपायस्य दीनस्य, मायाधीनस्य सर्वथा ।
पाप मूर्तेरनाथस्य, श्रीरामः शरणं मम्॥१॥

मैं समस्त साधनों से रहित, अत्यन्त दीन, सभी प्रकार से माया के वशीभूत तथा पाप की मूर्ति हूँ, मेरे आश्रय दाता एकमात्र श्री राम जी महाराज हैं।

संसार सिन्धु मग्नस्य, काम दासस्य दुर्मतेः ।
ज्ञान नेत्र विहीनस्य, श्री रामः शरणं मम् ॥२॥

मैं संसार सागर में निमग्न, सर्वथा कामनाओं का दास, दुर्बुद्धि व ज्ञान नेत्र से हीन हूँ मेरे आश्रय दाता एकमात्र श्री राम जी महाराज हैं।

अविद्या ग्रस्त चित्तस्य, बहिर्वृत्तेश्च सर्वदा ।
विषयानल दग्धस्य, श्री रामं शरणं मम् ॥३॥

मैं अविद्या (विपरीत ज्ञान) के द्वारा ग्रसित किये चित्त वाला, सदैव बाह्य वृत्ति (संसारी) से युक्त तथा विषयों की अग्नि से जल रहा हूँ मेरे आश्रय दाता एकमात्र श्री राम जी महाराज हैं।

दुष्टातिभावापन्नस्य, श्रुतिशास्त्रबर्हिमतेः।
साधु भाव विहीनस्य, श्री रामः शरणं मम् ॥४॥

मैं अत्यन्त ही दुष्ट भाव से भावित, श्रुतियों तथा शास्त्रों के प्रतिकूल बुद्धि से परिपूर्ण तथा सुन्दर साधु भाव से सर्वथा रहित हूँ मेरे आश्रय दाता एकमात्र श्री राम जी महाराज हैं।

कुसङ्गोत्फुल्ल चित्तस्य, साधु निन्दन कृन्मतेः ।
कामिनी कान्ति लुब्धस्य, श्री रामः शरणं मम् ॥५॥

मैं कुसंग से प्रसन्न हुए चित्त वाला, साधु पुरुषों की निन्दा करने की बुद्धि से युक्त तथा स्त्रियों के सौन्दर्य में सर्वथा लुभाया हुआ हूँ मेरे आश्रय दाता एकमात्र श्री राम जी महाराज हैं।

ममाहं बुद्धि रूपस्य, भवासक्तस्य पूर्णतः ।
अज्ञानतिमिरान्धस्य, श्री रामः शरणं मम् ॥६॥

मैं अहंकार और ममकार से परिपूर्ण बुद्धि का स्वरूप, संसार में ही पूर्ण रूपेण आसक्त तथा अज्ञान रूपी अंधकार से अंधा बना हुआ हूँ मेरे आश्रय दाता एकमात्र श्री राम जी महाराज हैं।

प्रेमातिशून्य चित्तस्य, लोकेषणा रतस्य च ।
आत्म–ज्ञान विहीनस्य, श्री रामः शरणं मम् ॥७॥

मैं प्रभु प्रेम से सर्वथा रिक्त चित्त वाला, संसार की त्रिविध ईषणाओं (पुत्र, धन व कीर्ति) में

ही भली प्रकार से आसक्त तथा आत्म ज्ञान से सर्वथा विहीन हूँ मेरे आश्रय दाता एकमात्र श्री राम जी महाराज हैं।

जगत्पादाहतस्यास्य, दु:ख पिण्डस्य सर्वत: ।
नान्यथा गतिर्दासस्य, श्री राम: शरणं मम् ॥८॥

संसार के पदाघात से पीड़ित (लतियाया हुआ), सभी प्रकार से दुख की मूर्ति तथा सर्वथा अन्य गति से रहित इस दास के आश्रय दाता एकमात्र श्री राम जी ही महाराज हैं अर्थात् वे मेरी सर्व भावेन रक्षा करें।

शरणाष्टक पाठेन, ह्ये तदर्थ स्व धारणात् ।
स्वाचार्य सेवनु रत:, नाप्नुयाद्वैन्यमन्यथा ॥९॥

भगवच्छरणागति के इन आठ श्लोंको (शरणाष्टक) का अर्थ सहित पाठ और अपने महोपकारक आचार्य की सेवा के अतिरिक्त साधक को दैन्य भाव प्राप्त करने का अन्य कोई भी मार्ग नही है।

इदं भरत संप्रोक्तं, शरणाष्टक तारकम् ।
य: पठेद्दैन्य भावेन, मानव: राममाप्नुयात् ॥१०॥

प्रभु प्रेम–स्वरूप श्री भरत लाल जी के द्वारा कथित जीवों के उद्धार हेतु प्रभु शरणागति रूप चरमोपाय इस "शरणाष्टक" का जो कोई भी मनुष्य दीन भाव से भावित होकर पाठ करेगा वह श्री राम जी महाराज को प्राप्त कर लेगा।

सो०–अष्टक दियो सुनाय, भरत प्रेम वारिधि सुखद ।
कुँअर सुन्यो चित चाय, दास राम हर्षण मगन ॥३३७॥

हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–प्रेम के महासागर व सुख प्रदायक श्री भरत लाल जी ने कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को यह शरणाष्टक सुनाया है जिसे आनन्द पूर्वक श्रवण कर वे मन–मग्न हो गये।

भरत कहा सुनु जनक कुमारा । प्रपति महा महिमा सुख सारा ॥
कर्म ज्ञान अरु भक्ति विरागा । योग रहस्य अनूपम यागा ॥

तदनन्तर श्री भरत लाल जी ने कहा– हे श्री जनक नन्दन जू! सुनिये, 'प्रभु शरणागति' महान महिमा से सम्पन्न तथा समस्त सुखों की सार है। वेदों में वर्णित भगवत्प्राप्ति के कर्म, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, योग, रहस्य तथा अनुपमेय यज्ञ आदि–––

करन प्रसन्न प्रभुहिं ये सिगरे। प्रपति समान एक नहि लगरे ॥
प्रपति ग्रहण युत साधन साधै । तब यह जीव राम फल लाधै ॥

–––सभी साधन प्रभु श्री राम जी महाराज को प्रसन्न करने के लिए 'प्रभु शरणागति' के समान किंचित भी प्रतीत नहीं होते। परन्तु जब 'प्रभु शरणागति' ग्रहण कर जीव इन साधनों का अनुष्ठान करता है तभी वह श्री राम जी महाराज रूपी परम फल को प्राप्त करता है।

प्रपति शुद्ध कर एकहिं बारा । जीव लहै सिय प्रीतम प्यारा ॥
सिद्धोपाय प्रपति प्रभु थापी । सुख स्वरूप निर्विघ्न अलापी ॥

एक ही बार प्रभु की शुद्ध शरणागति कर जीव श्री सीता जी के प्राण प्रियतम श्री राम जी महाराज के प्यार को प्राप्त कर लेते हैं। इसीलिये प्रभु श्री राम जी महाराज नें 'शरणागति' को सिद्ध उपाय बनाकर स्थापित किया है। मैं घोषणा कर कह रहा हूँ कि– जीवों के लिये प्रभु 'शरणागति' सुखों की स्वरूपा तथा समस्त विघ्न बाधाओं से विहीन है।

आत्मऽनुरूप प्रपत्ति अनूपा । नहिं आगन्तुक सहज स्वरूपा ॥
देश काल फल अरु अधिकारी । प्रपति माहिं नहिं नियम बिचारी ॥

'प्रभु शरणागति' अनुपमेय तथा आत्मा के अनुरूप अनागन्तुक व सहज है। 'प्रभु शरणागति' में देश, समय, फल व पात्रता आदि का नियम और विचार नहीं है।

परम स्वतंत्र प्रपत्ती भाई । जो प्रभु कृपा जीव कर पाई ॥
प्रपति रहस विद रामहिं काही । एक उपाय उपेय बताही ॥

हे भइया जी! यह शरणागति परम स्वतन्त्र है जो प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा से ही जीवों को प्राप्त हो पाती है। शरणागति रहस्य के जानकार, प्रभु श्री राम जी महाराज को ही उपाय और उपेय दोनों बतलाते हैं।

दो०–होय कृतारथ सत्य सत, राम लेहिं सब भार ।
परमानन्दहिं जिव लहै, केवल शरण अधार ॥३३८॥

हे तात! मैं सत्य–सत्य कहता हूँ कि– केवल शरणागति के सहारे ही जीव कृतार्थ हो जाता है, प्रभु श्री राम जी महाराज उसका योग–क्षेम अपने ऊपर ले लेते हैं तथा वह परमानन्द को प्राप्त कर लेता है।

एक बार शरणागति लीन्हे । रहै जीव रामहिं वश कीन्हे ॥
तो कत कीर्तन जाप विधाना । यह संशय कर सुनहु प्रमाना ॥

एक बार की शरणागति ग्रहण कर लेने पर ही जीव श्री राम जी महाराज को वश में कर लेते हैं तो फिर शरणागति में कीर्तन और जप का विधान क्यो है? आप, इस संदेह का समाधान सुनिये–

जीव अनन्त काल अभ्यासी । जगहिं केर मन माहिं उपासी ॥
प्रपति यथावत दशा न आवै । जस स्वरूप बुध वेद बतावैं ॥

यह जीव अनन्त समय से मन में इस संसार का ही अभ्यास करने वाला तथा उपासक है, अतः उससे शरणागति के अनुकूल वह स्थिति नहीं आ पाती जैसा कि– बुद्धिवादियों व वेदों के द्वारा वर्णन की गयी है।

भव दुख प्रथम न ताहि लखाई । विषय प्रीति मम अहं रहाई ॥
देहहिं आत्म भाव करि जानै । नित्य अविद्या भ्रमत भुलानै ॥

प्रथम तो उसे सांसारिक दुख समझ ही नहीं आते, उसकी प्रीति विषयों में रहती है और वह ममकार व अहंकार से परिपूर्ण रहता है। शरीर को ही आत्मा समझता हुआ नित्य प्रति अविद्या माया द्धविपरीत ज्ञान) में भूला हुआ संसार में भ्रमण करता रहता है।

प्रभु पद प्रेम न साधन एका। जल्पत कल्पित वाक्य अनेका॥
कबहुँ कृपा प्रभु मिलि सत्संगा। भजन चाह हिय होय अभंगा॥

उसके हृदय में भगवान के चरणों में न तो प्रेम रहता है और न ही उसके पास कोई साधन होते। वह तो अनेक प्रकार की झूँठी डींग (अपनी प्रशंसा) हाँकता रहता है। अतएव हे कुमार! प्रभु कृपा से जब कभी जीव को सत्संग की प्राप्ति हो जाय और उसके हृदय में भजन करने की अटूट इच्छा जागृत हो जाये।

दो०–तब सद्‌गुरु सो मंत्र लहि, भव तारक सुख मूल।
नित्य करै अभ्यास वर, आदर युत अनुकूल॥३३९॥

तब वह सदाचार्य द्वारा, संसार सागर से उद्धार करने वाला, सुखों का मूल तारक 'मंत्र' ग्रहण कर, नित्य उनके अनुकूल बना हुआ, आदर पूर्वक सुन्दर अभ्यास करे।

दीर्घ काल अनवरत सुसाधक। करै कीर्तन जप मन बाधक॥
करत करत अभ्यास महाना। दृढ़ स्थिति तब लहै सुजाना॥

हे सुजान कुँअर! इस प्रकार साधक दीर्घ समय तक निरन्तर अत्यन्त अभ्यास करते–करते भजन में रुकावट करने वाले मन को स्थिर कर कीर्तन और जप करता है तब वह सुदृढ़ स्थिति को प्राप्त कर लेता है,–––

पावन योग वस्तु सब पावै। जानन योग ज्ञान हिय आवै॥
दैन्य भाव लहि रामहिं पाई। आनँद महँ नित रहै समाई॥

–––वह प्राप्त करने के योग्य सभी वस्तु पा जाता है, जानने के योग सभी प्रकार का ज्ञान उसके हृदय में आ जाता है तथा वह दैन्य भाव से युक्त हो श्रीरामजी महाराज को प्राप्त कर नित्य आनन्द में समाया रहता है।

ताते नित अभ्यासहिं केरा। प्रथमहिं कीन्हेउँ सखे निबेरा॥
काल–क्षेप हित वर्द्धन प्रेमा। सिद्धहु शरण मंत्र जप नेमा॥

हे सखे! इसीलिए मैंने, पूर्व में नित्य के अभ्यास करने की वार्ता, वर्णन की है। समय–यापन तथा प्रेम विवर्धन हेतु सिद्धगण भी शरणागति मंत्र का जप नियमित रूप से करते रहते हैं।

मोरे शरण राम पद त्राना। साधन और नेक नहिं जाना॥
सब विधि हीन दीन गुनि आपुहिं। रहौ भरोसे शरण सुजापहिं॥
ताही बल प्रभु कृपा को पाई। आनँद सिन्धु मगन नित भाई॥

हे कुमार! मेरी आश्रयदाता (रक्षक) तो एक मात्र श्री राम जी महाराज की चरण रक्षिका पादुकायें ही है और मैं किसी साधन को किंचित भी नहीं जानता। अपने आपको सभी प्रकार से हीन

तथा दीन मानकर मैं 'शरण मंत्र' के सुन्दर जप के सहारे निश्चिन्त रहता हूँ तथा हे भइया! उसी के भरोसे प्रभु श्रीरामजी महाराज की कृपा को प्राप्त कर मैं आनन्द के सागर में मग्न रहता हूँ।

दो०—सब विधि मानत राम मोहिं, करत अनंत सुप्यार ।
मम रुख देखत नित रहत, लीन्हे सब छर भार ॥३४०॥

जिसके परिणाम स्वरूप मुझे श्री राम जी महाराज भी सभी प्रकार से मानते हैं तथा अनन्त प्यार करते हैं, वे नित्य मेरी रुचि को देखते हुए सम्पूर्ण योग–क्षेम का भार ग्रहण कर लिये हैं।

याते सदा अशोचहिं रहहूँ । रीति सदा दासहिं की गहहूँ ॥
विधि हरि हर पायो नहि भागा । जस रह राम मोहि अनुरागा ॥

इसलिए मैं सदैव चिन्ता–विहीन होकर सेवक की रीति ग्रहण किये रहता हूँ। हे कुमार! श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शंकर जी ने भी उस प्रकार के सौभाग्य को नहीं प्राप्त किया जिस प्रकार का सौभाग्य श्री राम जी महाराज के मुझ पर अनुराग करने से मुझे प्राप्त है———

तिनहिं छोडि. मोरेउ कछु नाहीं । दरश प्यास पियतहुँ न बुझाहीं ॥
मैं अरु मोर राम कहँ पाई । भयो विनाश चरण चित लाई ॥

———तथा प्रभु श्री राम जी के अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी नहीं है, उनके दर्शन की मेरी प्यास, प्रभु के रूप सुधा का पान करते रहने पर भी तृप्ति को प्राप्त नहीं होती। श्री राम जी महाराज को प्राप्त कर मेरा अहंकार व ममकार (मैं तथा मेरा सर्वस्व) समाप्त हो गया है तथा मैं भी उनके चरणों में चित्त को लगाकर निश्चिन्त बना रहता हूँ।

क्षमा सिन्धु करुणाकर स्वामी। अति उदार उर अंतर्यामी ॥
बिना हेतु करि कृपा महाना । सब कर करहिं सर्व कल्याना ॥

क्षमा के सागर व करुणा के भवन, मेरे स्वामी श्री राम जी महाराज अत्यन्त उदार हृदय व सर्वान्तर्यामी हैं, वे बिना प्रयोजन ही महान कृपा कर सभी जीवों का सभी प्रकार से कल्याण करते रहते हैं।

शुचि सुशील प्रभु प्रेरक मोरे । देखे दोष न हिय महँ थोरे ॥
जन के सुने गुणन हिय धारी। साधु समाज प्रशंसहिं भारी ॥

मेरे प्रभु परम पवित्र, सुन्दर शील से संयुक्त व सभी के हृदय को प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं, वे भक्तों के देखे हुये दोषों को भी अपने हृदय में किंचित स्थान नहीं देते बल्कि उनके सुने हुए गुणों को अपने हृदय में धारण कर, साधु समाज में उसकी बड़ी प्रशंसा करते रहते हैं।

दो०—सत्य संध जित क्रोध प्रभु, शरणा गत नित पाल ।
जन को कर सम्पुट लखत, तुरतहिं करत निहाल ॥३४१॥

सदैव सत्य पर आरुढ़ रहने वाले व क्रोध पर विजय प्राप्त मेरे प्रभु श्री राम जी महाराज ने अपने शरण में आये हुए जीवों का सदैव पालन किया है, वे भक्तों को हाथ बाँधे (विनती करते) हुए देखकर शीघ्र ही पूर्णकाम कर देते हैं।

जन की हार कबहुँ नहि देखी । बरुक आप दुख सहेव विशेषी ॥
पाहि सुनत प्रभु रह अकुलाई । जोगवैं जन कहँ गोद उठाई ॥

श्री भरत जी कहते हैं कि–प्रभु श्री राम जी अपने भक्तों की पराजय कभी भी नहीं देख सकते चाहे उन्हे स्वयं ही विशेष दुख क्यों न सहना पड़े। श्री राम जी महाराज तो ('पाहि–पाहि') रक्षा करा–रक्षा करो शब्द श्रवण करते ही व्याकुल हो जाते हैं और भक्तजनों को गोद में उठाकर उनकी सम्हाल करते रहते हैं।

भक्त चोट निज छाती लेहीं । कबहुँ दुखी नहिं देखहिं तेहीं ॥
सरवस आपन जन पर वारी । कवन स्वामि अस कहहु अघारी ॥

प्रभु, भक्तजनों पर होने वाले प्रहार को अपने वक्ष पर ले लेते हैं व उसे कभी भी दुखी नही देख सकते, वे अपना सर्वस्व अपने सेवकों पर निछावर किये रहते हैं। हे कुमार! आप ही कहिये कि– ऐसा, पापों का प्रनाश करने वाला स्वामी और कौन है।

जन कहँ देवहिं अमित बड़ाई । आपहु रहत स्वशीश झुकाई ॥
पाँय पलोटत पद पय धारत । तब पवित्र निज काहिं उचारत ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज अपने भक्तों को संसार में असीमित प्रशंसा प्रदान करते हैं तथा उनके सम्मुख स्वयं भी शिर झुकाये रहते हैं। वे भक्तजनों के पैर पलोटते (दबाते) हैं तथा उनके पद प्रक्षालित जल को अपने शरीर में धारण करते हैं तब अपने आपको पवित्र कहते हैं।

जासु नाम जपि एकहिं बारा । लोग तरहिं भव सिन्धु अपारा ॥
सो प्रभु जन पद रज शिर राखी । कहत पूत अपने मुख भाषी ॥
निज समान जन काहिं बनाई । भोगहिं भोग साथ रघुराई ॥

जिनके परम पावन 'नाम' का 'जप' एक बार करके भी, जीव इस अथाह भव सागर से पार उतर जाते हैं वे प्रभु अपने भक्तों की चरण धूलि को अपने शिर में रखकर अपने मुख से अपने आपको को पवित्र हुआ कहते हैं। प्रभु श्री राम जी महाराज अपने भक्तों को अपने समान बनाकर उनके साथ–साथ सभी प्रकार के भोगों का उपभोग करते रहते हैं।

दो०–अस प्रभु शील सुसिन्धु गुनि, जो न भजे श्रीराम ।
कुँअर सुनहु सत सत कहहुँ, सो नहि लहै अराम ॥३४२॥

श्री भरत जी कहते हैं कि–शील के सुन्दर सागर प्रभु श्री राम जी महाराज की ऐसी महान महिमा समझकर भी जो जीव उनका भजन नहीं करते, हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप श्रवण करें– मैं सत्य–सत्य कहता हूँ कि– वे कभी भी विश्राम नहीं प्राप्त करते।

निज यश सुनत जाहिं सकुचाई । जन यश सुनत अधिक हर्षाई ॥
जन सुख सुखी रहत नित रामा । जन दुख होवहिं विकल स्वधामा ॥

वे प्रभु अपनी प्रशंसा सुनकर संकुचित हो जाते हैं तथा भक्तों की बड़ाई को सुनते ही अत्यधिक हर्ष से भर जाते हैं। श्री राम जी महाराज भक्तों के सुख से नित्य सुखी और भक्तों के दुख

से अपने सुख स्वरूप "धाम" में भी दुख से व्याकुल बने रहते हैं।

सेवक सेव गुनहिं निज सेवा। सेवक बैर आपु गुनि लेवा॥
पत्र पुष्प फल तोय सुभावा। भक्त दीन करि ग्रहण सो पावा॥

श्री राम जी महाराज अपने सेवकों की सेवा को अपनी सेवा तथा सेवकों से शत्रुता को अपनी शत्रुता समझते हैं। भक्तों के द्वारा दिया हुआ पत्र, पुष्प, फल व जल आदि भी प्रभु स्वाभाविक रूप से ग्रहण करते तथा पाते हैं।

चुल्लु मात्र जल या दल तुलसी। पाइ बिकै जन के कर हुलसी॥
प्रेम अश्रु इक बूँदहिं पाई। बिके रहत ऋणिया कहवाई॥

अपने भक्तजनों के हाथ से केवल एक अंजलि जल अथवा एक दल तुलसी पत्र पाकर ही प्रभु आनन्दित होकर उन पर बिक जाते हैं तथा उनके नेत्रों से निकले हुये प्रेमाश्रुओं की एक विन्दु पाकर भी भक्तों पर बिके रहते हैं तथा शेष विन्दुओं के बदले ऋणिया (कर्जदार) कहलाते हैं।

रहत नित्य भक्तन सँग डोलत। हृदय प्रेम रस छिन छिन घोलत॥
दरश परश सेवा सरसानी। देत स्वभक्तहिं निज सुखमानी॥

श्री भरत जी कहते हैं कि– मेरे प्रभु श्री रामजी महाराज भक्तों के साथ सदैव रहकर विचरण करते हुए उनके हृदय में प्रत्येक क्षण प्रेम रस घोलते रहते हैं। वे अपने भक्तजनों को आनन्दपूर्वक अपना दर्शन, स्पर्श तथा सेवा प्रदान करते रहते हैं और उसी में अपना सुख मानते हैं।

दो०–कबहुँ न छोड़त भक्त कहँ, राखत नित निज धाम।
परमानँद बोरे रहत, प्राण प्राण गुनि राम॥३४३॥

श्री राम जी महाराज अपने भक्तों को कभी भी अपने से अलग नहीं करते, उन्हें नित्य अपने धाम में बसाये रहते हैं तथा अपने प्राणों के प्राण समझकर परमानन्द में डुबाये रहते हैं।

अरि हितकारि राम भगवाना। जानहिं वेद संत मति माना॥
अस प्रभु छाँड़ि अन्य की शरणा। जाय जीव होवै नित मरणा॥

श्री भरत लाल जी कहते हैं कि– हे कुमार! भगवान श्री राम जी महाराज तो अपने शत्रुओं का भी हित करने वाले हैं। यह वार्ता वेद, संत तथा प्रबुद्ध जन भली–भाँति जानते हैं। ऐसे स्वामी को छोड़कर जब जीव दूसरे की शरण में जाता है तब उसे नित्य ही मृत्यु मुख में जाना पड़ता है।

अभय देन गहि शरण राम की। जीव लहै गति वर सुधाम की॥
बिनु प्रभु शरण त्रिसत्य उचारौं। नाहिन जीव केर निस्तारौं॥

श्री राम जी महाराज की अभय प्रदायिनी शरणागति को ग्रहण कर जीव सुन्दर गति तथा परम पद को प्राप्त कर लेता है। मैं त्रिसत्य कह रहा हूँ कि– प्रभु श्री राम जी महाराज की शरण में आये बिना जीव का निस्तार नहीं हो सकता है।

शरणागति अवलम्बन नीको । ता बिनु साधन हैं सब फीको ॥
श्रेष्ठ श्रेष्ठ अति श्रेष्ठ बताई । कुँअर श्रुती बहु बिधि समुझाई ॥

प्रभु की शरणागति ही जीव मात्र के लिए सुन्दर आश्रय है तथा उसके बिना सभी साधन फीके हैं। हे कुमार! श्रुतियों ने इसे (त्रिवाचा) श्रेष्ठ, श्रेष्ठ तथा श्रेष्ठ बता कर विविध प्रकार से समझाया है।

प्रपतिहिं है पर ज्ञान विरागा । प्रपतिहिं हैं वर योग सुभागा ॥
प्रपतिहिं भक्ति प्रपति वर करमा । प्रपतिहिं यज्ञ दान सब धरमा ॥
शम दमादि गुण प्रपतिहिं बसई । प्रपति रहस बिनु विघ्न सुलसई ॥

प्रेम स्वरूप श्री भरत जी कहते हैं कि– हे परम सौभाग्यवान कुँअर! 'प्रभु शरणागति' ही श्रेष्ठ ज्ञान तथा वैराग्य है,'प्रभु शरणागति' ही सुन्दर योग है, 'प्रभु शरणागति' ही भक्ति, 'प्रभु शरणागति' ही सुन्दर कर्म तथा 'प्रभु शरणागति' ही यज्ञ, दान आदि सभी प्रकार के धर्म हैं। शम दम आदि सभी गुण 'प्रभु शरणागति' में ही निवास करते हैं तथा 'शरणागति रहस्य' सभी प्रकार की विघ्न–बाधाओं से सर्वथा रहित होकर सुशोभित होता है।

दो०–यथाकाश नित नखत मय, बीजमयी शुभ भूमि ।
तथा प्रपति सब योग मय, दैन्य प्रेम रस झूमि ॥३४४॥

जिस प्रकार आकाश नित्य ही नक्षत्र स्वरूप है व पृथ्वी शुभ बीज स्वरूपा है उसी प्रकार 'प्रभु शरणागति' सभी योगों का स्वरूप, दैन्य, प्रेम, रस तथा आनन्दमयी है।

प्रपति योग सुनि अति सुख पावा । कुँअर हरषि जिन शीश झुकावा ॥
पाहि पाहि कहि प्रपति समाधी । भई कुँअर की तुरत अबाधी ॥

श्री भरत लाल जी द्वारा वर्णित 'शरणागति योग' को श्रवणकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अत्यन्त सुख प्राप्त किया तथा हर्षित होकर उनके चरणों में अपना शिर झुका लिया, हे नाथ! पाहि माम्, पाहि माम्, (रक्षा करो, रक्षा करो,) कहते हुए शीघ्र ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की निर्विघ्न "शरणागति–समाधि" लग गयी।

तेहिं क्षण राम भरत गृह आये । परशि कुँअर कहँ हरषि जगाये ॥
हिय लगाय आसन बैठारी । आपु बैठ मन मोद अपारी ॥

उसी क्षण प्रभु श्री राम जी महाराज श्री भरत जी के भवन में आ गये तथा हर्षित हो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को स्पर्श कर जागृत कर दिये। पुनः श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को हृदय से लगा आसन में बिठाकर, असीम आनन्द पूरित मन से स्वयं भी बैठ गये।

परम प्रकाश दोउ सुख रूपा । सोहहिं आसन सुखद अनूपा ॥
राम देखि सब भये सुखारी । पाहि शब्द महिमा बड़ि भारी ॥

इस प्रकार परम प्रकाशवान तथा सुखस्वरूप दोनों राज कुमार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज सब को अनुपमेय सुख प्रदान करते हुए आसन में सुशोभित हो गये। श्री राम जी महाराज को देखकर सभी जन सुखी हो गये और विचार करने लगे कि इस 'पाहि' शब्द की महिमा

कितनी अधिक व महान है---

बिन कारण सुनतहिं प्रभु आये । भीने कुँअरहिं ह्रदय लगाये ॥
सब विधि भरत राम कहँ पूजी । सेवा प्रेम आस नहिं दूजी ॥

---जिसे श्रवण करते ही 'प्रभु' अकारण ही यहाँ आ गये तथा शरणागति भाव में विभोर हुये कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को ह्रदय से लगा लिये। अनन्तर श्री भरत लाल जी ने प्रभु का सभी प्रकार से पूजन किया, उनके मन में प्रभु सेवा व प्रभु प्रेम के अतिरिक्त अन्य दूसरी कामना नहीं थी।

दो०-बहुरि राम सँग कुँअर लै, गये हरषि निज धाम ।
भ्रातहुँ सन्ध्या करन हित, चले मुदित गुनि याम ॥३४५॥

पुनः श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को साथ लेकर हर्ष पूर्वक अपने भवन चले गये तथा अन्य भ्रातृ-गण भी प्रमुदित हो सायंकाल समझ सन्ध्या करने के लिए चल दिये।

श्याल भाम नित आनन्द मोई । विहरहिं अवध एक मन होई ॥
एक दिवस सुनु सुत हनुमाना । आये मम गृह कुँअर सुजाना ॥

इस प्रकार श्याल-भाम (श्याले-बहनोई) कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज आनन्द से ओत-प्रोत हुए नित्य एकमन होकर श्री अयोध्यापुरी में विहार कर रहे थे। श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा- हे तात श्री हनुमान जी! सुनिये, एक दिन परम सुजान कुँअर मेरे भवन आये।

लहि सतकार मोद उर छाया । बैठे आनन्द मगन अमाया ॥
कुँअर प्रीति मम ऊपर भारी । दरश परश करि रहैं सुखारी ॥

स्वागत प्राप्त कर उनका ह्रदय आनन्द प्रपूरित हो गया तथा वे अलौकिक आनन्द में मग्न होकर बैठ गये। कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की मुझ पर अत्यन्त ही प्रीति है वे मेरा दर्शन तथा स्पर्श प्राप्त कर सुखी रहते हैं।

मोरेउ हिय तिन पर अति प्रीती । सुरति मात्र मन पगै अतीती ॥
मोहि सन पूछेव जनक कुमारा । आपु कहैं निज भाव प्रकारा ॥

मेरे ह्रदय में भी उनके प्रति अत्यधिक प्रेम है, उनके स्मरण मात्र से मेरा मन उनके प्रेम में पूर्ण रूपेण पग जाता है। श्री जनक नन्दन जू ने मुझसे पूछा, कि- आप अपने ह्रदय के भाव-प्रकार (सिद्धान्त) को मुझसे कहिये---

जेहिं सुनि बढ़े राम पद प्रेमा । जीव तजै निज योगहु क्षेमा ॥
सो सुनि सादर कहा बखानी । कुँअर तुमहिं सब ज्ञान प्रमानी ॥

---जिसे सुनकर जीवों के ह्रदय में श्री राम जी महाराज के प्रति प्रेम बृद्धि को प्राप्त हो जाये और जिसके सहारे जीव अपने योग और क्षेम की चिन्ता का भी त्याग कर दे। उनके प्रश्न को सुन कर मैंने आदरपूर्वक बखान किया था कि- हे कुमार! यद्यपि सत्य तो यह है कि- आपको प्रमाण सहित सभी प्रकार का ज्ञान है---

दो०–तदपि रसिक रस भाव के, सुनहु कहौं निज बोध ।
जीव यथा सिय राम सँग, रहे भाव निज शोध ॥३४६॥

–––तथापि हे प्रेमरस व भाव के रसिक श्रेष्ठ कुअँर जी! सुनिये, मैं अपना अनुभव (बोध) कह रहा हूँ जिस प्रकार से जीव अपने भाव का शोधन कर, श्री सीताराम जी के साथ–साथ बना रहता है।

सत चिद आनँद जीव स्वरूपा । राम अंश सब भाँति अनूपा ॥
भोक्ता राम भोग नित जीवा । या महँ संशय नेक न कीवा ॥

जीव का स्वरूप सच्चिदानन्दमय है तथा वह सभी प्रकार से अनुपमेय श्री राम जी महाराज का अंश है। श्री राम जी महाराज ही उसके भोक्ता (भोग करने वाले) तथा जीव उनका नित्य भोग हैं, इसमें किंचित भी संदेह नहीं करना चाहिए।

सहज शेष रघुनायक केरा । जीव अहै यह निश्चय मेरा ॥
सब समर्थ शेषी सिय रामा । आनन्द सिन्धु स्वतन्त्र स्वधामा ॥

'जीव' श्री राम जी महाराज का सहज शेष है यह मेरा दृढ़ निश्चय है। श्री सीताराम जी सर्व सामर्थ्यवान, शेषी, आनन्द के सागर, सर्वथा स्वतंत्र व परम–पद स्वरूप हैं।

जीव स्वरूप सहज परतन्त्रा । कुँअर गुनहु यह मंत्रन मंत्रा ॥
सर्व भाव रघुनायक शरणा । ताते गहे जीव प्रभु वरणा ॥

हे कुमार! जीव का स्वरूप भगवान के सहज ही परतन्त्र रहना है। इसे आप सभी मंत्रों का मंत्र ही समझिये। अतएव सभी प्रकार के भावों से परिपूर्ण होकर जीव प्रभु श्री राम जी महाराज का इष्ट के रूप में वरण कर उनकी शरणागति ग्रहण करे।

राम केर जिव रामहि भोगा । रामहिं रक्षैं वेद नियोगा ॥
ताते रामहिं के अनुकूला । जीव करै कैङ्कर्य अतूला ॥

यह जीव श्री राम जी महाराज का है अतः श्री राम जी महाराज ही इसका भोग और रक्षण–कार्य करेंगे ऐसा वेदों ने वर्णन किया है। इसलिए जीव को चाहिए कि– वह प्रभु श्री राम जी महाराज के अनुकूल होकर उनकी अतुलनीय सेवा करता रहे।

दो०–सकल विधी कैंकर्य महँ, नित्य निपुण अति होय ।
सहज स्वरूप सुजीव को, कुँअर गुनहु सत जोय ॥३४७॥

हे कुमार! आप यह सत्य समझ लीजिये कि– जीव का सहज स्वरूप, प्रभु श्री राम जी महाराज की सभी प्रकार की सेवा कार्य में नित्य, परम प्रवीण हो जाना है।

फलासक्ति अरु कर्ता भावा । त्यागि करै प्रभु सेव सुहावा ॥
ओड़ि अपनपौ प्रभु कर जानी । सेवहिं भाव सुखद उर आनी ॥

जीव, फल प्राप्त करने की आसक्ति तथा कर्ता पन के अभिमान को छोड़कर प्रभु की सुन्दर

सेवा करता रहे। वह अपने अहंकार को छोड़, स्वयं को प्रभु श्री राम जी महाराज का समझ, भाव पूर्ण हृदय से सुख मानते हुए प्रभु श्री राम जी महाराज की सेवा करे।

करै स्वामि हित निज अनुकूला । स्वार्थ रहित मुद मंगल मूला ॥
जग सम्बन्ध सकल सुठि त्यागी । सेवै प्रभु कहँ जिव अनुरागी ॥

जीव को चाहिये कि– वह अपने स्वामी श्री राम जी महाराज के नित्य अनुकूल बन कर, निस्वार्थ हो, आनन्द और मंगलों के मूल कार्य उनके लिये ही करता रहे तथा सभी सांसारिक सम्बन्धों को त्यागकर अनुराग पूर्वक प्रभु श्री राम जी महाराज की सेवा करे।

सबहिं भाँति अठ–यामिक सेवा । दास करै दृढ़ भावहिं धेवा ॥
छिन छिन बढ़ै प्रभुहिं प्रति प्रेमा । इहइ चाह भूलै निज छेमा ॥

वह उनकी सभी प्रकार की अष्टयामीय सेवा दृढ़ होकर भावपूर्वक करे तथा प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रति उसका प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता रहे यही इच्छा करते हुए अपने योग–क्षेम की चिन्ता को भी भूल जाये।

छन वियोग प्रभु कर असहाई। जल बिनु मीन यथा अकुलाई ॥
बाहुल विरह छुटहिं तन प्राना। बनि परमारथ तत्व महाना ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज का एक क्षण का वियोग भी उससे न सहा जाय, वह जल के बिना मछली के समान व्याकुल हो जाय और यहाँ तक कि– उनके अत्यधिक वियोग में उसके प्राण भी शरीर से निकल जायें, तब वह जीव परम 'परमार्थ तत्व' स्वरूप हो जाता है।

दो०–पर पुरुषारथ जीव कर, राम कृपा यह जान ।
अकथ अलौकिक सत्य सत, कुँअर कियौ सो गान ॥३४८॥

मुझे श्री राम जी महाराज की कृपा से जीवों का जो परम पुरुषार्थ समझ आया है, वह यही है। अतः हे कुमार! उस अकथनीय, अलौकिक तथा सर्वथा सत्य सिद्धान्त का मैंने आपसे गायन किया है।

चार पदारथ आशा त्यागी। लोक ईषणा सब बिधि भागी ॥
विष सम नित भव रस जेहिं लागै । प्रभु पद प्रीति हृदय तेहिं जागै ॥

जब जीव चारों पदार्थों (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) की कामना का त्याग कर देता है, उसकी सांसारिक त्रिविध (पुत्र, धन व यश प्राप्ति की) वासनायें सभी प्रकार से दूर हो जाती हैं, सांसारिक आनन्द उसे नित्य विष के समान लगने लगते हैं तथा उसके हृदय में प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों की प्रीति जागृत हो जाती है।

तब यह भाव बसै हिय माहीं। प्रभु प्रसाद सेवा रुचि ताहीं ॥
सूक्ष्म माहिं निज हिय कर भावा। तुम्हरे कहे कुँअर मैं गावा ॥

तभी यह भाव उस जीव के हृदय में निवास करता है और प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा से उसके हृदय में प्रभु कैंकर्य करने की इच्छा हो जाती है। हे कुमार! आपके कहने से मैंने अपने हृदय

के भाव को संक्षेप में कह कर सुना दिया।

सुनत कुँअर अति आनन्द पाई। प्रेम प्रफुल्ल कहे जल छाई ॥
सब विधि हीन दीन मैं स्वामी। करहिं करावहिं अन्तरयामी ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी के द्वारा बखान किये सिद्धान्त को सुनते ही कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त आनन्द प्राप्त कर प्रेम प्रफुल्लित हो गये तथा नेत्रों में अश्रु भरकर बोले– हे नाथ! मैं तो सभी प्रकार से दीन और हीन हूँ अतः हे अन्तर्यामी प्रभु! आपकी जो इच्छा हो उसे मेरे द्वारा करते और कराते रहिये।

परमैकान्तिक सेव सुआसा। परम प्रेम सह बड़ि हिय दासा ॥
जानहिं सुखकर स्वामि सुनीको। पूर्ण करैं भल भाव सुहीको ॥

परन्तु मेरे हृदय में अत्यन्त प्रेम पूर्वक प्रभु श्री राम जी महाराज की परमैकान्तिक सेवा करने की महान लालसा है जिसे सुख प्रदायक स्वामी आप श्री, सम्यक प्रकार से जानते ही हैं अतः मेरे हृदय के सुन्दर भाव को आप पूर्ण कर दीजिये–––

दो०–लखन लाड़िले तव कृपा, कछु नहिं अगम दिखाय।
पूर्ण रहै मन कामना, सेवा रुचि जस आय ॥३४९॥

–––हे सर्व समर्थ लाड़िले लक्ष्मण कुमार! आपकी कृपा से मुझे कुछ भी असम्भव नहीं दीख रहा है। यदि आप ऐसा कह दें कि "हे कुमार! आपके हृदय मे जैसी प्रभु सेवा करने की इच्छा है, वह आपकी मनोकामना भली प्रकार से पूर्ण होगी"।–––

कहतहिं अस तुम्हरे प्रिय लाला। पूजी मम अभिलाष विशाला ॥
लखन कहा सिय रघुवर रामा। तुमहिं दिये सब पूरण कामा ॥

–––तो आपके ऐसा कहने मात्र से ही, हे प्रिय लालन! मेरी विशाल मनोकामना पूर्ण हो जायेगी। कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी के ऐसे वचन श्रवण कर श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा हे निमिकुल कुमार! आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं तथा श्री सीताराम जी ने आपको अपना सर्वस्व प्रदान कर दिया है।–––

धन्य धन्य तुम जनक कुमारा। सिय रघुवीरहिं प्राण पियारा ॥
अब पायों कहि सिय प्रिय भ्राता। हिल मिल मोहि गयौ सुखदाता ॥

–––हे जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी! आप धन्यातिधन्य हैं, आप श्री सीताराम जी को प्राण प्यारे बने रहें। हे लक्ष्मण कुमार जी, आपके ऐसा कहने मात्र से मैने अब सभी कुछ प्राप्त कर लिया, ऐसा कह कर श्री सीता जी के प्रिय भइया, परम सुखदायक श्री लक्ष्मीनिधि जी, मुझसे प्रेम पूर्वक हिल मिलकर द्धभेंट कर) अपने निवास चले गये।

एक दिवस प्रिय रिपुहन केरे। गये भवन प्रिय कुँअर सुखेरे ॥
मिलि सप्रेम बैठे दोउ भ्राजैं। प्रेम पगे रस रीति सुछाजैं ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा– हे श्री हनुमान जी! प्रिय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुखपूर्वक एक दिन प्रिय कुमार श्री शत्रुघ्न जी के भवन गये तथा प्रेम पूर्वक भेंट कर वे दोनों प्रेम में पगे हुए

रस–रीति में सराबोर हुए आसन में बैठ कर सुशोभित होने लगे।

कह्यो कुँअर सुनु रिपुहन लाला । निज सिद्धान्त कहहु सुख शाला ॥
जेहिं ते रीझत राम कुमारा । निज जन जानि करत बहु प्यारा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा हे श्री शत्रुघ्न कुमार जी! सुनिये, आप सुखों के सार अपने उस सिद्धान्त को मुझसे कहिये, जिसके फलस्वरूप श्री राम जी महाराज प्रसन्न हो जाते हैं और अपना सेवक समझ कर अतिशय प्यार करते हैं।

दो०– कह रिपुहन सुनु कुँअर प्रिय, मैं सब साधन हीन ।
तदपि कृपा रघुवर लही, सो सब सुनहुँ प्रवीन ॥३५०॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को श्रवण कर श्री शत्रुघ्न कुमार जी ने कहा– हे प्रवीण कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी! मैं तो सभी साधनों से विहीन हूँ तथापि श्री राम जी महाराज की कृपा जिस विधि से मैने प्राप्त की है, आप श्रवण करिये।

राम भक्त महिमा बड़ि जानी । भरत शरण मैं गही सुहानी ॥
तेहिं बल मोहि सब भ्रातन तेरे । अधिक प्यार प्रभु करत सुहेरे ॥

श्री राम जी महाराज के भक्तों की महान महिमा को समझकर मैंने श्री भरत जी की सुन्दर शरण ग्रहण की है, उसी के प्रताप से प्रभु श्री राम जी महाराज मुझे सभी भ्राताओं से अधिक प्यार करते हैं, ऐसा मैंने जान लिया है।

भक्त भजै भज जावैं रामा । जिमि शिशु गर्भ माहिं सुखधामा ॥
राम भक्त थापैं जेहि काहीं । उथपैं प्रभु तेहिं कबहुँक नाहीं ॥

भक्त जनों का भजन–स्मरण करने से श्री राम जी महाराज का भजन–स्मरण उसी प्रकार हो जाता है जिस प्रकार गभर्स्थ शिशु केवल माता की सेवा करने से सुखी और संतुष्ट हो जाता है। श्री राम जी महाराज के भक्त जिसकी प्रतिष्ठा करते हैं प्रभु श्री राम जी कभी भी उसका उत्थापन नहीं करते–––

उथपैं भक्त जाहि हिय हेरी । थापन गति नहि रामहुँ केरी ॥
अघट घटावहिं सुघट विघाटी । संत महा महिमा बिनु काटी ॥

–––हे कुमार! आप अपने हृदय में यह जान लीजिये कि– प्रभु श्री राम जी महाराज के भक्त जिसकी उपेक्षा कर देते हैं उसका उद्धार करने की गति श्री राम जी महाराज में भी नहीं है। प्रभु श्री राम जी महाराज, संत–जनों की ऐसी अकाट्य महान महिमा को बृद्धिंगत करते हुए असम्भव को सम्भव तथा सम्भव को भी असम्भव बना देते हैं।

सेवत साधु द्वैत मत भागी । राम रूप दरशै हिय जागी ॥
सब विधि जगत बीज जरि जाई । प्रभु पद प्रेम बढ़ै नित भाई ॥

साधु–जनों (संतों की) की सेवा करने से द्वैत मत दूर होकर, हृदय ग्रन्थि जाग्रत हो जाने से सर्वत्र श्री राम जी महाराज का रूप दीखने लगता है। हे श्री भइया जी! प्रभु भक्तों की सेवा करने से

सभी प्रकार से संसार का बीज भस्म हो जाता है और प्रभु श्री राम जी महाराज के चरणों में नित्य–प्रति प्रेम बढ़ने लगता है।

दो०–भक्त जनन की वर कृपा, जबहिं जीव यह पाय ।
पद परमारथ तब लहै, आनँद सिन्धु समाय ॥३५१॥

जब यह जीव भक्त–जनों की सुन्दर कृपा को प्राप्त कर लेता है तभी वह परम परमार्थ पद को प्राप्त कर आनन्द के सागर मे समाहित हो जाता है।

नेसुक कृपा संत भगवाना । सुठि सुख शान्ति प्रेम रस दाना ॥
देवहिं प्रभु कर हाथ गहाई । निर्भय पद महँ दास बिठाई ॥

संत–जनों की अत्यन्त अल्प कृपा भी सुन्दर सुख, शान्ति, प्रेम तथा रस प्रदान करने वाली होती है। भक्त–जन जीवों का हाथ प्रभु श्री राम जी महाराज के कर कमल में पकड़ाकर अपने भक्तों को अभय पद में बिठा देते हैं।

कर्णधार जिमि नाव चढ़ाई । नारि वृद्ध शिशु पार लगाई ॥
निज बल जिनहिं भरोसा नाहीं । होवैं पार तेउ छन माहीं ॥

जिस प्रकार नाविक अपनी नाव में चढ़ाकर स्त्री, वृद्ध व बच्चों सभी को नदी के पार उतार देता है, जिन्हें अपने बल पर भरोसा नहीं रहता वे भी एक क्षण में उसकी सहायता से पार हो जाते हैं।

तथा साधु निज आश्रित केरो । सब विधि करत काज हिय हेरो ॥
राम शरण गहि राम सुसेवा । पावै समय माहिं बहु धेवा ॥

उसी प्रकार, आप अपने हृदय मे जान लीजिये कि– संतजन अपने आश्रितों के सभी प्रकार के कार्य करते रहते हैं। हे कुमार! प्रभु श्री राम जी महाराज की शरण ग्रहण करने के बाद, उनका सुन्दर कैंकर्य बहुत समय तक आराधना करने के पश्चात् ही प्राप्त होता है।

साधु शरण द्रुत रामहिं पाई । सेवा लहि जिव प्रेमहिं छाई ॥
जिव हित लागि राम वरु दण्डा । देवहिं तेहिं कर जानि घमण्डा ॥

परन्तु साधु–जनों की शरणागति से जीव शीघ्र ही, श्री राम जी महाराज को प्राप्त कर, उनके प्रेम में परिप्लुत हो, प्रभु कैंकर्य प्राप्त कर लेता है। श्री राम जी महाराज तो जीवों के हित के लिए, उसके अभिमान को समझकर दण्ड भी प्रदान करते हैं।

दो०–सन्त कृपामय सरस अति, दोषहुँ निज जन जानि ।
करि करि प्रभु सों प्रार्थना, दै उपदेश सुबानि ॥३५२॥

परन्तु कृपा–स्वरूप संत–जन तो अत्यन्त ही सरस होते हैं, वे अपने सुन्दर स्वभाव के कारण सेवकों के दोषों को जानकर भी, भगवान से बार–बार प्रार्थना कर तथा सुन्दर बचनों से उपदेश कर उसके दोषों को दूर कर देते हैं।

सब विधि जन हित करहिं सुधारा । बनि अक्रोध निज भाव उदारा ॥
राम मिलन हित सेवा प्रीती । सेवैं सन्तन मानि प्रतीती ॥

संतजन क्रोध रहित (शान्त) होकर, अपने उदार स्वभाव के कारण सभी प्रकार से अपने भक्त–जनों का हित और सुधार करते रहते हैं। अतः जीवों को चाहिए कि– श्री राम जी महाराज को प्राप्त कर, उनके कैंकर्य और प्रेम को प्राप्त करने के लिए वे विश्वास पूर्वक संतजनों की सेवा करें।

प्रभु ते अधिक जनहिं जिय जानी । सेवहुँ भरतहिं हौं रस सानी ॥
तिनकी कृपा सीय रघुराई । करहिं कृपा अतिशय सुखदाई ॥

श्री शत्रुघ्न कुमार जी कहते हैं कि– हे कुमार! इसीलिए अपने हृदय में, भगवान की महिमा से अधिक उनके भक्तों की महिमा को समझ कर, प्रेम रस से ओत–प्रोत हो, मैं परम भागवत भैया श्री भरत जी की सेवा करता हूँ और उनकी कृपा से मेरे स्वामी श्री सीताराम जी मुझ पर अपनी सुख प्रदायिनी अत्यधिक, कृपा करते रहते हैं।–––

सब विधि कर प्रभु मोर दुलारा । मानत आपन प्राण अधारा ॥
ताते सन्त जनन सेवकाई । निज सिद्धान्त सुनायों गाई ॥

जिसके फलस्वरूप प्रभु श्री राम जी महाराज मेरा सभी प्रकार से दुलार करते है तथा मुझे अपने प्राणों का आधार मानते है। इसलिए मेरा अपना सिद्धान्त 'सन्तजनों की सेवा' है जिसे मैने वर्णन कर आपको सुना दिया।

सहजहिं सरवस देवन हारा । सन्त दास पन गुनहु कुमारा ॥
वेद पुरान शास्त्र सब गायो । संत संग महिमा अति चायो ॥

हे कुमार! आप जान लीजिए, कि– सन्तों का दासत्व तो जीवों को सहज ही सर्वस्व प्रदान करने वाला है। सभी वेदों, पुराणों व शास्त्रों ने, सन्तजनों के सत्संग की ऐसी महिमा का अत्यन्त आनन्दपूर्वक गायन किया है।

दो०–सो सब जानहु निमि प्रवर, सन्त माहिं अति प्रीति ।
राम सिया अनुपम कृपा, तुम पर अहै अमीति ॥३५३॥

हे श्री निमिकुल श्रेष्ठ! यह सभी कुछ जो मैने बर्णन किया है उसे तो आप भली प्रकार से जानते ही हैं और आपका सन्तजनों के प्रति अतिशय प्रेम भी है, इसीलिए आप पर प्रभु श्री सीताराम जी की अनुपमेय व असीम कृपा है।

सुनत कुँअर कह सहित हुलासा । हौं नित प्रिय प्रभु दासन दासा ॥
मो पर कृपा करहु सब भाँती । भजौं राम सिय अविरल पाँती ॥

श्री शत्रुघ्न कुमार जी के प्रिय सिद्धान्त को श्रवण कर, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने आनन्द पूर्वक कहा– हे रिपुसूदन जी! मैं तो नित्य ही, प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रिय सेवकों का सेवक हूँ। आप मुझ पर सभी प्रकार से अपनी कृपा कीजिए, जिससे मैं श्री सीताराम जी का निरन्तर (तैल धारावत) भजन कर सकूँ।

सन्त शरण महिमा तव रूपा । देत सबहिं कहँ बोध अनूपा ॥
तुमहिं सुमिरि रिपु सब कामादी । जरै प्रमाथी मन बकवादी ॥

हे श्री शत्रुघ्न कुमार जी! सन्तजनों के शरणागति की महान महिमा आप के रूप में सभी को अनुपमेय बोध (ज्ञान) प्रदान करती रहती है। आपका स्मरण करने मात्र से ही, जीवों के सभी काम, क्रोधादि शत्रु तथा सदैव मथने व व्यर्थ की वार्ता करने वाला 'मन' जलकर समाप्त हो जाता है,———

बड़ सुख शान्ति हिये महँ छावै । आत्म प्रकाश बुद्धि सत पावै ॥
अनुभव रस प्रभु प्रेम समोई । आनँद मगन रूप रस जोई ॥

———उनका हृदय अत्यन्त सुख व शान्ति से आपूरित हो जाता है, बुद्धि सच्चा 'आत्म प्रकाश' प्राप्त कर लेती है, उसे प्रभु श्री राम जी महाराज का प्रेम परिपूर्ण 'रसानुभव' हो जाता है तथा वह प्रभु श्री राम जी महाराज के परम सुशोभन स्वरूप का दर्शन कर आनन्द में मग्न हो जाता है।

यहि विधि करि सत कुँअर प्रशंसा । हिलि मिलि रिपुहन जग दुख ध्वंशा ॥
गयो वास निज सुखद अनूपा । जहाँ राम राजत रस रूपा ॥

इस प्रकार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी संसार के दुखों का सर्वथा विनाश करने वाले श्री शत्रुघ्न कुमार जी की यथार्थ प्रशंसा कर, उनसे हिलमिल भेंट कर अपने सुखप्रद अनुपमेय निवास गये, जहाँ रस स्वरूप श्री रामजी महाराज विराज रहे थे।

दो०—श्याल भाम दोऊ मिले, अमित हृदय रस छाय ।
प्रीति रीति वर बात करि, शयन किये सरसाय ॥३५४॥

वहाँ श्याल और भाम (श्याले—बहनोई) कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज दोनों, हृदय में असीम आनन्द पूरित हो भेंट किये तथा प्रीति—रीति से सुन्दर बातें करते हुये सुख पूर्वक शयन किये।

राम प्रेम पगि जनक कुमारा । यहिं विधि बस नित अवध मँझारा ॥
नृत्य गान प्रभु यश रस मोई । नाट्य कला सत चरित सनोई ॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि—इस प्रकार श्री राम जी महाराज के प्रेम में डूबे हुए जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री अयोध्यापुरी में निवास कर रहे थे। वहाँ, श्री अयोध्यापुरी में प्रभु श्री राम जी महाराज की कीर्ति व रस समन्वित नृत्य गायन तथा यथार्थ चरित्रों से परिपूर्ण नाट्य—कलायें आदि———

देखत सुनत राम के साथा । रहत मगन नित आनँद पाथा ॥
कबहुँ भूप दशरथ कर प्यारा । मातन कर कहुँ नेह अपारा ॥

———श्री राम जी महाराज के साथ देखते—सुनते हुए श्री लक्ष्मीनिधि जी नित्य 'आनन्द की वारिधारा' में डूबे रहते थे। कभी वे चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के प्यार को प्राप्त करते तो कभी माताओं का अपरिमित स्नेह———

लहि लहि कुँअर रहैं नित मगना। विचरहिं भाम भगिनि के अँगना ॥
जोगवहिं राम सिया दिन राती । आनँद लहैं कुँअर जेहिं भाँती ॥

–––प्राप्त करते हुए कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी नित्य मन मग्न रहते थे और अपने बहन–बहनोई के महलों में विहार करते रहते थे। श्री सीताराम जी अहोरात्रि उनकी वैसे ही सँभाल करते थे जिस प्रकार से कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी आनन्द प्राप्त करते रहें।

बाहर भीतर सिय सह रामा । कुँअरहिं देत प्रमोद प्रधामा ॥
लखि लखि सिय वर रूप लुभावा । छन छन कुँअर महा सुख पावा ॥

श्री सीता जी के सहित श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को अपने सुन्दर धाम श्री अयोध्यापुरी में शारीरिक व आत्मिक दोनों प्रकार का आनन्द प्रदान करते रहते थे तथा सीता–कान्त श्री राम जी महाराज के मनमोहक स्वरूप का दर्शन कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी प्रतिक्षण महान सुख प्राप्त कर रहे थे।

दो०–अष्ट याम सिय राम कर, पाइ सुखद अति नेह ।
मगन कुँअर सुख सिन्धु महँ, भूल्यौ तन मन गेह ॥३५५॥

इस प्रकार आठो–प्रहर श्री सीताराम जी का सुख प्रदायक असीम स्नेह प्राप्तकर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सुख के समुद्र में डूबे हुए थे, उन्हें अपने शरीर, मन और भवन सभी की स्मृति भूली हुयी थी।

होली उत्सव भयो महाना। अवध भूमि रँगमयी दिखाना ॥
घर घर राह राह नर नारी। रंग गुलाल परस्पर डारी ॥

सुखपूर्वक फाल्गुन मास आया और विशाल होली उत्सव सम्पन्न हुआ, उस समय श्री अयोध्यापुरी की भूमि रंगमयी दिखने लगी। पुरुष व स्त्री, प्रत्येक घर व प्रत्येक मार्ग में परस्पर रंग और गुलाल की वृष्टि कर रहे थे।

गावहिं फाग राग रस रीती । मिलैं परस्पर करि अति प्रीती ॥
मैथिल अवध दोउ दल भारे। फाग क्रिया करि होत सुखारे ॥

सभी आनन्द परिपूर्ण हो, होली गीत (फाग गीत) गाते तथा आपस में अत्यन्त प्रेम पूर्वक भेंट करते थे। श्री मिथिलापुरी व श्री अयोध्यापुरी दोनों पक्ष आपस में फाग क्रिया (रंग व गुलाल आदि लगा) कर सुखी हो रहे थे।

राम भाम लक्ष्मीनिधि श्याला। सहित बन्धु दल दोउ विशाला ॥
होरी समर कीन्ह अति भारी। देवहुँ आइ मिले जेहिं धारी ॥

श्याल और भाम श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज अपने अपने भ्रातृगणों सहित दोनो विशाल दलों (मिथिला व अवध) को लेकर महान 'होली समर' की रचना किये जिसके प्रवाह में मनुष्य रूप धारण कर देवता भी सम्मिलित हो गये।

मारा–मार मची रँग केरी। उड़त अबीर परै नहि हेरी॥
अतर अरगजा चन्दन चोवा। दधि की कीच मची सब जोवा॥

उस होली समर में रंग की मारा–मारी मच गयी, अबीर ऐसे उड़ रही थी कि– कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। सभी लोग इत्र, अरगजा, चन्दन, चोवा और दही की कीच में सने हुए दिखाई दे रहे थे।

दो०– विविध भाँति बाजा बजै, नभ अरु नगर मँझार।
जै जै बोलहिं हर्षि सब, बरसत सुमन अपार॥३५६॥

आकाश और नगर में विभिन्न प्रकार के वाद्य बज रहे थे, सभी लोग हर्ष में भर कर जै जै नाद करते हुए असीमित पुष्पों की वृष्टि कर रहे थे।

छं०– लक्ष्मीनिधि प्रिय जै जै बोलैं, मैथिल लोग सुखारी।
रघुवर सखा राम जै उचरैं, देहिं परस्पर गारी॥
लै पिचकारि राम तकि मारैं, लक्ष्मीनिधि तन रंगा।
जनक सुवन मुसकाय राम के, मोहनि डारि अभंगा॥

उस होली युद्ध में मैथिल–जन सुखपूर्वक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी की जय–जयकार कर रहे थे तथा श्री राम जी के सखा श्री राम जी महाराज की जै बोलते हुए परस्पर में प्रेम परिपूरित व्यंग बचन (गालियाँ) कह रहे थे। श्री रामजी महाराज, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शरीर को लक्ष्य कर रंग की मार कर रहे थे तथा जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी मुस्कुरा कर श्री राम जी महाराज के ऊपर अपनी अनवरत मोहनी डाल रहे थे।

रंग गुलाल मारि पिचकारिन, स्ववश किये सब भाई।
होरी समर बीच डफ बाजे, जनक सुवन जै पाई॥
पकड़ि कुँअर रस रंग राम कहँ, मसलि गुलाल लगाये।
निज दल बीच राखि नहि छोड़ैं, पुनि पुनि हिय लपटाये॥

अनन्तर मुस्कुराते हुए कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी पिचकारियों से रंग और गुलाल की वर्षाकर कर श्री राम जी महाराज के सभी भ्राताओं को अपने वश में कर लिये इस प्रकार 'होली समर' के बीच में डफ बजने लगा कि– जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी विजयी हो गये। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने रंग और रस में डूबे हुए श्री रामजी महाराज को पकड़ कर, मुख में मसल कर गुलाल लगा दिया तथा अपने दल के बीच रखकर, बार–बार हृदय से लगाने लगे, उन्हें अपने दल से विलग नहीं कर रहे थे।

बोले कुँअर सुनहु प्रिय लालन, शान्ति भगिनि जब ऐहैं।
बरिहैं मोहिं राय लै तुम्हरी, जान सखे तब पैहैं॥
याते लखनहिं बोलि पठावहु, तात बहिन के पासा।
सुनत तारि दै मैथिल बोले, रहहु करहु इत वासा॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी कहते हैं कि– हे प्रिय लाल रघुनन्दन! जब आपकी बहन श्री शान्ता जी आयेंगी तथा आपकी आज्ञा लेकर मेरा वरण करेंगी तभी आप यहाँ से जा सकेंगे। इसलिए हे तात! आप श्री लखन लाल जी को अपनी बहन जी के समीप उन्हे बुलाने हेतु भेज दीजिए। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के वचनों को सुनते ही सभी मैथिल जन, प्रसन्तापूर्वक ताली बजाकर कहने लगे कि– अच्छा है, आप यहीं रहकर निवास कीजिए–––

शान्ति अनन्त केर सुख खानी, तुमहिं गिनै हम सिगरे।
मोह गये मुख देखत प्यारे, रहहिं तुमहिं पर पगरे॥
कबहुँ पकड़ि रघुवीर कुँअर कहँ, निज दल मधि लै जावैं।
हास विनोद महा रस छाकै, रघुपति जै सब गावैं॥

–––क्योंकि हम सभी आपको अनन्त शान्ति के सुखों की स्रोत समझ रहे हैं, हे प्यारे! हम सभी तो आपका मुख–चन्द्र देखते ही मोहित होकर आप पर आसक्त हो गये हैं। कभी, श्री राम जी महाराज, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी को पकड़कर अपने दल में ले जाते है तब सभी अवध पक्ष के सखागण हास–परिहास और विनोद के महान आनन्द में छक जाते हैं और श्री राम जी महाराज की जय–जयकार करने लगते हैं।

कबहुँ पकड़ि इक एकन दोऊ, शिर चादर चुनि डारी।
सबहिं दिखाय कहत करि हासैं, भली बनी वर नारी॥
हास विलास महारस छायौ, होरी समर सुबीचा।
वरषहिं सुमन जयति जय उचरैं, फँसे सबहिं रस कीचा॥

कभी दोनो श्याल–भाम एक दूसरे को पकड़ कर शिर में चादर व चुनरी डाल देते हैं तथा सभी लोगों को दिखाकर हँसते हुए कहते हैं कि– यह स्त्री तो बहुत ही सुन्दर बनी–ठनी है। इस प्रकार उस 'होली समर' के मध्य में हास्य परिहास का महान आनन्द छाया हुआ था, देवता जै–जै कहते हुए पुष्प वरषा रहे थे तथा सम्पूर्ण समाज रस की कीच में फँसा हुआ था।

दो०–श्याल भाम रस रीति लै, जनक सुवन अरु राम।
हास विलास विनोदमय, बने दोउ सुख धाम॥३५७॥

श्याल और भाम जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी व दशरथ नन्दन श्री राम जी महाराज प्रेम पद्धति पूर्वक रसानुभव कर हास परिहास व विनोद के स्वरूप बनकर सुख के धाम हो गये थे।

यहि प्रकार दिन बीतत जाहीं। जात न जानत सुख मन माहीं॥
सुभग राम नवमी तिथि आई। घर घर बाजत अनँद बधाई॥

इस प्रकार दिन व्यतीत हो रहे थे, मन में सुख की अधिकता का अनुभव होने के कारण समय का व्यतीत होना समझ नहीं पड़ रहा था। परम सुन्दर राम नौमी तिथि आ गयी और प्रत्येक घर में आनन्द बधाइयाँ बजने लगीं।

सुर नर नाग मुनी समुदाया । महा महोत्सव लखैं सुभाया ॥
उत्सव भयो परम सुखकारी । आनँद मगन पिता महतारी ॥

देवता, मनुष्य, नाग तथा मुनि आदि के समस्त समुदाय महान महोत्सव का स्वाभाविक ही दर्शन कर रहे थे। श्री अयोध्या पुरी में श्री राम जी महाराज के जन्म का परम सुखकारी उत्सव मनाया गया। उनके पिता जी चक्रवर्ती श्री मान् श्री दशरथ जी महाराज व श्री कौशिल्या जी आदि माताएँ आनन्द में मग्न हो रही थीं।

भ्रात सखा अरु दासी दासा । उत्सव मगन सुप्रेम प्रकाशा ॥
जनक लली जिय मोद अपारा । शेष शारदा कहै को पारा ॥

श्री राम जी महाराज के बन्धु, सखा, दासियाँ और दास सभी सुन्दर श्री राम–जन्मोत्सव में मग्न तथा प्रेम प्रकाश से प्रकाशित हो रहे थे। विदेहराज नन्दिनी श्री जानकी जू के हृदय में असीमित आनन्द छाया हुआ था जिसका शेष व शारदा भी बखान कर पार नहीं पा सकते।

उत्सव विधि बहु भाँतिन तेरे । कीन्ह सिया कहि जाय न टेरे ॥
तैसहिं जनक सुवन सुख सारा । कीन्हेव उत्सव विविध प्रकारा ॥
दीन्हे विविध दान हर्षाई । मणि वाहन रथ वसन सुगाई ॥

सुनैनानन्द वर्धिनी श्री सीता जी ने बहुत प्रकार से विधिपूर्वक श्री राम–जन्मोत्सव किया जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार सुखों के सार जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने भी विभिन्न प्रकार से उत्सव मनाया तथा मणि, वाहन, रथ, वस्त्र तथा सुन्दर गायें आदि विभिन्न प्रकार का दान हर्षित हो कर दिया।

दो०–यहि विधि बीत्यो चैत्र दिन, सुख संयुत हरषात ।
कुँअर बसैं सिय राम गृह, छन छन पुलकित गात ॥३५८॥

इस प्रकार सुख से भरे हुये चैत्र मास के दिन भी हर्ष पूर्वक व्यतीत हो गये, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री सीताराम जी के भवन में प्रति छण पुलकित शरीर निवास कर रहे थे।

जनक दूत अवधहिं सुख छाये । कुँअरहिं लै सँदेश शुभ आये ॥
लली जन्म उत्सव अब आवा । लावहु बोलि ताहि सुख छावा ॥

अनन्तर श्री जनक जी महाराज के दूत सुख पूर्वक श्री अयोध्यापुरी में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के लिए श्री जनक जी महाराज का यह शुभ संदेश लेकर आये कि– अब श्री लाड़िली सिया जू का जन्मोत्सव आने वाला है, आप आज्ञा प्राप्तकर श्री मन्मैथिली जू को लिवा लाइये जिससे श्री मिथिलापुरी में सुख छा जाय–––

पुत्रन सहित राउ पगु धारैं । सहित समाज विनय हम कारैं ॥
कुँअर जाय भूपति शिर नाई । पितु संदेश वर विनय सुनाई ॥

–––हम ससमाज विनय कर रहे हैं कि– चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज अपने पुत्रों सहित यहाँ श्री मिथिलापुरी पधारें। दूत के संदेश को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने चक्रवर्ती श्री

दशरथ जी महाराज के समीप जाकर शिर झुका प्रणाम किया और सुन्दर विनय पूर्वक अपने श्री मान् पिता जी का संदेश सुनाया।

सुनि भूपाल अधिक सुख साने । मंत्रिन आयसु दिये सुहाने ॥
मिथिला करन हेतु पहुनाई । साजहु साज सकल अब जाई ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी जी की विनय व श्री विदेहराज जी का संदेश श्रवण कर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज अत्यधिक सुख में सराबोर हो गये, उन्होने मंत्रियों को सुन्दर आज्ञा प्रदान की, कि– आप, अब जाकर, श्री मिथिलापुरी में मेहमानी करने जाने हेतु प्रस्थान की सभी प्रकार की तैयारियाँ पूर्ण कर लीजिये।

सचिव सुआयसु निज शिर धारी । कीन्ही सब विधि तुरत तयारी ॥
यथा बरात प्रथम गइ ब्याहे । चले भूप तस महा उछाहे ॥
कृष्ण पंचमी माधव मासा । नखत योग शुभ वार प्रकाशा ॥

श्री चक्रवर्ती जी महाराज की सुन्दर आज्ञा को शिरोधार्य कर मंत्रियों ने सभी प्रकार की तैयारी शीघ्र ही कर लीं। तदनन्तर जिस प्रकार पूर्व में श्री राम जी महाराज के विवाह की बारात प्रस्थान की थी उसी प्रकार श्री दशरथ जी महाराज पहुनाई करने हेतु श्री मिथिलापुरी आनन्दपूर्वक चल दिये। उस समय सुन्दर माधव (वैशाख) मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी तिथि, शुभ नक्षत्र, योग और सुन्दर दिन था।

दो०–जनक लली निज भगिनि युत, सखी सेविका साथ ।
चढ़ि चढ़ि सुन्दर पालकिहिं, चलीं सासु नवि माथ ॥३५९॥

जनक नन्दिनी श्री जानकी जू अपनी बहनों तथा सखी–सेविकाओं के साथ सुन्दर पालकियों में सवार होकर सभी सासुओं को मस्तक झुका प्रणाम कर श्री मिथिलापुरी को चल दीं।

परम प्यार करि सासु पठाई । सीतहिं पितु पुर हेतु सुहाई ॥
पुरजन परिजन गुरुजन साथा । विप्र सचिव युत चल नर नाथा ॥

उनकी सासू श्री कौशिल्या जी ने श्री सीता जी को अत्यधिक प्यार कर, उनके प्रिय पीहर (पितु गृह) श्री मिथिलापुरी के लिए भेज दिया। इसप्रकार सभी पुरजनों, परिजनों, गुरुजनों, ब्राह्मणों और मंत्रियों के साथ चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज श्री मिथिलापुरी को चल दिये।

भ्रात सखन सह रामहु गवने । संग कुँअर सोहहिं मन भवने ॥
वाहन चढ़ि चढ़ि रुचि अनुसारी । चलत समाज सोह अति भारी ॥

सभी भ्राताओं तथा सखागणों के सहित श्री राम जी महाराज भी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ आनन्दित मना, सुशोभित हो मनभावनी पुरी श्री मिथिला को चल पड़े। अपनी–अपनी इच्छा के अनुसार वाहनों में सवार होकर चलता हुआ सम्पूर्ण समाज अत्यधिक सुहावना प्रतीत हो रहा था।

यथा बरात बीच वर वासा । गवनी रही प्रथम परकासा ॥
तैसहिं वसत चले सुख जाहीं । पहुँचि गये मिथिला पुर माहीं ॥

जिस प्रकार श्री राम बारात मार्ग के सुन्दर निवास ग्रहों में निवास करती हुई पूर्व वर्णित क्रमानुसार आनन्द पूर्वक प्रस्थित हुई थी उसी प्रकार मार्ग के निवास गृहों में निवास करते हुए सभी लोग सुखपूर्वक चले जा रहे थे। इस प्रकार वे सभी श्री मिथिलापुरी पहुँच गये।

आवत दशरथ सुनि मिथिलेशा । किय अगुवानी साथ द्विजेशा ॥
जनक वशिष्ठहिं माथ नवाई । पद रज धरे शीश सुख छाई ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज का श्री मिथिलापुरी आगमन सुनकर श्री मिथिलेश जी महाराज ने निमिकुल आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी, पुरोहित श्री शतानन्द जी आदि विप्र–गणों के साथ आगे आकर उनका स्वागत किया। उन्होने रघुकुल आचार्य श्री वशिष्ठजी को अपना मस्तक झुका प्रणाम कर, उनके चरणों की धूल को सुखपूर्वक शिर में धारण किया।

सकल द्विजन पुनि सादर वन्दे । आशिर वचन लहे सुख कन्दे ॥
पुनि दशरथ कहँ जाय जोहारे । मिले भूप हिय लाय सुखारे ॥

पुनः उन्होने आदरपूर्वक सभी विप्रगणों की चरण वन्दना कर सुखों के मूल आशीर्वचन प्राप्त किये। तदुपरान्त श्री जनक जी महाराज चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के समीप जाकर प्रणाम किये तथा सुखपूर्वक हृदय से लगाकर भेंट किये।

दो०–जनक हृदय आनँद अमित, मिलत अवध के भूप ।
सोऊ सुठि सुख हिय लहे, अकथ अगाध अ नूप ॥३६०॥

अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज से मिलने (भेंट) के समय श्री जनक जी महाराज के हृदय में अपार आनन्द हुआ तथा श्री महाराज दशरथ जी ने भी हृदय में सुन्दर, अकथनीय, प्रगाढ़ और अनुपमेय सुख सम्प्राप्त किया।

भ्रातन सहित राम सुख सानी । बन्दे हरषि जनक गुरु ज्ञानी ॥
सादर मुनिवर हृदय लगाये । प्रेम पुलकि नयना जल छाये ॥

भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज सुख मे भरकर, हर्षित हो श्री जनक जी महाराज के आचार्य श्री याज्ञवल्क्य जी की चरण वन्दना किये, मुनिराज ने उन्हें आदरपूर्वक हृदय से लगा लिया तथा प्रेम पुलकित हो गये, उनके नेत्रों में अश्रु छा गये।

बहुरि राम निज बन्धु समेता । जनकहिं कीन्ह प्रणाम उपेता ॥
हरषि नयन भरि पुलकित गाता । हिय लगाय भेंटे सरसाता ॥

पुनः अपने भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज ने श्री जनक जी महाराज को साथ–साथ प्रणाम किया तब उन्होंने हर्षित हो, नेत्रों में अश्रु भरकर, पुलकित शरीर, आनन्द पूर्वक, हृदय से लगाकर श्री राम जी से भेंट की।

जनकहिं भयो अमित आनंदा । देखि राम मुख पूरण चन्दा ॥
गुरु समेत पितु पद शिर नाई । जनक सुवन शुभ आशिष पाई ॥

श्री राम जी महाराज का पूर्ण चन्द्र के समान मुख मण्डल देखकर श्री जनक जी महाराज को

असीमित आनन्द प्राप्त हुआ। जनक नन्दन श्री लक्ष्मीनिधि जी ने अपने गुरुदेव श्री याज्ञवल्क्य जी के सहित श्री मान् पिता जी के चरणों में शिर झुका प्रणाम किया तथा शुभाशीर्वाद प्राप्त किया।

गुरुजन कर पायउ बहु प्यारा । कुँअर हृदय आनन्द अपारा ॥
मिथिला सकल दरश के हेता। आई रही सुप्रीति समेता ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि ने अपने गुरुजनों का अत्यधिक प्यार प्राप्त किया जिससे उनका हृदय असीम आनन्द से परिपूर्ण हो गया। जो सम्पूर्ण मिथिला वासी सुन्दर प्रेम से ओत–प्रोत हो श्री राम जी महाराज के सुशोभन दर्शन के लिए, आये हुए थे–––

दो०–राम मिलन की लालसा, हृदय करोये लेत ।
अति अधीर लोचन सजल, छटपटात नहि चेत ॥३६१॥

–––श्री राम जी से भेंट करने की त्वरा उनके हृदय को अत्यन्त ही व्यथित कर रही थी, वे अश्रुपूर्ण नेत्रों से अत्यन्त अधीर हो तड़प रहे थे, उन्हें किंचित भी धैर्य नहीं हो रहा था।

सब हिय प्रेम राम तब जाना । यथा मीन तलफत अनुमाना ॥
अमित रूप करि आपुहिं श्यामा । सुन्दर सुखद स्वरूप ललामा ॥

श्री राम जी महाराज ने उन सभी के हृदय के प्रेम को जानकर तथा उन्हे जल के बिना मछली के समान तड़पते हुए समझकर, स्वयं के सुन्दर, सुखप्रद व श्रेष्ठ असीमित रूप बना लिये तथा–––

सकल मैथिलन हृदय लगाई। मिले प्रेम परिजन सुखदाई ॥
जेहिं के जिय जस भाव रहावा। तेहिं ते मिलत राम तस भावा ॥

–––उन सभी मैथिलों को हृदय से लगा कर भेंट किये। पुनः श्री राम जी महाराज, परिजनों से प्रेमपूर्वक सुख प्रदान करते हुए मिले। उस समय जिस मैथिल के हृदय में जिस प्रकार के भाव थे, श्री राम जी महाराज उससे उसी प्रकार के भावों की पूर्ति करते हुए भेंट किये।

प्रति मैथिल ढिग इक इक रामा । देवहिं आनँद अति सुखधामा ॥
लखा न काहू रघुपति भेदा । अपने ढिग श्यामहिं सब वेदा ॥

उस समय प्रत्येक मिथिला–वासी के पास सुख के धाम एक–एक श्री राम जी महाराज अत्यन्त आनन्द प्रदान कर रहे थे। रघुकुल के स्वामी श्री राम जी महाराज के इस रहस्य को किसी ने भी नहीं समझा, सभी लोग श्री राम जी महाराज को अपने समीप ही समझ रहे थे।

निज निज हिय सब अनुभव करहीं । आनँद महाभाव हिय धरहीं ॥
सब ते अधिक राम मोहि माने। सबहिं छोड़ मम हिय लपटाने ॥

वे सभी अपने–अपने हृदय में आनन्द और महाभाव को धारण कर अनुभव कर रहे थे कि– श्री राम जी महाराज सबसे अधिक मुझे मानते हैं क्योंकि सभी लोगों को छोड़कर मेरे हृदय से लिपटे हुए हैं।

दो०–आनँद मग्न विभोर अति, तेहिं छन मैथिल लोग ।
सो सुख अकथ अगाध अति, रघुवर मिलन सुयोग ॥३६२॥

उस समय सभी मैथिल अतिशयानन्द में मग्न हो विभोर हो रहे थे, श्री राम जी महाराज के साथ मिलन के सुन्दर योग का वह सुख अवर्णनीय तथा अत्यन्त गूढ़ था।

इक इक मैथिल प्रति इक रूपा। प्रेम सने सब भाँति अनूपा ॥
देखि देखि सुर वर सुर नारी। चढ़े विमानन होहिं सुखारी ॥

इस प्रकार प्रेम से ओत–प्रोत श्री रामजी महाराज का सभी प्रकार से अनुपमेय एक–एक विग्रह प्रत्येक मिथिलावासी के साथ देख–देखकर श्रेष्ठ देवता व देवांगनाएँ विमानों में चढे हुए सुखी हो रहे थे।

वरषहिं सुमन माल मणि रंगा । हनत दुंदुभी बढ़त उमंगा ॥
जय जय कहत इत्र की वर्षा । करत सुभग सबहीं सुख सरषा ॥

वे देवगण पुष्प, माल, मणियाँ व रंग बरषाते हुए दुन्दुभी बजा रहे थे जिससे अत्यधिक उत्साह वृद्धिंगत हो रहा था, जय जयकार करते हुए सुन्दर इत्रों की वर्षा कर रहे थे जिससे सभी लोग सुख में सने जा रहे थे।

दुहुँ दिशि भूमिहुँ बाजत बाजे । बन्दी विरद बदत बहु गाजे ॥
शान्ति पढ़हिं सब द्विज समुदाया । जय जय रव चहुँ दिशि शुभ छाया ॥

भूमि में दोनों पक्षों (मिथिला तथा अयोध्या पक्षों) से बाजे बज रहे थे, बन्दीजन अत्यन्त तीव्र स्वर से विरद का बखान कर रहे थे, सभी ब्राह्मण समुदाय शान्ति पाठ कर रहे थे, तथा चारो ओर शुभ जय–जयनाद छाया हुआ था।

करहिं अपसरा मंगल गाना। नृत्य भाव अति सुखद सुहाना ॥
जनकहुँ करि वर विनय विशाला । चले लिवाय पुरहिं नरपाला ॥
सुन्दर सुखद मनोहर वासा । दीन्हेव जहँ सब भाँति सुपासा ॥

अप्सरायें मांगलिक गीत गा रही थीं, उनके नृत्य तथा भाव अत्यन्त ही सुन्दर और सुख प्रदायी थे। अनन्तर श्री जनक जी महाराज अत्यन्त विनम्रता पूर्वक निवेदन कर, चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज को अपनी पुरी में लिवाकर ले चले तथा सुन्दर, सुखप्रद और सभी प्रकार की सुविधाओं से संयुक्त मनोहारी निवास प्रदान किये।

दो०–स्वागत शिष्टाचार करि, सब कर सबही भाँति ।
अशन शयन बहु मान दै, जनक लहे सुख शान्ति ॥३६३॥

श्री जनक जी महाराज ने समागत सभी अयोध्यापुर–वासियों का सभी प्रकार से स्वागत और शिष्टाचार कर अत्यन्त आदरपूर्वक भोजन और शयन प्रदान कर सुख और शान्ति प्राप्त की।

मास पारायण पन्द्रहवाँ विश्राम

छं०— उत मातु आवत जानि सिय, हरषित हृदय आनँद भरी ।
सखि बोलि आरति साज सजि, परिछन चलति पग लरखरी ॥
जल फेर ऊपर पालकिहिं, पढ़ि मंत्र रक्षा रस हिये ।
करि बार बारहिं आरती, प्रिय मातु हर्षण हिय दिये ॥

उधर रनिवास में अम्बा श्री सुनयना जी अपनी दुलारी पुत्री श्री सीता जी को आती हुई जानकर हर्षित हृदय हो आनन्द में भर गयीं तथा अपनी सखी से कहकर आरती उतारने की सामग्री सजवाकर लड़खड़ाते कदमों से परिछन करने के लिए चल पड़ीं। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि—अम्बा श्री सुनैना जी ने पालकी के ऊपर जल फिराया, आनंदित हृदय रक्षा मंत्र पाठ किया तथा अपने हृदय को न्योछावर करती हुई, प्रज्ज्वलित दीपों से अपनी प्रिय पुत्री श्री सीता जी की बारम्बार आरती उतारने लगीं।

सो०—सीतहिं लई उतार, मातु सुनैना मोद भरि ।
हिय महँ हर्ष अपार, नयन नीर अविरल बहत ॥३६४॥

अनन्तर अम्बा श्री सुनयना जी ने आनन्द में भर कर, श्री सीता जी को पालकी से उतार लिया, उस समय उनके हृदय में असीमित हर्ष हो रहा था तथा नेत्रों से लगातार अश्रु प्रवाहित हो रहे थे।

बार बार हिय हरषि लगाई । चूमि कपोल बहुत सुख पाई ॥
जनक लली प्रिय पाइ स्वमाता । महा मोद मन पुलकित गाता ॥

अम्बा श्री सुनयना जी ने हर्ष में भरकर लाड़िली श्री सिया जू को बार—बार हृदय से लगाया तथा उनके कपोलों का चुम्बन कर अत्यधिक सुख प्राप्त किया। जनक नन्दिनी श्री जानकी जू भी अपनी प्रिय अम्बा जी को प्राप्तकर मन में महान आनन्दित हुई व पुलकित शरीर हो गयीं।

इहै भाँति सब पुत्रिन काहीं । मातु उतारत पुलकत जाहीं ॥
सखी सेविका बीचहिं सीता । पूर्ण चन्द्र सम शोभ पुनीता ॥

इसी प्रकार से माण्डवी, उर्मिला व श्रुतिकीर्ति आदि सभी पुत्रियों को श्री अम्बा जी पालकी से उतारती हैं और पुलकित हो जाती हैं। उस समय पवित्र श्री सीता जी सखियों और सेविकाओं के बीच पूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रही थीं।

सादर मिलेउ सकल रनिवासा । लहा स्वाति जल पपिहिं पियासा ॥
जिमि अगाध जल मधि मुद मीना । रानि तथा सिय पाइ सुखीना ॥

श्री विदेहराज जी का सम्पूर्ण रनिवास श्री सीता जी से आदरपूर्वक ऐसे भेंट किया मानों प्यासे चातक पक्षी को स्वाति नक्षत्र का जल प्राप्त हो गया हो। जिस प्रकार गहरे पानी में मछली अत्यानन्दित होती है उसी प्रकार श्री सीता जी को पाकर अम्बा श्री सुनैना जी सुखी हो रही थीं।

सिद्धि कुँअरि अति आतुर आई । मिलति सीय भुइँ गिरी सुहाई ॥
प्रेम विवश तन थर थर काँपी । बहत अश्रु मुख सिय सिय जापी ॥

उसी समय श्री सिद्धि कुँअरि जी अपनी ननद श्री सिया जू का आगमन जानकर अत्यन्त आतुरता पूर्वक आयीं तथा श्री सीता जी से भेंट करते ही उनके प्रेम में विभोर हो, भूमि में गिर पड़ीं, प्रेम के वशीभूत उनका शरीर थर–थर कम्पित हो रहा था, आँखों से अश्रु बह रहे थे तथा मुख श्री सीता जी के शुभ नामों हे सिये, हे सीते, हे सिया जू, की रट लगाये हुए था।

सीय उठाय सचेत कराई। मिली सप्रेम ननँद भौजाई ॥
महा तृषित जनु पाइ पियूषा। तेहिं ते सत गुन सिधि लह सूखा ॥

श्री सीता जी ने उन्हें उठाकर सचेत किया तब दोनों ननँद और भौजाई श्री सिया जू व श्री सिद्धिकुँअरि जी ने प्रेम पूर्वक भेंट की। जिस प्रकार अत्यधिक प्यासा व्यक्ति अमृत प्राप्त कर सुखी होता है, श्री सिद्धि कुँअरि जी ने श्री सीता जी से भेंट कर उससे भी सौ गुना अधिक सुख प्राप्त किया।

दो०– सियहिं भगिनि युत लेइ करि, माता निज गृह जाय।
पाद्य अर्घ दिय प्रेम युत, भूषण बसन पिन्हाय ॥३६५॥

बहनों के सहित श्री सीता जी को साथ ले अपने भवन में जाकर अम्बा श्री सुनैना जी, प्रेमपूर्वक पाद्य–अर्ध दे (चरण व कर–कमल प्रच्छालित करवाकर) उन्हें आभूषण और वस्त्र धारण करवायीं।

सियहिं गोद लै भोग पवाई। अनुजा सखी सेविका खाई ॥
अचमन दै पुनि पान पवाई। माल पिन्हाय सुइत्र लगाई ॥

अनन्तर वे श्री सीता जी को गोद में लेकर सुन्दर भोग पवाने लगी, उनकी बहनें तथा सखी सेविकाओं सभी ने भोजन प्राप्त किया। पुनः अम्बा श्री सुनयना जी नें श्री सिया जू को आचमन कराकर ताम्बूल पवाया और पुष्प–माल धारण करा, सुन्दर इत्र लगाया।

मंगल स्तव सखि सह माता। पढ़ी प्रेम युत पुलकित गाता ॥
सिद्धिकुँअरि लखि लखि मुख सीता। होत सुखी प्रिय प्रेम पुनीता ॥

अम्बा श्री सुनैना जी ने सखियों सहित प्रेमपूर्वक पुलकित शरीर हो मंगल–स्तोत्र का पाठ किया। श्री सिद्धि कुँअरि जी श्री सीता जी के मुख कमल को देख–देख कर उनके प्रिय पवित्र प्रेम में सराबोर हो सुखी हो रही थी।

कबहुँ पकड़ि प्रिय कोमल चरणा। चाँपति हरष जाय नहि वरणा ॥
कबहुँ मंजु कर अँगुरी फोरी। कहति मगहिं दुख भयो बड़ोरी ॥

वे कभी उनके कोमल चरणों को पकड़कर अवर्णनीय हर्ष में भरकर पलोटने लगतीं तो कभी उनके कोमल कराम्बुजों की उँगलियों को चटकाते हुए कहतीं कि– आपको मार्ग में अत्यधिक श्रम–जन्य कष्ट हुआ है।

आवन उत्सव सदनहिं छायो। नृत्य गान वर बाद्य सुहायो ॥
दान विविध विधि ब्राह्मण पाये। सहित याचकन बन्दि सुभाये ॥

श्री मिथिलेश जी महाराज के राजभवन में उनकी पुत्री श्री सीताजी के आगमन के उपलक्ष्य में सुन्दर नृत्य, गीत तथा वाद्यों की झनकार के साथ महान उत्सव मनाया गया। मँगनों व बन्दीजनों

के सहित सुन्दर भाव पूर्वक ब्राह्मणों ने विभिन्न प्रकार से दान प्राप्त किया।

दो०–मिथिला पुर आनँद महा, घर घर बजत बधाव ।
राम सिया दरशन लहे, कहि न जाय उर चाव ॥३६६॥

उस समय श्री मिथिलापुरी में प्रत्येक घर में महान आनन्द छाया हुआ था, बधावा बज रहे थे, क्योंकि यहाँ के सभी निवासियों ने श्री सीताराम जी के दर्शन प्राप्त किये हैं, आज उनके उत्साह का वर्णन नहीं किया जा सकता।

सिय दरशन हित मैथिल नारी । अमित जुरी अन्तःपुर भारी ॥
जानि सबहिं शुचि प्रेम पियासी । धरी अमित तन सिय सुख रासी ॥

श्री सीता जी के दर्शन के लिए उनके अन्तःपुर में मिथिलापुरी की असीमित पौरांगनायें एकत्र हो गयीं थीं, जिन्हे देख, सुखों की राशि श्री सीता जी ने सभी को पवित्र प्रेम प्यास से परिप्लुत समझ कर अपने असीमित शरीर धारण कर लिया।

छन महँ मिली सबहिं सुख दीनी । मर्म लखे नहिं कोउ प्रवीनी ॥
सब कहँ सबहिं भाँति सुख देई । क्षेम कुशल पूँछी मन धेई ॥

इस प्रकार श्री सीता जी नें एक क्षण में ही सभी से सुख–दायी भेंट कर लिया। परम प्रवीण श्री सियाजू के इस रहस्य को कोई भी नहीं समझ सका। उन्होंने सभी को सभी प्रकार से सुख प्रदान किया तथा कुशल क्षेम पूछ कर मन से सभी को प्रणाम किया।

लक्ष्मीनिधि दशरथ शिर नाई । हाथ जोरि उत विनय सुनाई ॥
सकुचि होत पै करौं ढिठाई । हृदय लालसा कहहुँ सुहाई ॥

वहाँ (जनवास में) कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के चरणों में शिर झुका प्रणाम कर, हाथ जोड़ अपनी विनय सुनायी कि–हे महाराज! यद्यपि मुझे अत्यन्त संकोच हो रहा है तथापि धृष्टतापूर्वक अपने हृदय की सुन्दर इच्छा प्रगट कर रहा हूँ।–––

अस रुचि होय भ्रात युत रामा । वास करैं नित मोरे धामा ॥
आयसु होय साथ लै जाऊँ । सेवहुँ श्याम माँग यह पाऊँ ॥

–––मेरे हृदय में यह इच्छा हो रही है कि– श्री राम जी महाराज अपने भ्राताओं के सहित नित्य ही मेरे भवन में निवास करें। अतः आज्ञा प्राप्त हो तो इन्हें साथ ले जाऊँ तथा श्याम सुन्दर रघुनन्दन जू की सेवा प्राप्त करूँ, मेरी यही याचना है।

दो०–जानि कुँअर की लालसा, प्रीति पगी सुखदानि ।
भूप कहेव लै जाहु गृह, सेवहु सारँग पानि ॥३६७॥

कुँअर श्री लक्ष्मी निधि जी के निवेदन को श्रवण कर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने उनके हृदय की प्रेम में पगी हुई सुखदायी इच्छा को जानकर कहा कि– आप इन्हें अपने गृह ले जाइये तथा सारंग–धन्वा श्री राम जी की सानुज सेवा करिये।

पितु आयसु लहि पद सिर नाई। भ्रातन सहित राम रघुराई॥
रथ चढ़ि चले कुँअर के साथा। दरशन देत सबहिं श्रुति माथा॥

श्रीमान् पिता जी की आज्ञा प्राप्तकर उनके चरणों में शीश झुका प्रणाम कर भ्राताओं सहित श्रुतियों के तिलक श्री राम जी महाराज रथारूढ़ हो, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ सभी को अपने दर्शन का दान देते हुए चल दिये।

उत्सव सहित कुँअर लै गयऊ। मातु महल महँ पहुँचत भयऊ॥
मातु सुनैना सुनत अवाई। आरति साज सखिन सह धाई॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी उन्हें उत्सव पूर्वक लेकर चले तथा श्री अम्बा जी के महल में पहुँच गये। अम्बा श्री सुनैना जी श्री राम जी महाराज का आगमन सुन, आरती सजाकर, सखियों के सहित दौड़ कर वहाँ आ गई।

मंगल गावहिं प्रिय सब नारी। प्रेम प्रवाह बढ़त हिय भारी॥
आरति करी मुदित मन माता। नयन सजल अति पुलकित गाता॥

सभी नारियाँ प्रिय मांगलिक गीत गा रही थीं तथा सभी के हृदय में प्रेम का अतिशय प्रवाह बृद्धिंगत हो रहा था। उस समय आनन्दितमना, अश्रु विलोचना, अत्यन्त पुलकित वदना अम्बा श्री सुनयना जी ने श्री राम जी महाराज की आरती उतारी।

सहित भ्रात प्रभु कीन्ह प्रणामा। मातु कही जय मंगल रामा॥
शीश सूँघि दृग ढारति पानी। कीन्ही प्यार विविध विधि रानी॥

भ्राताओं सहित प्रभु श्री राम जी महाराज ने श्री सुनैना जी को प्रणाम किया, श्री अम्बा जी ने कहा– हे श्री राम रघुनन्दन जू! आप की जय हो, आपका मंगल हो। पुनः शिर सूँघकर कर नेत्रों से अश्रु बहाते हुये उनका विभिन्न प्रकार से प्यार किया।

दो०–मातु चरण कुँअरहुँ गिरे, भव्य भाव हिय धारि।
आशिष प्यार प्रमोद लहि, बहे प्रेम रस वारि॥३६८॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी नें भी हृदय में सुन्दर भाव धारण कर श्री अम्बा जी के चरणों में गिर कर प्रणाम किया तथा आशीष, प्यार और आनन्द प्राप्त कर प्रेम और रस के प्रवाह में प्रवाहित हो गये।

सिद्धि कुँअरि तहँ रामहिं देखी। पगी प्रेम रस हृदय विशेषी॥
सहित भ्रात रघुवर पग लागी। नयन नीर धोयउ रस रागी॥

वहाँ श्री राम जी महाराज को देखकर श्री सिद्धि कुँअरि जी हृदय के विशेष प्रेमानन्द में डूब गयीं तथा भ्राताओं सहित श्री रामजी महाराज के चरणों में प्रणाम कर आनन्द व प्रेमरस में पगी हुई उन्होने अपने नेत्रों के जल से श्री रामजी महाराज के चरणों का प्रच्छालन किया।

रामहिं चली लिवाय सुनैना। प्रेम भरी कछु पूँछ सकैना॥
चारि सिंहासन निज कर आनी। बैठारे रघुवर सुख सानी॥

अम्बा श्री सुनैना जी श्री राम जी महाराज को महल के अन्दर लेकर चलीं, वे श्री राम जी महाराज के प्रेम में ऐसे डूबी हुई थीं कि उनसे कुछ (कुशल–क्षेम आदि) भी पूँछनें में असमर्थ हो रही थीं। श्री अम्बा जी ने अपने हाथों से चार सिंहासन लाकर भ्राताओं सहित श्रीरामजी महाराज को उनमें सुखपूर्वक बैठा दिया।

पूजि सविधि पुनि आरति कीनी । कुशल क्षेम सब पूँछ प्रवीनी ॥
ललकति रही दरश तव रामा । आज भई में पूरण कामा ॥

विधि विधान से श्री राम जी महाराज का पूजन कर, श्री सुनैना अम्बा जी नें आरती उतारी और सभी कुशल समाचार पूछा। हे श्री राम भद्र जू! आपके दर्शन के लिए मैं अत्यन्त लालायित थी, आज ही मैं पूर्णकामा हुई हूँ।

बोले राम हमहुँ सुनु माई । दरश प्यास तव गये दुखाई ॥
देखत मिथिलहिं भयो प्रसन्ना । मिटी ब्याधि चित भयो अखिन्ना ॥

श्री अम्बा जी की बाणी श्रवणकर श्री राम जी ने कहा– हे श्री अम्बा जी! हम भी आपके दर्शन की प्यास से अत्यन्त दुखी थे परन्तु अब श्री मिथिलापुरी व आपका दर्शन करते ही प्रसन्न हो गये, हमारी सभी व्याधियाँ मिट गयीं और मन की उदासीनता समाप्त हो गयी।

दो०–सुखद राम निज मातु की, भेंट कुशल कह गाय ।
सुनत सुनैना हर्ष युत, रही प्रेम जल छाय ॥३६९॥

अनन्तर श्री राम जी महाराज ने अपनी अम्बाओं का सुख प्रदायक कुशल–समाचार व मिलन–भेंट कह सुनायी जिसे सुनते ही श्री सुनैना जी हर्षपूर्वक प्रेम–वारि परिपूर्णा हो गयीं।

बहुरि मातु बोली मृदु बानी । पावहु व्यंजन लाल सुजानी ॥
सासु विनय सुनि राम उदारा । पाये भोजन विविध प्रकारा ॥

तदुपरान्त अम्बा श्री सुनैनाजी ने कोमल बचनों से निवेदन किया कि– हे सुजान! लाल जी! कुछ भोग आरोग लीजिए। तब उदार श्री राम जी महाराज ने अपनी सासू श्री सुनैना जी की विनय को सुनकर विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थो को पाया।

सहित कुँअर सब भ्रातन साथा । अचवन किये मुदित रघुनाथा ॥
सिद्धि कुँअरि कर बीड़ा पाये। चारहु भाइ मोद उर छाये ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी व सभी भ्राताओं के साथ आनन्दपूर्वक श्री राम जी महाराज ने आचमन किया और श्री सिद्धि कुँअरि जी के हाथों से ताम्बूल पाकर चारों भाई हृदय में आनन्द परिपूरित हो गये।

बैठि सिंहासन सोहत सिगरे । मैथिल प्रेम गये सब पगरे ॥
तेहि अवसर पहुँचे निमिराऊ । दशरथ आयसु लै चित चाऊ ॥

अनन्तर सभी राजकुमार सिंहासन में विराज कर मिथिला वासियों के प्रेम में पगे हुए सुशोभित होने लगे। उसी समय श्री विदेहराज जी महाराज चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की आज्ञा प्राप्त

कर आनन्दित–चित्त वहाँ पहुँचे।

भ्रातन सहित राम मुख देखी। पाये आनँद हृदय विशेषी॥
पुनि पुनि लैवैं हृदय लगाई। करि वात्सल्य अधिक सरसाई॥

भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज के प्रफुल्ल मुख कमल का दर्शन कर उन्होंने अपने हृदय में विशेष आनन्द प्राप्त किया, वे बारम्बार श्री राम जी को हृदय से लगाकर वात्सल्य परिपूर्ण दुलार करते हुये अधिक प्रसन्न हो रहे थे।

दो०–पगे प्रेम गद्‌गद गिरा, बोले निमि भूपाल।
आज सुखी सब विधि भयो, तुमहिं निरखि रघुलाल॥३७०॥

प्रेम में पगे हुए, गद्‌गद वाणी से श्री जनक जी महाराज ने कहा– हे रघुनन्दन! मैं आपको देखकर आज सभी प्रकार से सुखी हो गया।

तुमहिं बिना जेते दिन गयऊ। सो सब तात जरन प्रद भयऊ॥
ताते कबहुँ नयन के बाहर। होयहु नहिं रघुवंश उजागर॥

हे तात् श्री रामभद जू! जितने दिन आपको देखे बिना व्यतीत हुए हैं वे सभी, जलन प्रदान करने वाले ही हुए हैं। अतएव हे रघुवंश को प्रकाशित करने वाले श्री राम! आप कभी भी इन नेत्रों के ओझल नहीं होइएगा।

राम श्वसुर मुख सुनि मृदु बैना। बोले बचन मनोहर ऐना॥
आपु सरिस निज पूज्यहिं पाई। मम मन अलग कबहुँ नहिं जाई॥

मनोहरता के भवन श्री राम जी महाराज अपने श्वसुर के मुख से कोमल वचनों को श्रवणकर मधुर वाणी से बोले– हे श्रीमान् दाऊ जी! आपके समान अपना पूज्य पाकर मेरा मन कभी भी आप से अलग नहीं जाता।–––

राउर दरश नयन नित चाहैं। छन छन बढ़ती अधिक उमाहैं॥
करि प्रिय प्यार भूप भल तोषी। गयो दरश हित सिया स्वपोषी॥

–––मेरे नेत्र नित्य ही आपका दर्शन करना चाहते हैं जिसके लिये प्रत्येक क्षण मेरे हृदय में अत्यधिक उमंग बढ़ती रहती है। श्री राम जी महाराज के वचनों को श्रवण कर, श्री जनक जी महाराज उन्हे प्रिय प्यार–दुलार कर सभी प्रकार से संतुष्ट किये और अपनें द्वारा पालित व पोषित पुत्री श्री सिया जू के दर्शन के लिए प्रस्थित हुए।

देखत सिया विलखि उठ धाई। नयन नीर ढारत लपटाई॥
गोद उठाय लीन्ह हिय भूपा। भूले तन मन बुद्धि स्वरूपा॥
शीश सूँघि जल ढारत नैना। सिय अभिषेक कियो अति चैना॥

अपनें पिता श्रीमान् जनक जी महाराज को देखते ही श्री सीता जी बिलखती हुई उठकर दौड़ पड़ी तथा नेत्रों से अश्रु बहाती हुई उनके चरणों से लिपट गयीं, श्री महाराज ने उन्हें गोद में उठाकर हृदय से लगा लिया तथा अपने शरीर, मन, बुद्धि और स्वरूप सभी को भूल गये। वे श्री सीता जी

का शिर सूँघ कर नेत्रों से ऐसे अश्रु बहा रहे थे मानों अत्यन्त आनन्द पूर्वक उनका अभिषेक कर रहे हों।

दो०– बहु बिधि सीतहिं प्यार करि, बोलेउ भूप महान ।
आज प्रकाश्यो भवन मम, तव पग धरत सुहान ॥३७१॥

श्री महाराज जनक जी ने अपनी आत्मजा श्री सीता जी को बहुत प्रकार से प्यार कर कहा– हे लाड़िली जू! तुम्हारे सुन्दर चरण रखते ही मेरा यह भवन आज परम प्रकाश से परिपूर्ण हो गया है।

मिथिला अब लौं रहि अँधियारी । लली विरह तव दीन दुखारी ॥
सब विधि सुखी पुरी भै आजू । आनँद रूप रही रस भ्राजू ॥

हे लली जू! यह श्री मिथिलापुरी अभी तक अंधकार से भरी हुई तथा तुम्हारे वियोग में दुखी और दीन थी, आज यह पुरी सभी प्रकार से सुखी हो गयी तथा आनन्द और रस स्वरूप बन कर सुशोभित हो रही है।

भूपति बैन सुनत सकुचाई । पितु तन लिपटि सिया रस छाई ॥
पुत्रिन सकल मिले नृपराई । शीश सूँघि अतिशय दुलराई ॥

श्री जनक जी महाराज के वचनों को सुनकर संकुचित हो, प्रेम–रस से पूरित हुई श्री सिया जू श्रीमान् पिता जी के शरीर से लिपट गयीं। अनन्तर श्री जनक जी महाराज ने सभी पुत्रियों से भेंट की तथा उनका शिरोघ्राण कर अत्यन्त दुलार किया।

बहुरि भूप रानिहिं समुझाया । सेयहु सीयराम तजि माया ॥
सेज सुलावहु थक कर आये । अस कहि भूप शयन गृह भाये ॥

पुनः श्री जनक जी महाराज ने अपनी महारानी श्री सुनैना जी को समझाया कि–हे महारानी जी! आप सर्वथा संसारिक–आसक्ति से रहित हो श्री सीताराम जी की सेवा करियेगा। अब इन्हें सुन्दर पर्यंकों में शयन कराइये क्योंकि थक कर आये हुए हैं, ऐसा कहकर श्री महाराज शयन गृह को चले गये।–––

सीय राम पद सुमिरत चाऊ । शयन कीन्ह अति सुन्दर भाऊ ॥
कुँअर राम लै सह सब भ्राता । गयउ भवन निज पुलकित गाता ॥
दम्पति कीन्हे अति सतकारा । भाव भक्ति प्रिय प्रेम पसारा ॥

–––वे श्री सीताराम जी के चरणों का उत्साह पूर्वक स्मरण करते हुए अत्यन्त सुन्दर भाव से शयन किये। इधर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी सभी भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज को लेकर पुलकित शरीर अपने भवन गये। वहाँ दोनों पति–पत्नी श्री लक्ष्मीनिधि जी तथा श्री सिद्धि कुँअरि जी ने भक्ति–भाव पूर्वक तथा प्रिय प्रेम प्रदर्शित करते हुए सभी राज कुमारों का अत्यधिक सत्कार किया।–––

दो०– पूजि सविधि भ्रातन सहित, मन महँ भरे उराव ।
अलग अलग वर कक्ष महँ, शयन कराव सुभाव ॥३७२॥

———उन्होने मन में अत्यन्त उत्साह भर कर, भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज का पूजन किया तथा अलग–अलग सुन्दर कक्षों में सभी को स्वाभाविक रूप से शयन कराया।

दम्पति रसे राम पग चापी। मन बच करत सुप्रेम प्रलापी ॥
सिद्धिहिं कहेउ राम तब जाना। सोये श्याल भाम भगवाना ॥

वे पति पत्नी (श्री लक्ष्मीनिधि जी तथा श्री सिद्धि कुँअरि जी) प्रेम पूर्वक वार्तालाप करते हुए, मन व वचन से श्री राम जी महाराज की चरण सेवा करने लगे। तदुपरान्त श्री राम जी महाराज अपनी प्रिय श्याल–वधू श्री सिद्धि कुँअरि जी से जाने के लिए कहकर, अपने प्रिय श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ शयन कर गये।

सिद्धि कुँअरि सासुहिं ढिग आई। पाँय पलोटि प्रेम उर छाई ॥
करि विनती सीतहिं लै साथा। शयन कक्ष गइ भरि रस पाथा ॥

तब श्री सिद्धि कुँअरि जी वहाँ से अम्बा श्री सुनैना जी के समीप आई व हृदय में प्रेम भरकर उनकें चरणों की सेवा करने लगीं तथा अम्बा जी से प्रार्थना कर श्री सीता जी को साथ ले प्रेमाश्रु परिपूरित हो, अपने शयन कक्ष को प्रस्थान कर गयीं।

हाव भाव युत शयन कराई। पाँय पलोटि बहुत सुख पाई ॥
कीन्हीं बातैं विविध प्रकारा। भाभी ननँद सुप्रेम प्रसारा ॥

वहाँ अपनी चेष्टाओं से प्रेम प्रदर्शित करती हुई, अपनी प्रिय ननद श्री सीता जी को पर्यंक में पौढ़ाकर उनके चरणों की सेवा कर श्री सिद्धि कुँअरि जी ने अत्यधिक सुख प्राप्त किया और भाभी व ननँद दोनो सुन्दर प्रेम प्रसारण करने वाली विभिन्न प्रकार की बातें करने लगीं।

कहत सुनत पुनि आलस भीनी। सोई दूनहुँ साथ प्रवीनी ॥
पवन तनय मिथिला बड़भागी। बनि सिय राम चरण अनुरागी ॥

इस प्रकार प्रेमवार्ता करते और सुनते हुए आलस्य में भर कर परम प्रवीणा भाभी व ननँद दोनों एक साथ शयन कर गयीं। श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि–हे पवन नन्दन श्री हनुमान जी! श्री मिथिलापुर निवासी अत्यन्त सौभाग्यवान हैं जो श्री राम जी महाराज के चरण कमलों के अनुरागी बने हुए———

सेवहिं सीता राम सप्रेमा। आपन तजे योग अरु क्षेमा ॥
एक पक्ष के आगेहिं तेरे। सिय जन्मोत्सव होहिं सुखेरे ॥

———प्रेम पूर्वक श्री सीताराम जी की सेवा करते हैं तथा अपने योग और क्षेम की चिन्ता का भी परित्याग किये हुए हैं। श्री मिथिलापुरी में एक पक्ष (१५ दिन) पूर्व से ही सुखपूर्वक श्री सीता जी का जन्मोत्सव प्रारम्भ हो जाता है।

दो०– घर घर बाज बधाव वर, सोहिल मंगल गान।
बन्दनवार सुचौक मणि, ध्वज पताक फहरान ॥३७३॥

अतएव प्रत्येक घर में सुन्दर बधाइयाँ बजने लगी हैं, सोहिल तथा मांगलिक गीत गाये जाने

लगे हैं, बन्दनवार बाँधे गये हैं, मणियों की सुहावनी चौके पूरी हुई हैं तथा ध्वजा और पताकायें फहराने लगी हैं।

आयी सुभग जानकी नौमी । राज सदन उत्सव सुख भौमी ॥
उत्सव के जे जे वर अंगा। ते ते हौवैं प्रीति अभंगा ॥

इस प्रकार बैशाख मास के शुक्ल पक्ष की सुन्दर नवमी तिथि (जानकी नौमी) आ गई, राज महल में सुखपूर्वक उत्सव मनाया जाने लगा। उत्सव के जितने भी अंग (नृत्य, गान, दान व मान आदि) होते हैं वे सभी श्री मिथिलापुरी में प्रेमपूर्वक अनवरत सम्पादित हो रहे हैं।

लक्ष्मीनिधि कर हर्ष अपारा । वरणि न जाय अगाध सदारा ॥
भूपति दम्पति धनहिं लुटावत । महा मोद मन तन पुलकावत ॥

सपत्नीक कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में असीम व अथाह हर्ष हो रहा है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकताा। पति पत्नी श्री जनक जी महाराज व श्री सुनैना जी दोनों विपुल धन लुटा रहे हैं तथा महान आनन्द के कारण उनके मन और शरीर पुलकित हो रहे हैं।

देवी देव महोत्सव आये । वरषि प्रसून निशान बजाये ॥
दशरथ हिय सुख लहै को पारा । सोउ मनाये उत्सव प्यारा ॥

श्री जानकी जन्म महोत्सव का दर्शन करनें के लिये सभी देवांगनायें और देवता श्री मिथिलापुरी आये हुये हैं जो पुष्प वर्षा कर नगाड़े बजा रहे हैं। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के हृदय के सुख का सीमांकन कौन कर सकता है, उन्होने भी अतिशय प्रियकारी उत्सव मनाया।

भ्रातन सहित राम सुख साने । देखे उत्सव नयन लुभाने ॥
उत्सव आनँद वरणि न जाई । आनँद सिन्धुहिं आनँद दायी ॥

भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज ने भी सुख पूर्वक, नेत्र–लुभावने उस जानकी जन्म महोत्सव का दर्शन किया। उस महोत्सव के आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता क्योंकि वह तो आनन्द के सागर प्रभु श्रीराम जी महाराज को भी आनन्द प्रदान करने वाला था।

दो०–यहि विधि प्रेम प्रमोद भरि, जात दिवस अरु रैन।
माधव मास व्यतीत भो, बढ़त हृदय अति चैन ॥३७४॥

इस प्रकार प्रेम और आनन्द से भरे हुए दिन और रात व्यतीत होने लगे तथा माधव (वैशाख) मास बीत गया, उस समय सभी के हृदय में अत्यधिक आनन्द की उत्तरोत्तर बृद्धि हो रही थी।

नित नव होत अधिक सतकारा । दशरथ हरषत भाव अपारा ॥
समय समय रघुपति सह भ्राता । जावैं पितु ढिंग भाव सुहाता ॥

श्री मिथिलापुरी में नित्य नवीन और अधिकाधिक स्वागत सत्कार हा रहा था उनके अपरिमित भाव को देख–देखकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज अत्यन्त हर्षित हो रहे थे। समय समय पर भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज सुन्दर भाव पूर्वक श्री मान् पिता जी के समीप जाते रहते थे।

कुँअर पिता सह सेवहिं तिनहीं । पुर परिवार सहित सुख सनही ॥
होत ऋषिन सह नित सत संगा । भूपति रँगै मैथिलन रंगा ॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अपने श्रीमान् पिता जी सहित समाज के साथ चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की सेवा करते रहते थे तथा वे श्री अयोध्यापुरी और परिवार के सहित सुख में डूबे रहते थे, वहाँ ऋषियों–मुनियों का नित्य ही सत्संग होता रहता था इस प्रकार अयोध्याधिपति श्री दशरथ जी महाराज श्री मिथिला पुर वासियों के रंग में रँग गये थे।

अवध जान हित होहिं तयारे। रोकि जनक हिय होत सुखारे ॥
एक दिवस मुनियन लै भूपा। मागे विदा सुभाव अनूपा ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज श्री अयोध्यापुरी प्रस्थान के लिए, नित्य तैयार होते थे परन्तु श्री जनक जी महाराज उन्हें प्रेम पूर्वक रोक कर हृदय में सुखी होते थे। एक दिन मुनियों को साथ लेकर श्री दशरथ जी महाराज ने सुन्दर अनुपमेय भाव पूर्वक विदा माँगी।

अति रुख जानि मुनिन सुनि बचना । कीन्ह विदेह विदा की रचना ॥
हाथ जोरि चरणन शिर नाई । अवध नृपति सन कह निमिराई ॥
सखे सेव मैं रघुवर केरी। कियौ न कछु जस चाह हियेरी ॥

अनन्तर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज की अत्यधिक इच्छा को जान और मुनियों के सम्मति पूर्ण वचनों को सुनकर श्री विदेहराज जी महाराज ने विदाई की तैयारी सम्पन्न की। पुनः अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज के चरणों में शिर झुका प्रणाम कर, हाथों को जोड़ श्री विदेहराज जी बोले– हे सखे! मेरे हृदय की जैसी इच्छा थी मैं श्री राम भद्र जू की वैसी कोई सेवा नहीं कर सका।–––

दो०–अतः पुर अभिलाष अति, इहै अधिक मन माहिं ।
आयसु होय तो राम इत, भ्रात सहित रहि जाहिं ॥३७५॥

–––अन्तःपुर में भी सभी के हृदय की यही तीव्र इच्छा है कि– यदि आपकी आज्ञा प्राप्त हो जाय तो श्री राम जी महाराज अपने भ्राताओं सहित यहाँ कुछ दिन और रह जायें।

गुरु सम्मत कह अवध नृपाला । पूर्ण काम तुम होहु भुआला ॥
दूतन सन लरिकन सुधि प्यारी । रहेव पठावत रुची हमारी ॥

रघुकुल गुरुदेव श्री बशिष्ठ जी की आज्ञा प्राप्त कर अयोध्या नरेश श्री दशरथ जी महाराज ने कहा– हे श्री विदेह राज जी! आप पूर्ण मनोरथ हों, परन्तु हमारी रुचि को ध्यान में रखकर दूतों के द्वारा राजकुमारों का प्रिय समाचार भिजवाते रहियेगा।

भलेहिं नाथ कहि तिरहुत राजा । कीन्हे सकल विदा की साजा ॥
दाइज दीन्हो यथा विवाहा । कियो तासु सों अधिक उछाहा ॥

तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज ने कहा– अच्छा, नाथ! जैसी आपकी इच्छा। ऐसा कहकर उन्होने विदाई की सम्पूर्ण व्यवस्था कर दी। श्री जनक जी महाराज ने वैवाहिक विदा के समान ही,

बल्कि उससे भी अधिक दहेज उत्साह के साथ दिया।

ऋषिन समेत अवध के वासी। पूजे जनक सुप्रीति प्रकाशी॥
भ्रातन सह रामहिं कह भूपा। रहहु श्वसुर गृह जन सुखरूपा॥

श्री जनक जी महाराज ने सुन्दर प्रेम प्रदर्शित करते हुए ऋषियों सहित सभी श्री अयोध्यापुर वासियों का पूजन किया। तदनन्तर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने भ्राताओं सहित श्री राम जी महाराज से कहा कि– हे जन सुखदायी श्री रघुनन्दन! आप कुछ काल यहीं अपने श्वसुरालय में ही निवास करें।

पितु बच सुनि सकुचे रघुराऊ। धन्य शीलमय मृदुल स्वभाऊ॥
जो आज्ञा कहि पुनि शिर नाई। लाड़ प्यार बहु आशिष पाई॥

अपने श्रीमान् पिता जी के वचनों को सुनकर श्री राम जी महाराज संकुचित हो गये, धन्य है उनके शीलमय व कोमल स्वभाव को। जो आज्ञा कहकर श्री राम जी महाराज ने पुनः अपने श्री मान् पिता जी को शिर झुका प्रणाम किया तथा उनसे अत्यधिक लाड़–प्यार व आशीष प्राप्त की।

गुरुहिं दण्डवत कीन्हेव रामा। आशिष आयसु पाय ललामा॥
भ्रातन सहित गये निज वासा। गवने अवध नृपति सहुलासा॥

पुनः श्री राम जी महाराज ने गुरुदेव श्री बसिष्ठ जी को दण्डवत प्रणाम किया तथा शुभाशीष और सुन्दर आज्ञा प्राप्त की। तदुपरान्त वे भ्राताओं सहित अपने निवास गृह चले गये तब अयोध्या नरेश श्री दशरथजी महाराज भी श्री अयोयापुरी को प्रस्थान किये।

दो०–सँग कुँअर भ्रातन सहित, पहुँचाये निमिराज।
प्रीति परस्पर अकथ अति, कहि न सकैं अहिराज॥३७६॥क॥

भ्राताओं सहित कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी तथा निमिराज श्री जनक जी महाराज चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज को पहुँचाने गये। उनकी पारस्परिक प्रीति अत्यन्त अवर्णनीय है जिसे स्वयं श्री शेष जी भी नहीं बखान कर सकते।

सो०–फेरे जनक भुआल, अवध नृपति बहु बार मिलि।
लोचन नलिन विशाल, दूनहु भरे सनेह जल॥ख॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज प्रेम पूर्वक कई बार हृदय से लगाकर श्री जनक जी महाराज को वापस भेज दिये, उस समय उन दोनों महाराजाओं के बड़े–बड़े नेत्र कमलों में प्रेमाश्रु भर आये थे।

करि प्रणाम पुनि सहित समाजा। आये भवनहिं निमिकुल राजा॥
पहुँच अवध नृप कार्य सम्हारा। सीय राम चित चिन्तन सारा॥

उन सबको प्रणाम कर ससमाज निमिकुल नरेश श्री जनक जी महाराज अपने भवन आय गये। उधर श्री दशरथ जी महाराज श्री अयोध्यापुरी पहुँच कर, अपने चित्त में श्री सीताराम जी का चिन्तन करते हुए सभी राज कार्य सम्हालने लगे।

सहित सुनैना तिरहुत राऊ। सेवहिं सीय राम शुचि भाऊ॥
जेहिं विधि सुखी श्याम अरु श्यामा। सोइ करहिं नृप नित मन कामा॥

श्री सुनैना जी सहित तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज पवित्र भावपूर्वक श्री सीताराम जी की सेवा करने लगे। श्री महाराज नित्य ही मन से वही कार्य करते थे जिनसे श्याम सुन्दर श्री रघुनन्दन जू तथा श्यामा श्री सिया जू सुखी होते थे।

सिद्धि कुँअरि लक्ष्मीनिधि भावा। अमित अगाध अकथ करि गावा॥
जनक लली रघुवर सेवकाई। भगिनि भाम के भाव सुहाई॥

हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– श्री सिद्धि कुँअरि जू और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय का श्री सीताराम जी के प्रति भाव असीमित गहरा और अकथनीय है। वे श्री जनक नन्दिनी जू और रघुनन्दन श्री राम जी महाराज की सेवा सुन्दर बहन व बहनोई के भाव में भर कर–––

छन छन करहिं सम्हार सम्हारी। प्रीति पगे मन मोद अपारी॥
मज्जन अशन शयन दिनचर्या। होत कुँअर की सँग रघुवर्या॥
चारहु भाइ एक जिय जानी। सेवहिं कुँअर करम मन बानी॥

–––प्रत्येक क्षण सम्हाल–सम्हाल कर, प्रेम में पगे हुए अपार आनन्द परिपूर्ण मन से कर रहे थे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की स्नान, भोजन, शयन आदि दैनिक क्रियाएँ श्री राम जी महाराज के साथ होती थी। वे चारों भ्राताओं को हृदय से एक समझ कर मन, बचन और कर्म से सेवा करते थे।

दो०– रामहुँ लखि लखि श्वसुर पुर, सेवा प्रीति सुभाव।
भूले सुधि बुधि अवध की, मिथिला वास उराव॥३७७॥

श्री राम जी महाराज भी अपने श्वसुर पुरी (श्रीमिथिला) के सेवा, प्रेम और सुन्दर भाव को देख–देखकर, श्री मिथिलापुरी निवास के आनंद में मग्न होकर श्री अयोध्यापुरी की भी, सुधि–बुधि भूल गये थे।

अष्ट याम सेवत निमि वारा। राम लहहिं सुख जाहि प्रकारा॥
कहुँ कमला जल करैं विहारा। कंचन विपिन कबहुँ रस धारा॥

श्री राम जी महाराज को जिस प्रकार से अपार सुख प्राप्त हो कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी आठो–याम उसी प्रकार उनकी सेवा करते थे। प्रभु श्रीराम जी महाराज कभी श्री कमला जी के जल में विहार करते तो कभी कंचन वन की आनन्द–रस की धारा में डूबे रहते थे।

कबहुँ सिद्धि लै निज कर बीना। गीत सुनावति प्रेम प्रवीना॥
कहुँ प्रमदावन बैठ सुहावैं। नयन लाभ सब सादर पावैं॥

श्री राम जी महाराज को कभी प्रेम पारंगता श्री सिद्धि कुँअरि जी अपने हाथों में वीणा लेकर गीत सुनाती थी तो कभी वे स्वयं श्री प्रमदा वन में विराजकर सुशोभित होते थे जिससे सभी लोग आदरपूर्वक अपने नेत्रों के सुलाभ को प्राप्त करते थे।

कबहुँ सासु ढिग श्वसुर सकासा । बैठहिं राम हृदय रस वासा ॥
सभा सदन कहुँ विमला तीरा । विहरहिं भ्रात सहित रघुवीरा ॥

कभी हृदय में आनन्द पूर्वक श्री राम जी महाराज अपनी सासू श्री सुनैना जी के पास तो कभी श्वसुर श्री जनक जी महाराज के समीप बैठते थे। श्री राम जी महाराज अपने भाइयों सहित कभी राज–सभा में तो कभी श्री विमला जी के किनारे विहार करते थे।

कबहुँ श्याल सँग खेलत खेला । सुन्दर भाव प्रेम हिय मेला ॥
सुनहिं श्याल मुख सुन्दर गीता । बाद्य बजत उपजावत प्रीता ॥
कबहुँ राम मुख सुन्दर गायन । चाहत सुनन कुँअर मति आयन ॥

कभी वे अपने प्रिय श्याल कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ सुन्दर भाव तथा प्रेम पूर्वक हृदय मिलाकर विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाये करते थे, कभी श्री राम जी महाराज अपने श्याल श्री लक्ष्मीनिधि जी के मुख से गाये हुये सुन्दर गीत श्रवण करते जिसमें प्रेमोत्पादक बाद्य बजते थे। कभी बुद्धि के आगार कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी श्री राम जी महाराज के श्री मुख से सुन्दर गायन सुनने की इच्छा करते थे।

दो०–प्रेम विवश रसिकेश वर, कर लै बीना बेन ।
मोहन राग सुनावहीं, मोहत मन सुख देन ॥३७८॥

उस समय अपने प्रिय श्याल के प्रेम वशीभूत रसिकों के ईश्वर श्री राम जी महाराज हाथ में वीणा और बाँसुरी लेकर 'मोहन' राग में गीत सुनाते तथा मन को मुग्ध करते हुए सुख प्रदान करते थे।

सुनत कुँअर होवहिं रस मगना । प्रेम प्रवाह बढ़ै बिन भगना ॥
विहरहिं कबहुँ राम वर बागा । सहित भ्रात मिथिला रस पागा ॥

उनके गायन को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी रस में मग्न हो जाते थे तथा उनके हृदय में अविरल प्रेम का प्रवाह प्रवाहित होने लगता था। कभी श्री राम जी महाराज भ्राताओं सहित रस मग्न हो श्री मिथिलापुरी के सुन्दर उद्यानों में विहार करते थे।

नव नव उत्सव प्रति दिन होई । जात दिवस निशि जान न कोई ॥
कहुँ झूलन कहुँ हरषि वसंता । उत्सव होत हेतु सिय कंता ॥

श्री मिथिलापुरी में प्रतिदिन नवीन–नवीन उत्सव होते रहते थे जिससे दिन व रात्रि का व्यतीत होना कोई समझ नही पाता था। वहाँ सीता–कान्त श्री राम जी महाराज के लिए हर्षपूर्वक कभी झूलन तो कभी वसन्तोत्सव का अयोजन होता रहता था।

षट ऋतु उत्सव जे शुभ गाये । मिथिला हौवें परम सुहाये ॥
परमैकान्तिक सुन्दर सेवा । प्रीति सने कर कुँअर सुधेवा ॥

छहों ऋतुओं (वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त व ग्रीष्म) के जो भी शुभ उत्सव वर्णन किये गये हैं वे सभी परम सुन्दर उत्सव श्री मिथिलापुरी में सम्पन्न हो रहे थे। कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी प्रेम में डूबे हुए सजगता पूर्वक अपने बहनोई श्री राम जी महाराज की सुन्दर

परमैकान्तिक सेवा करते थे।

मिथिला बस श्री राम उदारा। करत मनोहर चरित अपारा॥
कुँअर संग रघुवर रस साने। रहहिं अलौकिक सुखहिं समाने॥

श्री मिथिलापुरी में निवास करते हुए परमोदार श्री राम जी महाराज मन को हरण करने वाले असीमित चरित्र कर रहे थे तथा कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के साथ रसमग्न हुए अलौकिक सुख में समाये रहते थे।

दो०—अकथ अगाध अगम्य वर, चरित श्याल अरु भाम।
राम कृपा कोउ रसिक वर, अनुभव कर हिय धाम॥३७९॥

श्याल और भाम द्धकुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री राम जी महाराज) के चरित्र सुन्दर अकथनीय, अथाह तथा अगम्य हैं जिनका अनुभव श्री राम जी महाराज की कृपा से, अपने हृदय देश में कोई रसिकजन ही कर पाते है।

कुँअर राम की प्रीति सुपेखी। जनक लली हिय हर्ष विशेषी॥
अपनेहु पर अति भैया नेहू। भाभी मातु पिता रस गेहू॥

कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी और श्री राम जी महाराज की पारस्परिक प्रीति को देखकर जनक लली श्री सिया जू के हृदय में विशेष हर्ष होता था। रस के भवन अपने भैया, भाभी, माता व पिता का अपने आप पर अत्यधिक स्नेह———

देखि सनी नित आनँद रूपा। रहति मगन मन भाव अनूपा॥
लखि लखि राम रूप हरषाती। रहति रसी रस पुलकित छाती॥

———देखकर आनन्द स्वरूपा श्री सिया जू अनुपमेय भाव में भरी हुई नित्य ही मन मग्न रहती थी। श्री राम जी महाराज के रूप लावण्य को देख—देखकर श्री सीता जी हर्षित होती थीं व पुलकित हृदया उनके रसानुभव में डूबी रहती थीं।

यहि प्रकार सिय रघुवर रामा। मिथिला वास करैं सुख धामा॥
एक दिवश सिधि सदन मझारी। बैठे कुँअर राम रस वारी॥

इस प्रकार सुख के धाम श्री सीताराम जी श्री मिथिलापुरी में निवास कर रहे थे। एक दिन श्री सिद्धि—सदन में कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी और रस—स्वरूप श्री राम जी महाराज विराजे हुए थे।

प्रीति पगे दोउ राजत सोहैं। इक इक देख जात मन मोहैं॥
कुँअर हृदय अस भयो विचारा। जइहैं अवध कबहुँ प्रभु प्यारा॥

परस्पर प्रेम में पगकर विराजे हुए, वे दोनों राज कुमार सुशोभित हो रहे थे तथा एक दूसरे को देख—देखकर मन मुग्ध हुए जा रहे थे। उस समय कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के हृदय में यह विचार आया कि— मेरे प्रिय प्रभु श्री राम जी महाराज कभी अपनी पुरी "श्री अयोध्या" चले जायेंगे।———

दो०—होई पुनः वियोग मम, अस आनत हिय माँहि ।
मुरछि परे महि ह्वै विकल, रही न सुधि तन काहिं ॥३८०॥

———उस समय पुनः मुझे इनका वियोग हो जायेगा, यह बात हृदय में आते ही वे मूर्छित हो व्याकुल होकर भूमि में गिर पड़े उन्हें शरीर की स्मृति नहीं रही।———

छोड़ि गये कहँ मोहिं विहाला । हाय प्राण धन दशरथ लाला ॥
हाय श्याम हा सुखकर रामा । रटत कुँअर मन मोहन धामा ॥

———वे मूर्छावस्था में, हे प्राणधन, दरशरथ नन्दन जू आप मुझे व्याकुल बना, छोड़कर कहाँ चले गये? हे श्याम सुन्दर, हे सुखकरण, श्री राम जी महाराज, हे मन मोहन, हे मेरे आश्रय ऐसा कह कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी प्रलाप करने लगे।

सात्विक चिन्ह उदय दिखराहीं । अश्रु प्रवाह विरह तन माहीं ॥
तलफत कुँअर विकल अति होई । प्रेम विचित्र जगेव चित मोई ॥

उनकी देह में प्रेम के सात्विक चिन्ह प्रगट होकर दिखाई पड़ने लगे, आँसुओं का प्रवाह व प्रभु विरह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो गया और कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी अत्यन्त व्याकुल हो वियोग जन्य पीड़ा से तड़पने लगे। उनकी प्रेम—वैचित्री अवस्था जागृत हो गई व उनका चित्त प्रेम में डूब गया।

राम गोद रखि कुँअर सुशीशा । पोंछत अश्रु बचन कह ईशा ॥
कुँअर सुनहिं शुभ बात हमारी । इतहिं अहैं हम होहु सुखारी ॥

तब श्री राम जी महाराज कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के शिर को अपनी गोद में रख, उनके अश्रुओं का प्रोच्छण करते हुए बोले— हे कुमार! हमारी शुभ बात सुनिये, हम तो यहीं, आपके समीप ही हैं, अतः आप सुखी हो जायें।———

तुमहिं छोड़ मैं अनत न रहऊँ । मानहु बचन सत्य सब कहऊँ ॥
मम अंकहि निज शीषहिं धारे । बिलपत वृथा प्राण धन प्यारे ॥
देखहु खोलि नेत्र हम काहीं । तुमते छणिक न विलग लखाहीं ॥

———आप मेरे वचनों को मान लीजिए, मैं सभी बातें सत्य कह रहा हूँ कि— मैं आपको छोड़कर अन्यत्र नहीं रह सकता। हे मेरे प्राणधन, प्यारे कुमार! आप तो मेरी गोद में अपना शिर रखे हुए, व्यर्थ ही विलाप कर रहे हैं। आप नेत्र खोलकर मुझे देखिये तो, मैं आपसे एक क्षण के लिए भी पृथक नहीं दिखूँगा।

दो०—बहुत भाँति उपचार किय, सिद्धि सहित श्रीराम ।
दण्ड चार बीते जगे, जनक कुँअर सुख धाम ॥३८१॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी सहित श्री राम जी महाराज ने बहुत प्रकार से उपचार किया तब चार दण्ड (१ घण्टे ४७ मिनट) व्यतीत होने के बाद सुख के धाम कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी जागृत हुए।

कहा राम धनि प्रेम तुम्हारा । वशी कियो मोहि सुनहु कुमारा ॥
तव मुख देखि रहौं नित प्यारे । मानत सुख धन धाम विसारे ॥

उन्हे सचेत हुये देखकर श्री राम जी महाराज ने कहा– हे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी! सुनिये, आपका प्रेम धन्य है, जिसने मुझे अपने वश में कर लिया है। मैं तो नित्य आपका मुख देखकर ही रहता हूँ तथा अपने धन (ऐश्वर्य) और धाम को भुलाकर सुख मानता रहता हूँ।

कुँअर कृपा कहि लै हिय रामा । माने मोद शान्ति विश्रामा ॥
सिद्धिहुँ सेवा सरस सुहाती । करत राम की दिन अरु राती ॥

श्री राम जी के वचनों को श्रवण कर कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा–'यह तो आपकी कृपा है', ऐसा कहकर श्री राम जी महाराज को हृदय से लगा कर उन्होने आनन्द, शान्ति और विश्राम प्राप्त किया। श्री सिद्धि कुँअरि जी भी श्री राम जी महाराज की दिन–रात रस से भरी हुई सुन्दर परिचर्या करती रहती थीं।–––

जेहि सुख लहहिं ननँद ननदोई । प्रीति रीति रस हिय रख सोई ॥
लखि लखि सुखी सुखद सिय रामा। अष्टयाम सोउ सुखी स्वधामा ॥

–––जिस कार्य से उनके ननद और ननदोई श्री सीताराम जी सुख प्राप्त करें वे रसमयी प्रेम–पद्धति को हृदय में धारण कर वही कार्य करती थीं। श्री सिद्धि कुँअरि जी को देख–देखकर सर्व सुख–प्रदायी श्री सीताराम जी सुखी होते थे तथा वे भी अपने भवन में उनकी आठो–याम सेवा करती हुई सुख में डूबी रहती थीं।

कबहुँ हँसति रामहिं हँसवाती । हास विलास सखिन सह राती ॥
कबहुँ प्रेम पगि कुँअर सुवामा । माँगति प्रेम युगल अभिरामा ॥

वे कभी स्वयं हँसकर श्री राम जी महाराज को हर्षित करती थीं तथा सखियों के साथ उनके हास–विलास में लगी रहती थीं। कभी कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की सुन्दर वल्लभा श्री सिद्धि कुँअरि जी, प्रेम में डूब कर अपनें दोनो आराध्यों श्री सीताराम जी के प्रेम की याचना करती थीं।

दो०–त्रिकरण सेवति सरसि सिधि, बुद्धि अहं बिसराय ।
कुँअरहिं मन महँ मेलि के, राम सीय सुखदाय ॥३८२॥

श्री सिद्धि कुँअरि जी सुख में सरसायी हुई मन, वचन और कर्म से बुद्धि और अहंकार को भुलाये हुये कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी के मन में मन मिला कर श्री सीताराम जी की सुख प्रदायिनी सेवा करती थीं।

जे जिमि वंशी सहज उदारा । मंत्री कुल गुरु विप्र सदारा ॥
प्रेम विवश चह रामहिं लावन। भवन आपने करन सुपावन ॥

श्री निमिवंश के मंत्री, कुलगुरु तथा ब्राह्मण आदि जो सहज उदार जन थे वे सभी अपनी नारियों सहित, प्रभु प्रेम के वशीभूत हो, अपने भवनों को पवित्र करने के लिए श्री राम जी महाराज को बुलाना चाहते थे।–––

सादर जाहिं राम तिन धामा । करहिं ग्रहण शुचि भाव ललामा ॥
देखि देखि मिथिला नर नारी । सोचत इत अइहैं धनुधारी ॥

श्री राम जी महाराज आदर पूर्वक उनके भवन जाते तथा उनके सुन्दर पवित्र भावों को ग्रहण करते थे। उन्हें देख–देखकर श्री मिथिलापुरी के अन्य पुरुष और स्त्रियाँ यही विचार करते थे कि–क्या, कभी धनुर्धर श्री राम जी महाराज हमारे यहाँ भी आयेंगे?–––

कबहुँ लालसा हमरिउ पूरी। कहत न बनै भाव हिय भूरी॥
राज कुँअर गरुता लखि लोगू। करहिं न विनती आवन योगू॥

–––हमारी अभिलाषा भी क्या कभी पूर्ण होगी? श्री लखन लाल जी कहते हैं कि हे हनुमान जी! उनके हृदय के सुन्दर भावों का वर्णन करते मुझसे नहीं बन रहा। राजकुमार श्री राम जी महाराज के महानता (ऐश्वर्य) को देखकर वे सभी, बुलाने की प्रार्थना नहीं कर पाते थे।

लखि सत भाव एक दिन रामा। धारे अमित रूप अभिरामा॥
एकहिं साथ गये सब केरे। लखा न काहु मर्म हिय हेरे॥

अतः उनके सच्चे भावों को समझकर एक दिन श्री राम जी महाराज अपने असीमित सुन्दर रूप धारण कर एक साथ सभी के भवन पहुँच गये, उनके इस रहस्य को अपने हृदय में कोई भी नहीं समझ सका।

दो०–मन आशा पूरित किये, दिये अमित सुख जाय।
भाव ग्रहण रघुनाथ करि, आपन लियो बनाय॥३८३॥

इस प्रकार श्री राम जी महाराज सभी के भवन जाकर उन सभी की मनोभिलाषा पूर्ण कर असीमित सुख प्रदान किये और उनके भावों को ग्रहण कर उन्हें अपना बना लिये।

मिथिला विहरहिं राम कृपाला। प्रेम विवश भक्तन प्रतिपाला॥
मिथिला भाग्य विभव सुख साजा। कहि न सकहिं वाणी अहिराजा॥

इस प्रकार अपने भक्तों का प्रतिपालन करने वाले परम कृपालु श्री राम जी महाराज, प्रेम के वशीभूत हो, श्री मिथिलापुरी में विहार कर रहे थे। श्री मिथिलापुरी के भाग्य, वैभव, सुख व शोभा का बखान श्री सरस्वती जी और श्री शेषजी भी नहीं कर सकते।

मानत जाहि राम ससुसारी। नित्य गिनत नैहर सिय प्यारी॥
विहरहिं सदा युगल वर रामा। शक्ति ब्रह्म जन पूरण कामा॥

जिस पुरी को पूर्णतम परब्रह्म श्री राम जी महाराज अपनी प्रिय श्वसुराल तथा परमाद्याशक्ति श्री सिया जू नित्य प्रति अपना मायका (मातृ–पुरी) समझती हैं। जहाँ स्वयं शक्ति और ब्रह्म–स्वरूप युगल वर श्री सीताराम जी अपने भक्तों की भावनाओं को पूर्ण करते हुए, सदैव विहार करते हैं।–––

कहै कवन तेहिं महिमा गाई। नित्य धाम सिय राम सुहाई॥
मैथिल सकल प्राण सम प्यारे। सीय राम कहँ करैं सुखारे॥

–––उस पुरी की महान महिमा का गायन कौन कर सकता है जो श्री सीताराम जी का नित्य सुन्दर धाम हो। हमारे सद्गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–यद्यपि सभी मिथिला–पुर–वासी श्री सीताराम जी को प्राणों के समान प्रिय व सुखी करने वाले थे।–––

तदपि कुँअर की प्रीति रसायन । प्रेमिन हिय अनुराग बढ़ायन ॥
रामहु पगे जासु वर प्रीती । छन वियोग नहि सहैं अजीती ॥

———तथापि कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रीति तो अपने प्रभु श्री राम जी महाराज के हृदय को परिपुष्ट व स्वस्थ करने के लिये दिव्य पेय ही है जो प्रेमियों के हृदय में अनुराग बढ़ाने वाली है। सर्वथा अजेय श्री राम जी महाराज भी जिनकी सुन्दर प्रीति में डूबे हुये थे व उनके एक क्षण के वियोग को भी नही सहन कर पाते थे।

दो०— यहि प्रकार सियराम नित, मिथिला करत विहार ।
निरखि निरखि मैथिल सदा, मानत मोद अपार ॥३८४॥

इस प्रकार श्री सीताराम जी नित्य श्री मिथिलापुरी में विहार करते रहते थे जिसे देख–देखकर सभी मैथिल सदा अपार आनन्द प्राप्त करते थे।

आवत पुनः अवध सिय रामा । भाव भरे हिय प्रीति ललामा ॥
लीला ललित अवधपुर करहीं । सखा सखी दासन मुद भरहीं ॥

कुछ दिन श्री मिथिलापुरी में निवास कर हृदय में मैथिलों के सुन्दर प्रेम से परिप्लुत हो, भाव में भरे हुए श्री सीताराम जी, श्री अयोध्यापुरी आ जाते हैं तथा वहाँ सुन्दर चरित्र कर सखाओं, सखियों और सेवकों को आनन्द से ओत–प्रोत करते हैं।

षट ऋतु भाँति भाँति की लीला । जनक लली रघुवर सुख शीला ॥
करत देन अतिशय आनंदा । जन मन गगन सुपूरण चन्दा ॥

जनक नन्दिनी श्री जानकी जू व रघुनन्दन श्री राम जी महाराज सुख में सने हुए अपने भक्त–जनों के मन रूपी आकाश में सुन्दर पूर्ण चन्द्र की तरह सुशोभित हो छहों ऋतुओं की विभिन्न प्रकार की लीलाएँ, उन्हें अत्यन्त आनन्द प्रदान करने के लिए किया करते थे।

सरयू तट कहुँ विपिन प्रमोदा । करत विहार राम चहुँ कोदा ॥
होवहि विविध भाँति की केली । सहित सखिन अरु सिया नवेली ॥

श्री राम जी महाराज कभी श्री सरयू जी के तट में तो कभी श्री प्रमोद वन में, चारों दिशाओं में सुख प्रदान करते हुए विहार करते थे। वहाँ रसिक श्रेष्ठ श्री राम जी महाराज की श्री सिया जू और सखियों के साथ विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाएँ सम्पन्न हुआ करती थीं।

नृत्यगान वर सखिगण करहीं । सेवहिं सीय राम सुख भरहीं ॥
नाट्य कला बहु भाँतिन केरी । करि करि रिझवहिं सिय वर चेरी ॥

सखियाँ सुन्दर नृत्य और गायन करते हुए श्री सीताराम जी की सेवा करतीं और सुख में भर जाती थी। विभिन्न प्रकार की अभिनय कलाएँ करती हुई दासियाँ सीताकान्त श्री राम जी महाराज को रिझाती रहती थीं।

दो०– रामहु कहुँ कहुँ प्रेमवश, वीणा वेणु बजाय ।
करहिं गान अति मधुर मधु, देवहिं सबहिं मोहाय ॥३८५॥

कभी–कभी श्री राम जी महाराज भी उनके प्रेम के वशीभूत हो वीणा और बाँसुरी बजा–बजा कर अत्यन्त मधुर–मधुर गायन कर सभी को व्यामोहित कर देते थे।

छं०– सुनि गीत मन महँ मोद भरि, होतो जगत बिन चित्त के ।
मुनि देव मानुष नारि नर, सब शान्त सुनत सुलिप्त के ॥
जड़ जीव चेतन होत जनु, जड़ सम सुचेतन लखि परैं ।
प्रभु प्रेम परबश जीव सब, रस धार प्रवहत रस झरैं ॥

श्री राम जी महाराज के मधुर गीत को, आनन्दित मन, श्रवण कर सम्पूर्ण संसार चित्त विहीन हो जाता था अर्थात् उनका चित्त चोरी चला जाता था। मुनिगण, देवता, मनुष्य, स्त्रियाँ और पुरुष आदि संसार के सभी जन शान्त होकर श्रीराम जी महाराज के गीत को उसमें लिप्त होकर सुनते थे। उस समय ऐसी प्रतीति होती है जैसे जड़ जीव चैतन्य हो गये हो और चैतन्य जीवों ने जड़ता धारण कर ली हो। प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रेम के वशीभूत सभी जीव रस वरषाते हुये श्री राम गायन को श्रवणकर रस के प्रवाह में प्रवाहित हो जाते थे।

सुर सुमन वरषहिं सिद्धगन, प्रिय करत जय जयकार है ।
सुर नारि नृत्यहिं प्रेम भरि, नूपुर मचत झनकार है ॥
रस आत्म राजत अन्य सब, नशि जात नित्यानन्द तहँ ।
रसिकेश रघुवर राम की, हर्षण शरण सानन्द महँ ॥

श्री राम जी महाराज के द्वारा गाये हुये गीत–ध्वनि को श्रवण कर देवता पुष्प वरषाने लगते, सिद्ध–गण प्रियकारी जय–जयकार करते, देवांगनायें प्रेम में भर कर नृत्य करने लगतीं जिससे उनके नूपुरों की झनकार त्रिलोक में छा जाती थी। हमारे आचार्य महाप्रभु स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–अन्य सभी जीवों के नित्य के क्षणिक लौकिक सुख विनष्ट हो जाते तथा उनकी आत्मा रसानुभव में उसी प्रकार मग्न हो जाती थी जैसे रसिकों के भूप श्री राम जी महाराज की सुन्दर शरणागति ग्रहण कर जीव शाश्वत सुख की प्राप्ति कर लेते हें।

सो०–सीता राम विहार, नित्य अशोक सुबाग महँ ।
परिकर सहित उदार, होवत आत्म स्वरूप पग ॥३८६॥

इस प्रकार अयोध्या पुरी के श्री अशोक बाग में परिकरों के सहित, श्री सीताराम जी का नित्य ही विहार होता रहता था जिसमे सभी परिकर अपने आत्म स्वरूप में पग जाते (स्थित हो जाते) थे।

कहुँ प्रिय श्यालहिं राम लिवाई । सहित भ्रात सरयू तट जाई ॥
करहिं विहार सखन सह भूरी । देत सबहिं अति आनन्द पूरी ॥

कभी श्री राम जी महाराज अपने प्रिय श्याल राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी को लेकर भ्राताओं

सहित श्री सरयू जी के तट जाकर, सखाओं सहित सुन्दर विहार करते और सभी को अत्यधिक पूर्णानन्द प्रदान करते थे।———

क्रीड़ा विविध भाँति सरसाई । आनँदमय नित होय सुहाई ॥
लक्ष्मीनिधि सँग अवधहिं आये । आनँद मगन राम रस छाये ॥

———वहाँ नित्य ही सुन्दर आनन्दमयी व सुख से ओत–प्रोत विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाएँ होती थीं। जनककुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी आनन्द मग्न हो, श्री रामजी महाराज के साथ ही श्री अयोध्यापुरी आ गये थे जिससे श्री रामजी महाराज नित्य प्रेमरस में छके रहते थे।

सियहुँ बिलोकि नित्य निज भ्राता । रहति मुदित मन पुलकित गाता ॥
कबहुँ राम उपदेशहिं ज्ञाना । तत्व यथारथ वेद पुराना ॥

जनक दुलारी श्री सीता जी भी अपने भैया जी को देख–देखकर अपने मन में नित्य आनन्दित तथा पुलकित बदना बनी रहती थीं। श्री अयोध्यापुरी में श्री राम जी महाराज कभी वेदों और पुराणों के यथार्थ रहस्य ब्रह्म–तत्व का उपदेश करते थे।———

ऋषि मुनि देव सिद्ध समुदाई । राज सभा पितु मातु सुभाई ॥
प्रभु कर प्रवचन नर अरु नारी। सुनहिं सकल सुधि देह बिसारी ॥

——ऋषि, मुनि, देवता, सिद्धगण, राज्य सभा के सदस्य, श्री मान् पिता जी, श्री अम्बा जी, समस्त भ्रातृगण व अन्य पुरुष–स्त्री आदि सभी, प्रभु श्री राम जी महाराज के प्रवचन (उपदेश) को श्रवण करते हुए आनन्दित हो शरीर की स्मृति भूल जाते थे।

हय गय गाय वृषभ लव लाई । निगलब कबल छाँड़ि रसछाई ॥
सुनहिं प्रेम रत कान उठाये । नयन नीर पुलकावलि छाये ॥

श्री राम जी के प्रवचन को घोड़े, हाथी, गाय, बैल आदि ध्यान लगा कर, कवल निगलना छोड़ कर, रस मग्न हो, प्रेमपूर्वक, कान उठाये हुये, आँखों में अश्रु भर पुलकित शरीर हो श्रवण करते थे।

दो०—जीव जन्तु भृंगादि जे, करत नेक नहिं शोर ।
सुर नर मुनि की का कथा, सुनहिं प्रेम रस बोर ॥३८७॥

सभी जीव–जन्तु यहाँ तक कि भ्रमर (भृंग) आदि कीट भी उस समय किंचित शोर नहीं करते थे, फिर देवता, मनुष्य और मुनियों की कथा क्या कहें? वे सभी तो प्रेम और आनन्द में डूबे हुए प्रभु वचनामृत का पान, किया ही करते थे।

सुनि सुनि सिद्ध सुरन समुदाया । वरषहिं सुमन सुखद सरसाया ॥
कहहिं आज भो भाषण जैसा । देव समाजहुँ सुनें न तैसा ॥

श्री राम जी महाराज के प्रवचन को सुनकर सिद्धों और देवताओं के समुदाय आनन्दित हो सुखप्रदाई पुष्प वरषाते हुये कहते थे कि– आज श्री राम जी महाराज द्वारा "ब्रह्म–तत्व" का जिस प्रकार का प्रवचन हुआ है वैसा देवताओं के समाज में भी नहीं सुना गया।———

ब्रह्म लोक लौं आतम वादी। विधि हर शुक शारद सनकादी॥
सुनें न तिन महँ सुनिहहिं नाहीं। यथा राम भाषण सरसाहीं॥

———यहाँ से श्री ब्रह्मा जी के धाम पर्यन्त, समस्त आत्मवादी, श्री ब्रह्मा जी, श्री शंकर जी, श्री शुकदेव जी, श्री शारदा जी व श्री सनकादिक ऋषियों आदि सभी से, हमने न तो ऐसा प्रवचन सुना है और न ही भविष्य में सुनेंगे जैसा सुन्दर व सरस श्री राम जी महाराज का प्रवचन हुआ है।———

अस कहि अमित पुष्प वरषाये। नारद व्यास जयति जय गाये॥
यहि प्रकार साकेत सुहाहीं। परिकर सहित राम सुख माहीं॥

———ऐसा कह कर सभी सिद्धगणों ने अपार पुष्पों की वर्षा की तथा श्री नारद जी व श्री व्यास जी आदि मुनियों ने श्री राम जी महाराज की जय–जय–कार की। इस प्रकार श्री राम जी महाराज सुखपूर्वक अपने परिकरों सहित श्री साकेतपुरी (अयोध्यापुरी) में सुशोभित हो रहे थे।

ब्रह्मा विष्णु महेश मुनीशा। लोकपाल सिगरे जगदीशा॥
समय समय शक्तिन सह आई। दरशन करहिं राम रघुराई॥

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शंकर जी सहित सभी ऋषि–मुनि व समस्त लोकों का पालन करने वाले लोकपाल आदि सभी ईश कोटि के देवता अपनी–अपनी शक्तियों के सहित समय समय पर आकर श्री राम जी महाराज के दर्शन करते थे।———

दो०–प्रेम कृपा आनन्द लहि, जाहिं आपने धाम।
सीय राम राजत अवध, जन मन पूरण काम॥३८८॥

———वे सभी श्री राम जी महाराज की कृपा, प्रेम और आनन्द प्राप्त कर अपने–अपने धाम प्रस्थान कर जाते थे। इस प्रकार भक्तों के मन की कामनाएँ पूर्ण करने वाले श्री सीताराम जी श्री अयोध्यापुरी में सुशोभित रहे थे।

एक बार मिथिला पति आये। रहे अवध अति आनँद छाये॥
चलत समय कह दशरथ राजा। सुनिय सखा मम बातहिं आजा॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि– हे श्री हनुमान जी! एक बार श्री मिथिलापुरी के महाराज श्री विदेहराज जी श्री अयोध्यापुरी आये तथा अत्यन्त आनन्द पूर्वक निवास किये पुनः उनके प्रस्थान करते समय चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने कहा– हे सखे! आज, आप मेरी एक बात श्रवण कीजिये।———

राउर जब जब अवधहिं आवत। वास करन मुद्रा दै जावत॥
ताते कछुक भूमि लै मोला। वास करैं तहँ चित्त अडोला॥

———आप जब भी श्री अयोध्यापुरी पधारते हैं तब–तब यहाँ निवास करने के बदले में प्रचुर धन राशि दे जाते हैं। इसलिए आप, यहाँ कुछ भूमि क्रय कर लीजिए और फिर, स्थिर– चित्त से उसमें निवास कीजिये।———

भवन एक शुचि सुखद बनाई । रहैं तहाँ जब आवहिं भाई ॥
बोले जनक मोल का देऊँ । कहे भूप सादर सुनि लेऊ ॥

———उस भूमि में एक पवित्र व सुखदायी महल बनवाकर हे भाई! जब भी आप आवें वहीं निवास कीजिए। चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के वचन सुनकर श्री जनक जी महाराज ने कहा कि– हे राजन्! मुझे उस भूमि का आपको, क्या मूल्य देना होगा? तब श्री दशरथ जी महाराज ने कहा कि– आप आदरपूर्वक सुनिए,———

जल सम्भूत मणी जो दीन्ही । सो सीता की बद हम कीन्ही ॥
तैसहिं मणी एक दै भूपा । लेहिं भूमि निज मन अनुरूपा ॥

———आपने हमें जल से उत्पन्न वह जो एक 'प्रवर मणि' प्रदान की थी उसे हमने श्री सीता जी के निमित्त कर दिया था, हे राजन्! आप उसी प्रकार की एक मणि और देकर अपनी इच्छानुसार भूमि प्राप्त कर लें।———

दो०—देऊँ सादर श्याम कहँ, सोइ मणि प्रीति बढ़ाय ।
हिय महँ ललित सुलालसा, दीजै तुरत पठाय ॥३८९॥

———जिससे मैं उस मणि को आदर सहित प्रेम बढ़ाकर अपने पुत्र श्री राम जी को प्रदान करुँ। हे महाराज! मेरे हृदय में यही एक सुन्दर कामना है, आप उस मणि को शीघ्र ही भिजवा दीजिए।

बिनु कछु कहे आपने देशा । आये विस्मित जनक नरेशा ॥
अन्य मणी नहिं भवनहिं वैसी । माँगी नृप वर दशरथ जैसी ॥

———तब श्री जनक जी महाराज बिना कुछ कहे हुए, वह मणि न दे सकने के खेद को लिये अपने देश 'श्री मिथिला' आ गये क्योंकि उनके भवन में उस प्रकार की दूसरी मणि नहीं थी, जैसी मणि की मांग श्री दशरथ जी महाराज ने की थी।

सीय भरोसे मन चुप साधी । बसैं भवन मिथिलेश अबाधी ॥
इहाँ एक दिन दशरथ राऊ । कहत विनोद माँहि चित चाऊ ॥

श्री सीता जी के भरोसे पर, मन में चुप्पी साध (शान्ति पूर्वक) श्री मिथिलेश जी महाराज निश्चिंत हो महल में निवास करने लगे। इधर श्री अयोध्यापुरी में एक दिन चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज आनन्दित–चित्त हो, पुत्रवधू श्री सीता जी से विनोद में बोले———

पुत्रि पिता तव बहु दिन तेरे । नहि सँकोच वश आये नेरे ॥
मणि दै लेन कहिन एक भूमी । लागत घर महँ सो नहिं जूमी ॥

———हे पुत्री, सीते! आपके श्रीमान् पिता जी बहुत दिन से संकोच के कारण हमारे पास नहीं आये, उन्होंने एक मणि देकर कुछ भूमि खरीदने की बात की थी, परन्तु लगता है कि– उनके कोषभवन में वह मणि जमा नहीं है।

सुनि सँकोच वश शीश नवाई । गयी सासु पहँ सिय सुखदायी ॥
सीय कृपा मिथिलापुर माहीं । माली खन्यो कूप बड़ काहीं ॥

चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज के वचन को सुनकर, संकुचित हो सुख प्रदायिनी श्री सीता जी उन्हें शिर झुका प्रणाम कर सासू श्री कौशिल्या जी के समीप चली गयीं। इधर श्री मिथिलापुरी में श्री सीता जी की ऐसी कृपा हुई कि– एक मालाकार ने एक बड़ा सा कुँआ खोदा।–––

दो०–तामहँ तैसहिं मणिन की, निकसत ढेरिन ढेर ।
यानन भरि भरि जनक नृप, भेजी अवधहिं हेर ॥३९०॥

–––उस कूप में उसी प्रकार के मणियों की अपार राशि निकलने लगी, तब श्री जनक जी महाराज ने उन्हें निकलवाकर वाहनों में भर–भर कर श्री अयोध्यापुरी भिजवा दिया।

दशरथ लखि सिय जनक प्रभाऊ । पुलके हृदय मोद भरि चाऊ ॥
जनक यशहिं थापन के हेता । चक्रवर्ति निज हृदयहिं चेता ॥

श्री सीता जी व श्री विदेहराज जी महाराज के प्रभाव को देखकर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज हृदय में आनन्द और उत्साह से भरकर पुलकित हो गये। श्री चक्रवर्ती जी महाराज ने श्री जनक जी महाराज की कीर्ति को अचल स्थापित करने के लिए अपने हृदय में विचार किया तथा–––

रत्नाचल महँ मणिन धरायो । करि विचार जग प्रगट दिखायो ॥
मणि पर्वत सब करहिं उचारा । करहिं राम नित तहाँ विहारा ॥

–––उन सम्पूर्ण मणियों को उन्होने रत्नाचल पर्वत में रखवा दिया इस प्रकार से श्री जनक जी महाराज के महान यश को संसार में प्रगट कर दिखा दिया। उस रत्नाचल पर्वत को सभी 'मणि पर्वत' के नाम से पुकारते हैं तथा वहाँ श्री राम जी महाराज नित्य विहार करते हैं।

झूलन उत्सव जहँ हनुमाना । अति प्रिय अहै राम भगवाना ॥
जनकहिं भूमि दियो भूपाला । बना भवन तहँ सुख सब काला ॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी ने कहा हे श्री हनुमान जी! जहाँ पर झूलन का उत्सव परम प्रभु श्री राम जी महाराज को अत्यन्त प्रिय है। तदनन्तर चक्रवर्ती श्री दशरथ जी महाराज ने श्री जनक जी महाराज को भूमि प्रदान की और वहाँ पर उनका सर्व काल सुखावह भवन बनाया गया।–––

रहत आइ श्री तिरहुत राऊ । किये हृदय अति सुन्दर भाऊ ॥
मिथिला अवध अवध है मिथिला । बचन अशंसय गिनहु अशिथिला ॥

–––जहाँ तिरहुत नरेश श्री जनक जी महाराज आकर अत्यन्त सुन्दर भाव से निवास करते हैं। हे श्री हनुमान जी! श्री मिथिलापुरी ही श्री अयोध्यापुरी है तथा श्री अयोध्यापुरी ही श्री मिथिलापुरी है, आप मेरे वचनों को संशयहीन व दृढ़ समझिये।

दो०–ब्रह्म ज्ञान विद श्रेष्ठ ऋषि, कहहिं सदा करि टेक ।
दूनहुँ एकहिं धाम हैं, निश्चय नित्य विवेक ॥३९१॥

सभी ब्रह्म–ज्ञानी, श्रेष्ठ ऋषि–मुनि सदैव, दृढ़ता पूर्वक उद्‌घोष करते हैं कि– विवेकतया श्री राम जी महाराज के दोनो धाम (श्री मिथिला व श्री अवध) निश्चित रूप से एक तथा नित्य हैं।

अवध वसत रघुवर पुर काजा। करहिं शीश धरि आयसु राजा ॥
सुखी रहैं नित कौसल देशा। सोइ करहिं प्रभु चरित विशेषा ॥

श्री अयोध्यापुरी में निवास करते हुए श्री राम जी महाराज अपने पिता श्रीमान् दशरथ जी महाराज की आज्ञा शिरोधार्य कर राज्य कार्यो का सम्पादन करते रहते थे। प्रभु श्री राम जी महाराज विशेष रूप से उसी प्रकार के चरित्र करते थे जिससे कोशलपुर निवासी नित्य सुखी रहें।

प्राण प्राण सबहिन प्रिय रामा । मिथिला अवध वसहिं अभिरामा ॥
कहुँ मिथिला कहुँ अवध पधारी । करहिं नित्य जन काहिं सुखारी ॥

श्री राम जी महाराज सभी के प्राणों के प्राण समान प्रिय बने हुए सुन्दर श्री मिथिला और श्री अयोध्यापुरी में निवास कर रहे थे तथा कभी श्री मिथिलापुरी में तो कभी श्री अयोध्यापुरी में जाकर नित्य ही अपने जनों को सुख प्रदान करते रहते थे।

कहैं कोउ ये अवध विहारी। एक कहैं ये मिथिला चारी ॥
तैसहिं कुँअर अवध कहुँ वासा । मिथिला बसहिं कबहुँ सहुलासा ॥

इस प्रकार कोई कहते कि– श्री राम जी महाराज तो श्री अयोध्यापुरी में विहार करने वाले हैं तो कोई कहते कि– ये तो श्री मिथिलापुर– विहारी हैं। उसी प्रकार, श्री राम जी महाराज के समान ही, कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी भी कभी श्री अयोध्या पुरी में तो कभी श्री मिथिलापुरी में आनन्दपूर्वक निवास किया करते थे।

श्याल भाम दूनहु नृप वारे । इक एकन पर सब निज हारे ॥
प्रेम विवश इक एकन होई । मिथिला अवध बसैं सुख मोई ॥

श्याल और भाम (श्याले बहनोई) दोनों भूपति कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज एक दूसरे पर सर्वस्व न्योछावर किये हुए, परस्पर प्रेम के वशीभूत हो श्री मिथिलापुरी तथा श्री अयोध्यापुरी दोनो पुरियों में सुखपूर्वक निवास करते थे।

राम कृपा बिनु यह युग प्रीती। को जानै को करै प्रतीती ॥
सो रस जानेउ तुम हनुमाना । पागे कुँअर प्रीति मतिमाना ॥

प्रभु श्री राम जी महाराज की कृपा के बिना इस युगल (श्याल और भाम की) प्रीति को कौन समझने वाला व विश्वास करने वाला है? हे परम बुद्धिवान, श्री हनुमन्त लाल जी! आपने ही उस 'रस' को पहचाना है जिससे कुँअर श्री लक्ष्मीनिधि जी की प्रीति में पगे हुए हैं।

दो०–यहि प्रकार मन मोद भरि, सिय रघुवीर विहार ।
रस वर्षत युग पुर सदा, रसिकन सुख दातार ॥३९२॥

इस प्रकार युगल सरकार श्री सीताराम जी आनन्दित मन, श्री मिथिला व श्री अयोध्या दोनों पुरियों में रस वर्षण करते हुये सदा ही विहार करते रहते थे और अपने रसिक जनों को अतिशय सुख

प्रदान करते थे।

छं०– सिय राम रघुवर प्रेम वश, विहरत युगल वर धाम हैं।
धनि धन्य निरखत भक्त जन, नित शक्ति ब्रह्म ललाम हैं॥
शिव ब्रह्म विष्णुहुँ जासु नित, करि ध्यान मानस लावते।
पुर औध मैथिल लोग तेहिं, जिन नयन दरशन पावते॥

अपने प्रेमियों के प्रेम के वशीभूत हो श्री सीताराम जी दोनों श्रेष्ठ पुरियों श्री मिथिला व श्री अवध में विहार करते रहते हैं, वे भक्त–जन धन्यातिधन्य हैं जो नित्य ही सुन्दर ब्रह्म और शक्ति स्वरूप श्री राम जी महाराज और श्री सीता जी के दर्शन करते हैं। श्री शिव जी, श्री ब्रह्मा जी तथा श्री विष्णु जी (त्रिदेव) भी जिन्हें नित्य प्रयत्न पूर्वक ध्यान कर अपने हृदय में धारण करते हैं उन्हीं प्रभु श्री सीताराम जी का दर्शन, श्री अयोध्यापुरी और श्री मिथिलापुरी के निवासी जन अपने चर्म चक्षुओं से प्राप्त करते हैं।

भरि अंक भेटत मेलि भुज, प्रिय परशि तन सुख पावहीं।
प्रभु बोल अमृत रस सने, सुनि सुनि सुराग बढ़ावही॥
जग केर कारण ब्रह्म पर, तेहिं सुत सखा भ्राता कहैं।
कह भाम जामाता अवर, सम्बन्ध हर्षण नित लहैं॥

इन युगल पुरियों के निवासी श्री राम जी महाराज को अपनी गोद में लेकर, भुजाओं से भुजाएँ मिला, उनके प्रिय शरीर का स्पर्श कर सुख प्राप्त करते हैं तथा प्रभु श्री राम जी महाराज की अमृत रस से सनी हुई सुन्दर वाणी को श्रवण कर अपने हृदय में उनके प्रति प्रेम (अनुरक्ति) बढ़ाते रहते हैं। हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि–जो संसार के कारण स्वरूप, पूर्णतम परब्रह्म हैं उन्हीं प्रभु श्री राम जी महाराज को वे पुत्र, सखा और भ्राता कहते हैं। तथा कोई जामाता (दामाद) तो कोई बहनोई कहते हुये अन्यान्य प्रकार के भाव सम्बन्ध से नित्य भावित हो हर्ष में समाये रहते हैं।

सो०–अण्ड अनेकन होत, भृकुटि विलासहिं जासु के।
प्रगट भई निमि गोत, भगिनि सुता मैथिल कहत॥

पुनः जिनके भ्रू विलास मात्र से अनेक ब्रह्माण्डों के उत्पत्ति, पालन व संहार आदि कार्य होते हैं, वे ही परमाद्या शक्ति श्री सीता जी, श्री निमिकुल में प्रगट हुई हैं तथा श्री मिथिलापुर निवासी उन्हें बहन और पुत्री कहते हैं।

यहि विधि चरित उदार, प्रीति पगे रसमय रसद।
करत जनन सुख सार, बीते द्वादश वर्ष शुभ॥

हमारे सद्‌गुरुदेव भगवान स्वामी श्री राम हर्षण दास जी महाराज कहते हैं कि– हे सज्जनो! प्रेम में पगे हुए परम प्रभु श्री सीताराम जी अपने भक्तजनों को सुख प्रदान करने वाले ऐसे रसमय, रस

प्रदायक व उदार चरित्र कर रहे थे, इस प्रकार चरित्र करते हुये शुभ बारह वर्ष व्यतीत हो गये।।

दो०—जनक कुँअर रघुवीर के, सुनि सुनि चरित सुजान ।
प्रेमाभक्ति सुपावहीं, सहित धाम हनुमान ॥३९३॥क॥

श्री लक्ष्मण कुमार जी कहते हैं कि— हे श्री हनुमान जी! परम सुजान जनक कुमार श्री लक्ष्मीनिधि जी व श्री राम जी महाराज के परम पावन चरित्रों को श्रवणकर जीव श्री सीताराम जी के परम धाम 'श्री साकेत' सहित उनकी प्रेमाभक्ति को प्राप्त करेंगे।

नित्य इकान्तिक सेव वर, अचल लहहिं नर लोग ।
यह साकेत सुकाण्ड जो, सेवहिं नित मन योग ॥ख॥

जो लोग इस परम सुशोभन 'साकेत काण्ड' का नित्य मनोयोग के साथ सेवन करेंगे वे परम प्रभु श्री राम जी महाराज की नित्य एकान्तिक, अविचल व सुन्दर सेवा को प्राप्त करेंगे।

मन मल शमन सुभाव प्रद, रस वर्षावन हार ।
भव रस नाशक मोद प्रद, रघुपति चरित उदार ॥ग॥

श्री राम जी महाराज का यह उदार चरित्र मन की मलिनता का विनाश करने वाला, सुन्दर भाव प्रदान करने वाला, भगवद्रस (रामानन्द) की वर्षा करने वाला व सांसारिक रस (भवानन्द) का नाश कर परमानन्द प्रदान करने वाला है।

श्लोक— यस्य स्मरण मात्रेण, सिद्धिं संलभते जनः ।
तस्मै त्वह प्रदास्यामि, रामाय चरित शुभम् ॥

जिन प्रभु श्री सीताराम जी के के स्मरण मात्र से जीव सम्पूर्ण सिद्धियों को सम्प्राप्त कर लेते हैं, उन्हीं अपने स्वामी को उनके विनियोग के लिये, उनका ही यह शुभ चरित्र, मैं समर्पित करता हूँ।

इति श्रीमद् प्रेमरामायणे, प्रेम रस वर्षणे, जन मानस हर्षणे, सकल कलि कलुष विध्वंसने, साकेतो नाम द्वितीयः काण्डः समाप्तः

इस प्रकार प्रेम रस वर्षायिनी, जन जन हिय हर्षायिनी, सकल कलियुग कलुष दुरायिनी श्रीमद् प्रेमरामायण जी का साकेत नामक काण्ड समाप्त हुआ।

॥ साकेत काण्डः समाप्तः॥

—::::::—

* अनंत श्री विभूषित श्रीरामहर्षण दासजी महाराज का अनमोल भक्ति साहित्य *

१. वेदान्त दर्शन (ब्रह्मसूत्र व्याख्या)
२. श्रीप्रेमरामायण (पंचम संस्करण) सजिल्द
३. औपनिषद ब्रह्मबोध (द्वितीय संस्करण)
४. गीता ज्ञान (द्वितीय संस्करण)
५. रस चन्द्रिका (द्वितीय संस्करण)
६. प्रपत्ति-प्रभा स्तोत्र
७. विशुद्ध ब्रह्मबोध
८. ध्यान वल्लरी
९. सिद्धि स्वरूप वैभव (द्वितीय संस्करण)
१०. सिद्धि सदन की अष्टयामी सेवा
११. लीला सुधा सिन्धु (तृतीय संस्करण)
१२. चिदाकाश की चिन्मयी लीला
१३. वैष्णवीय विज्ञान (द्वितीय संस्करण)
१४. विरह वल्लरी
१५. प्रेम वल्लरी (द्वितीय संस्करण)
१६. विनय वल्लरी (तृतीय संस्करण)
१७. पंच शतक (द्वितीय संस्करण)
१८. वैदेही दर्शन
१९. मिथिला माधुरी
२०. हर्षण सतसई (द्वितीय संस्करण)
२१. उपदेशामृत (द्वितीय संस्करण)
२२. आत्म विश्लेषण
२३. राम राज्य
२४. सीताराम विवाहाष्टक
२५. प्रपत्ति दर्शन (द्वितीय संस्करण)
२६. सीता जन्म प्रकाश
२७. लीला विलास
२८. प्रेम प्रभा
२९. श्रीलक्ष्मीनिधि निकुंज की अष्टयामीय सेवा
३०. आत्म रामायण
३१. मातृ स्मृति
३२. रस विज्ञान

साथ ही -

श्रीप्रेमरामायण टीका-सहित (पंचम संस्करण) सजिल्द - टीकाकार श्रीमति सिया सहचरीजी

प्रकाशन विभाग श्रीराम हर्षण कुंज, नया घाट, परिक्रमा मार्ग, श्रीअयोध्या, जिला-साकेत (उ.प्र.)

Scanned by CamScanner

Scanned by CamScanner